BIBLIOTHECA INDICA;

COLLECTION OF ORIENTAL WORKS

PULLISHED BY THE

ASIATIC SOCIETY OF BENGAL.

Vedas. Yajurveda. Taittiriya. in hita.

SANHITA OF THE BLACK YAJUR VEDA.

WITH THE

COMMENTARY OF MADHAVA ACHARYA

EDITED BY

MAHES'ACHANDRA NYAYARATNA, C. I. E.

Vol. IV.

Kanda IV.

CALCUTTA:

PRINTED BY J. W. THOMAS, BAPTIST MISSION PRESS.

1881.

INDEX

TO THE

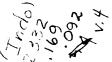
FOURTH VOLUME OF THE TAITTIRÍYA SANHITÁ. FOURTH KÁNDA—AGNIKÁNDA.

Prapáthakas-I-VII.

Риаратнака I.

I_XI Annyákas -- Ilkhásambharana mantráh

| | die de la commentation de la com | , | 1-101 |
|----------------|--|---|--|
| Anuváka. | | | 115 |
| ,, | Mridákrántih, | | 15-37 |
| . ,, | Mritkhananam, | | 37—49 |
| ,, | Mridáharanam, | • • • | 50 - 65 |
| - | Ukhánirmánam, | | 66—78 |
| | | ••• | 78—87 |
| r | | | |
| T | | • • • | 94-113 |
| | Agnutpádanam, | | |
| | Agnidháranam, | | 127-142 |
| | Vaisvadeve havishám vájvánuvák | váh. | 142-151 |
| • | J - 3J | ,, | |
| | Prapáthaka II. | | |
| XI. Anuv | ákas — Deva Yajanagrahah, | ••• | 152-308 |
| Anuváka. | | | |
| ,, | Ukhágneh upasthánam, | | 166-175 |
| , ,, | Ukhágneh chayanadesam prati | | |
| | | | 175-188 |
| , ,, | Gárhapatyágneh chayanam, | | 188-202 |
| • • | | | |
| 29 | A'havaniya-chayanartham bhuba | | |
| " | A'havaniya-chayanartham bhuba karshanam | ıḥ | |
| | karshanam, | | 202—225 |
| , ,, | karshaṇam, Oshadhibápaḥ, | | 202—225 226—239 |
| " . " | karshanam, Oshadhibápah, Loshtrakshepádikam, | ιḥ | 202—225 226—239 239—252 |
| [. " I. " | karshanam, Oshadhibápah, Loshtrakshepádikam, Rukmádyupadhánam, | | 202—225 226—239 239—252 252—264 |
| [. ,, I. ,, | karshanam, Oshadhibápah, Loshtrakshepádikam, Rukmádyupadhánam, Svayamátrinnádíshtakopadhánam, | | 202—225 226—239 239—252 252—264 265—286 |
| [. " I. " | karshanam, Oshadhibápah, Loshtrakshepádikam, Rukmádyupadhánam, | | 202—225 226—239 239—252 252—264 |
| | XI. Anuváka. | " Mridákrántih, Mritkhananam, Mridáharanam, | " Mridákrántih, " Mritkhananam, " Mridáharanam, " Ukhánirmánam, " Ukhásanskárah, " Sámidhenyah, I. " Aprírúpa-Prayájayájyáh, " Agnutpádanam, " Agnidháranam, " Agnidháranam, " Vaisvadeve havishám yájyánuvákyáh, PRAPÁŢHAKA II. XI. Anuvákas — Deva Yajanagrahah, Anuváka. A'sandyám ukhágneh sthápanam, " Ukhágneh upasthánam, " Ukhágneh chayanadesam pratinayanam, |



572939

Digitized by Google

1...151

Prapáthaka III.

Chiti I.

| I—XIII. And I. Anuváka. II. " III. " | ıvákas.—Chitis, Apasyáh ishtakáh, Pránabhritah ishtakáh, Apánabhritah ishtakáh, | | 309—413 309—314 314—321 321—328 | | | | |
|--|--|--------------------------|---|--|--|--|--|
| IV. " V. " | Chiti II. A'svinyah ishtakáh, Vayashyáh ishtakáh, | | 328—337 338—343 | | | | |
| VI. " VII. " | Chiti III. Svayamátrinnádyáh ishta Vrihatyádyáh ishtakáh, | | 343—349 350—354 | | | | |
| VIII. " IX. " X. " | Chiti IV. Akshnayástomíyáh ishtak Avas'ishtáh Akshnayásto káh, Srishtinámakáh ishtakáh | míýáh isht | 362-370 $371-376$ | | | | |
| XI. " | Vyushţinámakaḥ ishţaká Chiti V. Asapatnaḥ Virájas cha is | h, h t akáh, | 376—389 | | | | |
| Yajyánuvákyáh, 396—413 Prapáthakah IV. Fifth chiti continued up to XI Anuváka. | | | | | | | |
| | vákas, Stomabhágáh ishtakáh, Nákásadah ishtakáh, Chodáh ishtakáh, Chhandasah ishtakáh, Sanyagádyáh ishtakáh, Visvajyotirádyáh ishtaká Bhúyaskridádayah ishtaká Bhúyaskridádayah ishtaká Indratanvah ishtakáh, Yajnatanvah ishtakáh, Nakshatreshtakáh, Ritabyáh ishtakáh, | | 414—562 414—422 422—427 428—437 437—454 455—459 459—468 468—472 473—476 476—481 481—486 487—497 497—508 | | | | |

| | | PRAPÁT | гнака V. | | | | | | |
|-----------------|-----------------------------------|------------|-------------------|------------|-------|--------------------------|--|--|--|
| I—XI. | Anuvákas | -Rudrádh | yáya, | | • • • | 509-562 | | | |
| I. Anuv | | | h prasádar | nam, | | 509—518 | | | |
| 1I. " | $\mathbf{U}\mathbf{b}\mathbf{h}i$ | ayato-nam | naskáráni y | yajunshi, | | 518—521 | | | |
| III. " | Ditto |), | | | | 522-526 | | | |
| IV. " | Ditto |), | | | | 526-529 | | | |
| V. " | Nam | askáropak | ramáni ya | junshi, | | 529—531 | | | |
| VI. " | Ditto | ·, | | ••• | | 532-534 | | | |
| VII. " | Ditto |), | ••• | | | 534—536 | | | |
| VIII. " | Ditto |), | ••• | ••• | | 537—539 | | | |
| IX. " | Ditto | | | ••• | ••• | 540—542 | | | |
| X. ,, | | ih mantrá | | ••• | | 543—551 | | | |
| XI. " | S'isht | áh richah | yajunshi | cha, | • • • | 551—562 | | | |
| Ркара́тнака VI. | | | | | | | | | |
| | Agnisans | KÁRAH AŚ | V AME DHÁN | GÁNI CHA. | | | | | |
| I—X. A | nuvákas, | ••• | ••• | ••• | | 563-673 | | | |
| I. Anuv | áka. Paris | | | dayaḥ, | | 563—579 | | | |
| II. " | | | a-homah, | | | 579—593 | | | |
| III. " | Agni | praṇayan | am, | | ••• | 594—604 | | | |
| IV. " | Apra | tiratha-sú | ktam, | • • • | | 604-615 | | | |
| V. ,, | Agni | sthápanar | n, | ••• | | 616-632 | | | |
| VI. ,, | Aśva | medhánga | am kavach | ádi-sannáh | ıaḥ, | 633-646 | | | |
| VII. " | Aśva | stomíya-n | nantráh, | ••• | | 646 - 656 | | | |
| VIII. " | Ditto | · · · · | ••• | • • • | | 657—663 | | | |
| IX. " | Ditto | , | • • • | ••• | ••• | 664-673 | | | |
| Prapáthaka VII. | | | | | | | | | |
| I—XV. | Anuvákas | -Vasudhá | írádayah s | anskáráh, | ••• | 674-744 | | | |
| | Anuvákás. | | ráhoma-ma | | | 674-699 | | | |
| XII. | Anuvaka. | | aviyahoma | | | 699-708 | | | |
| XIII. | ,, | Agniyog | aḥ, | ••• | | 709—721 | | | |
| XIV. | " | | ishtakáh | | | 7 22— 7 33 | | | |
| XV. | " | Aśvamed | hasamban | dhinyo yáj | | | | | |
| | | nuváki | uyáh, | ••• | ••• | 733—744 | | | |
| | | | | | | | | | |

श्रीगणेश्राय नमः।

श्रव तैतिरीयसंहिताभाष्टे

चतुर्घकाण्डे प्रधमप्रपाठके

प्रचमाऽनुवाबः।

॥ इरिः 🦫 ॥

युद्धानः प्रयमं मनस्तुत्वायं सिवता धियः। श्रुष्ठां ज्योतिर्निचायं प्रियया श्रुष्ट्या श्रुष्ट्या भ्रुष्टाभरत् । युक्ताय मन्त्रमा देवान्त्सुवं येता धिया दिवं। र इञ्ज्योतिः करिष्ट्यतः संविता प्रं सुवाति तान् । युक्तेन मनसा वयं देवस्यं सिवतः स्वे। सुवर्गेयाय शक्त्ये । युद्धते मनं उत युद्धते थियो विप्रा विप्रस्य रहते विप्रितं। विष्रितं। विष्रितं। देवे वयुनाविदेक इत्॥१॥

मृद्दी देवस्य सिवृतुः परिष्ठुतिः(*)। युत्रे वृां ब्रह्मं पूर्वे नमें भिर्वि खें।का यन्ति पथ्येव सूर्राः। श्रृक्षन्ति विश्वे श्रृत्यानि स्थानि विश्वे श्रृत्यानि तृष्युः(॥)। यस्य प्रयाण्मम्बन्य द्रच्येदें वा देवस्य मिह्मान् मर्चतः। यः पार्थिवानि विम्मे स् एतंश्रो रजार्रेस देवः सं-

विता महित्वनी (१) । देवं सवितः प्रसुव युद्धं प्रसुव ॥

युत्तपितं भगीय दिखी गेन्ध्रवः। केतेपूः केतं नः पुनातु वाचस्पतिवीचम् स्वदाति नः (०)। इमं नी देव सवितर्युत्तं प्रसुव देवायवर्रं सिख्विदर्ं सर्चाजितं धन्जितरं सुव्जितं (०)। क्रूचा स्तोम् समर्ष्वय गाय्चेषं रयन्तरं। ब्रुह्माय्चवर्त्ति (०)। देवस्य त्वा सिव्तुः प्रस्तवेऽश्विनीबीहभ्यां पूष्णा इस्तीभ्यां गाय्चेण छन्द्र-साऽऽदंदेऽक्रिर्स्तत् (०) श्रिसंरित्त नारिः॥ ॥

श्रुमिन त्वा छन्द्रसाऽऽदंदेऽक्रिरस्वत् (११) विधेरिम् ना-रिरिम् त्वया वयः स्थस्य श्रामि श्रेकेम् खनितुं पुरोधं। शागतेन त्वा छन्द्रसाऽऽदंदेऽक्रिरस्वत् (११) इस्तं श्राधायं सविता विभृद्धिः हिर्खयों। तया श्रो-तिर्श्रस्त्विमिद्धिं खात्वा न् श्राभरानुंष्ठभेन त्वा छन्द्-सा,ऽऽदंदेऽक्रिरस्वत् (११) ॥ ४ ॥

इत्। युत्तं प्रसुव्। नारिः। श्रामुष्टुभेन त्वा छन्दु-सा। विर्णि च ॥ १ ॥

द्ति तैत्तिरीयसंहितायां चतुर्थकाख्डे प्रवमप्रपाठके प्रवमाऽनुवाकः ॥ * ॥

श्रीगणेशाय नमः।

यस नियमितं वेदा यो वेदेश्वीऽसिसं जगत्।

निर्माने तमएं वन्दे विद्यातीर्थम हे यरम्॥

हतीयकाण्डे से मस्य प्रेषः प्रायेष विद्यतः।

चतुर्ये लिप्तियाष्ट्रमन्त्राणां पाठ ईयंते॥

प्रवान्तरविष्ठेषस्य विनियोगेषु दिर्घतः।

चतुर्यकाण्डमन्यास्यं सप्तभः पाठके युत्तम्॥

चस्रायस्य मन्त्राः प्रथमे पाठके युताः।

एकाद्यानुवाकाः सुस्तर्यास्य कमादमौ॥

प्रभगदानं स्दाक्तान्तिः सननं एरणं तथा।

चस्रात्रानं स्दाक्तान्तिः सननं एरणं तथा।

चस्रात्रादे धारणस्य याच्या द्रायनुवाकगः। एति।

तचास्यादान प्रतिपादके प्रथमेऽनुवाके प्रथमं तावद्वी समन्त्रा

कलाः,—'जुङ्गामष्टराष्ट्रीतं रहीला युद्धानः प्रथमं मन इति यजुरष्टमाभिष्टंग्भिरेकामाद्धतिं जुष्टे।ति' इति । तत्र प्रथमान्द-षमाष्ट,—"युद्धानः प्रथमं मनस्त्रकाय स्वता धियः। त्रक्षिं च्योतिर्निषाय्य प्रथिया त्रथ्याभरत्^(१)" इति । 'स्वता' (प्रेरकः परमेश्वरः) 'प्रथमम्' त्रक्षित्रयम्विषये 'मनो' 'युद्धानः' (समाद-धानः) 'धियः' (रष्टकादिविषयाणि ज्ञानानि), 'तत्त्वाय' (तनिला विस्तीर्य) 'त्रिग्नं च्योतिर्निषयाणे (चीयमानमिन्नं सफलानां कर्मणां प्रकाजनसाधनक्षतं निश्चित्य), 'पृथित्याः' 'श्विध'—'त्राभरत्' (श्वा-श्वतवान् भूमेरपरि श्वानीतवान्)। तदनन्तरमग्निम् उखासक्षं * पृथित्यां स्वापित्वतुम् उखानिकाषादै। इमं होमं करोतीति भावः।

श्रय दितीयामाइ,—''युक्ताय मनमा देवान्सुवर्यते धिया दिवं। बृष्टञ्ज्योतिः करिखतः मिवता प्र स्वाति तान्(१)'' इति। 'मिवता' 'तान्' (इन्द्र्यविभेषान्) प्रकर्षेण 'सुवाति' (प्रेरयित), किं कला?—'देवान्' (कीडापरलेन चपलान्) इन्द्रियविभेषान् 'मनमा' 'युक्ताय' (विषयेश्यो नियम्य)। कीदृशानिन्द्रियविभेषान्?—'सुवर्यतः' (खर्में गच्छतः), खर्गप्राध्ययमुद्यतानित्यर्थः; 'बृष्ट-ज्ज्योतिः' (प्राटं चीयमानमित्रं) 'धिया दिवं' 'करिखतः' (तन्त-दिष्टकादिविषयया प्रश्रया द्यातमानं कर्नुमुद्यतान्)।

श्रथ हतीयामार,—''युक्तेन मनसा वयं देवस्त सवितः सवे। सुवर्गेयाय क्रह्में (१)'' इति। यस्मात् पूर्वे।करौत्या सविता इन्द्रियाणि प्रेरचित, तस्मात् 'वयं' 'सवितः' 'देवस्य' प्रेरणे सित 'युक्तेन' (वि-षयेभ्या नियमितेन) 'मनसा' 'सुवर्गेयाय' (स्वर्गेकोको गीयमान-स्वाग्नेः सम्पादनाय) 'क्रक्ते' (क्रका) भूयास्ते,त प्रेषः।

भय चतुर्थीमाइ,—"युद्धते मन छत युद्धते धियो विप्रा विष्रस्य बृहतो विषस्तिः। वि हे।चा द्धे वयुनाविदेक इत् मही देवस्य स्वितः परिष्ठुतिः(⁸)" इति । 'विषस्त' (ब्राह्मस्स) यज-मानस्य स्वित्तिः 'विप्राः' स्वितः 'मनो' 'युद्धते' (प्रथमं स्वकीयं मनो विषयेश्वो निवर्त्यं समाहितं कुर्वन्ति) । 'छत' (श्विप स)

^{*} तदनक्तरमुखा**वच्चय**मिति उ. पु॰ पाठः ।

'धियः' (इष्टकादिविषयाणि ज्ञानानि) 'युद्धते' (सम्पादयिक्त)। कीदृष्ठ विप्रसः?—'वृद्धतः' (प्रभूताग्निचयेनोद्धोनेनाभिष्ठद्भस्थ), 'विपिस्तः' (विदुषः प्रयोगाभिज्ञस्थ)। कीदृष्ठा विप्राः?—'होचाः' (होमश्रीखाः), कर्मस्थाखस्यरिहता दियाः। 'एक इत्' (एक एव) स्विता 'वि'-'द्धे' (सर्वमिदं निर्मितवान्)। कीदृष्ठः स्विता?—'वयुनावित्' (स्वित्ययज्ञमानाभिप्रायाभिज्ञः)। कथम् एक एव सर्वमिदं क्रतवानिति न विस्नेतयं, यतः 'स्वितः' 'देवस्य' 'परि-ष्टुतिः' 'मही' (परितः सर्वेषु देवेषु श्रूयमाणा स्वितर्महतो)।

श्रथ पश्चमीमाइ,—''युजे वां ब्रद्धा पूर्धे ममोभिर्वि द्वाका यिन पथ्येव स्तराः। ग्रखिन विश्वे श्रम्थतस्य पुना श्रा ये धा-मानि दिखानि तस्तुः (१)'' दित। यजमानः पत्नी चेखेती हे द्यती, 'वां' (युवयोर्ग्ये) 'पूर्धे' (पुरातनेमं हिषिभरनृष्ठितं) ब्रद्धा (पिर्वृदं) श्रिष्ठ च्यास्यं कर्म 'नमोभिः' (नमस्कारपूर्वकेरिष्ट-कोपधानादिभिः) 'युजे' (सन्यादयामि)। तस्तिन् सन्यादिते सित 'श्रोकाः' (यजमानस्य कोर्म्तयः) 'वि'-'यन्ति' (भूमी विविधं प्रसर्तना)। तत्र दृष्टानाः,—'पथ्या' 'स्ररा' 'दव' (गीर्वाणमार्गे श्रन्मार्खे स्वर्थरस्ययो यथा प्रसर्गना तदत्)। किश्व 'श्रस्तस्य' (प्रजापतेः) 'पुना' 'से' 'देवाः' 'दिखानि' 'धामानि' 'श्रा'-'तस्तुः' (प्राप्तवनाः), तेऽपि 'विश्वे (सर्वे) 'ग्रखिना' यजमानस्य कीर्म्ति-निति श्रेषः।

श्रथ षष्टीमार,--"यस्य प्रयाणमन्त्रन्य रत् ययुर्देवा देवस्य

^{*} चयनकर्मेक्याकस्यरहिता इति J. पु॰ पाठः।

महिमानमर्चतः। यः पार्थिवानि विममे य एतमे रजाश्रवि देवः यविता महिलना (१)" इति। 'यस्य' यवितः 'प्रयाणं' (प्रवृक्तिं) 'क्रन्ये' 'देवाः' 'क्रन्'-'ययुः' 'इत्' (श्रवस्त्रमनुगक्कन्येव)। किं कुर्वनाः?—श्रस्य 'देवस्य महिमानम्' 'श्रर्षतः' (श्रर्षयनाः)। किञ्च 'यः' यविता 'पार्थिवानि' 'र्जायि' 'विममे' (प्रथिवीनतान् पर-माणून् विभेषेय गण्यिता निश्चितवान्), 'स' 'यविता' 'देवः' 'महिलना' (महत्तेन) 'एतज्ञः' (याप्तवान्)। (एति यवेन गक्क्रन्तीत्येतमः)।

श्रथ सप्तमोमाइ,—"देव सवितः प्रस्व यद्यं प्रस्व। यद्यपितं भगाय दिखो गर्भवः। केतपूः केतनः पुनात वाचरपितं किम् मद्य खदाति नः(०)" दित । हे 'सवितः' 'देव', 'यद्यं' 'प्रस्व' (प्रकर्षेण प्रेर्य), 'यद्यपितं' (यजमान स्व) 'प्रस्व'। किमयें?— 'भगाय' (साभाग्याय)। 'दिखः' (दिवि खर्गे भवः) किस् दूं 'गर्भवः, 'केतपूः' (केतं परकीयचित्ते वर्त्तमानं द्यानं पुनाति ग्रेष्धयतीति केतपूः, स) स, 'नः' (श्रस्नाकं) 'केतं' (चित्तवर्त्तिद्यानं) 'पुनातु' (भ्रान्तिपरिहारेण ग्रेष्धयतु)। 'वाच्यसितः' 'श्रयः' (श्रस्मिन् कर्मणि) 'नः' (श्रस्मदियां) 'वाचं' 'खदाति' (खद्यतु)।

रत्यस्यः सप्तोक्षा श्रष्टमं यजुराष,—''इमं ने। देव स्वित-र्यंशं प्रस्वव देवाणुवः सिखविदः स्वाजितं धनजितः सुवर्जि-तम्(^{८)}'' इति। हे 'स्वितः' 'देव', 'नः' (श्रस्मदीयम्) 'इमं' 'यश्चं' 'प्रस्वव'। कोवृशं?—(देवैर्याति मिश्रीभवतीृति देवायुः, तं) 'देवा-

^{*} खदातु इति B. एवं J. पु॰ पाठः।

युवं', (सखायं खनिष्पादकं यजमानं वेत्तोति सखिवित्, तं), (समाणि दादमाहादीनि जयित वभीकरोतीति समाजित्, तं), तानि हि जीयमानमाग्रमपेचन्ते; (धनं जयित फलक्षेण सन्पादयतीति धनजित्, तं), (सुवः खगे फलक्षेण सन्पादयतीति सुवर्जित्, तम्)।

श्री प्रयमार्थामां चतुर्थकाष्ड्रगतामां मन्त्राषां पश्चमकाष्डे (१प्र०१९ श्र०) कमेणेव ब्राह्मषमास्तातं। तत्रादी 'युद्धानः' द्रह्या-दिभिर्मन्ते हींमं विधत्ते,—''सावित्राणि जुहोति प्रस्रह्ये'' इति । सविता येषु मन्त्रेषु प्रतीयते, तानि सावित्राणि, तैहीं से सित स्त्रमानं सविता कर्मणि प्रसाति।

द्रयं विधन्ते,—"चतुर्यं चीतेन जुहाति चतुष्यादः पन्नवः पन्नद्रनेवावहत्ये" इति ।

चतुः यक्क्यां पुत्रः प्रश्नंषति,—"चतस्ते दिन्ने दिन्ने प्रति-तिष्टति" दति।

पुनरिप प्रकारान्तरेण प्रश्नंवित,—"इन्दाश्चि देवेभ्ये। प्रान्त्रमन् वो भागानि इद्यं वच्छामः" इति तेभ्य एतचतुर्यश्चीतम-धारयन् पुरी अनुवाक्याये याच्याये देवताये वषट्काराय यचतु-र्यशीतं जुड़े। ति इन्दाश्चेव तत्नीणाति तान्यस्त प्रीतानि दे-वेभ्यो इद्यं वहन्ति" इति । नानाविधच्छन्दोयुन्तपुरी अनुवाक्याय-मिमानिना देवा इविभाग्भ्यो देवेभ्ये। प्रयुक्ताः सन्ते। उन्यन्नाग-च्यन्। किं बुवन्ते। गताः ?—इति तदुच्यते,—हे देवा भागरिह-मानि वयं इन्द्रांसि 'वः' (युन्नदीयानि) हवीं वि 'न' 'वच्छामः' (इविवेदनं न करिकाम द्रित मुवनः)। तदानीं देवा विचार्य हे। मकाले यचतुर्पदणं तक्कन्दमां प्रीतिकरं भविति तेषां भागमकल्पयन् ;—तच प्रथमपदणं पुरेऽनुवाक्याख्याया गायची-देवतायासुष्टिकरं ; दितीयपदणं याज्याख्यायास्त्रिष्टुब्देवताया-स्विष्टकरं ; दितीयपदणं येवयाख्याया जगतीदेवतायासुष्टिकरं ; चत्रियपदणं देवताख्याया जगतीदेवतायासुष्टिकरं ; चतुर्थपदणं ववदकाराख्याया अनुष्टुब्देवतायासुष्टिकरं । अतस्रतु-र्यद्दीतेन होने सित क्रन्दोदेवता थाः, ताः प्रीषयित, तास्त प्रीताः सत्यो द्र्यं वहन्ति।

स्वकारेण प्रास्तान्तरमाश्रित्य प्रष्टरहीतिमित्युक्तं, तचेदं चिन्तनीयं,—िकसेकेकं मन्त्रमुचार्य जुड्डयात्, श्राहोस्कित् सर्वाणि मन्त्राण्डुचार्यः?—दित । तच हेथोपादेयावुभा पंचा कसेण दर्भयति,—"यं कामयेत पापीयान्त्रशादित्येकेकं तस्य जुड्डयादा-इतीभिरेवेनमपर्यहाति पापीयान् भवति यं कामयेत वधी-यानस्थादिति सर्वाणि तस्यानुद्रुत्य जुड्डयादाञ्जत्येवेनमभिक्रमयति वसीयान् भवत्ययो यञ्चस्वेवेषाभिक्रान्तिः" दति । 'पापीयान्' प्रतिष्ठयेन पापा दिद्द दत्यर्थः । एकेकं मन्त्रमुचार्य होसे सति संग्रेषाभावात् परस्यरमपरक्राभिराञ्जतिभिरेतं यजमानम् 'अपर्यकाति' (धनाद्येतं करोति) तता दिरद्रो भवति । 'वधी-यान्' वसुमत्तरः । सर्वाण्डुचार्य होसे तु मन्त्राणां परस्यरसंग्रेषा-देकयैवाञ्चत्या यजमानम् 'प्रभिक्षमयति' (प्रभिच्याप्तं करोति), ततो धनिको भवति। प्रपित्त, येयमभिक्षमण्डेतुरेका प्राञ्जतिः; एषा यञ्चस्वेव प्रशित्यगक्रपस्थैव प्रभिक्षान्तिः । स्वाधीने। स्रजो भवति। मस्तगता मष्ट्यक्कां प्रशंवति,—"एति वा एव वज्ञमुखाहृक्कां थोऽग्रेर्देवताया एत्यष्टावेतानि वाविवाणि भवन्वष्टाचरा गायकी गायकीऽग्रिक्षेनेव यज्ञमुखाहृक्का अग्रेर्देवताये नैति" (५।१।१ %) दति। यो यजमानोऽग्रिक्षणया देवताया 'एति (अपगच्छति), 'एव' यजमानो बज्ञोपकमादारभ्य यज्ञफ खरूपाया 'ऋक्कां' 'एति' (अपगच्छति)। 'अग्रिवें यज्ञमुखम्' दति अत्यन्तरात् अग्रेरपमम एव यज्ञमुखादपगमः। कस्तर्क्वंग्रेः वकाज्ञादपगमस्य परिदारः? दति,—तदुच्यते, प्रारक्षे वाविवाणां मन्त्राणामष्टले वति 'अष्टाचरा गायकी' वस्त्यते, 'अग्रिः' च 'गायकः', जभयोर्मुस्कजन्यवात् ; ततो मायकीयस्पत्तिरेवाग्रियस्पत्तिरिति यज्ञमुखादग्निक्पादगपेतः वन् वस्त्रहेरिय नापैति।

श्रष्टमक्रीपेतासेकामाङ्कतिं प्रशंवति,—"श्रष्टी साविषाणि भव-नयाङ्कतिर्गवमी जिल्लमेव यञ्चमुखे विद्यातयित" (१।९।९ श्र॰) इति । जिल्लमेसे खचेर नवसङ्घाकाः, श्रतेर्धशाष्ट्रमक्षविशिष्टा-ङितगतया नवसङ्घया जिल्लमेसेक 'यञ्चमुखे' 'विद्यातयित' (विशेषेण प्रसारितवान् भवति)।

अनेदमपरं चिनानीयं,— किं स्प्यूपान् षप्तान्तान् खसार्थं,
'इमं नो देव स्वितः' इति युष्णः सप्तमं क्राता, पद्मात् 'देव स्वितः' इत्यूषम् श्रम्मिमां कुर्यात्, किं वा एतास्त्रं सप्तमीं क्राता, तत् युष्पानमं कुर्यात्? इति । तत्र देयोपादेवपसी क्रमेस दर्भयति,—''यदि कामयेत क्रन्दाः सि यज्ञयश्रसे नार्पययमित्यूष-मनामां कुर्याष्क्रन्दाः स्थेव यज्ञयश्रसे नार्पयति यदि काम्बेत चजमानं चज्ञयत्रसे नार्पयेयमिति चजुरन्तमं सुर्यात् चजमान-मेव चज्ज्ञचन्रसे नार्पयति" (५१९।९५०) इति । 'यज्ञचन्नमं' (यज्ञ-फसं) 'ऋपंयेयं' (संयोजयेयम्), इन्दोबद्धाया ऋचस्त श्रन्तिमले यज्ञफलं इन्दः सुगच्छेत्। यजुवस्त इन्दोरहितलेन यज्ञफलं इन्दोगामि न भवति, किन्तु यजमानगास्येव भवति ; तस्राद् बजुरेवान्तिमं कुर्यादित्यर्थः ।

कर्यः, 'ऋचा स्रोमः समर्थयेखपरं चतुर्यशीतं यशीवा' इति। पाठसु,—''ऋचा स्तामः समर्थय गायनेण रचमारं। ष्ट्रह्मायवर्क्ति^(८)'' इति । दे त्रग्ने, खोवदेतुमामाधारभूतया 'ऋचा' 'स्रोमं' (स्रोचं, श्रमातृत्तिरूपं संघातं वा) 'समर्धय' (सम्दर्भ कुर्)। 'गायनेष' सामा सर् 'र्यन्तरं' साम 'समर्थय'। गायच्यामैव वर्त्तांन भागा यदा ष्ट्रहासः, तत् 'गायचवर्त्तान', गायचवामवहितं 'ष्ट्रहत्' वाम 'वमर्धय'।

श्रक्षिन् मन्त्रे 'समर्धय' इतिपदस्य तात्पर्ये दर्शयति,—"ऋचा स्रोमः समर्थेयेलाइ सन्हें। (५।१।१८०) इति ।

कल्पः, 'देवस्य ला सवितुः प्रसव इति चतुर्भिरिश्रमादसे वैषवीं कस्त्राचीं सुविरामसुविरां चे भियतः-क्णूमन्यतरतः-क्णूं वा प्रादेशमात्रीमरिक्षमात्रीं व्याममात्रीमपरिमितां वा' इति। पाठन्त,—''देवस्थ ला सवितुः प्रसवेऽश्विनीर्बाञ्जभ्यां पूर्व्यो इस्ताभ्यां गायनेष इन्द्रशाऽऽद्देऽङ्गिन्खत्^(१०)त्रक्षित्वि नारित्वि प्रथियाः यधसादग्रिं पुरीष्यमङ्गिरखदाभर चैष्टुभेन ला कन्दसाऽऽददे-अक्रिरखत्^(११) बिश्वरिष नारिरिष लया वयः सधस्य प्राअग्नः

मने स्वितं पुरीखं जागतेन ता इन्द्साऽऽद्देऽङ्किरस्वत्^(१२) इस माधाय स्वता विश्वद्धिः हिरस्यों। तया च्योति-रमस्विद्धां स्वाता न माभरानृष्ठभेन ता इन्द्साऽऽद्देऽङ्किर-स्वत्^(१२)" इति। भने स्वां निर्मातं स्वत् खननीया, खननहेतुः काष्ठविमेषोऽश्वः। हे स्रक्षे, 'स्वतिः' 'देवस्य' प्रेर्णे स्वति 'मिनोः' सम्बन्धियां मिलिन्धपर्यन्तायां 'साम्रथां', 'पूष्णः' सम्बन्धियां साम्रुस्थियां 'हस्तायां' साधनश्चितायां, सहायभूतेन 'गायचेष इन्द्या' युक्तः सन् ता 'माददे' (स्वीकरोमि)। तन दृष्टानाः,— 'मिलिन्स्वत्', मिलिन्सः स्वयः पूर्वे यथा स्वीकतवनाः तद्त्। त्यं प्रस्तिर्धिं (सनमहेतः काष्ठविमेषोऽसि); तथा 'नादि-रिष' (न विद्यते महिश्वास्तव सेयं नारिः) सनमकास्ते पाषा-पादिना तव नास्ति सुष्टीभाव द्वार्थः।

यक्तिरखक्किने प्रथमयजुदः समाप्तलात् 'यक्तिरिव' रत्या-दिकं दितीयं यजुः। प्रमुरिते हे यक्ते, 'पृथियाः सभसात्' 'पुरीयम्' 'यिम्न' 'याभर' (याहर)। पुरीवयन्देन पांसक्पा प्रका सद्यते, तद्दंतीति पुरीयोऽग्निः, सदमादाय धर्खा कला तत्यामित्रत्वसायते, त्रतो सदम्योरभेदोपचारेण सदा-हरणमेवाम्याहरणिमिति विविचिता, 'पुरीव्यमित्रमाभर' दत्युच्यते। त्रयं चे।पचारे।ऽग्निचयनप्रकरणे सर्वचानुवर्त्तियते। त्रत एव पञ्चम-काष्डान्ते चे।धपरिहारे। भविव्यतः,—''ब्रह्मवादिने। वदन्ति यस्त्राद्याप्रयोग्यतेऽय कसादिग्रक्यते दति कन्दे।भि-श्विनेति त्रग्नयो वै कन्दाश्रम् तसादिग्नक्यते" (५।७।८.५०) इति । श्रतः पांस्क्पमित्रमास्तुं 'नेष्टुभेन इन्द्सा' सस्कारिणा युक्तः लाम् 'श्राददे' । 'सिक्किरखत्' इति दृष्टान्तः पूर्ववत्। स्ट्रा-दर्षे श्रक्ष्मादाने च दृष्टान्तवाय दिः 'श्रक्किरखत्' इत्युक्तम् ।

त्रय हतीयं यजुक्चते, हे त्रक्षे, तं 'बिक्सः' (भरणक्षाका महासम्यादनकुशका) 'त्रिसि'। 'नारिरिस' इति पूर्ववत्। 'त्रया' युक्ता 'वयं' 'सधक्षे' (पृथिया जत्मक्षे) 'त्रा'(समन्तात्) 'त्रश्चिं' 'पृरीय्यं' 'क्षित्रं' 'श्चकेम' (श्वका भवेम), त्रतो 'जागतेन' 'क्रन्दसा' सच-कारिका युक्तक्काम् 'त्राददे'। 'त्रिक्तिरखत्' इति दृष्टान्तः पूर्ववत्।

श्रथ चतुर्थे यजुर्श्यते, 'सितता' (प्रेरकः परमेश्वरः) पुरा
'हिरश्ययीं' (सुदर्णनिर्मिताम्) 'श्रिक्षं' 'इस्ते' खापियता 'मिश्रत्'
(पोषितवान्), श्रतः 'तथा' (हिरश्यया) श्रश्या युक्तः लम्
'श्रजसमित्' (सर्वदेव) 'ख्योतिः' (प्रकाणमानं) 'श्रिय्नं' 'खाला'
(श्रिक्षिनोपचिरतां सृदं खनिला) 'नः' (श्रस्पदर्थम्), 'श्राभर'
(श्रामय)। 'श्रानृष्टुभेन' 'हन्द्सा' सहकारिणा युक्तेऽहं लाम्
'श्राददे'। 'श्रिक्षरखत्' इति दृष्टान्तः पूर्ववत्।

एतेर्मन्त्रेरच्यादानं विधत्ते,—"चतुर्भिरिधमादत्ते चलारि इन्दाप्ट्रिष इन्दोभिरेव" (५।९।९%) रित । गायनी-निष्टुष् जगत्यनुष्टुविति च्यन्दर्भा चतुष्टयं। मन्त्रेषु तेषां सद्दकारिलेना-भिधानात् इन्दोभिरेव।श्रेरादानं इतवान् भवति।

मको प्रसवशब्दकासिपायं दर्शयति,—"देवस्य ला सवितुः प्रसव इत्याद प्रसत्ये" (५।९।९५०) इति।

बंबनिर्मिताया चभेरकः सुविरतं विधन्ते,—"प्रश्निदेवेभोऽनि-

सायत स वेणुं प्राविज्ञत् एतामृतिमनुषमचरत् स यहेणोः सुविर्श् सुविराऽभिर्भवित सयोनिलाय" (५।१।१%) रित। पुरा कदा-चित् केनापि निमित्तेन अपरक्रोऽग्निर्देवेग्थे। निरमच्छत्, निर्गत्य देवानां दर्भनं वार्यातुं 'वेणुं प्राविज्ञत्'। वेणोर्मध्ये 'सुविरं' (खानं) यदस्ति, एवेव मूषिकस्य अग्रविखवत् जती, ताम् 'एतामूतिं' वेणुमध्यमतच्छिद्रस्पाम् अनुक्रमेण सम्यग्नुचरत् । अतोऽग्नेः सुविरवेणुप्रियलात् 'स्रित्रः सुविरा' कार्या। तच सुविरलं 'स-थेनिलाय' सम्यद्यते । येनिरग्नेः स्नानं, तस्रिहतलं स्योनिलम्।

श्रया भेः क्रणाविन्द् लाञ्कितलं विधत्ते,—"स यम-यमावसत् तत्कृष्णमभवत् कल्याची भवति रूपसन्ध्ये" (५।१।१%) इति। वेणुमध्ये सञ्चरन् श्रव्यिधिकन्-यस्मिन् स्वाने वासमकरोत्, तत्-स्वानदाहेन 'क्रष्णमभवत्'। श्रतोऽग्निवासद्योतनाय श्रभ्यः 'कल्याची' (क्रष्णविन्दु लाञ्किता) कर्मया। तथा सति श्रभ्यिरूपस्व चित्रलात् समृद्धिर्ध्यते, यजमानस्य च रूपसमृद्धिर्भवति।

श्रमेवभयोर नाये स्वी द्यालं विधत्ते,—''उभयतः-द्यार्भवती-तश्रामृतश्चार्षस्वावद्ये'' (५।१।१ श्र०) दति । 'क्यू तेश्रने' दत्यसा-द्वाते। दत्यन्नः क्यूश्रम्दकी द्यालमा पष्टे, अभयोः श्वयमूलये स्वी द्या श्वभिः 'उभयतः-क्यूः', तादृशी कार्या । तदेतदुभयतस्वी द्यालम् 'दतश्चामृतस्य' (ले। कद्येऽपि) 'श्वर्कस्य' 'श्ववद्य्ये' (पूश्रायाः सम्बन्धे) भवति ।

त्रभेर्देर्घपरिमाणं विधत्ते,—"वाममाची भवत्वेतावदै पुरुषे

^{*} तत्सानं दाचेन इति पाठी भवितुं युक्तः।

वीयें वीर्यसमिता" (५)९ प्र॰) इति । चतुर्भिरहित्रिभिसुस्थे। व्यामः ; एतावतो कार्या । जित्यते 'पुरुषे' 'वीर्यम्' 'एतावत्' एव । प्रत इयं 'वीर्यसम्मिता' भवति ।

पचानारं विधन्ते,—"श्रपरिमिता भवत्यपरिमितस्थावर्धे" (५।९११ श्र) इति । नियतपरिमाणरिष्ठतत्वमपरिमितत्वं, तचा-परिमितस्य बद्धलाश्रादेः सम्पत्त्ये भवति ।

तादृशा त्रभेर्वेणुकार्थलं विभन्ते,—"यो वनस्यतोनां फलग्रहिः स एषां वीर्यावान् फलग्रहिर्वेणुर्वेणवी भवति वीर्यस्यावरुष्टे" (५। १।१२०) इति । फलानि सह्हनि ग्रह्मातीति 'फलग्रहिः'। 'वन-स्पतीनां' मध्ये यः 'फलग्रहिः' श्रस्ति, 'एषां' फलग्रहिणामि मध्ये 'स' वेणुरतिभयेन 'फलग्रहिः' । वीद्याद्यग्रवदेणूनां समाप्तिसंवस्परे वेण्यमसदृभेषेष्ठभिवीं जैद्येतलात, लिच सारोपेतलेन वीर्यवां स्व । तस्मादियमिनः 'वेणवी' कार्या । तस्र वेणवलं वीर्यसम्पत्ते भवति ॥

श्रत्र विनियोगसङ्ग्रहः,—

युद्धाऽष्टकेरेकहाम, ऋचा स्नामं, पुनर्फतः । देवेत्यभिं चतुम्बेणादत्ते, मन्त्रास्त्रयादश्र॥

त्रय मी मांसा,—दादशाध्यायस्य हतीये पादे (त्र • १४) चि-नितम्।

"चतुर्मिरिसिमित्यच विकल्पा वा समुखयः। विकल्पः पूर्ववकीवं समूचे करणलतः॥ त्रुग्ना श्रूयते, 'चतुर्भिरिसिमादत्ते' दति; त्रच पूर्वेकिवि- भागमन्त्रवत् प्रतिमन्त्रं पृथक्करणलं नास्ति, चतुःमङ्खाया समूहे करणलप्रतीतेः, तस्रात्मन्त्रान्ते कर्ममन्त्रिपातस्य बाधेनैव समुखयः स्थात्। न च, पूर्वस्थैकैकस्य मन्त्रस्थान्ते मन्त्रिपातेन स्थादिति बद्धनीयं; वाचनिकमङ्ख्या न्यायसिद्धस्य तस्य बाधितलात्॥

द्ति सायनाचार्यविर्चिते माधनीये वेदार्घप्रकाशे कृष्ण-यजुःसंचिताभाये चतुर्घकाण्डे प्रयमप्रपाठके प्रथमे। उनुवाकः॥

द्मामंग्रम्यन् रश्नाम्तस्य पूर्व आयंषि विद्धेषु क्या। तया देवाः सुतमा बंभूवुर्श्यतस्य सामन्तस्-रमारपंन्ती । प्रतूर्त्तं वाजिन्नाद्रंव वरिष्ठामनुं संव-तं। दिवि त जन्मं पर्ममन्तरिश्चे नाभिः पृष्टिया-मध् योनिः । युष्ट्यायाः रासंभं युवमस्मिन् यामे एष्ट्रयाः अग्निं भरंन्तमस्मयुं । योगे-योगे त्वस्तर् वाजेवाने इवामहे। सर्खाय दन्द्रं मूत्ये । प्रतूर्वन् ॥ ॥ १॥

रद्यं वृक्षामुक्षश्रं स्तीरुद्रस्य गार्णपत्याक्षशेभूरे हि । उवन्तरिश्चमन्त्रि स्वृक्तिगं व्यूतिरभयानि कृखन् (॥) । पूष्णा स्युजा सुद्द । पृष्टिक्याः स्थर्षाद्धिं पुरोष्यं -मिक्तर्स्वदच्छे हि (१) च्युप्ति पुरोष्यं मिक्तर्स्वदच्छे मे । (०) -ऽग्निं पुरोष्यं मिक्तर्स्वद्वं रिष्या मे । (०) ऽग्निं पुरोष्यं मिक्तर्- खद्गरामः(र)। श्रम्बुझिरुषसामग्रमखुदम्बर्शान प्रथमा जातवेदाः। श्रनु स्रर्थस्य ॥ २ ॥

पुरुवा चं रुग्गीननु द्यावाष्टिय्वी आ तंतान (१०)।
आगत्यं वाज्यध्वंनः सर्वा स्धा वि धूनते। अग्निः स्थर्थे
महित चक्षुंषा नि चिकी षेते (११)। आक्रम्यं वाजिन्
प्रिय्वीम् ग्रिमिच्छ रुचा त्वं। सूम्यां वृत्वायं ने। ब्रूह्
यतः खनाम् तं व्यं (१२)। द्यास्तं पृष्ठं प्रं य्ववी स्थर्थमात्मान्तरिश्वः समुद्रस्ते यानिः। विख्याय चक्षुंषा
त्वम्भितिष्ठं॥ ॥

पृत्न्यतः (११)। उत्क्रीम महते सौर्भगायासादास्था-नीद्द्रविणोदा वीजिन् व्यथ् स्थाम सुमृतौ पृष्टिया मृत्रिं खेनिष्यन्ते उपस्थे आस्याः (१४)। उद्क्रमीद्द्रवि-णोदा वाज्यवीकः स खोक्यः सुरुतं पृष्टियाः। ततः सनेम सुप्रतीकम्त्रिः सुवो रुह्याणा अधि नाक्ये उत्तमे (१६)। अपे देवीरुपंस्ट मधुमतीरयक्साये प्रजाभ्यः। तासाः स्थानादु ज्ञिंहतामाष्ययः सुपि-प्यालाः (१९)। जिर्घर्मि॥॥४॥

श्रुमिं मनेसा घृतेन प्रतिस्थन्तं सुवेनानि विश्वा।
पृथुं तिरश्रा वर्यसा बृष्टन्तं व्यचिष्ठमद्यः रभुसं विदानं(१०)। श्रा त्वा जिषमि वर्षसा घृतेनारुष्टसा

मनसा तर्ज्युषस्व। मध्यीः स्प्रह्यद्वेशी स्विप्तिनिक्षी त्वा अर्श्वषाशः (१०)। परि वार्जपितः कृषिर्प्तिक्षा-न्धक्रमीत्। द्धद्रस्नानि दाश्र्षे (१८)। परि त्वाऽग्रे पुरं वृयं विप्रश्रे स्हस्यं धीमिह धृषदं र्णं दिवेदिवे भेतारं, भक्तुरावंतः (१०)। त्वमंग्रे द्युभित्त्वमाश्रुश्वर्षण्ट्वमृद्वास्त्वं-म्यानस्परि। त्वं वनेभ्यस्त्वमाषंधीभ्यस्त्वं नृणां नृपते जायसे श्रुचिः (१९)॥ ५॥

प्रतूर्वन्। स्वर्थस्य। तिष्ठ्। जिर्घिमि। भेतारं। विश्यातिर्घ॥२॥

दति तैत्तिरीयसंहितायां चतुर्थकाएडे प्रथमप्रपाठके दितीयाऽनुवाकः ॥०॥

प्रयमेशनुवाको श्रव्धादानमुक्तम्। श्रथ दितीये स्ट्राक्काकिनरखते। कष्यः, 'दमामस्भूषन् रश्चनास्त्रक्षेत्रश्चाभिधानी ११
रश्चनामादाय' दति। पाठसु,—''दमामस्भूषन् रश्चनास्त्रस्त पूर्व श्रायुषि विद्येषु कया। तया देवाः स्तमा सम्भूक्षंत्रस्त सामन्स्रसार्पन्ती(१)" दति। (कवयोः विद्यंषः स्वत्रिः, तानर्षनीति कयाः) धन्नाः कयाः, 'विद्येषु' कयेषु यशेषु क्षेत्रति स्वाः) धन्नाः कयाः, 'विद्येषु' कयेषु यशेषु क्षेत्रति स्वतः, श्वायुषि' (श्रायुरागमने) (श्वर्यः श्वामने) निमत्तम्रते स्ति, (श्वत्रश्वदे यागवाची मन्, तच माधनमस्मृपस्चयित)। 'पूर्वे' महर्षय 'दमां' 'रश्चनाम्'

खद्गरामः(र)। श्रम्बुग्निरुषसामग्रमख्यदम्बर्धानि प्रथमा जातवेदाः। श्रनु स्र्यीस्य॥२॥

पुरुवा चं रुग्गीननु द्यावाष्ट्रिय्वी आ तंतान (१०)।
आगत्यं वाज्यध्वंनः सर्वा स्धा वि धूनते। अग्निर स्थस्यं
महित चक्षुंषा नि चिकी षेते (१९)। आक्रम्यं वाजिन्
पृथिवी मृग्नि मिच्छ रुवा त्वं। सूम्यां वृत्वायं ने। ब्रूह्
यतः खनाम् तं व्यं (१९)। द्यास्तं पृष्ठं पृथिवी स्थस्यंमात्मान्तरिश्वः समुद्रस्ते यानिः। विख्याय चक्षुंषा
त्वमुभितिष्ठं॥ ॥

पृत्न्यतः (११) । उत्क्रीम महते सीभगायासादास्था-नीद्द्रविणोदा वीजिन् व्यथ् स्थाम सुमृतौ पृष्टिया श्रुप्तिं खेनिष्यन्ते उपस्थे श्रस्थाः (१४) । उद्क्रमीद्द्रवि-णोदा वाज्यवीकः स खोक्ष्य सुरुतं पृष्टियाः । ततः स्रोम सुप्रतीकम्प्रिष्ट सुवो रुद्दाणा श्रिष्ट नाक्षे उन्नमे (१४) । श्रुपी देवीरुपस् श्रुप्त मधुमतीरयुक्षाये प्रशास्थः । तासाध स्थानादु ज्ञिंदताने। षेध्यः सुपि-प्यालाः (१९) । जिर्घमि ॥ ॥ ॥ ॥

श्रुप्तिं मनेसा घृतेन प्रतिख्यन्तं सुवेनानि विश्वा। पृथुं तिरश्रा वयंसा वृष्टन्तं व्यचिष्ठमद्यः रभुसं वि-दानं(१०)। श्रा त्वा जिद्यमि वर्षसा घृतेनारुखसा मनसा तर्ज्ञुषस्व। मयिश्रीः स्प्रह्यद्वेशी श्रुप्तिनीभिष्क्री
तनुवा अर्श्वषाशः(१०)। परि वार्जपितः कृषिर्प्तिर्ध्यान्धक्रमीत्। द्धद्रमानि दाशुषे(१८)। परि त्वाऽग्रे पुरं
व्यं विप्रश्रे स्हस्यं धीमिह धृषदंशं दिवेदिवे भेतारं,
भक्तुरावंतः(१०)। त्वमंग्रे दुभिस्त्वमाश्रुश्वश्यास्त्वमुद्धास्त्वंमश्मनस्परि। त्वं वनेभ्यस्त्वभाषंधीभ्यस्त्वं नृशां नृपते
जायसे श्रुचिः(१९)॥ ५॥

प्रतूर्वन्। सर्यस्य। तिष्ठु। जिर्घिमि। भेतार्। विष्ठप्रतिर्घ॥२॥

द्रित तेत्तिरीयसंहितायां चतुर्थकाएडे प्रथमप्रपाठके दितीयाऽनुवाकः ॥०॥

प्रथमे अनुवाने प्रस्थादान मुक्तम्। प्रथ दितीये स्ट्राक्का नि-र्णिते। कष्णः, 'दमामस्भूषन् रप्रनास्त्रस्थियश्वाभिधानी ११ रक्षनामादाणः' दति। पाठस्तु,—''दमामस्भूषन् रप्रनास्त्रस्थ पूर्व प्रायुषि विद्येषु कथा। तथा देवाः स्तमा वश्ववृद्धंतस्य सामन्त्रस्य प्रमार्पन्ती (१)" दति। (कवयोः विद्यंषः स्वत्यः, तानर्दनीति कथाः) यज्ञाः कथाः, 'विद्येषु' कथेषु यज्ञेषु स्वोतिष्ठे । 'यायुषि' (प्रायुरागमने) (प्रमस्य प्रायमने) निम्तस्यते सति, (स्वत्यब्दे यागवाची सन्, तच माधनमञ्जमुपस्चयित)। 'पूर्वे' महर्षय 'दमां' 'र्यानाम्'

'श्रय्यभ्षन्' (खीक्ततवनाः)। श्रयमर्थः,—रश्रनया बद्धमत्रमानीय, सत्खननसाने तमस्माश्रमय, तथा सदा निष्यस्रायाम्
ख्यायामग्निमृत्पाच, इष्टकाचिते देशे च्छोतिष्टोमाद्य स्वतिन्
भिरनुष्टेयाः; एतस्यवं मनिस निधाय पूर्वे मद्यंयोऽसानमनं
निमित्तीक्रत्य रश्रनां खीक्रतवन्त इति। 'षे। श्रन्तकर्माखः'
इत्यसाद्धातोद्दत्यस्रमात् सामन्श्रच्दोऽतसानवाची; 'स्वतस्य
सामन्' (यञ्चस्य परिसमात्रये) 'सरं' (सर्षे स्वतिग्रसमानानां
प्रवृत्तिं) 'श्रारपन्ती' (कथ्यन्ती प्रापयन्तीत्यर्थः *); या
रश्रना पूर्वे।करीत्या यञ्चसमात्रिपर्यन्तं प्रवृत्तिकारिषी भवति,
'तथा' रश्रनया पुरा 'देवाः' 'स्वतम् श्रा-बश्चवुः' (से।मयागं
प्राप्त्रयुः), तादृशीम् इमां रश्रनां ग्रद्दीतवन्तः।

तिममं मक्तं विनियुक्को,—"युद्धं वा एतश्व स्य य दयजु-क्रोण क्रियते दमामग्रभूणम् रम्भगास्त्रक्षेत्रसाभिधानीमादक्ते यजुक्कृत्ये यञ्चस्य सस्द्धी" (५१९१२ स्र०) दति। 'यत्' सङ्गम् 'त्रयजुक्कोण' (मन्त्ररहितव्यापारेण) निष्पास्तते, 'यञ्चस्य' सम्मन्धि तत् 'एतत्' सङ्गम् स्टिह्स्हीनमेव, तस्नात् 'दमाम्'— दति मन्त्रमुखार्थ रम्भगासद्दीतं। श्रश्चीऽभिधीयते,-बध्धाः धार्यते यया रम्भगारद्दीतं। श्रश्चीऽभिधीयते,-बध्धाः धार्यते यया रम्भगा, स्वयम् 'श्रश्वाभिधानी'। यद्यपि 'दमामग्रभूणम्' दति स्वगेवेषा, तथापि यजुर्वेदपठितलास्रजुष्ट्वी-पश्चारः। तस्मित्रान्त्रे पठिते स्वतं रम्भगादानं स्वजुक्कालात् सस्द्धं भवति।

^{*} प्रार्थेयन्तीत्वर्थः इति B. पु॰ पाठः।

कच्यः, 'प्रहर्ते वाजिवाह्वेद्ययमभिद्धाति' इति । पाठख्र, -- "प्रद्वर्से वाजिकाद्रव वरिष्ठामनु धंवतं। दिवि ते जना परममन्तरिचे नाभिः ष्टिच्यामि योनिः(१)" इति। संद-न्यते, सम्यक् भव्यते सद्गुद्दणार्थे सेव्यत दति खननयाम्या असिः संवत्; सा च पाषाणासभावेगातिप्रवस्तादरिष्ठेत्युचाते। हे 'वाजिन्' (चय), 'वरिष्ठां' 'संवतम्' 'त्रनु' (चशिसच्य) 'प्रहर्से' 'त्राद्रव' (त्रतित्रीचमागच्छ) । 'ते' (तव) चत्रख 'दिवि' (चुन्नोके) 'परमम्' (जलाई) 'जना' (रोचितांदिदेवसार्पेय चुलाकाना प्रसिद्धम्, 'रेाहितेन लाऽग्निर्देवतां गमयलिखाहैते वै देवायाः' इति भ्रान्यचाबातम्। तथा तव 'नाभिः' 'मनारिचे' वर्चते,— ययुर्नामका दि वाबारमा तदीयं रचं वदकोऽकारिचे स-चर्मा, तद्रूपेण श्रयामारिचयत्तिम्। गाभित्रम्देन सस्त प्ररोरमुपसच्छते। तथा 'प्रथिष्यामधि चोनिः' (भूमेइपरि तव निवासकार्ग), तसु प्रहाधमेव दृष्यते । एवंमिदमा लं बीघु-मागक्केति पूर्वत्राम्बयः।

एतं मन्तं विनियुक्को,—"प्रतन्तं वाजिन्नाद्रवेत्यसमिन्धाति इपमेवास्तित्वस्मानं व्याच्छे" (५।१।२२०) इति। 'वाजिन्ना-द्रवेत्येवं' शीन्नमागमनमयस्य सङ्पद्धतमेव 'महिमानम्' एत-यान्त्रवाक्यं प्रकाशयति। अथवा श्रस्य मन्त्रस्य, एतद्वृपं वाक्यजातं सुजन्मारिङ्गं 'महिमानम्' एव व्याच्छे। वस्तुतो सुजन्माभावे-ऽपि प्रश्रंसार्थमेवोत्त्रत इत्यर्थः।

कर्पः, 'त्रूषीं गर्दभर्त्रनामादाय युद्धाचा ए रामभं युव-

भिति गर्दभम्' इति । मक्तमकारेषेव गर्दभस रज्ञनामादाय 'युद्धाचाम्' इति मक्तेष गर्दभमिन धात्। पाठसः,—''युद्धाचाष्ट्र रासभं युवमिक्षान् यामे द्वष्णसः । अग्निं भरकासस्य मूर्व 'रासभम्' 'त्रसिन्' 'यामे' 'युद्धाचां',—यामे स्दू इन इपे नियमविजेषः, तिसिक्तिक्तिक्ते सित, युवामुमे गर्दभं रज्ञचा बन्नीतं। कीदृष्णे युवं?—'दृषणसः (यागनिष्पादनदारा फणाभिवर्षकः निमिक्तस्रतं वसु धनं ययोक्ती दृषणसः)। कीदृष्णं रासभं? 'त्रग्नि भरकां' (त्रग्निहेतं स्ट् वोदुं समर्थं) 'क्रस्ययुं' (त्रस्नाना-त्रान इक्तम्) त्रस्नद्विपिमिति यावत्।

षतं मन्त्रं विनियुक्के,—"युद्धाचाष्ट्र रायमं युविमति गर्दभममत्येव गर्दमं प्रतिष्ठापयित तस्त्रादयाद्वदंभोऽसक्तरः"(५।१।१%।०)
दति । 'गर्दभम्' दत्यच 'श्रिमद्धाति' दित श्रेषोऽनुवर्क्तते । 'श्रिस्त् यामे' दित मन्तेऽभिद्धितं सदद्यम् 'श्रमत्' दत्युच्यते, भारवद्यस्य निक्षष्ट्यापार्त्वात् । श्रत दत्तत्रान्त्रपाठेन 'श्रमत्येद' निक्षष्ट्यापारे 'गर्दभं' चापितवान् भवति । यस्ताद्य निक्षष्ट-कार्ये खापितः, 'तस्तात्' कोकेऽपि 'गर्दभो' 'श्रमात्' निक्षष्टतरः । रक्षकाद्य एव दि तमाद्रियन्ते, न तु राजामात्याद्यः ।

कत्ताः, 'योगे-योगे इति तिस्भिरयप्रयमा स्था प्रमानित वत्र मृदं स्वनिस्थनः स्थः' इति । तत्र प्रयमामाइ,—"योगे-योने तवसारं वाजे-वाजे हवामहे। सखाय इन्द्रमूतये^(४)" इति । युज्यते-ऽमुष्ठीं बते इति स्रोगः कर्म, 'योगे-योगे' (तत्तत्कर्मणि) 'तवसारं' (बसत्तरम्) श्रयम् 'रन्द्रम्' (इन्द्रियप्रदम्) 'जतये' (रचणाय) 'वाजे-वाजे' (तत्तद्श्वप्राप्तिनिमित्ते) 'स्वायः' (परस्ररं स्क्षं प्राप्ताः) ऋतिगयनमाना वयं 'हवामहे' (श्राक्रयामः)।

त्रच दितीयामाइ,—''प्रद्वंशेष्ठावकामस्त्रक्षोद्द्रक माणपत्यात् मयोश्वरेषि । उर्वनारिषमणिष्टि खिला-गय्यूतिरभयानि
हाखन्(॥)'' इति । हे त्रम, लम् 'एषि' (त्रागच्छ) । किं खुर्वन् ?—
'प्रद्वंन्' (विरोधिनः ज्ञन् हिंसन्), 'स्रमक्षोः' 'स्रवकामन्'
(श्वाद्ययेः क्रियमाणा श्रपकोत्तीर्निवारयन्) । किञ्च 'दद्रक्ष'
(क्रूरदेवस्त) यत् गाषपत्यं (पद्रुप्तमूष्पतिस्तं), तस्तात् 'गाषपत्यात्'
श्वागत्य 'मयोश्वः' (त्रस्ताकं सुखं भावयन्) 'एषि' । 'छद्'
(विस्तीर्णम्) 'त्रनारिचम्' 'त्रनु'-वीच्य 'इषि' (विस्तभेण मच्छ) ।
किं सुवंन् ?—गयूता (गासमूष्टे) 'खिला' (श्रेयः) यथा भवति,
तथा वर्त्तमानः 'खिला-गयूतिः', तादृष्ठस्तम् ; 'त्रमयानि क्रस्तन्'
(याच्चादिश्यो भयपरिष्ठारं सुवंन्) ।

श्रय वितीयामा इ.— "पूष्णा स्युजा सह। पृथियाः सधस्ता-द्ञिं पुरीस्थम क्रिरखर्क्के हि (१)" इति। सह युक्यते सहायस्तो। वर्त्तत इति स्युक्, तादृष्टेन 'पूष्णा' (पेषकेष) देवेन 'स्र्इ', हे सन्ध, 'ष्ट्रिय्याः' 'स्रध्यात्' 'पुरीस्थम्' 'श्रमिम्' 'श्रक्केहि' (प्राप्तुं गष्कः)। खनितुं ये। स्या क्रस्ताऽपि स्टिन्तका सह निष्ठति,-मिस्तिता वर्ततेऽचेति स्थस्यः प्रदेशिविशेषः, तस्तात् प्रदेशादाप्तु-मिस्त्रम्यसः। 'श्रक्तिरखत्' इति बृष्टामाः पूर्ववत्।

श्रव प्रथमायास्त्रि प्रथमभागे वीसाबासात्पर्ये दर्भयति,—

"योगे-योगे तवसर्मित्याइ योगे-योग एवेन युक्ते" (५।१।१८०) इति । रचवइनं योद्भृवदनं वा यसदस्य योग्यं कर्म, तक सर्वजैनमसं योजयत्येव की किकः, तसादनापि 'योगे-योगे' इति वीस्रोच्यते ।

दितोयभागे वाजन्नब्दार्थं दर्भयति,—"वाजे-वाजे एवासए इत्यादान्नं वे वाजोऽन्नमेवावदन्धे" (५।९।२५०) इति।

हतीयभागे इन्द्रबन्दतात्पर्ये दर्भयति,—''धखाय इन्द्रमूनव इत्यादेन्द्रियमेवावहत्थे'' (५।९।२ घ०) इति ।

मनेन मन्तेष साधम् ममपुरः सरं गमनं विधन्ते,—"म्या-देवेभोऽनिसायत तं प्रजापतिरन्वविन्दत् प्राजापतोऽसोऽसेन सस्थरत्यनुविन्धे" (५१९११ श्र.०) इति । केनाष्यपराधेन देवेभो निर्गतमित्रां प्रजापतिरन्विष्य सन्धवान् । श्रम्य प्रजापतिजन्यत्वात् 'प्राजापत्यः', तस्यादसेन सहाग्निहेतुं स्टरं सभारितुं, गच्छेत् । तस्य गमनमग्नेरनुवेदनाय भवति ।

तचा यस गर्दभात् पुरते। गमनं विधत्ते,—"पापवस्यसं वा एतत् कियते यक्क्रेयसा च पापीयसा च समानं कर्म कुर्वित्ता, पापीयान् स्वयाद्वर्दभीऽयं पूर्वे नयिना पापवस्यस्य व्याद्वत्ये तसाक्क्रेयाएसं पापीयान् पश्चादम्बेति" (५।१।१%) इति । 'श्रेयसा' (उत्तमेन) 'च' साधनेन, 'पापीयसा' (निक्रप्टेनापि साधनेन) 'समानं' (तुस्तम्) एकं कार्ये कुर्वन्तीति यत्, तत् 'एतत्' 'पापवस्तसम्' एव कियते,—पापमेव वसु धनं यस्य कर्मणस्मत् पापवसु, श्रतिश्रयेन पापवसु, तत् 'पापवस्तसम्', श्रत्यमं निक्रष्ट-

मित्यर्थः। 'गर्दभः' 'श्रमात्' 'पापोयान्' रति प्रसिद्धम् ; श्रत उभयोः समानं गमनं मा श्रदिति 'श्रम्यं' 'पूर्वे' (पुरता) नयेयुः ; तथा सति पापवस्यसं निवारितं भवति । यस्तादेवं, 'तस्नात्' सोकेऽपि विद्याधनादिभिः श्रेयान् पुरुषः पुरते गक्कति, निरुष्टः श्रिष्टः दरिद्रो वा 'प्रसात्' श्रमुगक्कति ।

दितीयमक्रगतस्य 'त्रमसीरपकामन्' रत्यस्य तात्पर्ये दर्मयति,—"वर्ज्ञे भवते। आह्व्या भवतीव खलु वा एष घाऽग्निं चितृते वक्षायः प्रहृत्ते ने द्वावकामक्षमसीरित्याद वक्षेणैव पामानं आह्व्यमवकामिति" (५।९।२ श्र॰) दति। 'भवता' (अतिमैयर्थे प्राप्नुवतः पुरुषस्थ) 'भाद्व्यः' (विद्यकारी) 'बक्रः' 'भवति' एव ; 'स्रेयांसि वक्रविद्यानि' दति न्यायात्। श्रते।ऽच 'याऽग्निं किनृते' 'एष' 'भवतीव' 'खलु' (भूतिं श्रेषः प्राप्नोत्येव खलु)। श्रते।ऽनेन भाद्यस्परिद्यारे।ऽन्वेषणीयः। श्रश्रस्य वक्षयुक्तेश्रसमानः, श्रते।ऽसं सम्मोध्य, श्रमस्वीरित्युक्ता, श्रश्रस्थ वेष्णुपेव' विद्यकारिणं 'पामानं' 'भाद्यसं' निराकरे।ति।

तमान्त्रगतसीव 'गाणपत्यात्' इत्यस्य तात्त्वयें दर्भयति,—''स्ट्रस्य गाणपत्यादित्याच राद्रा वे पत्रवा स्ट्रादेव पत्रुक्तियाच्यात्मने कर्म कुदते'' (५।९।२५०) इति । पत्रूनां राद्रलं वरमसाद-वगम्यते,—'सेऽन्नवीद् वरं तृषा, श्रद्दमेव पत्रूमामधिपतिरसानि' इत्यत्र स्ट्रस्य वर श्राचातः। तसादच 'स्ट्रस्य' 'गाणपत्यान्ययो-भूरेचि' दत्युत्था, पत्रुस्यामिना 'स्ट्रादेव' तान् 'पत्रूम्' निः भेषेण वाचिता, तैः पत्रुभिः स्वार्थे कर्म कराति इति । हतीयमको 'सयुना' रहास्त तात्त्वये दर्शयति,—''पूष्णा सबुना सहेत्वाह पूषा वा त्रध्वनाष्ट्र सस्तेता समध्ये'' (५।९।९% ०) रति। पोषको देव एव उपद्रवपरिष्ठारेस मार्गाणां सम्बक् 'नेता' भवति। ऋतसेन सद् 'समझै' (सङ्गत्वे) 'पूष्णा सयुना' रह्युष्यते।

तसिकोव मन्ते 'पुरीखम्' इति विशेषणस्य 'श्रिष्टस्यत्' इति
दृष्टामस्य च तात्पर्ये दर्भयति,—"पुरीषायत्नो वा एव यद्ग्निरिक्र्रस्रो वा एतमग्रे देवतानाः समभरन् प्रश्चित्याः सभस्यादिग्नं पुरीव्यमक्तिरस्यद्क्षेषीत्याच सायत्नमेवेनं देवताभिः
सम्भरति" (५।९।९५०) इति । पुरीषस्य पांत्रोः पूर्वेक्तरित्या
परव्यर्था सम्बाधतनत्वम्, स्रतः पुरीव्यक्रस्रेनाग्निं सायत्नमेव
सम्माद्यति । 'त्रिक्तरसः' च पुरा तम् 'एतम्' स्रग्निं 'देवतानां'
पुरतः सन्पादितवन्तः, स्रतः 'त्रिक्तरस्वत्' इत्युक्ता देवताभिः
सचितमेनं सन्पादितवान् भवति ।

कराः, 'त्रश्चिं पुरीखमित्रस्वदक्केम^(०) इति चेन देखेष मञ्जक्ते तमभिमन्त्रवते पद्मन् निर्दिन्नति' इति। स्त्त्रसननं प्रतिगक्कनः पुरुषाः मार्गमधे यदि केनापि देखेण मञ्जक्केरन्, तदानीम् इमं मन्त्रं पठेरन्। 'इमः' गक्केम इत्यर्थः। भेषं पूर्वतत्। चिद देखं न पद्मति, तदापि तं मनसा निर्दिक्ष पठेत्।

त्रनेन पाठेन देखसासं विनामात इत्येतहर्भयित,—"त्रधिं पुरीस्थमिक्किरस्वद्क्तेम^(८) इत्याह येन सङ्गक्कते वाजमेतास्य रुक्के" (५।९।२%०) इति।

कल्पः, 'श्रश्रिं पुरोष्यमङ्गिरखद्गरियाम^(८) रति वस्त्रीक-

वपाया सर्थकोदेतोकामुङ्गुलोपितहते' रित । वस्तीककं चीऽववव एक्षतलेगाभिष्टद्वः, वेबं वपा, तथाविधास वपास भधे वा वया सर्थोदयकाभिगुका, तका श्रग्नं किश्चित् एङ्गुल, तां वपाम् स्रोम मन्त्रेच 'एपितहते'। 'भरिखामः' (वन्यादिखामः)। बेवं पूर्ववत्।

यशिः सभृत्य द्याङिद्यं व प्रजापतिसासा एतण्डोणं यदस्तीकीर्डां प्रीस्माङ्गरस्त्रहित्याम इति वस्तीकस्पामुपितहते सास्मादेव प्रजापतये प्रतिप्रेष्णाग्निः सभारति" (५।१।१त्र०) इति।
प्रजापतेः सकाजादनुष्ठां सम्भाः, त्रयम् अग्निः सन्पादनीय
इत्यभिष्ठा 'याङः'; तचोपपयं, प्रजापतिना पूर्वमग्नेसंभवात्, 'तं
प्रजापतिरव्यविन्दत्' इति पूर्वमेवोक्तम्। कयं ति प्रजापतये
वक्तस्यमिति चेत्?।तदुच्यते,—प्रजापतिना स्ववतात् 'इयं' (वृष्यित्री)
एव 'प्रजापतिः', 'तसाः' च वस्तीकवपैव 'श्रोषम् ; प्रतएवाधाननाद्यसे समावातं, 'शेष्ट द्येतत् पृथित्याः यदस्त्रीकः' इति।
तस्तात् तां वपामनेन मन्तेष 'उपितहते'। तेने।पस्तानेव स्ववधानमन्तरेषैव 'प्रजापतये' कथियता 'श्रीं सभारति'।

कत्यः, 'त्रावरमाकाः प्रत्यायन्यश्चि पुरोखमित्ररखद्भरामं (१) इति येन देखेष सङ्गच्छते तमभिमकायते पद्मकिर्दिवति' इति । यदद् गमनकासे, तदद् त्रागमनकासेऽपि ; तत्र 'भरिखामः' इति पाठः, त्रव अरामः' इति विश्लेषः । यद्यायागमनस्र नायं कासः, मधापि प्रमङ्गाद् बृद्धिको मन्त्रोऽवमाचातः । तस्रोपरिष्टादुत्वर्षेत् । गमनकासीनमन्त्रपदस्थापि तात्त्वयें दर्शयति,—''श्रविं पुरी-स्माक्तिरखद्भराम दत्याद येन सङ्गच्छते वाजमेवास्य उक्कें'' (४,१२१२%) दति।

कस्यः, 'त्रम्बिक्क विषासयमस्वदिति वस्त्रोकवपायाः प्रकासित' दिति । पाठस्त,—"क्रम्बग्निव्ववसासयमस्वदम्बहानि प्रथमो जात-वेदाः । त्रनु सर्यस्य पृक्षा च रभीननु द्यावापृथिवी त्रा ततान(१०)" दिति । त्रयम् 'त्रिग्नः', 'उषसाम्' (उषःकास्तानाम्) 'त्रयम्' उपक्रमन् 'त्रस्वत्' (श्रमुक्रमेण प्रकाशितवान्) । त्रयं 'जातवेदाः' 'प्रथमः' (मुख्यः) सन् 'त्रहानि' 'त्रनु'-'त्रस्वत्' । 'सर्यस्य' 'पृक्षा' (पृक्ष्म् बद्धन्) 'रभीन्' त्रनुक्रमेण 'त्रस्वत्' । किस्त 'द्यावापृथियावुभे त्रयमुक्रमेण 'त्रा'-'ततान' (सर्वता व्याप्तवान्) ।

श्रनेन मन्त्रेणोषःकासादीनां क्रमेणाविभावः सिध्यतीत्वेतद्र्यं-यति,—"श्रन्वग्निरुषमामयमख्यदित्याद्वानुख्यात्वे" (५।९।२ श्र०) दति।

कत्यः, 'त्रागत्य वाज्यध्वन त्रात्रस्य वाजिन् पृथिवीमिति दाभ्यां स्तृत्वननमत्रमात्रमय्यं दित । तत्र प्रथमाथाः पाठस्त,— "त्रागत्य वाज्यध्वनः सर्वा स्थो वि धूनुते । त्रिग्निः सधस्ये महिति चत्तुषा नि चिकीषते (११)" दित । त्रयं 'वाजी' 'त्रध्वनः' (मार्गात्) 'त्रागत्य' (प्राप्य) 'सर्वा स्थः' (मार्गत्रमादीन् सर्वान् बेधिकान् [?]) 'वि'-'धूनुते' (विविधं कम्पयति) विनाश्रयतीत्यर्थः । यत्र पांसवः सहावतिष्ठमो, तत् स्थानं सधस्त्रम् । 'महित' (विस्तीर्षे) 'सधस्त्रे' त्रयं त्रयः 'चचुवा' दृष्टा 'त्रग्निं' (त्रग्निक्तेतं सदं) 'नि-चिकीवते' (नितरां चेतुं सम्पादयितुमिक्कति)।

श्रय दितीयामाइ,—"श्राक्रम्य वाजिन् पृथिवीमग्निमिक्क द्वा लं। सम्या छलाय ने। ब्रूहि यतः खनाम तं वयम्^(११)" दित। हे 'वाजिन्', 'पृथिवीं' 'श्राक्रम्य' (पादस्पर्शेन परीक्ष्य) 'लं' 'द्वा' (खकीयेन तेजसा मानसज्ञानेनेत्यर्थः) 'श्रग्निमिक्क' (श्रग्निहेतुं स्टदं निश्चिनु)। 'श्रम्या छलाय' (पृथिया सह चर्षं छला पृथिवीं पृष्टेृत्यर्थः [?]) 'नः' (श्रम्भाकं) 'श्रूहि' (श्रयं प्रदेशो-ऽग्निहेतुस्रद्याग्य इति कथय)। यस्नान् प्रदेशात् तादृश्रो स्वस्नभ्यते, 'तं', (प्रदेशं) 'वयं' 'खनाम'।

श्रवितयोर्भस्ययोः पृथगुपयोगं दर्शयति,—"त्रागता वाज्यध्वन श्राक्रस्य वाजिन् पृथिवीमित्या हे क्छ देवेनं पूर्वया विन्द त्रुत्तरया" (५।९ २ श्र॰) इति । पूर्वस्यास्त्रि 'नि-चिकीषते' इत्यभिधाना-दिक्कामात्रं तथा समस्यते । उत्तरस्थास्त्रि 'ने प्रृहि' इत्युक्ततात् तया तं प्रदेशं सभते ।

विधन्ते,—"दाभ्यामाक्रमयित प्रतिष्ठित्या त्रमुक्ष्पाभ्यां तसा-दनुक्षाः पत्रवः प्रजायन्ते" (५।९।२% ०) द्रित । मन्त्रचोर्दिलं हि 'दाभ्यां' 'प्रतिष्ठित्ये' सम्यद्यते ; तत्र पूर्वे। मन्त्र दक्काया श्रनु-रूपः, उत्तरो मन्त्रो लाभस्थानुक्ष्यः । तत्र पूर्वेमुदाइतं । यस्नात् 'त्रमुक्ष्पाभ्यां' मन्त्राभ्याम् 'त्राक्रमयित' । 'तस्नात्' यजमानस्य श्रिशिचाद्यनुष्ठानस्य 'त्रमुक्ष्पा' एव गवाद्याः 'प्रश्रवः' 'प्रजायन्ते' । कन्त्यः, 'द्योस्ते पृष्ठमित्यश्रस्य पृष्ठः सन्त्रार्थः' दति । पाठस्त, — वैष्णे पृष्ठं प्रविवी वधस्तमाताक्तरिष्णः वमुद्रस्ते योतिः। विख्याय चषुवा लमभितिष्ठ प्रतन्यतः (११) दिता । चे त्रत्र, सुखेाक-स्तव 'ष्ट्रं', 'पृष्टिवी' 'स्थस्तं' (तवाग्निमा सद्दावस्तानप्रदेशः), श्रक्तारिषस्तिकस्तव शरोरमध्यवर्ती जीवात्मा। 'समुद्रः' तव अन्यकारसम्, 'श्रप्ययोगिवा श्रन्यः' दित श्रुतेः। एवं स्त्रयमानः 'लं' 'चषुवा' 'विस्वाय' (खस्वायोग्यां स्ट्रं विस्नोक्य) 'पृतन्ततः' (सङ्गामं कर्त्तुमिष्क्तः) श्रपून् राषसादीन् तस्यां स्ट्रि गूढ्रक्षेषाव-स्तितन् 'श्रभितिष्ठ' (पादेनाकम्य विनाश्रय)।

मन्त्रोत्तचु लोकादियम्बस्यस्पपाद्यति,—"चै। स्वे प्रष्ठं प्रथिवी स्थस्यमित्याचै भ्वे। वा एतं स्रोतेभ्वः प्रजापितः समैर्यद्रुपमेवास्त्री-तस्त्रिमानं स्वाचिते" (५।१।१५०) इति । पुरा कदाचित् प्रजापितः 'एतम्' श्रमम् एतेषु स्रोतेस्वन्त्रस्य समानीतवान् । तस्तात् विद्यमानमेव द्युसीकादिसम्बस्द्रस्य 'मिइमानं' मन्त्री 'स्वाचिते'; श्रतो नासाभिवंत्रस्यं किश्चिद्सि।

सदाक्रमणवेलायामयपादसायसाद्देखविषयधानं विधन्ते,
—"क्जी वा एष यदयो दङ्गिरन्यता-दङ्गो भयां सोमिभर्दभया-दङ्गोऽयं दिखात् तमधस्यदं धायेदज्ञेषेवेन ह सृनृते" (६।
९।२त्र०) रति। वज्रधमानद नापङ्गिदयम छास्तोति 'त्रयो' 'वज्जी',
तस्मात् 'त्रन्यता'-'दङ्गः' (एकता दन्तपङ्गियुक्तेश्वा गवादिश्वः)
ध्रयम् 'त्रयः' 'दङ्गिः' 'भ्रयान्' (दन्तरिधकः)। 'उभया-दङ्गः'
(दन्तपङ्गिदययुक्तेश्यद्य) गर्दभादिश्वः 'त्रयम्' द्रयः 'स्नोमिशः'
(केषरैः पुष्कगस्यः) 'भ्रयान्'। ध्रतसादृष्ठस्य त्रयस्य 'त्रथस्यः'

(पारसाधसात्) देखे भाते सति श्रयसुरक्षेष 'वञ्जेषैवैनं' देखं विनस्ति।

कसः, 'लक्षामेदिकमोदिति दाश्वां स्त्र्यनादुद्श्वमयमुक्रमय' रति। सद् यसिन् प्रदेशे खन्यते, स प्रदेशे स्त्र्यनः,
तसादश्वम् उद्श्वस्त्रेन निर्गमयेत्। तत्र प्रथमास्त्रमाइ,—
"लक्षाम महते मेभगायासादासानाद्द्रविभादा वाजिन्। वयः
स्थाम समते। पृथिया श्रीयं खनियम्त अपसे श्रस्थाः (१४)" रति।
हे 'वाजिन्' 'द्रविभादाः' (धनप्रदः सन्) यजमानस्य 'महते
मेभगाय' (माभग्याभिष्टद्याय) 'श्रसादास्त्रानात्' (खननप्रदेशात्)
'लक्षाम' (जद्गते। भव)। 'वयं' 'पृथियाः' 'समते।' (श्रनुगहविनो) 'स्थाम' (तिष्टेम)। कीदृशा वयं ?—'श्रस्था' 'अपसे' (पृथियाः
उपरि) 'श्रीयं' (श्रीयहेतुं स्रदं) 'खनियम्तः' (खनित्रमुस्ताः)।

श्रथ दितीयामाइ,—''खर्कमीट् द्रंविणोदा वार्ञ्यवाऽकः स स्रोक्षण पृक्षतं पृथियाः। ततः स्रोम सुप्रतीकमग्निष्ट सुवे। दहाणा श्रथि माक उन्नमें (१६)'' द्रित । 'द्रविणोदाः' (यागदारेण धनप्रदः) 'वाजी' (तथैवानप्रदः) श्रतीति क 'श्रवा' गमनसुत्रस्र दृष्ट्यर्थः। तादृशोऽयमश्रः स्रामादस्रात् 'उदक्रमीत्'। 'स' उत्का-मोऽशः 'सुक्रतं' (श्राक्रमणेन विरुद्धान् राज्यसदीनपद्या सुष्टु-कर्त) 'पृथियाः' सम्बन्धिनं 'स्रोक्तं' (खननप्रदेशं) 'श्रकः' (क्रतवान्)। 'ततः' प्रदेशात् 'श्रीम्रम्' (श्रीमयोग्यां स्रीमं) 'स्रोम्भ'। कीदृष्टम् ? —श्रीमं 'सुप्रतीकं' (सुमुख्यम्)। ये खनितारे। वयं, ते कीदृष्टाः ?—

^{*} बर्तीति पाठा भवितुं युत्तः।

'सुवः' 'श्रधि'-'रूडाणाः' (खर्गे श्रधिराष्ट्रणकामाः) । की दृष्टे खर्गे ? 'उत्तमे' (सुखयुक्ते) 'नाके' (कं सुखम्, श्र-कं दुःखं, तद्रहिते) ।

तदिरं मन्त्रदयं विनियुद्धे,—"जलामीदक्रमीदिति दाभ्या-मुक्तमयित प्रतिष्ठित्या त्रमुक्पाभ्यां तस्तादमुक्ष्पाः पश्चतः प्रजा-यन्ते" (५।१।१९९) दति । मन्त्रथीरादावुक्तमणाभिधानादमुष्ठे-यार्थे प्रत्यमुक्ष्पत्नम् ।

कस्यः, 'श्रपे। देवोर्पस्त्रेत्यश्रस्य पदेऽप खपस्च्यः' इति । पाठस्त,—'श्रपे। देवोर्पस्त्र मधुमतोरयन्त्राय प्रजाभ्यः । तासाः स्थानादुन्जिहतामीषधयः सुपिप्पलाः (१६)'' इति । 'देवीः' (देवन-श्रोखाः) 'श्रपः' 'खपस्त्र (श्रिसिन् खननप्रदेशे श्रहमुपस्रजामि) । कीदृशीः श्रपः ?—'मधुमतोः' (मधुराः) । किमधे ?—'श्रयन्त्राय प्रजाभ्यः' (प्रजानामारोग्याय) 'तासां' (प्रचिप्रानामपां) 'स्थानात्' (श्रस्तात् प्रदेशात्),'सुपिप्पलाः' (श्रीभनफलाः) श्रोषधयः 'खन्जि-हताम्' (जत्पद्यन्ताम्) ।

श्रनेन मन्त्रेणोद्कसेचनं विधत्ते,—"श्रप उपस्जिति यन वा श्राप उपगच्छिन्त तदोषधयः प्रतितिष्ठन्त्योषधीः प्रतितिष्ठन्तीः पश्रवे।" उनु प्रतितिष्ठन्ति पश्रून् यज्ञो यज्ञं यजमाने यजमानं प्रजाससा-दप उपस्जिति प्रतिष्ठित्यें" (५।२।६श्र०) इति । श्रपामोषधीनां पश्रूनां यज्ञस्य यजमानस्य प्रजानां चोत्तरोत्तरं प्रतिष्ठा पूर्व-पूर्वा-धीनेति प्रसिद्धम्। तसात् सर्वप्रतिष्ठार्थमप उपस्रजेत्।

कच्यः, 'परे हिर्णं निधाय जिघर्मिति मनखतीभ्यामेकामाइतिः हिर्णे इता' इति । तत्र प्रथमास्य-

माइ,—"जिघर्णीं मनमा घृतेन प्रतिस्थनां भुवनानि विश्वा।

पृणुं तिरसा वयमा बृहनां य्यचिष्ठमन् रभमं विदानम् (१०)" इति।

श्वहम् 'श्वांिं' मनमा' ध्यायन् 'घृतेन' 'जिघिमें' (ज्ञारयामि दोपयामि

वा)। नीदृष्ठमिं ?—विश्वानि 'भुवनानि' 'प्रतिस्थनां' (सर्वेषु

लोकेषु प्रत्येकं निवसनां), 'तिरस्था' 'पृषु' (तिर्धक्षमकेन विस्तृतं),

'वयमा बृहनां' (वय उपलिक्तिन कालेन प्राहं)। 'पृषुम्' इत्यनेन

बद्धस्याप्तिः, 'वयमा' इत्यनेन बद्धकाख्याप्तिह्का। किस् यत्

'धश्चं' 'व्यचिष्ठम्' (श्वतिक्रयेन विविधमस्यनं गमनं पूजनं वा यस्य

तद्वचिष्ठं, भद्धभाज्यादिक्षेण बद्धविधं स्वादुलेन पूज्यसेत्यर्थः)

तादृष्ठम् 'श्रक्तं' 'रभसं' (श्रीष्ट्रमेव) 'विदानं' (लभमानम्)।

श्रथ दितीयामा इ,—"श्रा ला जिवमि वचमा वृतेनार चमा मनमा तच्छुपछ । मर्थश्रीः स्पृष्टयदेणी श्रिश्मिमिस् ते तनुवा जर्षपणः (१८)" इति । हे श्रश्ने, लाम् 'श्रा'-'जिवमिं' 'वचमा' (मन्त्रेण श्रनेन) 'घृतेन' (मर्वतः चार्यामि) । 'श्ररचमा' 'मनमा' (क्रीर्यर्षितेन वित्तेन) 'तत्' (घृतम्) 'जुषछ'। श्रयमग्निः 'मर्थश्रीः' (मर्थेः श्राश्रयणीयः), 'स्पृष्टयदर्णः' (यजमानैः स्पृष्टणीय इपः), 'नाभिष्टश्रे' (श्रमिमर्श्ननं कन्तुं न श्रक्यः), 'तनुवा अर्थवाणः' (घृतपानपृष्टेन श्ररीरेणात्यन्तं ष्रष्टः) ईतृष्ठमग्निं लाम् 'श्रा-जिवमिं' इति योजना ।

त्राभ्यां मन्त्राभ्यां चिरणी देशमं विधत्ते,—''यदध्वपृरंगग्रावा-इति जुद्धयादन्थे।ऽध्वर्धः स्टाट्रचाश्चि यज्ञश् दन्युर्द्धरण्यमुपास्य जुद्देात्यग्रिवत्येव जुद्देाति नान्धे।ऽध्वर्दुर्भवति न यज्ञश् रचाश्चि

^{*} मर्थेः इति खादर्श्युन्तकपाठः।

म्नि" (५।९।२५०) इति । श्रिमिरिकते अप्रदेशे होमेन 'मध्यपुँ:'
'म्नियां' भवित । होमाधिकरणस्थाप्रेरदर्भनात्। एतदेव सिद्रमुपस्थाय रचांचि 'यम्चं' विनामयेयुः। मत एतद्देषपरिहारास अभी
'हिरस्थं' निधास तिसन् जुड्डयात्। तथा यति हिरस्यक्षामियहमस्थादसं प्रदेशोऽग्रिमान् भवतीति नेत्रिदेषदसम्।

प्रथममकास प्रथमपादे मनःश्रब्दक्षोपयोगं दर्शयति,—"जिश्व-र्म्यग्निं मनसा घृतेनेत्याद मनसा दि पुद्वी यञ्चमभिनक्ति" (५)९।२२०) दति। मनसा यञ्चाभिगमनं नाम 'यञ्चं करिखे' दृत्येवं रूपः सङ्क्त्यः।

दितोयपादस तात्पर्ये दर्जयित,—''प्रतिस्थन्तं सुक्नानि विश्वे-त्याच सर्वेष्ट्र स्थेव प्रत्यञ्चेति'' (५।१।३श्व•) द्ति । 'एवः' स्विः 'सर्वे' यजमानमुद्दिश्व 'प्रत्यक्' (स्रभिमुखं) 'स्रेति' (निवस्ति) ।

हतीयपादे 'ष्टयुं बृहमां' इत्यानयोखात्पर्ये दर्जति,—"ष्ट्युं तिरखा वयसा बृहम्तमियाहास्यो द्वीप जातो महान् भवति'' (४।९।२%) इति। 'एषः' श्रद्धाः जातमानेष 'श्रन्यः', पश्चादा-क्रतिभिर्वर्द्धमावो देशस्याष्ट्रा कासस्याष्ट्रा च 'महान् भवति'।

चतुर्घपादे 'याचिष्टम्' इतिपदेन स्वचितं पूजार्घनसम्बं सादुतं दर्घयति,—''याचिष्टमस्थः रभमं विदानमित्यास्यमेवासी साद-यति" (५१९१२%) इति ।

वेदनं प्रशंसति,—''सर्वमसी सादते च एवं वेद"(५।९।२११०) इति।

दितीयमन्त्रस्य प्रचमपादे 'वचसा' इतिपद्साभिप्रायं दर्भयति,—

"त्रा ला जिवमि वचमा घृतेनेत्याच तस्रात् यत् पुरवा मनसा-भिगक्कति तदाचा वदति" (५१२,१३%) इति। यस्रात् प्रथम-मकी मनबेलुका दितीयमकी वचवेत्युकां, तसात् खेरकेऽपि पुरवी मनसा यत् कार्ये चिन्तयित, तत्पञ्चात् वाचा बदति।

दितोयपादे श्ररची-निवेधवाचित्रव्दख तात्पर्यं दर्भवति,-"ऋरववेत्याद रचवामपहरीं" (५।१।३२०) इति ।

हतीयपादे मनुष्येराश्रयणीयलेन वर्षस स्पृह्णीयलेन चाम्री पूच्यलं सम्पाद्यते इति दर्शयति,—''मर्यश्रीः खृइयदर्णा प्रशिदि-त्या रापचितिमेवास्मिन् दथाति" (५।१।३ %) इति ।

वेदमं प्रश्नंसति,—"ऋपचितिमान् भवति च एवं वेद" (५। १।३%) इति।

मन्त्रचाद्भवार्भनः प्रच्योपेतलं प्रश्नंवति,—''मनवा लेतामा प्र-यर्रति यामध्यर्थरनग्रावाङ्गतिं जुद्दोति मनखतीभां जुद्देात्वाङ्खो-राष्ट्री" (५।९।३५०) इति। स्रमग्नी स्रवमाना त्रास्तर्रिनमेव प्राप्तमर्चा, त्राग्नी जतेत्वेवं सङ्क्षियतुं प्रकावात्, तस्त्रादाज्ञत्वेाः प्राप्तये सनःश्रम्द्युक्ताभ्यास्यभ्यां जुद्रयात् ।

मक्ति दिलं प्रजंगति,—''दाभ्यां प्रतिष्ठित्ये'' (भू।१। ३ आ ?) इति । कस्यः, 'श्रपादाय दिर्द्यं परि वाजपितः कविरिग्निरित तिस्भिरिभ्या स्टत्सननं प्रयुचं परिसिखति वाद्यां वर्षीयसीम्' इति । तच प्रथमामाइ,—"परि वाजपितः कविर्ग्निईयान्यक-मीत्। दभद्र ज्ञानि दाश्युषे^(१९)" इति । श्रयम् 'श्रग्निः' 'इयानि'

^{*} चरची निषेधवाची प्रन्दस्य इति सर्व्यक्तिन् पृक्तके पाठी न सन्यक्त

म्नि" (५।९।३ म ०) इति । ऋग्निरिश्ति अप्रदेशे श्रेमेन 'मध्वर्षुः' 'मन्धा' भवति । श्रेमाधिकरणसाप्रेरदर्शनात्। एतदेव सिद्रमुप-सम्भ रशांधि 'यशं' विनामयेयुः। मत एतद्देशपरिशारास अमा 'हिरस्थं' निधाय तिसन् जुड्डयात्। तथा यति हिरस्यशामियहम-लादयं प्रदेशोऽग्निमान् भवतीति ने किदेशस्यम् ।

प्रथममन्त्रस्य प्रथमपादे मनः प्रस्थापयानं दर्भयति,—"जिष-र्म्यग्निं मनसा घृतेनेत्या इ मनसा हि पुरुषा यश्चमभिनक्किति" (५)११२१०) इति । मनसा यश्चाभिगमनं नाम 'यश्चं किर्स्थे' इत्येवं रूपः सङ्ख्यः।

दितोचपादस तात्पर्ये दर्जयित,—''प्रतिस्थनां भुक्नानि विसे-त्याच वर्वष्ट्र स्त्रेव प्रत्यञ्चेति'' (५।१।३% ०) दति। 'एवः' स्विः 'वर्वे' यजमानमृद्दिस्त 'प्रत्यस्' (सभिमुखं) 'स्रेति' (निवयित)।

द्धतीग्रपादे 'पृथु' बृहमां' इत्यानयोखात्पर्ये दर्जति,—"पृथुं तिर्ञ्चा वयसा बृहम्तमि याहास्पो होष जाता महान् भवति" (५।१।२%) इति। 'एषः' ऋग्निः जातमानेष 'सन्पः', पश्चादा-ऋतिभिर्वर्द्धमावो देश्रयाच्या कास्रकाच्या च 'महान् भवति'।

चतुर्घपादे 'यचिष्ठम्' इतिपदेन स्वचितं पूजार्घनसम्बं सादुतं दर्घयति,—''यचिष्ठमस्यः रभमं विदानमित्यादास्रमेवासी साद-यति" (५।९।३५०) इति ।

वेदनं प्रशंसति,—"सर्वमधी खदते च एवं वेद" (५।९।३११०) इति।

दितीयमन्त्रस्य प्रथमपादे 'वचवा' इतिपद्खाभिप्रायं दर्भयति,—

"त्रा ला जिवमि वचमा घृतेनेत्या हतसात् यत् पुरवा मनमा-भिगक्कति तदाचा वदति" (५।२।३ त्र ०) इति। यसात् प्रथम-मन्त्रे मनमेत्रुद्धा दितीयमन्त्रे वचमेत्युत्रं, तसात् खेरकेऽपि पुरवी मनमा यत् कार्ये चिन्तयति, तत्पश्चात् वाचा वदति।

दितोषपारे ऋरचा-निषेधवाचित्रव्दश्य तात्पर्ये दर्भयति,— "ऋरचयेत्याच रचसामपष्ट्यै" (५।१।३ % ०) दति ।

हतीयपादे मनुष्टीराश्रयणीयलेन वर्षः स्मृद्यक्षीयलेन चाग्नी पूज्यलं सम्पाद्यते इति दर्शयति,—''मर्यश्रीः स्मृद्यदर्णेः चिप्तिर-त्यादापचितिमेवास्मिन् द्धाति" (५।१।३ त्र०) इति ।

वेदनं प्रश्नंपति,—"श्वपचितिमान् भवति च एवं वेद" (५। १।३भा॰) दति।

मक्षयोदभयोर्भनः श्रन्थोपेतलं प्रश्नंयित,—''मनया सैतामाप्तु-मर्चति यामध्यपुरनग्रावाद्धतिं जुद्देति मनस्वतीभ्यां जुद्देत्याद्धर्थो-राष्ट्री" (५।९।३%) इति। अनग्री स्र्यमाना श्राद्धतिर्भनयेव प्राप्तुमर्द्दा, श्रग्नी द्वतेत्वेवं यद्धस्ययितुं श्रक्कावात्, तस्त्रादाद्धरेः प्राप्त्रये मनः श्रब्द्युक्ताभ्यास्त्रस्यां जुद्धयात्।

सन्त्रदिलं प्रशंसित,—"दाश्यां प्रतिष्ठित्ये" (५।९।३८०) इति। कस्यः, 'श्रपादाय दिर्घ्यं परि वाजपितः कविरशिरिति तिस्त्रभिरिश्या स्टत्यननं प्रत्यृषं परिस्थिति वाद्यां वर्षीयसीम्' इति। तत्र प्रथमामाइ,—"परि वाजपितः कविरशिर्षयान्यक-मीत्। द्धद्रज्ञानि दाग्रुषे(१८)" इति। श्रयम् 'श्रशिः' 'इयानि'

^{*} चरची निवेधवाची ग्रन्टस्य इति सर्व्यक्तिन् पृक्तके पाठी न सम्यक्।

परितः 'श्रक्रमीत्' (खीष्ठतवान्)। कीवृशोऽग्निः?—'वाजपितः' (भन्नख पासचिता)। किं कुर्वन् ?—'दाशुषे' (इविर्दन्तवते) यत्र-मानाय 'रक्नानि' 'दधत्' (रमणीयानि धनानि सन्पादयन्)।

भण दितीयामाइ,—''पित लाग्ने पुरं वयं विप्रष्ट सइस्स धीमिइ। ध्यदर्ण दिवे-दिवे भेक्तारं भङ्गरावतः'(१०)'' इति । सहिस बले भवः 'सहस्यः', 'सहस्रस्युची श्रह्मतः' इति श्रुष्टम्तरात् ; तादृष्ट (बलवान्*) हे 'श्रग्ने', 'वयं' लां 'पिर'-'धीमिइ' (पिरतः खीसुमेः। कोदृष्टं लां?—'पुरं' (श्रसकदपेचितफलानां पूरियतारम्), 'विप्रं' (श्राह्मणजात्यभिमानिनं देवं), 'ध्यदर्णे' (ध्यत् † वैरिष्णं धर्षियता वर्णः खरूपविष्णेषो यस्याची ध्यदर्णः तं), 'दिवे-दिवे' (प्रतिदिनं) 'भङ्गरावतः' 'भेक्तारं' (भञ्चनीयं पापं भङ्गरं, तदस्था-स्तीति भङ्गरावान् विधातका राचसादिः, तस्र विनावधितारम्)।

त्रथ हतीयामार,—''तमग्ने युभिस्तमाग्र्य्यक्षिस्तमग्नस्तममानस्परि । तं वनेभ्यस्त्रमेषधीभ्यस्तं नृषां नृषते जायसे
ग्रिंचिः(११)" इति । हे 'त्रग्ने', 'लं' 'युभिः' (सर्गेः) निमानभृतेस्तन तच यागणालासु 'जायसे' । किञ्च 'तमाग्र्य्युज्ञिषः'
(त्रार्द्रां भूमिं त्रीघूमेव ग्रेषियाता) 'जायसे' । 'तमग्नः' (वर्षधाराभ्यः) त्रण्ञनिरूपेष 'जायसे' । 'तममानस्परि' (पाषाक्योः परि) पाषाणान्तरसङ्गटनेन 'जायसे' । 'तं वनेभ्यः' दावाग्निरूपेण 'जायसे' । 'त्रोषधीभ्यः' (त्रोषधिकार्षभ्ये। भेषजेभ्यः) 'तं'

^{*} बज्ञवन् इति पाठी भवितुं युक्तः। † धवन् इति पाठी भवितुं युक्तः।

'कायमे'; यदा वंत्रदयसङ्घंकादिम्मा 'जायमे'। 'मृषां' 'मृपते', (मर्वेषामपि मनुष्याणां पासक), मं ग्राहे-ग्रहे 'इड्रिसः' (इड्डिहेतः सन्) 'जायमे', 'पुनदीहेन स्राप्यायम्' दायादिश्रुतेः।

एतेर्नन्तैः साधं परिलेखनं विधत्ते,—"यश्चमुखे-यश्चमुखे वै
कियमाखे यश्चः रवाः सि जिधाः सम्बेतर्षि खलु वा एतद्यश्चमुखं
यद्भेनदाञ्चितरश्चते परिलिखित रचमामपष्टिं। (५।१।३ श्र॰) इति ।
यश्च मुखं (प्रारमः) 'यश्चमुखं'। यदा यशः प्रारम्थते, तदा 'रचांचि' श्रागत्य यशं हम्नुमिष्क्षम्ति । एवश्च सित श्रशपि श्रश्मपदाद्भितम् 'एतत्' खानम् 'श्राञ्चितः' यदा प्राप्नोति, तदानीम् एतदेवाश्वपदस्थानं यश्चप्रारम्भक्षं भवति । श्रतोऽत्र प्राप्नानां 'रचसामपष्टत्ये' परिलेखनं कुर्यात्।

मन्त्रत्यं विनियुक्को,—"तिस्रभिः परिलिखित विष्टदा ग्रीम-र्यावानेवाग्निस्तसाद्रचा एसपइन्ति" (५१९१३ श्र०) दृति । ग्राइव-नीय-गार्चपत्य-दिचणाग्निक्पेणाग्नेस्तिगुणवम् । सर्वसाद्येतसाद्गेः रचसामप्रधाते मन्त्राचित्वेन सम्बद्धते ।

परि वाजपितरित्येतां विश्वेषाकारेण विधन्ते,—"गायिषया परि स्तिखित तेजो वै गायत्री तेजसैवैमं परिग्रकाति"(५१९।३५०) इति । पादत्रयोपेतलादिशं गायत्री, तस्त्राह्याग्रिमा सन्द प्रजापित-मुखादुत्पन्नलात् तेजस्त्रम । 'एनम्' (ऋग्निप्रदेशम्) ।

'लमग्ने चुभिः' इत्येतां विधत्ते,—"चिष्टुभा परि सिखतीन्त्रियं वै चिष्टुगिन्त्रियेषैवेनं परिग्रकाति" (५।१।३% ०) इति ।

^{*} मन्त्र चिलेन इति पाठे। भवितुं युक्तः।

'परि लाग्ने' रत्येतां विधक्ते,—''श्रनुष्टुभा परिलिखत्यनुष्टुप् सर्वाणि कन्दाश्रमि परिभूः पर्याष्ट्री" (४।१।३ श्र०) रति। वायूपे-यमनुष्टुप् सर्वाणि कन्दांसि (परिता भवति व्याप्नेति) 'परिभूः', श्रतः सेयं 'पर्याष्ट्री' समस्यते।

त्रस्था त्रनृष्टुभः पाठप्राप्तं मन्त्रदयमध्यवर्त्तालं प्रश्नंसित,— "मध्यते। इनुष्टुभा वाम्या त्रनृष्टुप् तस्मान्त्रध्यते। वाचा वदामः" (५। १।३ त्र ॰) इति । 'त्रनृष्टुभा' परिस्तिस्तिति शेषः । यस्मात् वायूपा त्रनृष्टुप् मध्यतः पठिता, तस्मादयमपि मुखमध्यवर्त्तिजिङ्गासाध्यया 'वाचा' सम्भाषणं सुर्मः ।

गायची विष्ठुभोः पाठ प्राप्तमा चन्त रूपलं प्रशंसित,—"गाय विद्या प्रथमया परि खिखत्य चानुष्ठुभाच विष्ठुभा तेजो वै गायची च जोअनुष्ठुगिन्त्र्यं विष्ठुप् तेजसा वै चेन्द्रियेख चे भयते। च जं परिस्टक्षाति"(५१११ च ०) इति। पूर्वे प्रश्रक्षापि मध्यवर्त्तानो अनुष्ठुप्,
पुनरिष पार्श्वसाभां सङ् प्रश्रस्तते। च ज्ञानिब्या दक्षवायू पला दनुधुभे। च ज्ञालम्। तस्मात् लभयते। गायची विष्ठुभेः पाठेन मध्यवर्त्तानं च ज्ञानेव 'तेजमा वै चेन्द्रियेण चे भयतः' परिस्हीतवान
भवति॥

श्रव विनियागसङ्गुदः,—

इमां, रज्जुं समादाय, प्रतः, तुरगबन्धनम्। युद्धा, गर्दभमाब्ध्य, योगे, यान्ति त्रिभिर्म्यदा ॥ 'इमा'ऽनादग्रिमित्य।देगेमने देखमन्त्रणम्।

^{*} स्ट्रिंसिति J. पु॰ पाठः।

'यामा'ऽनोन वपा जणा, 'रामा'ऽना देखमन्त्रपम्। न्न्याम, नच्छेदागता दाम्यामाकमयेहुवम्। चै। क्षेत्रप्रष्टं मंमार्षः भुक्का-दाभ्यां तदुद्वमः। न्न्रपः, पदेऽपा निनयेन्ज्यिव-दाभ्यां जुड़ाति हि॥ परि चिभः परिक्षिवेदेकविंग्रतिरोरिताः॥

दति श्रीसायनाचार्य्यविर्विते माधवीये वेदार्थप्रकात्रे हम्या-चजुःसंहिताकाये चतुर्यकाम्डे प्रथमप्रपाठके दितीरोाऽनुवाकः॥०॥

देवस्यं त्वा सिवतुः प्रस्वेऽिश्वने। ब्रीष्ठिधां पूष्णे। इस्तीभ्यां प्रिष्ठ्याः स्थर्थेऽिशं पुरीष्यं मिक्तर्स्वत् स्वनामि(१)। ज्योतिषान्तं त्वाग्ने सुप्रतीक्षमं सेष भानुना दीर्थानं । श्विवं प्रजाभ्ये।ऽिष्ठः सन्तं प्रिष्ठ्याः स्थर्थेऽिशं पुरोष्यं मिक्तर्स्वत् स्वनामि(१)। ज्यूपां पृष्ठमिस स्प्रश्चां जुविशं भेरिष्यं द्पराविषष्ठं। वर्धमानं मुष्ठ ज्ञा च्
पुष्तरं दिवा मार्चया विरुषा प्रश्वस्व(१)। शर्म च
स्थः॥१॥

वर्भ च खो च चिहे बहु हो उभे। व्यचं खती सर्व-सावां भृत्तेम् प्रिं पुरीर्धं (१)। संवंसावार सुवृर्विदे।

^{*} क्वचित् दीचानमिति पाठः।

सुमीची उर्रसात्मना। श्रुग्निमुन्तर्भेरिष्यन्ती ज्योति-षान्तुमर्जसुमित्^(॥)। पुरीष्टीऽसि विश्वभराः। श्रर्थवी त्वा प्रथमा निरमन्यद्गे^(१)। त्वामंग्रे पुष्कंराद्ध्यर्थर्वा निर्मन्यत । मूर्धी विश्वस्य वाघतः (°) । तमु त्वा द्ध्य-ङ्षिः पुच इधे ॥ २॥

श्चर्यर्वेगः। वृष्ट्यां पुरन्दुरं^(६)। तमुं त्वा पाथ्ये। हवा समीधे दस्यु इन्तेमं। धनुष्क्रयं रखें-रखें(c)। सीदं होतः ख उ सोके चिकित्वान्त्याद्या युक्तः संकृतस्य योनी । देवावीर्वेवान् हृविषा यजास्यमे बृहद्यर्जमाने वया धाः(१०)। नि होता होतृषद्ने विदानस्वेषा दी-द्विवार श्रेसदत्सुदर्शः। श्रदंभव्रतप्रमित्वितिष्ठः सइ-समारः गुंचिजिक्को श्राप्तिः(११)। सःसीद्स्व मुहाः र्यास ग्राचंख ॥ ३॥

देववीर्तमः। वि धूममंग्ने ऋष्वं मियेध्य सृज प्रेंशस्त दर्शृतं(१२) जिनेषु हि जेन्ये। अग्रे अहार हिता ष्ट्रितेष्ठं हो। वनेषु। दमें-दमे सुप्त रंख्ना दर्धाने।ऽग्नि-र्होता नि वंसादा यजीयान्^(१९)॥ ४॥

खः। दुधे। ग्राचर्ख। सुप्तविश्रं शतिश्व ॥ ३॥

इति तैतिरीयसंहितायां चतुर्थकाएडे प्रथम-प्रपाठके स्तीयाऽनुवाकः॥०॥

दितीये सदाक्रमणमुक्तम्, श्रय स्तीये खननमिधीयते । कच्यः, 'देवस्य सा स्वितः प्रस्व इति द्वाभ्यां खनित' इति । प्रथममन्त्रपाठन्तः,—''देवस्य ला स्वितः प्रस्वेऽश्विने। बाङ्गभ्यां पूष्णे। इस्ताभ्यां पृथिच्याः स्थस्येऽग्निं पुरीस्थमङ्गिरस्वत् सनामि(१)'' इति स्रष्टोऽर्थः ।

दितीयमक्तपाठसु,—''च्येतिश्वनं लाऽग्रे सुप्रतीकमत्रसेष भानुना दीद्यानं। श्रिवं प्रजाभ्येऽिह् सम्नं पृथिचाः सधस्येऽिग्रं पुरीक्षमित्तरस्वत् स्वनामि(१)'' दित । हे 'श्रेग्रे', 'पृथिच्याः' 'सधस्त्रे' (उपरिप्रदेशे) 'पुरीव्यं' (पांसुचार्यम्) श्रीग्रं लाम् श्रित्तरस द्व श्रदं 'खना में । की दृशं लां ?—'च्येतिश्वम्तं' (ज्वासायुक्तं), 'सुप्रतीकं' (सुमुखं), 'श्रत्रसेष भानुना दीद्यानं' (निरम्तरं वर्त्तमानेन रिश्वना प्रकाशमानं), 'प्रजाभ्यः' (प्रजापकाराचें) 'श्रिवं' (श्राक्तं), श्रत एव 'श्रदिस्त्तां' (हिंसामकुर्वम्तम्)।

एतकाक्तदयसाध्यं खननं विधत्ते,—"देवस्य ला स्वतः प्रस्व इति खनित प्रस्तवा श्रयो धूममेवेतेन जनयति खोतिश्रकां लाग्ने सुप्रतीकमित्या इ खोतिरेवेतेन जनयति" (५१९१४ श्र०) इति। प्रथममक्ते स्वतः प्रस्व इत्युचारणं प्रेरणाय सम्बद्धते, किञ्चैतेन मक्तेण धूममेवात्यादयति, न तु ज्वासाः, तसात् दितीसमक्तादे खोतिश्रकामित्येतेन प्रष्टेन खोतिर्जनयत्येव।

तस्य मक्तस्य दितीयार्द्धे त्रिवत्रम्दतात्पर्ये दर्शयति,—"सी-ऽग्निजीतः प्रजाः ग्रुचार्पयक्तं देवा त्रार्द्धचैनात्रमयस्क्तिवं प्रजाम्योऽ-हिष्ट्रमन्तिम्याद् प्रजाम्य एवैन् श्रमयति" (५।१।४ त्र०) इति। व्याखासहित जत्पन्नः 'न्नाग्नः' जत्पिनाचेषेव 'प्रजाः' सर्वाः तापे-नाचाजयत्, 'तं' (तादृश्वम्) श्रद्धिं त्रिविमञ्चाद्यर्द्धेर्चेन 'देवाः' प्रान्तिमकुर्वेग्, तसाद्ख प्रद्वंच पाठेग प्रजीपकाराय 'एव' 'एन' ज्ञान्तं करोति।

मन्त्रदिलं प्रशंसति,—''दाभ्यां खनति प्रतिष्टिये" (५।१। ४ घ०) इति।

कच्यः, 'श्रपां पृष्ठमधीति पुष्करपर्णमाइत्यैतयैव विचेष्ट्य' इति । स्टदं प्रचेत्रं पुटिकां कलेत्यर्थः । पाठस्त,—''चपां पृष्ठमसि स-प्रचा उर्विम्नं भरिखद्पराविषष्ठं। वर्धमानं सद्द प्रा च पुष्करं दिवा माचया वरिका प्रथक्ष (१)" इति । हे पुष्करपर्क, लम् 'श्रपां पृष्ठमिय' (पृष्ठवदुपरिभागे वर्त्तमानमिष)। की दुर्श्न ?— 'यप्रथाः' (विक्तारं) ऋत एव 'खर्विग्नं भरिखत्' (ऋग्निवाधनं स्टरं बक्त वया भवति, तथा भरितुं समर्थम्, 'श्रपराविपष्टं' (परा-वपो विनात्रः, चतित्रयेन तद्रहितं), 'वर्धमानं' (श्रणम्बाहिने-दिने रुद्धियुक्तं), 'महः' (निर्श्वेपलाद्युक्ता पूजनीयं), 'पुष्करं' (मग्निमिष्यादनदारा पुष्टिकरं), तादृष्ठं सं, 'माचया' (परि-माषेन) 'दिवा' 'वरिषा' (श्राकाशाद्याधिकोन) 'श्रा' (समन्तात्) 'प्रथस्व' (विस्तृतं भव) ।

तमेतं मन्त्रं विनियुक्को,—"श्रपां पृष्ठमसीति पुष्करपर्धमा इर-त्यपां वा एतत् पृष्ठं यत् पुष्करपर्णः इपेणेवैनदा इरति" (४।९। ४ म •) इति । 'भपाम्' उपरि-वर्त्तमानतस्य विद्यमानसैवार्थस श्रभिधायितादनुक्षेणीव सन्त्रेणीनं पुष्करपर्णमाइरति।

कच्यः, 'प्रमं च स्था वर्म च स दित दाभ्यामुक्तरेख म्हत्यननं क्रम्याजिनं प्राचीनगीवमुक्तरक्षोमासृकात्युपरिष्टात् पुष्करपर्यमु-क्तानम्' दित । प्रथममक्तपाठस्तु,—"प्रमं च स्था वर्म च स्था । प्रक्ति वज्रके छभे । स्वच्छती संववार्या भक्तमिंग्रं पुरीक्षम् (४)" दित । दे क्रम्याजिन-पुष्करपर्ये, 'छभे' (युवां) 'ग्रमं च स्थः' (प्रग्नेः सुस्कतारको प्रि भवधः) । तथा 'वर्म च स्थः' (कवचवद्रचके प्रि भवधः) । कोदृष्टे ?—'प्रक्लिद्रे' (किद्ररिते), 'बद्धके' (विसीर्थे), 'स्वस्कती' (प्राच्छादनप्रकारवती) पृटिकादिसदृष्टे दत्यर्थः । तथा-विधे युवां 'संवधार्था' (सम्बक् स्टरमाच्छादयतम्) । ततः 'पुरी-स्वम्' 'प्रग्निं' (धारयतम्) ।

दितीयमक्तपाठसु,—''संवधायाः सुवर्विदा समीची उरसा-त्मना । त्रश्मिन्तर्भरियक्ती च्येतिसक्तमजसमित्(१)'' इति । चे क्रव्याजिन-पुष्करपर्षे, युवां 'त्रात्मना' (खयमेव परिनरपेचे सितं 'उरसा' (उरसदृष्टेन) भवदीयस्क्ष्पेष 'संवधायां' (सम्ब-नाष्क्राद्यतम्) । कीदृष्टे युवां ?—'सुवर्विदा' (खर्गविदे स्वर्ग-साभसाधने दत्यर्थः), 'समीची' (सदस्थनायानुकूले), 'त्रजसमित्' (निरक्तरमेव) 'च्येतिसक्तम्' 'त्रश्मिम्', 'त्रक्तः' (खोदरे) 'भरि-चक्ती' (धारयिक्ती) ।

स्रनेन मन्त्रदयेन साध्यं पुष्करपर्णस्य प्रसारणमुत्तरच विधातु-मादी पुष्करपर्णे स्टदः समारणं विधत्ते,—''पुष्करपर्णेन समारति योगिवी श्रोः पुष्करपर्णं सयोगिमेवाग्नि समारति'' (५।९।

^{*} सती इति पाठी भवितुं युक्तः।

४ %) इति। पृष्करपर्णकाशिक्षानीवतम् श्राद्यकेतुक-चयने समा-बातम्,—'जानुदन्नोमुक्तरवेदीं खाता। श्रपां पूरियता गुरूपदन्नं। पृष्करपर्वै: पृष्करदक्षेः पृष्करिष्ठ स्थार्ये। तिसान् विदायसे। श्रीमं प्रकीयोपसमाधाय' इति। श्रतः पृष्करपर्णकाश्चियोनितात् 'सयोनिनेवामिं' सस्तृतवान् भवति।

पुष्करपर्णवत् तेनैव मन्तदयेन हाणाजिनसास्तरणं विधातुमादै।
हाणाजिने स्टदः खापनं विधन्ते,—''हाणाजिनेन सभारति यद्यो
वै हाणाजिनं यद्योनैव यद्याः सभारति'' (५।१।४ प्र०) रति ।
हाणाजिनस्य यद्यारुपतं दुर्गपूर्णमासन्नान्नाणेऽवगम्वते,—'यद्यो देवेभ्ये।
ऽनिसायत । हाणो [?] रूपं हाला । यत्हाणाजिने इविर्ध्ययद्याः ।
यद्यादेव तद्याः प्रयुद्धे' इति । तदद्यापि हाणाजिनरूपेण 'यद्येनैव' प्रशिक्षं 'यत्रं सभारति' ।

पर्मामारपरित्यागेन क्रणाजिनस्वीकारे हेतुं दर्भवित,—
"यद्वाम्याणां पश्चां पर्मणा सभारद्वाम्यान् पश्च्रक्रु पापंचेत्
कृष्णाजिनेन सभारत्यारप्यानेव पश्च्रक्रु पापंचित तसात् समावत्
पश्चां प्रजायमानानामारप्याः पश्चवः कनीयू ११ सः प्रदुषा
स्थाः" (१११ ४ १०) इति । याम्यपश्चनां गवादीनां पर्मणि श्रिष्ठसभारणे गवादयः समापेन संचीजिता भविताः क्रणाजिनेन
सभारणे तु श्वारप्या एव पश्चवः सन्तापेन सेव्यक्तने; यसादेवं,
'तसात्' लोकेऽपि चतुष्पात्तास्थाकारसाम्येन प्रजायमानानां पश्चनां
मध्ये याम्याः श्रेष्ठाः, पार्ष्या एव किनद्वाः, यसात् ते 'इद्रुषा'
'स्वताः' (१६ पं प्राप्ताः), तसात् तेवां किनद्वतं युक्तम् । न हि

ग्राम्यगवादय दव प्रासाप्रवेष-भच्छप्रहानाहिभिरार्ष्याः पेष्यमे, पतसोवां ग्रोकप्राप्तिः।

तक रुकाजिक्स सोबामुपरि यसारणं विधन्ते,--"स्नोमतः स्थारत्वती इस्य मेध्यम्" (५।१।४ घ०) रति । समात् 'सम्य' (हजाजिनक) 'चतः' (इदं) स्रोमय्कं स्नानं 'मेथं', तस्रात् तम सकारेत्।

ददानीमुक्तमभारकचिद्धये पूर्वाक्रमन्त्रदयमाध्यमुभयासारचं विन धत्ते,—"क्षव्याजिन स पुष्करपर्य स स् कृषातीयं वै छव्याजिन-मंशे पुष्करपर्णमाभाभेवेनसुभवतः परिग्रज्ञाति" (५।९।४च०) रति। क्रच्याजिनपुष्करपर्यचीरधरीक्तरभावेन खेकदवरूपतम्।

कस्यः, 'पुरीकोऽधि विश्वभरा इति खल्लनमभिमच्य' इति। पाठख,--"प्रीम्रोऽधि वियभराः । प्रथर्वा ला प्रथमो निर-मन्यदग्ने⁽⁽⁾⁾" इति । दे खननप्रदेत्र, सं 'पुरीखोऽिं (पुरीचक बज्जसर्पासीर्थीक्वाऽसि), ऋत एव 'विश्वभरा' 'ऋषि' (विश्वं क्रस्त्रम् उवार्ष विभक्तीति वियभराः)। दे त्रग्ने, त्रवर्वाका ऋषिः, 'प्रथमः' (इतरेभ्यः पूर्वभावी) सन् लां 'निरमन्यत्' (विःश्रेषेष मचितवाम्)।

श्रथर्वणः प्रथमनिर्मन्यनं । नाम प्रथमद्र्यनमिखिभिप्रायं दर्भ-यति,—''च्यिवेंबेभ्योऽनिकायत तमधर्वाऽन्वपच्यद्चर्वा ला प्रथ-मे। निरमन्बद्गे रह्याच च एवैनमन्बरायत् तेनैवैनप्र सभारति" (५।१।४ प्र०) इति । 'प्रव्यपस्तत्' (प्रविष्य दृष्टवान्)।

^{*} प्रचमनिर्मेचनम् इति B. J. रघं खादर्भपुत्तके गाठः।

कथः, 'लामग्ने पुष्करादधीति क्रणाजिने पुष्करपर्णे च सक्षरित चतस्भिसिस्भिर्वा गायनीभिर्वाश्वास्थ निष्टुग्भी-राजन्यस्थ' इति । यद्ययन 'लामग्ने'-इत्यादिकासिस्न एव गायत्र श्राक्षाताः, तथापि चतुष्कपच्चे 'पुरीखोऽसि विश्वभराः' इत्यमेन पूर्वे क्षास्थातः । दितीयमन्त्रपाठस्त,—''लामग्ने पुष्करादध्यर्था निरमन्यत । मूर्गे विश्वस्य वाषतः(०)'' इति । हे 'श्रग्ने', 'श्रय्वां' मुख्य स्विः 'पुष्करादिथि' (पद्मपत्रस्थोपरि) 'लां' 'निरमन्यत' (निःश्रेषेण मियतवान्)। श्रत एव पद्ममकास्थे ब्राह्मणमास्थातम्,'पुष्करपर्णे द्योनमुपश्चितमविन्दत्' (१।४श्व०) इति । कीदृशात् पुष्करात्?—'मूर्भः' (जन्तमाङ्गवत्रश्चरात्)। 'विश्वस्थ वाषतः' (सर्वस्थ जगता वाहकात्)। इदं हि पुष्करपर्थमग्निः मन्यननिष्यादनादिदारा सर्वे अगिस्नवेदित ।

हतीयमक्तपाठस्त,—"तमु ता दश्चकृषिः पुत्र देशे त्रधर्षः। ट्रिक्षणं पुरन्दरम्(म)" दति । हे त्रग्ने, 'त्रधर्षः' 'पुत्रः' 'दश्चक्'- नामक श्विः 'तमु ता' 'द्रेशे' (तामेव प्रज्यास्तितवान्) । की- दृत्रं तां?—'ट्रवह्णं' (वैरिनाधनं), 'पुरन्दरं' (द्रद्रूपेषासुर- सम्बन्धिनां चयाणां पुराणां विदारितारम् [?])।

चतुर्घमक्तपाठस्तु,—"तमु ला पाथ्ये द्रवा समीधे द्रकु-इन्तमं। धनञ्जयः रखे-रखे^(१)" इति । हे त्रग्ने, 'पाथ्य'-नामकः कश्चिदृषिः, 'तमु ला' 'समीधे' (तमेव लां प्रव्याखितवान्)। कीदृषः पाथ्यः?—'द्रवा' (श्रेष्ठः)। कीदृषं लां?—'द्युहन्तमं' (तस्कराणामितश्रयेन एक्सारं), 'र्षे-र्षे' 'धनञ्जयं' (तेषु-तेषु यक्नामेषु धनस्य वेतारम्) । इत्यमिमा गायच्यः उक्ताः ।

श्रय चिष्ठुभां चतस्यां मधे प्रथमामा इ,—"बीद होतः स छ सोने चिकितान्ताद्या यश्चः स्कृतस्य योगे। देवावीर्दे-वान् इविषा यश्चास्त्रो बृह्यश्चमाने वया धाः(१०)" इति। हे 'होतः' (होमनिष्पादक), 'चिकितान्' (श्वभिश्चः) लं, खकीय एव खाने उत्तरवेदिक्षे 'सीद' (उपविश्व)। 'यशं' च, इमं 'स्कृतस्य योगे।' (पृद्यकर्मणी योग्यस्थाने) 'सादय' (स्थापय)। (देवान् वेति कामयत इति) 'देवावीः' (देविषय इत्यर्थः)) तादृशस्यं देवान् 'इविषा' 'यश्वासि' (पूत्रयसि)। हे श्वग्ने, 'यश्वमाने' 'बृहत्' 'वयः' (दीर्घमायुः) 'धाः' (स्थापय)।

त्रय दितीयामाइ,—''नि होता होहबदने विदानस्त्रेषो दीदवार त्रयदत् सुद्दाः । त्रद्धनतप्रमितर्विष्ठः सहस्रभरः ग्रुचिजिक्को त्रियाः(११)'' इति । 'हेाहबदने' (होमनिष्पादकस्य ्येग्यस्ताने) उत्तर्विद्धपे 'त्रियाः' नितराम् 'त्रयदत्' (सम्यगुपविष्ट-वान्) । कीदृत्रोऽग्रिः ?—'होता' (देवानामाक्काता), 'विदानः' (स्तानाभिक्रः) 'लेवः' (दीप्तिमान्), 'दीदिवान्' (देवेभ्ये। इविषो दाता) । 'सुद्दाः' (त्रयमाकुत्रसः), 'त्रद्धनतप्रमितः' (त्रद्धे त्रविनात्रिते नते कर्मष्य प्रक्रष्टा मितर्थस्य, स तथाविधः), 'विष्टः' (त्रतित्रयेन वास्थिता), (सहस्रसङ्काकानि हवींवि भरितः पोष-यतीत) 'सहस्रभरः', (ग्रुचिः ग्रुद्धा होमयोग्या जिक्वा ज्यासा यस्रासी) 'ग्रुचिजिक्वः'।

त्रथ हतीयामाइ,—''बल्बोद्ख महाल श्रि श्रोच्ख देववीतमः। विधूममग्ने अह्षं मियेथ एक प्रश्न दर्शतम्('रे')' इति। हे 'श्रग्ने', त्वम् श्रिक्षान् पुष्करपर्धे 'सं-सीद्ख' (सम्बगुप-विश्व)। त्वम् श्रमेककातुहेतुतात् 'महानिध', (देवान् वेति गच्छ-तीति, देववीः, श्रित्शयेन देववीः) 'देववीतमः', तादृश्रक्षं 'श्रोच्ख' (दीयख)। हे 'मियेथ' (मेधार्ह), 'प्रश्रख' (उत्कृष्ट) 'श्रग्ने', 'श्रह्षं (श्रदेविष्णं श्रनुगं) 'दर्शतं' (द्रष्टुं श्रक्षं श्रानं) 'धूमं' विश्वेषेष 'सूज'।

श्रय चतुर्थीमाइ,—''जिनस्या हि जेन्या श्रयो श्रक्कां हिता हितस्य हो। वनेषु । दमे-दमे सप्त रक्का दधानोऽग्निहीता निष-सादा यजीयान्^(११)'' इति । हे 'श्रप्ते', लम् 'श्रक्काम्' 'श्रयो' (प्रभातकाखे) 'जिनस्य' (जत्यस्यः) । कीष्ट्रश्रखं?—'जेन्यः' (जयश्रीखः) 'हितेषु' 'हितः' (हितभुंजो से देवास्तुम्यं हितमाचरित्ता, से समुख्या श्वालग्रयजमानास्तुम्यं हितमाचरित्ता तेषु सर्वेषु हितेषु लमि हिता भविष्ठ), 'वनेषु' 'श्रद्यः' (नानाविध्याख-स्वीपितेषु वनेषु कीपरहितः), कोपे च दावाग्निक्षेष वनानि दहतीत्यर्थः । श्रयम् 'श्रियः' 'दमे-दमे' (यजमानानां ग्रहे-ग्रहे) 'नि-स्थाद' (उपविष्टः)। कीष्टुभोऽग्निः?—'सप्त रक्का द्धानः' (रक्त-समानान् ज्याखाविभेषान् सप्तसङ्काकान् धारयमाखः) । श्रत एव 'सप्तजिक्कः' इति सर्वत्र प्रसिद्धः । श्राप्यर्वाणिकाञ्चामनित्त,—

^{*} न दहतीत्वर्धः इति उ. पु॰ पाठः । दहसीति तु पाठा भवितुं युक्तः ।

'काली करासी च मने।जवा च सुबोहिता या च सुधु सवर्णा। खुलिङ्गिनी विश्वरची च देवी खेखायमाना इति यत्र जिङ्काः'॥ इति ।

स च 'ऋग्निः' 'होता' (देवानामाङ्गाता), 'यजीयान्' (त्रति-अधेन यष्टा)।

जनासु गायनीषु 'लामग्ने' दत्यको पुष्करादधीत्यस प्रजस तात्पर्यं दर्भयति,—"लामग्रे पुष्करादधीत्याच पुष्करपर्वे द्वेन-मुपित्रतमिवन्दत्" (५।९।४ त्र०) इति । ऋषवी यदा त्रिम-न्विष्टवान्, तदानीं कसिांश्वित्युष्तरपर्येऽवस्थितमेनमग्निं सन्धवान्। तसात् पुष्करादधी खुकिर्युका ।

श्रमनारमको परित्यच्यान्यस्विं, द्धीच एव खीकारे का-रणं दर्भवति,—"तमु ना दश्वङ् ऋषिरित्याद दश्वङ् वा श्राचर्वपक्षेत्रस्वासीत् तेत्र एवासिन् दधाति" (५।१।४ त्र ०) इति । श्रव्यत्र मन्त्रामारे दधीचा मधिमा प्रपश्चितः,—'दथङ् इ यमध्यार्थवंषो वामश्रस श्रीर्णा' इत्यादी । तसात् दधी प-क्षेत्रस्वित्र ।

उपरितनमन्त्रेण पाव्यक्रब्देन दश्वक् एव विविधिते। नान्य इत्येतद्रभ्यति,—"तमु ला पाच्या द्रवेत्याच पूर्वमेवोदितमुत्तरे-णाभिग्रणाति" (५।९।४ घ०) इति । यः पूर्वमन्त्रोको दथाङ,

^{*} भीर्वेत्वादाविति बादर्भम् सक्पाठः ।

य एवाच समार्गवर्त्तिलात् पाय्य दृष्युच्यते । त्रतः पूर्वमन्त्रा-दितमेवार्यमुत्तरमन्त्रेण प्रतिपादयति ।

एतेर्मकीः साधमित्रसभरणं विधत्ते,—"चतस्भिः सभरति चलारि इन्दाश्वि इन्दोऽभिरेव" (५।१।४ प्र॰) इति। 'लामग्ने' इत्याद्याखाखान्नः, ततः पूर्वा 'पुरीखोऽधि' इत्येका, तदेवं चतन्नः। गायची चिष्टुप् जगत्यनुष्टुविति इन्दर्भा चतुष्टुम्। प्रतः सञ्चापाम्याच्छन्दोभिरेवाग्निः सभृते। भवति। 'सोइ होतः' इत्यादीनां चिष्टुभां चतुद्वम्। प्रचापि 'चतस्रभिः सभरति' इति विधियाजनीयः।

गायनीषां निष्ठुभां चाधिकारिभेदेन व्यवस्थां विधक्ते,— "गायनीभिर्वाद्वाषस्य गायना हि ब्राह्मणस्तिष्टुग्भी-राजन्यस्य नैष्ठुभा हि राजन्यः" (५।९।४५०) हित । मुख्जलसाम्येन ब्रा-द्वाणा गायनः । बाज्जलसाम्येन राजन्यस्तैष्टुभः ।

श्रथ काम्यं समुख्यं विधक्ते,—"यं कामयेत वसीयान्त्या-दित्युभयीभिक्तस्य सभारेत् तेत्रस्विवासा दिन्द्रयस्य समीची दधाति" (५।९।४%) दति। तत्र गायचीभिक्तेजः प्राप्तिः, चिष्टुव्भिरिन्द्रियप्राप्तिः।

यमुचितमन्त्रगतामष्ट्यक्कां प्रश्नंयति,—"त्रष्टाभिः यस्परत्यष्टा-चरा गायची गायचे।ऽग्नियांवानेवाग्निस्त सस्पर्रति" (५।९।४५०) इति ।

चतस्रः चिष्टुभः प्रत्येकं प्रश्नंचित्र,—''बीद हे।तिरित्याह देवता एवासी सप्तसादयित निहातेति मनुव्यान्त्यप्तसीदस्त्रेति वयाप्तसि जिन्छा हि जेन्या त्रयो त्रक्षामित्या ह देवमनुष्या नेवा सी सूधसान् प्रजनयित" (१।९।४ घ०) इति । 'सीद होतः' इत्येत छां
प्रथमायां निष्टुभि 'देवावीः' इतिपदेन देवतानां मंगादनं
स्वितम्। यदा 'देवान् हिवसा यजासि' इत्यनेन तस्पूचितम्।
'नि होता' इत्यन्धां दितीयायां निष्टुभि 'होत्रषदेने' इतिपदेन
होत्रादीनां मनुष्याणां संसादनं स्वितं भवति । 'सं-सीदस्व'
इत्यन्धां व्रतीयायां निष्टुभि 'धूमं वि स्ज' इत्येवमन्तरिचगामिना
धूमेनान्तरिचचारिणां पिषणां स्वित्तवात् तेषां संसादनं
'सं-सीदस्व' इत्यन्थां व्रतीयायामुक्तम्। 'जिनस्व' इत्यन्थां चतुर्थां
विष्टुभि 'जिनस्व' इत्युत्पादनस्य स्वित्तवात् पूर्वे।कान् सन्नान्
देवमनुष्यान् तदुपलचितानि वयांसि च प्रकर्षेण जनयित॥

श्रव विनिधागमङ्गुष्टः,—
देव-दाभ्यां खनेषापां पद्मपत्रं समाप्तरेत्।
श्रमं-दाभ्यां पर्मपत्रे खुणात्यय पुरीत्यतः॥
चतुष्टयात् समारति विप्रस्य, चित्रस्य तु।
सोदेत्यादिषतुष्कोण मन्त्रा दादश वर्णिताः॥

इति सायनाचार्यविरचिते माधवीये वेदार्थप्रकाणे कृष्ण-यजुः मंहिताभाय्ये चतुर्थकाण्डे प्रथमप्रपाठके हतीयोऽनुवाकः ॥ •॥ सन्ते बायुमीत्रिश्वा द्धातूत्तानाये हृदेयं यह-चिष्टं। देवानां ययरंति प्राणयेन तसी च देवि वर्ष-इस्तु तुर्थं (१) । सुजातो ज्योतिषा सुच शर्म वर्रू यमा संदः सुवं:। वासी अग्ने विश्वरूप् सं व्ययस्व विभा-वसी (१) । उर्दुत्तिष्ठ स्वध्वरावा ना देव्या कृपा। हुन्ने च भासा रहता सुन्नु किन्द्राऽत्रे याहि सुन्नस्ति भिः (१)॥१॥

जर्ब ज्रषु णं ज्तये तिष्ठा देवा न संविता। ज्रुहीं वार्जस्य सर्विता यद्जिभिर्वाघितिविष्ट्रयामहे (१) । स् जाता गर्भी असि रेदिस्थारमे चार्जविसेत के चे-धीषु। चिचः शिशुः परि तमा स्यक्तः प्रमात्वस्था अधि कर्निकद्राः (६) । स्थिरा भव वीर्डक आग्रुभव वा-र्श्यवन्। पृथुभव सुषद् स्वमुग्नेः पुरीष्वार्डनः (१) । शिवा भवः ॥ २॥

प्रजास्यो मानुषिभ्यस्वमिक्तरः। मा द्यावापृष्टियवी

श्रीम श्रीशुचे। मान्तरिक्षं मा वन्स्यतीन् (०)। प्रैतुं

याजी कनिकद्वानंद्द्रासंभः पत्वा। भरं कृषिं पुरीष्यं

सा पाद्यायुषः पुरा (०)। रासंभा वां कनिकद्त् सुयुक्तोः

हषणा रथे। स वाम् भिं पुरोष्यमाशु दूता वेद्यादितः (०)। हषामिं हषणुं भरं क्यां गभेरं समुद्रियं।

श्रम श्रा यादि॥ ॥

वीतयं शतः सत्यं(१)। श्रेषधयः प्रतियत्त्वीतामि-मेतः शिवमायन्तमभाषे युषान्। व्यस्यन् विश्वा अमंतीररातीर्निषीर्देश्वा अपं दुर्मृतिः ईनत्(१९)। च्रार्षथयः प्रति भादध्वमेनुं पुष्पावतीः सुपिप्पुलाः। अयं वा गर्भे ऋत्वयः प्रतः सधस्यमासंदत्(११)॥ ४॥ सुशक्तिभः। शिवा भव। याहि। षद्विं श्रम ॥

इति तैत्तिरीयसंहितायां चतुर्थकाएडे प्रथमप्रपाठके चतुर्वे। उत्तवाकः । • ।

हतीयेऽनुवाके सत्यननमुक्तम्। श्रष्ट चतुर्चे सदाइरकम् चचाते। कर्यः, 'सम्से वायुरिति स्टत्**खन**नेऽप त्रानीय' **र**ति। पाठन्तु,—"सम्ने वायुर्मातरिया द्धातः तानाये द्रदयं यदि-सिष्टं। देवानां श्रञ्चरति प्राणशेन तस्त्रे च देवि वषद्रस्त तुभ्वम्^(९)'' दति । 🕏 प्रचिवि, 'उत्तानायै' (ऊर्द्धाभिमुखेनाविस्त्र-तायाः) तव 'इदयं' (इदयसदृष्ठं) 'यत्' (खननस्तानं) 'विसिष्टं' (विश्वेषेषाष्पीकृतं), तत् खननस्तानं 'वायुः' 'सं'-'दधातु' (ह्राह्य-पूर्ववस्थितनानेन जखप्रचेपेण वायुर्वधापूर्वे सम्यक् करातु)। को दुओ वायुः ?—'मातरिश्वा' (मातरि श्रम्तरिश्वे सर्वप्राणिनाम् द्यतापरिच्छेदकारिणि प्रेतेऽवितष्ठते द्रति भातरिया) ; यो वायः 'देवानां' 'प्राणधेन' (प्राणभावेन) 'चरति' (ख्यवहरति) । हे 'देवि'

सन्ते बायुमीत्रिश्वी द्धातृत्तानाये हृदेयं यहि-लिएं। देवानां यसरित प्राणमेन तसी च देवि वर्ष-इस्तु तुर्थं(१)। सुजातो ज्योतिषा सुच शर्म वर्रू ममा संदः सुवं:। वासी अप्ने विश्वरूप् संव्ययस्व विभा-वसी(१)। उर्दुत्तिष्ठ स्वध्वरावा ना देव्या कृपा। दृशे च भासा ष्टेष्ट्रता सुश्चेकिन्राऽप्ने यादि सुशस्तिभिः(१)॥१॥

जर्ड ज्रषु णं ज्तये तिष्ठा देवा न संविता। जर्डी वार्जस्य सर्विता यदिक्जिभिक्षीयिक्विविष्ठयामहे (१) । स् जाता गर्भी असि रेदिस्थारमे चार्क्विसेत के पेन धीषु। चित्रः शिशुः परि तमा स्यक्तः प्रमात्वस्यो अधि कर्निकद्ताः (६) । स्थिरा भेव वीर्डक आग्रुभेव वा-र्श्यवन्। पृथुभेव सुषद्ख्वमुमेः पुरीष्वार्षनः (१) । शिवा भेवः ॥ २॥

प्रजाम्यो मानुषिभ्यस्वमिक्तरः। मा द्यावीपृथ्विती श्वाभि श्वेशुद्धा मान्तरिष्टः मा वन्स्यतीन् (१)। प्रैतुं बाजी कनिकद्वानंद्द्रासंभः पत्वा। भरेक्द्वां पुरीष्टं सा पाद्यायुंषः पुरा (१)। रासंभा वां कनिकद्त सुयुंको द्वा रथे। स वाम् प्रिं पुरोष्टं माशु दूता वहा-द्तिः (१)। द्वाप्तिं द्वेणुं भरेक्यां गर्भः समुद्रियं। श्वमु श्वा योहि॥ ॥

वीतर्य ऋतः सत्यं(१०)। श्रेषिधयः प्रतियह्णीतामि-मेतः शिवमायन्तमभाषं युषान्। व्यस्यन् विश्वा श्रमतीररातीर्निषीदेशे। श्रपं दुर्मतिः इनत्(११)। द्रीर्षधयुः प्रति मादध्वमेनं पुष्पावतीः सुपिप्युसाः। चयं वे। गर्भं च्हित्वर्यः प्रतः सुधस्यमासंदत्(११) ॥ ४ ॥

सुश्रुक्तिभिः। श्रिवा भव। याद्यि। षद्चिं श्रम् ॥ 181

इति तैतिरीयसंहितायां चतुर्थकाएडे प्रथमप्रपाठके चतुर्थोऽनुवाकः । ॰ ।

हतीयेऽनुवाके स्त्यननमुक्तम्। त्रच चतुर्घे स्दाइरचम् उच्यते। कस्यः, 'सम्मे वायुरिति स्टत्स्वननेऽप म्नानीय' इति। पाठख,--"सम्ने वायुर्मातिरमा द्धाह्नतानायै इदयं यदि-बिष्टं। द्वेवानां चच्चरति प्राणचेन तस्मे च देवि वषद्ख तुष्वम्^(९)'' दति । 🕏 पृचिवि, 'उत्तानावै' (ऊर्द्धाभिमुखेनाविस्त-तायाः) तव 'इदयं' (इदयसदृष्ठं) 'द्यत्' (खननस्तानं) 'विसिष्टं' (विश्वेषेषास्पीद्यतं), तत् खनमस्वानं 'वायुः' 'सं'-'दधातु' (हलादि-पूर्णमस्तिनानेन जलप्रकेषेण वायुर्वधापूर्वे सम्यक् करोतः)। को हुओ वायुः ?—'मातरिशा' (मातरि श्रन्तरिखे सर्वप्राणिनाम् रयत्तापरिच्छेदकारिणि बेतेऽवितष्ठते इति मातरिया) ; यो वायुः 'देवानां' 'प्राष्ण्येन' (प्राण्भावेन) 'चर्ति' (व्यवदर्ति) । हे 'देवि'

(पृचिवि), 'तुभ्यं', 'तस्मैं' (वायवे च) 'वषस्तु' (इदं हषसहितं जसं ऋतमस्तु)।

स्रमेन मन्तेष साधं जलप्रचेपं विधत्ते,—"क्रूरमिव वा स्रसा एतत् करोति यत् खनत्यप उपस्रजत्यापो वै स्नानाः शानाभि-रेवास्य ग्रुच् समयित" (५।१।५ त्र०) द्दति । अप्रदेशं खन नीति यत्, तदेतत् पृथियाः 'क्रूरम्' एव 'करोति' दति, इसादि-क्येदवत् यथाहेत् लात् । तत्कीर्यपरिहाराय स्त्रखननप्रदेशे स्रपे।ऽवनयेत्। 'स्नापः' च श्रीतस्रलेन 'श्रान्ताः', एतादृश्रोभिरेव स्रसः पृथियाः खननजन्यं श्रोकं 'श्रमयित'।

मन्ते देवतान्तरपरित्यागेन वायुक्यने प्रयोजनमाइ,—"धन्ते वायुर्मातिस्या दधातित्याइ प्राणो वे वायुः प्राणेनेवास्ये प्राण्ट्र धन्दधाति" (५।१।५%) इति। वायोर्देवप्राण्लात् तेनेवास्याः पृथियाः प्राण्यनन्थानं सन्यद्यते।

पुनरिप वायोरन्यत्प्रयोजनमाइ,—"मने वायुरित्याइ तसा-दायुप्रचुता दिवे दृष्टिरीर्ने" (५।१।५ प्र•) दति । यसात् प्रयोजनान्तरमिप विविचतिमिति वायुग्रब्दः प्रयुक्तः, 'तस्नात्' एव कारणात् 'दृष्टिः' 'दिवः' सकान्नात् 'वायुप्रचुता' सती प्रवर्त्तते।

मन्त्रस्य चतुर्घपादे वषद्श्रन्दानागंतेन षद्श्रन्देन सारिताम् स्तुसङ्घामुपत्रीय प्रशंसति,—"तसी च देवि वषड्स्त तुम्धिम-त्याच षड्वा स्थतव स्तुम्बेव दृष्टिं दधाति तसात् सर्वान् स्ट्रान् वर्षति" (५।९।५ श्र॰) दति । श्रनामातपाठानुसारेण वकारम-भुपेत्य 'षड्वा स्थतवः' दति व्यास्थातम् ।

श्रय ज्ञाखान्तरपाठानुमारेण वकारं परित्यज्य व्याचष्टे,— "यदषट्कुर्याद्यातयामास्य वषद्कारः स्थाद्यन्न वषट्कुर्याद्रचा शि यज्ञ इन्युर्वेदियाइ परोचमेव वषद्भरोति नास्य यातयामा वषद्वारी भवति न यज्ञः रचाः सि प्रन्ति" (५ १।५ म ०) इति। श्रवेदं चिन्तनीयम्। किमस्मिन् मन्त्रे वषट्श्रब्दः प्रयोक्तयः, न वा ? इति । नाद्यः, ऋषैव वषद्वारस्य प्रयोगे सति गतसारस्वेन वच्छमाणवायय-पश्चादे। वषद्वारासभावप्रसङ्गात्। न दितीयः, वज्ररूपस्य वषद्वारस्थाभावे रचेाभिर्धश्चरननप्रमङ्गात्। तदोषदय-परिचाराय षकारं परित्यच्य 'वड्.' इत्येवं ब्रूयात्, तथा मति ववट्कारस्य सम्पूर्णसानुकलास्य गतशारत्यम्। एकदेशसीकतास्य यज्ञघातोऽपि। तदेवं ब्राह्मणेनेव पाठविकस्पस्य स्थास्त्रातला-सिर्धकाम्यप्रयोगविषयतया पाठदयं व्यवस्थापनीयम् ।

कस्यः, 'समुद्यस्य क्षच्याजिनस्थान्ताम् सुजाता च्यीतिवा सहेति चैमिष मैाच्चेनार्कमथेन वा दाखोपनच्चति' इति। प ठस्तु,— "सुजाता च्योतिषा सद ग्रर्भ वरूचमा-सदः सुवः। वासे त्रग्ने विश्वहपर् मं व्यवस्व विभावमे। (१)" दति। हे 'त्रग्ने', 'सुजातः' (सुष्टूत्पन्नः) लं, 'च्यातिषा' (लदीयेन च्यातिषा) 'सन्द' 'नर्म' (सुर्ख) यथा भवति, तथा 'सुत्रः' (स्वर्गमदृत्रां) 'वरूषं' (कृष्णा-जिननिर्मितं ग्टइम्) 'त्रा-सदः' (प्राप्नुहि) । हे 'विभावसा' (विभैव दीप्तिरेव वसुर्धनं र यसासी विभावसुः) तादृष्त हे 'त्रप्रे', 'विश्व-

^{*} वसु धनं इति पाठा भवितुं युक्तः।

रूपं' (बद्धप्रकाररूपं) 'वासः' (क्वच्याजिनरूपं वस्तं) 'सं-व्ययस्व' (परिधन्स्व)।

तमेतं मक्तं विनियुक्को,—"सुजाती च्योतिषा षहेत्यनुष्टुभी-प्प-नद्मात्यनुष्टुप् धर्नाणि कन्दाशसि कन्दाशसि खबु वा सम्रोः प्रिया तनुः प्रिययेवेनं तनुवा परि दधाति" (५।१।५, ११०) रति । सुत्यन्तरे 'वाम्या सनुष्टुप्' रत्युक्तवात् वाग्हारा धर्व-च्छन्दोक्रपत्मम् । भाखान्तरे स्थाधानप्रकरणे, 'या ते सम्रो पद्मुखु पवमाना प्रिया तनुः' रत्यारभ्य, 'या गायचे या चेष्टुभे या जागते' रति कन्दःसु प्रियमरीरावस्त्रानकथनाच्छन्द्रशामिन्न-प्रियमरीरत्वम्, स्रतः 'प्रिया' एव, सन्या सनुष्टुष्कपद्या 'तनुवा' परिधानं क्रतवान् भवति ।

एतदेदनं प्रशंपति,—"वेदुका वासा भवति च एवं वेद" (५।१।५ भ०) इति । 'वेदुकः' (साभन्नीसः) 'वासः' प्रति 'भवति', एतदेदिता वस्त्रं प्राप्नोतोत्यर्थः ।

कचाः, 'खदुत्तिष्ठ खध्वरोद्धं जाषु ण जातय इति सावित्रीभ्यामुत्तिष्ठिति' इति । तथोः प्रथमामान्ड,—"खदुत्तिष्ठ खध्वरावा ने।
देशा कपा । दृष्ठे च भासा बृन्दता सुग्नुकानिराऽऽग्ने वान्ति
सुन्नसिभः(९)" इति । दे 'त्रग्ने', 'खध्वर' (सुन्नु बागनिर्वाह्न),
'खदुत्तिष्ठ' (खत्तिष्ठैव), उत्थाय च 'नः' (त्रसान्) 'देशा कपा'
(देवनसभावया कोड़ापरया कपया) 'त्रव' (पास्त्रय) । हे 'त्रग्ने'
'बृन्दता' 'भासा' (प्राह्नेन तेजवा) 'सुन्नुकानः' (सुन्नु ग्रुज्यां रभीनां
विनता थः, से।ऽयं सुग्नुकानः, तादृग्नः) सन्, 'सुग्नसिभः'

(ब्रोभनकी र्पिभः यह) 'दृबे' (सर्वैः प्राविभिद्रेष्ट्रुम्) 'वा'-'याहि'।

श्रथ दितीयामारु,—"ऊर्ड ऊषु ष ऊतये तिष्ठा देवो म स्विता। ऊर्डे वाजच्य स्विता यदिश्वभिनंषिक्विंक्वयामरे(*)" दित। हे त्रग्ने, 'नः' (श्रक्षाकं) 'ऊतये' (रचषाय) 'ऊर्ड ऊषु' 'तिष्ठ' (ऊर्ड एव सन् त्रविक्षिते। भव)। क दव?—'देवे। न स्विता' (यथा स्विता देव ऊर्ध्व एव सन् श्रक्षान् रचित, तदत्)। यस्तम् 'ऊर्डः' स सं, 'वाजच्य स्विता' (श्रम्य दाता भव)। 'यत्' (यसात् कार्षात्) 'श्रक्षिभः' (मन्त्रादिभिर्यक्षकः) 'वाषिक्वः' (इय्यवादकेर्ष्ट्विग्भिः) 'वि-क्ष्यामरे' (वयं तां विविधमाक्क्यामः)। तस्मादुर्ज एव तिष्ठेति स्वनान्त्रयः।

एतकान्त्रदयं विनियुष्के,—"वार्णा वा श्राम्यम् छदुतिष्ठ खध्वरार्ड जपु च जतय इति मविनीभ्यामुन्तिष्ठति स्विद्धप्रस्त एवाच्यार्डां वर्णमेनिमुत्कृत्रित" (५।१।५%) इति । चाऽवं
श्रामः श्रव क्षणाजिनेनापनिषद्धः, वाऽयं वार्णः, (छपद्रवकारिणे वर्णधानः) । श्रतस्त्यिर्द्धाराय स्विद्धिक्तकाभ्याम्
एताभ्याम् श्रम्भां बद्धमित्रं इस्ते ग्रहीला उन्तिनेत् । दितीयमन्ते,
'देवा न स्वता' इत्युक्तलादेते साविश्या, एताभ्यामुत्याने स्ति
स्वित्तन्त्रातः 'श्रद्ध' (श्रग्नेः) 'वर्णमेनिं' (वर्णकतां बःधां)
परिद्रति ।

मक्कदिलं प्रशंवति,—"दाश्यां प्रतिष्ठित्ये"(५।९।५%) इति। कच्यः, 'स काता सभी असीति इरति' इति। पाउन्छ,— "स जाता गर्भा त्रिस रादिखारग्ने चार्दिस्त श्रोषधीषु। चिनः विग्रः परि तमा एसकः प्र माहभ्या श्रिध किनकदद्गः (१)" इति। हे 'त्रग्ने', 'स' लं चावाष्टियोः 'गर्भः' सन् इदानीं 'जातः' 'त्रिस', कीदृशस्तं?—'चारः' (पूजनीयः), 'त्रोषधीषु' 'विस्तः' (भुज्य-मानाखोषधीषु उदराग्निरूपः सन् विश्लेष पोषितः), 'चिनः' (मानावर्णाभिकांखाभिविंचिन्द्रपः), इदानीमृत्पन्नलात् 'त्रिष्ठः', 'तमांसि' 'परि'-'त्रकः' (परिच्नुंमभियकः)। तादृशस्तं, 'माहभ्यः' (त्रोषध्ये) 'त्रिध-किनकदन्' (त्रिधकं कन्दन्) 'प्र'-'गाः' (प्रकर्षेष गच्छ)। यथा लोके श्रिश्रमातरमुद्दिस्त कन्दन् स्वस्ते गच्छिति तदत्।

श्रस्य मन्त्रस्य प्रथमपादेऽभिष्टितद्यावाष्ट्रियोगर्भतं विश्वद-चित,—''स जाते। गर्भी श्रिस रोदस्थोरित्याष्ट्रेमे वै रोदसी तथे।-रेष गर्भी यद्ग्रिससादेवम्। हः" (५।१।५ श्र.०) इति । 'इमे' (द्यावाष्ट्रिय्यो) एव रोदःशब्दाभिधेये, तथे। मध्ये समुत्यस्रतात् तद्गर्भस्तं, यसादेवं, 'तसात्' मन्त्रे। युक्तमेव 'श्राष्ट'।

दितीयपादे, 'विस्तसादः' इतिपदयोर्निमित्तनैमित्तिकभावेन श्रम्ययं दर्शयति,—"श्रम्ने पादर्विस्त श्रोषधीव्यित्याद्व यदा ह्येतं विभरन्यय पादतरे। भवति" (५।९।५ श्र॰) इति । यसिन् काले जठरे प्रविष्टा श्रोषधयः एतमुदराम्निं विश्रेषेण पोषयन्ति, तदानीम् श्रयम् श्रमिः 'चादतरः' (पटुतरः) भवति।

चतुर्घपादे, 'प्र मालभ्यः' इत्येतस्य तात्पर्ये दर्भयति, — 'प्र मालभ्ये। प्रिकानिकदद्वा इत्या है। प्रध्ये। वा श्रस्य मातरस्ताभ्य एवैनं

प्रचावयित" (५।९।५ छ ॰) इति । छोषधीनाम् उक्तरीत्याः जाठराग्निजनकवानाक्वम्, चतो मानर्घमेवैनमग्निं प्रकर्षेण नम-यति । खत एवाक्तरच 'शेषधयः प्रतियद्वीत' इति मन्त्रेण श्रोषधीषु स्वापनं वियास्त्रति ।

कच्यः, 'खिरो भव वीद्यक्त इति गर्दभस्य पृष्ठ श्राद्धाति' इति। पाठस्त,—"सिरो भव वीद्यक्त श्राद्धभैव वाञ्चवंग्। पृषुभंव स्वदस्त्तमग्नेः पुरोषवाद्यः (१)" इति। श्रग्नेद्वेतभ्रतं पुरीषं
यो गर्दभो वद्दति, तादृश्च हे गर्दभ, (इर्थति गच्छतीति यवा)
हे 'श्रवंग्' (गमनकुष्रक्त), त्वं 'खिरः' (चलगरहितः) 'भव';
'वीद्यक्तः' (दृद्कायः), 'श्राद्यः' (वेगवान्), 'वाजो' (श्रवहेत्य)
'भव'। तथा 'पृथुः' (विस्तीर्णपृष्ठः), 'सुषदः' 'श्रग्नेः' (सुस्तासनस्त्र)
'भव'।

तमेतं अन्तं विनियुद्धे,—"खिरो भव बीष्ट्रप्त रित गर्देभ पाबादयति सम्मायवेनमेतया खेषे" (५।९।५१०) इति । गर्दभक्षोपिर खेर्थार्थम् 'एतया' ख्या 'एनम्' प्रग्निं मन्यक् बद्धवान् भवति । स्रग्निक्षा स्टत् यथा भूभी न पतित, तथा खापनीया ।

गर्दभस्थापनं प्रशंसित,—"गर्दभेन सम्भरित तसास् गर्दभः पनूनां भारभारितमः" (५।१।५ च ०) इति । चसादच बली-वर्दादीन् चनाहृत्य गर्दभेनैव स्टदं वाइयन्ति, 'तसात्' खेरिय नवादीनां पन्नूनां मध्ये गर्दभ एव 'भारभारितमः' (वेरद्वी

^{*} स्यिति इति पाठा अवितुं युक्तः।

द्रथाविश्वेषा भारः, तं भरति धारयतीति भारमारी, श्रतिश्रयेन भारभारी भारभारितमः) ग्रीढ्भारं वहतीत्वर्थः ।

प्रकाराकारेण तदेव प्रश्नंगति,—"गर्दभेन सभारति तसार् गर्दभीऽप्यनालेशेत्यन्यान् प्रमुत् मेद्यत्यक्षः हिनेनार्कः सभारति"" (५।९।५%) इति । यसात् 'एनेन' (गर्दभेन) 'श्रकें' 'श्रक्नं' 'समारति'। यागदारा श्रक्षहेतुलादियं स्टदेवास्तं, तस्यार्चनीय-लादकंश्रव्दाभिधेयलम् । यसादचास्तं वहति, तसाक्षोके गर्दभो भच्छास्पलेऽपि श्रन्यान् पश्रून् श्रतिक्रम्य मेदस्वी भवति। 'श्रमा'-श्रव्दो वर्णविकारेणास्रवास्ते, तस्य स्थाऽन्यलम् । जीर्णतुषष्टसादि-भच्छोमेव गर्दभो जोवति, न तु बसीवर्दाश्रादीनामिव तत्त्रत्कास्ते घृततेसादिपानं वा स्थक्षकुलत्यादिसाद्यभच्छां वा तस्यास्ति; तथापि मेदस्वलम्; एतदस्रसभरणाक्षभते।

पुनरिप प्रकाराक्तरेण तदेव प्रशंसित,—"गर्दभेन सम्परित तसाद् गर्दभी दिरेताः सन् किनष्ठं पश्चमां प्रजायनेऽग्निश्चंस्य योनिं निर्देशितः" (५११।५ श्व०) दित । यसाद्परि धार्यमाले स्ट्रूपः 'श्विः' 'श्रस्थ' गर्दभस्य प्रजात्पादनसामधें निर्देग्धं करोति, 'तसात्' स्रोक्ते 'गर्दभी दिरेताः' श्विप 'सन्' 'पश्चनां' मध्ये 'किनष्टम्' श्वपस्यस्त्यादयित । श्वश्चादिवद्षष्ठमूस्थानर्थनात् किनष्टसम् । गर्दभस्य स्वकीयं रेत एकम्, श्वश्वतरस्य रेता दितीयिमिति दिरेतस्यम् । एतत्र सप्तमकाण्डे स्पष्टमास्नात्म,—"तासां परि-गृश्चीतानामश्वतरे। ऽत्यप्तवर्चतंत तस्यानुष्टाय रेत श्वाद्त्त तद्वर्दभे-

^{*} सम्भद्गतः इति । पु॰ पाठः।

ऽन्यमार्द तस्माद्गर्दभा दिरेताः" (१।९ घ॰) इति । यद्यपि कनिष्ठी-त्यादनं निन्दाहेतुः, तथायग्निभरणस्य सिङ्गलेन प्रत्रंसेव सम्पद्मते। कल्पः, 'शिवो भव प्रजाभ र त्यादितमसिमन्त्रयते' र्ति। पाठस्त,—"त्रिवा भव प्रजासी सान्षीश्यस्त्रमिष्टरः। द्यावाष्ट्रचिवी त्रभि ग्रुद्युचे। मान्तरिषं मा वनस्रतीन्^(०)" इति । चित्रिरोभिर्च्छविभिः पूर्वे सम्पादिततादङ्गसाष्ठवादा त्रयमिशः त्रक्तिरा: । हे 'त्रक्तिरः' त्रग्ने, लं 'मानुषीसः' 'प्रजास्यः' 'त्रिवः' (ज्ञानः) 'भव'। किञ्च द्यावाष्ट्रिय्यो 'त्रभि'-लच्य 'मा' 'त्रूग्रुचः' (ग्रे। कं सन्तापं मा कार्षीः)। तथा 'त्रन्तरिचम्' 'त्रिभ' 'मा' 'श्रृद्धचः' । तथा 'वनस्पतीन्' 'श्रभि' 'मा' 'श्रृद्धचः'।

प्रजानामर्थे भिवा भवेत्युकाचाः शान्तेः प्रसङ्गं दर्भवति,— "प्रजासुवा एष एतर्छ। रूढ्: य ई. यर: प्रजा: ग्रुचा प्रदृष्ट: बिवा भव प्रजाभ्य इत्याच प्रजाभ्य एवेन र बमयति" (५।१। ५ %) इति । यदा श्रयमग्निः गर्रभमारी इति, 'एतर्षि' (एतसिन् काले) 'एषः' ऋग्निः 'प्रजासु' एव 'श्रारूढ्ः' भवति । गर्दभस्र प्रजाना:पातिलात्, मनुष्यवचेतनलेन प्रजापतेदत्पञ्चलात् तदनाः-पातिलम्। ततः प्रजाखारूहोऽग्रिस्ताः 'प्रजाः' समापेन प्रदर्भुं समर्थः स्थात्। तस्यात् 'श्रिवा भव'-मन्त्रपाठेन प्रजार्थम् एनम् श्रीं भानं करोति।

तस्य मन्त्रस्य दितीयपादे 'मानुषीम्थः' इति विश्रेषणं मनूत्या-दितस्गमवादिकत्त्व वजाविषयम्-इत्येतद्वर्षयति,---"मानुषीश्यस्त-मक्तिर दत्याच मानची हि प्रजाः" (५।९।५ च ०) दति।

यथा प्रथमार्द्धे चेतनविषया ज्ञानिः प्रार्थिता, तथे। तर्द्धे - ऽप्यचेतनविषया ज्ञानिः प्रार्थिता-द्रत्येतद्र्वयित,—"मा द्यावा-प्रथिवी ज्ञाभ पूर्धे मान्तिः द्वं मा वन स्पतीनित्यादेश्य द्वेनं क्षोकेशः ज्ञमयितः" (५।९।५ %) द्वि।

कर्यः, 'प्रेतु वाजी कनिकददिति तिस्विभिरत्वरमाणा अश्व-प्रथमाः प्रत्यायन्ति' इति । तत्र प्रथमामाइ,—'प्रेतु वाजी कनिकदत्रानदद्रासभः पत्ना । भरत्रश्चिं पुरीखं मा पाद्यायुवः पुरा(म)' इति । त्रयं 'वाजी' (तुर्गः) 'कनिकदत्' (हर्वेश्व हेवाश्रस्तं कुर्वन्) 'प्रेतु' (प्रथमं गच्छत्) । श्रथ 'रासभः' (गर्दभः) 'नानदत्' (हर्वेण बन्दं कुर्वन्) 'पत्ना' (गमनश्रोक्षः), 'पुरोखम्' श्विष्ठं दाहकं भरत्रपि स्वकीयात् 'श्रायुवः पुरा' 'मा पादि' श्रपसत्युना स्वतो मा स्वत्।

भय दितीयामार,—''रासभी वां कनिकदत् सुयुक्तो त्रवणा रखे। स वामग्रिं पुरीयं माग्नुर्दूती वहादितः(ट)'' इति। हे 'कृषणा' (सेचनसमधीवयगर्दभी), 'वां' (युवयोः) मध्ये 'रासभः' (गर्दभीऽयं) 'कनिकदत्' (हवेंण स्वतं कीड्यन्") 'रघे' 'सुयुक्तः' (रचसदृत्रे स्टद्वारे सुष्टु प्रयुक्तः)। ''वां' (युवयोः) मध्ये 'स' (तादृशः) गर्दभः 'दूतः' (राजप्रेषितदूत्वत्) 'चाग्नुः' (जोचगामी सन्) 'इतः' (चलात् स्वानात्) 'पुरोखम्' 'चग्निं 'वहात्' (वहत्)।

श्रय बतीयामाइ,—"वृषाग्निं वृष्णं भर्त्रपां गर्भे समु-

^{*} क्रम्दयम् इति च्यादर्भ्रमुक्तकपाठः ।

द्रियं। श्रग्न श्रा याचि वोतय चत्र सत्यम् (१०)" इति ! 'त्रवा' (वर्षके सेचने समर्थः) गर्दभः, 'दृषणं' (फलाभिवर्षक्समर्थम्) 'श्रुग्निं' 'भरन्' (वचन्) गच्छिलिति ग्रेषः । कौदृन्नमग्निम्?— 'त्रपां गभें' (सेच स्त्रानां जलानां सध्ये विशुद्रूपस्), 'समुद्रियं' (समुद्दे वज़वाग्निक्पेणेत्पन्नम्)। तादृश हे 'श्रग्ने', 'वोतये' (प्र-जननाद्यर्थम), 'स्रतं सत्यं' च गला 'श्रा'-'याहि'। ऋत-सत्य-प्रस्तानां सम्बन्धान्ताणानुसारेण द्यावाष्ट्रियो विवक्ति । प्रवस्त साविनः क्रयादिफलचेतुलात् पृथिया ऋतलम्। ऋवस्य-भाविनः कर्षाप्रसम् चेतुलात् खर्गस्य सत्यलम्।

तच प्रथममन्त्रस्य प्रथमपादे, वाजीशब्देनाश्ची विविचत:-रह्येतद्रभ्यति,—"प्रेतु वाजी कनिकददित्याद वाजी द्वोषः" (४।१।५ % ०) इति। इशब्देन कीकप्रसिद्धिर्द्शिता।

दितीयपादे, गर्भभव्दपरित्यागेन रायभव्यप्रयोगः ऋषि-व्यवदारानुषारी-इहोतद्र्यति,--''नानदद्रासभः पत्रेत्वाद रासभ इति द्वीतम्हषयोऽवदन्'' (५।१।५% ०) इति।

क्ष्तीयपादार्थे प्रत्यचप्रसिद्धिं दर्भवति,—"भरस्रग्निं पुरीय-मित्वाग्निष्ट **द्योप भ**रति" (५।१:५ ख ०) दति।

चतुर्थपादे, म्रश्निवहनप्रयुक्तापस्त्युपरिहाराय म्रायुः-प्रार्थनं दर्भवति,—''मा पाचायुषः पुरेत्वाच चायुरेवास्मिन् दथाति तसाच् गर्भः सर्वमायुरेति तसाद्वर्यभे पुराऽऽयुषः प्रमीते विभाति" (५।१।

^{*} हतीयपादे चित्रवादाप्रसिद्धिमिति B. पु. पाठः । हतीयपादे चतिप्रसन्द्रमसिद्धिमिति J. प्॰ पाठः।

भूत्र) इति । यसात् त्रनेन मन्तेण त्रायुः स्वापितं, तसात् चणादिदुरा हारं * भचयन्नपि गर्दभोऽत्रवच्कू लादिना न सियते. किन्तु मर्वमायुरेति । यसाच गर्दभस्य मर्वायुः प्राप्तिः स्वाभा-विकी, 'तसात्' केकि तिर्यम्विषये वैद्यशास्त्रपिद्धात् त्रायुषः 'पुरा' (कदाचित्) त्रकसात् 'गर्दभे' स्ते सति जत्याते।ऽयिनित प्रजा 'विभ्वति' ।

स्तीयमन्त्रस्य प्रथमपादे, गर्रभस्यापत्येात्यादकलेन दृष्त्वम्, श्रग्नेः फलाभिवर्षकलेन दृषलं प्रसिद्धम्-इत्तेतह्र्ययित,—"दृषाग्निं दृषणं भरत्रित्याच दृषा च्रोष दृषाग्निः" (५।९।५%०) इति।

दितीयपादे, वैद्युतक्षेष जलगर्भलमग्नेः प्रसिद्धम्-इति दर्शयति,—''श्रपां गर्भेश्र समुद्रियमित्याद्यापाश्र द्वीव गर्भे। यद्ग्रिः'' (५।९।५ श्र०) दति।

ह्नतिथपादे, 'वीतये' इतिशब्देन प्रजननाद्यर्थः साचादिव-चितः, द्यावाष्ट्रियोर्वियोगस्त श्रिश्चितप्रजननार्थः-इत्येतद्भि-प्रायं दर्शयित,—''श्रग्न श्रा यादि वीतय इति वा इमी खोके। धेतामग्न श्रा यादि वीतय इति यदाद्यानयोर्जीकयोर्विये'' (५।९।५ श्र॰) इति। पुरा द्यावाष्ट्रिय्याखी 'लोकी' एकीभाव-भापकी सन्ती यदा वियुक्ती भवतः, तदानीम् श्रावयोर्भध्ये प्रजननाद्ये हे 'श्रग्ने', सम्-'श्रा'-'यादि' इत्यनेनाभिप्रायेख श्रिश्चतप्रजननादियापार्खावकाशं दातुं वियुक्ती श्रक्षतां।

^{*} तुषादिदुराचारमिति B. पु॰ पाठः।

तसादयं मन्त्रः प्रजननाद्यर्थमन्यागमनं वदन् तदवसाम्रप्रदाखी-धीवाष्ट्रिक्यीर्वियोगाय सम्बद्धते ।

त्रस्य मक्तस्य चरमभागे गक्तस्य निर्दिष्टयोर्ष्टतस्ययो-सात्पर्ये दर्शयित,—''प्रच्युते। वा एव त्रायतमादगतः प्रतिष्ठाष्ट्र स एतर्ष्ठाध्यपुंद्ध यजमानद्ध ध्यायत्यृत्रष्ट्र सत्यमित्याद्वेयं वा स्तमसे। सत्यमनयोरेवेनं प्रतिष्ठापयित नार्त्तिमार्ष्क्रत्यध्यपुंनं यजमानः" (५।९।५%) द्रति। एषेऽग्निः सननप्रदेशात् स्वकीयात् 'त्रायतनात्' 'प्रच्युतः' श्रन्यचापि न कचित् प्रतिष्ठां गतः ; 'सः' श्रिप्तिराम् काले कुपिते। ८ ध्युयजमाने। इन्तुं 'ध्यायित', श्रते। इस्त्रं स्वायश्रद्धे। प्रतियुक्ते। प्रतिष्ठार्थे द्यावाष्ट्रियवीविवचया मन्त्रे श्रतस्यश्रद्धे। प्रतियुक्ते। तेन श्रन्योर्ष्ट्रोक्यविवायोग्याद्यपुर्वेयजमाने। न विनम्नतः।

कच्यः,—'जत्तरेष विदारं परित्रित श्रोषधयः प्रतिग्रहोताग्रिमेतिमित दाभ्यामेषधीष पृष्यवतीषु फलवतीषूपावद्दति'दति।
तत्र प्रथमामादः,—''श्रोषधयः प्रति ग्रिहोताग्रिमेतः श्रिवमायन्तमभव युगान्। यद्मन् विश्वा श्रमतोर्रातीर्विषोदन्नो श्रप दुर्मेतिः इनत्^(११)" दति। हे 'श्रोषधयः', 'श्रन' (श्रिक्षान् परिश्रिते देशे) 'युग्नान्' श्रभिमुखीक्तत्य 'श्रायन्तम्' (श्रागक्कन्तं) 'श्रिवं' (श्रान्तं) 'एतम्' श्रिग्नं 'प्रति'-'ग्रहीन' (खीकुद्त)। श्रयं वाग्नियुगास 'निषोदन्' 'नः' (श्रस्माकं) 'दुर्मितम्' 'श्रप'-'इनत्' (प्रमादासस्मादियुक्तां बुद्धिं 'श्रपद्दनत्' श्रपद्दत्तः)। किं कुर्वन् ?— 'विश्वा' 'श्ररातोः' 'श्रमतीः' 'यस्मन्' (श्रषुसमाना रेगिजनिता वाधाः सर्वाः परिद्दन्तः)। श्रघ दितीयामाइ,—''श्रोषययः प्रति मीदध्यमेनं पुष्पावतीः स्विपिप्पलाः । श्रयं वे। गर्भ ऋत्वियः प्रत्नः सधस्यमासदत् (१२)'' दिति । 'पुष्पावतीः' (प्रश्रसपुष्पोपेताः), 'स्विप्पलाः' (श्रोभन-फ्लोपेताः) हे 'श्रोषधयः', 'एनम्' (श्रिग्धं) 'प्रति' 'मोदध्वं' (इष्टा भवत)। 'श्रयम्' श्रिगः 'वः' (युश्चाकम्) 'स्वियः' (स्तु-कालीनः) 'गर्भः' भ्रता 'प्रत्नं' (पुरातनं) 'सधस्वं' (गर्भयोग्यं स्थानम्) 'श्रासदत्' (प्राप्तवान्)।

त्रय प्रथममन्त्रप्रथमपादे त्रोषिधप्रतियष्ठणप्रार्थनया स्वितां वृद्णत्रान्तिं द्र्ययित,—''वर्षो वा एव यजमानमभेति यद्ग्नि-रूपनद्ध त्रोषधयः प्रतिग्रकीताश्चिमेतिमित्याष्ठ श्वान्ये" (५।१। ५%) द्रति। कृष्णाजिने बद्धो थोऽग्निः, स एव बन्धकेन वर्ष-पान्नेन युक्तवात् 'वर्षः' सन् 'यजमानम्' 'त्रभि'-खव्य बाधितुम् श्वागक्षति। श्वतस्तक्कान्यर्थम् त्रोषधीभिः प्रतियष्टः।

हृतीयपादे, श्ररातिश्रब्देन राष्ट्रसाः स्विताः-इति दर्शयित, — "ब्रह्मन् विश्वा श्रमतीर्रातीरित्याः रचसामपद्यी" (५।१। ५ श्र ॰) इति ।

चतुर्धपादे, दुर्बे द्वपिकारोऽनुष्ठानप्रतिष्ठार्थः-दति दर्बे-चित्र,—"निषीदं ने। श्रप दुर्मिति ए क्वदित्याक प्रतिष्ठित्यै" (५।९।५% ०) दति ।

दितीयमक्तप्रथमपादे, श्रोषधिप्रतिमे।द्पार्धनया जाउराग्नि-मस्दृद्धि:-इत्येतद्रश्चयित,—"श्रोषधयः प्रति मोद्धमेनमिखा-है।वधयो वा स्रग्नेभागधेयं ताभिरेवेन समर्क्ष्यति"(५।९।५ प॰)

K

रति। 'त्रेषधयः' त्रस्क्षेष जाठराग्नेर्भागः, पुराडात्रक्षेषाग्ने-र्देवतायाः भागः, त्रतः त्रोषधिस्तापनेनाग्निदयगर्द्धः।

दितीयपादे सुपिष्णसम्दतात्पर्ये दर्भयति,—"पुत्र्यावतीः सुपिष्णसा दत्याच तसादे। वभयः फसं रटक्रिनः" (५१९।५१०) दति। यसादम 'सुपिष्णसा' दत्युक्तं, 'तस्रात्' खे।केऽपि 'म्रोष-धयः' खकाखे ममूर्णे 'फसं रटक्रिन'।

दितीयाई 'सधस्थमासदत्' इत्यस तात्पर्ये दर्भयति,—"सर्थं वी गर्भ ऋतियः प्रवः सधस्त्रमासदित्याः चाभ्य एवेनं प्रचावयति तास्त्रेवेनं प्रतिष्ठापयति" (११९१५ %) इति । स्त्-स्वनम्ध्रमी पूर्वमृत्पन्नाभ्या 'याभ्यः' श्रीवधीभ्यः प्रचाय श्रयमग्नि-रानीतः, तम् श्रग्निम् स्वपावद्यस्यप्रदेशे 'तासु एव' श्रीवधीषु स्वापितवान् भवति ।

'श्रोषधयः प्रतिग्रङ्गीत' रत्यादिकं मन्त्रदयं विनियुद्धे,— "दाश्यामुपावहरति प्रतिष्ठित्ये" (५।९।५%) दति।

श्रव विनियोगसङ्गुद्धः,—

मं, खत्सनेऽपो निनयेत्, सुजाती, इतवन्धनम् । उदु-दाश्यां समुत्याय, स जातस्वाहरेन्गृदम् ॥ स्थिरो, गर्दभ त्राधाय, त्रिव, त्राहितमन्त्रणम् । प्रेतु-चिभिः त्रनेयाति स्रोत-दाश्यामिमां खदम् ॥ छपाहरेदेशपधीषु मन्त्रा दादत्र वर्णिताः ।

रति श्रीबायनाचार्यविर्चिते माधवीये वेदार्थप्रकामे क्रण्ड-वकुः बंदिताभाव्ये चतुर्थकाच्ये प्रथमप्रपाठके चतुर्थाऽनुवाकः ॥ •॥ वि पार्त्रसा पृष्ठुना श्राश्चेषानो बार्धस्व दिवा रुष्ठ-सो अमीवाः। सुश्रमेणा टह्नः श्रमेण स्याम् मे-रुह्थ सुहवस्य प्रणीता (१)। श्रापो हि हा मंग्रे सुद्र-स्ता न जुर्जे देधातन। सृष्ठे रणीय चर्छसे (१)। या वंश् श्वितमे रसस्तस्य भाजयते ह नः। दुश्तीरिव मा-तरं (१)। तस्ता अर्जनाम वे। यस्य ध्वयाय जिन्धेष्ठ। श्रापी जनयेषा च नः (४)। मिचः॥१॥

स्रस्त्रं पृष्टिवीं सूर्मिच् ज्योतिषा सह। सुन्नातं जातवेदसम् विश्वान् रं विभुम् च्याद्यायं त्वा सर-स्रंजाम प्रजार्थः। विश्वे त्वा देवा वैश्वान् राः सर-स्रंजनवाऽ नृष्टुभेन छन्दे साऽक्रियुखत् । ब्रह्मः सम्भृत्यं पृष्टिवीं बृह ज्ञ्योतिः समीधिरे। तेषां भान् रंजस् पृष्टिवीं बृह ज्ञ्योतिः समीधिरे। तेषां भान् रंजस् दृष्णुको देवेषु राचते (०) सरस्र ष्ट्रां वस्त्रेभी बृहै धीरैंः क्रम्प्यां सदं। इस्ताभ्यां सृदीं कृत्वा सिनीषासी के-रातु॥ २॥

तां(ः)। सिनि]वाली स्वप्दी संकुरीरा स्वीप्रशा सा तुर्श्यमदिते मह श्रोखां देधातु इस्तेथाः(८)। जुखां करातु शक्त्या बाहुभ्यामदितिर्धिया। माता पुषं ययोपस्ये साम्निं विभक्षे गभ श्रा(१०)। मुखस्य शिरी-ऽसि(११) युश्वस्य पृरे स्थंः(१९)। वस्तेवस्ता क्रस्तनु गायु- नेष् इन्द्ंसाऽकिर्खत् र्षिष्ट्यसि(११) ह्ट्रास्ता हस्यन्यु षष्टुभेम् छन्दंसाऽकिर्खदुन्तरिक्षमसि(१४)॥ ३॥

श्रादित्यास्त्री हस्तन् जागेतेन इन्दंसाऽकिर्स्वद् धौरंसिः(१६) विश्वं त्वा देवा वैश्वान्ताः हस्त्वन्वानुष्टु-मेन इन्दंसाऽकिर्स्वहिश्रोऽिस भ्रुवासि धार्या मिर्य प्रजार रायस्पोषं गौपत्यः सुवीर्यः सजातान् यर्जमा-नाय(१९) श्रदित्ये राखासि(१९) श्रदितिस्ते विश्वं यञ्चातु पाङ्क्तेन इन्दंसाऽकिर्स्वत्(१६)। श्रुत्वाय् सा मद्यो-मुखां मृक्यर्थी योनिम्प्रये। तां पुचेभ्यः सम्प्रायं श्रु-दितः श्रुपयानिति(१८)॥ ४॥

मिनः। करोतु। श्रन्तरिक्षमित्। प्र। श्रन्तारि श्रभ्॥ इति तैत्तिरीयसंहितायां शतुर्थकार्ये प्रथम-प्रपाठके पश्चमाऽनुवाकः॥ ०॥

चतुर्थानुवाके खदाइरषमुक्तम्। यथ पश्चमे उखानिर्माषमुचते। कच्यः, 'वि पाजविति विखयः' इति। पाठसु,—"वि
पाजवा प्रथुना त्रीग्रुचाना वाधस्व दिवा रच्छा ग्रमीवाः।
स्वर्मणे बृहतः त्रमीण स्थामग्रेरहर स्वहवस्व प्रणीताः(१)" इति।
हे त्रग्ने, 'प्रथुना' (विस्तृतेन) 'पाजवा' (बलेन) 'त्रीग्रुचानः'
(दीषमानः) मं 'दिषः' (ज्ञचून्) 'रचवः' (राजवान्) 'त्रमीवाः'
(रागांच) वित्रेषेण 'वाधसा। 'त्रहं' 'सुत्रमणः' (त्रीभनस्वस्त्र)

'वृष्तः' (प्राह्मः) 'सुष्टवस्तः' (सुखेनाङ्गातं अकासः) 'श्रग्नेः' 'प्र-क्षोतां' परिचर्यायां कर्या वत् अर्म (सुखं), तिकान् सुद्धे 'स्नां' (सर्वदा श्रवतिष्टेयम्)।

तिममं विनियुक्को,—"वार्षो वा श्रशिर्पन्हो वि पाञ्चिति विस्प्रस्त एवास्य विषूची वर्षणमेनि विस्प्रति" (५।१।६ श्र०) रति। यद्यपि श्रमन्त्रतेष लीकिकविसंग्रेन सीकिकवन्धो निवर्त्तते, तथापि सविद्वप्रेरणमन्त्रेण वर्षपाश्रस्य निद्यस्थावेन सविद्वप्रेरणाय मन्त्रपाठः। श्रस्य मन्त्रस्य बन्धविन्मे। सनायेव सवित्रा परमेश्वरेण निर्मितलात् तत्पाठे सति सविद्यमें प्रति भवति। वर्षस्य सम्बन्धिनी पाश्रबन्धद्यता बाधा 'वर्षमेनिः' सा च 'विषूची' (सर्वतः प्रस्ता), बद्धधा रच्यु-भिरावेष्ट्य धतात्त्, श्रस्थाग्रेसादृश्ची वर्षमेनिं मन्त्रेण विमीचिन्त्रवान् भव।

कत्यः, 'त्रापे हि हा मबे भुव इति तिस्भिर्प उपस्च्यं' इति । तत्र प्रथमामाइ,—''त्रापे हि हा मये भुवसा न जर्जे दधातन । महे रणाय चन्नसे (१)'' इति । 'हि'-म्रब्द एवकारार्थः, प्रिषद्धार्था वा । हे 'त्रापः', यूयमेव 'मये भुवः' 'स्र' (सुखस्र भावियायो भवत) । सानपाना दि हेतु लेन सुखी त्यादकलं प्रसिद्धम् । 'ताः' (तादृष्टे यूयं) 'नः' (त्रसान्) 'कर्जे' (रसाय भवदी यर सानुभवार्थे) 'दधातन' (स्थापयत) । किस्र 'महे' (महते) रिष्णाय' (रमणीयाय) 'चन्नसे' (दर्भनीयाय) 'दधातन', त्रसान् परतन्त्रसान्ना त्कार योग्यान् कुरुते त्यर्थः ।

श्रध दितीयामाइ,—''ची वः जिवतमी रसस्य भाजयतेष्ठ नः। एकतीरिव मातरः(१)" इति 'वः' (युषाकं) 'जिवतमः' (प्राम्ततमः सुखैकष्ठेतुः) 'वः' 'रसः' श्रस्ति, 'इष्ट' (श्रस्तिन् कर्मणि) 'नः' (श्रसान्) 'तस्य भाजयत' (रसं प्रापथत)। तत्र दृष्टान्तः,—' 'एकतीरिव मातरः' इति, 'उत्रतीः' (कामयमानाः प्रीतियुक्ताः) 'भातरः', ख्या वस्तान् स्वीयसन्यरमं प्राप्यन्ति तद्वत्।

भय हतीयाभार,—''तसा त्ररङ्गमाम वे। यस चयाय जि-भय। त्रापे। जनसया च नः^(४)'' इति। 'यस्य' (र मस्य) 'चयाय' (चयेष निवासेन) 'जिन्यय' (यूथं प्रीता भवय)। 'तस्ते' (रसाय) 'वः' (युग्नान्) 'त्ररङ्गमाम' (त्रसं स्थतं प्राप्तुमः)। किश्च हे 'त्रापः', यूयं 'नः' (त्रसान्) 'जनयय' (प्रजात्पादकान् सुर्य)।

एतेर्मन्त्रेः साध्यं जलसेचनं विधन्ते,—"त्रप उपस्जत्यापा वै श्रामाः श्रामाभिरेवास्य ग्रुच् श्रमयति" (५।९।६ श्र०) इति। श्रक्षाग्रेः 'ग्रुचं' श्रोकं दाइमित्यर्थः।

'श्रापो हि छा' इत्याचृत्रसन विनियुष्क्षे,—"तिस्भिर्पस्वति निटदा श्रीययानिवाग्निसास ग्रुत्रश्र ममयति" (५१९)६ १९०) इति। श्राह्वनोयादि रूपेणाग्नेस्नेगुष्यम्। तस्य सर्वसाग्नेमैन्सन्येष दाह्यान्तिः।

क ब्यः, 'मित्रः सप्टस्क्य प्रथिवीमिति दाभ्याप्ट सप्टस्कृतीयैः सप्टस्कृत्यर्मकपानैः पिष्टैर्वेष्टकुरिक्वीचित्रपैः पन्नामकवासेष वर्करा-भिः पिष्टाभिः हृष्याजिनलोमभिरजलोमभिः' इति । तक

^{*} स्त्रियक्तव्यर्थम् इति सर्व्यंत्र पाठे। न सम्यगिव प्रतिभाति ।

प्रथमामाइ,—''मिनः स्ट्रस्च प्रथिवीं भूमिश्व च्यातिवा सह। शुजाप्तं जातवेदसमग्निं वैश्वानरं विश्वम्(^{६)}" इति । मित्रनामकः सर्वेषामाप्ता देव:, 'ष्टणिवीं' (विस्तृतामिमां) 'श्रमिं' (ऋदं) चन्नव्यादकां स्टिं उपस्टा चपत्र, 'स्रोतिषा' (स्रोति:मन्दोप-सचितेन दार्कोहेतुना वच्छमाषार्मेकपासादिना 'संस्रव्य' प्रश्नि 'सुजातम' श्रकरोदिति श्रेषः । श्रविश्रन्दोपसचिताम् खर्खा निर्मितवानित्यर्थः। की दृत्रमग्निं?—'जातवेद्यं' (जत्यस्रप्राच्य-भिन्नं), 'वैशानरं' (सर्वपृद्धापकारकलेन तसम्बन्धिनं), 'विसुं' (सर्वेषु यजमानग्रहेषु याप्तम्)।

त्रय दितीयामार,—"त्रयस्माय ला सप्रस्त्रामि प्रकाशः। विश्वे ला देवा वैश्वानराः सप्रस्वन्यानुष्टुभेन बन्दसाऽक्निर-खत्^(६)" इति । दे त्रग्ने, लां 'प्रजाभ्यः' (प्रजानाम्) 'श्रयद्माय' (रागाभावाय) 'संस्जामि' (मर्भकपासाहिभिः संबोजवामि)। 'वैचानराः' (सर्वपुरुषोपकारिषः), 'विचे' (सर्वेऽपि) 'देवाः' 'त्रानुष्ट्भेन इन्द्रमा' सहकारिका युक्ताः लां 'संस्वन्तु'। किमात्?--यथा श्रक्तिरयः पूर्वे संयोजितवमासदत्।

मकी देवताकारपरिखागेन मित्रकीव स्वीकारे कार्चं दर्श-चति,—"मिनः सूर्यक्य प्रथिवीमित्याच मिन्ने वै त्रिवा देवानां तेनैवैनर यम्बजित बान्धे" (५।९।६ घ०) इति । 'देवानां' मध्ये 'मिनः' 'त्रिवः' (त्रान्तः), त्रतोऽग्रेः 'त्रान्धे' मिनस स्वीकारः।

^{*} चित्र रित सर्भेष पाठी न युक्तः।

त्रय दाको देतिभः कपासैः संसर्गे विधन्ते,—"यद्वास्वासौ
पानानं कपासैः सप्रस्नेद् यास्वासि पानाि ग्रजािपेयेदर्मकपासैः सप्रस्नायोतािन वा त्रनुपनीवनीयािन तान्येव ग्रजापंयति" (५।९।६ त्र०) दति । पाकसाधनानां भाष्डानां कपासैः
संसर्गे सित सर्वािष 'पानािष' 'ग्रजा त्रपंयेत्' (विक्रतस्ट द्दा हादिकतेन भन्नेन योजितािन भवेयः) । त्रतस्त्त् मा भदिति 'त्रर्मकपासैः' संयोजयेत्। चिर्कासग्रह्यामो भूमी त्रविक्षतािन
प्रतिनािन त्रर्मकपासािनः तेषां प्रासिभः त्रनुपनीवनीयसात्
तान्येव भन्नेन योजितािन भविना, न तु ग्रहोपकर्षािन
भाष्डािन ।

श्रय मृतिष्ठैः सुद्रपाषाणैसूर्णिकतैः संसर्गे विधन्ते '— "क्वर्गः' निम्ने स्ट्रा श्रयो श्रयो श्रयो (४।१।६ श्र •) दति । 'ध्रयो निर्माणकाखे भन्नराहित्येन दार्जाय । 'श्रयो श्रयाय' दति पाककाखेऽपि भन्नराहित्येन सुखावस्थानाय ।

द्रयाक्तरसंसर्गे विधक्ते,—"त्रजलोसीः स्ट्रस्जत्येषा वा त्रग्नेः प्रिया तनूर्यद्रजा प्रिययेवेनं तनुवा स्ट्रस्जत्ययो तेजसा" (५। १।६ त्र०) द्रति। त्रजलजातेरग्नेस प्रजापतिमुखजलसाम्याद्रजा द्रयम् त्रग्नेः 'प्रिया तनूः'। न नेवसं प्रियलं किन्तु त्रग्निसन्थात् तेजोद्भपत्रस्थि, त्रतः 'प्रियया' तन्ता 'तेजसा' चाग्निं समर्थयति।

पुवरपि द्रव्यान्तरसंसमें विधत्ते,—"क्रण्याजिनस्य स्नामिः सप्रस्जिति षञ्चा वे क्रण्याजिनं यज्ञेनेव यञ्चप्र सप्रस्जिति" (५। १।६॥०) इति । चन्यन, 'सञ्चा देवेन्थोऽनिसायत क्रण्या रूपं ख्रता' इत्युक्त वात्, यज्ञस्य ख्रणाजिनतम् । त्रतः ख्रण्याजिनक्षेत्रः 'यज्ञेन' त्रग्निक्षं 'यज्ञं' 'संस्कृति' इति ।

कत्यः, 'बद्राः समृत्य पृथ्वितीमिति सद् सिक्ष्यं दिति। पाठस्त,—"बद्राः समृत्य पृथ्विती वृष्टक्योतिः समीधिरे। तेषां भानुरत्यस्व द्रस्कुको देवेषु रे। चते (०)" दिति। बद्रनामका देवाः 'पृथ्वितीम्' (असानिष्यादिकां सदं) 'समृत्यं' (सम्यक् भरखं क्राला) असाकरणाय यथा सद् भवित, तथा प्रसाश्यां सप्तद्रनं क्रालेखर्यः। तथा क्राला 'वृष्ठक्योतिः' 'समीधिरे' (प्रादमित्रं दीपितवन्तः)। 'तेषां' (बद्राणाम्) असमितः 'भानुः' (भास-मानः) 'श्रासस्व दत्' (निरमार एव), 'ग्रुकः' (दीप्तियुक्तः), 'देवेषु' 'रीचते' (श्रोभते)।

कत्यः, 'बश्च्यष्टां वसुभिरिति तिस्भिः कर्षे प्रवक्षिते' रति ।
तत्र प्रथमामारु,—"बश्च्यष्टां वसुभी रहें धीरैः कर्मच्यां स्टरं ।
रसाभ्यां स्टरीं कला विनीवाकी करोति ताम्(म)" रिति । पूर्वमन्ने रहत्रस्थेन वसवे। ऽष्णुपक्षिताः । स्नतः 'धोरैः' (बृद्धिमद्भः)
'वसुभी रहेः' च था स्तत् कपाका दिभिः संयोजिता बतो कर्मच्या
(जस्ना कर्मचोग्या सम्पन्ना जाता) तां 'स्टरं' 'विनोवाको' देवी
पुनरिष स्व-'इसाभ्यां' 'स्टरीं क्रमा' 'करोतु' (जस्नां निष्पाद्यतु) ।

त्रथ दितीयामाइ,—''विनीवासी सकपर्दा सुकुरीरा स्वीपमा। सा तुम्यमदिते महे त्रीखां दधात इस्रयोः(९)'' दति। या 'सिनीवासी सुकपर्दा' (कपर्देश्य स्त्रीणामुक्तिः केन्नवन्ध-विभेषः, भ्रोभनः कपर्देश यथाः, सा 'सुकपर्दा')। कुरीरश्रस्ट्रेन स्वीभिः प्रक्लारार्थे प्ररिव धार्यमाणं जालकम् उच्चते, प्रोभनं कुरीरं यखाः सा 'सुकुरीरा'। उपभेते (सम्यक् प्रयनं कुरुते) चैरवयवविशेषेसी सर्वे उपत्राः, तेषां समूह श्रीपत्रः, न्रोभन त्रीपभा यखाः सा 'खीपभा'। हे 'महे' (प्रीदे) 'त्रदिते' देवि, ं 'सा' 'सिनीवासी' 'तुभां' (तव) 'इसायाः' 'उखां' (सहस) 'त्रा'-'दधातु'।

श्रय हतीयामा इ,- "उखां करे ति श्रात्या बाक्तभ्यामदिति-र्धिया। माता पुत्रं यथीपसे साग्निं विभर्तुं गर्भ त्रा(१०)" इति। द्यम् 'त्रदितिः' 'धिया' (बद्धिकी ग्रलेन), 'बा ऋभ्यां' (इस्त-कै। ब्रलेन), 'ब्रह्मा' (ब्ररीरबसेन) च दमाम् 'उर्खाः' 'करोतु'। 'यथा' स्रोके 'माता' सकीयं 'पुत्रं' 'उपस्रे' (उत्सङ्गे) विभर्त्त, तथा सा ऋदितिः 'गर्भे' (स्त्रेत्सङ्गे) तम् 'ऋग्निं' 'ऋा' कर्मसमाप्तेः, 'विभन्त'।

चक्रस मन्त्रचतुष्टयस तात्पर्ये दर्शयति,—"बद्राः समुत्य पृचिवीमित्य। हैता वा एतं देवता ऋषे समभरं ताभिरेवैन हु स-भारति" (५।१।६ अ०) इति । सद्राः, वमवः, सिनीवासी, श्रदितिश्वेद्येतच्छब्दपराम्यष्टा देवताः।

कच्यः, 'मखस्य भिराऽसीति पिण्डं हाला' इति। पाठः,— "मखस्य गिरोऽभि^(११)" दति। हे मृत्यिख, तं 'मखस्य' (यन्नस्य) त्रिर:-स्थानम् 'श्रिस'।

^{*} भ्रिरसा इति J. पु• पाठः। † भूमिदेवि इति B. एवं J. पु॰ पाठः।

तत्र मखन्नव्दार्थं दर्भयित,—"मखस्य निरोधिताच यज्ञो वै मखस्यस्य तिष्क्रो यदुखा तस्मादेवमाच" (५।१।६ अ.०) इति ।

कत्यः, 'यज्ञस्य पदे स्था इति क्रम्णाजिनं पुष्करपर्णञ्चाभिन् स्वत्रति' इति । पाठः,—''यज्ञस्य पदे स्थः'(११)'' इति । हे क्रम्णान जिनपुष्करपर्णे, युवाम् उभे 'यज्ञस्य' पादकृषे 'स्थः' ।

हृष्णाजिनपुष्करपर्णयोर्यज्ञप्राप्तिचेतुला च ज्ञपदलं प्रसिद्धिनित्ये-तद्रभ्यति,—''यज्ञस्य पदे स्व दत्याच यज्ञस्य द्वेते पदे अधी प्रतिष्ठित्ये''(५।९।६ अ०) दति।

कत्यः, 'वसवत्वा क्रालम्, गायवेष कन्दमित चतुर्भमं ही युखां करे। ति यञ्जभार्यस्थाध्य पृरेकभार्यस्य क्रियमाणाभेतेयं पृर्भरेव यजमानाऽनुमन्त्रयते' इति । पाठस्त,—''वसवत्वा क्रालम्, गायवेष कन्दमाऽक्तिरस्वत् पृथियसि(११) कद्रास्वा क्रालम्, वेष्टुभेन कन्दमाऽक्तिरस्वदम्नरिचमिति(१४) श्रादित्यास्वा क्रालम्, जागतेन कन्दमाऽक्तिरस्वद्धीरसि(१४) विश्वे ता देवा वैश्वानराः क्रालम्बा-नृष्टुभेन कन्दमाऽक्तिरस्विद्धीऽसि ध्रुवाऽसि धारया मिय प्रजाष्ट्र रायस्थोषं गीपत्यश्च स्वीर्यश्च सजातान् यजमानाय(१९)" इति । हे उसे, वस्तास्या देवाः सहकारिणा 'गायवेण कन्दमा' सह, श्रक्तिरस्व द्व तां 'क्रालम्नु' (निव्यादयम्नु) । तश्च पृथिवीक्पा 'श्रमि' । एवमुत्तरेषु विद्यपि योज्यम् । 'वैश्वानराः' (सर्वमनुस्था-पकारिणः) । हे उसे, तं 'ध्रवाऽसि' (दृढाऽसि), श्रतो 'मिय' श्रध्येश श्रन्यस्मन् वा उस्राकर्त्तर प्रजादिकं 'धार्थ' (स्थापय,

यजमानार्धमपि प्रजादिकं सम्पादय)। भ्रुवासीत्यादिरम्यभागः पूर्वेष्टपि चित्रवनुषच्यते।

'संस्ष्टाम्' इत्याचृग्भिः कर्ने प्रदानं, 'वसवस्ता' इत्यादि-भिर्यजुर्भिर्यजमानानुमस्त्रषञ्च क्रमेष विधत्ते,—''प्रान्याभिर्य क्र-लन्त्रस्थिनंत्रयते मिथुनलाय'' (५१९१६ श्व०) इति । 'श्वन्याभिः' 'वसवस्ता' इत्यादियजुर्भ्या विलचणाभिर्ष्टिग्भः। 'श्वन्यैः' 'संस्रष्टाम्' इत्यायुग्भ्ये विलचणैः 'वसवस्ता' इत्यादियजुर्भिः। ख्वां स्वोलिङ्गलायज्ञवाम् श्वतथालान्त्रियुनलम्।

निर्मातयाया उखायाः बच्चात्रयं विधन्ते,—"शृद्धं करे।ति त्रव रमे खोका एषां खोकानामाष्ट्री" (५।१।६ १४०) रति। 'उद्धिः' ऊर्द्धमवस्थिते। व्यवविश्वेषः । यथा भाष्डस्य उपरि श्रन्यद्वाष्डं, तस्राष्ट्रपरि पुनरन्यद्वाष्डमिति बच्चात्रयं, तथेयमेकैव उसा बच्चात्रययुक्ता कार्था।

'वसवख्वा' दत्यादि भिर्मक्तीर्यजयामखानुमक्तणं पूर्वे विश्वितम्। ददानीं तैरेव मक्तीः कर्ताः कर्मनिष्पादनं विधक्ते,— ''क्रन्दोभिः करोति वीर्यं वै क्रन्दाश्रमि वीर्येणैवैनां करोति'' (५।९।६ श्व०) इति। 'क्रन्दोभिः' क्रन्दोलिङ्गकैः 'वसवस्वा' दत्यादिभिर्मकीः।

कल्यः,—''त्रदित्वैरास्वासि^(१०)" 'इति रास्वा करेग्ति' इति । रत्रनासदृत्री भाष्डस्य गस्तगता रेखा 'रास्वा' । हे रेखे, लम् 'त्रदित्यै' (श्वमिरूपाया उखाया) 'रास्वा' (काञ्चीगुणस्वानीया रत्रना) 'त्रसि' ।

कस्य:, 'त्रदितिसी विसं रहातिति विसं छता' रति। पाठस्त,—"त्रदितिसे विसं यकात पाक्नेन हन्दमाऽक्निरस्वत्(१०)" इति । हे उसे, 'म्रदितिः' भूमिः सहकारिका 'पाङ्क्तेन इन्द्रसा' सह चाङ्गिरस इव 'ते' (तव) 'बिसम्' (चन्निन्छ्ट्रं) 'स्डातु' (करोतु)।

तं मन्त्रं विनियुक्ते,—"यजुषा विश्वं करोति छात्रस्ये" (५। १।६ त्र ॰) इति । स्नीकिकस्य दि भाष्डस्यान्तरेणैव यजुः, विसं कियते, श्रम तु 'यज्वा' * दति तद्वादृत्तिः।

खखायाः प्रादेत्रपरिमाणं विधत्ते,—"इयतीं करे।ति प्रजा-पतिना यज्ञमुखेन सम्मिताम्" (५।१।६ भ ०) इति। यज्ञपुरुषस्र मुखम् ऊर्द्धपुनुकयोर्भधनत्ती प्रादेशमाचं, तच प्रजापतिस्ट-लात् प्रजापतिखरूपं, तेन मुखेन परिमिता भवति; तत्परि-मार्षं इस्तेन मभिनीय प्रदर्भनार्थम् 'इयतीम्' इत्युच्यते।

प्रथ विधन्ते,—"दिस्तनां करोति द्यावापृचिचोदिं। हाय" (५।१।६ प्र.) इति। यथा योषितः सने।, एवमस्या उसाया है। स्तनाकारी सदा निष्याची, तथा सति दिलसाम्यात् द्यावापृथियोः सार्गप्रदोद्दनं सम्बद्धते।

पचान्तरं विधन्ते,—"चतुस्तनां कराति पशूनां देशहाय" (धाराइम्र) इति।

प्नर्यन्यं पत्तं विधन्ते,—"श्रष्टासनां करोति इन्दर्शां

^{*} समन्त्रकामिति ग्रः पु॰ पाठः ।

[†] मूर्डिचिनुक्योर्भथ्यवित्तं इति पाठी भवितुं युक्तः।

दोशय" (५ । ९ । ६ ऋ ०) रति । ऋष्टमङ्काकानि इन्दांसि सन्ता-नारे समास्वातानि, 'गायची चिष्ठुप् जगत्यनुष्टुक् पङ्खा सह बृहत्युष्णिषा ककुत्' दति ।

श्रष्टलसञ्चासाम्बाच्छन्दसा मारदोष्ठनं सम्बद्धते। तदेतत् सर्वे स्वकारेण सङ्गृहोतम्,—'श्रश्रीणाः राखायास्य सन्धा दी चतुरः सङ्ग्री वा स्तमान् करोति' इति ।

श्रिकारिविश्वेषेणश्रिषु सङ्घाविश्वेषं विधत्ते,—"नवाश्रिम् श्रिकरतः कुर्यात् चिष्टतमेव वज्रः सम्भृत्य आह्वाय प्रहरति सृत्ये" (१।१।६ श्र०) दति। चिष्टत्सोमस्य नविभर्म्यंग्भिरपेत-लादश्रिसङ्घायास्त्रिष्टलं सम्पद्यते। स च चिष्टत्स्रोमा वैरि-विनाशकतात् वज्रसमानः। श्रतो नवसङ्घया आह्वाय वज्र-प्रहरणं सम्बद्यते।

त्रभिचाराभावे तु त्रश्रियङ्कां स्नकारे। दर्शयति,—'कुर्वेट्ट-यतकोऽत्रीः प्रतिदित्रमुखयत्यष्टात्रिर्वा' इति ।

कस्यः, 'क्रवाय सा महीमुखामित्युत्तरतः सिकतासु प्रति-हाण' इति । पाठस्तु, ''क्रवाय सा महोमुखां स्टप्सयीं ये। नि-मग्नये । तां पुत्रेभ्यः सम्प्रायच्छद्दितिः अपयानिति (१८)'' इति । 'सा' इयम् 'श्रदितिः' 'स्टप्सयीं' (स्ट्राकार्यां) 'श्रग्नये' 'ये। निं' (श्रग्नेः कारणस्तां) 'महीम्' (महतीम्) 'खसां' 'क्रवाय' (निष्पाद्य), ततस्ताम् 'खसां' 'पुत्रेभ्यः' (स्वपुत्रसङ्क्रोभ्यः) अपण्कारिभ्यः 'सम्प्रायच्छत्' (सम्यक् दत्त्वततो) । किं कुवतो ?-इति, तदुच्यते— 'अपयानिति' (अपयन्तु भवन्त इति) कृवती । तमेतं मकं विनियुद्धे,—"क्तलाय सा महीमुखामिति नि-दधाति देवताखेवेनां प्रतिष्ठापयित" (पाराहमः) इति । मुद्तिपुचाणां देवता रूपलादेवतासु प्रतिष्ठापनं सम्पद्यते॥

श्रव विनियागसङ्गुदः,—

वि पा, विसंगयेदापास्त्रिमिट्ट असं चिपेत्।

मिना-दाभ्यां प्रकरादिये। गा रहेति मिक्किपेत्॥

गंस्-निभिर्हत्तिकां तामुखा कर्ने प्रयक्कति।

मखिपण्डकतियंश-चर्मपण्यभिमर्भनम्॥

कुर्यादसु-चतुर्भिकां भुवासीत्यनुषच्यते।

श्रदि, रास्नामदि, विसं कुर्यास्त्रताय, तामुखाम्॥

सिकतासु स्वापयीत मन्त्रा एके।नविंग्रतिः।

इति सायनः चार्यावर् चिते माधवीये वेदार्यप्रकाग्ने कथायजुः-मंहिताभाखे चतुर्थका एडे प्रथमप्रपाठके पश्चमाऽनुवाकः॥ ०॥

वसंवस्ता धूपयन्तु गार्ड्चेण छन्दंसाऽङ्गिर्स्वत् (१) क्रद्रास्त्वा धूपयन्तु चेष्टुंभेन छन्दंसाऽङ्गिर्स्वत् (१) च्या-दित्यास्त्वा धूपयन्तु जागंतेन छन्दंसाऽङ्गिर्स्वत् (१) विश्वे त्वा देवा वैश्वान्रा धूपयन्त्वानुष्टुभेन छन्दंसा-ङ्गिर्स्वत् (१) इन्द्रंस्ता धूपयत्वङ्गिर्स्वत् (१) विष्णुंस्वा धपयत्वङ्गिर्स्वत् (१) विष्णुंस्वा धपयत्वङ्गिर्स्वत् (१)

श्रदितिस्वा देवी विश्वदेखावती पृश्विखाः सुघर्छे-ऽक्रिरुखत् र्छनत्ववट (६) देवानं त्वा प्रस्नोः ॥ १॥

देवीर्विश्वदेखावती पृषिखाः स्थर्छेऽक्तिर्खदंधतूखे^(८) धिषणीत्त्वा देवीर्विश्वदेखावतोः पृषिखाः
स्थर्छेऽक्तिर्खद्भीन्धेतामुखे^(१)ऽप्नात्त्वा देवीर्विश्वदेबावतीः पृषिखाः स्थर्छेऽक्तिर्खक्त्रेपयन्तूखे^(१) वर्ह्नचया जनयत्त्वा देवीर्विश्वदेखावतीः पृषिखाः स्थखेऽक्तिर्खत् पंचन्तूखे^(१)। मिचैतामुखां पंचेषा
मा भेदि। पृतां ते परि ददाम्यभित्यै^(१)। श्रुभीमां॥२॥

मृद्दिना दिवं मिया बंभूव स्प्रयाः। उत अवसा पृथिवी (११)। मियस्य चर्षणीधृतः अवी देवस्य। सानृति। दुमं चियअवस्तमं (१९)। देदस्वा सिवतादेपतु
सुपाणिः स्वं कुरिः। सृबाहु कृत प्रक्त्या (१०)। अपेद्यमाना
पृथिव्याशा दिश्र आ प्रण। उत्तिष्ठ रहतो भेवोष्या
तिष्ठ भ्रवा त्वं (१०)। वसंवस्त्वाऽऽकृत्दन्तु गायचेण् छन्देसाऽक्तिरस्वत् (१९) कृद्रास्वाऽऽकृत्दन्तु, चेष्ठुभेन् छन्देसाऽक्तिरस्वत् (१९) श्राद्तियास्वाऽऽकृत्दन्तु जागंतेन् छन्देसासाऽक्तिरस्वत् (१९) वश्रे त्वा देवा वैश्वान्रा श्रा कृत्दन्वानुष्ठभेन् छन्दसाऽक्तिरस्वत् (१९)॥ १॥

पक्षीः। इ.माः । षुट्रास्वा छून्दुन्तु । एकाव्वविः -श्रुतिर्थं ॥ ६ ॥

द्रित तैतिरीयसंदितायां चतुर्थकाण्डे प्रवम-प्रपाठके षष्ठोऽनुवाकः॥ ०॥

पश्चमेऽनुवाके उखानिर्माणसुक्तम्। श्रयं षष्ठे ततांस्कारे।ऽभिधीयते। कत्यः, 'वसवस्ता धूपयन्तु गायचेण कन्द्रसेति सप्तिभरश्चमकेने।खां धूपयन्ति' रति। पाठस्त, "वसवस्ता धूपयन्तु
गायचेण कन्द्रसाऽङ्गिरस्तत्^(१) स्द्रास्ता धूपयन्तु चेष्टुभेन कन्द्रसाऽङ्गिरस्तत्^(१)
श्चित्रं ता देवा वैश्वानरा धूपयन्त्वाष्टुभेन कन्द्रसाऽङ्गिरस्तत्^(१)
रश्चस्ता धूपयत्वङ्गिरस्तत्^(१) विष्णुस्ता धूपयत्वङ्गिरस्तत्^(१) वक्षस्ता
धूपयत्वङ्गिरस्तत्^(९)" रति। हे उसे, ताम् श्रष्टी 'वसवः' सहकारिणा 'गायचेण कन्द्रसा' सह, श्रङ्गिरस्त द्व 'धूपयन्तु'
(दश्चमक्तजन्येन धूमेन संस्कृवंन्तु)। एवमुत्तरेस्वणि षट्सु योजनीयम्।

एतान् सम्तान् विनियुक्ते,—"सप्तिभिर्धूपयित सप्त वै श्रीर्घ-एयाः प्राणाः शिर एतद्यज्ञस्य यदुखा श्रीर्घन्नेव यज्ञस्य प्राणां दधाति तसात् सप्त श्रीर्घन् प्राणाः" (४१९१० प्र०) दति । श्रिरोवर्त्तिषु सप्तषु किन्नेषु सञ्चरन्तः 'प्राणाः' सप्तसङ्ख्याकाः । उखा च यज्ञशिरःस्थानोया, तसात् सप्तमिर्धूपने सति यज्ञस्य न्निरस्थेत प्राणामवस्थाययतिः, यसादेवं, 'तस्मात्' प्रतिपूर्वपं न्निरिध हिद्रभेदेन 'सप्त' 'प्रासा' वर्त्तन्ते ।

धूपसाधनं विधक्ते,—"त्रयक्षकेन धूपचित प्राजापत्था वा त्रयः सयोजिलाय" (५।९।७४०) इति । श्रयस्य क्रकत् श्रयक्षकः । श्रयस्य प्राजापत्यलभस्कदुक्रम्, श्रश्चिरपि प्राजा-पत्यः, 'प्रजापतिरश्चिमचिनुत' इति श्रवणात्; श्रत छभयेः समानयोजिलम्।

कस्यः, 'ऋदितिस्ता देवीत्यग्रेण गार्षपत्यमवटं खाता' दिति। पाठस्तु,—"मदितिस्ता देवी विश्वदेव्यावती पृथिव्या सधस्त्रेऽक्तिर-स्तृ खनत्ववट^(८)" दिति। विश्वेषां देवानां याग्या जपचारा 'विश्वे देव्याः', ते श्रस्यां सन्तीति 'विश्वदेव्यावती'; तादृशो दयम् 'श्रदितिः' 'देवी' 'पृथिव्याः सधस्त्रे' (भ्रम्या जपिर) दे 'श्रवट' तः मृश्वक्तिरस दव 'खनतु'।

श्रीम् मन्ते खननकर्श्तमदितेषपादयति,—"श्रीदित्यो निक्नेत्याद्देयं वा श्रीदितिरिक्षिशिदित्यां खनत्यका श्रकूरंकाराथ
न हि सः स्वः हिनसि" (१।५।०१०) दिता। 'द्यं' स्विनिरेवाच
श्रीदित्रम्देन विविधिता, श्रवटखननं हि स्वन्यामेव; ततीप्रदितेः खननकर्शते यति स्वेनिहेंगा न भवति। 'न हि' लोको
कश्चिदपि स्वयं खात्मानं 'हिनसि'। तसात् खननसचण-कूरकार्यकरणाभावाय द्दम् श्रीदितिकर्शतं सम्पादते ।

^{*} विश्वदेखा इति पाठो भवितुं युक्तः। † सम्पद्यते इति B. सर्वं J. प॰ पाठः।

कथाः, 'सोहितपचनीयैः समारितवसीयं देवानां ला पत्नी-रिति तसिम्बुखामवदधाति' इति । पाठस्त,—''देवानां ला पत्नीर्देवीर्वियदेव्यावतीः पृथिष्याः सधस्येऽङ्गिरखद्धस्रुखे^(८)''इति । 'वियदेव्यावतीः' (समस्तदेवार्षापचारयुक्ताः) या 'देवानां' पत्न्या देवः ताः 'पृथिव्याः' 'सधस्ये' (उपरि) श्रङ्गिरस इव हे 'उसे' लां 'दधतु' (स्वापयम्न) ।

देवपत्नीनाम् खखाकर्रतं पुरातनिमिश्चेतद्रश्चिति,—"देवानां ला पत्नीरित्याच देवानां वा एतां पत्नचे। उपे कुर्वन्नीभिरेवेनां दधाति" (५।९।७५०) इति । पुरा देवपत्नीभिष्खाचाः इत-लात् ददानीमिष ताभिरेव खापिता भवति ।

कस्यः, 'स्रोहितपत्रनीयैः सक्षारैः प्रकास धिषणास्ता देवीरित चतुर्भिद्खायामग्निमभादधाति' इति । पाठसु,—"धिषणास्ता देवीर्विश्वदेखावतीः पृथिद्याः सधस्थेऽङ्गिरस्वदभीन्धतामुस्ते (१९)
त्रप्नास्ता देवीर्विश्वदेखावतीः पृथिद्याः सधस्थेऽङ्गिरस्वकुपयन्तृस्ते (१९)
वक्ष्वयो जनयस्ता देवीर्विश्वदेखावतीः पृथिद्याः सधस्तेऽङ्गिरस्तत्
पत्रम्तूस्ते (१९।१९)" इति । विद्याभिमानिन्यो देवता 'धिषणाः' । दे 'उसे', त्यां ता देवताः 'त्रभीन्धताम्' (त्रभितो ज्वास्त्रयन्तु) ।
कन्दोभिमानिन्यो देवता 'त्रग्नाः'; ताः त्यां 'त्रपयन्तु' (तव पच्चमानतां सन्त्रादयन्तु । 'वक्ष्वयो जनयः' इत्त पदभेदेन मन्त्रभेदः । देवत्रास्त्रादिषु सप्तसु देवत्रस्त्रीभमानिन्यो देवता 'वक्ष्वयः'; 'सेनेन्द्रस्त्र" इत्याद्यनुत्राकेनोक्षा देवपत्यो 'जनयः'। तच 'वक्षवयः' त्यां 'पचन्तु' (तव पक्षतां सन्त्रादयन्तु)। तथा 'जनयः' तां 'पचन्तु' (पक्कत्वपरोचां कुर्वन्तु)। 'वरूचयः' इति मन्त्रे 'ता देवीः' इत्याचुत्तरभागीऽनुषव्यते।

एतेषु मन्त्रेषु धिषणादिश्रव्दानामस्यदुकार्थपरतां दर्शयति, धिषणास्त्रेत्याच विद्या वै धिषणा विद्याभिरेवेनामभोत्येऽग्रास्ते-त्याच कन्दाशस्य वैऽग्राञ्कन्दोभिरेवेनाश अपयति वक्ष्त्रयस्ते-त्याच चेत्रा वै वक्ष्त्रयो चेत्राभरेवेनां पचित जनयस्त्रेत्याच देवानां वै पत्नोर्जनयस्ताभिरेवेनां पचिति" (५।१।०५०) द्रति। स्रष्टोऽर्थः।

श्रदितिस्ता देवीत्यादीनामुक्तानां मन्त्राणां मञ्चां प्रश्नंमित,— "षड्भिः पचित षड्वा स्थतव स्थतुभिरेवेनां पचित"(५।९।७ श्र०) इति। श्रवटखननादीनामिप पाकाङ्गलेन 'षड्भिः पचित' इत्युच्यते।

'वरूत्रयो जनयः' द्रत्यनयोः खाभिप्रेतं मन्त्रभेदं द्र्ययितुं 'पचन्तु' द्रति मन्त्रभागस्यानुषङ्गरूपामादृत्तिं दर्शयति,—"दिः पच-न्तित्याच तस्मात् दिः संवत्सरस्य सस्यं पन्यते" (५।९।७५०) दति। वरूत्रयः पचन्तु, जनयः पचन्तिस्योवं दिः प्रयोगः।

कल्यः, 'मिनैतामुखां पचेति पच्यमानां तिस्भिर्मेचोभिक्प-चरिन्तः' इति । तच प्रथमामा इ,—''मिनैतामुखां पचेषा मा भेदि । एतां ते परि ददाम्यभित्ये^(१४)'' इति । हे 'मिन' (धर्वप्राणि-दितकारिन्) देव, लम् 'एताम्' 'उखां' 'पच' (पकां कुद्) । 'एषा' च उखा 'मा भेदि' (भिन्ना मा भवतु) । 'एताम्' (उखाम्) 'त्रभित्ये' (भेदाभावाय) 'ते' (तुभ्यं) 'परि ददामि' (परित्राणाय ददामि) । श्रथ दितीयामाइ,—"श्रभीमां महिना दिवं मिने बस्रव सप्रथा: । जत अवसा पृथिवीम्^(१५)" इति । 'मिनः' 'इमाम्' (छखाम्) 'श्रभि'-'बस्रव' (श्रभितः प्राप्तवान्) । कीदृशो मिनः ?— 'सप्रथाः' (सविकारः, प्रपुरकीर्त्तिरित्यर्थः) । कीदृशोमिमां ?— 'महिना दिवं' (महिका युक्तोकसदृशों 'उत' (श्रपि च) 'अवसा पृथिवीं' (अवधेन पृथिवीसदृशीम्) ।

श्रव हतीयामाइ,—''मिनस्य चर्षणोधृतः श्रवो देवसः। सागिसं। द्युनं चिनश्रवस्तमम्(१९)" इति। 'चर्षणीधृतः' (मनुष्याषां
धारियतः' 'मिनस्य' 'देवस्य' 'श्रवः' (श्रोतं चाग्रं चश्रो महद-स्तीति श्रेषः), 'सानिसं' (फलदानश्रीलं), 'द्युनं' (द्रविकप्रदं), 'चित्रश्रवस्तमं' (चिनं श्रवः कीर्त्तिर्यस्थांचे चित्रश्रवाः, श्रतिश्रयेन तादृशः, तम्) एतादृश्रमुखारूपं स मिनः पचलिति श्रेषः।

देवताक्तरपरित्यागेन मिचदेवताकमकाखीकारे कारणं दर्भ-यति,—"वारणुखाऽभोद्धा भैनियोपैति प्राक्ये" (५।९।७५०) दति। 'त्रभोद्धा' (प्रज्यक्षिता) या दयम् 'क्ष्मा', सेयं दुस्पप्रीद् 'वारणी', तसा मैचा भाषा प्राक्तिभेवति।

कत्यः, 'पकां देवस्वा स्वितोदपित्युदास्थ' इति। पाठस्त,—
''देवस्वा स्वितोदपत् सुपाणिः स्वजुितः। सुवाज्ञद्दत क्रमा^(१०)"
इति। हे उसे, 'स्विता' 'देवः' तां स्वकीयया 'क्रमा' 'उद्द्यतु'
(प्वटादूर्द्धमानयतु)। कीदृषः स्विता?—'सुपाणिः' (म्रोभनीः
पाणी यस्त्रामा) 'सुपाणिः', (श्रोभनाः प्रजुलयो यस्त्रामा) 'स्वजुन्
सिः', कान्दसा रेफः। 'उत' (श्रिप प) (श्रोभनी बाह्र यस्त्रामें)

'सुवाद्धः'। मणिबन्धस्थोभयते।ऽवस्त्रितीः भागा पाणिबन्देन च उच्चेते।

श्रीसान् सन्ते सविद्यम्दतात्पर्थे दर्भयति,—''देवस्वा सवितो विप्ति स्वाप्ति स्वाप्ति

कर्यः, 'श्रपद्यमाना पृथियात्रा दिश्व श्रा पृणेत्युक्तरतः सिकतासु प्रतिष्ठाप्य' इति । पाठस्तु, "श्रपद्यमाना पृथियात्रा दिश्व श्रा-पृष्ण । उत्तिष्ठ बृहती भवेद्धा तिष्ठ श्रुवा लम्(१८)" इति । हे उस्ते, 'पृथिवि' (पृथियां, भूभें।) 'श्रपद्यमाना' (भङ्गमप्राप्नुवतो) 'लं', 'श्राज्ञाः' (प्राच्याद्या दिश्रो मुख्यः), 'दिश्वः' (श्राग्नेय्याद्या विदिशः) च 'श्रा-पृष्ण' (स्रवेतः पूर्य, सर्वेच प्रसिद्धा भव) । 'उत्तिष्ठ' (श्रवटादहिरागत्य उत्थिता भव), उत्थाय च 'बृहती' (प्राद्धा) 'भव' । तादृश्री लं, 'ऊर्द्धा' सती 'भुवा' (खिरा) 'भव', 'ऊर्द्धा' (ऊर्द्धानुवी) स्थिरा 'तिष्ठ' ।

श्रस्य मन्त्रस्य यहिशामापूर्णमुक्तं, श्रेयमग्नेः प्रभवाया व्याप्तिः । इत्येतन्तात्पर्ये दर्शयति,—''श्रपद्यमाना पृथिव्याग्ना दिश्र श्रा- प्रकेष्या इ तस्मादिग्नः सर्वा दिश्राऽनु विभाति" (५।९।७श्र०) इति । यस्मादुस्वायाः सर्वेदिक्पूर्त्तः प्रार्थते, 'तस्मात्' एखया मिश्रितः 'श्रीग्नः' स्नतेश्रमा 'सर्वा दिश्रः' प्रकाश्रयति ।

'ऊर्द्धा तिष्ठ' इत्यस्य तात्पर्ये दर्भयति,—''उत्तिष्ठ बृहती भव

^{*} मिवनमध्योभयते। (वस्थिते। इति J. पु॰ पाठः।

[†] प्रभवा खाप्तिः इति पाठी भवितुं युक्तः।

जार्ज्ञा तिष्ठ भ्रवा लिमित्या प्रतिष्ठित्ये" (५।१।०११०) रति। कत्यः, 'वमवस्ताऽऽकृन्दन्तु गायनेण कन्दमित पतुर्भिरजान् चीरेणोखामाकृणिन्त' रित । पाठस्तु,—"वमवस्ताऽऽकृन्दन्तु गायनेच कन्दमाऽङ्गिरस्वत्^(१८) सद्रास्ताऽऽकृन्दम्तु नैष्टुभेन कन्दमा-ऽङ्गिरस्वत्^(१९) श्रादित्यास्ताऽऽकृन्दन्तु जागतेन कन्दमाऽङ्गिरस्वत्^(१९) विश्वे ला देवा वैश्वानरा श्रा-कृन्दन्त्वानुष्टुभेन कन्दमाऽङ्गिर-स्वत्^(१९)" रित । चे खसे, वसुनामका देवाः, श्रङ्गिरम रव लां सिश्चम् । एवमुन्तरचापि योज्यम्।

एते मंन्त्रेः साध्यं सेचनं विधत्ते,—"श्वसुर्थे पाचमनाकृषमा-कृणित्त देवचाऽकः" (५।१।७३०) इति । यज्ञसाधनं पाचमग्नि-दग्धं सत् द्रवद्रवेष यदि न सिक्तं भवति, तदानीमसुरये।ग्रं भवेत्, तत्परिचाराय श्रासिञ्चेत्। सिक्तं पाचं 'देवचा' (देवेषु) 'श्रकः' (करोति) देवयोग्यं भवतीत्पर्थः।

सेचनसाधनं विधत्ते,—''श्रमचोरेणाकृणित्त परमं वा एतत् पयो यदमचीरं परमेणैवैनां पयसाऽऽकृणित्तः" (५।१।७१०) इति । खे।के श्रमचीरस्य सर्वस्याधिपरिहारहेत्वात्, वेदेऽपि 'श्राग्नेयो वा एषा यदमाः" इत्युक्तलात् परमलम् । खे।के दम्बस्य पात्रस्य सेचनमन्तरेणैव सेवनं कुर्वन्ति । श्रतसङ्खादन्त्रर्थमिष्ट् मन्त्रेण सेचनं विधत्ते,—''यमुषा स्वादन्त्ये" (५।१।७१०) इति ।

सामान्येन मन्त्रं विधाय विश्वेषेण कन्दोलिङ्गकान् मन्त्रान् विधन्ते,—"कन्दोभिराकृणित्त कन्दोभिर्वा एषा क्रियते कन्दोभि-रेव कन्दार्श्साकृणित्त" (५१९।७%) रति। पूर्वे (५%०) वसवस्ता क्रास्त्रम् मायचेष हन्द्रसा' इति हन्दोसिङ्गकैर्मनीः 'एवा क्रियते', ऋत इयं इन्दोरूपा; तसादुखारूपाचि इन्दांसि, मक्करें। 'कन्दोभिरेव सिकानि भवन्ति।

> श्रव विनियागमङ्ग्रहः,— वसवः सप्तभिर्भू पाऽदितिस्लेत्यवटं खनेत्। देवाखां तच मंखाय, धिषणेतिचतुष्ट्यात्॥ श्रम्भि चिपेनास्त्रभेदी वरू-जन-पददयात्। मित्रत्रयेणे।पचारा देव, खदासयेद्खाम्॥ श्रपेति सिकतास्त्रेतां निधाय, वसवेत्यतः। चतुष्टयादजाचीरं सिञ्चेद् दाविंत्रतिर्मताः॥

इति सायनाचार्यविरचिते साधवीये वेदार्थप्रकाग्रे कृषा-यमुः मंहिताभाय्ये चतुर्यकाण्डे प्रथमप्रपाठके षष्ठाऽनुवाकः ॥ ०॥

समास्वाग्न ऋतवा वर्डयन्तु संवत्स्रा ऋषये। यानि सत्या। सं दिव्येनं दीदिहि राचुनेन विश्वा त्रा भाहि प्रदिर्मः पृथियाः^(१)। सच्चेथास्रो प्र च वाधयेनुमुर्च तिष्ठ महुते सौभंगाय। मा चं रिषदुप-सुत्ता ते अमे ब्रह्मार्णस्ते युशर्सः सन्तु मान्ये(१)। त्वा-मंग्रे रुणते ब्राह्मणा दुमे शिवा श्रेगे ॥ १॥

सुं वर्रणे भवा नः। सुपृत्रुहा ने। श्रिभमातिजिञ्च स्वे गर्ये जायुद्धप्रंयुक्कन्^(२)। दुहैवाग्ने अधि धारया

^{*} इन्दे। भिरेषा इति चादर्भपुक्तकपाठे। न सम्यक्।

र्यिं मा त्वा निर्मन् पूर्विचिती नि कारिणः। श्रुच-मंग्रे सुयममस्तु तुभ्यंमुपस्ता वर्डतां ते चनिष्टृतः(१)। श्रुचेणाग्रे स्वायुः सः रंभस्व मिचेणाग्रे मिच्धेये यत-स्व। स्जातानीं मध्यम्स्या एधि राज्ञीमग्रे विद्व्या दोदिहोह^(६)। च्रिति॥ २॥

निहे। श्रतिस्तिधात्यचित्तिमत्यरातिमग्ने। विश्वा ह्यंग्रे दुरिता सहस्वायास्मभ्यं सहविरा र्यं द्राः । श्रनाधृष्या जातवेदा सनिष्टृता विराडंग्रे सम्प्रदेशिह । विश्वा श्राश्रीः प्रमुख्यमानुषी-भियः श्रिवाभिर्च परि पाहि ना व्धे । वहांस्पते सवितर्वे धयन् स्रशितं चित्सन्तरा स्रशिशाधि। वहीं येनं महते सैं। भेगाय ॥ ३॥

विश्व एन्मनुमदन्तु देवाः । श्रमुचभूयादध् यद्यमस्य वृह्णस्यते श्रमिश्रस्तोरमुं चः। प्रत्याहताम्-श्रिना मृत्युमसाद्देवानामग्ने भिषजा श्रचीभिः (८)। उद्द्यं तमस्यिर्पश्यन्ते। ज्योतिहत्तरं। देवं देवचा सूर्यमगन्म ज्योतिहत्तमम् (१०)॥ ४॥

इमे शिवा अग्रे। ऋति। सीभगाय। चतुंस्विः-श्वा । ९॥

इति तैत्तिरीयसंदितायां चतुर्थकार्ये प्रथम-प्रपाठके सप्तमेऽनुवाकः॥ ॰ ॥ पश्चित्रा श्रामिकाः सामिक्षेत्र एकाः । त्रय सप्तमेऽनुवाके पश्चपश्चम्भता श्रामिकाः सामिक्षेत्र एकाने । कत्यः, 'एकविंव्रतिं
चतुर्विव्रतिं वा पराचीः सामिक्षेत्रोरन्याचैकादव प्राक्वतीः समास्वाग्न द्रित द्रवाग्निकाः' द्रित । तत्र प्रथमामाच्,—''समास्वाग्न क्रामे वर्द्धयन्तु संवत्यरा खवयो यात्रि सत्या । सं दिखेत्र
दोदिष्टि रोष्यतेत विश्वा श्रामाचि प्रदिष्ठः पृथिखाः(१)"दित ।
'समा'-प्रब्दः संवत्यरवाची, संवत्यरप्रब्देत तु तद्वयवा मावा
प्रद्वमामाखोपस्रकाने । चे 'स्रग्ने', 'संवत्यरः' 'स्वतवः' सामा
प्रद्वमामाखोपस्रकाने । चे 'स्रग्ने', 'संवत्यरः' 'स्वतवः' सामा
प्रद्वमासाखोपस्रकाने । चे 'स्रग्ने', 'संवत्यरः' (मन्त्रद्रष्टारः),
तथा 'यात्ति' सत्यात्ति (सत्यवचनात्ति) सन्ति, ते सर्वेऽपि नां
'वर्द्धयन्तु' तैर्वेर्ड्वितस्तं 'दिखेन' (स्थाकार्चेष्क) 'रोष्त्रनेन' (तेजवा)
'सं'-'दिदोच्हिं" (सम्यक् दोष्यस्त) । किस्न वदीषया दीष्टा।
'पृथिखाः' सन्तिन्नोः 'प्रदिश्वः' (सर्वा दिश्चो विदिश्वः) 'श्राभादि'
(सर्वता भास्य) ।

त्रथ दितीयामाइ,—"सं चेथ्यसाग्ने प्र वेधियेनमुच तिष्ठ
महते येभगाय। मा च रिषद्पसत्ता ते अग्ने ब्रह्माणसे यवसः
सन्तु माइन्ये^(१)" दृति। हे 'अग्ने' लं 'सम्'-'दृथ्यस्त' 'च' (स्वसमिष दोत्रो भव)। 'एनं' 'प्र'-'वेधिय' 'च' (यजमानं कर्मानुष्ठानाय प्रवृद्धं कुद्ध)। 'महते माभगाय' 'उत्'-'तिष्ठ' 'च' (यजमानस्ना-त्यन्तसाभगार्थमृद्युकोऽपि भव)। हे 'अग्ने' 'ते' (तब) 'उपसत्ता' (परिचारकः) 'मा' 'रिषत्' 'च' (मा हिंस्नातां)। किञ्च 'ते'

^{*} दीदिष्ट इति संचितानुसारी पाठे। अवितुं युक्तः ।

(सदीया) 'त्रञ्जाणः' (त्राञ्जाणाः) ऋतियाजमानाः 'यश्रमः सन्तु' (यश्र-खिनो भवन्तु)। 'त्रम्ये' (तत्परिचर्याविमुखाः) यश्रखिनो मा भूवन्।

श्रय हतीयामाइ,—''लामग्ने हणते ब्राह्मणा इसे त्रिवा श्रमे मंत्रणे भवा नः। सपक्षहा नो श्रमिमातिजिच खे गये जारुद्मप्रयुक्तन्^(२)'' इति। हे 'श्रम्ने', 'इसे' 'ब्राह्मणा' स्टलिग्-यजमानाः लां 'हणते' (सम्भजनो, श्राराधयिता)। हे 'श्रम्ने' 'नः' (श्रमाकं) 'संवर्णे' (श्रपराधानामास्कादने) निमित्तभते यति 'श्रिवः' (श्राम्तः) 'भव', श्रपराधं मा प्रकटयेत्यर्थः। किञ्च 'नः' (श्रमाकं) 'सपत्रहा' (वैरिघाती) 'श्रमिमातिजिन्' (पापजय-कारी च) भ्रता 'खे गये' (खकीये स्टहे) 'श्रप्रयुक्कन्' (प्रमाद-मकुर्वन्) 'जारुहि' (सावधाना भव) श्रसाद्धितं विचारयेत्वर्थः।

त्रथ चतुर्थीमाइ,—''इ हैवाग्ने त्रथि धार्या रिंग मा ला निक्रन् पूर्विचितो निकारिणः। चनमग्ने सुवममस्त तुम्बमुपसत्ता वर्धतां ते त्रनिष्टृतः(४)'' इति। हे 'त्रग्ने' 'इ हैव' (ग्रष्ट एव) 'रिंखं' (धनम्) 'त्रिधि'-'धारय' (त्राधिकःन सम्पाद्य)। 'पूर्वेचितः' (ये श्रक्कालोऽपि पूर्वमग्नेखेतारः, ते) त्रक्कान् प्रति 'निकारिणः' (निराकर्तारो स्ंला) लाम् श्रक्काभिश्वीयमानमिश्नं 'मा' 'निकन्' (मैव निराक्तर्वन्तु)। हे 'त्रग्ने' (त्रव) 'चनं' (बलं) 'सुयम-मस्तु' (सुखिरं भवतु)। 'ते' (त्रव) 'उपसत्ता' (परिचारकः) 'श्रनिष्टृतः' (केनापि नितरामिश्वितः सन्) 'वर्धताम्'।

ं त्रय पद्ममीमार,—''चनेणाग्ने खायुः सूर्यस्य मिनेणाग्ने मिन्धेये यत्त्व । सर्जातानां मध्यमस्या एधि राज्ञामग्ने विश्वो

दीदिष्ठीष्ट(६)'' इति। हे 'म्रग्ने', 'मनेष' (तदीयेन नलेन) 'बायुः' (श्रसादीयं त्रीभनमायुः) 'संरभख' (संरच, श्रायुःमंरचचे त्रप्रमत्तो भव)। दे 'त्रग्ने', 'मिनधेये' (मिनावामस्नाकं धार्षे) 'मिचेष' (श्रन्यइय्ह्रोन चिन्तेन) 'यतस्व' (प्रयक्षं खुरू)। श्रिक्षा यह प्रजापतेर्मुखता जातलार् बाह्यवा चग्नेः यजाताः, तेर्वा 'मध्यमक्ता एधि' (मध्यमे प्रदेशे श्वविद्यता भव) सर्वदा त्राञ्चणान् याजयेत्वर्थः। इत्यतेऽचेति इता बजाः; तिविधायं ते इवास विद्वाः, विद्वान् पर्दतीति 'विद्यः'। हे 'प्रग्ने', सं 'इइ' (भूमा) 'राजां' 'विद्यः' (विविधयज्ञवर्णकः सन्) 'दीदिधि' (श्वतित्रयेन दीषख)।

त्रय वहीमाइ,--"यति विद्वा त्रति क्विधाः त्यवित्तमत्वरा-तिमग्रे। विया स्रग्ने दुरिता सद्दखाथासाभ्य र सद्द बीराष्ट्र रियं दाः^(९)" इति । निक्कष्टानि य-त्रूकरादिजयानि जिहीते प्राष्ट्रीति चैर्दुरितै:, तानि दुरितानि इकाराक्तेन निष्-प्रब्देना-चने । प्ररीरमावणादि हेतवा रागविष्ठेषाः स्त्रिध्-प्रब्देने ।-चनो । हे 'त्रग्ने', 'निहा' (द्रितानि) 'त्रति"-सहस्व' (त्रतिप्रयेन विनात्रय)। 'स्त्रिधः' (रागांख) 'त्रात'-'सदस्य'। 'त्रचित्तिं' (कर्मानुष्ठानविषयमज्ञानं) च 'च्रति'-'सद्ख'। 'च्ररातिं' (कर्म-विष्नकारिषं जनुं) च 'त्रति'-'सहस्त'। हिमन्दोऽपित्रब्दार्थः। किं बज्जना, हे 'श्रग्ने', विश्वान्यपि दुरितानि (श्रनिष्टकराणि) 'सइस्त' (विनाजय) । 'ग्रथ' (ग्रनन्तरम्), 'ग्रस्तभ्वं) 'सइवीरां' (वीरै: पुनै: बहितां) 'रचिं' (धनं) 'दाः' (देहि)।

श्रम सप्तमीकार,—''त्रनाध्यो जातवेदा त्रनिष्टृतो विदा-स्त्रो स्वयद्दिद्दीर । वित्रा त्राज्ञाः प्रमुखनान्पोर्भियः जिवाभिरय परि-पादि नो रुधः(०)'' दति। हे 'त्रग्ने', त्वम् 'द्रह्' (कर्मक्ष) 'दीदिहि' (दीप्पत्त)। 'त्रनाध्यः' (दतः परं केनाष्यध्वंषीयः), 'जातवेदाः' (उत्पत्त्रसमस्तजनदभिज्ञः), 'त्रनिष्टृतः' (दतः पूर्वमपि केनाष्यद्वितः), 'विराट्' (विविधं राजमानः), (स्वयं वसं विभन्ति) 'स्वयःत्'। किञ्च यथोक्तविशेषस्विष्टस्यं 'जिवाभिः' (श्रानाभिरनुपद्दृष्टिभिः) 'त्रयः' (त्रस्मिन् कर्मक्षि) 'नः' (श्रस्मान्) 'रुधे' (त्रभिष्टद्भये) 'परि-पादि' (सर्वतः पालय)। किं सूर्वन्?—'विश्वा त्राज्ञाः' (निविद्धात्रर्णविषया सर्वास्तृष्णाः) 'मानुवीर्भियः' (मनुखेषु प्रसन्ताः खाध्यादिभीतीस्र) 'प्रमुद्धन्' (प्रकर्षेत्र निवारयन्)।

षयाष्ट्रमीमार,—"वृष्ट्यते स्वितर्वेधियेन् स्ट्रिक्तं चित् सम्मराष्ट्र स्ट्रिक्काधि। वर्धयेनं महते सेभगास विश्व हन मनु-मदम्तु देवाः (ह)" इति। श्रव वृष्ट्यतिस्विष्टक्रव्यविद्यपरी, सामिधेनीनामाग्रेयलात्। वृष्ट्यतिस्विष्टक्यां तुस्त्र हे श्रग्ने, 'एनं' (यजमानं) 'बेधिय' (कर्मेषि वृद्धिममां जुद्य)। 'संत्रितंपित्' (पूर्वनेव वित्रितवृद्धिमपि) 'एनं' 'सम्मरां' 'संत्रिक्वाधि' (पुनर्-यतिष्रयेन सम्यगनुष्ठासनवमां सुद्य)। 'एनं' (यजमानं) 'महते' 'साभगाय' 'वर्द्धय'। 'वित्रे' (सर्वेऽपि) 'देवाः' 'एनं' (यजमानम्) 'श्रन्भदम्तु' (समोचीनोऽस्वित्ति इस्यम्)।

भय नवनीमार,-- "समम्भादाद्ध यह् समस बृहसाते सभि-

मसीरमुद्धः । प्रत्यो इतामित्रना मृत्युमसात् देवानामग्ने भिषजा मसीभः (८)" इति। 'भ्रयः'(भावः), 'त्रमुत्त' (खर्गे) 'भ्रूयः', 'त्रमुत्रभूयः', खर्गे चिरावस्तानमित्यर्थः । पद्ममी निमित्तार्था । त्रधक्रन्दे धकारयुक्त इदानोमित्यस्त्रिक्षं वर्त्तते । हे बृहस्रतितुक्त अग्ने, 'त्रमुत्रभूयात्' (खर्गे चिरावस्त्रानं निमित्तीक्तत्य) 'त्रध' (इदानीं) 'यमस्राभिक्रस्तेः' (यमसम्बन्धिहंसानिमित्तात् पापात्) त्रस्तात् 'त्रमुद्धः' (मोचितवानिस्त) इति 'यत्', तेन त्रस्ताकं पारस्ते।किक-विषये चिन्ता नास्तीति श्रेषः । हे 'त्रग्ने', 'देवानां' भिषजी त्रिस्ते। देवा 'श्रयोभिः' (स्वकीयमित्तिः) 'त्रस्तात्' (यजमानात्) 'स्त्युं' 'प्रत्योद्धतां' (त्रपस्त्युमिष्ट खेनके निराकुह्ताम्)।

त्रष दश्रमीमाइ,—"उद्यं तमसस्यित्पक्षको क्योतिहत्तरं। देवं देवचा सर्थमगन्त्र क्योतिहत्तमम्(१०)" इति । 'वयं' 'तमसः' 'उत्तरं' 'क्योतिः' (तमसे विनाशकलेनोत्क्रष्टमग्निसन्धि क्योतिः) 'अत्'-'परिपक्षकाः' (उत्कर्षेष सर्वते। (वस्तेषक्षक्षक्षः), 'देवचा' (देवेषु मध्ये) 'स्वयं' 'देवं' (स्वयंक्षेष वर्त्तमानमग्निसम्बद्धसेव) 'उत्तर्मा' 'क्योतिः' 'त्रगक्षा' (प्राप्ताः साः)।

त्रव विनियोगसङ्गृहः,---

यमास्या यामिधेन्यः खुर्दश्रता श्राग्निके पत्ना । इति यायमाचार्यविर्धायते माधवीये वेदार्थप्रकात्रे छच्ण-यजुःमंहिताभाष्ये चतुर्थकाण्डे प्रथमप्रपाठके यप्तमाऽनुवाकः॥०॥ जुर्द्धा चेस्य स्मिधा भवन्युद्धा युका यो ची श्यु-ग्रेः। युमत्तमा सुप्रतीकस्य सूनाः (१)। तनूनपादसुरा विश्ववेदा देवा देवेषु देवः। पृष्य चानिक्त मध्या धृतेनं(१)। मध्या युद्धं निक्षसे प्रीणाना नर्गयश्सी श्रामे। सुकहेवः संविता विश्ववारः (१)। श्रच्छायमेति यवसा धृतेने ड्राना विश्ववारः (१)। श्रच्छायमेति यवसा धृतेने ड्राना विश्ववारः (१)। श्रच्छायमेति रेषु प्रयत्सु (१)। स यश्चदस्य महिमानमग्रेः संः॥ ॥१॥

ई मृन्द्रासुं प्रयसंः। वसुश्चितिष्ठा वसुधातमञ्च । द्वारी देवीरम्बस्य विश्वे ब्रुता दंदन्ते श्रुग्नेः। उक् व्य-चसो धाना पत्यमानाः । ते श्रस्य येष्वेणे द्वि न योनीवुषासानक्ता । दुमं युक्तमेवतामध्वरं नः (०)। दैव्या द्वातारावूर्द्धमध्वरं ने । ऽग्ने श्विक्ताम्भि येणीतं। क्षणुतं नः स्विष्टं । तिस्रो देवीर्वेष्ट्रं रेद् संदन्त्वड़ा सरस्वती॥२॥

भारती मृद्दी रेणाना(१)। तर्मस्तुरीपमद्गृतं पु-बृक्षु त्वष्टा सुवीरं ग्रायस्पेगवं विष्यंतु नाभिम्सो(१०)। वर्नस्पतेऽवस्त्रजा र्गाणस्त्रमना देवेषु। श्रामिष्ट्यः श्रीमृता स्द्याति(११)। श्रुप्ते स्वाद्यां क्रणुद्धि जातवेद् इन्द्रीय दुर्थं। विश्वे देवा दुविरिदं जेवन्तां(१९)। हिरुख्यगुर्भः समेवर्त्तुताग्रे भूतस्य जातः प्तिरेक श्रासीत्। सदीधार पृष्टिवीं यां॥३॥

जुतेमां कसी देवायं हुविषा विधेम(११)। यः प्रा-णुता निमिष्ता महित्वैक इद्राजा जगता बुभूव। य ईशे ऋस्य हिपद्श्वतुंष्पद्ः कसी देवार्य हिवर्षा विधेम(१४)। य चात्मदा बेलुदा यस्य विश्वे उपासंते प्रिष्षं यस्य देवाः। यस्यं क्रायासतं यस्यं सृत्युः कसौ देवायं द्विषा विधेम(१५)। यस्येमे द्विमवन्ता मद्वि-ला यस्यं समुद्र रसया सुष ॥ ४ ॥

आइः। यस्थेमाः प्रदिशे यस्य बाह्र कसी देवाय ष्ट्रविषा विधेम^(१९)। यं क्रन्दंसी अवंसा तस्तभाने असी-र्षेतां मनेसा रेजमाने। यचाधि स्तर् उदिता व्येति कसौ देवायं इविषा विधेम (१०)। येनु चै। बुगा प्रथिवी चे हुद् येन सुर्वः स्तिभृतं येन नार्कः। या श्रुन्तरिक्षे रजेसी विमानः कसी देवार्य इविषा विधेम(१०)। आपा इ यक्ष इतीर्विर्श्व ॥ ५ ॥

भायन् दश्चं दधाना जनयंन्तीर्ग्निं। तता देवा-नां निरंवर्त्तासुरेकः कसी देवायं इविषा विधेम(१८)। यिखुदाप्री मिंडुना पुर्यपंश्यद्धं द्धाना जुनयन्ती-र्जिं। या देवेषधिंदेव एक चासीत् कसी देवार्य ह्विषा विधेम^(२°) ॥ ६॥

मुग्नेः स। सरंखिती। यां। सुष्ट। विश्वं। चर्तु-स्त्रिःश्वच॥ ८॥

द्रति तैत्तिरीयसंहितायां चतुर्थकाएडे प्रथमप्रपाठके ऋष्टमाऽनुवाकः॥ ॰॥

सप्तमेऽनुवाके अग्निचयमाङ्गभूते पंधा सामिधन्योऽभिहिताः।
अचाष्टमे प्रयाजयाच्या आप्री-नामका उच्यन्ते। कच्यः, 'ऊर्ड्वा
अस्य समिधा भवन्तीति प्रयाजानामाप्रिया भवन्ति' इति। तव
प्रयमामाह,—''ऊर्ड्वा अस्य समिधा भवन्युर्द्धा ग्रुका मोचीः स्याः। सुमन्तमा सुप्रतोकस्य सनोः'(१)'' इति। प्रयाजानां
सर्वेषामग्निविषेषा एव देवताः। तत्र प्रथमप्रयाजदेवतामग्निविषेषस्पामयं समिक्कस्य आचष्टे, सम्यगिन्धे (प्रकावते) इति खुत्पन्तेः।'
बद्धवक्तं पूजार्थम्। 'श्रस्य' 'श्रग्नेः' खरूपविष्ठेषभ्रताः 'सिमधः'।
समिन्नामका देवाः 'ऊर्ध्वा' 'भवन्तु' (श्रसाक्त्रेयोऽर्थमृद्युक्ता
भवन्तु)। तद्यागात् 'ग्नोचींषि' (ज्वासाखरूपाणि) 'ऊर्ध्वा'
'भवन्तु' (उन्नतानि भवन्तु)। कोदृष्टानि ग्नोचींषि?—
'ग्रुका' (भाखराणि), 'द्युमन्तमा' (श्रतिष्ठयेन दोप्तिमन्ति)।
कीदृष्ठस्याग्नेः?—'सुप्रतीकस्य' (सुमुखस्य)। 'स्रनेः' (पुत्रवत्
हितकारिणः)।

श्रथ दितीयामाइ,—''तनूनपादसुरे। विश्ववेदा देवे। देवेषु देव:। पथ श्रानिक मध्या घृतेन(१)" इति। 'तनूनपात्' (तनूर्व पातयति विनाशयतीति 'तनूनपात्', श्ररीरपासक इत्यर्थः। एतस्रामकः किस्दिशिविशेषो 'मध्या' (मधुरेष) 'घृतेन' 'पघ' 'श्वानित' (खर्गशधनलेन तत्तत्त्वार्गभ्रतानि इवेषि घृतेन श्वाकानि करोत्। कीदृशः तनूनपात्?—(श्वस्त्रम् प्राणान् राति ददानीति) 'श्वसुरः', श्वत एव श्वरीरपासक इति युक्तम्। (विश्वं वेत्तीति) 'विश्ववेदाः', 'देवः' (द्यातनात्मकः, मनुख्यैः पूजनीयो वा)। न केवसं मनुख्येस्वेव 'देवः', श्विप तु 'देवेषु' श्रष्णिको 'देवः'।

भाष स्तीयामाइ,—''मध्या यशं नचसे प्रीक्षाना नराश्रश्चा भग्ने। सुद्धदेवः सिक्ता विश्ववारः (१)'' इति। नरेः ग्रंसनीयः 'नराश्रंसः'। एतचामकः कश्चिदग्निविश्वेषः। हे 'श्रग्ने', लं 'नराश्रंसः' भूला 'मध्या' (मधुरेष) घृतेन 'प्रीक्षानः' (स्व्यम्) इसं 'यशं' 'नचसे' (प्राप्नोषि निर्वर्त्ति विश्वसीत्यर्थः)। कीदृश्चे। नराश्रंसः ?— (सुदु करे।ति, वैकस्यं परिहरतीति) 'सुक्तत्', 'देवः' (श्वोतनात्मकः), 'स्विता' (कर्मस्यसाकं प्रेरकः), (विश्वानि दुरितानि वार्यन्तौति) 'विश्ववारः'।

त्रथ चतुर्थीमाइ,—''त्रक्कायमेति प्रवसा घृतेनेड्राने। विक्रिनंससा। त्रिप्तिष्ट खुची त्रध्यरेषु प्रयस्तु (४)'' इति। 'ईड्रानः' इत्याप्तिविश्रेषस्य वाचकं नामदेयं, स्तुतिप्रियलात् ईड्रान इत्यु-ध्यते। एतन्नामकः 'त्रयं' 'विक्रिः' 'श्रवसा' (बलेन) युक्तः सन् 'त्रक्क' (यज्ञं प्राप्तुम्) 'एति' (गक्किति)। तम् 'त्रप्तिं' 'त्रध्यरेषु' 'प्रयस्तु' (यज्ञेषु प्रवर्त्तमानेषु) 'सुचः' 'घृतेन' (जुक्किनेष्टेन) 'गमसा' (नमस्कारेस्) च परिचरेसेति श्रेषः।

श्रथ पश्चमोमाइ,—''स यचदस्य महिमानमग्नेः सः। ई मद्रासु प्रथमः। वसुस्रेतिष्ठा वसुधातमस्य (॥)'' इति। वर्ष्ट्र गंभकः कश्चिद्गिविश्रेषः। प्रकृते, वर्ष्ट्रिग्न श्राच्यस्य वेतिति मन्त्रे प्रसिद्धनायकेन तस्त्रे तस्त्रस्य पराम्यस्यते। 'सः' (तादृष्ठः) वर्ष्ट्र नामकोऽग्निविश्रेषः, 'श्रस्य' सामान्यकृपस्त्राग्ने-किस्मानं 'यचत्' (यजतु, पूज्यतु)। 'स ई' (म एव वर्ष्ट्र नामको विक्रःः) 'मद्रासु' (इर्षजनिकासु स्तिक्पासु क्ष्तु) 'प्रथसः' (प्रयासवान् श्रधिकपरिचर्यायुक्त दत्यर्थः)। किञ्च श्रयं वर्ष्ट्र नामको विक्रः 'वसुः' (प्राण्निं वामयिता) 'चेतिष्ठः' (श्रति-श्रयेनाभिश्रः), 'वसुधातमस्य' (यजमानार्थे धनस्य धारयिता)।

श्रय षष्ठीमाइ,—"दारे। देवीरव्यस्य विश्वे त्रता ददनी श्रवे:। उद्ययको धाला पत्यमानाः(())" दति। दार्बक्षेत्र स्त्रीमूर्त्तिधरः कश्चिदग्निविशेष उत्यते। पूजार्थं बद्धवक्तम्। या देवो दार्बब्दाभिधेयाः प्रथममग्नेकितमाक्ति, तत् 'दारो देवीरन्' 'विश्वे' (भर्वे यजमानाः) 'श्रस्थ' श्रग्नेः सम्बन्धीति त्रतानि कर्माणि 'ददन्ते' (इविः प्रयक्तिः)। कीदृत्री-द्वारः?—'उद्यक्तः' (विस्तीर्णगतोः), 'धाला पत्यमानाः' (धाला तेजमा पत्यमानाः, प्रायमाणाः) तेजस्तिनीरित्यर्थः।

श्रय सप्तमीमाइ,—"ते श्रयः योषणे दिखेन योनावृषासा-नक्ता। इमं यज्ञमवतामध्वरतः (०)" इति। 'खषासा' इत्युषः-कास्तरुपा काचिदग्रेर्मूर्त्तः; 'नका' इति च राचिरूपा काचि-

^{*} प्रसिद्धवाचकान इति पाठी भवितुं युक्तः।

द्ग्नेर्मूर्त्तः, खवासा च नक्ता च 'खवामानक्ता'। एतन्नामके खे 'ग्रस्थ' ग्रग्नेर्मूर्त्ता, ते 'नः' (ग्रस्मदीयं) 'दमं यज्ञं' 'योनी' (ग्रस्मिन् स्वाने) 'ग्रध्वरं' (हिंमारहितं) यथा भवति, तथा 'ग्रवतां' (रचतां)। कीदृष्टी ते?—'योषणे' (परस्परमित्रिते)। तथ दृष्टान्तः,—'दिखे न' (दिखे दव) यथा हुस्नोकस्थे मूर्त्ती भारमाने भवतः, एवमेते मूर्त्ती।

श्रधाष्टमीमाइ,—"दैवा हे।तारावूर्डमध्वरं ने। श्रीजिङ्कामिश गृष्टीतं । छणुतं नः खिष्टिम्(म)" इति । हे।हश्र ब्दाभिधेयै। दाविश्विषये। हे।हलश्च दिविधं, देवं मानुषश्च ; तन्तेते। हे।तारी देवी। हे देवी 'हे।तारी' 'श्रग्नेः' 'जिङ्कां' (ज्यालाम्) 'श्रिं'-खच्च प्रवन्तं,'ऊर्ड्वे'(श्रत्युच्छ्तं) 'नः' श्रध्वरं'(श्रस्मदोयिमिनं यश्चं) 'रुणीतं' (प्रख्यापयतं)। किञ्च 'नः' (श्रस्मदर्थे) 'खिष्टिं' 'छणुतं' (वेगुष्यं परिश्वत्य एतामिष्टं श्रीभनां कदतम्)।

श्रथ नवमीमाइ,—"तिस्रो देवोर्बर्षिरा द्रद्र सदिन्ति । पर-स्रती भारती । मद्दी राणाना (८)" दिति । 'द्र्डा-सरस्रती-भारती'-त्यादिशब्दवाच्यासिस्रो देव्योऽग्निमूर्त्त्रया याः सन्ति, ता 'द्रदं' 'वर्षिः' (द्रमं यज्ञं) 'श्रा-''सदन्तु' (प्राप्नुवन्तु) । द्र्डा-सरस्रती-भ रतोत्यादीनां प्रत्येकं विशेषणमुच्यते, 'मद्दी' (मद्दती), 'ग्रणाना' (यज्ञं प्रस्थापयन्ती) ।

श्रय दश्रमोमाइ,—''तत् नस्तरीपमहुतं पुरुचु लष्टा स्वीरं। रायसोषं विष्यतु नाभिमस्रो^{(१०})'' इति। 'लष्टा'—इति कश्चि-

^{*} इंख्यिभगमिति सर्वत्र पाठी न सम्यक्।

द्शिविशेष:। वे। उथम् 'श्रसी' (श्रसास) 'तत्' ऐश्रयी 'विष्यतु' (विश्रेषेणाविसतं करोत्) सम्पूर्ण करोत्तित्यर्थः। कौदृश्रमेश्वयं ?—'नः' (श्रसाद्यें), 'तुरीपं' (ह्राणमेव प्राप्यमाणं), 'श्रह्धतं' (गवाश्रादि-वाइस्थेनाश्चर्यरूपं), 'पुद्रसु' (वइभिमेनुयी: सूयते श्रब्दाते प्रश्रस्ते द्रित 'पुद्रसु',) (श्रोभना वोराः पुत्रा यस्मिन्, तत्) 'सुत्रीरं', (रायो धनस्त, पोषः पृष्टिर्यस्मिन् तत्) 'रायसोषं'। 'नाभिं' (रयचक्रगतानाम गर्णा नाभिमिव सर्ववा बन्धूनामाश्रयभूतम्)।

श्रीकादश्रीमाइ,—"वनस्यतेऽवस्त्रा र्राणः त्याना देवेषु । श्रीप्रच्यार्श्वश्र श्रीमता सदयाति(११)" इति । वनस्यतिनामकः कश्चि-द्याविभेषः । दे 'वनस्यते', लं 'र्राणः' (दानभोलः सन्, रम-माणे वा 'देवेषु' (श्रस्माभि धृष्टचेषु) 'त्याना' 'श्रवस्त्रा' (श्रस्म-दृत्तं द्वः स्वयमेव स्थापय) । श्रस्माभिः प्रार्थितेऽयम् 'श्रीमः' 'श्रीमता' (दृरितोपश्रमस्य कर्त्ता सन्) 'इवं' सदयाति' (श्रस्म-दीयं इविदेवेषु स्रदयत्) ।

श्रथ दादशीमाइ,—''श्रशे खादा क्रणुंच जातवेद इन्हाय इयं। विश्वे देवा इतिरिदं जुषन्ताम् (१२)'' इति। खादा-काराभिमानी कश्चिदग्निविशेषः। तादृश्च हे 'जातवेदः' 'श्रशे', इन्हार्थम् इदं 'द्यं' 'खाद्दा क्रणुंदि' (खाद्धतं कुर्)। 'विश्वे देवाः' (शर्वेऽपि देवाः), तदा-तदा मया दीयमानम्'इदं' 'हितः' 'जुषन्ताम्'। यद्ययेकादशैव प्रयाजाः, तथापि दितीयद्यतीययो-

^{*} गाभिरिव इति सर्वेत्र पाठी न सम्म**न्**।

र्मन्त्रयोः पुरुषभेदेन ध्ववस्थितत्वानान्त्राणां दादत्रमञ्ज्ञा न वि-रुधते। या च द्यवस्था स्त्रचकारेण दर्जिता,—'नराज्ञण्यो दितीयः प्रयाचे। विसष्ट इर्जनकानां, तनूनपादितरेषां गोचाणाम्' रित ।

कत्यः, 'हिरखगर्भः समवर्त्तताचे इति खुषामाघारयित' इति।
पाठखः,—''हिरखगर्भः समवर्त्तताचे भूतख जातः पितरेक
प्रामीत्। स दाधार पृथिवीं द्यामृतेमां कसौ देवाय हिवधा
विधेम(१९)" इति । हिरखे ब्रह्माण्डक्षे गर्भक्षेणाविष्यतः
प्रजापितः 'हिरखगर्भः', स च 'भूतखः' (प्राणिजातखः) 'त्रये'
'समवर्त्तत' (प्राणिजातोत्पत्तेः पुरा खयं प्ररीरधारो बभूवः)। स
च 'जातः' (जत्यन्नमातः) 'एक' एव जत्यत्यमानस्य सर्वेख जगतः
'पितः' 'त्रामीत्'। स एव 'पृथिवों' 'द्यां' (विस्तोणीं दिवं)
'दाधार' (धतवान्)। 'छत' (श्रिप च) 'इमां' (भ्रिमिं) 'दाधार',
तादृष्ठायं 'कसौं' (प्रजापतये) 'देवाय' (प्राघारक्षेण) 'हविषा'
'विधेम' (परिचरेम)।

कन्यः, 'यः प्राणते। य श्रात्मदा इति प्राजापत्यस्य इति।
यः पग्नः प्राजापत्यसस्येते याज्यानृताको इत्यर्थः। तत्र वपायां
दे स्वीः, पुरे। द्वां दे स्वीः, इविषि दे स्वाविति षड् स्वीः
याज्यानृताक्याः। तत्र प्रथमामादः,—''यः प्राणते। निमिषते।
महितेक इद्राजा जगते। वभ्रव। य ईशे श्रस्य दिपदश्चतुष्पदः
कस्ये देवाय इविषा विधेमं(१४)" इति। 'यः' (प्रजापितः) 'एक
दत्' (एक एव) 'प्राणतः' (श्वासयुक्तस्य), 'निमिषतः' (चनुर्निमेषयुक्तस्य) सर्वस्य 'जगतः' 'महिला' (समहिन्दा) 'राजा' 'मश्रव'।

भत एव 'च:' (प्रजापितः) 'श्रख' 'दिपदः' (मनुखादेः) 'चतु-व्यदः' (पश्चादेः) च 'र्रेज्ञे' (नियमनाय समर्थेः भवति), तादुः वाच 'कसी देवाय इविषा ब्रिधेम'।

त्रच दितीयामाइ,—"य त्रात्मदा बलदा यस विश्व उपा-सते प्रशिषं यस देवाः। यस हायास्तं यस सत्यः कसी देवाच इविषा विधेम^(१५)'' इति । 'यः' (प्रजापतिः) 'श्रात्मदाः' (बरोरेषु जीवरूपेणाताप्रदः), 'बलदाः' (सामर्थपद्य)। 'यस' (प्रजापतेः) 'प्रशिषं' (श्राज्ञां) 'विश्वे' (सर्वे मनुखाः) 'उपासते' (बातिवर्त्तके)। किञ्च 'यस्यं' 'प्रशिषं' 'देवाः' श्रय्णासते। 'ब्रस्टतं' (माचरूपं) 'यस हाया' (यस प्रजापतेः हायावत् साधीनं), 'सृत्यः' (प्राणिनां मरणमपि) यस्य कायेव खाधीनः; तादृशाय 'कसी देवाय इविषा विधेम' इति।

श्रय हतीयामा ह,—"यस्येमे हिमवन्ता महिता समुद्रः राया सद। त्राजः यखेमाः प्रदिशी यस बाह्र कसी देवाय इविषा विधेम(१६)" इति। 'इमे हिमवनाः' (हिमवता-मुखाः पर्वताः) 'यस्थ' 'महिला' (महिखा) वर्त्तने । 'र्सया' (भ्रम्या) 'सद्द' त्रवस्थितं 'समुद्रं' 'यस्य' खाधीनम् 'त्राज्ञः'। 'यस्माः प्रदिशः' (हमा दृष्यमानाः, प्रदिशः प्राच्यादिदिशः) यस श्रधोना 'त्राज्ञः'। 'यस्य' (प्रजापतेः) 'बाह्न' धर्माधर्माविति श्रेष:। तादृशाय 'कस्ते' इत्यादि।

श्रय चतुर्थीमा इ,—"यं क्रन्दशी श्रवशा तस्त्रभाने श्रम्ये सेतां मनमा रेजमाने। यत्राधि सर उदिता स्रोत कसी देवाय हितवा विधेम(१०)" इति । प्रजापतेः क्रन्दनाद्रोदनादुत्पन्ने हावाष्ट्रिय्यो 'क्रम्ट्सी', स्नत एवान्यवास्वातम्, 'यदरादीत् तदनयोः रोदस्तम्' इति । ते 'द्यावाष्ट्रिय्यो' 'स्रवसा' (रक्षणेन निमित्तने) 'यं' (प्रजापितं) 'मनमा' 'स्रभ्येचेतां' (स्रभित ईचणं हतवत्यो) स्रयमावां रचित्तत्याज्ञासनं क्रतवत्यावित्यर्थः । कीदृश्या द्यावाष्ट्रिय्यो ?—'तस्तभाने' (देवानां मनुष्याणाद्यावस्थानाय स्विभिते), 'रेजमाने' (दीप्यमाने), 'स्ररः' (स्रर्यः) 'यवाधि' (यस्मिन् प्रजापताविधक्रत्य) 'उदिता योति' (उदयविषये विविधं मक्कित), तादृशाय 'कस्मै' इत्यादि ।

मध पश्चमोमाइ,—''येन द्याह्या पृथिवी च दृढ़े येन स्वः स्विभातं येन नाकः। यो मन्ति रजसे विमानः कसी देवाय इविषा विधेम (१०)" इति। 'उया' (पृष्णरहितैः प्राणि-भिर्द्र प्रापा) 'योः' 'पृथिवी' चेत्येते उभे 'येन' (प्रजापितना) 'दृढ़े' कते। 'स्वः' (स्वर्गसुखं) 'येन' (प्रजापितना) 'सिभितं' (पृष्णकृत्सु व्यवस्वापितं)। 'नाकः' (दुःखरहिता मे।चः) 'येन' (प्रजापितना) भ्रानिषु स्वभितः। 'यः' च प्रजापितः मन्ति स्वः स्वि।के 'र्जसः' (राजसस्य यचगत्थवादेः) 'विमानः' (विमाता, निर्माता)। तादृष्ठाय 'कसी' इत्यादि।

श्रथ षष्ठीमाइ,—"श्रापा इ यक्तहतीर्विश्वं। श्रायन् द्रं दथाना जनयन्तीर्ग्नां। तता देवानां निरवर्त्ततासुरेकः कस्ते देवाय इविषा विश्वेम^(१८)" इति। 'यत्' (यस्य प्रजापतेरनुगदात्) 'महतोः' (महत्यः) 'श्रापः' 'विश्वम्' 'श्रायन्' (विश्वाकारं प्राप्ताः)। मत एव सार्थते, 'मप एव समर्जादी तासु वीर्यमवास्त्रत्"। तद एउमवद्धीमम्' इति । को दृष्ण भापः ?—'दचं' (मिश्रिचयने सुमलं यम्भानं) 'दधानाः' (धारयन्थः, जत्पादयन्थः), तथा चेतव्यं 'मिश्नं' 'जनयन्तीः' (खत्पादयन्थः) । 'ततः' (तसात् प्रजापतेः) 'देवानां' (सर्वेषां) 'मिसः' (जीवनचेतः प्राणः) 'एकः' 'निरवर्त्तत' (निष्पन्नः), तादृष्णाय 'कस्ते' इत्यादि । चेत्रम्क् षष्टी, इविषा याच्या ।

तंत्रेवान्यां विकल्पितां चाच्यामाइ,—''यिखदापे। मिहना पर्यप्रमहत्तं दधाना जनयन्त्रोरिंगं। यो देवेस्विधिदेव एक भाषीत् कसी देवाय इविषा विधेम^(१०)'' इति। 'श्रापः' इति दितीयावज्ञवचनं। 'यिखत्' (य एव प्रजापितः) पूर्वे करोत्या विश्वाकारेष परिणता महतीरपः 'खमिहना' (मिहिस्रा) 'पर्यं-पम्मत्' (श्रपां तथाविधमामधीय कटाचेण वीचितवान्)। कीदृत्रोरपः?—'दचं दधाना' 'श्रग्निं' 'जनयन्तोः'; पूर्ववद्वास्थेयम्। 'यः' (प्रजापितः) 'देवेषु' (सर्वेस्विधिकः) 'देवः' 'श्रासीत्'। तादृश्राय 'कसी' इत्यादि।

एतसिन् "ऊर्डा प्रस्र" दत्यादावष्टमानुवाके प्रयाजयाच्या ग्राप्री-नामिकाः, ग्राघारमक्तो, याज्यानुवाक्यास्रोक्ताः । पूर्वसिनंस सप्तमानुवाके सामिधेन्योऽभिष्टिताः।तासामेतासामुभयविधानास्टर्ण पश्चप्रयोगान्तःपातिलेन पश्चविधिमन्तरेष व्याख्यातुमग्रकालात् पश्चविधिरादी च वक्तवः । तेभ्ये।ऽपि पश्चभः पुद्वशीर्षस्त्र पूर्व

^{*} मुदितमनुसृतिः वीजमवास्त्रत् इति पाठः।

सम्पादनीयत्वादादी तत्सम्पादनं विधन्ते,—"एकविश्वत्या मार्वे! पुरवज्ञीर्षमच्छेत्यमेथा वे मावा श्रमेथं पुरवज्ञीर्षममेधीरेवास्या-मेथं निरवदाय मेथं छला इरति" (५।१।८५०) इति। एकविंत्रतिमञ्जाकानि मावबीजानि खीकत्य तैर्युक्तं 'पुरुषक्रीवें! 'म्रच्क' (प्राप्तुम्) 'एति' (गच्छेत्)। तथा च स्नव्यारेणोक्तम्, 'सप्तेकविश्रव्यतिं वा माषानादाय पुरुषशिगेऽच्छेति वैश्वस्त राजन्यसः च इषु इतस्या भनि इतस्य वा माषानुपन्युष्य ऋयं योऽवि यस न ददं जिर दित पुरुषियरः प्रचिक्षेतेन लमच प्रीर्घ्खाः नेधीति सप्तधा विद्यणां बस्त्रीकवर्णा शिर्सः स्थाने प्रति-निद्धाति' इति । माषास्तावदपूतलात् यज्ञानर्षः, पुरुषज्ञीवश्च त्रसृष्यनात् यज्ञानर्चम्। ततो यथा रजका मलक्रपेण जवेष वस्त्रमसमपनीय ग्रोधयन्ति, एवमचापि 'त्रमेधीः' 'माषैः' ग्रिरीः निष्ठम असेध्यभागं निःसार्यं तिक्करो यज्ञयोग्यं कला समा-मयति ।

माषसङ्खां प्रशंसति,—"एकविश्रश्रतिभवत्येकविश्रशा वै पुरुषः पुरुषस्वाष्ट्री" (५।२।८ अ.०) इति । एकविंवतिसङ्खापूरकलं पुरुषसान्यवासातं, 'दश इस्या श्रङ्गलयो दश पद्या श्रातीकः विश्वः' द्ति । श्रवापि माषसञ्ज्ञा पुरुषप्राष्ट्रे सम्पद्यते ।

भिरोक्कोदादूर्ड † भिरारहिते कबन्धे वस्त्रीकवपास्त्राप्य विधत्ते,-- "वृद्धं वा एतत् प्राणैरमेधं यत् पुरुषशीर्षः सप्तधा

^{*} याद्या इति उ. पु॰ पाठः।

[†] शिरुकेदादू ज्ञम् इति पाठो भवितुं युक्तः।

विद्यणां विश्वीकवपां प्रतिनिद्धाति सप्त वै श्रोर्षेष्याः प्राणाः प्राणेरेवेनत् समर्द्धयित सेध्यतायः" (५।१।८१०) रति । यत् क्रियं श्रिरसदेतत् प्राणेविंयुक्तवादसेध्यम्, श्रतसद्पनीय श्रन्ति सिरसः स्वाने प्रतिनिद्धाति, जीवतः पुरूषस्य क्रिरेगितस्किद्देषु सप्तसु स्वरं प्रतिनिद्धाति, जीवतः पुरूषस्य क्रिरेगितस्किद्देषु सप्तसु स्वरं प्रतिनिद्धाति, जीवतः पुरूषस्य क्रिरेगितस्किद्देषु सप्तसु स्वरं प्राणाः श्राणा श्राण स्वरं स्वरं भवत्येव । तत्र प्राणोपेततं 'सेध्यताय' सम्पद्यते ।

धदुक्तं स्वकारेक, 'थे। उस्र की छ्य (?) जगत इति तिस स्वरं षिटला श्रको यदुक्तं तिस्थिर्धमगायाभिः परिगायति' इति, तरेति इक्ते विस्थिर्भ मगायाभिः परिगायति इति, तरेति इक्ते विस्थित्ते,—''यावको वे स्ट्युक्त्यवस्थां यम श्राधिपत्यं परीयाय समगायाभिः परिगायति यमादेवेनद् हक्क्ते" (५।९। १९०) इति । 'हिर एक स्थान् सुधुरान्' इत्यादिमकोषासाताः, श्रक्तवापि कास्नान्तादिश्रव्देरासाता 'स्ट्रुक्त्यवः' 'यावक्तः' स्थान्तः' स्थान्तः 'वेषां' सर्वेषाम् 'श्राधिपत्यं' 'यमः' प्राप्ततान् । यमे। श्रीयते यासु स्वृ ता 'यमगायाः', तासां पाठेन यमसकः श्रात् 'एनत्' (पृष्ठपत्रिरः) 'हक्क्ते' (विर्जतं करे। मि*)। तास्य यमगायाः 'योऽस्य के। छ्य'-इत्याद्याः' श्रार्ण्य-काण्डे पिष्टमेधप्रपाठके समासाताः।

শ্বৰ देशितानां गाथानां मङ्कां विधत्ते,—"तिस्भिः परि-गायित चय दमे लोका एभ्य एवैनत् लोकेभ्ये। टङ्क्ते" (४।९। দেখ

^{*} करोति इति पाठी भवितुं युक्तः।

इति । 'एनत्' (ब्रिरः) 'लोकेभ्यः' पृथकृत्य खाधीनं करोतीत्यर्थः ।

प्रसङ्गात् पृद्धार्थं कि सिनिषेधं दर्भयति,—"तसाद्गायते न देवं गाया हि तद् रुष्क्रे" (५।९।८ प्र.०) दति। यस ब्राह्मणो याज-गाथापनप्रतिग्रहादोन् परित्यच्य गानेनेव जीविकां सम्पादयित, तादृश्राय ब्राष्ट्राण्य शास्त्रीयं 'देयं' किमपि न दद्यात्। 'हि' (यसात्) 'गाया' (गानविद्येव) 'तत्' द्रच्यम् श्रमेधं कला 'रुष्क्रे' (देविपरकार्येभ्ये। वर्जयित)। 'तसात्' तादृश्राय 'न देयम्'।

यदुक्तं स्वकारेण, 'त्रिग्निशः कामाय पश्चनासभते मुष्करान् प्राचापत्यमजं त्यपरमुपाकत्यासर्वभविष्णवस्तान्' इति, तदेतद् विधत्ते,—''त्रिग्निशः पश्चनासभते कामा वा त्रग्नयः कामानेवाव-द्रश्ने" (५।१।८००) इति। काम्यन्ते इति 'कामाः' पुत्रपत्रा-दयः, तद्भेतवः 'त्रग्नयः', तस्तात् 'कामान्' प्राप्नेत्येव।

एतेषु पग्रुषु कश्चिदिशेषं विधत्ते,—''थत्यशूश्वास्त्रभेतानवरद्वा श्वस्त पश्चवः खुर्यत् पर्यग्रिकतानुत्वृत्रद् यश्चवेशमं कुर्याद् यत्यः -स्वापग्रेद् यातयामानि शोषाणि खुर्यत् पग्रुत्नासभते तेनैव पग्रुत्नवर्त्ये यत्पर्यग्रिकतानुत्वृत्रति शोष्णामयातयामलाय प्राजा-पत्येन सः स्वापयित यश्चो वे प्रजापितर्यश्च एव यशं प्रतिष्ठाप-यित" (५।१।८श्व०) दति । श्ववेदं चिन्तनीयम्,—िकमाग्नेयाः पश्च एव न श्वास्त्रभाः, किंवा तान् पश्चनुपाकत्य पर्यग्निकत्या-दूर्धमुत्वृत्वेत्, श्वाद्वेतिस्त् समाप्तिपर्यन्तमनुतिष्ठेत्? दति । नाद्यः, पग्रुप्राष्ट्रभावप्रमङ्गात् । न दितीयः, मध्ये परित्यागेन यश्चभंश्व-प्रस्तुत्वात्। न हतीयः, श्ववेव श्वश्वर्थभ-दृष्णिवस्तानां गतसार्त्येन भाविन्यां चित्यामनुपधेयलप्रमङ्गात्। एतद्देषचयपरिद्वारायेत्यं कर्त्तव्यम्,—श्रालक्षेत्र, उत्सर्गेण च प्रथमदितीयदेषि न भविष्यतः। प्राजापत्येन द्वपरेण पद्मुना समापनाद्यञ्च संग्रक्षो मध्यमदेषि ऽपि न भविष्यतिः, यज्ञीत्यादकलात् 'प्रजापितः' 'यज्ञः' एव, तते। यज्ञक्षे प्रजापतावेव कियमाणं 'यज्ञं' 'प्रतिष्ठापयति' (समाप्यति)। दत्यमुपाद्वातलेन पश्चवा विद्यताः। श्रथानुवाकदयोज्ञा सम्ना व्याख्यातव्याः।

यद्यपि सामिधेन्यः पूर्वानुवानेताः, पूर्वानुष्ठेयासः , तथापि "श्रम्यर्हितं पूर्वम्" (२।२।३४ स्र॰वा॰) रति वैयाकरणे कन्यायेन प्रयाजयां ज्यानां प्रोतिदेहतनामभ्यदिततात् स्रचीकटा द्रन्यायेनाच्य-वक्तव्यवादा ता एव त्राप्तीः प्रथमं विधत्ते,—"प्रजापतिः प्रजा श्रस्जत स रिरिचाने। अन्यत स एता श्राप्रीरपय्यत् ताभिर्वे स मुखत त्रात्मानमात्रीणीत यदेता त्रात्रिया भवन्ति यत्री वै प्रजापतिर्यज्ञभेवैताभिर्मुखत श्रा-प्रीणाति" (५।९।८श्र०) इति। प्रजास्ट्री सामर्थस्थोपचीषवात् रिक्तोऽइमिति 'स' 'प्रजापतिः' 'श्रमन्यत', ततः सामर्थपूरका 'एता' 'श्राप्रीः' (मनसा विचार्य निञ्चितवान्)। ततः 'ताभिः' एव (त्राप्रीभिः) 'स' (प्रजापितः) यज्ञप्रारमा एव खात्मानं प्रीतमकरीत्। तथा प्रयाजानुष्टानार्थम् 'एता' त्राप्री-नामका ऋचो भवेयुः। त्रात्मानम् त्राप्रीखा-ह्येताभिरिति "ऊर्द्धा ऋख" दह्याचा ऋचः 'श्राप्रियः'। प्रजा-पतिजन्यतात 'यज्ञः' 'प्रजापतिः' एव ; श्रतः प्रजापतिवत् एतमेव 'यज्ञम्' 'एताभिः' ऋग्मिः 'मुखतः' एव ग्रीतं करोति ।

तासामाग्रीणां बद्धप्रकारक्कन्दस्तं पाठप्राप्तं प्रशंसित,—
"श्रपरिमितक्कन्दसे। भवन्यपरिमितः प्रजापितः प्रजापतेराष्ट्री"
(५।९।प्श्र ॰) इति । बद्धप्रकारक्कन्दस्तं चैवं द्रष्ट्यं, सर्वास्त्रीताक्विपदाः, श्रासामाद्या श्रन्यास्त्र पादा एकादशाचराः ; मध्यमः
पञ्चाचरः, षड्चरः सप्ताचराऽष्टाचरस्य पादः । ता एताः
पिपोस्तिकामध्यास्त्रिपदा उष्णिष्टः । "देश्या द्वातारावृद्धे" "तिस्रो
देवीः" इति च गायश्राविति ।

एवां छन्दमां मध्यमपदेषु यदेतत्तारतम्यं, तिहदं प्रज्ञंगित,—
"जनातिरिक्ता मिथुनाः प्रजात्ये" (५।१।८५०) इति ।
पञ्चाचरत्वमारभ्य श्रष्टाचरत्वपर्यन्तेषु उत्तरोत्तरापेचया पूर्वपूर्वस्य
जनतम्, पूर्वपूर्वापेचया द्वत्तरोत्तरस्य श्रितिरिकत्वम्। एवं
कोटिदयात्मकत्वात्मिथुनत्वम्। तस्य प्रजननाय समस्यते।

त्राचन्तपादापेचया मध्यमपादस्य यदस्यतं तदिदं प्रशंसति,—
"सीमगं वै नामैतक्कन्दः प्रजापतेः प्रश्वो सीमगाः प्रशूनेवावदन्ते" (५।९।८%०) इति । सीमसदृशं स्रद्धां मध्यं यस्य कन्दसः
तदिदं 'सीमगं', यथा इस्तपादतदङ्गस्याद्यपेचया सीमः
स्वातम्, एवमाद्यन्तपादापेचया मध्यमपादस्य स्वातमित्यर्थः ।
'प्रजापतेः' स्रष्टा ये 'प्रावः' ते सर्वे 'सीमगाः', श्रतोऽस्य कन्द्रभा
सीमग्रतसास्थेन पग्रप्रप्राप्तिभवति ।

एतासु श्राप्रीषु इन्दर्श नानाविधतं प्रशंसित,—"सर्वाणि वा एता इत्पाणि सर्वाणि इत्पाण्यग्नी चित्रो कियन्ते तस्मादेता श्रोशित्यस्य भवन्ति" (५।९।८९०) इति। "ऊर्ध्वा श्रस्थ" इत्यासा या त्राप्रियः, ताः 'सर्वाणि' 'रूपाणि' (जूनातिरिक्तभावेन यज्ञविधरूपयुक्ता) भासन्ते । यञ्च वक्त्यमाणप्रकारेण चेतव्योऽग्निः तक्तिश्विप 'त्रग्ने।' 'सर्वाणि' 'क्रियन्ते'। पचिलनिष्यन्तये पच-पुष्कादीनि यहनि रूपाणि, कामनाभेदेन ग्रोनकद्वादिरूपाणि च। यस्तादापीणां चित्वाग्नेश्वास्ति सादृग्धं, 'तस्तादेता' 'त्रग्नेश्वित्वस्त' त्राप्रियो भवितुं ये।ग्याः।

तदेवमष्टमानुवाके। का श्राशोर्थाख्याय, बद्धवक्रयतया पूर्वमुपेचिताः सप्तमानुवाके। काः सामिधेन्यः प्राप्ता दश्राग्निको।
याख्यायको। तदेतासां सामिधेनीनां प्राक्ततीभिः सामिधेनीभिः
स्व समुख्यमभ्युपेत्य सङ्घाविभिष्टाः सामिधेनीविधक्ते,—
"एकविश्रमतिश्र सामिधेनीरन्याद रुम्वा एकविश्रभे। इचमेव
गच्छत्यचे। प्रतिष्ठासेव प्रतिष्ठा द्येकविश्रभः" (५।१।८ श्र ०) द्रति।
स्वकारेष, 'एकादश्र प्राक्ततीः समास्ताग्ने' दति 'दश्र श्राग्निकीः'
दित श्रुक्तं। सप्तमकाण्डे, "य एवं विद्वाश्रस एकविश्रमतिराचमासते
रे एकत एव"(२।१०) द्रत्येकविंग्रतिसङ्घाया दीप्तिचेत्रत्वश्रयव्यासङ्घ्या बुद्धिस्त्र एकविश्रमत्ताने।
काम्यसामिधेनीप्रसावे एकविश्रमसोमानां प्रतिष्ठत्युक्तत्वात् प्रतिष्ठाइपद्यः श्रतस्या सङ्घ्या रुचं प्रतिष्ठाञ्च प्राप्नोति।

तचैव विकल्पितं पचान्तरं विधत्ते,—"चतुर्विष्ट्रश्चतिमनाइ चतुर्विष्ट्रश्चतिरर्द्धमासाः संवत्सरः संवत्सरोऽग्निवैश्वानरः साचादेव वैश्वानरमवद्यन्थे" (५।९।८% ०) इति। तच श्वासान्तरोक्ता 'लप्रेम स्वचि वा जयुः(!)' इत्याद्यासिस्तो धाय्याः प्रस्तिय चतुर्विश्वतिसङ्का पूरणीया। विश्वेषां नराणां हितः 'वैश्वानरः', दाहपाकादिकारि-लात् हितलम्। तादृष्टोऽग्निः संवत्सर्रूपः। 'संवत्सरमुखं स्टला' द्रत्यग्नेः संवत्परमन्थस्य वच्चमाणवात् । ततञ्चतुर्विगतिमङ्काया ऋईं माससंवत्सरदारेण मुख्यमेव वैश्वानरं प्राप्नोति।

प्रकृते। यद्कं 'वि:प्रथमामखाइ चिक्समाम्' इति, तदेतदपविदतुं विधन्ते,—"पराचीरन्वाइ पराङ्ग्वि हि सुवर्गे। क्षेकः" (५।९।८श्र०) इति । 'पराचीः' श्रनाष्ट्रताः । खर्गकीका-ऽपि पराक्टेव न कदाचिदावर्त्तते। तदेतत् सर्वे स्टबकारेण यक्नृहीतम्,—'एकविंगतिं चतुर्विंगतिं वा पराचीः सामिधेनी-रलाइ' इति।

तवाद्मिकीषु प्रथमाया ऋचः प्रथमपादे संवत्सरवाचितः बमाबस्य ऋतुबद्य तात्पर्ये दर्भयति,—"बमाखाब स्रतवे। वर्द्धयन्वित्याच समाभिरेवाग्निं वर्द्धयत्युत्भिः संवत्यरम्" (५।१। ८%) इति । ऋतवः प्रवर्त्तमानाः संवत्सरं पूरयन्ति ; संवत्सरं ष उखाग्निधारणेनाग्निं वर्द्धयन्ति (?)।

एवस्ट्रह्मां संवत्परसः चाभिष्टद्भिमाधनतं प्रतिपाद्य चतुर्घ-पारे 'त्राभाहि' इत्यस्य तात्पर्ये दर्भयति,—'विश्वा श्राभाहि प्रदिशः प्रशिच्या दत्याद् तसाद्ग्निः सर्वे। दिश्रोऽनुविभाति" (५)९।८% ०) इति।

नवम्या ऋचमुतोयपादे 'प्रत्ये। इताम्' इति पदस्य तात्पर्ये दर्भयति,—''प्रत्या हतामित्रा सत्युमसादित्याह सत्युमेवासा-दपनुद्रति" (५।२।८%।०) द्रति।

दश्रमस्यः प्रथमपादे तमःशब्दार्थे दर्शयति,—"खद्यं तममस्यगित्यार पामा वै तमः पामागमेवास्मादपर्शना" (१। १। प्रभः) इति।

चतुर्थपादे च्योतिः शब्दार्थं दर्भयित,—"श्रमया च्योतिहत्तम-मित्या हारी वा श्रादित्यो च्योतिहत्तममादित्यस्येव सायुव्यं मच्छिति" (५।९।८% ०) इति । सायुक्यं सहभावम् ।

"उदयं तमगरारि" द्रायसा स्वः पाठप्राप्तं चरमभावितं प्रश्नंति,—"न गंवस्ररिसाहित नास्य श्रीसिहित यस्त्रेताः क्रियन्ते स्थातिस्त्रीमुत्तमामन्याः स्थातिरेवासा उपरिष्टाद्द्धाति सुवर्गस्य स्रोकस्थानुस्थार्थे" (५।९।८५०) द्रति। 'यस्य' (यमगनस्थ) 'एताः' "समास्त्राग्ने" द्रायाः सामिधेन्यः 'क्रियन्ते', तस्य स्वर्गाधिगत्यर्थमुख्याग्निः। दर्याद्याः भामिधेन्यः 'क्रियन्ते', तस्य स्वर्गाधिगत्यर्थमुख्याग्निः। दर्याद्याः 'मंदस्ररो' वा, एतदग्निसाधनसमूद्द्रपा 'श्रीः' वा 'न तिहिति' (न पर्याप्नोति), स्थातिर्द्रात् ताभ्यां स्वर्गा नाधिगम्यत दर्यादः। प्रथ स्वर्गाधिगतिस्तां 'स्थातिस्त्रीम्' स्वर्म 'अत्तर्भा' ब्रूयात्। 'प्रथनो स्थातिः' दृष्येवं स्थातिः स्वर्णः विद्यमानलात् "उदयं तमसस्परि" दृष्येवा स्थातिस्तो, 'श्रसी' (यममानार्थे), स्थातिष्व प्रपरि-धारणादृर्द्धदेशवन्ती स्वर्गस्थोते। भवति॥

त्रव विनियागसङ्गुदः,—

उर्ध्वाः प्रयाजयाच्याः खुर्दादमाऽऽपीतिनामकाः । हिर, खुवाऽऽघारहोमा, यः प्राणिति द्यं-द्यम् ॥ याज्यानुत्राक्ये हि तपा-पुरे । इति विंग्रतिरोरिताः ॥ यित्रत्, विकस्पिते। मन्त्र इति विंग्रतिरोरिताः ॥

इति सायनाचार्यावरचिते माधवीये वेदार्घप्रकामे कृष्णयजुः-संहिताभाखे चतुर्थकाण्डे प्रथमप्रपाठकेऽष्टमाऽनुवाकः॥०॥

मार्म्नतिम् ग्रियुज्य स्वाहा मनी मेधाम् ग्रियु-ज्य स्वाही चित्तं विद्यातम् ग्रियुज्य स्वाही वादी विश्वतिम् ग्रियुज्य स्वाही प्रजापति ये मने वे स्वाही-ऽग्रये वैश्वान् राय स्वाही विश्वे देवस्य नेतुर्मतीं रणीत स्खं विश्वे राय हंष्ट्रधिस द्युनं र्रणीत पृष्यसे स्वाहा (१-०) मा सु भित्या मा सु रिष्टो हण्हं स्व वीर्यद्रस्व सु। श्रम्ब धृष्णु वीर्यस्व ॥ १॥

श्रीश्रञ्जदं केरिष्यशः । हः ईस्व देवि पृशिवि ख्रासे । श्रासुरी माया ख्रध्या छुतासि । श्रृष्टं देवा-नामिदमेस्तु इत्यमिरिष्टा त्वमुदिष्टि यज्ञे श्रासिन् । मिष्टीतामुखां तेपीषा मा भेदि । एतां ते परिददाम्य-भित्ये (१) । द्रृष्टा सुपिर सुतिः प्रक्षो होता वरेष्यः ।

^{*} याच्यानुवाको सि, वपा पुरे। डाग्रस्वः खुताः ॥— र्रात पाठो भवितुं युक्तः ।

सर्चसस्पुची ऋहतः(११)। पर्रस्या ऋधि स्वताऽवराः भ्रम्या॥२॥

त्र । यषाष्ट्रमस्ति ताः अव (११)। प्रमस्याः परावते रोष्ट्रिश्व दृष्टागृष्टि । पुरोष्यः प्रतिप्रयोऽग्ने त्वं
तर् स्थः (१९) । सीद् त्वं मृतुर्स्या ख्यंस्ये विश्वान्यग्ने
व्युनीनि विद्वान् । मैनीमृषिषा मा तपसाभि श्रंशचे । क्यार्त्याः श्रुक्त ज्ये । तिर्विभीष्ट (१९) । श्रुन्तरंग्ने क्षा
त्वमुखार्ये सदेने स्वे । तस्यास्त्यः ष्टरं सा तपं, आतंवेदः श्रिवो भव (१९) । श्रिवो भूत्वा मण्णं मृग्ने ऽथे। सीद
श्रिवस्तं । श्रिवाः क्रुत्वा दिशः सर्वाः स्वां योनिमिष्टासंदः (१९) ॥ ३॥

बीरयुख । अभ्या । तर्पन् । विश्रमुतिर्श्व ॥ ८ ॥

इति तैत्तिरीयसंहितायां चतुर्थकार्ये प्रथम-प्रपाठके नवने।ऽनुवाकः ॥ • ॥

श्रष्टमे अनुवाके श्राप्रीया याख्यानुवाक्याद्याकाः । श्रय नवने-अनुवाके श्रान्युत्पादनमिधत्ते । कत्यः, 'यत्पाग्दीचाञ्चतोभ्यस्तत्क-लाऽऽकूत्ये प्रयुजेऽग्रये खाहेति पद्याध्वरिकीर्ज्ञला श्राकृतिमग्निमिति षड़ाग्निकीर्विश्वे देवस्य नेतुरिति पूर्णः इति सप्तमीम्' इति । पाठस्त,—'श्राकृतिमग्निं प्रयुज्ञ खाहा मने। मेधामग्निं प्रयुज्ञ स्

खादा चिन्नं विज्ञातमियां प्रयुज्ञ श्रहादा वाची विधितमियां प्रयुज्य खादा प्रजापतये मनवे खादा त्रग्नये वैशानराय खादा विश्वे देवसा नेतुर्मर्त्ती हणीत सखां विश्वे राय रूष्धिस सुन रुषोत पुष्यसे खाडा(१-७)" इति। 'त्राकृतिः' सङ्क्षोऽस्मद्गुडान-विषयः, तां 'प्रयुजं' (प्रेरकम्) 'ऋग्निम्' उद्दिश्च खाऊतमिदम् श्रस्त । अनुष्ठेयसार्णमाधनं यत् मनः, स्रतस्य धार्णमामर्थारूपा या मेधा, तदुभयं प्रति प्रयोजकम् 'चग्निम्' उद्दिख खाइतमिदमस्त । भविज्ञातस्थानुष्ठानस्य ज्ञानसाधनं यत् चिन्तं, यदपि तेन चिन्तेन ज्ञातुम् चनुष्ठानं, तद्भयं प्रति प्रेरकम् 'च्रग्निम्' उद्दिष्य खाजनिम्द-मसु। 'वाचः' मन्त्रपाठरूपायाः विष्टतिः (विधार्षं), तां प्रति प्रेरकम् 'श्रिप्रम्' उद्दिश्य खाज्जतमिद्मस्त । 'मनवे' (मनुष्याचां जनकाय) 'प्रजापतये' खाऊतमिदमसु । विश्वेषां नराणाम भन्यहीहलेन 'वैशानराय' भ्राये खाइतमिदमस् । 'विश्वे' (विश्वात्मकस्य) 'नेतुः' (जगिव्वर्वा इकस्य) 'देवस्य' 'सस्यम्' (त्रनुगर्छ) 'मर्तः' (मर्खवान्) यजमानः यह्या 'तृषीत'। तच यखाम् र्रृतृप्रेन सोचेष सभाते। 'विये' (हे विद्यात्मक), 'रायः' (धनस्य) 'र्षुधिसि' (र्रेबिषे, लं नियनासि) इति स्तला 'पोषसे'। (यञ्चपे।वजाय) 'चुचं' (धनं) 'हणीत' (याचेत)-रदं इविखव उतमस्त ।

^{*} चातमिति पाठी भवि वृक्तः।

[†] युख्यसे इति पाठी भवितुम्चितः।

'त्राकृतिम्' इत्यादिभिः 'वैत्रानराय खाद्दा' इत्य नौर्मनीः साधं रोमं विधनोः—''वड्भिर्दोचयित षड्वा स्नतव स्रतुभिरेवैनं दीचयित" (५।९।८ १४०) इति । होमेन दीचास्यं संस्कारं कुर्यादित्यर्थः ।

कराः, 'विश्वे देवस्य नेतिरिति पूर्णाइति सम्मीम्' रित। विधिमभिन्नेत्य विधेयगतां सम्बद्धां प्रश्नंसित,—"सप्तभिदेश्वियति सप्त कन्दाश्रसि कन्दोभिरेवेगं दीश्वयति" (५।९।८ १०) दति। गायनीशिष्टुप्तगतीत्यादिमन्त्रोक्तेषु कन्दःसु श्रत्यप्टसु (?) श्रन्तयो-दिण्याकुभोरेकीकारेष कन्द्रसं सप्तत्म्।

'विश्वे देवस्य' इति मन्त्रे घदनृष्टुप्रुन्दः, यश्वास्य मन्त्रस्य उत्तमनं चरमरूपलं, तदुभयं प्रशंधित,—''विश्वे देवस्य नेतुरित्यनृष्टुभा उत्तमया जुद्देति वाम्या श्वनृष्टुप् तस्मात् प्राष्मानां वागुत्तमा'' (५।१।८ श्व.०) इति । यस्मादिष्ठ 'श्वनृष्टुप्' वागूपा सर्वभन्तेषु व्याप्ता च, 'तस्मात्' स्रोकेऽपि 'प्राष्मानां' (चनुरादीन्द्रियाणां मध्ये) 'वाग्' (उत्कष्टा), वाचा दि विद्रसमायां राजसभायां च पूच्यो भवति।

श्रीवजगद्ववहारसमर्थतेन मन्तं प्रसीति,—"एकसादकरा-दनाप्तं प्रथमं पदं तस्ताद्यदाचोऽनाप्तं तन्त्रमुखा उपजीविन्तं पूर्णेया जुहाति पूर्णं दव हि प्रजापितः प्रजापतेराष्ट्री न्यूनया जुहोति न्यूनाद्धि प्रजापितः प्रजा श्रद्धजत प्रजानाः स्ट्यो" (५। ९।८ श्र०) दित । यस्तादस्थास्टिच 'प्रथमं पदं' (प्रथमः पादः) एकेनाचरेण न्यूनं, 'तसात्' 'मनुखाः' 'वाषः' स्वरूपम् 'श्रनाप्तम्' (श्रसम्पूर्णम्) 'उपजीविन्तः' (मूलाधारादुत्यक्षेत वायुर्मूर्द्वपर्यन्तं प्रस्तः सम् वक्के तत्त्रत्यानेषु वर्षाम् उत्पादयित) ; तदिदं वर्षा-भियक्रिसचर्णं वाचश्चतुर्थे पदं। पूर्वाणि तु चीणि पदानि कष्टाद्ध एव गूढ्लास श्रभियञ्जयितं श्रकान्ते । तथा चावायते, 'गुडा चीषि निहिता नेङ्गयन्ति तुरीयं वाची मनुष्या वदन्ति' इति । 'तुरीयं' (वैखरीत्याख्यवाचे। रूपं)। एतेनासमूर्चे: वाग्यवद्यार-साम्बं दर्शितं। किञ्चेयम्बक् उत्तरेषु पादेषु त्रज्ञरसम्पूर्णा, सन्त्रा तेन पूर्णप्रवापतिसाम्यात् तत्प्राप्तये भवति । प्रथमपादे यदचरन्यूनलं, तेन सृष्टिग्रू न्यवगदीवयाम्यात् प्रवात्यत्तये भवति । 'दि' (यसात्) मितराम 'जमात्' (प्रकृतेर्विकारात्) उपादानात्, 'प्रजा यस्जत'।

कस्यः, 'यत्राकृष्टिकर्मणसास्त्रता प्रणकुसायेन मुच्चकुलायेन चेखां र प्रच्छाच मासु भित्या इति दाभ्यामा इवनीये प्रवणिति दिति। पाठस,—''मा सु भित्या मा सु रिषो दृष्ट्रस्व वीड्यस सु। त्रम धृष्ण वीरयस्वाग्निसेदं करिययः (^{८)}'' इति । हे उसे, लं 'मा' 'भित्याः' (भिन्ना मा भव)। तदिदमभिन्नलं सुष्टु कर्त्तं यम्। तथा 'मा रिषः' (स्फुटनेनापि दिधिता मा भव)। तदेतदस्फुटनं सुदु कर्त्तव्यम्। सर्वात्मना देधोभावे। भेदः, क्षेत्रस्य प्रथग्भावः खुटनं ; तदुभयं तव मा ऋदित्यर्थः । 'दृष्ट्रस्स् ' (भेदाभावाय हुदा भव) । 'सु'-'वोज्यख' (स्पुटनाभावाय खाङ्गानि सुषु दृदी-बुर)। हे 'धृष्णु' (धर्षण्युक्ते), हे 'श्रम्ब' (माहसदृष्टो), 'वीरयख्'

वोखिमिति चादर्भपुक्तकपाठः।

(वीरवदाचर)। 'त्रग्निय' लघ मिलिला दृढ्मसादीयं कर्म 'करियायः'।

श्रथ दितीयामाइ,—"दृष्ट् इख देवि पृथिवि खस्य श्रास्री माया खध्या कतासि। जुटं देवानामिदमस् इयमिरिटा तमुदिहि यशे श्रिसन्(८)" इति। हे 'पृथिवि' 'देवि', (स्टत्कार्यनात् पृथिवीक्पतं, मन्त्रीनियाधलाद्देवतालं ; तथाविधे) हे उखे, 'खस्रये' (यजमानार्थे) 'दृष्ट्र इख' (दृद्धा भव)। 'श्रास्ररी माया' (श्रम्दाधस्तिमितमायेव) 'खध्या कतासि' (कथप्रदानवासिना खधाश्रन्देनास्त्रमाचमुपखद्यते, श्रस्तेन निम्नभ्रतेन तद्धेतुर्याग- विद्याय लं नियादितासि), श्रास्ररी माया यददिन्यरचना- क्पं चित्रं वस्तु, सहसा भूला प्रतिभाति, तदत् लमिस; दिस्रन- लादिरचनायुक्ता नियाशासीयार्थः। लक्षुखाविष्णत्यमानम् 'इरं' 'इयं' 'देवानां' 'जुटं' (प्रियम्) 'श्रस्तु'। लमपि 'श्रिर्टा' (केना- य्यादिता सतो) 'श्रस्तान्' 'यश्ने' 'अदिहि' (उद्गता भव)।

श्रक्षामुखायां परितोऽक्कारानारोष्य तापनं विधत्ते,—
"यद्चिषि प्रदृष्ट्याद्भूतमवद्दशीत यदक्कारेषु भविष्यदक्कारेषु
प्रदृष्कात्त भविष्यदेवावद्दश्चे भविष्यद्भि भूयो भूतात्"(५।१।८ श्र॰)
दिति। यदि ज्वालायाम् एखां प्रतपेत्, तदानों 'यत्' श्रक्ष रहें
'भृतं' (पूर्वे विद्यमानं) धनमिषा, तदेव खाधीनं भवति, न ह
भविष्यत्। यदि 'श्रक्कारेषु' प्रतपेत्, तदानीं रहे 'भविष्यत्'

^{*} तज्जेतुवामसिजार्थमिति पाठा भवितुं गुक्कः।

(त्रविश्रमानं) धनं प्राप्ति । 'हि' (यसात्) जना 'भवियत्' धनं 'भ्रतात्' 'भ्रयः' (त्रधिकं) मन्यन्ते । न समुक्ति स्विदिप भ्रतार्थे प्रतीयते, भविय्यदर्थन्तु सर्वे। प्रयतते । त्रक्वारेषु काष्टेः समिन्धनेन व्यासा भाविनी, त्रताऽक्वाराषां भाविधनहेतुलं युक्तम् ।

तिसन् प्रतापने 'मा सु भित्या' इत्यादिमक्तद्वयं विनियुक्ते,—
"दाश्यां प्रत्यक्ति दिपाद्यक्रमानः प्रतिष्ठित्ये" (५।९।८ ऋ॰) इति ।
क्ष्यः, 'मिनेतामुखां तपेति प्रदक्षिक्षमक्तारैः परिन्धे' इति ।
पाठस्त,—''मिनेतामुखां तपेवा मा भेदि । एतां ते परिददास्यभित्यें(१॰)" इति । हे 'मिन', 'एताम्' 'उखां' 'तप' (तप्तां खुद्द) ।
'एवा' (उखा) 'मा भेदि' (मा भिद्यताम्) । 'श्रभित्यें' (भक्नाभावार्थम्) 'एताम्' 'उखां' 'ते' (तव) इस्ते 'परिददामि'।

देवता न्तरपरित्यागेन मिनायैव खखायाः परिदाने कारणं दर्भयित,—"त्रद्वाणा वा एषा यजुषा सन्भृता यदुखा सा यद् भियेतार्त्तमार्च्छे समाने। इन्येतारा यद्वा मिनेतामुखां तपेत्याष्ट्र त्रद्वा वे मिने त्रद्वानेवेनां प्रतिष्ठापयित नार्त्तमार्च्छेति यज्ञमाने। नार्च्य यद्वा इन्यते" (५।९।८ त्र०) इति। येयम् 'खखाः, 'सा' 'एषा' परत्रद्वाखक्षेण "वसवस्था काष्वन्तु" इत्यादिना यजुषा स्थादिता, परत्रद्वाण खत्यन्नलायजुषे। त्रद्वाविन यजुषा स्थादिता, परत्रद्वाण खत्यन्नलायजुषे। त्रद्वाविन युक्तः, खुक्वालेन निर्मितादयजुष्कात् घटादिकचष्वलात्। एवं सित यदि कदाचित् प्रमादात् 'भियेत', तदानीं यजमाने। वियेत, यद्वीऽपि विनय्येत्। मिनाय ख्वायाः परिदाने तु मिनस्थ

परत्रह्मक्पलात् ब्रह्मछेत्रोखा प्रतिष्ठिता भवति । ततो यज-मानस्य यज्ञस्य च नास्ति हानिः ।

श्रय भेदे सित प्रायिश्वित्तं विधत्ते,—"यदि भिद्येत तैरेत कपालैः सष्ट्रस्त्रेत् सैव ततः प्रायिश्वित्तः" (५।९।८ श्र॰) इति। यकाया उखावा भेदे तदीयैः 'एव' 'कपालैः' स्टदन्तरं भिश्र-विला पुनरपुखां निष्पादयेत्, 'सैव' पुनर्निष्पादिता उद्या 'ततः' (श्रभेदक्पादपराधात्) 'प्रायिश्वित्तः' विभाजनकेतः।

पूर्वे सामान्याकारेणे। खायाः प्रतपनम् श्राइवनीये विहितम्, श्रय गतित्रयो विशेषं विधन्ते,—"यो गतश्रीः खाद्मिवता तखावदश्याद्भतो वा एष स खां देवतामुपैति" (५।१।८ १०) दित। 'श्रः' श्रश्चित्रयमे प्रष्टन्ते 'गतश्रीः' ग्रह्भुवान्*, ग्रामणीः, राजन्यो वा भवेत्, तखा मिथतमिश्रम् खखाया 'श्रवद्धात्', ग लाइवनीये खखायाः प्रष्टञ्चनं कर्त्तथम्। 'एषः' चयाणं गतिश्रयां मध्ये श्रन्थतमा 'भ्रतः' (भ्रतिमान् श्रेश्ययांपेतः), श्रतः प्रभुलात् 'सः' खकीयामेव मिथत।श्रिक्षणं देवताम् खपेत्यां पूर्ववत्प्रवृञ्चनम् (१)।

श्रन्यमि विधन्ते,—"यो स्रतिकामः स्वाद् य उखाये समा वेत् स एव तस्त स्वादतो होष सभावत्येष वे स्वयभूनीम भवत्येत" (५।९।८ श्र०) दति । श्राह्वनीये प्रतप्तायाम् उसायां 'सं' श्रितः 'सभावेत्', 'स' 'एव' 'तस्व' स्रतिकामस्त गतित्रयः कार्यो

^{*} श्रुकवान् इति J. पु॰ पाठः । श्रुश्रुचान् इति B. पु॰ पाठः । † उपैतम इति खादशीपस्तकपाठः ।

न तु मियतः, 'हि' (यसात्) 'म्रतः' (उखायाम्) 'एव' 'समावति', तसामायनापेशामन्तरेख स्वयमेवेात्पन्नतात् 'एव' 'खयम्भूः' इत्युच्यते। एवं सति यजमानः 'भवत्येव' (भ्रतिं प्राप्तोत्थेव)।

यजमानदेषिणेऽध्वर्धाः प्रकारामारं विधत्ते,—"यं कामयेत श्राह्मयमस्त्रे जनयेयमित्यन्यतस्त्रस्त्राद्यावद्ध्यात् साचादेवास्त्रे श्राह्मयं अनयति" (५।१।८ अ०) इति। 'यं उद्दिख अनुम्, 'त्रसी' 'जनयेयम्' इति 'कामयेत' अध्यर्थः, 'तस्त्र' 'अन्यतः' (यहामाराद्प्रदेशात्) अग्रिमानीय उखायां प्रचिपेत्; तथा सति विस्नम्मनारेणैव 'श्राह्मयं जनयति'।

श्रय कामनाविश्वेषेणान्यमिशं विधत्ते,—"श्रम्सरीपादश्रकाम-स्वावद्धादम्बरीपे वा श्रमं श्रियते सयोन्येवामं श्रवहन्धे" (५।१।८.श.०) इति । घृतादिना श्राकादिभर्जनार्थे यहीकिकं स्वीद्यादिपानं, तदम्बरीपं श्राष्ट्रं, तिसान् प्रतिते घृतप्रचेपात् प्रीढ़ा स्वासा उत्पद्यते, तताऽश्रिमाङ्खोखायाम् 'श्रवद्धात्'। स्रोके दि तिसान् 'श्रम्बरीपे' श्राकादिकमन्नं धार्यते । श्रतः काम्यमानेनान्नेन तस्त्राग्नेः समानयोनिलाद्यक्षमाने। इतं प्राप्ताखेव ।

तदेवं प्रश्चनप्रसङ्गागताम् विधीन् परिसमाय प्रश्ततप्रश्चनो । पयुक्तं द्रस्यं विधत्ते,—"मुज्जान् श्ववद्वात्यूर्में मुज्जा जर्जमेवास्ता श्वपि द्वाति" (५।९।८ श्व०) दति । शुष्कान् मुज्जास्थान् दृष्प-विश्वेषान् उखायां प्रजिपेत, महिषादिभच्यलामुज्जा जर्यूपाः । श्वत्रमेव यजमानाय सम्पादयति द्वि । कत्यः, 'द्रूचः सर्पिरास्तितिति तस्यं कुमुकमुस्थितं घृतेनाष्ट्रा चवदधाति मुस्ताः स्व' दति । पाठस्त,—"द्रूचः सर्पिरास्तिः
प्रक्रो होता वरेषः । सदसस्युचे चहुतः(११)" दति । चनेत्पत्त्वमानोऽग्निरेतिविभेषणेः प्रभस्यते । द्रुज्ञब्देन वृक्ष स्वयते।
'द्रुपदमित्याह । वनस्यतयो व द्रु । वनस्पतीनामेवितेन स्वयते'
दति अत्यन्तरात् । द्रुज्ञब्दाभिधेया वृक्षा चन्नं यस्य द्रवे। 'द्रुषः' । सर्पिरेव चाहारत्वेव स्वयते प्रेर्थातेऽस्मित्रिति 'सर्पिरास्वतः', 'प्रक्रः' (पुरातनः), 'होता' (देवानामाङ्गाता), 'वरेषः'
(वर्षायः), 'यह्यः' (वसस्य) 'पुत्रः' (धनहेतुना वर्त्वेनोत्पद्यमानलात्), 'चहुतः' (ज्ञास्वर्यक्रः)।

सनेन मकोष साधं जुमुकावधानं विधक्ते,—"श्राव्यदेवेसी-ऽनिसायत स जुमुकं प्राविश्वत् जुमुकमवदधाति यदेवास तन स्वकं तदेवावद्यों" (५।१।८ श्र०) इति । 'जुमुकं' श्रव्यं काष्ठ-श्रकसं। 'स्वकं' निसीनमग्रिक्पं। 'तन' (तस्तिनेव काष्ठश्वत्वे) 'श्रस्य' (श्रग्नेः) 'यदेव' क्पं 'न्यकं' (निसीनं), तत् प्राप्नीति। पूर्वक्पं श्रमुकमिति तत्सुस्कारेशिकम्।

त्रस मुम्बस घृतामलं विधन्ते,—''त्राच्येन संवैद्यितदा प्रमे प्रियं धाम धदाच्यं प्रियेणैवेनं धाचा समर्द्धयत्यची तेजमा" (५।९।८ प्र•) इति । 'संवीति' (तत् मुमुकं समित्रयेत्), प्राच्यकामिकानलम् 'त्राप्यायतां घृतयोगिरम्निः' इत्यादिमन्न-

^{*} भू े रूपिश्त .'. पु॰ पाठः ।

वर्षात्, घृतेन व्यास्त्रीत्यक्तेश्वावगम्नयं। व्यास्त्रीत्यक्तिरेवाक 'ग्रयो तेवसा' 'समर्द्धयति' रत्युच्यते।

कस्य:, 'परस्या श्रिष संवत दित वैकस्ति सिमधमाद-धाति' दित । पाठस्तु,—''परस्या श्रिष संवतीऽवराष्ट्र श्रम्था । तर । यचादमस्ति ताष्ट्र श्रव^(६९)'' दित । सम्यक् वनुते देवान् भजते वस्यां कियायां सा किया संवत्; 'परस्वाः' 'संवतः' 'श्रिष्ठ' (उत्कृष्टाया दृष्टेरिधष्टानम्) त्वम् 'श्रवरान्' (निक्रष्टानपद्मान्) 'श्रभ्या'-'तर' (श्राभिमुख्येनागत्य दुःखासारय) । 'यम' (येषु स्थुष्) 'श्रद्यमस्ति' (तानपि बन्धून्) 'श्रव' (रच) ।

त्रमेन मन्त्रेण साथं समिदाधानं विधन्ते,—''वैक इतोमादधाति भा एवावक्त्ये'' (५।९।८ श्र॰) इति । श्राग्नेथी दीप्तिर्विक इति -ष्टचेऽस्ति, श्रत एवाधान नाञ्चणे श्रूयते, 'श्रग्नेः स्टब्स बतः । विक इतं भा शार्च्यत्' इति । श्रता वैक इतसमिधा दीप्तिः प्रायते ।

कत्यः, 'परमद्याः परावत इति ज्ञमीमधीम्' इति । परीकाः प्रविद्यः,—''परमद्याः परावता रोहिद्य इषागि । पुरीकाः पुर्विद्योऽग्रे लं तरा स्थः'(१२)'' इति । परावक्ष्यः दूरदेजवाषी । हे 'अग्रे', 'परमद्याः परावतः' (अत्यमः दूरदेजात्) 'इष' (असिन् कर्मक्) 'लम्' 'आगिष्ट' (आगक्क्) । कीदृजक्षं ?—'रोहिद्यः', खोषितवर्षाऽयो यद्याची 'रोहिद्यः'। अत एवा-स्थासायते, 'रोषितेन लाग्निर्वेवतां गमयतु' इति । पुरीषम् असाधितुभ्रतं पांसुमर्थतीति 'पुरीकाः' । पुरूषां यजमानानां प्रियः 'पुर्विग्यः', तादृगः, 'लं' 'स्थः' (अनुम्) 'तर' (यतिस्वष्य)।

श्रमेन मन्त्रेण साधं समिदाधानं विधन्ते,—"ज्ञमीमयो-मादधाति ज्ञान्ये" (५।९।८ च०) इति । ज्ञमीतृष्णस्य श्राग्रदाष्ट्-ज्ञमन हेतुलात् तदीयसमिधा ज्ञान्तिर्भवति । श्रतएवाधानबाद्धाणे पचते, 'प्रजापतिरग्निमस्त्रत । से विभेत् प्रमा धच्यतीति । तः ज्ञम्याऽज्ञमयत् । तष्ट्मी जमिलम्' इति ।

कलाः, 'सोद लं मातुरसा उपस्य इति तिस्भिर्जातमुख्यमुपतिष्ठते' इति । तत्र प्रथमामाइ,—"सोद लं मातुरसा उपस्ये
विमान्यमे वयुनानि विदान्। मेनामर्चिषा मा तपसाभि ग्रह्म्यः चाडम्मरसा ग्रह्म्यः प्रद्रक्रन्योतिर्विभाहि (१४)" इति । हे 'म्रमे', 'मातुः' इत 'म्रस्या' (उसाया) 'उपस्थे' (उसक्रे) 'लं' 'सोद' (उपविद्य) ।
कीदृश्चलं ?—'विमानि' 'वयुनानि' (सर्वाम् ज्ञानोपायान्) 'विदान्'। 'एनाम्' (प्रसाम्) 'म्रचिषा' (लदीयदीष्ट्या) 'मा' 'म्राग्रुः' (म्रस्यमं मा दीपय)। 'तपसा' (मनापेन) 'म्रिने' 'मा म्रूयुचः',—मर्चिः कार्यं, तपः कार्यं; कार्यनेष ताया भवति, कार्येष तु भ्रयान्, तदुभयं मा कुर्वित्यर्थः। 'म्रस्याम्' (ज्ञायाम्) 'मनः' 'म्रक्रक्योतिः' (निर्मलप्रकामः सन्) 'विभान्दि' (विमेषिष दीष्यस्र)।

श्रय दितोयामाइ,—''श्रम्तरग्ने इत्ता लमुखाये गर्ने खे। तक्षास्त्र इरगा तपं जातवेदः श्रिवे। भव^(१६)'' दिति। हे 'श्रग्ने', 'खखाये' (तक्षा उखायाः) 'श्रम्तः' (मध्ये) 'खे' 'गर्ने' (खकीये खाने) 'इत्ता' (दीष्टा) दीषखेति श्रेषः । हे 'जातवेदः', 'लं' 'तस्ताः' (खखायाः) 'श्रिवे। भव' (सुखप्रदे। भव)। किं कुर्वन् ?—'इरगा' (तेत्रमा) 'तपन्' (ज्यसन्)।

त्रय हतीयामाइ,—"त्रिवा भूला मद्यमग्रेऽया सीद त्रिवस्तं। त्रिवाः कला दिशः सर्वाः खां ये।निमिश्वासदः(१९)" इति । हे 'त्रग्ने', 'मद्यं' (मद्यें) 'ज्ञिवः' (ज्ञान्तः) 'भ्रत्वा' 'त्रयो' (ज्ञनन्तरं) 'लं' 'जिवः' सन् 'सीद' (सर्वान् प्रति ज्ञानाः सम्नुपविज्ञ)। 'सर्वाः' 'दिशः' 'शिवाः' (शान्ताः) 'हाला' 'द्रह' (श्रस्थाम् उखायां) 'खां योनिं' (खकीयं खानम्) 'श्रासदः' (श्रामत्योपवित्र)।

एतान् मन्त्रान् विनियुङ्को,—"सीद लं मातुरस्था उपस्त इति तिस्भिजातमुपतिष्ठते, पय इसे स्नोका एस्वेव स्नोकेस्वाविदं गच्छत्यथा प्राणानेवात्मन्थन्ते" (५।९।८ त्र०) इति। 'बाविदं' (खातिं)। किञ्च प्राणापान यानानां चिलात् तानपि चिलसञ्चया सातानि सापयति।

त्रव विनियागसङ्गृहः,— त्राकृतिं, यप्तिभदीचाज्ञतिमाखिति च दयात्। पूर्वाग्री प्रवणकोखां, मिनाऽङ्गारेः समिध्यते॥ द्वनः, कुमुकमाधत्ते, पर, वैकद्भतीं, परम्,। श्रमीमधीं, सीद्, जातं, तिस्रभिश्चीपतिष्ठते ॥ नवमे लनुवाकेऽस्मिन् मन्त्राः वाउत्र वर्णिताः॥ श्रय मींमांसा,—दश्रमाध्यायस्य हतीयपादे (४श्र॰) चिन्तितम्,— षङ्भिदीचयतीत्यग्निगतं प्राज्ञतबाधकं। समुचितं वा? बाधः स्थात् कार्येक्यात् पाठवाकातः॥ श्रग्नी हे। माङ्गताकुप्तेरतिदिष्टेन तुखाता। विनाऽउद्यत्ति दादश्रलिषद्भये स्थात् समुखयः॥

म्रामियने दीचाज्ञतयः त्रूयनो, 'वड्भिद्चियति' इति ; प्रक्रताविष 'खुवेण चतस्रो जुहाति दीचितलाय' रात्यादिना दोचा इतयः षड् विह्ताः। ते तु भिन्ना भिन्ना मन्नाः,—'त्राकूत्ये प्रयुजेऽग्रये खाद्या द्रायादयः प्राक्ता मन्ताः ; 'बाक्तिमग्निं प्रयुज्य खाद्या रखादया वैज्ञताः । तम वैज्ञतमाद्यतिमन्त्रषट्कं प्राक्ततस्य बाधकं, किंवा प्राक्ततेन समुचितम्? इति संत्रये, बाधकमिति तावत् प्राप्तम्। कुतः ?। कार्यैक्यात्, दीचणीयाङ्ग-भ्रताञ्चत्युपकारसच्चं यत् कार्ये प्राव्यतानां मन्त्रायां, तदेव वैद्यतानामपि, न च, विद्यती तम्र प्रतीयते इति मक्सनीयं; खादान्तपाठक्षेष बिङ्गेन मन्त्राणामाज्ञत्युपकारकलप्रतीतेः, पाइतीनाच 'वड्भिदींचयति' इति वाक्ये तहीक्कीयाङ्गल-प्रतीते:। तसादुपदिष्ममानैर्मन्त्रेरतिदिष्टानां वाध इति पूर्वः पत्तः। त्राप्ती मन्त्राणां स्तरूपं यद्यपि श्रुतिविद्धं, तथापि द्दे।माङ्गलं खिङ्केन कच्चनीयं। तथा चातिदेवकचैर्मक्रेस्स्थ-बसलाम बाध्यबाधकता । एवमपि न यमुचये प्रमाणमस्तोति चेत्। श्रक्षेव, 'दादम अदोति' इति सङ्घाविधानेन तत्सिद्धेः। न च, वैद्यतानामेव षषामाष्ट्रच्या सङ्ख्या सिध्वतीति वाच्यम्; चारुक्तेरत्रुतलात्। न च, या कच्यवितं प्रकाते, चन्यचापि सक्कोपपक्तः। तस्नात् समुखय इति राद्धानाः॥

रति मायनाचार्यविर्चिते माधवीये वेदार्थप्रकाते छण्ण-यजुःभंदिताभाय्ये चतुर्थकाण्डे प्रथमप्रपाठके नवसाऽनुवाकः॥ •॥ यदं में यानि-कानि चा ते दारुं णि द्धासं। तदं स्तु तुभ्यमिह्नृतं तज्जुंषस्व यविद्यं । यदत्युंप्रजिद्धिका यद्द्यो चित्रपंति। सर्वं तदं स्तु ते घृतं तज्जुंषस्व यविद्यं । राचिं र-राचि मप्रयावं भर्नोऽत्रायेव विद्यं घासमस्से। रायस्पे विष्यु सिम् षा मदन्तोऽमे मा ते प्रतिवेशा रिषामं । नाभा॥ १॥

पृथिव्याः संमिधानम् प्रिः ग्रायस्पोषीय रहते हेवामहे । द्रग्रंमृदं रहदुंक्यं यजेषं नेतारम् प्रिं प्रतेनासु सास् हिं । याः सेना श्रुभीत्वेरीरा-व्याधिनीरू गंणा जुत । ये स्तेना ये च तस्तं ग्रास्तं श्रुप्ते प्रिंग्यास्ये । दः श्रीभ्यां मुखिम्बून् जम्भे-सास्तं राः जुत । हनूं भ्याः स्तेनान् भगवस्ताः स्वं खाद् सुखादितान् । ये जनेषु मुखिम्बंवस्तेनास् सास्तं रा वने ये॥ २॥

कश्चेषघायव्स्तारस्ते द्धामि जम्भेयाः । या श्रुसार्थमरातीयाद्यश्च ने। देषेते जनः । निन्दाद्यो श्रुसान् दिषाष्च सर्वं तं मस्मुसा कुरु । सर्र्शातं मे ब्रह्म सर्र्शातं वीर्यं बर्षं। सर्र्शातं श्चचं जिष्ण यस्या-इमिस्म पुरोहितः (८) । उदेषां बाह्न श्रांतर्मुद्दर्च उद्ग बर्षं। श्चिणोमि ब्रह्मणाऽमिचानं नेयामि॥ ॥॥ स्वाः श्रृष्टं रं । ह्याना क्वा उर्व्या व्यंद्योह् मर्ष्-मायुं श्रिये क्वानः। श्रुप्तिर्म्ता श्रभवृद्योभि-यदेनं द्यारजनयत्पुरेताः (१९)। विश्वा कृपाणि प्रति-मुश्चते कृविः प्रामावीद्गद्रं द्विपदे चतुं व्यदे। वि नार्त्त-मस्यत् सविता वरे स्थाऽनुं प्रयार्णमुषसा विर्ाजति (१९)। नक्तोषासा समनसा विरूपे धापयेते श्रिशुमेकं १ समोची। द्यावा श्रामा क्वाः॥ ४॥

श्रुत्ति मेति देवा श्रुप्तिं धारयन् द्रविणादाः (११)।
सुप्णें ऽसि गुरुत्तान् चिष्टमे श्रिरा गायचं चक्षुः स्तामं
श्रात्मा सामं ते तुनून्तीमदेव्यं ष्टं इद्रयन्तरे पृष्टी यंश्राग्रुष्तियं पुच्छं छन्दाः स्यङ्गानि धिष्णियाः श्रुषा यज्रू १पि नामं (१४)। सुप्णें ऽसि गुरुत्मान् दिवं गच्छ सुवंः
पत (१५)॥ ५॥

नाभा। वने ये। नयामि। शामा रुकाः। ऋष्टाचिं प्रशास्त्रा १०॥

द्रित तैत्तिरीयसंहितायां चतुर्थकाएडे प्रथमप्रपाठके दशमाऽनुवाकः॥ ०॥ नवमेऽनुवाके चम्चुत्पादनमुक्तम्। अध इक्षमे अग्निधारणम् खचते। कच्यः, 'यदग्ने वानि-कानि चेति पञ्चभिरोदुम्बर-मपरग्रहक्षमुख्य इधामभ्यादधाति' इति। तत्र प्रथमामाइ,—''यदग्ने यानि-कानि चा ते दाक्षि दधि दधि। तद्द तुभ्यमिर्घृतं सञ्चुत्व यिव्या(१)" इति। हे 'त्रग्ने', 'ते' (लद्धें) 'यानि-कानि च' 'दाक्षि' (दाक्षक्रदेन खुठारच्केदरितमिनि-दारितं काष्टमुच्यते); ताहुणानि यानि-कान्यपरच्चे पतितानि काष्टान्यानीय 'दधि (धारयामः) इति 'यत्', 'तत्' वर्वे 'तुभ्यं' (लद्धें) 'घृतम्'-'इत्' (घृतमिन, घृतवत् प्रियम्) 'त्रस्तु'। हे 'यविष्ठ्य' (युवतम) 'तत्' दाक्षातं 'जुषखं'।

त्रथ दितीयामाइ,—''यदत्युपितिङिका यदकी त्रिति। सर्वे तदस्तु ते घृतं तज्ज्ञवस्त यविद्यां^(१)" दति। जिङ्ठाः प्रधानकासाः तक्तमीपवर्त्तिनी चुद्रज्वासा 'खपितिङ्कका'। प्रसामित्रस्थादानीतेषु दाइषु मध्ये 'यत्' दाइ महारस्थे दावाग्नेः 'खपितिङ्कका' (स्वस्पञ्चासा) 'त्रिति'-भस्तयित, देषद् इ-तीत्यर्थः। 'वस्र'-मृद्दः पिपीलिकासदृत्रं चुद्रजीवमाच्छे, स च यत् काष्ठम् 'त्रितिमर्पति' (त्रितिग्रदेन सर्पति प्राप्नोति), काष्ठा-वयवेषु तच-तप सारं भस्तयतीत्यर्थः; तस्त्वंभित्यादि पूर्ववत्।

श्रय हतीयामाइ,—"राचि १ - राचि मप्रयावं भरन्तोऽश्वायेव तिष्ठते घासमग्री। रायखोषेण समिषा मदकोऽग्री मा ते प्रति-वैद्या रिवाम^(२)" इति । हे 'सग्ने', 'ते' (तव) 'प्रतिवेद्याः'

^{* &#}x27;सब्बें तत्' इत्यादि—इति पाठी भवितुं युक्तः।

(प्रत्यासमाः) वयं 'मा' 'रिषाम' (चिंशां न प्राप्तुमः)। किं सुर्वन्तः?— 'रायसोषेष' (धनपुष्तां, धनपोषेष) 'इषा' (श्रक्षेन) च सम्बक् 'मदन्तः'। तथा 'राचिं-रात्रिं' (प्रतिदिनं) 'त्रप्रयातं' (प्रथम्-भावमक्तवा), एकमपि दिनमत्यक्कोत्यर्थः। 'श्रक्षे' (श्रग्रये) 'घासं' (समिद्रूपं भन्त्यं) 'भरन्तः' (सन्यादयन्तः)। तन दृष्टान्तः,— 'तिष्ठते' 'श्रश्वायेव'। वाजिश्वाखायां सञ्जा खापिताय प्रादाय श्रश्वाय एकमपि दिनमवर्जियवा यथा घासं प्रयक्कान, तदत्।

त्रय चतुर्थीमाइ,—"नाभा पृथियाः समिधानमग्निष्ट् रायसोवाय ष्ट्रते चवामहे। दरंमदं ष्ट्रद्द्यं यजनं नेतार-मग्निं पृतनासु सामिक्ष्म्" दति। 'ष्ट्रते' (प्राेद्धाय) 'राय-स्पोवाय' 'त्रग्निम्' दमं वयं 'इवामहे' (त्राक्रयामः)। कीदृष्ठमग्निं?— 'पृथियाः' 'नाभा' 'समिधानं' (उखाया मध्ये सम्यक् दोष्प्रमानं), (दर्या समिद्रूपेष ऋतेन माचतीति 'दरंमदः'), तं, (ष्ट्रहिन्स सम्यानि प्रश्नंसनानि यस्त्रासी 'ष्ट्रद्द्यः'), तं, 'यजनं' (यान-हेतुं), 'जेतारं' (राखसादिविषयजयत्रीसं), 'पृतनासु' 'त्रग्निं' (सङ्गामेषु ऋगे गक्कनं), 'सासिह्म्' (श्रस्तद्रपराधानामित्रयेन से।दारम्)।

श्रष पश्चमीमाइ,—"याः वेना श्रभीतरीराव्याधिनीदगणा धत । ये सीना ये च तस्त्ररासाप्तसे श्रग्नेऽपिदधाम्बास्ते(ए)" इति । 'याः' (काश्चित् परकीयाः) 'वेनाः' 'श्रभीतरीः' (श्रस्तदा-भिमुख्येन गमनश्रीसाः), 'श्राव्याधिनीः' (सर्वते।ऽस्तान् पीड्यन्त्यः), 'खगणाः' (उत्कष्टगुणापेताः) बद्धसोमा इत्यर्थः, एवंविधा याः वेनाः सन्ति । 'खत' (त्रपि च) 'ये सोनाः' (गुप्तचे।राः) 'ये च तस्कराः' (प्रकटचे।राः) तान् सर्वान् तव 'त्रास्ते' (मुखे) 'त्रपि'-'दधानि' (प्रचिपामि) ।

एतान् मन्त्रान् विनियुद्धे,—"न इ सा वे पुराग्निरपरग्रुटक्णं दहित तदसी प्रयोग एवर्षिरखदयद् यदग्ने यानि-कानि चेति सिभधमादधात्यपरग्रुटक्षभेवासो खदयित" (५।२।१० %) हित। 'पुरा' (एतसान्त्रप्रयोगात् पूर्वे) कदाचिदिप 'श्रिगः' 'श्रपरग्रुटक्षं' (परग्रुच्छेदरहितं काष्ठं) 'न इ सा वे दहित' (सर्वथा न दहित), श्रविदारितं काष्ठमग्ना प्रक्षिप्तमिष न भस्नीभवित, कि न्तु व्यासया कचित् छच्णं भवतीत्यर्थः। एवं सित 'प्रयोगः' (प्रयुच्ध-मानः) 'श्रविभिः'एव ('यदग्ने यानि' हित मन्त्र एव) 'श्रसी' श्रग्ने तत्काष्ठमविदारितम् 'श्रसदयत्' (खादृक्कतवान्)। एतदर्थमेव, यद्दाक्, तद्घृतमस्त्रिति मन्त्रे पयते। तस्नात् 'यदग्ने यानि–कानि' हत्वादिमन्त्रेः सिभधं श्रादधात्, तेन 'श्रसी' श्रग्ने परग्रुच्हेद-रहितं काष्ठं 'खदयित' 'एव'।

एतदेदनं प्रश्नंसित,—"सर्वमसी खदते य एवं वेद" (५।९। १०५४) इति।

यत्काष्टम् श्रपर १६ - यक्षमभ्याधेयं, तस्य जातिविशेषं विधन्ते,— "श्रीदुम्बरीमादधात्पूर्मा उदुम्बर जर्जमेवासा श्रपिदधाति" (५।९।९० श्र•) इति ।

'यद्गे' दत्यादि मन्त्रभञ्जरूपं स्त्रकं प्रत्रं मत्रं प्रत्रं ति,—"प्रजापतिरग्नि-

^{*} समिधिमिति संदितानुसारी। पाठी भवितुं युक्तः।

मस्जत तथ् स्ष्टेश रचाश्स्विजिचाश्यनत्य एत्रहाचो प्रमपस्यत् तेन वै स रचाश्स्वपादत यहाचो प्रं भक्त्य ग्रेरेव तेन जाता हचाश्-स्वपद्य (५।१।१ • च ०) दित । रचे प्रो त्रे उपमिश्चः, तत्स्रृतं 'राचे प्रम्' 'यद ग्रे यानि-कानि च' रत्या रभ्य 'मिनानुस्रवामि स्वाश च इम्'- रत्येतद न्तम्। श्रनेन स्रक्तेन रचां यि प्रजापित-र्चतवान्। तसाद नेन स्रक्तेनाचापि तथेव भवितव्यं। तेन स्रक्तेने त्यन्नादग्रेः मका बाह्चाश्यि विनस्य निः ।

कचाः, 'दण्डाभ्यां मिलक्वित्यात्रत्योण् सिमधमाद्धाति' इति। पाठखु,—''दण्डाभ्यां मिलक्वित् जमयेसारकराण् छत। स्नूभाण् सोनान् भगवसाण्यसं खाद सुवादितान्(')'' इति। गुप्ता प्रकटासिति दिधासोराः। प्रकटा प्रिप पुनर्दिविधाः,— प्रत्येषु मार्गमध्येऽपद्यः प्रत्यचमेव पलायमानाः प्रकटाः, तते।ऽप्यतिप्रकटा निर्भया ग्रामेखेव प्रागत्य बन्दीकाराः। त एते पत्र मिलक्व रत्युष्यमे, (मलं पापाधिकामेषामस्तीति मिलनाः, तथाविधा भूता स्त्रोचयिन्त चौर्यं कुर्वम्तीति मिलस्तः) तान्, दम्तपिक्तमध्ये याभ्यां तो द्यादमाभ्यां कुमुकादिकं भद्यते, ते दंदे, ततः पुरीवर्त्तिना बिहर्दृश्यमाना दम्ता जम्याः, प्रमामलिने तु दन्। तच 'मिलस्त्रम्' 'दंद्राभ्यां' पोद्यस्ता, 'जम्यैः' 'तस्करान्' पोद्यस्ता, 'इ 'भगवः' 'तस्करान्' पोद्यस्ता, हे 'भगवः' (पूजनीय प्रग्नो), 'तान्' सर्वान्, सुष्टु खादिताः (पुनर्जीवनर दिताः) यथा भवन्ति, तथा 'लं' 'खाद' (भच्य)।

^{*} विनाम्मति इति खादर्भपुक्तकपाठः। विनाम्मयति इति B.पु॰पाठः।

एतनाक्रमाधं समिद्धानं विधत्ते,—''त्रामत्योमाद्धात्यश्वत्यो वै वनस्यतीनाष्ट्र सपत्नमाद्धाः विजित्ये" (५।१।१०%) दति । सपत्रान् सदन्ते श्रभिभवन्तीति 'सपत्नसादः'। श्रम् इपधानिषी-ऽग्नेरसान् रचेऽवस्तित्वादश्वत्यस्य सपत्नसाद्द्वं। तचावस्तामञ्च श्राधानमाञ्चापे श्रूयते, 'श्रिग्नेदेवेभ्योऽनिसायत। श्रभो इपं हता। साऽयत्ये संवत्सरमतिहत्। तदश्वत्यसास्त्यत्वम्' दति। श्रत-सदीया समित् विश्रयाय सम्मद्यते।

कत्यः, 'ये जनेषु मिल ख्व दित वैक द्वतीम्' दिति,
त्रादधातीति ग्रेवः। पाठ ख,—''ये जनेषु मिल ख्ववस्तेनामः तस्करा
वने । ये कचेष्यधायवस्ता १ स्ते दधामि जन्भयोः (०)" दिति ।
यामवर्त्तिषु 'जनेषु' वनेषु गच्छस्य च 'ये' चिविधाः पूर्वे । त्राच्याः यिना, 'ये' चान्ये व्याष्ट्रादयः 'कचेषु' स्थिता 'श्रष्टायवः'
भवन्ति, (श्रष्टं चिंसन मिच्छन्तोति 'श्रष्टायवः)', 'तान्' सर्व। न्
तव 'जन्भयोः' 'दधामि'।

एतन्त्रन्त्रसार्थं समिदाधानं विधन्ते,—"वैकङ्कतीमादधाति भा एवावरुखे" (५।१।१०५०) इति।

कर्णः, 'से श्रम्भभागतीयाहिति श्रमीमयोम्' इति । पाठस्त,—"यो श्रम्भमगतीयाद् यस्य ने। देवते जनः । निन्दाद् यो श्रम्भान् दिपाच सर्वे तं मस्ममा सुर्^(८)" इति । पूर्वे चे।रभेदा दर्शिताः, इदानों श्रमुभेदा उच्चन्ते । ते च

^{*} सप्रतस्य इति आयदर्भपुक्तको पाठः स्वंपर्भ। † वनेष इति आयदर्भपुक्तको नास्ति।

पितिधाः, — त्ररातयो देविणी निन्दका सितः, तत्र दातयलेन प्राप्तं धनं यो न ददाति, वेाऽयम् त्ररातिः, कार्यविघातं यः करोति स देवी, वाग्दीर्जन्यमात्रं यः करोति, स निन्दकः, इनुकामसृत्यः । तत्र 'यः' 'त्रसासं' (त्रसाकं) 'त्ररातीयात्' (त्ररातिलमिक्कति); 'यो' यजमानान् 'त्रसान्' 'देवते' (कार्यनामेन वाधते); 'यः' त्रप्यन्यः 'त्रसान्' 'निन्दात्' (निन्दति)। 'यय' त्रपरः 'त्रसान्' 'दीपात्' (दक्षितुं, दिंसितुमिक्कति), 'तं' 'स्वे' जनं 'मस्मसा कुरु', (त्रूर्णजन्यत्रष्ट्यानुकर्णं मस्मसेति) पूर्णिक्वविद्यर्थः ।

एतयान्त्रसाध्यं समिद्धानां विधत्ते,—"ब्रमोमयोमाद्धाति बान्धे" (५।९।९०४०) दति।

कच्यः, 'मश्चितं मे ब्रह्म खदेवां बाह्म श्रतिरिमित्युक्तमे यजमानं वाचयन् द्वच्योमीदुम्बर्या सिमधात्रादधाति' इति । तम प्रथमामाइ, सश्चितं मे ब्रह्म सश्चितं वीर्यं बलं। सश्चितं चनं जिच्च खखाइमित्स पुरोहितः (८)'' इति । 'मे' (मदीयं) ब्राह्मखं 'मंजितं' (सम्यक् तीच्च्चिक्ततं), ब्राब्दीय-मार्गवर्त्तं क्वतिमत्यर्थः, तथा, 'वीर्यं' (इन्द्रियन्निः), 'बलं' (ब्रह्मित्रक्तिः), तदुभयं 'मंजितं' (सम्यक् खकार्यचमं), तथा 'चस्त्र' (खन्य राज्यः) 'बहं' 'पुरोहितः' 'श्रस्ति', 'मे' (मदीयं) तत् 'खनं' 'जिच्चु' (जयत्रीसं) यथा भवति, तथा 'संजितम्' श्रस्त इति ब्रेषः।

श्रय दिनीयामाइ,-"'उदेवां बाह्र श्रतिरमुदर्च उदू बसं।

षोषोम बद्याषाऽमिषानुस्रयामि खाष्ट्र श्रष्टम्(१०) रित । 'एवां' (खकीयानां) राजबाद्याषादीनां मध्ये एकेकस्य 'बाह्र' 'उत्'-'श्रितरं' (उत्कर्षेष वद्धितवानस्मि) सोकिकाक्तिरियं; सेकि हि योऽन्यसादुत्कष्टे। भवति, तं जना एवमाडः,— सकीयप्रसामुपरितनं कतवानिति । 'वर्षः' (कान्तः) नामपि 'उत्'-'श्रितरं'। 'बसं' (श्ररीरं) तदपि 'उत्'-'श्रितरं'। 'ब्रह्माषा' (मन्स्रयामर्थेन) 'श्रिमचान्' 'चिषोमि' (चोषान् करोमि)। 'खान्' (सकीयान्) पुद्वान् 'श्रप्टम्' 'उन्नयामि' (उत्कर्षे प्राप्यामि)।

एतमान्त्रसाधं यजमानवाचनं विधन्ते,—'स् कितं मे ब्रह्मा-देवां बाक्र अतिरमित्युन्तमे बीद्म्यरी वाच्यति ब्रह्मायेव चन्न्र सः अत्यति चनेक ब्रह्म तसाद् ब्राह्मणे राजन्यवानत्यन्यं ब्राह्मणं तसाद् राजन्ये ब्राह्मणं तसाद् राजन्ये ब्राह्मणं तसाद् राजन्ये ब्राह्मणं वाच्यत्। क्रिह्ममें (राचे ब्रह्मक्यान्तिमें) स्थ्या यजमानं वाच्यत्। क्रीद्मर्थो दे समिधी त्र्ष्णीमादध्यादिति क्रेषः। प्रथममन्त्रे ब्रह्मच्यां दे समिधी त्र्ष्णीमादध्यादिति क्रेषः। प्रथममन्त्रे ब्रह्मच्यां संक्रितलं यद्क्रं, तच परस्परापकारा विज्ञायते। ब्राह्मकेव पुराह्मिते राजा धर्मे तीस्प्णीकता भवति, राज्ञा वियामकेन ब्राह्मणेऽपि संक्रितः खाचारे नियमिता भवति; यस्तिवं, 'तस्ताद्' राजन्येन खामिना युक्ता 'ब्राह्मणः' खामि-रहितं 'ब्राह्मणं' *अत्येति। राजापि धर्मवोधकेन पुराह्मितन ब्राह्मणेन युक्तस्त्रह्हितमधार्मिकम् 'श्रन्यं' राजानम् 'श्रति' (श्रत्येति)।

परचेव चनापि 'चिति' हित संचिता उडक्तुंमुचिता।

कल्यः, 'एकविश्वितिर्विधो इकाः स्वेष्काः द्वाने रका इति तमायीना यजमानाऽन्तर्निर्वाधं प्रतिमुख यहिरिविधान् कुरते' इति । पाठस्तु,—"दृवाना रका उर्था व्यश्चाहुर्मर्षमायः त्रिये रचानः। त्रियरस्ते। त्रभवदयोभिर्यदेनं धारजनयस्तुरेताः(११)" इति । 'दृवानः' (दर्बनीयरूपः) 'रुकाः' (सुवर्णनिर्मतः फलकाकार त्राभरणविष्वेषः) 'खर्यः' (महत्या दौष्या) 'यथात्' (विद्यातते सा) । किं कुर्वन् ?—'दुर्मर्षम्' (त्रितरस्कार्यम्) 'त्रायः' (जीवनं) 'त्रिये' (त्रियतं) 'द्वानः', (वाच्क्रम्); तथाविधः 'त्रियः' 'वयोभिः' (यश्चिरं) 'त्रस्तोः अस्ते। अस्ति,' 'यत्' (वस्तात्) 'एनं' (व्रियो) 'धाः' (खुले।कवासी देव-गणः) 'सुरेताः' सन् 'त्रजनयत्', तस्तादस्ततं युक्तम्। त्रव दकास्याग्निधारणङ्गलादग्नितसुपचरितम् ।

श्रमेन मन्त्रेष साधं रकाप्रतिसे तं विधत्ते,—"स्युर्वा एष यद्रिरस्तर हिरखर रकामन्तरं प्रति मुद्यतेऽस्तसेव स्त्यो-रन्तर्भ्तं" (५।१।१०१०) इति । श्रप्तेदे हेन विनामकलाकृत्युलं, हिरखसाग्निम्पर्केऽप भस्नोभावादर्भनादस्ततः । एवं सित धारयियमाणसाग्नेः स्वकीयस उरसञ्च 'श्रम्तरं' (मध्यवर्त्तः) यथा भवति, तथा 'रकां' दीर्घस्त्रेण प्रीतं मस्ने प्रतिमुद्देत् । तेन प्रतिमुक्तेन दास्कादग्निरूपात् 'स्त्योः' श्रम्यतं' (रकां) यवधान रूपं क्रत्यान् भवति ।

तस्य रकास्य विन्दुसहुश्रामाकारविश्रेषाम् विधत्ते,—''एक-विश्रशतिनिबंधो भवत्वेकविश्रातिवें देवलेका दादत्र मासाः पश्चर्नवस्तय इसे खेका सवावादित्य एकविश्व एतावका वे देवलेकाखेम्य एव श्राह्मयसम्मरेति" (५।१।१ ॰ प्र॰) इति। सुवर्णक्रलके निकास्त्रतभावमापय स्पर्ककारिणं पृक्षं निःश्रेषेष्ठ वाधको इति 'निकाधाः' स्कोटसदृत्रा प्रवस्तविश्रेषाः. ते च एक-विश्वतिपञ्चाका चित्रान् क्को बेाऽयम् 'एकविंवतिनिकाधः', तादृत्रं क्कां खुर्यात्। खेक्यको भुज्यको बेर्डेश्वकाषादिसाधन-विश्वतेः, ते खेकाः, मामाद्यस्त देवानां भागमाधनानिति ते स्व खेका इत्युच्यको। श्राता निकाधनतिकविश्वतिसङ्घाया मामा-दिकेश्व श्वादित्याकोश्व एकविंवतिक्षेत्रभेषो 'श्वाह्मयम्' श्वकारितं करोति।

विदितान् निर्वाधान् प्रश्नंवित,—"निर्वाधिने देवा श्रमुरान निर्वाधे खुर्वत तत् निर्वाधानां निर्वाधनं निर्वाधा भवति आह-यानेव निर्वाधं खुरूते" (५।१।१०१०) रित । पर्मसङ्गधारिको 'देवाः' पर्मणो विद्यमाने खुपतेः कांस्वादिमयैः प्रादुक्कोटाकारैः 'निर्वाधैः' स्वर्यद्यार्थमानतान् 'श्रमुरान्'श्रास्तास्य भूमिपतनादिक्षे निश्चितवाधे श्रवस्थितान् 'खुर्वत'। यसान्निश्चितवाधा एते, तस्वात् 'निर्वाधाः'। श्रतेः उत्र दक्कास्त्र निर्वाधनेन 'आह्यान्' सर्वान् निश्चितवाधे पतितान् 'कुर्वत'।

कस्यः, 'विश्वा इपाणि प्रिक्यपार्थं प्रतिमुखते' इति । पाठस्तु,—''विश्वा इपाणि प्रतिमुखते कविः प्राधावोद्धद्रं दिपदे पतुष्पदे । वि नाकमञ्जत् धविता वरेखोऽनु प्रधाणमुखना वि । राजिति(१९)" इति । 'कविः' (विदान्) 'वरेखः' (श्रेष्ठः) 'धविता', 'विश्वा क्यां खि' (समसानि जगद्रूपाणि) 'प्रतिमुश्चते' (ससिन् स्वीकरोति) प्रकाशयतीत्यर्थः । 'दिपदे चतुष्पदे' (मनुष्याखां पश्चनाञ्च) 'भद्रं' (स्वस्वयवद्यारप्रकाशनक्षं स्रेयः) 'प्रासावीत्' (सम्पादितवान्); 'नाकं' (स्वर्गे) विश्वेषेष 'त्रस्थात्' (प्रकाशितवान्); 'खष्यः' 'प्रयाणम्' 'श्वनु' (खषःकास्वेऽतीते) सति 'विराजति' (विश्वेषेष प्रकाशते) ।

श्रानेन मन्त्रेण साध्यं त्रिकापात्रप्रतिसे विधन्ते,—''सावि-चिया प्रतिमुद्धते प्रस्रत्ये'' (५।९।९०२०) रति। 'सविता वरेष्यः' रति मन्त्रलिङ्गादियं सावित्री सम्यक्पेर्याय समयते।

कस्यः, 'नक्रोषामिति छत्याजिनमुत्तरम्' इति, प्रतिमुखते इत्यनुवर्त्तते। पाठस्तु,—''नक्रोषाषा समनसा विक्षे धापयेते श्रिप्तमेकः समीची। द्यावा चामा इक्कः सम्मर्विभाति देवा सिग्नं धारयम् द्रविणोदाः(१९)" इति। नक्तस् खवास 'नक्रोषासा' (राचिदिवसावित्यर्थः), 'समनसा' (परस्परमेकमितयुक्ते) 'विक्षे' (राचिः छत्या, दिवसस्त प्रदुक्तरूपः,—इत्येवं विखयक्ष्रूपे) 'समीची' (समीच्या सनुवूखे सत्या), 'एकः' 'श्रिप्त्रम्' 'सिग्नं' 'धापयेते' (यजमानकर्वकमित्रधारणं सन्पादयतः)। 'द्यावा' (युक्षोक्ते), 'चामा' (चिता स्रक्षोक्ते), 'सन्तः' (तद्भयमध्यवर्त्तिन सन्तरिचे) 'विभाति' सयं 'इक्तः' स्रिग्नः (विश्वेषेण प्रकाशते)। दीव्यन्ति विद्यन्तीति 'देवाः' प्राणाः, ते च 'द्रविणोदाः' (यामदारेख द्रविणं धनक्षं प्रखं प्रवस्त, तादृशाः) खक्रमानस्य प्राणाः 'स्रिग्नम्' एतं 'धारयम्' (ध्रतवन्तः)।

एतकाकाधं कषाजिनप्रतिमोकं विधक्ते,—"नक्रोषामेत्यु-करवाहेरावाम्यामेवेनमृशक्कते" (५।१।१०२०) इति । पूर्वी साविजीम्हकमपेच्य इयमुक्तरा । तथा कष्णाजिनं प्रतिमुद्धते इति जेष: । तथा मति तकाकाप्रतिपादिताम्याम् 'ब्रह्मेरावाम्यामे-वेजम् ऊद्धे धतवान् भवति ।

तस्य मन्त्रस्य चतुर्घपादे देवज्ञब्देन प्राणा विविचता इति दर्ज्ञयित.—"देवा चित्रं धार्यम् द्रविषोदा इत्याद प्राणा वे देवा द्रविषोदा चहोराचाभ्यामेवेनमृद्यस्य प्राणिदीधार" (५१९। १०६०) इति । उद्यमनमानमहोराचयोः क्रत्यं; धार्यम् प्राणानामित्यर्थः ।

इका-जिकापात्र-कृष्णाजिनानां यः प्रतिमोकः, तस्य कासे उपवेत्रनं विधत्ते,—''त्रासीनः प्रतिमृद्धते तस्यादासीनाः प्रजाः प्रजायको'' (५१९१९ • प्र •) इति । 'तस्यात्' 'त्रासीनः' प्रतिमोकात् सोकेऽपि 'प्रजाः' 'त्रासीनाः' एवे।त्पद्यको, नद्धत्यिताः ।

कष्णाजिनस्य विकात् विहर्षेत्रवर्त्तिलं विधन्ते,—"कष्णा-जिनमुत्तरं तेजा वै हिरक्षं ब्रह्म कष्णाजिनं तेजसा पैवैनं ब्रह्मका चोभवतः परिग्रकाति" (४।१।१०२००) इति। विकास एकते दक्काम्, श्रन्यतः कष्णाजिनम् इति, तेजोक्ष्पेण दक्कोष, वेदक्षेष कष्णाजिनेन 'च' 'उभयतः' विका परिग्रहीतं भवति। कष्णाजिनस्य ब्रह्मक्ष्यलं दीचाप्रकर्षे समाक्षातम्, 'ब्रह्मको वा एतद्र्षं यक्काष्णाजिनम्' इति। विश्वसी समन हेत्र क्यु सहां विश्व से, — "व वृद्याम श्रिकां भवति व द्वा स्तव स्ति भिरेवेन मुद्य स्कते" (५।१।१० स्व०) इति। प्राप्त से विश्व से, — "बहु दि शो सामश्र संवत् रेपेव" (५।१।१।१० स्व०) दिते। 'दाद स मासाः संवत् दर्श द्वा मतात् 'संवत् रेपेव एन मुद्य स्कते।

विकास प्रतिहर्यं विधन्ते,—''मै। मां भवत्यूमें मुद्धा ऊर्जे-वैन १ समर्द्धात'' (५।१।१०१४०) इति ।

कचाः, 'स्पर्णेऽसि नदतानित्युक्षसवेद्य' इति। पाठम्,—
"स्पर्णेऽसि गदतान् चिष्टते विरो गायणं चतुः स्तोस
माता मान ते तनूर्वामदेशं इष्ट्रयान्तरे पत्ती यज्ञायित्रयं पृष्टं
हन्दाः खन्नानि धिष्णियाः प्रका यजूः वि नाम(१३)" इति।
हे त्रग्ने, लं 'स्पर्णः' पिष्ट्याः 'मिष्टं', पद्धाकारेष चेयमाष्ट्यात्;
मत एवाषायते, 'प्रयमं वा एव प्रतिसदा चोयते यदिगः' इति।
तच दृष्टान्तः,—'नदत्सान्' यथा पित्राजसदत्। पद्धाकारस्थावयवाः सम्पद्यन्ते हे—'चिष्टन्ते ग्रिरः' (बिष्ट्यवमानक्तेषे बोऽषं
विद्यत्योतः, स एव स्तोमः विरक्षानीयः); प्रजापतिमुखजन्यत्वेन
पन्नात्। यद्वायनाक्षं 'सामः, तत् लदीयं 'चन्दः', यः पञ्चदन्नादिक्तामः, स एव जीवात्सा। चद्वामदेवास्यं 'सामः', सा
'तत्रूः'(विरोध्यितिरिक्तवरोरम्बानीयं)। ये हष्ट्रवान्तराक्षे सामनो
'ते' तव पच्छानीये । यद् यज्ञाविश्वास्यं साम, तत् तव

सम्पद्यते इति सम्बंच पाडी न सम्बक्।

पुष्क्खानीयम्। यानि गायश्चादीनि कन्दांसि, तानि इदयाधक्रुक्खानीयानि । ये सैमिकवेशां देशियादि—'धिष्पियाः',
'ते' तव प्रप्रमानीयाः । यानि 'यजूश्वि', तानि तव नामखानीयानि ।

एतमानं विनियुष्के,—"सुपर्णाऽमि गर्तानित्ववेचते इपः मेवास्तैतमाहिमानं व्याचष्टे" (५।१।१०२०) हित । 'श्रवेचते' उस्वमिति भेषः । मन्त्रस्वइपेणैवार्थप्रतीतेर्नाच पृथाव्यास्त्रातव्य-मस्ति ।

कत्यः, 'सपर्णेऽिं गरुता। नित्यादयोत्याय' इति । पाठन्तु,— "सप्पेंऽिं गरुतान् दिनं गच्छ स्वः पत्रिं।" इति । हे श्रग्ने, लं 'गरुतान्' (गरुड् इत पच्छिएः) 'श्रमि' । श्रत श्राकाशं प्रति 'गच्छ'; तताऽिं 'स्वः पत्त' (स्वर्गेलोकं प्राप्नृष्टि) ।

मन्त्रसा स्वर्गप्राप्तिपरलं दर्भयति,—"दिवं गच्छ सुवः पते-त्याच सुवर्गमेवैनं लेकं गमयति" (५।९।९०४०) दति। 'एनं' यजमानमात्मानम्॥

त्रव विनिधागसङ्गृष्टः,---

यदग्ने,-पश्चभिः काष्ठं वक्तावाद्ग्वरं चिपेत्। दंद्राऽश्वत्योमादधाति, ये, च वैकङ्गतों तथा॥ यो श्रम्भाशं, श्रमोकाष्ठं, संश्रित-द्यवाचनम्। दृश्चा, द्वां निजे कष्ठे बद्धा, विश्वेति म चतः॥ साम्युकाश्विकापात्रं तु स्वास्थव प्रतिमुद्यते। नको, ऽजिनं चोपरिष्टात् , सुपर्णाऽग्निमवेचते । सुपर्णः गाग्निस्तिष्टेनान्ताः पश्चदन्नेरिताः॥

द्दित सायनाचार्यविरचिते साधनीये वेदार्थप्रकाणे क्रच्य-यजुःसंहिताभाये चतुर्यकाण्डे प्रथमप्रपाठके दन्नमाऽनुवाकः॥ •॥

यम् यं य्यम्भ्यरं विश्वतः पर्भूरसि । स इद् देवेषु गच्छति() । सेम् यास्ते मयो-सुवं ज्तयः सन्ति द्रायुषे । ताभिनीऽविताभव() य्रिम्भूभा सुवं:(९-१) । त्वकः सोम् या ते भामानि(१) । तत्सेवितुर्वरेखः भगी देवस्य भीमहि । भियो या नः प्रचाद्यात्() । याचित्री यर्चक्रमा देखे जने दोनैर्द्धः प्रभूती पूरुष-त्वता ॥ १ ॥

देवेषु च सिवत्मीनुंषेषु च त्वद्धो चर्च सुवताद-नागसः । चाद्यिची सून्द्रतानां चेतन्ती सुमत्तीनां। युत्रं दंधे सर्वती । पावीरवी कुन्धा चिचायुः सर्वती वीरपंजी धिर्यं धात्। ग्राभिरच्छिद्र शर्णः स्वोषा दुराधंषं युक्ते श्रमे यश्सत् । पूषा गा चन्तेतु नः पूषा रिश्चत्वंतः। पूषा वार्णः सनातु नः (११)। शुक्तं ते चन्यचेष्ठतं ते चन्यत्॥ २॥

विषुक्रपे अर्चनी धौरिवासि। विश्वा हि माया अवसि खुधावा भुद्रा ते पूषित्र रातिरस्तु (१२)। तेऽवर्डन्त स्वतंवसा महित्वनाऽऽनार्वं तुःखुरुर चेत्रिरे सदः। विष्णुर्यद्वावदुषंगं मद्चुतं वर्गे न सीदुवधि ब्हिषि प्रियं(१९)। प्रचित्रमुक् येखते तुराय मार्वताय खतंवसे भरेष्यं। ये सर्हाःसि सर्हसा सर्हन्ते॥ ३॥

रेजते अग्ने। पृथिवी मुखेर्यः (१४)। विश्वे देवा विश्वे देवाः^(१६.१९)। द्यावा नः प्रिष्ठ्यवी दूमः सि्ध्रमुद्य दिविस्प्रमं। युन्नं देवेषु यक्कतां(१०)। प्र पूर्वेते पितरा नव्यसीभिगींभिः क्षंणुध्वः सद्ने चृतस्य। या नी चावापृथिवी दैबोन जर्नेन यातुं मर्चि वां वर्क्सं^{राह}। त्रिग्नः स्तोमेन वेषय समिधाना त्रमंत्यं। हुव्या देवेषु ना दधत्^(१८)। स इंख्यवाड्मर्त्य एशिग्ट्रत-यनाहितः। अग्निर्धिया सर्चेखिति(१०)। श्रना भवन्तु वाज-वाजे(११.११) ॥ ८ ॥

पुरुष्ताता। यज्ञतं ते श्रुन्यत्। सर्दन्ते। चना-हितः। ऋष्टी चं॥ ११॥

युज्जानः। दुमारम्णन्। देवस्य। सं ते । वि पात्रसा। वसंवस्त्वा। समास्त्वा। ऊर्द्धा श्रस्य। श्राक्कृतिं। यदंग्रे यानि। श्रमे यं यज्ञम्। एकाद्श ॥ ११ ॥ * ॥ • ॥

्र युद्धानः। वर्मं च स्य। चादित्यास्त्वा। भारती। स्वाः चुद्दः। षट्चंत्वारिः श्रत्॥ ६४॥

युष्त्रानः। वाजे वाने॥

॥०॥ इत्ः श्रीम्॥०॥

द्रति तैत्तिरीयसंहितायां चतुर्थकार्रे प्रथम-प्रपाठके रकादभाऽनुवाकः ॥ ॰ ॥

* । समाप्तय प्रथमः प्रपाठकः ॥ * ॥

दशमेऽनुवाने विक्रधारणसुक्तम्। श्रयेकादशे चातुर्मास्थाते वैश्वदेवास्थे प्रथमपर्विण विदितानां द्विषां याच्यानुवाक्या स्थाने। तत्र प्रथमस्थान्यभागस्य चेादकप्राप्तामयवदित् मन्यां पुरानुवाक्यामादः,—"सग्ने यं यश्वमध्यरं विश्वतः परिश्वरिष्ठ। स रहेवेषु गच्छिति(१)" दति। दे 'श्रग्ने', 'श्रध्वरं' (दिंशार्हितं), 'खं' 'खन्नं' 'विश्वतः' 'परिश्वरिष' (सर्वतः प्राप्तवानिष्ठ)। 'स दत्' (स एव) यन्नः 'देवेषु' 'गच्छिति'।

श्रथ दितीयाच्यभागसः पुरोऽनुवाकामा ह,—"से म यासे मयो-भुव जतयः सन्ति दाश्रुषे। ताभिर्मेऽविता भव^(१)" दिति। हे 'सेम', 'दाश्रुषे' (इविदंत्तवते) यजमानाय 'मयो-भुवः' (सुखं भावियतुः) 'ते' (तव) 'या' 'जतयः' (रचणप्रकाराः) 'सन्ति', 'ताभिः' (जितिभः) 'नः' (श्रस्माकं) 'श्रविता' (रचकः) 'भव'।

चय 'चाग्रेयमहाकपासं निर्वपित' रायसिन् इविधि याच्या-पुरोन्वाकाचोः प्रतीके दर्भयित,—''चिग्नमूर्द्धा, स्वः (२-४)'' रित । 'चिग्नमूर्द्धा' दित पुरोन्वाका, 'स्वो यज्ञस्य' दित याच्या। एतचे। भयमैहिके देवकाण्डे समासातम्, तच स्रसाभिददा दय, ''चनुषी वा एतस्य ज्ञस्य' (१का । १४०। १४०) द्रायसिन्न गुवाके व्यास्थातम्।

श्रथ 'सेन्सं चर्म' इत्यसिन् इतिषि वाज्यानुतास्त्रयोः प्रतोते दर्भयति,—"लग्नः सेन्म, या ते धामानि(१,५)" इति। 'लग्नः सेन्म विश्वतः' इति पुरानुताक्ता, 'या ते धामानि' इति याज्या; एतचे।भयं "स पत्नवित्र काव्या" इत्यनुताने (१का । १४०। १४२०) बाम्यातम्।

श्रथ 'सावित्रं दादश्रकपासम्' रत्येतस्य इविषः पुरानुवाका-माइ,—''तत्सवितुर्वरेष्णं भर्गा देवस्य धोमिष । धियो यो वः प्रचोदयात्^(०)" रति । 'यः' सविता श्रसाकं बुद्धोः प्रेरयित, 'तत्सवितुः' 'देवस्य' वरसीयं 'भर्गः' (तेका) धायेम ।

तनेव बान्यामाइ,—''श्रिक्ती यश्रहमा देये वने दोने-दंचे: प्रश्वती पूरुपलता। देवेषु च वितर्मानुषेषु च लको यन सुवतादनागयः(म)'' इति। पूरुपस्य भावः पूरुपलं, पूरुपलमेन 'पूरुपलता', या 'च' 'प्रश्वती' (श्वतिबद्धसा), देवेश्रियादियशातेषु पुरुपे।ऽइमस्नीत्यादि नादास्थाभिमानश्वान्तिरत्यमं दृतेत्यर्थः। तथा वति, दे 'श्वित्ती', वर्षयावर्ष्ययोरञ्चानेन 'दोनेदंवेः' (विषयसम्पटतया दोनलं प्राप्तः, स्रस्वयापारकुष्ठसेरिङ्गिः) 'दें खे जने' (देवतासम्बन्धिन जरीरे) 'यत् चक्तम' (यत् पापं वयं कतवन्तः), दे 'सवितः', 'लं' 'देवेषु' मनुखेषु 'च' 'म्रच' (म्रस्मिन् कर्मणि) 'नः' (श्रस्मान्) 'म्रनागमः' (पापरहिताः) यथा भवामः, तथा 'स्वतात्' (प्रेर्य)।

श्रथ 'सारखतं परम्' इत्यख पुरे निवाक्यामा इ.—''चे द्यंची स्नृतानां चेतन्ती सुमतीनाम्। यश्रं दधे सरखती (८)" इति। 'स्नृतानां' (प्रियवाक्यानां) 'चे दियंची' (प्रेरियची) 'सुमतीनां (श्रीभन बुद्धीनाम्) श्रक्षाकं द्रत्यं 'चेतन्ती' (जानन्ती) 'सरखती' 'यश्रम्' इमं 'दधे' (धारितवती)।

तंत्रेव याच्यामाद,—"पावीरवी कन्या चित्रायुः सरस्ती वीरपत्नी धियं धात्। ग्राभिरिच्छद्र श्र त्रण् संजावा दुराध्ये यण्यते ग्रमं यश्र सत्^(१०)" इति । 'सरस्ती' 'धियं धात्' (श्रस्मदीये कर्मणि सावधानां बुद्धिं धारस्तु)। की हु भी?—'पा-वीर-वी' 'पातृ वीरांख वयित जनस्तीति 'पा-वीरवी), 'कन्या' (कमनीया), 'चित्रायुः' (विचित्रं जीवनं सस्याः सा), 'वीरपत्नी' (वीराणां पास्तिची), 'ग्राभिः' (कन्दोभिः) युक्ता, 'सरस्ततो' 'सजोषाः' (यजमानेन समानग्रीतिः) सती 'ग्रणते' (स्वते) यजमानाय 'कर्म यंसत्' (सुखं प्रयच्छत्)। की हु गं 'प्रमं' ?—'श्रच्छिद्रम्' (श्रविच्छन्नं), 'ब्र एणं' (रचकं), 'दुराध्यें' (श्रन्यैर्ध्वयित्र मश्रक्म ।

श्रय 'पैष्णं चर्म' दत्यस्य पुरेानुवाक्यामाइ,—"पूष गा श्रन्वेतु नः पूषा रचलर्वतः। पूषा वाजः समोतु नः(११)" दति। श्रयं 'पूषा' 'नः' (श्रसाकं) 'गा श्रन्वेतु' (रचणाय प्रष्ठते। गच्छतु)। किञ्च, ऋयं 'पूषा' सर्वते। 'त्राम् 'रचतु' । 'पूषा' 'नः' (ऋसाभ्यं) 'वाजम्' (ऋजं) 'सनातु' (सम्पाद्यतु) ।

तचैव याज्यामा इ,—"इक्तं ते चन्यत् यजतं ते चन्यदिषु इपे त्रहनी द्यारिवाधि । वित्राहि माया त्रविध खधावा भद्रा ते पूषिज्ञ रातिरस्तु^(१२)'' इति। हे 'पूषम्', 'ते' (तव) 'ग्रुक्तं' (ग्रुद्धस्त्रह्मम्) 'श्रन्यत्' (श्वनेकप्रकारं), उदयकाखे रक्तवर्णे रूपं 'ग्रन्यत्', मधाक्रकाले चेतवण रूपम् 'ग्रन्यत्',-इत्येवमनेकप्रकार-तम्। 'ते' (तव) 'यजतं' (पूजनमपि) 'चन्यत्',—प्राप्तःकाखे ''मिचस्र चर्षणीधतः" दत्यादिभिर्मन्त्रैः पूज्यमे, मध्याक्रे तु "त्रा मह्येन" दत्यादिभि:। तथा, लया निष्पादिते 'श्रहनी' श्रपि 'विवृद्धपे' (नानारूपे)। ऋदः ऋद् श्रव्हिन्यायेन राचिमणुपलचयित। ऋदः प्रकाशोपेतं, राजिस्तमायुक्तेति नानारूपलं। एवं विचित्र-कार्ययुक्तोऽपि लं 'द्यीरिवासि,-त्राकार्य यथा एकरूपं, तदत् लमपि पचपातरा चित्वादेक रूपे। अभियने पदार्था वाभि-स्चित्तवृत्तिभिस्ताः चित्तवत्तयो 'मायाः' । कयदानवाचिना च खधात्रच्देन क्रत्मणसम्पषच्यते। हे 'खधावः' (त्रस्रवत्), 'विश्वा हि' 'मायाः' सर्वा श्रयन्यदोयचित्तवृत्तीः 'श्रवसि' (रचिस) । हे 'पूषन्' 'इह' (कर्मणि) 'ते' (तव) 'रातिः' 'अद्रा' 'त्रस्तु' (फालप्रदानं समीचीनं भवतु) ।

श्रय 'मार्तं सप्तकपालम्' इत्यस्य पुरेानुवाक्यामाइ,—''ते-ऽवर्द्धन्त स्वतवसे महिलमा श्रा नाकं तस्युरह एकिरे सदः । विष्णुर्यत् इ श्रावहृषणं मद्युतं वये। न सीद्यधि बर्हिष प्रिये(१२)" इति। 'तवः' वसं, 'खं' (खाधीनं) तवा येषां, ते 'खतवसः', ताहृश्राः 'ते' (मदतः) 'महिलना' (महलेन) सकीथेन 'श्रवर्श्वना'; 'ते' (मदतः) 'नाकं' (खर्गे) 'श्रा'-'तस्यः' (प्राप्तवनाः); 'छद' 'सदः' 'चितरे' (खर्गे यजमानाय स्नानं स्तवनाः)। 'हष्णं' (कामानां वर्षकं), 'मद्श्युतम्' (हर्षधारकम्) श्रायमाहर्षकारणमित्यर्थः, तादृशं यद् वर्षिः (मद्तसम्बन्धि कर्म) 'विष्णुः' 'ह' (विष्णुरेव) 'यत्' 'श्रावत्' (पासितवान्), तिसन् 'प्रिये' 'वर्षिय' मदते।ऽधिष्ठाय 'वयो न' (वय इव) 'वीदन्', यथा पर्षियः सार्थकाले हचे सोहन्ति, तहत् श्रवतिहन्तीति।

तनेव वाच्यामाइ,—"म चित्रमके स्टब्ते तुराय माइताय सत्तवे भरधं। ये बहा श्रि वह्या महन्ते रेजते प्रमे पृथ्वी मसेभः (१३)" इति । हे खित्रयंजमानाः, 'चित्रमके' (विविध-सर्चनं) 'माइताय' (मइत्यमूहाय) 'प्र'-'भरधं' (प्रकर्वेष सम्पाइयत) । को बृजाय 'माइताय?', 'स्टब्ते' (हविद्रानाय स्टब्ते), 'तुराय' (जीव्रगामिने), 'स्तवसे' (स्वधीनवसाय)। 'से' भवनाः, खित्रयंजमानाः, 'यह्या' (मइतां बसेन) 'यहांसि' (वैरिवसानि) 'यहने' (ज्ञिभवन्ति) इति पूर्ववाच्यः। हे 'च्रमे', समेव तत्पसेत्यधाहारः। किन्तहृष्ट्यमिति?—तदुच्यते, इयं 'पृथ्विते' 'मस्तेभ्यः' (माइतयज्ञेभ्यः) 'रेजते' (कन्पते),—कद्यं नामेतदीया यज्ञा निर्वित्रेन समायन्ते?—इति प्रयस्तं करोति,—तद्दिसिति।

अध 'वैश्वदेवीमामिचाम्' इत्यक्षिन् इविवि बाच्यापुरानु-

वाकायोः प्रतीके दर्भवित,—"विश्वे देवा विश्वे देवा (१६-१९)" इति । 'विश्वे देवा व्यताद्यः' इति पुरानुवाक्याः; 'विश्वे देवाः प्रद्रणुत' इति वाक्या। एतवाभयं "नवा नवा भवित" (१का ०१४ प्र०। १४ थ०) इत्येतस्मित्रनुवाके व्याख्यातम्।

'द्यावाप्टिय्यमेककपालम्' इत्यस्य पुरे निवाक्यामा इ,—''यावा नः प्रथिवी इम् सिप्रमय दिविस्पृष्ठं। यद्यं देवेषु यस्कताम् (१०)'' इति । 'द्यावा' 'प्रेंथिवी' (युदेवता, प्रथिवीदेवता) चेति उभे 'त्रय' (त्रस्मिन् दिने) 'नः' (त्रस्मदीयम्) 'इमं' 'यद्यं' 'देवेषु' समर्पयेतां। की दृष्ठं यद्यं?— 'सिप्रं' (प्रसस्य साधकं), 'दिवि-स्पृत्रं' ('त्रश्री प्रास्तान्त्रतिः (?) सम्यगादित्यसुपति हते' इतिन्यायेन स्वर्गस्पर्ययुक्तम्) ।

तचेव याच्यामाइ,—"प्र पूर्वंचे पितरा नद्यमीभिगींभिः क्रमुख्य सदने स्थतस्य। सा ना द्यावाष्ट्रचिवी देखेन जनेन यातं महि वां वक्ष्यम् (१०)" इति । 'पूर्वंजे' (प्रथमीत्पक्षे) द्यावाष्ट्रचिद्यो, 'पितरा' (मातापिक्षमाने) 'द्याः पिता प्रचिवी माता' इति सुत्यन्तरात् । हे स्थात्यजमानाः, 'स्थतस्य' 'सदने' (यज्ञस्य स्थाने) 'नद्यसीभिः' (त्रतिव्येग नूतनाभिः) 'गीभिः' (मन्त्रक्पाभिन्वंगिमः) 'क्रणुष्वं' (द्यावाष्ट्रचिद्योः स्तृतिं सुक्ष्वं) । हे द्यावाष्ट्रचिद्यो 'देखेन जनेन' (देवसम्भिना पुक्षसमूहेन) सह 'नः' (प्रसान्) प्रति 'त्रा'-'द्यातं'। 'वां' (युवयोः) सम्भिन्धं 'वक्ष्यं' (यज्ञस्यः) 'महि' (पूज्यम्)।

श्रथ तर्वेव खिष्टकतः पुरानुवाक्यामाइ,—"श्रग्निष्ट स्रोमेन

बेधिय समिधानी श्रमतों। इया देवेषु नो दधत्^(१८)" इति। है यजमान, लं 'समिधानः' 'श्रम्भिं' दीपयन् 'श्रमतों' (मरण-रहितं) 'श्रम्भिं' खिष्टक्रद्रूपं 'स्तोमेन' (स्तोचेष) तोषयिता श्रनेन प्रकारेण 'बेधिय'। केन प्रकारेण ? इति—तदुच्यते, 'नः (श्रस्भदोयानि) 'इया' (इवींषि) 'देवेषु' 'दधत्' (स्थापयेति)।

तजैव याज्यामाइ,—''स इव्यवाड्मत्यं उशिम्दृतश्चनोहितः।
श्रिशिधंया सम्हण्विति(१०) दिति। खिष्टकद्रूपः 'श्रिशः' 'धिया'
(कद्यायुक्तेन चेतसा) 'सम्हण्वित' (सम्यगिद्द प्राप्नोति)। कीदृष्ठः
'श्रिशः'?—(इव्यं वहतीति) 'इव्यवाद', 'श्रमर्थः' (मरण्यहितः),
'उशिक्' (श्रनुग्रहपूर्वमस्मान् कामवमानः), 'दूतः' (देवानामाज्ञाकारी) 'चनोहितः' (चनसा मनुष्याणां यजमानानां 'हितः'
श्रभीष्टकारी)।

श्रय 'वाजिनो यजित' इति विधिते कर्मणि याञ्यानुवाक्ययोः प्रतीके दर्भयति,—''ब्रक्तो भवन्तु वाजे-वाजे(१९^{-११})" इति । 'ब्रक्तो भवन्तु वाजिनः' इति पुरानुवाक्याः; 'वाजे-वाजे वाजिनः' इति याञ्या । एतच्चोभयं "देवस्याद्यः मिवतुः प्रसवे" (१का०।७प्र०) प्रश्न०) इत्यनुवाके व्यास्थातम्॥

श्रव विनियागसङ्गृहः,—

त्रय याच्या वैश्वदेवे चातुर्भास्त्राद्यपर्वणि । त्राग्ने, सामानुवाकस्त त्राग्नीसाच्यभागयाः ॥ श्री अवस्था ग्रेथे लक्षी, या ते, च सीम्यके।
तस्यित युगाः साविचे; चोद, सारस्तते तथा॥
पूषा, पाष्णे; मास्ते ते, विश्वे दे वैश्वदेविके।
यावा, यावापृथियो स्थादग्रिं, सिष्टकते। यजिः॥
ग्रं, वाजी, वाजिने। मन्त्रा दाविंग्रतिस्दीरिताः॥

वेदायसः प्रकामन तमेः हार्दे निवारयन्।
पुमर्थायतुरा देयादिद्यातीर्थमहेत्ररः॥

दति सायनाचार्यावर्षिते माधवीये वेदार्यप्रकाणे कृष्णयजुः-मंहिताभाय्ये चतुर्यकाण्डे प्रथमप्रपाठके एकाद्गोऽनुवाकः॥०॥

समाप्तय प्रथम: प्रपाठक: ॥ ० ॥

^{*} खिसभुव इति पाठी भवितुं युक्तः।

श्रीगणेशाय नमः।

श्रव तैतिरीयसंहिताभाष्ये

चतुर्घकाण्डे दितीयप्रपाठके

प्रथमाऽनुवाकः।

॥ इरिः 🦫 ॥

विष्णुः क्रमेऽस्यभिमातिहा गायु छन्द आरे। ह पृथिवीमनुविक्रमस्य निर्भेक्तः सः यं दिष्मो (१) विष्णुः क्रमेऽस्यभिशस्तिहा चेष्टुमं छन्द आरे। हान्तरिख्न-मनुविक्रमस्य निर्भेक्तः स यं दिष्मो (१) विष्णुः क्रमे। ऽस्यरातीयता हन्ता आगेतं छन्द आरे। ह दिव्मनु-विक्रमस्य निर्भेक्तः स यं दिष्मो (१) विष्णोः ॥ १॥

क्रमाऽसि शचूयता ह्न्तानुष्टुभं छन्द आरी ह् दिशाऽनुविक्रमस्य निर्भिक्तः स यं दिषाः (१) । अक्रेन्द्द-ग्रिस्तुनयंकित् द्याः श्लामा रेरिह्दीरुषः समुख्यन् । मुद्या जंजाना विद्योमिद्या अख्यदा रोदंसी भावना भात्यन्तः (१) । अग्रेऽभ्याविक्तिस्ति न् आर्वर्त्स्वायुषा वर्षसा सन्या मेधया प्रजया धनेन (१) । अग्रे ॥ २ ॥ श्रुक्तिरः श्रुतं ते सम्बाहतः सुष्कं त उपाहतः।
तासां पेषिस्य पेषिण पुनर्नी नृष्टमाद्यधि पुनर्नी
र्यिमाद्यधि । पुनर्क्ष्णा निर्वत्तेख् पुनरम् द्रषाऽऽयुषा।
पुनर्नः पाहि विश्वतः (६) । सुष्ट र्या निर्वत्तेखामे
पिन्वस्त धार्या। विश्वपित्तंया विश्वतस्परि (८)। उदुं नृमं
वेह्य पार्श्वमस्मद्वाधुमं ॥ ३॥

वि मध्यमः श्रंषाय। श्रंषा व्यमीदित्य वृते तवा-नागसे। श्रदितये स्याम (१०)। श्रा त्वा हार्षमृन्तरं भू-श्रुंविस्तिष्ठाविचाचिकः। विश्वस्त्वा सवी वाञ्चल्युस्मिन् राष्ट्रमिधिश्रय (११)। श्रभे वृह त्रुषसीमृध्वी श्रंस्या विर्शन-ग्मिवान् तमसे। श्रोतिषाऽऽगीत्। श्रुप्तिभीनुना रूर्णता स्वङ्ग श्रा जाता विश्वा सद्यी न्युपाः (११)। सीद् त्वं मातु-रस्याः॥ ४॥

जुपखे विश्वान्यमे वयुनीनि विद्वान्। मैनीमृर्चिष्यां मा तपंसाभिश्रंशुचेाऽन्तरंस्याः शुक्कच्येतिर्विभाष्टि (१९)। श्रुक्तरंमे रुचा त्वमुखार्थे सदंने स्वे। तस्यास्त्वं इरंसा तपं जातंवेदः श्रिवा भव (१४) श्रिवा भूत्वा मर्चा-म्रोऽया सोद श्रिवस्तं। श्रिवाः कृत्वा दिशः सर्वाः स्वां योनिमिष्ठाऽऽसंदः (१४)। ष्ट्रश्सः श्रुच्विद्, वस्रर-निरुष्ट् सहोता वेद्वदितियर्द्रोख्सत्। नृषद्र-

सहंत्सद्बोम्सद्का गेषा चर्ता चहिता चृतं बृहत्(१९) ॥ ५ ॥

दिवमनुविक्षंमस्य निभिक्तः स यं दिष्पा विष्णाः। धनेन। श्रम्रं। श्रधमम्। श्रुस्याः। श्रुंचिषत्। षाडेश ष ॥ १॥

द्रति तैित्तरीयसंहितायां चतुर्थकाएडे दितीय-प्रपाठके प्रथमाऽनुवाकः ॥ ० ॥

श्रीगरोशाय नमः।

श्रायप्रपाठके हुंग्लो योऽग्निः केऽयं प्रपश्चितः।
प्रपाठके दितीये तु स्वादेवयजनग्रदः ॥
स्वयनार्थस्त्र चानुवाका एकादग्रेरिताः।
श्रामन्त्रां स्वापनं वात्मप्रस्नतेन हुंपस्थितिः॥
स्वाग्नेन्यनं*, गार्षपत्याग्निच्यनं, भुवः।
कर्षणं, चेषधावापः, लेष्ठचेपादिकं तया॥
स्वाग्नेदेस्पधानं, स्व-यमादणादिकस्य च।
निधानं पग्रुशोषीणां, याच्या श्र्या उदीरिताः॥
तत्र प्रथमानुवाके श्रामन्त्राम् उदाग्निस्यापनं प्रतिपाद्यते।

उखाग्नेखयनमिति कचित् पाठः साध्रिव प्रतिभाति ।

कस्यः, 'उपरि नाभेर्धारयमाणे। विष्णोः क्रमाऽसीति चतुरा विष्णुक्रमान् प्राचः क्रामित' इति । पाठस्तु,—"विष्णोः क्रमी-असिमातिहा गायचं इन्द त्रारे। इपिवीमनुविक्रमस निर्भक्तः ष यं दिम्रो^(१) विष्णेः क्रमेऽस्थिभमसिका नैष्टुभं क्रन्द त्रारोहान्तरिचमनुविकमस्त्र निर्भेतः स यं दिश्रो^(२) विष्णोः क्रमाऽस्थरातीयता इन्ता जागतं इन्द त्रारोइ दिवमनुविक्रमख निर्भक्तः स यं दिम्रो^(१) विष्णोः क्रमोऽसि मनूयता इन्ना-ऽनुष्टुभं कृन्द चारोष्ट दिन्नोऽनुविक्रमख निर्भकः च यं दिन्नः(४)" इति । यज्ञप्रयोगं कत्त्रं याप्त्रोतीति 'विष्णुः' यजमानः; यदा विष्णुना (परमेश्वरेण) श्रभेदे।पचारं क्रता स विष्णुरित्युच्यते। हे प्रथमपाद्विन्यास, लं 'विष्णाः' 'त्रभिमातिहा' (पाप-घाती) 'कामे।ऽचि', 'पामा वा ऋभिमातिः' इति ऋत्य-नारम्। तादृश्रस्वं 'गायचं इन्द' 'त्रारोष्ड' (त्रनुयाष्ट्रकलेन खीकुद्)। ततः 'पृथिवी मनुविकामख' (भूदेवता रूपिममं प्रदेशं विश्वेषेण व्याप्तृष्टि) । 'यम्' (श्वभिमातिं), वयं 'दिश्वः', सेाऽयं 'निर्भक्तः' (श्रस्मात् प्रदेशाश्विःसारितः)। एवसुक्तरेखपि योज्यम् ।

'त्रभिष्ठसिद्धा' मिथ्यापवाद्वाती । त्ररातिरवस्रंदातयस्य रानाभावः, तम् त्रात्मन रक्कतीति 'त्ररातीयन्', तस्य 'इन्ता' विनावकः । प्रदारेण हन्नृत्वं बचुत्वं तदिक्कतीति 'बचूयन्', तस्य 'इन्ता' विनावकः । त्रत्र सर्वेच यजमानः स्वात्मानं विष्णुत्वेन भावयेत् । चतुर्णां प्रक्रमाणां प्रदेशान् प्रथियादिस्रोकस्पत्वेन भाववेत्। गावचादिन्द्रन्देाभिमानीदेवताः तेवां प्रक्रमाचा-मनुगाहिकाः।

एतेर्गन्नैः साधान् विज्ञानान् विधन्ते,—"विज्ञानुस्ता वै
देवान्कन्दोभिरिमाझोकाननपजयमभ्यजयन् यदिष्युक्तमान् क्रमते
विज्ञुरेव भूला यजमानन्कन्दोभिरिमाझोकाननपजयमभिजयित विज्ञोः क्रमोऽस्थिममितिदेखाद गावनी वै ष्टिचिवी चेष्टुभम् यन्नरिषं जागती द्यारानुष्टुभीर्दिमम्बन्दोभिरेवेमाझेकान्
यथापूर्वमभिजयितः" (५।२।२ प्र०) इति। 'देवाः' पूर्वं खेषु
विज्ञुनेव मुख्यं कला कन्दोभिमानिदेवैः विद्ताः 'प्रवपजयम्'
(प्रन्थिजेतं यथा न प्रकाने तथा) 'इमान्' 'सेकान्'
'प्रभ्वजयन्', प्रती 'यजमानः' प्रपि विज्ञुक्तमेस्तया 'जयित'।
गायज्ञादिक्तम्दोदेवानां प्रथिव्यादिक्षोकखामिलेन तैः यद्व स्रोकानां जेतं प्रकातया, मन्त्रेषु 'नायनं कृन्द प्रारोद्ध' इत्यादि
पिठितमित्यभिप्रायः।

कथाः, 'शकन्ददग्निरिष्टेताम् श्रनृदुः श्वः' इति । पाठख्र,— ''श्रकम्ददग्निश्तनयन्ति श्वःः श्वामा रेरिषदीरुधः समञ्चन्। सथी जञ्चाना वि दीमिद्वा श्रख्यदा रे।दसी भागुना भाष्यमाः (६)" इति । श्रथम् 'श्विः' 'श्रकन्दन्' (श्रक्षादरिष्टनिवार्षार्थं गर्जतु) । किमिव ?—'सन्यन्तिव' 'शाः' (श्रथा श्रुक्षोकस्तो मेषः स्थ-शेवभीतिं निवार्यति तदन्)। किं खुर्वन् ?—'श्वाम' (दाष्टकम्,

^{*} गायवादिक्क्न्दिशिमानि-देवता इति पाठी भवितुं युक्तः। † अनुदुष किंवा अनुष इति पाठी भवितुं युक्तः।

मसदिष्ट्रं) 'रेरिइत्' (खेखिदानः)। 'वौद्धः' 'समझन्' (पृत्यप्रस्वस्टद्भस्तावदस्यदमुकूसानि सम्यगभिवास्त्रयन्)। 'दि' (यसात्) 'जज्ञानः' (खत्ययमानः) 'सदः' 'द्दें' (तदानीमेव) 'दृद्धः' (दीप्तः) सन् जगत् 'वि'-'सस्त्रत्' (प्रकासयित)। 'रोदसी' (सावाप्रविधोः) 'सनः' 'भानुना' (रिम्मना) स्वयम् 'सा'-'भाति' (समन्तात् प्रकासते)।

एतस मक्तकानुवचनं विश्वत्ते,—"प्रजापितर्ग्निसस्जत दे।-उसासृष्टः पराकैतमेतयाऽस्वेदकन्ददिति तथा वै दे।ऽग्नेः प्रियं धामावादन्थ यदेनामना हाग्नेरेवेतया प्रियं धामावदन्थे" (५। १।९७०) दति । 'स्रष्टः' 'सः' (श्रिग्नः) 'श्रस्तात्' (प्रजापतेः) 'पराष्ट्' (श्राष्ट्तिरहितः) 'ऐत्' (श्रमक्तित्); 'श्रकन्ददिति' रतथा क्ष्या 'एतम्' (श्रग्निम्) 'श्रनु'-मस्य 'सः' (प्रजापितः) 'तथा' एव क्ष्या 'श्रग्नेः' 'प्रियं' खानं प्राप्तवान्। श्रत एवासा भन्वचनम् 'श्रग्नेः' प्रयक्ष खानस्य समादनाय भवति ।

कच्यः, 'क्योऽभ्याविक्ति किति कतस्तिः प्रद्विषमः वर्तते' इति ।
तक प्रथमामा इ,—''क्योऽभ्याविक्ति कित क श्रावर्क्तसायुवा वर्षशः
यन्या मेधया प्रजया धनेन(१)' इति । श्राभिमुख्येन श्रावर्क्तितुं
श्रीसमस्त्रास्त्रीति क्यावर्क्ती,तादृष्ठ हे 'क्यो', श्रायुरादिभिः स्व 'नः'
(श्रसान्) 'क्रि'-क्यस्य 'श्रावर्क्तस्य'। 'श्रायुः' श्रपस्त्यपुर्वितं ।
'वर्षः' काक्तिर्वसं वा। 'स्रविः' धनदानं। 'मेधा' सुतार्थ-

[&]quot; रिचतलम् इति राचित्रम् इति वा पाछी भवितुं युक्तः।

धारणप्रक्तिः। 'प्रजा' पुत्रादिः। 'धनं' सुवर्षे। धनप्रब्देन सम्पादियतयम् उच्यते। 'सिन'-प्रब्देन सम्पादितस्य मन्धुन्यः प्रदानप्रक्रिक्चिते।

त्रथ दितीयामार,—''त्रमे त्रिक्तरः मतं ते सन्वाहतः सर्सं त उपाहतः। तासां पेषस्य पेषिण पुनर्ने नष्टमारुधि पुनर्ने रियमारुधि(०)'' दिते। हे 'त्रिक्तरः' (त्रक्वसेष्टवयुक्त)'त्रमें', 'ते' (तव) 'त्राहतः' 'भतं' 'मन्तु' (त्राहतिमक्तयः मतमञ्ज्ञाकाः भवन्तु)। तथा 'ते' (तव) 'उपाहतः' (उपाहतिमक्तयः सर्भ्यस्त्राका भवन्तु)। स्वस्त्रेवावर्त्तनम् त्राहत्। समीपवर्त्तिनां पृद्धाणां द्रव्यविभेषाणाद्यावर्त्तनम् उपाहत्। त्रसासु स्त्रेशिययेन लमपि पुनःपुनः त्रावर्त्तस्त्रः लदीयाः पृद्धास्त्रदोयानि च द्रव्याणि पुनःपुनः त्रावर्त्तनामित्र्यथः। 'तासां' त्राहितमक्तीनां प्रतम्यस्त्रस्त्रक्षाकानां यः पेषः (सस्तिद्धः), तस्त्रापि 'पोषस्त्र' त्रन्थः पेषः (त्रयुतस्त्रचादिसङ्क्वाकाभिष्टद्धिः), तादृभेन 'पोषेष' 'नः' (त्रस्तदीयं) 'नष्टं' धनं 'पुनः' (भ्रयः) त्रपि 'त्राह्यि' (त्राह्यनं सुद्धः)। 'पुनः' (भ्रयः) त्रपि 'त्राह्यां स्त्रस्तां सुद्धः)।

त्रय हतीयामार,—''पुनक्को निवर्त्तख पुनरग्न इवाऽऽयुषा।
पुनर्नः पार्चि विश्वतः(क)'' इति। हे 'त्रग्ने', लं 'क्जो' (बीरादि-रचेन सह) 'पुनः' 'निवर्त्तख' (त्रवागच्छ)। 'इवा' (त्रक्षेन) 'त्रायुषा' सह 'पुनः' त्रागच्छ। 'नः' (त्रस्नान्) 'पुनः'-पुनः क्रतात् 'विश्वतः' (सर्वस्नादपराधात्) 'पार्हि'। श्रथ चतुर्थीमाइ,—"मह रया निवर्त्तखाग्ने पित्रख धारया। विश्विष्मया विश्वतस्परि^(८)" इति । हे 'श्रग्ने', 'रया' (धनेन) 'सह' 'निवर्त्तख'। 'स्था भन्नणे' इति धातुः, विश्वैः सर्वैः स्थायते भस्यते, पोयते इति 'विश्वप्द्रो', ताहुम्बा दृष्टि-'धारया' 'विश्वतस्परि' (सर्वेषां दृष्णधान्यस्रतापादपानामुपिरं) 'पित्रख' (सिद्य)।

एतैर्भन्तेरावर्त्तनं विश्वत्ते,—''ई यरे। वा एष पराङ् प्रदेशो यो विष्णुक्तमान् क्रमते चतस्तिरावर्त्तते चलारि इन्दाप्ट्सि इन्दाप्ट्सि खणु वा त्रग्नेः प्रिया तन् प्रियासेवास्त्र तनुवसिन-पर्यावर्त्तते"'' (५।२।१ प्र०) दित । 'यः' (यजमानः) 'विष्णु-क्रमान्' श्राचरति, 'एष' 'पराङ्' (श्राव्हत्तिरहितः), 'प्रदेशः' 'ई स्वरः' (प्रकर्षेण गन्नुं समर्थः) पुनरावृत्तिं न स्वभत रत्यर्थः । श्रत श्रावृत्तिस्ताभाय 'चतस्रिभः' ('श्रव्वेऽभ्यावर्त्तिन्' इत्यादिभिः स्वरिभः) श्रावृत्तिं सुर्यात्। गायत्री-चिष्टुप्-जगत्यनृष्टुविति-चतुर्णां इन्दसाम् श्रस्थादानादावुपात्त्रलादग्निश्वरोत्तम्।

श्वाहक्ते। प्रादिष्णं विधक्ते,—"दिषणा पर्यावर्क्तते खमेव वीर्यममुपर्यावर्क्तते तसाहिषणोर्ह्य श्वात्मना वीर्यावक्तरे।ऽधो श्वादित्यस्वैवाहतममुपर्यावर्क्तते" (५१२१९ श्व.) इति। 'दिषण' प्रादिष्णेन, दिषणमवस्त्राण वामभागस्य परिश्रमणं प्रादिषण्यम्। पुरुषस्य दिषणे भागे सामर्थातिश्वयसङ्गावात् तदेवानुस्वत्याहिक्तः

^{*} श्वन J. पुस्तके 'दिचिता पर्यावर्त्तते' इत्युत्तरत्र उद्भृतांशोऽिष विष्टतः।

क्षता भवति । यसात् द्विषभागे 'वीयें' श्रुतेर्भिप्रेतं, 'तसात्' सोकेऽपि भवेषु व्यापारेषु द्विषक्सस्यैव वीर्यातिषय उपस-भाते । किश्च श्रादित्या भेषं प्रद्विषीकराति, तद्यवानुस्तं भवति ।

कत्यः, 'खदुत्तमिति विकायायमुगुच्य' रति। पाठस्त,— खदुत्तमं वद्या पात्रमसादवाधमं वि मध्यमः अथाय। अथा वयमादित्य वृते तवानागसा अदितये खाम(१०)" रति। हे 'वद्य', 'खत्तमं' (खत्तमाङ्गे विरसि खापितं) लदीय-'पात्रम्' 'खत्'-क्रस्य 'अथाय' (विनात्रय)। अधमाङ्गे खापितं (पादप्रदेवे खापितं) 'पात्रं' 'अव'-क्रस्य विनात्रय। 'मध्यम'-प्रदेवे खापितं पात्रं 'वि'-च्छेदय। 'अथ' (पात्रचयविनात्रागन्तरम्) 'आदित्य' (सर्वधस्त्रुत्र) वद्या, 'वयम्' 'अनागसः' (पापर्हिताः) सन्तः 'तव' 'वते' (लदीये कर्मणि) 'अदितये' (अखिखतत्वाय) 'खाम' (थाग्या भवेम)।

त्रवेन मन्त्रेण त्रिक्यपाश्चानोत्तमित्रेत्य मन्त्रगतस्य वद्यपाश्च प्रमुद्धं दर्शयति,—''ग्रुनःश्चेपमाजीगन्तिं वहणा ग्रम्हात् स एतां वाहणीमपम्यत् तथा वे स त्रात्मानं वहणपाश्चादमुश्चदहणा वा एतं ग्रम्हाति य उद्यो प्रतिमुश्चत उदुन्तमं वहणपाश्चमस्रदित्याद्व त्रात्मानमेवेतया वहणपाश्चानुद्धति'' (५।१।९२०) दृति । ग्रुनःश्चेपा नाम स्विः, स दाजोगर्तस्य पुत्रः; तं कदाचित् 'वहणः' 'ग्रम्हात्' (ग्रद्धीतवान्), वहणग्रद्धीतत्वद्य जलोदर-स्थाधिना त्रभियाञ्चते।'स' च (ग्रुनःश्चेपः) तत्यरिहाराय'उदुन्तमम्' द्रत्येतां वाद्यमेस्यम् 'श्रप्रयत्' । ततः 'तया' एव ख्या 'स' प्रजन्तेपः खात्मानं 'वद्यपात्रात्' मीचितवान् । श्रते।ऽत्रापि 'यः' (यजमानः) 'उखां' 'प्रतिमुद्यते' दे।ऽयं वद्यप्रशितः सन् तत्परिश्वाराय 'उद्त्तमम्'—द्रत्यनया शिक्यपाशमृत्युच्य तत्मन्त्र-प्रसादेन वद्यपाशात् मुका भवति ।

कलाः, 'त्रा ला हार्षमित्याह्त्य' इति। पाठस्तु,—"त्रा ला हार्षमन्तरभुष्ठेविस्तृष्ठाविचाचितः। विश्वस्ता सर्वा वाञ्कन्तु त्रसिम् राष्ट्रमधित्रय^(११)" इति। हे त्रग्ने, लाम् 'त्रा'-'हार्षे' (त्राहृतवानिस्त)। लञ्च उखाया 'त्रन्तः' 'त्रभूः' (त्रविस्तिताऽसि); 'त्रविचाचितः' (त्रयन्तं चलनरहितः), 'भुवस्तिष्ठ' (िथरसिष्ठ)। 'सर्वा' 'विश्वः' (प्रजाः) 'वाञ्कन्तु' लां। 'त्रसिन्' (यजमाने) 'राष्ट्रम्' इदम् 'त्रधित्रय' (त्रधिकं स्थापय।

श्रस मन्त्रस प्रथमपादे वक्तेराहरणं प्रसिद्धसेव प्रतीयते दति दर्भयति,—'श्रा ला हार्षमित्याहा द्योन १ हरति" (५।२।१श्र०) इति ।

दितीयपादे त्रन्वयः विरोकाभ्यां प्रतिष्ठा सिध्यतीत्या इ,—
"भुवस्तिष्ठाविचाचित्रित्या इ प्रतिष्ठित्यै" (५।२।२ त्र॰) दति ।

हतीयपादे प्रजास हिंद्धं, चतुर्थपादे राज्यस्थैर्यश्च क्रमेण दर्भयित,—"विश्वस्वा सर्वा वाञ्क् न्वित्या इविश्वेषेन समर्द्धय-त्यस्मिन् राष्ट्रमधित्रयेत्या इराष्ट्रमेवा,सान् भ्रुवमकः" (५।२।९ २०) इति। 'विश्वा' (प्रजया) 'एनं' (यजमानम्) 'श्वसिन्' (यजमाने) 'श्रकः' (करोति)। चतुर्थपादपाठकाले यजमानविषयं काम्यं मनसा ध्यानं विधक्ते,—''यं कामयेत राष्ट्रश्र स्वादिति तं मनसा ध्यायेत् राष्ट्र-मेव भवति'' (५।२।९%) इति। 'यं' (यजमानम्) उद्यक्ष राज्यमस्विति 'कामयेत', श्राध्युंस्तं चतुर्थपादेश्वारणकाले 'ध्यायेत्'।

कचाः, 'खपितष्ठतेऽये बृष्टकृषसामूर्द्धी अस्वात् 'द्रित । पाठसु,—
अये बृष्टकृषसामूर्द्धी अस्वान्त्रिजीयावान् तमसे। ज्योतिषाऽऽगात् ।
अग्रिभानुना रुगता खङ्ग आ जाता विश्वा सद्मान्यप्राः (१२)" दित ।
अयमग्रिः 'बृष्टन्" 'खषसाम्' 'अये' (उषसां मुखे) 'ऊर्द्धी'
'अस्वात्' (श्रिग्रिशेचादे। बेध्यमान उत्तिष्ठति) । 'क्योतिषा'
(स्वकीयेन तेजसा) 'तमसः' 'निर्जीयावान्' (निर्गतः सन्) 'आगात्'।
कीदृश्रीऽग्रिः ?—'रुगता' (तमी दिसता) 'भानुना' रिम्मना 'खङ्गः' (श्रीभनश्ररीरः)। किञ्च 'जातः' (उत्पन्नमाच एव) 'विश्वा'
'सद्मानि' (सर्वाणि स्वानानि) 'श्रा'-'श्रप्राः' (स्वकीयेन तेजसा
सर्वच प्रितवान्)।

त्रस्य मक्तस्य प्रथमार्द्धे भागवयं क्रमेण व्याचष्टे,—"त्रये मृद्दसुषमामूर्द्धी त्रस्तादित्याद्दायमेवेनः समानानां करे।ति निर्जामावान् तमस दत्याद तम एवास्मादपद्दन्ति ज्योतिषाऽऽ-गादित्याद ज्योतिरेवास्मिन् दधाति" (५।२।९ % ०) दति।

कर्यः, 'मीद लं मातुरस्था उपस इति तस्थां चतस्रभि-

^{*} वृचत् इति J. यवं खादर्श-पुक्तने पाठः।

रखण् सादयति' इति । श्रीदुम्बर्थासन्दाः शहततात् सैव 'तस्राम्' इति पराम्हण्यते । तत्र प्रथमामा इ,—''सीद लं मातुरस्रा छपस्रे विश्वान्त्रग्ने वयुनानि विद्वान् । मैनामर्चिषा मा तपसा-भिग्नुत्रप्रचे उन्तरस्थाः ग्रुक्तच्ये।तिर्वभाद्यिः'' इति । दे 'त्रग्ने', 'लं' माहसमानाया श्रासन्दाः 'छपस्ये' (उत्सङ्गे) 'सीद' (छपवित्र) । को हृत्रस्तं ?—'विश्वानि' 'वयुनानि' (सर्वान् श्वाने।पायान्) 'विद्वान्'। 'एनां' (श्वासन्दीम्) 'श्वर्षिषा' (लदीयदीष्ट्या) 'मा' 'ग्रुत्रप्रचः' (श्रत्यमं मा दीपय), 'तपसा' (सन्तापेन) श्वपि 'मा' श्वभिग्नप्रद्वप्रदः'। श्वर्षः कार्षं, तपः कार्ये, कार्णेनेष तापो भवति, कार्येष तु भ्रयान्; तदुभयं मा कुर्वित्यर्थः। 'श्रस्ताम्' (त्रसायाम्) 'श्वनाः' 'ग्रुक्रच्ये।तिः' (निर्मक्षप्रकागः सन्) 'विभादि' (विश्वषेक्ष दीपस्त्र)।

श्रय दितीयामाइ,—''श्रम्तरग्ने इचा लमुखाये यदने खे। तस्यास्त्र इरमा तपन् वातवेदः श्रिवे। भव^(१४)'' इति । हे 'श्रग्ने', 'खखाये' (तस्त्रा खखाया) 'श्रम्तः' (मध्ये) 'खे' 'सदने' (खकीये खाने) 'इचा' (दीष्ट्रा) युज्यस्त । हे 'जातवेदः', 'लं' 'तस्ताः' (श्रामण्डाः) 'श्रिवे। भव' (सुस्त्रप्रदे। भव) । किं कुर्वन् ?—'इरसा' (तेजसा) 'तपन्' (ज्वसन्) ।

श्रय हतीयामा इ,—"श्रिवो सत्ना मद्ममग्नेऽयो सीद श्रिवसः। श्रिवाः क्रमा दिशः सर्वाः खां यो निमिष्ठासदः(१४)" इति।

^{*} खोदुम्बरासन्द्वा इति पाठो भवितुं गृह्यः।

w 2

हे 'त्रग्नें', 'मद्यं' (मद्घें) 'शिवः' (श्वान्ता) 'स्रला' 'त्रथा' (त्रनन्तरं) 'शिवः' 'सीद' (सर्वान् प्रति श्वान्तः समुपविश्व) । 'सर्वाः' 'दिशः' श्वान्ताः 'हाला' 'दृष्ट' (त्रस्थासुखायाम्) 'स्वां योनिं' (स्वकीयं स्थानम्) 'त्रापदः' (त्रागत्थापविश्व।

त्रय चतुर्थीमार,—"रूपः ग्रुचिषदसुरनरिचमद्भीता वेदिषदितिथिर्दुराणमत्। नृषद्दरमृहतसद् व्यामसद्का गे।जा ऋतजा ऋद्रिजा ऋतं बृहत्^(१६)" इति। (इन्ति खयमाइवनी-यादिदेशेषु गच्छतोति वा, वैरिणं हिनस्तीति वा) 'इंगः' श्रयमग्निः (शुची यजने बीदतीति) 'शुचिषत्', (यजमानं वासयतीति) 'वसुः', (त्रमिर्चे भूमज्यासारूपेण सीदतीति) 'त्रनिरचसत्', 'हाता' (देवानामाञ्चाता), वेद्यां यज्ञसम्बन्धिन्यां सीदतीति 'वेदिषत्', 'त्रतिथिर्दुरे।णसत्' (त्रतिथिसमानः सन्, 'दुराणेषु' यजमानग्रहेषु भीदतीति 'दुराणसत्'), ('नृषु' मनुखेषु जठराग्निरूपेण सीदतीति) 'मुषत्', ('वरे' श्रेष्ठे, श्रीवियय्ट हे मोदतीति) 'वरमत्', ('ऋते' यजी तिस्रव्यादकलेन सीदतीति) 'ऋतसत्', ('खोर्मान' श्राकाशे सूर्यक्षेण सीदतीति) 'चे।मसत्', ('ऋषु' दृष्टिधाराक्ष्पास वैद्युत-रूपेण जायते प्राद्भेवतीति) 'त्रजाः', (गे।कार्ये घृते ज्वालारूपेण जायते बाज्यते द्रति) 'गोजाः', (स्टतार्थे यज्ञार्थमेव जातलात्) 'श्वतजाः', (श्रद्धी पर्वते दावानस्क्षेण जायते इति) 'श्रद्भिजाः' ;—ई.दृ शोऽग्निः 'बृदत्' 'स्रतं' (प्रीद्मग्निचयनीपेतं यकां) निष्पादयत्विति शेष:।

एतनान्त्रसाध्यमग्रिखापनं विधत्ते,—''चतस्रभिः साद्यति

चलारि कन्दाशसि कन्दोभिरेव" (५।२।९२०) इति । 'सादयित' इत्यनुवर्त्तते । 'सीद लं मातुरस्था' इत्यादिभिः 'चत-स्रभिः' श्रीदुम्बर्यामुख्याग्निं स्थापयत् । 'कन्दोभिरेव' स्थापि-तवान् भवति ।

'इप्सः' इत्यादिकाया मृत्तमाया स्टिं क्क्रन्रे तिशेषं प्रशंपित,— "श्रतिकृन्द से त्तमया वर्ष वा एषा कृन्द्रसं यदितकृन्दा वर्षे-वैन्रः समानानां करोति" (५।२।९श्र०) इति । श्रतिकृन्द्रसि श्रन्यक्कृन्द्रसामन्तर्भावात् सर्वेषामन्येषां क्क्रन्द्रसामियम् श्रतिकृन्द्री-युक्ता क्षक् 'श्रतिकृन्दा' श्ररीरम् । श्रत ईदृश्ची त्तमाया । साद-नेन 'एनं' (यजमानं) 'समानानाम्' श्रन्येषां पुरुषाणां श्ररीरखा-नीयसेव करोति । तसादनया 'उत्तमया' सादयन्ति ।

श्रवेक्तिमार्यां ये बहवः सक्कब्दा 'ग्रुचिषत्' इत्यादयः, तान् प्रश्नंसति,—"सदती भवति सलमेवैनं गमयति"(५।११९९०) इति । 'इंसः' इत्यादिकाया ऋचे। बद्धिः सक्कब्दैरूपतलात् स्वैव 'सदती' । 'एनं' (यजमानं) 'सलं' (चिरकास्नावस्थायिलं प्रापयति॥

> श्रव विनियागमङ्गुरुः,— 'विष्णाः'—चतुर्भिराकामेत्, श्रकन्देत्यनुवक्त्रथ । 'श्रग्ने':—चतुर्भिराष्ट्रस उदु, पार्श विमुद्यति॥

^{*} ईटप्रया उत्तमया इति प्रे. पु॰ पाठः । ईटप्रया उत्तमाया इति पाठा भवितुं युक्तः ।

चा बाख्यमाहरेदग्रेऽभ्यपस्याय चतुष्टयात्। मोदेलादेसचामचां मादयेत् वाड्गोदिताः॥

इति सायनाचार्यविर्चिते माधवीये वेदार्थप्रकात्रे कृष्ण-चजुःमंहिताभाय्ये चतुर्यकाण्डे दितीयप्रपाठके प्रथमाऽनुवाकः॥ •॥

दिवस्परि प्रथमं अंग्रे अग्निर्साद्द्तियां परि जातवदाः। तृतीर्यमुषु नृमणा अर्जस्मिन्धान र्नं जरते खाधीः(१) । विद्या ते अग्ने चेधा चुयार्ख विद्या ते सद्म विश्वतं पुरुवा। विद्मा ते नाम परमं गुड्ग यिंदुद्मा तमुत्सुं यतं चाजुगन्या (१)। संमुद्रे त्वा नृमणी श्रुप्तंत्तर्नृचर्या इधे दिवा श्रेम जधन् तृतीये ला 11 8 11

रजंसि तुख्यिवारसंमृतस्य योनी महिषा ऋहिन्वन् रे। श्रक्षंन्दद्विस्तुनयंत्रिवृँद्याः श्रामा रेंदिइदिर्धः समु-अन्। सुद्यो जंजाना वि हिमिडी अखुदा रादंसी भानुना भात्युन्तः^(४)। उशिक्पाविका अंर्तिः सुमुधा मर्तेषु प्रिर्मतो निधायि। इयं ति धूममं वृषं भरि सुदु-च्छकोण ग्रोचिषा चामिने छत्^(४)। विश्वंस्य केतुर्भुवं नस्य गर्भे ऋग ॥ २ ॥

रादंसी अप्रणाजायंमानः । वीदुच्चिदद्रिमभि-नत्परायन् जना यद्ग्रिमयंजन्त पर्चं । श्रीणाम्-दारा धुरुणा रयोषां मंनीषाणां प्रापेणः सामं गोपाः। वसीः सूनुः सर्हसी ऋषु राजा विभात्ययं ज्यसीमिधानः(°) । यस्ते श्रुच क्रुणवं द्वद्रशाचेऽपूपं देव घृतवन्तमग्ने। प्रतं नेय प्रत्रां वस्ये। अच्छाभि द्युमं देवभक्तं यविष्ट^(८) त्रा॥ ३॥

तं भेज सी अवसेषंग्र उक्य रंक्य आ भेज श्रस्यमीने। प्रियः सूर्ये प्रिया श्रुमा भेवात्युज्जातेन भिनद्दुज्ज-निलैः(८)। त्वाममे यजमाना अनुद्किया वस्नि द्धिरे वीर्याणि। त्वया सुद्द द्रविणमिष्टमाना वृजं गे।मन्तम्शिजो विवेष्ठः^(१०)। दृशा ने। रुक्स उर्व्या र्थबीद् दर्भर्षमायुः स्त्रिये र्रचानः। श्रुप्तिर्म्रता श्रभवदयों भिर्यदेनं द्यारर्जनयत्मुरेताः(११) ॥ ४ ॥

तृतीयें त्वा। गर्भु आ। यंविष्ट आ। यत्। चुत्वारि च ॥ २ ॥

इति तैत्तिरीयसंदितायां चतुर्थकाएडे दितीयप्रपाठके दितीयाऽनुवाकः॥ ०॥

प्रथमेऽनुवाके वक्करासन्दां खापनमुक्तम्। दितीये तस्वाग्ने-रपसानमुख्यते। कल्पः, 'दिवसारी होकाद प्रभिद्धादत्र भस्त यो-

दश्रभिर्वा वासप्रेणापितष्ठते पूर्वेद्युर्विष्णुक्रमान् कामगुत्तरेद्युर्वपिष्ठते एवः सदा क्रयाद्यदः से मं कोणीयात्तद्रह्मयः समस्येत् प्रचक्रामेद्रुप च तिष्ठति' इति । तत्र प्रथमामाः ,— "दिवस्परि प्रथमं जन्ने त्रश्चिरसाह्नितायं परि जातवेदाः । स्तीयमपु नृमणा त्रजसमिन्धान एनं जरते स्वाधीः (१)" इति । 'त्रश्चः' 'प्रथमं' 'दिवस्परि' (द्युले कस्योपरि) 'जन्ने' (स्वर्यक्षेणे नियनः) 'त्रसात्'-'परि' (त्रसादीयस्य मनुष्यले कस्योपरि) 'जातवेदाः' 'दितीयं' 'जन्ने' (प्रसिद्धविक्षक्षेपण दितीयं जन्म प्राप्तवान्) । 'त्रपु' (समुद्रे) 'स्तीयं' 'जन्ने' (वड्वानलक्षेणे त्यनः) 'त्रजसं' (त्रिस्वपि जन्मस्) ('नृमणाः' नृषु यजमानेषु मने । इन्यादः सुद्धर्यस्थासे) 'नृमणाः' त्रश्चः 'एनं' (ईदृष्णमिश्चम्) 'इन्यानः' (पुरे । द्याश्चादिभिदीपयन्) 'स्वाधोः' (स्वायत्तित्तः) 'जरते' (जरापर्यम्नं परिचरतीत्वर्थः ।

श्रथ दितीयामारु,—"विद्या ते श्रग्ने चेधा त्रयाणि विद्या ते सद्म विस्तं पुरुचा। विद्या ते नाम परमं गुरा यद् विद्या तमुत्सं यत श्राजगन्या (१)" दति। हे 'श्रग्ने' यानि पूर्व सिन् मन्ते 'दिवस्परि' द्रत्यादिना चेधास्त्ररूपाणि उक्तानि श्रादित्याग्निवड्वानस्र रूपाणि, तानि 'चयाणि' (चित्रसङ्क्षाकानि रूपाणि) वयं 'विद्य' (श्रातु-मिक्काम)। किञ्च 'ते' (तव) 'पुरुचा' (पुरुषु प्रदेशेषु गार्च-पत्याद्यवनीयान्वाद्यायंपचनाग्नीभीयशामित्र रूपेषु) 'मद्म' 'विस्तं' (श्रवस्थापितं सम्पादितं), तदिप 'विद्य'। किञ्च 'ते' (तव) 'प्रमं' (उत्कृष्टं) 'गुरु।' (गृद्धां गाणं) 'देवेद्धमन्विद्ध' द्रत्यादिमस्त्रप्रतिपाधं

'नाम' 'यत्' श्रस्ति, तदपि 'विद्य'। देवेद्वादोनां नामलं मन्त्रान्तरे सम्बद्धिवसादवगम्यते,—'श्रग्ने देवेद्ध मन्तिद्ध मन्द्रिजङ' इति। किञ्च 'यतः' (उत्पात् दृष्टिक्षपात् प्रस्नवषात्) 'श्राजगन्व' (वैद्यतक्षपेष लमागते।ऽधि), 'तम्' श्रपि 'खत्यं' 'विद्य'।

यथ हतीयामाइ,—''समुद्दे ता नृमणा यखनार्नृचचा ईधे दिवा यग्न जधन्। हतीये ता रजि तिस्तवाश्य महतस्य योनी महिवा व्यक्तिन्।'' इति । हे 'यग्ने', ताम् 'ईधे' यजमाने।ऽहं (दीपयामि) । कीदृत्रो यजमानः ?—'नृमणः' (नृषु मनुखेषु कर्मानृष्टानपरेषु खिल्षु मनः यनुसन्धानकारि चित्तं यखासा 'नृमणः'), 'नृचचाः' (नृषु पृक्षेषु वेदपारङ्गतेषु मध्ये चष्टे मन्त्रान् विस्पष्टं वक्तीति 'नृचचाः')। कीदृषं ताम् ?—'समुदे' 'तिस्तवांशं' (वड्वानसक्पेणावस्तितम्), 'यप्तु' दृष्टिक्पासु, 'यनाः' वेषुतक्पेण 'तिस्ववांसम्', तथा 'दिवा' (चुक्तिकस्र) जधस्त्रानीय मन्त्रदृष्ट्यपेणव्या हतीयस्त्राने 'रजिति' (रच्चनात्मके तेजामण्डके) सूर्यक्पेण 'तिस्ववांसम्'। 'महिषाः' (महान्ते। यज्ञमानाः 'स्वतस्र योनी' (यज्ञसन्तिभस्ताने) 'यहिन्तन्' तां (प्रीषयन्ति)।

त्रय चतुर्योमाइ,—''त्रकन्ट्रग्निखनयित्र योः सामा रेरिडदोर्धः समञ्जन्। सद्यो जज्ञाना वि दीमिद्धो चख्यदा रादसी भानुना भात्यनाः(")" दति। त्रयम् 'त्रग्निः' 'त्रकन्दत्'

[🕈] स्थानीये इति पाठी भवितुं युक्कः।

(श्रम्मद्गिष्टिनिवारणार्थं गर्जत्)। किमिव ?—'स्ननयित चाः' (यथा चुलेक्स्यो मेघो गर्जन् मस्यक्षेषिभीतिं निवारयित तहत्)। किं बुर्वन् ?—'स्नम' (दाइकमस्यदिक्द्धं) 'रेरिइत्' (केलिहानः), 'वीक्धः' 'ममञ्जन्' (पुष्पकतावदस्यदगुकूलानि मम्यगभिविञ्चन्)। 'हि' (यसात्) 'जञ्चानः' (उत्पद्यमानः) 'सद्यः' 'ई.म्' (तदानीमेव) 'इद्धः' (दीप्तः) विविधं जगत् 'श्रस्थत्' (प्रस्थापयित)। 'रोदभी' (श्वावाष्टिष्योः) 'श्रन्तः' 'भानुना' (रिक्षाना) स्वयम् 'श्वा'- 'भाति' (समन्तात् प्रकाष्टते)।

त्रथ पश्चमीमाइ,—"जित्रक् पावका त्ररतिः सुमेधा मर्थेविद्यारस्तो निधाय । इयिर्त्त धूममद्यं भरिभदुक्कृतेष
क्रोतिषा द्यामिनजत्(ए)" इति । 'जित्रक्' (त्रमुग्रहपूर्वमस्मान्
कामयमानः), 'पावकः' (ब्रोधकः), 'त्ररतिः' (यागर्हितेषु ग्रीतिरुहितः), 'समेधाः' (ब्रोधकः मेधा सेवकाभिप्रायधारस्क्रिक्तवैद्यामा 'समेधाः)', 'त्रस्तः' (मरसर्हितः); तादृत्रः 'त्रग्निः'
'मर्लेषु' (मनुखेषु) 'निधायि' (निहितः) । 'त्रह्वम्' (त्ररीषं
चजुराद्यपद्वरहितं) 'धूमं' 'भरिश्रत्' (त्रित्रयोग धारयन्)
'जत्'-'इयर्त्ति' (ऊद्धे प्रधारयित) । 'ग्रुक्षेष' 'क्रोचिषा' (निर्मक्षेत्र तेलसा प्रभाक्षेष) 'द्याम्' 'इनचत्' (नचित, व्याप्नोति) ।

श्रय षष्टीमाइ,—''वियस केतुर्भुवनस गर्भ श्रा रोदसी श्रयणाळायमानः। वीदुसिदद्रिमभिनत् परायन् जना यद्ग्रि-मयजन पश्च⁽⁽⁾⁾' इति। 'विश्वस केतुः' (जगते। श्वाता), 'श्वनस्त गर्भः' (गर्भवदन्तरवस्तितः)। 'जायमानः' (जातमाच एव) सन् 'रोदसी' (द्यावाष्ट्रियटी) 'श्राष्ट्रकात्' (सर्वत: स्वतेजसा पूरचित)। 'यत्' (यदा) 'पञ्च' यजमानमस्तिता ऋतिगूपाः (पञ्चयक्काकाः) जनाः 'त्रग्रिमयजन्त',तदानीं 'परायन्' (त्राज्जि-क्षेणादित्यसभीपं गच्छन्) 'वोषुञ्चित्' (श्रदृद्भेव) 'श्रद्धिं' (पर्वतसमानं मेघम्) 'ऋभिनत्' (विदारितवान्)।

श्रय सप्तमोमाइ,—''श्रीवासुदारी धर्का रयीणां मनोवाकां प्रार्पेश: सेामगोपाः। क्याः सनुः यद्यो त्रासु राजा विभात्यस खवसामिधानः(^{०)}'' इति । 'श्रोणां' (गवासादीनां सम्पदाम्) 'खदारः' (खत्कर्षेष प्राप्यिता), 'स्योणां' (धनानां) 'धर्णाः' (धारचिता), 'मनीवाषाम्' (त्रपेचितानां खर्गादिपावानां) 'प्रार्पणः' (प्रापयिता), 'सामगापाः' (यजमानेनानुष्टेयसः साम-वागख रचिता), 'वसाः' (निवासहेताः) 'सहसः' (मधनवेगरूपस बस्रस्थ) 'सनुः' (पुत्रः), 'त्रप्तु' (दृष्टिरूपासुः) 'राजा' (वैद्युतरूपेष दोषमानः), 'खबसाम्' 'ऋषे' (खबसां प्रातःकाखे) 'द्रधानः' (त्र्रामिश्रीयमानः) 'विभाति' (विश्रेषेष भाषते)।

ऋषाष्टमीमाइ,—"यसे ऋदा ज्ञणवद्गद्दशे चेऽपूपं देव घृत-बन्तमग्रे। प्रतंनय प्रतरां वस्त्रे। श्रच्छाभियुक्तं देवभक्तां यविष्ठ^(८)'' द्ति । हे 'भद्रकोचे' (कस्त्राणदीप्ते) 'चग्ने' 'देव', 'ते' (तव) 'त्रद्य' (त्रस्मिन् दिने) 'घृतवन्तम्' 'त्रपूपम्' (उपसारणाभि-घारणोपेतं पुरे । इता अं वा प्रमानः 'क्रणवत्' (करोति)। हे 'चविष्ठ' (युवतम), 'देवभक्तं' (देवेषु भक्तियुक्तं) 'तं' पुरो-दान्नकारिणं यजमानम् 'त्रभिद्युवम्' 'त्रक्कः' (त्रभिमतं धनं प्राप्तु') प्रकर्षेच 'नच' (प्रेरच)। के.हृ शं चुचं ?—'प्रतर्'' (प्रक्रष्टतरां) 'वच्छः' (श्रतिभ्रयेन निवासकारणम्)।

प्राथ नवमीमाइ,—''प्रा तं भज धे। प्रविध्य उत्तर-उत्तर प्राभज प्रस्ताने। प्रियः स्वर्धे प्रियो प्रग्ना भनात्मुकातेन भिनदद्क्तानितः (८)" इति। ग्रोभनं त्रवः कीर्त्तः सुप्रवः, तस्य सम्भीनि (तत्कारणानि) कर्माणि भे। प्रवमानि, तेषु कर्मसु 'उत्तर्थे' (निष्केषस्प्रजगादिक्षे तत्त्तक्तः सेवेय, सम्प्रेर्य) निर्न्तरं कर्मानुष्टायिनं सुर्वित्यर्थः। 'प्राभज' इतिदिक्तवेशक्य-द्यमिदं कर्त्त्यम्, सीप्रवसेषु कर्मसु प्रेर्येत्देकं वाक्यम्, तत्तक्ति प्रेर्येत्वेकं वाक्यम्, तत्तक्ति प्रेर्येत्वेकं वाक्यम्। प्रयं यजमानः 'स्वर्थे' 'प्रयः' भवाति' (भवत्), 'च्राः' (वक्राविष्) 'प्रयो' भवतः। तथा 'जातेन' (जत्यक्षेत्र) पुत्रेण 'क्रः'-'भनदत्' (उद्गेदमभिष्टिद्धं प्राप्तेतिः); तथा 'जनित्रेः' (जित्यमाणः) पे। वादिभिष्य 'उत्'-'भनदत्'।

श्रय दश्मीमाइ,—''लामग्ने यजमाना श्रन्यून् विश्वा वस्नि दिश्वरे वार्याणि। लया यह द्रविणमिष्कमाना व्रजं गोमन्त-मुत्रिको विववुः'('')'' इति । हे 'श्रग्ने', 'यजमानाः' सर्वे 'श्रन्यून्' (प्रतिदिनं) 'लाम्' 'श्रन्' (लामेवानुगष्कन्तः) 'बार्याणि' (वरणीयानि) 'विश्वा' 'वस्नि' (सर्वेणि धनानि) 'दिश्वरे' (धत-वन्तः)। 'लया यह' श्रविख्तास्ते यजमानाः 'द्रविणमिष्कमानाः' (पुनर्यधिकं द्रयं कांचनाः) उन्निका, (धनसाधानि कमीषि

कामसमानाः) 'गोममां' (सङ्घभिगाभिर्युक्तं) 'त्रजं' (गोनिवास-स्नानं) 'विवत्रुः' (विशेषेण दतवमाः) ।

त्रथ एकादशोमाइ,—"दृशाना इका उर्था यहें। हुर्मर्घ-मायुः त्रिये इचानः । त्रियारस्तो त्रभवदयोभिर्यदेनं है। र-जनयत् सुरेताः (११)" इति । 'दृशानः' (दर्शनीयक्पः) 'इकाः' (स्वर्णस्टृशक्पः) 'चर्या' (महत्या) दीष्ट्या 'खहोत्' (विद्यातते स्र) । किं कुर्वन्?—'दुर्मषें' (इतरेरतिरस्कार्ये) 'त्रायुः' (जीवनं) 'त्रिये' (त्रियतुं) 'इचानः' (वाञ्कन्) । तथाविधः 'त्रियः' 'वयोभिः' (त्रानौ कैविभिः) 'त्रस्तो त्रभवत्', 'यत्' (यस्रात्) 'एनम्' (त्रिय्रों) 'होः' (द्युक्षोकवासी देवगणः) 'सुरेताः' 'सन्', 'त्रजनयत्', तस्रादस्तत्वं धुक्तम् ।

तदेतदेकादश्रमकात्मकं सक्तं विनियुक्ते,—"वात्मप्रेणोपितष्ठत एतेन वै वत्मप्रीभांखन्दने। प्रेयं धामावादन्था ग्रेरेवेतेन प्रियं धामावादन्थ"(५।२।१%) इति। वत्मप्रीनामकेन महर्षिणा ऋधीतं 'दिवत्यरि' इत्यादिकं सक्तं वात्मप्रं, तेनाग्निम् उपितष्ठेत । भाख-न्दनस्य पुत्रो वत्मप्री-नामका महर्षिः 'एतेन' (सक्तेन) 'ऋग्नेः' 'प्रियं' 'धाम' (स्नानं) प्राप्तवान्, ततो यजमानः ऋपि तथा प्राप्नोति ।

तस्य स्न क्य एकादश्रमन्त्रसमूहात्मेकलं विधत्ते,—"एकादशं

^{*} भानेः हति B. पु • पाठः ।

भवत्शेकधेव यजमाने वीर्ये दथाति" (५।२।१ च०) इति । 'एकधैव' (युगपदेव) समूहस्य युगपत्प्रवृत्तवात्।

तदिदं स्न तं विष्कुनमां च लानदय हेतु लेन प्रशंसति, "सो सेन वै देवा श्रस्मिन् स्रोक श्रार्भुवंच्यः न्दोभिरमुश्निन्त्स्रोमस्त्रैव ससु वा एतद्रूपं यदासाप्रं यदासाप्रेणीपतिष्ठते इममेव तेन स्रोक-मभिजयति यदिणुकमान् क्रमतेऽमुमेव तैर्सेक्सभिजयति'' (५।२।२ त्र ०) इति । गीत्यात्रयाणाम् त्राहसानास्त्रां समूदः स्रोमः (स्तुति हेतु भैन्त्रसमूदः) एतस्रोक्सस्टक्किप्राप्तिषाधनं ; समू-दाकारमक्रीण विज्ञिष्टानि ऋन्दांधि खर्गसप्टाङ्किकारणानि । यति वात्यप्रस्तां समूरक्षवात् एतचे।क्यस्द्भिकरं, क्न्दः ब्रन्दोपेता विष्णुक्रममन्त्रास्त बद्धलात् सर्गमस्टि हेतवः ।

उभयानुहानसः कासविग्रेषं विधत्ते,—"पूर्वेशुः प्रकामत्युत्तरे-युद्पतिष्टते तसाधागे न्यामां प्रजानां मनः सेमे न्यासां तसा-द्यायावरः चेम्यसेषे तसादायावरः चेम्यमध्यवस्ति"(५।९।९ %०) इति। श्रवश्यक साभी योगः, सथस्य परिवासनं चेमः, श्रर्जन-श्रीला बद्धयाः काश्वित् प्रजाः, चाग एव श्रेयानिति मन्यन्ते, चतः पर्मर्जयितुमन्नका व्ययभीरवः काञ्चित् प्रजाः, चेम एक श्रेयानिति मन्यन्ते, तदिदं प्रजानां मनेविषचणं क्रमेधापसान-· काख हेतुकं । यसात् प्रयाणजीसस्य पुरुषसार्जयितुम बकात्री नास्ति, 'तस्रात्' 'यायावरः' (प्रयाणश्रीसः) पुरुषः 'सेम्यस्य देशे' (विद्यमानद्रयरचण्येव प्रभुभैवति)। यसादेवं सोके दृष्टं, 'तसात्' श्रव द्वयजनदेशं प्रति 'वायावरी' (यजमानः) साधनान्तर-

षमादनेकां परित्यका विद्यमानान्येव उद्याम्यादिसाधनानि उपसामादियापारैः परोचितुमधवस्रति ।

सामविक्रतिलं चेतियतं तदङ्गानुष्ठानकासविशेषं चावगम-वितं दीचात्तं किश्चिदिधत्ते,—"मुशीकरोति वार्ष यच्छति बच्च ध्रती' (४।२।२%।) दति। 'खादा यज्ञं मनसा' द्यादिभिर्मन्त्रे ईसवेर हुः खातु चनं मुष्ठी करणं, मेानं वाग्यमः, तदुभयं यञ्चस्य पासनदार्काय भवति ।

> श्रव विधियोगसङ्गृहः,--दिव दत्यनुवाकेन वात्सप्रेणापतिष्ठते ।

दित सायनाचार्यविरचिते माधवीये वेदार्थप्रकाग्रे ज्ञष्ययणुः-मंहिताभाये चतुर्यकाण्डे दितीयप्रपाठके दितीयोऽनुवाकः ॥ • ॥

श्रम्पते उन्नस्य ने। देखानुमीवस्य शुष्पाणः। प्र प्रदातारं तारिष कं कं ना धेहि दिपदे चतुंष्यदे(।)। उद् त्वा विश्वे देवाग्ने भरन्तु चित्तिभिः। स ना भव श्वितंमः सुप्रतीका विभावसुः (१)। प्रेद्ं<u>ग्</u>चे ज्योति-षान्याहि शिवेभिर्याचेभिक्तं वृष्टिर्द्वभीनुभिर्भास्ं

^{*} खर्य पाठ खाद भी पृक्तको ना कि।

मा हिर्सिस्तुन्वा प्रजाः (१)। समिधामि दुवस्यत पृतैबेभियुतार्तिर्थि। स्ना॥१॥

श्रुस्मिन् ह्या जुहितन (१) प्रप्रायम् प्रिभेरतस्य श्रुखे वि यत् सुर्ये। न रेचिते वृहद्गाः। श्रुभि यः पूरु प्रतिनासु तस्या दीदाय दैयो श्रुतियः श्रिके। नः(६)। श्रापा देवोः प्रति यह्मीत् भस्मैतत् स्ये।ने क्षणुष्यः सुरुभावं कोके तस्मैनमन्तां अनयः सुपत्नीः मातेव पुचं विभृता स्वेनं(१)। श्रप्संग्रे स्विधृष्टवा ॥ २॥

सौषंधीरनुं रुध्यसे गर्भें संजायसे पुनः (०)। गर्भें। श्रुख्याषंधीनां गर्भें। वनस्पतीनां। गर्भें। विश्वस्य भूत-स्याग्ने गर्भें। श्रुपामंसि (०)। प्रसद्य भस्मना यानि-मृपश्व पृष्युवीमंग्ने। सुः स्टब्धं मातृभिक्तं ज्योतिषान् पुनुरासंदः (०)। पुनं रासद्य सद्नमृपश्वं पृष्युवीमंग्ने। श्रेषं मातुर्ययोपस्थेऽन्तरस्याः श्रुवतमः (१०)। पुनं कुंजा॥ ॥ ॥

निर्वर्तस्व पुनरम द्रषाऽयुंधा। पुनर्नः पाहि विश्वर्तः (१९)। सुह रुव्या निर्वर्त्तस्वामे पिन्वस्व धारया विश्वप्रक्षिया विश्वतस्परि (१९)। पुनस्वादित्या हुद्रा वसंवः सिमन्धन्तां पुनिर्क्वे ह्याणे वसुनीश्र युक्तैः घृतेन

स्वं तन्त्री वर्धयस्य स्त्या संनु यश्रमानस्य कामाः (१९)। बोधा ना श्रस्य वर्षसा यविष्ठ मः हिष्ठस्य प्रस्ततस्य स्वधावः। पीयंति त्वे। श्रनुं, त्वे। यशाति वन्दारुक्ते तनुवं वन्दे श्रमें (१४)। स बे। वि सुरिर्म् घर्षा वसुदावा वसुपतिः। युयोध्यस्यद्देषाः सि (१६)॥ ४॥

श्रा। तंत्र । जर्जा । श्रनु । षेडिंश च ॥ ३ ॥ इति तैसिरीयसंदितायां चतुर्थकाएडे दितीय- प्रपाठके स्वतीयाऽनुवाकः ॥ ॰ ॥

दितीखेंऽनुताके वज्लेक्खाये।पन्यानमुक्तम् ; ह्रतीये चयनार्थस्य देवयजनस्य परिपद्दोऽभिधीयते । कत्यः, 'व्रतकालेऽअपतेऽश्रस्य ने। देवीत्यादुंबरी ११ सिधं व्रतेत्काभ्यादधाति (?)' इति । व्रतार्थं चौरद्रस्ये । पाठन्तु,—''यजपतेऽश्रस्य ने। देवानमीवस्य प्रज्ञाश्रः । प्रप्रतारं तारिष क्रजें ने। धेवि दिपदे चतुन्यहे (१)'' इति । वे 'यश्रपते' यग्ने, 'यगमीवस्य' (यरोगस्य) 'प्रज्ञाश्रः' (वलहेतोः), 'यश्रस्य' प्राप्तिं 'नः' (यस्मभ्यं) 'देवि' । 'प्रदातारं' (प्रकर्षेष्ट्र विषये दातारं) वजमानं, 'प्र'-'तारिषः' (प्रकर्षेष्य दुरितात् तार्य) 'नः' (यस्माकं) 'दिषदे चतुन्यदे' (मनुस्याय पत्रवे च) 'क्रजें' (वलं) 'धेवि' (संपाद्य)। यस्य मन्तस्य प्रथमपादे अञ्चपति-व्रस्य दर्शयति,—''यञ्जपतेऽश्रस्य ने। देवीत्याद्दार्यात् प्रयन्पतिः सम्वस्य प्रथमपादे अञ्चपतिः सम्दार्थं दर्शयति,—''यञ्जपतेऽश्रस्य ने। देवीत्याद्दार्यात् प्रयन्पतिः सम्वस्तिः प्रवासा यश्रं प्रयन्धतिः (५।१।१२४०) इति।

दितीयपादे श्रनमीतश्रन्दार्थं दर्शयति,—''श्रनमीतस्य श्रुशिष द्रत्यादायक्यस्रोति वावैतदाद'' (५।२।२श्र॰) द्रति।

जन्तरार्द्धे 'तारिषा, धेषि' इति पदयोखात्पर्ये दर्भयति,— "प्र प्रदातारं तारिष जर्जने धेषि दिपदे चतुष्पदे इत्याषा-शिषमेवैतामाश्रासो" (५।२।२%) इति।

कलाः, 'खदु ला विश्वे देवा इत्युख्यमुद्यमां इति । पाठस्त,— "खदु ला विश्वे देवा श्वग्ने भरन्तु चित्तिभिः । स नो भव श्वितमः सुप्रतीका विभावसः (१)" इति । हे 'श्वग्ने', 'विश्वे' (सर्वे) श्विप 'देवाः' प्राणक्ष्णः 'चित्तिभिः' (खस्मनकुश्वसाभिः धी-दृत्तिभिः) 'खदु' (ऊर्ष्वमेव) लां 'भरन्तु' । 'स' लं 'नः' (श्वस्माकं) 'श्वितमः' (श्वान्ततमः) 'सुप्रतीकः' (सुमुखः) 'विभावसुः' (प्रभया वास्विता) 'भव' ।

श्रस्य मन्त्रस्य प्रथमपादे देवश्रन्दाधें दर्भयति,—"खदु त्या विश्वे देवा इत्याच प्राणा वै विश्वे देवाः प्राणैरेवैनमुद्यक्कते" (५।९। २श्र॰) इति। दीन्यन्ति स्वस्नकार्येषु व्यवचरन्ति इति देवाः प्राणाः।

दितीयपादे बुद्धादिश्वन्दान् परित्यञ्च चित्तिश्वन्दप्रयोगस्य तात्पर्ये दर्श्वयति,—"श्रम्ने भरन् चित्तिभिरित्याद यसा एवैनं चित्तायोद्यच्छते तेनैवैन स् समर्धयित" (५।२।२१४०) इति । चित्तिश्रन्देन चित्ताभिष्रेतकाय स्रचते, तथा स्रति यस्ने कार्याय इ.दमुद्यमनं, तेनैव कार्येष एनममिं सस्ट्रह्मं करोति।

चित्तप्रब्देन इति J. पु॰ पाठः ।
 च सम्दिनिति J. पु॰ पाठे। न साधः ।

यदुकां स्वचनारेण,-'भीद लं मात्रस्या उपस इति चतस्-भिदींचे बनटे प्रजग उस्समासादयित' इति; ईषाययोर्मेसन-स्थानं प्रजगं; तदेतत् स्वचनारे।क्रमासादनं विधन्ते,—"चतस्-भिरासादयित चलारि इन्दाश्चि इन्दोभिरेवाति स्वन्दसी-त्तमया वर्षे वा एषा इन्द्रसां यदित स्वन्दा वर्षेविनश् समानानां करे।ति सदती भवति सलमेवेनं गमयित" (५।२।२%) इति। सीद लिमित्यादयस्तस्त स्वस्तद्वाद्वाणं चेत्येतत् सर्वे प्रथमानुवाको यास्थातम्।

कच्यः, 'प्रेदग्ने च्योतिश्वान् याश्चीति प्रयाति' इति । पाठस्"प्रेदग्ने च्योतिश्वान् याश्चि श्रिवेभिर्श्वंभिस्तं । ष्ट्रह्मिभानुभिभाषत्वा श्रिश्चोस्तनुवा प्रजाः (२)"इति । हे 'श्रुग्ने', 'श्रिवेभिर्श्वंभिः'
(श्रामाभिर्ज्वासाभिः) 'च्योतिश्वान्' (प्रकाश्चयुक्तः) 'तं' 'प्रेत्'-'यः हि'
(देवयजनप्रदेशं प्रति प्रयाद्येव) । 'ष्ट्रह्मिभानुभिः' प्रेाढैः रिश्वाभः
'भाषन्' (जगदवभाषयन्) 'तनुवा' (स्वकीयेन दाइकेन श्रुरोरेष्)
'प्रजाः' 'मा श्रिंसोः'।

श्रस्त मन्त्रस्य प्रथमपादे च्योतिश्वच्छब्दस्य तात्पर्थे दर्श-यति,—"प्रदेशे च्योतिशान् याद्योत्याद च्योतिरेवास्मिन्दधाति" (५।२।२श्व०) दति ।

चतुर्यपादे चिंसां निषेद्धुं प्रसित्तं दर्भयति,—''तनुवा वा एव चिनस्ति यथ चिनस्ति मा चिश्रभीसानुवा प्रजा दत्याच प्रजाभ्य एवेनश्र अमयति" (५।२।२%) दति। श्रीयः 'यं' पुरुषं 'चिनस्ति', न अस्त्रेण प्रदृत्य चिन्ति, किन्तु ज्वास्तामयेन स्वश्वरीरेण तं दग्धा हिना; यतः 'तनुषा मा हिएसीः' इति प्राच्यते ।
प्रवादकाचे वन्दक धने यति प्रायस्ति विधन्ते,—
''र्षाप्रधि वा एत्यग्रप्त ययनो बदन उत्सर्जत्यकन्दित्यन्याह
रषसामपहर्त्यै''(५।२।२ प्रतः) इति । 'यत्' 'प्रतः' (ज्ञकटम्) 'उत्सर्जति'
(जनने धनिं करे।ति), 'एतत्' (यज्ञमाधनं ज्ञकटं) 'रष्वंथि' 'सपनो'
(समवयन्ति), प्रतक्त्परिहाराय 'प्रकन्दद्गिः' रत्येकान्दचमनुमुयात्; या प्रत्निनुवाके समाधाता व्यास्ताता ह।

विधत्ते, "क्रमसा वहन्यपितिमेवास्मिन्दधाति तसादमसी च रथी पातिथीनामपिततमा" (५।२।२%) इति। एत-सम्भि 'स्रमसा' (अकरेन) देवस्रमप्रदेशं 'वहन्ति' (प्रापयेत्), तथा कृति 'ऋस्मिन्' पश्ची पूर्णा सन्पादितवान् भवति। सस्पादेवं, 'तस्मान्' सोकेऽपि प्रयासकासे क्रकटारुड़े। रथारुड़सातिथीनां मध्ये पूर्व्यतमा; परिदृद्धे। हि तथा मन्क्रति, न तु इरिद्धः।

एतदेदनं प्रश्नंसति,—"चपचितिमान् भवति च एवं वेद" (५।२।२घ०) इति।

कत्यः, 'यमिथाग्निं दुवछतेति घृतानुषिकामविधिते यमिधमादधाति' इति । पाउन्त,—"यिमिधाग्निं दुवस्तत घृतेके ध्यतातिथिं। चाऽऽस्तिन् इया जुहोतन(")" इति । हे ऋतिस्यम्मानाः,
तम् 'र्चाग्नं' 'यमिधा' 'दुवस्तत' (परिचरत), घृतानुषिक्रायाऽनया
परिचरतेत्वर्थः । 'घृतेः' एतस्रेष्टेः 'त्रतिथिम्' इव एनं 'वे।धस्त'
(उद्दीपयत)। ततस्य 'त्रस्मिन्' इयानि (द्यींपि) 'चा'-'जुहोतन'
(याकस्रोन जुक्रत)।

तमेतं मन्तं विनिष्ठक्को,—"समिधाग्निं दुवस्ततेति घृतानुषिक्का-मन्निते समिधमाद्धाति वद्या त्रातिवये सागताय सर्पिय्वदातिक्यं किवते तादुगेव तत्" (५।२।२%) इति। 'श्रवसिते' (प्रयासे समाप्ते सति)। 'सर्पिय्वत्' घृतयुक्तमञ्जम्।

कस्यः, 'खन्तर्या चिष्टुभा राजन्यस्य' रित । 'सिन्धसाद-धाति' रत्यनुवर्त्तते । पाठस्य,—''प्रप्रायमग्निरंतस्य ग्रुखे वि यत् सर्वे न रोचते ष्ट्यद्वाः । भिन्न यः पूर्व प्रतनास् तस्यो दोदाय रैको मितिष्यः विवो नः(६)" रित । 'मयमग्निः' 'भरतस्य' (इविभर्षवतः) यजमानस्य माझानं 'प्रप्र'-'ग्रुखे' (प्रकर्षेष प्रकोतः) । 'यत्' (यः) मिन्नः 'सर्वे न' (सर्व रव) भासमानः सन् 'मृदत्' 'वि'-'रे।चते' (मत्यन्तं दोष्यते) । 'यः' मिन्नः 'प्रतना-स' (संग्रामेषु) 'पूर्वं' (मयपूर्त्तिम्) 'मिन्न'-'तस्त्राः' (सर्वतः करोति); से।ऽग्नः 'नः' (मस्माकम्) 'मिनिष्टः' 'दोदाय' (मिनिष्टिरिवेद्यसास्य मागक्ततः) । कीवृंमोऽग्निः?—'देखः' (देवेश्वो दितः) 'ज्ञवः' (परममक्रसंक्पः) ।

"स्मिधामि, प्रप्रायमियः" दत्यनयोः समिद्धानमन्त्रयो-विषयस्यवस्यां विधन्ते,—"गायणिया श्राह्मणस्य गायको सि ब्राह्मणस्मिष्टुभ्राजन्यस्य चेष्टुभे सि राजन्यः" (५१२।२ प्र०) दति । समिधामिनि गायकी, प्रप्रायमिमिनि चिष्टुप् ।

कच्यः, 'श्रापे। देवीः प्रतिग्रङ्गीत अस्त्रीतदिति तिस्रिभिरसु भस्र प्रवेशयर्ति' इति।

तच प्रथमामार,-''त्रापा देवी: प्रतिग्रहीत भसीतः छोने

कणुध्वश् सरभाव लोके। तसी नमन्तां जनयः सप्रक्रोमातेव पृषं विश्वता स्त्रेनम्(())" इति । हे 'श्रापे। देवीः' (देवः), 'भस्म' (खल्लाग्रेहपरिषस्तितं भस्म) 'प्रतिग्रक्षोत' । एतदेवाभिप्रेत्य स्त्रकारेणोक्तं—'यदुखां भस्माभिनिषोदेदुख्यमादायोदकान्तं गला' इति । 'एतत्' (प्रतिग्रहोतं भस्म) 'स्त्रोने' (स्त्रकरे) 'सरभावु' (सग्रश्चयुक्ते एव) 'लोके' (खाने) 'कणुध्वं' (खापयत) । (श्रोभनः पतिर्वहण्डपो यासान्ताः) 'सुपत्र्यः' (श्रापे। वहण्य पत्रय श्रासन्' इत्यन्यन श्रुतं) 'जनयः' (श्रग्नेजनन्यः) श्रापः (वाड्व-वेद्युत्रहृपमग्निं प्रति श्रपाञ्चनयिद्वलं)। ईदृश्य श्रापः 'तसी' (श्रग्नये) 'नमन्तां' (प्रज्ञोभवन्तु), तमग्निं पाखयितं वश्चाः साव-धाना भवन्त्रित्रय्थः । हे श्रापः, 'माता' 'पुनं' पाखयित यदत्, तदत् 'एनम्' (श्रग्निं) स्रष्टु 'विभृता' (पे।षयत दोपयत) ।

श्रथ दितीयामाइ,—"श्रप्खग्ने मिधष्टव मैति धीरनुद्द्धिये गर्भे सञ्जायये पुनः (क)" इति । हे 'श्रग्ने', 'तव' 'मिधः' (महः बलं) भस्मद्द्रपं 'श्रप्तु' 'वर्त्तते', 'म'लम् 'श्रोषधीरनुद्ध्यये' (त्रीद्दियवा- चीत्रधीरनुद्ध्यये'); आठराग्निद्धपेण तत्स्त्रीकारात् श्ररुषोः 'गर्भे' खितः मन् 'पुनः'-पुनः सम्यक् 'जायये'।

श्रय द्वतीयामाइ,—"गर्भी श्रखोषधीनां गर्भी वनस्पतीनां। गर्भी विश्वस श्वतसाग्रे गर्भी श्रपामिष्(क)" इति। भेषजरूपे-सृणविश्वेषद्वत्पद्यमानलात् लम् 'श्रोषधीनाम्' 'गर्भीऽिष'। तथा श्ररणीभ्यामुत्पत्स्यमानलात् 'वनस्पतीनां' 'गर्भः' श्रसि। हे 'श्रग्ने', 'विश्वस्य श्वतस्य' (सर्वस्य प्राणिजातस्य) जातस्य जठरे क्तमानतया 'गर्भः' चिष । तथा वाड्ववैद्युतक्रपेण 'त्रपां' 'गर्भः' 'त्रिषि'।

एतेर्मन्त्रे: साध्यं प्रवेज्ञनं विधत्ते, "त्रप्तु भस्न प्रवेज्ञयत्यप्तु-योनिर्वा त्रप्रि: खामेवैनं योनिं गमयति" (५।२।२८०) इति।

"त्रापो देवोः" रत्यादिकान् मन्त्रान् विनियुङ्को,—"तिस्रिभः प्रवेत्रयति चित्रदा ऋग्नियावानेवाग्निस्तं प्रतिष्ठां गमयति"(४।२।२%) इति। श्राह्यनीयादि रूपेणाग्नेस्तित्वस्त्रम्।

कल्पः,—'भस्राने।पादाय प्रपीस्, 'प्रसद्य भस्राना' इति द्वाभ्या-मुखार्या प्रत्यवधाय' इति ।

तच प्रथमासाइ,—"प्रसद्य भसाना योगिसपद्य पृथिवीमग्रे। सः एव्य साद्यभिद्धं क्योतिमान् पुनरासदः(८)" इति । हे 'त्रग्ने', 'भसाना' सद्द 'योनिं' (कारणभ्रतां) 'पृथिवीं' 'प्रस्य'। किं पृथिवी- सेव? 'न'-इत्याह,—'त्रपश्च' योनिभ्रताः प्रतिपद्य । किंच 'माद्य- भिः' चिद्धः पृथिया च 'संस्व्य' (एकोभ्र्य) 'लं क्योतिमान्' (भृषं क्योतिःसम्बनः) 'पुनः' (पञ्चात्) 'त्रासदः' (खीयमेव स्थान- मुखाम श्रासीद)।

श्रथ दितीयामाइ,—"पुनराषद्य सदनमपश्च प्रथितीमग्ने।
भेषे मातुर्यथोपखेऽन्तरखाः श्रिवतमः(१०)" इति। हे 'श्रग्ने',
'पुनः' श्रपि 'सदनं' (खखानं) 'श्रपः' 'पृथितीं' 'च' 'श्रासद्य' (प्रतिपद्य)
पुनः 'श्रखाम्' एवाखायाम् 'श्रनः' (मध्ये) 'श्रिवतमः' (श्रान्ततमः) 'भेषे' (श्रयनं करोषि)। 'यथा' 'मातुः' 'उपखे' (उत्सङ्गे)
सुतः सुखं भेते, तद्दत्।

एता मन्त्री वि नयुक्क्षे,-"परा वा एकार्डां वपति चारक् भस्म प्रवेशयति च्योतियतीभ्यामवद्धाति च्योतिरेवास्मिन्द्धातिः' (५।२।२ प्र.) इति । 'घो' यजमान उखाग्निसन हं 'भस्र' 'प्रम्' 'प्रवेत्रयति', 'एवे।ऽग्निं' 'परा'-'वपति' (नात्रयति)। ऋते। विनात्र-परिचाराय असगतं भस्र निष्णीच च्योतिसच्चन्देग्पेताभ्या-स्राभ्याम् उद्याचामवदभ्यात्। 'लं च्योतिमान् पुनरासदः' रह्येवं च्चोतिशक्दापेतलम ।

मन्त्रदयं प्रश्नंसति,—"दाश्यां प्रतिदित्ये" (५।२।२ घ०) इति।

कस्यः,—'पुनर्क्जा यह रयोति पुनर्देति' इति । निष्पीजित-भक्तोपेताचामुखाचाम ग्रं कापचतीत्वर्थः ।

तच प्रथमामाइ,—''पुनक्र्जा निवर्त्तस पुनरग्न इवाऽऽयुवा। पुनर्गः पाहि विश्वतः(११)" इति । हे 'स्रग्ने', लं 'ऊर्वा' (घीरादि-रखेन) सद 'पुन:' 'निवर्णख' (श्रत्रागच्छ)। 'इवा' (श्रस्त्रेन) 'श्रा-क्षा' यह पुनरागच्छ । 'नः' (श्रक्षान्) 'पुनः'-पुनः कतात् 'विश्वतः' (सर्वस्मात्) ऋपराधात् 'पार्डि'।

भ्रष्य दितीचामाइ,—"सइ रया निवर्त्तसाग्ने पिनस भार्या। विश्वशिनया विश्वतस्य रि^(११) दति। हे 'त्रग्ने', 'रखा' (धनेन) 'तप' 'निवर्णख'। 'या भष्पें' इति धातुः, विमे: सर्वे: माचते भक्तते पीयत रति विमय्की; तारुमा वृष्टिधार्या 'विश्वतस्परि' (वर्षेषां द्रणसस्त्रस्तापादपादीनामुपरि) (पिन्वस) सिश्च।

मक्तद्यं विनियुक्को,—"परा वा एष प्रजां प्रमून् वपित योऽपा भस्म प्रवेशयित पुनक्जां सह रखेति पुनक्दैति प्रजामेक प्रमूनात्मश्चले" (५।२।२%) द्रति । भस्मनोऽपा प्रवेशनेन वि-नाजितायाः प्रजायाः प्रमूनाञ्च खात्मिन खापनाय 'पुनक्दैति' (पूर्वमुखाया अपनीतमिंग्नं पुनक्पि निष्पी जित्मसासिकतायाम् प्रकारां मक्तद्वयेन खापयेत्)। तन मक्तद्वयक्तात् प्रजायाः प्रमूनाञ्च खात्मनि खापनं भवति ।

कर्यः,—'पुनस्तादित्या हट्टा वसवः यमिन्नतामिति पुनहस्त्रमुपयमिन्ने' इति । पाठस्तु,—"पुनस्तादित्या हट्टा वसवः यमिन्नतां पुनर्बन्नासो वसुनीय यश्चैः । घृतेन लं तनुवे वर्द्ध्यस्त्र सत्याः सन्तु यजमानस्य कामाः(१९)'' इति । हे स्रग्ने, लाम्
'सादित्या हट्टा वसवः' च 'पुनः' 'समिन्नतां' (उपमानां पुनः सन्दीपयन्तु) । हे 'वसुनीय' (वसुनां धनानां नोय प्रापयितः), 'ब्रह्मासो' (ब्राह्मासाः) स्वित्रः 'यश्चैः' निमित्तस्तिकां 'पुनः' 'समिन्नतां'। 'लं' 'घृतेन तृष्टः सन्' 'तनुवः' (सस्मदीय प्राप्तिः) स्तिरास्तिः 'वर्ध्यस्त', तत्त्रतस्त्रयि तृष्टे सति 'यज्ञमानस्त्र' 'कामाः' 'सत्याः सन्तु'।

श्रिम् मन्त्रे सद्दासुकेसात्पर्ये दर्भयति,—"पुनस्तादित्या स्द्रा वसवः समिन्धतामित्यासैता वा एतं देवता श्रमे समैन्धत ताभिरेवैनप्र समिन्धे" (५) २) र ति ।

^{*} अमे इति J. पु. पाठः।

क्स्यः,—'बाधा' 'स बाधि' इतिबाधवतीभ्याम्पतिष्ठते' इति। तच प्रथमामार,—'बोधा ना चय वच्या यविष्ठ मः हिष्ठस्य प्रभृतस्य स्वधावः। पीयति ले। अनु ले। एणाति वन्दारसे तन्वं वन्दे प्रग्ने (१२)" इति । हे 'खधावः' (खधापसचितास्रवन् र), 'चिवष्ट' (युवतम), 'मः' (श्रसादीयस्थ) 'वचमः' (स्तुति रूपस्थ) 'बोध' (तात्पर्ये बुध्यस्व)। की दृष्ठस्य वचसः?-'मंहिष्ठस्य' (ऋति-बयेनाभिटक्किरेताः), 'प्रभृतस्य' (प्रक्तष्टेन त्रादरेख समादितस्य), 'पीयति लः'(श्रीषायी † सद्भावित्यसात् धाते। इत्पन्नः पीयति-श्रद्धः, 'लः'-श्रद्ध ! एकश्रद्धार्थे वर्त्तते), भवदीयस्तिकारिणोर्दयो-र्यजमानयार्मधे 'तः' (एकः) स्ताता यजमानः (दृद्धिमधिकं विक्ति, उचिताकिमुझङ्घ निन्दारूपेणातिप्रश्रंसा-क्षेष वा यत्किश्चिद्रिता)। 'ले।' 'त्रमु'-'ग्रणाति',—'लः', (एकः) स्रोता अनुकूलम् (उचितमेव) वितः , अते। उसादिभप्रायं बुध्यस्रेति प्रार्थिते । अते (वन्दादः' (श्वभिवन्दनपरः) अहं हे 'अग्ने', तदीयां तम्वं 'बन्दे'।

त्रय दितीयामाइ,—''स बेाधि स्तरिर्मघवा वसुदावा वसु-पति:। युथोध्यसद्देवार्शस्(१५)'' रति । हे त्रग्ने,'स' लं 'बेाधि' (त्रसदिभिप्रायं बुध्यस्त) । कीदृ ज्ञस्तं ?-'स्तरिः' (विदान्), 'मघवा'

खंधापविचाताज्ञवान् इति ग्र. पु॰ पाठः ।

[†] कोष्यायो रहावित्यसात् इति चादर्भपृक्तकपाठः। कोष्यायो रहावित्यसात् इति उ. प्॰पाठः।

[‡] लग्रन्दः इति पाठी भवितुं युक्तः।

(त्रस्वान्), 'वसुदावा' (वसुप्रदः), 'वसुप्रतिः' (धनप्रतिः) । तादुः अस्वं 'देवाः स्वि' (अषुभिः इतान् देवान्) 'त्रसात्' 'युयोधि' (त्रसात-मपाकुद्) ।

तदेतत् मक्तद्वयं विनियुद्धे,—''बेधा, स बोधीखुपतिष्ठते बेध्यक्षेत्रेनं तस्मात् सुद्धा प्रजाः प्रबुध्यनो'' (६।२।३%) इति। 'बोधा' इति मक्त्रेष, 'स बोधि' इति मक्त्रेष च एतमग्निं बेध्यक्षेत्र । यसादच श्राक्तमग्निं पुनदद्वेध्यति, तसाह्नोकेऽपि प्रजाः खापं प्राप्य पुनः प्रबुध्यनो।

जपस्थानदेशं विनियुक्के,—"यथास्थानमुपतिष्ठते तसार् यथास्थानं पत्रवः पुनरेवोपतिष्ठनो मा (५।१।१२०) रति। श्राह्वनीयस्य द्विषभागा यत्रमानस्थे।पस्थानदेशः, श्रते।ऽनापि दिख्यदेश्र एव स्तिले।पतिष्ठते, यसादेवं, तसाक्षोकेऽपि पत्रवः प्रातःकाले श्रासाया निर्गत्यारस्थे गला सायं पुनरागत्य सं सं स्नानसेव सेवन्ते॥

श्रव विनिधागमञ्जू रः,--

श्रवा,-ऽऽद्धाति समिधमुद्यक्केदुदृत्वाऽनलम्। प्रेत्रयात्यय समिधा, गम्यते समिधं चिपेत्॥ राजन्यद्येत् प्रेतिमन्त्रः, श्रापेा, भसाप्तु वेश्वयेत्। विभिः, प्रस्वतु-दाभ्यामुखार्यां स्वापयेदमुम्॥

^{*} पुनरेख्यापतिस्तते इति उ. पु॰ पाठः।

पुनर्दाभ्यामुदैत्यग्निं, पुनस्ति विभिन्धयेत्। बोध, दाभ्यामुपस्तानं मन्त्राः पञ्चदमेरिताः॥ दति वायनाचार्यविर्विते माधवीये वेदार्यप्रकामे कृष्णयजुः-मंदिताभाये चतुर्थकाण्डे दितीयप्रपाठके हतीयोऽनुवाकः॥०॥

श्रीत वीत वि चं सर्पतातो येऽच् स्य पुराणा ये च नूर्तनाः। श्रद्राद्द्दं युमेऽवृसानं पृथिव्या श्रक्कानं में पितरी खोक्समसे (१) श्रुप्ते स्त्रीस्त्रास्य ग्रेः पुरीषमिति (१) सुञ्जानं मिस कामुधरेणुं मियं ते कामुधरेखं श्रुयात् (१) । सुं या वः प्रियास्तृतुदुः सं प्रिया इद्यानि वः। श्रातमा वे। श्रस्तु॥ १॥

संप्रियः संप्रियास्तुनु मर्म । श्रुयः सा श्रुप्यस्मिन्त्रीम्मिन्द्रः सुतं द्धे श्रु दे वान्शानः। सहस्तियं वाश्रुमत्यं न सित्तंः सस्वान्सन्स्तूयसे श्रातवेदः ॥ श्रुप्रे दिवा श्रर्ण्यमच्छा जिग्।स्यच्छा देवाः केचि धिष्णियाये। याः प्रस्ताद्रोचने ह्यस्य याश्रावस्तादुप्तिष्ठन्त श्रापः । श्रुप्रे यते। दिवि वर्षः पृथ्वियां यदे। चेधिषु ॥ २॥ श्रुप्त वा यत्रच। येनान्तरिक्षमुनीतृतन्यं त्वेषः सं भानुर र्श्वे नृचर्धाः (°) । पुरोष्यासा श्रुप्रयः प्राव् सेरिः सुजार्षसः। जुषन्तार इत्युमार्ह्वतमनमीवा ईषा मुद्योः^(F)। द्रडीमग्ने पुरुद्र्यंस्य सुनिङ्गोः श्रेश्वत्तुम्य इवमानाय साध। स्थान्नः सूनुस्तनेया विजावाग्रे सा ते सुमृतिभूँ त्वसों । श्रयं ते योनिर्क्ष तियो यता जाता त्ररीचयाः। तं जानन्॥३॥

श्रुम श्रारोहायां ना वर्धया रुचिं(१०)। चिदंसि तया देवतयाऽऽक्रिरुखद्भुवासीद्र(११) परिचिद्सि तया देवतयाऽऽक्रिरुखद्भुवा सीद^(१२) खेवां प्रण छिद्रं पृ-षात्री सीद शिवा त्वं। इन्द्रामी त्वा रहस्पतिपुस्मिन् योनीवसीषदन्^(१९)। ता श्रस्य स्द्रदेशहसुः सीमर्र श्रीएन्ति एश्रयः। जन्मन् देवानां विश्वस्तिषा रीचने द्विः(१४) ॥ ४ ॥

श्रुत्तु । श्रोषंधिषु । जानम् । श्रष्टाचेत्वारि १ श्रच॥४॥

इति तैत्तिरीयसंदितायां चतुर्थकाएडे दितीय-प्रपाठके चतुर्थोऽनुवाकः॥ ०॥

हतीचेऽनुवाके वक्रेक्खास चयनदेशं प्रति नयनमुक्तम्; त्रय चतुर्धे गाईपत्यचयनमुख्यते । कल्पः, 'त्रपवृत्ते दीचापरिमाणे त्रपेत बोतेति गार्चपत्यचितेरायतनं व्यायाममाचं चतुरसं परिमण्डलं बोद्धत्या' इति। पाठस्तु,—"अपेत वीत वि च सर्पताता येऽच स्व पुराणा ये च नूतनाः। श्रदादिदं यमाऽवसानं पृथिया श्रक्षत्रमं पितरा स्नोक्तमस्त्रे(१)" इति। यमस्य सर्व-श्रम्यिधपतिलात् तङ्गृत्याः पृथियां सर्वच वर्त्तन्ते। हे यम-स्त्रत्याः, 'अच' (देवयजनस्त्राने) पुरातना 'ये' यूयं 'स्व' 'नूतनाः' 'च' 'ये' यूयं 'स्व', ते सर्वेऽपि 'श्रपेत' (श्रस्तात् स्त्रानादपगच्हत)। 'वीत' (श्रत्यम्नं विदूरं गच्छत)। 'वि'-'सर्पत' 'च' 'श्रतः' (श्रस्तात् स्त्रानात् श्रपेत्य सान्निष्टं परित्यच्य विविधं गच्छत)। 'पृथियाः' 'इदम्' 'श्रवसानं' (स्त्रानं) 'यमः' श्रस्तभ्यम् 'श्रदात्', 'पितरः' च 'श्रस्ते' (यजमानाय) 'इनं' 'खेाकम्' 'श्रकन्' (एतचयनस्त्रानं कृतवन्तः)।

तमेतं मक्तं विनियुक्के,—"यावती वै पृथिवी तस्त्रे यम श्राधिपत्यं परीयाय यो वै यमं देवयजनमस्त्रा श्रनियांच्याग्निं चिनुते यमायेन ११ स चिनुतेऽपेतेत्यध्यत्रसाययति यममेव देव-यजनमस्त्रे नियांच्यात्मनेऽग्निं चिनुते" (११११श्व०) इति । सर्वस्ताः पृथिया श्राधिपत्ये यमेन प्राप्ते सति 'यः' (यजमानः) 'यमं' प्रति 'श्वसाः' (पृथियाः समन्त्रि) 'देवयजनम्' श्व-याचिता तत्र 'श्रग्निं', तच्यनं यमार्थमेव भवति, न तु स्त्रयं तत्पत्तमाग् भवति । श्वतः 'यमं' याचित्नम् 'श्रपेत'-इति-मक्तेष 'श्रध्यवसाययति' (देवयजनं निश्चनुयात्) । श्वते। याचित-त्रात् स्त्रार्थमेव तच्यनं भवति ।

तिममं मन्त्रं प्रशंपति,—"द्रव्ययेण वा श्रद्धा श्रनास्त्रति-

क्क्लो गाविन्द नो देवा एतद्यजुरपश्चन्नपेतेति यदेतेनाध्यवसा-ययत्यनास्टन एवाग्निं चिनुते" (५।२।३५०) इति । स्रतैः प्राविभिराका कमास्तरं, तथा न भवतीति 'चनास्तं', तादृश्रम् 'त्रसाः' (पृथियाः समन्धि) स्थानम 'दुन्कन्तः'(त्रपेत्रमानाः) 'देवाः' वाकाग्रेक परिमितम् ईपदपि 'नाविन्दन्' (नासभन्त), सर्वमपि भूमिखानं प्रेतेराकान्तमेवेत्यर्थः । यद्यत् खानमन्त्रियते तत्र तत्र विचारणार्यां बद्दवः प्रेता ऋतीता भवन्ति । एतदेवाभिप्रेत्य महाभारते सार्थते, "त्रव भी बाबतं दग्धं द्रोणाना स बतवयम्" इति। एवं सति 'देवाः' तत्परिचारापायं विचार्य 'एतद्यज्ः' (यजुर्वेदस्त्रम्) 'त्रपेत वीत' इत्येतं मन्त्रम् 'त्रपम्यन्'। तसादनेन मक्लेष प्रेतानां निःघारितलात् तैरनाकाक्ते 'एव' खाने 'ऋग्नि चिनते'।

गाईपाय चितिस्वानस्रोद्धननं विधत्ते,—"उद्धन्ति यदेवास्ता म्रमेधं तद्पद्यन्तः" (५।२।३ म ०) इति । 'श्रखाः' (पृथियाः) उपरि निष्ठीवनादिना यत् खानम् 'त्रमेधं' जातं, 'तत्' उद्भननेन विनिवार्यते।

उद्धते प्रदेशे जलेनावाचणं विधत्ते,—''त्रपाऽवाचित शामधै'' (५।२।३%) इति । उद्भनेन निष्यमा स्रमिः जसेन पान्ता भवति ।

क च्यः, 'त्रग्नेभेखासीति सिकता निवपति' इति। पाठस्त,-''त्रप्रोर्भसाखद्रोः पुरीषमिष^(२)'' इति । हे सिकतास्त्ररूप, तम् 'त्रग्नेः' 'भस्म' (भासकम्) 'त्रसि'। सिकताधारे। हि त्रग्निर-

तिती द्यो भवति, तथा लम् 'श्रग्नेः' श्रवस्रानाय 'पुरीषमिं अ (पांसक्पमिं।

एतवाकाषाधं सिकतावापं विधत्ते,—"सिकता निवपत्येतदा भग्नेवैनानरस इपट्र इपेबैव वैनानरमवहन्थे' (५।२।३भ०) इति। श्राधानप्रकर्णे वैश्वानरस्य इपं, 'प्रथियां परिस्रगः' दलाचातलात् धिकताज्ञरीरं वैत्रानरसाग्नेः सद्यम्।

कष्यः, 'सञ्ज्ञानमित्यूषान्' इति । निवपतीत्यनुवर्त्तते । पाठसु,--''सन्ज्ञानमिं कामधर्षं मिं ते कामधर्षं भ्रयात्^(९)'' इति । हे जवस्वरूप, लं 'सञ्ज्ञानं' (पश्र्यमनिध धस्यक् ज्ञानम्) 'असि'। प्रावी हि श्राचालेन सम्यक् ज्ञाला तम् जवप्रदेशं खिद्दन्ति, तथा 'कामधर्णम्' 'त्रसि' (यज्ञियांत्रलेन त्राञ्चणे वच्छमाणवात् वज्ञदारा कामानां धारकमि। अतः 'ते' यत्कामधरणसामर्थे, तत् 'मयि' 'श्रयात्'।

एतवान्त्रसाध्यमूषिवपनं विधन्ते,—"जवां निवपति पृष्टिवी एषा प्रजननं चदूषाः पुष्ठासेव प्रजननेऽग्निं चिनुतेऽथे। सञ्ज्ञान एव सञ्जान १ छोतत् पशूनां यदूषाः" (५।२।२ अ ०) इति। पृष्टिचेतुलं प्रजेश्यिक्तिचेतुलञ्च जवाणां वज्ञदारा द्रष्टव्यम्। तसादूषिवापे सति पृष्टिहेती प्रजनमहेती च देशेऽग्निश्चिती भवति। किञ्च सञ्ज्ञानदेतावेव देशे श्रश्चिती भवति। जवाषां पग्रज्ञानहेतुलं स्नोके प्रसिद्धं; पश्ची हि जवरप्रदेशं ज्ञाला तपत्यं खबकोदकमेव पातुं गच्छ निः, (पीला च पृष्टिं प्राप्नु-विना। श्रतः सञ्ज्ञानलं पृष्टिचेतुलञ्च। यदुकं स्वचकारेण,

'ताबिवपन् यददश्यम् मिष क्रणं तदिहास्तिति मनसा धायति' इति ।

तदेतिदिधक्ते,--"चावाष्ट्रियो यहासां ते विवती अनूता-मस्तेव नै। यह यज्ञियमिति यदमुखा यज्ञियमासीत् तद्या-मर्धात जवा श्रभवन् यदसा यज्ञियमासीत् तदम्यामद्धात् तददस्यम्मसि जन्ममृगित्रवपस्रदो धायेद् चावाप्रचिचोरेव यित्रयेऽग्निं चिनुते" (५।२।३४०) इति । पुरा सृष्टिकाले प्रजापतिना सृष्टे चावाष्ट्रचिया जतुकाष्ट्रवत् संस्रष्टे तिष्ठतः, ते यदा प्रजापतेरनुष्रया वियुच्येते, तदानीं परखरानुरागेष एवं भागं क्रतक्या, 'ना' (बावयाः) 'बद्' यज्ञयोग्यं सारं, 'तत्' 'सइ' 'एव' 'त्रसु' इति। ततः 'त्रमुखाः' (दिवः) * 'वत्' यच्चीमां सारम् 'त्रासीत्', 'तत्' 'त्रस्वां' (पृथियां) सा सा: सापितवती । तस ग्यारक्षतं भूमाविदानीं दुः स्थानाः 'ते' (प्रिक्ट्राः) 'कवाः' त्रासन् । 'यत्' च 'त्रस्याः' (पृथिष्याः) यञ्च-थार्यं घारम् 'श्राधीत्', 'तत्' (धारम्) 'श्रमुर्या' (दिवि) सा पृचिवी सापितवती। 'तत्' सापितं 'त्रदः' 'चन्द्रमधि' दृष्णमानं 'क्रचं' रूपम् अभूत्। ऋत उभयाः सारयारेकोभावाय 'जवान्' 'निवपन्' 'ऋदः' चन्द्रमधि समाहपं 'धायेत्', तेन धातेन 'बावाप्टियबोः' सम्बन्धिन यज्ञयोग्ये मारे श्रीमं चितवान् भवति ।

कच्यः, 'भं या वः प्रियासमुव दत्यूषाम् मिकता स स ए छज्य'

^{*} दिवि इति चादर्भप्राक्षकपाठः।

इति । पाउन्त,--"मं या वः प्रियासनुतः सस्प्रिया इद्यानि वः। त्रात्मा वे। त्रस्तु सम्प्रियः सम्प्रियासनुवे। सम^(४)'' इति । हे सिकताः, जवाः, 'वः', (युग्नाकं) 'याः', 'प्रियास्तनुवः' ताः परसारं 'सं'-इत्राक्तां। 'वः' (धुकाकं) 'प्रिवाः' (प्रियाकि) 'इंद्वानि' त्रपि '६ं-'स्वानां । तथा 'वः' (ब्ह्याकं) 'त्रात्मा' पवि 'सम्प्रियः' 'यस्तु'। यपि च 'सम' यपि 'तन्तः' 'सन्तियाः' सन्तु ।

कत्या, 'प्रवर् के प्रशिरिति चतको मध्ये प्राचीरिष्टका मार्डपराचिताव्परधाति' इति । 'त्रयम् सा प्राप्तः' इत्येतिस्मिन् स्ते प्रथमामार,—'प्रवर् का प्रशियंसिक् कामिन्द्रः सुतं दर्धे जहरे वावज्ञानः। सङ्ख्यियं वाजमत्यस्य प्रतिश् वसवान सन्द्रस्यसे भातवेदः(प)'' इति । 'बस्मिन्' गार्चपत्यचितिक्येऽग्रीं 'वावर्श्वनः' (कामयमानः) 'रक्ः' 'सतं' 'सामम्' (ऋभिषुतं) 'जठरे' 'दधे' (स्रोदरे धारवति), 'स' (ता हुत्रः) 'खवम्' 'त्रग्निः' इदानीम् इष्टकाभिसीयते इति प्रेष:। हे 'कातवेद:', 'त्रखं' 'सित्रं' 'न' (सलर-गमनजुत्रसमयमिव) 'सर्चियं' (सरसम्ज्ञानेन धनेन समितं) 'धाजम्' (ऋषं) 'ससवान्' (दक्तवान्) 'सन्' यजमानै: 'ख्रूबसे'।

त्रय दितीयामा इ,—''त्रश्चे दिवा प्रर्थमका जिमासका देवाश अधिषे धिष्णिया थे। याः परसाद्रे। चने सर्वस वा-श्वावसादुपतिष्ठना श्रापः (९)" इति। हे रहका रूप 'श्रग्ने', 'दिवः' (सकाशात्) 'त्रर्षम्' (उदकर्) 'बक्क्' (त्राभिमुख्येन) 'निगासि'

याचाधकादुपतिस्न इति क्वित् गाठः।

(प्राप्तीषि), बानदारेण पृष्टिं समाद्वशीलर्थः । 'ये' देवा 'धिष्यकाः' (धिष्यवाधाराः) तान् देवान् 'चन्कः' (च।भि-मुखोन) 'ऊचिवे' (इति: खोखुइतेति मूचे), लिय अवे।पहिते मचा बमाइता द्व देवा भागता हिनः स्रोकिर्यनोत्वर्धः। 'सर्वस्र' 'रोचने' (रोप्तिक्वे) च कके बन्ति 'थाः' 'चापः', 'परकात्' (अर्बेदिकि) 'उपतिहमी'; 'पायावस्त्रत्' (पधाभागे) वर्त्तमी, ताः वर्वाः सन्ति उपिति र्र्डामियमीति वेषः ।

प्रम हतीवामाइ,-"प्रमे बत्ते दिवि वर्षः पृथिकां बदी-क्षोम्बयुवा यजन । येना नरिच मुर्वाततन्य सेवः स आन्-रवंदी नुच्याः^(७)'' इति । हे 'यजन' (वाननिव्यादक) 'त्रग्ने', 'ते' (त्व) 'चत्' 'वर्षः' 'दिवि' सर्वेरूपेस वर्त्तते, 'पृथियां' विक्र-कालाक्षेष वर्त्तते । तथा 'यत्' तेन 'ग्रोवधीवु' तत्कलपरि-पाककासाकारेच वर्तते। 'त्रप्' वड्वावसक्षेप वर्तते। 'येन' लद्देखेन वर्जना विसुद्रुपेष 'खर' (विस्तोर्धम्) 'चलारिसम्' 'श्राततच्य' (वर्वते) विस्तारितवानिय) प्रकाम्नितवः निद्यर्थः। 'लेषः' (दोप्तिमान् वर्वदीपवर्ष:समूदः *) 'भानुः' (भावकः), 'ऋष्वः' (बरुद्गस्पविसीर्थः), 'नृचकाः' (मनुखान् सस्त्रापश्चिता) । तथा-विधतेजोरूपामिष्टकाम्पद्धामीति त्रेवः।

भव चतुर्वीमार,-"पुरीखारी अग्रयः प्रावर्वभिः स-वोषकः। जुबन्ताप् चयम्बन्नाज्ञतनमनीवा रुषे। मधीः^(८)'' इति।

^{. *} अन समूष्ट्रित विसमंत्र्या एवं सर्वेत पाठी नास्थां रीषते। 2 4 2

एते 'श्रायः' रष्टकारूपाः 'श्राक्षतं' 'इवं' 'जुवनां'। कीर्शा भग्नचः ?—(पुरीषे पांसुक्षे भवाः) 'पुरीव्यासः', 'प्रावकेंभिः' (प्रकर्षेण समाजनश्रीसैर्मनाभिः) । 'सन्तावयः' (परस्परं समान-प्रोतचः) 'श्रनमीवाः' (रागरिहताः), 'द्यः' (श्रभीष्टप्राप्तिहेतवः), 'मदीः' (प्रादाः), तथाविधाग्निक्पाम् दृष्टकामुपद्धामीति प्रेषः। क्सः, 'इड़ामग्रेऽयं ने योनिर्चातय इति दे पुरसासमीचो' इति । उपद्धातीत्वनुवर्त्तते । तत्र प्रथमामार,-"इड़ामग्ने पुर-इएसए सनि गीः अयुक्तमए इवमानाय साध । सामः सनु-सानचा विजावाग्र या ते सुमतिर्भूलसी(<)" इति । हे 'स्रग्ने', 'दवमानाय' (देातुं प्रवृत्ताय) यत्रमानाच 'गाः' 'वर्नि' (गवादि-पशूनां दातारं) 'साध' (सन्याद्य) । की दुर्झ सनिं?—'इड़ां' (वर्षेरीखं प्रशंवनीयं), 'पुद्दंवं' (वक्तधा दर्जनीयं), 'अयुक्तमं' (त्रत्यक्तमविक्केरेन वर्षमार्ग) । किश्व लत्पसादात् 'नः' (त्रस्माकं) 'खनुः' 'कात्' (पुत्रीऽस्त)। की दृत्रः?—तनयः, चैारस इत्यर्थः। पुत्रसामान्यसः 'सनु'-बन्देने।कलात् दत्तपुत्रादिव्यादत्तये विशेष-बाची तनयब्रम्दः प्रयुच्यते, 'विजावा' (विविधानां जनविता) । हे 'त्रग्ने', 'ते' (तव) 'सा' 'समितः' (तथाविधानुगद्युद्धिः) 'त्रक्षे' 'भूतु' (त्रसास भवतः)।

श्रथ दितीबामाइ,—"श्रयं ते येशिर्श्वतिये यते जाते। श्ररोत्त्रथाः। तं जामनग्न श्रारोहाथा ने वर्द्ध्या रियम्(१०)" इति। हे 'श्रग्ने', 'श्रयम्' (रष्टकारूपः पदार्थः) 'ते' (तव) 'बंगिः' (सत्पत्तिहेतुः) 'स्वित्यः' (स्रतुकास्त्रोत्रः स्त्रीपुद्ध- क्कुमतुखः) इति,'चतः' (योगेः) 'वातः' (यत इष्टकारूपाद्त्यञ्जः) लम् 'त्ररे च्याः' (दोप्तिमानसि)। हे 'त्रग्ने', 'तं' (तथाविध-सिष्टकारूपयोगिं) 'जागन्' (जायमानः) सन् 'त्रारोद्ध' (प्राप्नृद्धि) । 'श्रथ' 'नः' (ऋसाकं) 'रचिं' (धनं) 'वर्डूय'।

कर्यः, 'एवं पञ्चाचिद्सि परिचिद्सि रति समीची तिरञ्जी वा दे' इति । उपद्धातीत्वनुवर्त्तते । प्रथममन्त्रपाटस्त,-"चिर्सि तया देवतयाऽश्लिरखर्भुवा घोद^(११)" इति। भागान् चिनाति बन्याद्यतोति 'चित्'। हे इष्टके, लं 'चिद्धि'। यचा देवतवा ममभिमन्यते*, 'तया' 'देवतया' ऋनुग्टहोतस्तं 'भुवा' (खिरा भूखा) 'धोद' (चनितंह)। तच दृष्टानाः,—'चिक्करखत्' (चिक्किरो निरूपहितेष्टका यथा भुवा भवति तदत्)।

दितीयमन्त्रपाठस्त,-"परिचिद्सि तथा देवत्वाऽक्रिरसह भुवा सीद्^(१९)" इति । 'परि' भागांश्विनाति सन्पाद्यतीति 'परि-चित्'। श्रेषं पूर्ववत्। 'तथा देवतथा' इत्यादिवाकां पूर्वे व्यथुप-धानमन्त्रेषु प्रयोक्तयं। तथा च सचकारेणेकं, 'तथा देवतथा यमतो द्धाति' इति ॥ छक्तेषूपधानमस्त्रेषु, 'श्रयः, सा श्रीमः' रत्यारभ्य 'त्रथा ने। वर्ड्या रियम्' इत्येतदनां वजुचनेक स्मम।

तदिदं प्रश्नंगति,—"प्रयः सा प्रश्निति विश्वामित्रस सकं भवत्येतेन वै विश्वामिनोऽग्नेः प्रियं धामावाद्याग्नेरेवेतेन प्रियं धामावद्यभे" (५।२।३ ४०) इति।

^{*} ब्रांभमन्यसे इति पाठे। भवितुं युक्तः।

तिसन् सने चतस्भिराद्याभिर्धिन्भः साधिमिष्टकापधानं विधन्ते,—"कृन्दोिभेर्य देवाः स्वगं सोकमायम् चतसः प्राचीदपदधाति चलारि कृन्दाः सि कृन्दे।भिरेव तद्यजमानः सुदने सोकमेति" (५।२।३%०) रति। कृन्दे।युकाभिस्ततस्भिर्ध्वग्भिदपधायेत्यधासारः। देववद् यजमाने।ऽपि कृन्दे।युक्ताभिर्ध्वन्भिस्वतस्र दष्टकाः प्राग्या उपदधात्।

यथ स्कारतान्थां पश्चम-पष्ठ-मन्त्रान्धासुपरितनयनुन्धां श्व साधिमध्ने प्रधानं विधन्ते,—"तेषां सुवर्गे स्नोकं यतां दित्रः समग्रीयना ते दे पुरस्तान् समीची स्वपाद्धत दे पश्चात् समोची स्वपद्धाति तिभित्रे ते दित्रो दृश्चन् स्व दे पुरस्तात् समीची सपद्धाति दे पश्चात् समीची दिशां विधन्धे" (५।२।२२०) द्ति। यदा भतस्त दृष्टका स्वपधाय 'ते' (देवाः) स्वगं 'स्नोकं' मन्स्वन्ति, तदा 'तेषां' सम्बन्धिन्था 'दित्रः' पासकाभावात् 'समझीयना' (सम्बक् विश्वीर्णा स्वभवन्), दिम्बर्त्तन्यः प्रजाः विश्वसा श्वभवित्रयर्थः; तत्रा श्वदिति देवाः 'पुरस्तात्' दित्र स्वग्धां 'दे' दृष्टके,'पञ्चात्' स यजुर्थां 'दे' दृष्टके 'स्वपाद्धत'। 'तािभः' सतस्विति रिष्टका भः 'ते' (देवाः) 'दिन्नः' 'दृश्चन्' (दृद्वीकृतवन्तः)। तथा यक्षभाने।-ऽप्यपद्धात्।

त्रय पूर्वस्पितास्ततस्य ददानीस्पित्तास्तस्य मिसिला पुनः प्रशंसति,—"त्रथो पन्नवो वे हन्दाः सि प्रशूरेवासी सनीचा दभात्यशावुपदधात्यशाचरा गायची गायचे। द्वियं सोकमञ्जसा चिनुतेऽशावुपदधात्यशाचरा गायचो गायचो सुवर्षे सोकमञ्जसा वेद सुवर्गस्य लोकस्य प्रजाती" (५।२।३४०) रति । दिशां विभारवाबापधानं पूर्वमुक्रम्, चपि च क्रव्यमां पश्चप्राप्तिहेत् चेन यग्रह्मपत्राच्छन्दोयुक्ताभिर्चग्भिर्पधानेन 'समीपः' 'पत्रून्' सम्पादयति। उपरितनाभां दाभ्यां सद चहलेन गायनीनाम्यं। मुखबलेन गायनीयमद्धः 'त्रश्चियावान्' पश्चि, 'तं' सर्वे 'चिरुते'। किञ्च गायत्राः सर्गसेकाकाभिश्ववात् तसाम्यं सर्गा-भिज्ञानाच सम्बद्धते।

क्यः, 'त्रविष्टं त्रवीदत्रभिक्षीकं प्रवाभिः प्रव्हाद्वति क्रीव'-एक ता श्रम सुद्दोक्त इति दार्था-दार्था मन्त्राभामे-केका स्रोकं-प्रवास्पद्धाति' इति । तत्र प्रथमामा र,—"स्रोकं श्च किहं प्रकाची बीद जिवा लं। रुद्राग्नी ला बृह्स्पतिरस्मिन् थानावसीषदन्^(६६)'' इति । हे इष्टके, 'स्रोकं' (गार्हपत्य वयनार्थे देत्रे पूर्वीकाभिरिष्टकाभिरनाकान्ममविष्ठष्टं स्थानं) 'प्रव' (पूरच); तथा 'सिद्रं' 'पृष' (दयोरिष्टकयोर्मधे किश्वदिप हिद्रं यथा न दुस्तते, तथा 'एष' (पूरय) श्रत्यमां श्विष्टा भवेत्यर्थः । 'श्रयो' (ऋषि च) 'लं' 'ब्रिवा' (ब्रान्ता) मतो 'सोद' (तिष्ठ)। 'हक्साग्री' 'बृष्स्यतिः' चेखेते देवा 'ऋसिन्' 'चीनी' (म्हाने) लां 'चरीषदम्' (साहितवन्तः)।

ष्ट्रय दितीयामार,—"ता प्रस्य सुद्दी रसः सामप्र मीयनि प्रश्नयः। वनान् देवानां वित्रक्तिव्वा राचने दिवः(१४)" इति । 'दिवः' 'रेश्चने' (खर्गस प्रकाशके) 'ग्रस्थ' 'असान्' (ववमानस वकानि निमित्तभूते) यति 'देवानां' यनिभन्धे तिसन् सने चतसभिराद्याभिर्धिन्भः साधिमिष्टकापधाणं विधन्ते,—"इन्दोिनेय देवाः स्वगं सोकमायम् चतसः प्राची-दपदधाति चलारि इन्दाः सि इन्दे।भिरेव तद्यजमानः स्वनं सोकमेति" (५।२।३%०) रति। इन्दे।युक्ताभिस्तस्धिर्ध्वग्भि-दपधाचेत्यधासारः। देववद् यजमाने।ऽपि इन्दे।युक्ताभिर्धन्भि-स्वस्त दष्टकाः प्रागया उपद्धात्।

श्रथ स्तागतान्यां पश्चम-पष्ठ-मन्त्रान्धासुपरित्तवयनुन्धां श्व साधितिष्टकीपधानं विधन्ते,—"तेषां सुवर्गे कीकं यतां दिन्नः समझीयना ते दे पुरस्तात् सभीची खपादधत दे पश्चात् समोचो ताभिर्वे ते दिन्ना षुष्ट्र इन् क्ष्यु दे पुरस्तात् समोचो खपदधाति दे पश्चात् समीची दिन्नां विधत्वे" (५।२।२११०) इति। यदा भतस्त दृष्टका खपधाय 'ते' (देवाः) खर्गे 'क्षोकं' मच्क्किन्त, तदा 'तेषां' सम्बन्धिन्थो 'दिन्नः' पासकाभावात् 'समझीयन्ता' (सम्बक् विज्ञीणां श्वभवन्), दिम्बर्त्तिन्यः प्रजाः विक्रका श्वभविद्यर्थः; तन्त्रा श्वदिति देवाः 'पुरस्तात्' दिन्नि स्वगुन्धां 'दे' दृष्टके,'पश्चात्' च यजुन्धां 'दे' दृष्टके 'खपादधत'। 'ताभिः' चतस्वभिरिष्टकाःभः 'ते' (देवाः) 'दिन्नः' 'दृष्ट्र इन्' (दृद्वीकृतवन्तः)। तथा यक्षभावेा-ऽप्यपदधात्।

त्रय पूर्वसुपितास्तमस्य ददानीसुपितास्तसस्य मिसिला पुनः प्रशंसति,—"त्रथो पत्रवे। वे हन्दाः सि प्रशूरेवासी सनीचा दभात्यष्टावुपदभात्यष्टाचरा गायची गायचे। सुवर्गे सोकमस्रमा चिनुतेऽष्टावुपदभात्यष्टाचरा गायचो गायची सुवर्गे सोकमस्रमा वेद सुवर्गस्य लोकस्य प्रजाती" (५।२।३२०) रति । दिशां विधारसासेपधानं पूर्वमुक्तम्, यपि च क्रन्द्रसां पद्मप्राप्तिहेत् सेन पद्मप्तास्त्रकृत्ये पद्मप्तास्त्रकृत्ये पद्मप्तास्त्रकृत्ये पद्मप्तास्त्रकृत्ये पद्मप्तास्त्रकृत्ये पद्मप्तास्त्रकृत्ये पद्मप्तास्त्रकृते पद्मप्ति । स्वपरितनाभां दाभ्यां सह प्रष्टलेन गायनीसाम्यं । मुख्यक्तेन गायनीसम्बद्धः 'म्यार्थियान्' प्रस्ति, 'तं' सर्वे 'चिरुते'। किञ्च गायन्याः स्वगंदीकाभिश्वसात् रह्माम्यं स्वर्गाः स्वर्गानाय सम्बद्धते ।

क्याः, 'मानिष्टं मयोदमिन्धां प्रणािनः प्रकादयति क्षेत्रं-एष ता यस सददोक्त इति दाश्यां-दाश्यां मन्त्राश्यामे-क्षेत्रां स्रोतं-एषामुपद्धाित' इति । तम प्रथमामा इ,—''लोकं एष किहं प्रणायो शीद विवा तं । इन्हाग्री ता नृक्त्यति इसिन् योगावसीषदन्^(१६)'' इति । दे इप्टने, 'स्रोकं' (गार्चप्रयचनार्थे देन्ने पूर्वे।माभिरिष्टकािभरनामान्तममनिष्टं स्थानं) 'पृष्प' (पूर्प); तथा 'क्षिहं' 'पृष्प' (दयोरिष्टक्योर्भध्ये किश्चिद्धि किहं यथा न कृत्यते, तथा 'पृष्प' (पूर्य) प्रत्यनां श्विष्टा भनेत्वर्थः । 'स्रथो' (प्रिष्प च) 'तं' 'व्रिवा' (प्राना) सतो 'सोद' (तिष्ठ) । 'दन्हाग्री' 'नृक्त्यतिः' चेत्रेते देवा 'मस्मिन्' 'योनी' (म्नाने) तां 'स्रधीवदन्' (सादित्यन्नः) ।

श्रय दितीयामाइ,—''ता श्रस सहदी इसः वेशम श्र बीबन्ति प्रश्रयः। बन्धन् देवानां विश्वस्थित्वा रेश्चने दिवः^(१४)" इति । 'दिवः' 'रेश्चने' (स्वर्गस्य प्रकाशके) 'श्रस्य' 'अन्यन्' (वक्रमानस्य बन्धनि निमित्तस्थते) स्ति 'देवानां' सन्धिन्धे 'विश्वः' (प्रजाक्षाः) 'पृत्रयः' (श्रव्यगेसदृश्वाः) 'स्ट्दे इसः' (स्ट्यांक्स दे इधिश्वः) 'ताः' दृष्टकाः 'से मं' 'श्रीपन्ति' (पकं कुर्वन्ति)। कदा ?- श्वां - 'चिषु' (श्वा समन्तात् यानि प्रातः सवना-दीनि, तेषु), निरम्तरं से मैक इतव एता दृष्टका दृष्ट्याः।

एतकाकादयसाध्यमुपधानं विधक्ते,—"चयोदय स्ने नं पृषा खपदधात्येकविश्रमतिः सम्बन्ते प्रतिष्ठा वा एकविश्रमः प्रतिष्ठा गाईपत्य एकविश्रमस्येव प्रतिष्ठां गाईपत्यमनु प्रतितिष्ठति" (५।२। १ %) इति । स्ने कम् इष्टकानाकान्तमविष्ठ देशं पूरयन्तोति 'स्नोकं-एषः',—एतस्नामका इष्टकास्त्रस्योदश्रम्भाका उपद्ध्यात्। एवं यित पूर्वे।काभिरष्टभिः यह 'एकविश्रतिः' 'सम्बन्ते'। तथा यति 'एकविश्रसोमो स्था स्नोमान्तराणां निष्ट्रादीनां 'प्रतिष्ठा', तथा निष्टांधार्था 'गाईपत्यः' श्रपि श्राह्यनीयादीनां 'प्रतिष्ठा'। तदुभय-'प्रतिष्ठाम्' 'श्रनु' यश्रमानः 'प्रतितिष्ठति' इति।

वेदनं प्रशंसित,—"प्रत्यश्चिं चिक्यानिस्तिष्ठित च एवं वेद" (५।२।३ भः) इति। 'चिक्यानः' (चयनं क्रतवान् भ्रत्वा) प्रति-तिष्ठतीत्यर्थः। एवं निक्पिता चेयमेका चितिः।

र्रहृशोनां चितोनामुपर्यश्येभावेन वर्त्तमानानां पश्चसङ्खां विधत्ते,—"पश्चचितीकं चित्तीत प्रथमं चित्तानः पाष्क्रो यश्चः पाष्क्राः पश्चवे यश्चमेव पश्चनवक्त्र्ये"(५।२।३ श्व॰) इति । 'प्रथमं' 'चित्तानः' (प्रथमवारमग्रिचयनं कुर्वन्) यश्चमानः 'पश्चचितीकं' (पश्चमञ्चाका श्रनन्तरेक्ताश्चतयो यस्त्राग्नेसादृशं) 'चित्तीत'। धानादिपयसान्तेः पश्चभिर्चविभिर्चक्रवात् 'पाष्क्रो यश्चः'। सपुक्तिश्चतुर्भिः पादेश्च 'पाक्काः पत्रवः'; एवं चयनं कता 'यश्चं' 'पग्रुन्' च प्राप्ताति ।

दितीयवारमग्निषयमं खुवंतस्य सङ्घां विधन्ते,—"चिचितीकं चिचीत दितीयं चिच्यानस्तय इ.मे स्रोका एस्वेव खेरिषु प्रति-तिष्ठति" (५।२।३% ०) इति । 'दितीयं' (दितीयवारम्) ।

हतीयवारमग्निष्यमं खुर्वतः यद्भां विधत्ते,—"एकचितीकं चिन्नोत हतीयं चिन्नान एकधा व सुवर्गा खेक एकहतेव सुवर्गे खेकमेति" (५।२।२५०) इति । 'एकधा' (एकप्रकारः), सुर्खेक-खाभाष्यात्, खर्गे प्राप्तस्य तं द्वेतुकर्मचमाप्तेः पूर्वे पुनराहत्त्यभावाच । 'एकहता' (एकगुषक्या) चित्या, चिगुष्यत-पञ्चगुष्यववर्णितया ।

पांसप्रचेपं विधन्ते,—"पुरीयेषाभ्यूहित तसात् माश्रवेगास्ति स्वन्तं" (५।२।२%) इति। यसादिस्यमाः कठिवा इष्टकाः मांययमेन खदुना पांसना 'ऋभ्यूहित' (क्वाद्वित)। 'तसात्' स्रोकेऽपि 'मांसेन ऋस्ति क्रुस्ं।

बेदनं प्रश्नंसित,—''न दुर्श्वमा भवति य एवं वेद'' (भू। १। १॥ १ १०) इति।

चितिगतां पुरोषगता स बद्धां मिखिला प्रशंसति,—"पस चित्रयो भवित पश्चिमः पुरोषेरभ्यू इति दश्च सन्पद्यन्ते दश्चाचरा विराइमं विराधिराच्येवासासे प्रतितिष्ठति" (५।२।३१०) इति । एकां चितिं सला पुरीषेशाच्छादसेत्, तस्या उपरि दितीयां चितिं सला तामचाच्छादसेत्,—इवं चितिपश्चकेन पुरीषपश्चकेन दश्यक्षासम्पन्ने विराह्कन्दे। दारेषासे 'प्रतितिष्ठति' इति ।

श्रव विनियोगसङ्गुदः,—

त्रिपोद्धन्ति चितिखानम्, त्रग्नेस्त सिकतां वयेत्।
सञ्ज्ञानमूर्वां निवयेत्, सं या, संस्कते दयम्॥
त्रयं,—चतस्भिः प्राचीरिष्टका त्रादधाति हि।
दज्रं,—दार्था पुरसात् दे, चिद्वास्थां पश्चिमदयम्॥
स्रोकं स्रोकं-पृष्ण-दास्थां मन्त्रा त्रच चतुर्द्व ॥

इति सायनाचार्यविर्चिते माधवीये वेदार्थप्रकान्ने कच्छ-यजुःमंहिताभाय्ये चतुर्थकाण्डे दितीयप्रपाठके चतुर्थाऽनुवाकः॥ ०॥

सित्रं सर्जस्येयाः सिम्प्रयो राष्ट्रिष्णू सुमन्ख-माना। इष्मूर्जम्भिस्वसाना सं वां मनाः सि सं वृता समु चित्तान्याकरं (१)। अमें पुरीष्याधिपा भवा त्वनः इष्मूर्जः यर्जमानाय धेहि (१)। पुरीष्यं स्वमंग्रे रेथि-मान् पृष्टिमाः असि। शिवाः कृत्वा दिश्ः सर्वाः स्वां यानिमिहासंदः (१)। भवतं नः समनसी समाकसा ॥

श्रुपेसी मा युज्ञः हिश्सिष्टं मा युज्ञपंतिं जात-वेदसी श्रिवी भवतमृद्य नेः(*)। मातेव पुणं प्रशिवी परीष्यमग्निः स्वे यानावभाष्ट्या। तां विश्वेद्वेक्द्रंतु- भिः संविद्यनः प्रजापितिर्विश्वकर्मा विमुच्चतु । यद्य पारे रजसः शुक्रं ज्योत्रिज्ञायत । तं नेः पर्वद्ति दिषोऽग्ने वैश्वानर् खार्हा (१) । नमः सुते निर्श्वते विश्वकृषे ॥ २॥

श्रुयस्मयं विश्वता ब्रुश्मेतं युमेन त्वं युग्या संविदा-नेत्तमं नाक्मिधिराष्ट्रयेमं । यते देवि निर्म्धित-राब्बस्य दामं ग्रीवास्वविष्ट्रयं। दूदं ते त्विष्याम्या-युषे न मध्याद्या जीवः पितुमेबि प्रमुक्तः । यस्या-स्ते श्रुस्याः क्रूर् श्रासं जुडे। ग्रेषां बुन्धानं। मबसर्जनाय। स्निरिति त्वा जना विदुर्निर्म्धितः॥ ३॥

इति त्वाइं परिवेद विश्वतः (१) । श्रमुन्वन् यंश-मानमिक स्तेनस्येत्वां तस्तर्स्याम्वेषि । श्रन्यम्सा-दिक्क सात्रं इत्या नमें। देवि निक्तं ते तुभ्यमस्तु (१) । देवीम् इं निक्तं तिं वन्दंमानः पितेव पुषं दंसये वची-भिः । विश्वस्य या जार्यमानस्य वेद् शिरं -शिर्ः प्रति सूरी विषष्टे (१९) । निवेशंनः सुक्रमेने। वस्तेनां विश्वा रूपाभिषष्टे ॥ ४॥

श्वीिभः देव इंव सिवता स्त्यधुर्मेन्द्रे। न तेस्थै। सम्रे पंथीनां (११)। सं वर्षा दंधातन् निर्माद्यावान् क्षेशातन। सिष्धामेदा अवटमुद्रिणं वृयं विश्वाद्यां स्त- मर्षितं^(१२)। निष्कृताद्दावमव्टः स्वर्षः स्वेष्णनं। खद्रिकः सिच्चे अक्षितं^(१३)। सीर्ग युष्क्रन्ति क्वयें। युगा वितेष्वते प्रयंक्। धीर्ग देवेषु सुमुवा^(१६)। युगक्त-सीरा वि युगा तेनात कृते यानी वपतेषः ॥ ५॥

वीर्जं गिरा चं मुष्टिः समेरा मसंद्यो नेदीय दत्मुख्या प्रक्रमायंत्र । बार्म सं प्रवीरवर सुमेवर सुमेतित्सं । बदित्मुं वित् गामविं प्रक्रमें प्रविदेश प्रविदेश प्रक्रित गामविं प्रक्रमें प्रविदेश प्रविदेश प्रक्रित गामविं प्रक्रमें प्रविदेश प्रक्रित गामविं प्रक्रमें प्रविदेश प्रक्रित मुनं मुनं प्रविदेश प्रक्रित मुनं प्रविदेश । कार्म मामक प्रविदेश प्रक्रित मुनं प्रविदेश मामक प्रक्रित प्रविदेश मामक प्रक्रित । क्रिक्त मामक प्रक्रित प्रविद्या प्रविद्य प्रविद्या प्रविद्य प्रविद्या प्रविद्या प्रविद्या प्रविद्या प्रविद्य प्रविद्या प्रविद्य प्रविद्य प्रविद्य प्

समीवसी। विश्वरूपे। विदुर्निर्फेतिः। श्रुभिष्टे। दुइ। मिषायु। दाविश्यतिश्व॥५॥

इति तैक्तिरीयसंदितायां चतुर्थवाद्धे दितीयप्रपाठके पच्चभाऽनुवाकः॥ ०॥

चतुर्चेऽनुवाके गार्थपद्याचनमुक्तम् । चच चच्चमेऽनुवाके मादननीयचवनार्थे भुवः कर्षपमुच्यते । कस्पः, 'बिमितमिति तद्यां चतस्भिद्वाः यजिवपति' इति । तच प्रथमामादः,— "विकार वद्मन्येचार विज्ञवै। राविष्यू समावसानी । रव-मूर्जमिस्वयानी यं वा मनाश्वि यं जना यमु विकान्याकरम्(१)" इति। येयं गार्चपत्यचितिः पूर्वामुवाकेऽभिष्टिता, तस्याम् खस्ता-प्रिनंनियपनवेखायां दावग्री सम्बद्धेते,--पूर्वसिङ्घाऽग्निरेकः, दिलीय-विद्वोऽशिरपर:। तावुभी बनोधेदमुखते। हे श्रशी, युवामुनै। 'बिमतं' (बङ्गते। भवतं, बङ्गता च 'बङ्गलेयां' (स्मान् यश्चस कस्पनं निष्पादनं कुरतं)। की दृष्ठावग्नी?—'सम्प्रियो' (सम्बन् परखरं प्रोतियुक्ता), 'राचिच्यु' (दीवामाना), 'सुमनसामानाः' (परसारं सामनसां प्राप्ता), 'इवम्' (त्रक्षम्), 'जजें' (रहं) 🔻 'मंतसामी'* (सम्बक् सन्वादयकीः) । 'वां' (युवयोः) 'मनांशि' (मनाजन्यान् सङ्ख्यान्) 'सम्'-'श्वाकरं' (सर्वत: सङ्गतानि करेासि)। क्या जतानि (कर्माकि) 'सम्'-'त्राकरं'। तथा 'चिक्तानि' (कर्मविषयञ्चानामि) 'सम्'-'त्राकरम्'।

त्रय दितीयामाइ,—"त्रग्ने पुरीकाधिया भवा तं वः । द्वमूर्जे यजमानाय धे दि^(२)" दति । दे 'पुरीक्य' (पांसुकुक्त), 'त्रंग्ने' (मिक्ति)भवाग्निक्क्ष्य), 'त्रंग्ने' 'त्रः' (ऋक्षाकम्) 'त्रधिवा' 'भव' (त्रधिकं पास्तविता भव)। तादुत्रकं यजमानायाकं रवञ्च यमाद्य।

^{*} कत्र 'सभिसंवसाने।' इति बाठो भवितुं युक्तः।

श्रय हतीयामाइ,—"पुरीयसमग्रे रियमान् पृष्टिमाः श्रवि। श्रिवाः कला दिश्रः धर्वाः खां योनिमिहासदः (१)" दति। हे 'श्रवे' द्वात्मक, लं 'पुरीखः' (पुरीवार्षः), 'रियमान्' (धनवान्), 'पृष्टिमान्' श्रपि 'श्रवि'। 'धर्वाः' 'दिशः' 'श्रिवाः' (श्रान्ताः) 'कला' 'दश' (चिता) 'सां योनि' (स्रकीयं स्थानम्) 'श्रासदः' (प्राप्नुहि)।

त्रय चतुर्थीमाइ,—''भवतं नः समनमे समोतसावरेपसे। मा यश्च हिश्सिष्टं मा यश्चपतिं जातवेदमे जिवा भवतमस्य नः(म)" इति । थोऽग्निः पुरातनः, यञ्च ख्यः, तो युवां 'नः' (त्रसान्) प्रति 'समनसे।' (समानमनस्को विप्रतिपित्तर्हिते।), 'समेतकसे।' (समाननिवासखाने।), 'त्ररेपमे।' (पापित्तरहिते।), यशस्य यशपतेस्र हिंगां 'मा' कुद्तम्। 'त्रस्य' (त्रसान् कर्मांक्) हे 'जातवेदसे।', 'नः' (त्रसान्) प्रति 'श्रिवे।' (श्रान्ते।) 'भवतम्'।

एतान् मन्त्रान् विनियुक्के,—"वि वा एते। दिवाते यख पुराग्नियंश्वेखायाः समितिमिति चतस्थिः संनिवपित चलारि रून्टाःश्वि इन्दाःश्वि खसु वा अग्नेः प्रिया तनः प्रिययैवेने। तनुवा सः प्रासि" (५१२।४ घ०) इति। अग्निं चिकीर्षतः पुरुषस्थ 'यस्य' पूर्वसिद्ध आहितः 'अग्निः', 'यस्य' 'खखायां' वर्त्तमान इदानी-न्नाने। श्वीः, 'एती' सभी परस्परं 'वि'-'दिवाते' (अहमेवा क्रत्या-धारो अत्यासं, न लिमित्योवं रूपो विदेषः। श्वतो विदेषपरिष्ठाराय 'संनिवपित' (ताबुभी संयोजयेत्)। श्रस्थादानादिषु नायश्वादि- क्रव्यमं साधनतात् 'हन्दांसि' 'त्रग्नेः' 'प्रिया तनूः', तथा सत्वव मन्त्रमतया चतुःमञ्ज्ञया चतुर्णां गायद्यादीनां छन्दमां मुद्धिसा-लात् 'प्रिययेव' 'तनुवा' सङ्गता यथा भवतसाथा 'सं'-व्रासनं क्तवान् भवति ।

प्रचममन्त्रगतस्य समितमितिपदस्य तात्पर्ये दर्जयति,— "विमितमित्वार तसाद्त्रज्ञाचा चच्र यमेति" (५।२।४५०) इति। यसाद्यं मन्त्रः सङ्गती भवतमिति त्रूते, 'तसात्' सोकेऽपि पुराहितरूपेष त्राद्वाचेन चनियरूपे। राजा सङ्गच्छते। यत एवान्यच अत्या खदाचतं, 'तसार् ब्राज्यको राजन्यवान्। तसार् राजन्थे। ब्राज्यस्वान्' इति।

तमेवरम्थे: सङ्गमं पुनः प्रशंसति,—"यत् सन्युख विचरति तसाद्त्रज्ञाका चर्च येति" (५।९।४ च ०) इति । यसाद्ग्रिद्यं संयोज्य तस्मिन् संयुक्तेऽग्री विचरणम् (उत्तरकासीनं विविध-मनुष्टानं) कराति, 'तस्रात्' खे।केऽपि ब्राह्मणचिषययाः संयुक्तयाः सतोः पञ्चाद् ब्राञ्चाचेन नियमितः चित्रयो विविधं ब्राच्तीरं राव्यपरिपासनं प्राप्नोति।

कर्यः, मातेव पुत्रमिति त्रिकादुखां निक्सः इति। पाठस्तु,—"मातेव पुत्रं पृचिवी पुरीसमग्निष्ट से वीगावभादसा। तां विश्वेदेवे र्चतुभिः संविदानः प्रजापतिर्विश्वकर्मा विमुश्चतु^(५)" दति। यथा खोके 'माता' 'पुनं' विभक्तिं, तथा प्रथिवी रूपा रयम् 'खखा' 'स्ने योगी' (स्निवायमभेषाने) 'पुरीस्थम्' एतम् 'चिं।' 'से योने।' 'प्रभाः' (विश्वक्ति)। 'ताम्' (उर्खा) 'प्रजा-पतिः' 'विमुचतु' (विद्यापात्रास्तुनां करेतिः)। की हृतः प्रजापतिः?— 'विभैद्देवैक्तिंतिः' च 'संविदानः' (ऐकमत्यक्तः), (विश्वं स्टि-रूपं कर्म यसामा) 'विश्वकर्मा'।

षसिकाने चतुभिरितिषद् तात्पर्वे द्रवेषति,—"चतुभिर्वा एतं दीषयिन स चतुभिरेव विमुच्या मातेव पुणं पृथिवी पुरोध्य-मित्याद चतुभिरेवैनं दीषयिला चतुभिर्विमुद्यति" (५।२४५०) इति। 'एतं' (यजमानम्) 'चतुभिः' पुरा गंस्कुर्गन्ति, 'चड्भि-द्यांच्यति वद्या चतव चतुभिरेवैनं दीषवित' इत्युक्तलात्। मतसादृष्ट्यजमानसम्बद्धीं 'स' उच्छोऽग्रिरणापि 'चतुभिरेष' विमाचनीयो भवति। चतो विमाचनसाधनेऽस्मिन् मन्ते चतु-प्रवागादीचाविमेरकसारेकसाधनलं सम्बद्धते। चयपि दोषा यजमानस्, विमाकसोस्यस, तथायभेदोपचारेष एकविषयन्तेप-म्यासः।

कथः, 'यद्क पारे रुजस इति वैचानर्थाग्निक्यमार्त्ते' इति । पाठसु,—''बद्क पारे रजसः ग्रुकं च्योतिरजायत । तकः पर्वदिति दिवाऽग्ने वैचानर् स्वाद्या^(१)'' इति । 'रजसः' (रजःबदुषक धूमक) 'पारे' (प्रवधाने) 'प्रस्क' (प्रग्नेः) 'ग्रुकं' (निर्मसं) 'यत्' 'च्योतिरजायत', 'तत्' (च्योतिः) 'दिवः' 'प्रति'

^{*} चात्र ''खे थे। तै।'' इति पाठः पुत्रवक्त इवाभाति । † सम्बद्धि इति सम्बद्धाः

(देव्वृनतिक्रम्य) 'नः' (श्रम्भान्) 'पर्धत्' (प्रीषयत्) । हे वैश्वानराख्य 'त्रग्ने'; लदीयं त्रिकां 'खाद्या' (सुषु श्वाक्रतम्)।

तमेतं सन्तं विनियुष्के,—"वैद्यानयां जिल्हामादने खद्यत्ये-वैनत्" (५।२।४५०) इति । वैद्यानरप्रस्दो बस्तास्ट्यस्तिः, वेषं 'वस्तानरी', "श्रष्ठं वैद्यानरे। भूला प्रापिनां देवमासितः" इति स्मतेजांठराग्निक्पस्य वैद्यानरस्य साद्यकारितात् तदीयसन्त्रेष वपानं जिक्यं सादृष्ठतं भवति ।

कस्यः, 'नैकंतिरिष्ठकाः क्रष्णाक्तिस्यस्यपकासाः विकाश् हकास्यमासन्दीद्यादाय दिण्णमपरमवानारदेशं गला नमः सु ते निकंत इति खठत इत्णे प्रदरे वाः विकां निधायं इति। पाठस्त,—''नमः सु ते निकंते विश्वक्षेप्रयस्तयं विषृता बत्यमेतं। बनेन लं यस्या पंविदानोत्तमं नाकमिर्धरोष्ट्येमम्^(०)" इति। हे 'निकंते' (दिण्य-पश्चिम-मध्यमिकतावानारदिगिभमानिगी-* देवते), 'विश्वक्षे' (बद्घविषक्षय्युक्ते), 'ते' (तुस्यं) 'नमः' श्वस्तु। 'श्रयस्तयं' (खोष्टनिर्मितं प्रद्वस्त्रावद्वद्य्) 'एतं' 'बत्यं' (खर्ग-प्राप्तिप्रतिबत्यकम्) 'इमं' (पापानं) 'विषृत' (विनाम्नय)। ततः 'लं' 'यसेन' (श्रयाना) 'यस्या' (ष्टिय्या) च 'बंविदाना' (ऐकमत्यं गता) सती इमं (यञमानम्) 'उत्तमं' 'नाकं', (वर्वसुद्धोपेतं दुःखमानरिहतं खर्गम्) 'श्रिधरोष्ट्य' (प्राप्य)।

अवादाइते खरे या दशका श्रीभिहतासा विधन्ते,-

^{*} दिग्रभिमानिनि इति पाठो भवितुं युक्तः। 2 c

"नै र्श्वतीः रुषणि सस्तवपका भविन निर्श्वती वा एतद्वानधेयं यमुषा निर्श्वती रूपं रुषण्य रूपेणेव निर्श्वति निरवदयते" (४।१।४ प्र०) इति । 'निर्श्वतिः' देवता यासामिष्टकानां ता 'नैर्फ्वतः', 'तुषा' इति 'यत्' तत् 'एतत्' निर्श्वतेः (राजसदेवतायाः) भागधेयम् । श्वत एवेष्टिप्रकर्णे 'रचसां भागेऽसि' इति तुषेपिवप्रमन्त श्राचातः । 'रूपं' च निर्श्वतिदेवतायाः 'रूपं', श्वतस्तदान नुकूस्याय दष्टकास्तुषपकाः रूप्यवर्णस्य कुर्यः, तथा सति श्रनु रूपेणेव भागेन 'निर्श्वतं' 'निरवद्यते' (निःसारितवान् भवित) ।

दिशं यन्येषा वे निर्श्वते दिक् खायामेव दिशि निर्श्वते निर्वदयते" (५।२।४ अ ०) इति ।

कल्पः, 'यन्ते देवी निर्श्वतिराववन्धेति विकाशासेनेनाः प्रव्हाद्य' इति । 'एनाः' (वच्यमाषमक्षेदपधेया इष्टकाः) । त्रर्थ-क्रमेषायं मन्त्रो वच्यमाणेश्यक्तिभ्य उत्तरभावी, पाठकमेष तु क्रमेशावी । तत्पाठस्तु,—"यन्ते देवी निर्श्वतिराववन्ध दाम ग्रीवा-स्वविचत्ये । इदं ते तिद्याम्यायुषा न मध्याद्या जीवः पितु-मद्धि प्रमुकः (मः)" इति । दे यजमान, 'ते' (तव) 'ग्रीवासु' (ग्रीवायाः समन्धिषु प्रदेशविश्वेषेषु) 'निर्श्वतिः' 'देवी' 'यत्' 'दाम' (स्वकीयं पाशम्) 'श्वविचत्ये' (विनाश्वितुमश्रकाम्) 'श्राववन्ध' (दृढ्ं ववन्ध), 'तत्' 'इदं' 'ते' दाम (लदीयं

^{*} सर्व्यक्षान् पुक्तने निक्टें तिरिति पाठे। न युक्तः।

गीवाक्यं पात्रं) 'विक्यामि' (विमुश्वामि)। तत्र विमेश्वनं लड्रोयस 'श्रायुवः' 'मधात्' श्रारम्य 'न' भवति, किन्तु झत्केऽखायुविः, 'श्रय' . (पान्नविमाकाननारं) लं 'जीवः' (चिरच्चीवी) यन् 'प्रमुकः' (वर्षे: प्रतिबन्धेर्विर्हितः) 'पितुम्' (चर्ष) 'मृद्धि' (भचय)।

कल्पः, 'तस्रेष्टकाभिः पात्रमभुपदधाति यसासे त्रणः क्रूर् न्नामन् जुद्दे।मीत्येताभित्तिसभिः पराचीरमः सृष्टा दिन्नापवर्ग तया दैवतं करोति' इति । तस्त त्रिकासः पात्रमभिसस्य क्रम्णा-भिरिष्टकाभिद्यधानं सम्पाद्येदित्यर्थः। तिस्तु प्रथमामाइ,— "यसास्ते त्रसाः कृर त्रायम् जुडेाखेवां बन्धानामवधर्जनाय। भ्रमिरिति ला जना विदुर्नि र्चतिरिति लाइं परिवेद विश्वतः(९)" रति । हे निर्फते, 'यखाः' 'ते' (तव) 'त्रखाः' 'क्रूर श्रासन्' (खय-रूपे श्रास्थे) 'जुरोमि' (श्राष्ठतिवदिष्टकामुपदधामि)। किमर्थे ?— 'एवां बन्धानाम्' 'त्रवसर्जनाय' (यजमानस्य परलोकप्राप्तिप्रति-बन्धकानाम् एषां पाप्रनां विनात्राय); 'यखाः' 'ते' (तव) मुखे प्रदरक्प दरिकक्पे . वा 'श्रहम्' दष्टकामुपद्धामि । 'ला' (तादृष्ठीं लां) 'जनाः' (जन्तुमाचरूपाः, वास्त्रमंस्काररहिताः) 'अमिरिति' 'विद्ः'। निर्ऋतिदेवीति,*—'श्रहं' तु श्रास्ताभिश्च-तवा लां 'विश्वतः' (सर्वतः, सर्वथा) 'निर्श्वतिदेवो'-इत्येव 'परिवेद' (सम्बक् जानामि)। तच ताविच्छितिरित्येतदेवता-नामधेयम्।

^{*} अन संस्ति। स्पारानुसारेब निर्द्धतिरितीति पाठी धर्मुं युक्तः।

² c 2

श्रवयवार्थसैवं श्रुत्पादनीयः, सर्वदेवसाधारणादेवयजनात्रिष्कृष्य स्वतन्त्रेष श्रद्रादे। स्वतिः प्राप्तिर्थस्याः सा 'निर्श्वतिः'। तदिदं प्रकारदयमभिप्रेत्य 'विश्वतः' दत्युक्तम्।

अय दितीयामाइ,—''यस्यकाम् यजमानिक सोनस्तां तस्करसानेवि। यत्यमसदिक सात रत्या नमा देवि निर्माते तुम्यमस्त्रं (१०)'' इति। हे 'निर्म्यते', यः सामयागं न कराति, सय इवियंत्रं न करोति, तादृत्रम् 'यस्यकास्' 'यजमानं' च 'द्रक्' (यहीतुमिक्क)। किञ्च यः सोनः (प्रक्रम्रचोरः), यस तस्करः (प्रकटचोरः) तथोः 'द्रत्यां' (गतिम्) 'त्रन्वेवि' (यनुगक्क); नता ताविष यहापेत्यर्थः)। सर्वथापि सोमं सुक्त्यो इवियंत्रेञ्च यष्टृभ्यः 'त्रसात्' 'यन्यम्' 'द्रक्क' (नासानिक्क)। 'सा' दुष्टविचा तव 'द्रत्या' (गतिस्यो)। हे 'निर्म्यते', 'देवि', 'तुभ्यं' 'नमः' 'चर्च'।

श्रय हतीयामाइ,—''देवीमइं निर्फातं वन्दमानः पितेव पुत्रं दसये वचेभिः। विश्वस या जायमानस्य वेद जिरः-जिरः प्रति स्दी विष्टें(१९)" दति। 'देवीं' 'निर्फातं' 'वन्दमानः' 'श्रइं' 'वचेभिः' (स्तिक्पैर्वाकोः) 'दसये' (उपचीषां स्वाधीनां करोमि)। हत्र दृष्टान्तः,—यथा लोके 'पिता' 'पुषं' (दुःश्रीसं वासं), दे तात दे वस—दृष्टादिभिद्यसासनवष्टनेः स्वाधीनं करोति तदत्। 'या' 'स्दी' (विदुषी) निर्फातः 'जायमानस्य' 'विश्वस्य' (सर्वस्र स्वेनतस्करादेः) 'श्ररः-श्रिरः' 'प्रति' (इस्रोनैकैकं जिरः प्रतिस्टक्स)

^{*} सकते इति J. य्॰ पाठः।

'वेर'-(लारोय-लारोयमपराधं जानामि)-इति 'विचष्टे' (विश्वेषेष कथयति)। तादृश्चीं निर्फातिरेवीं वन्दमानः इति पूर्ववास्त्रयः।

एतेर्मन्त्रेः साधिमिष्टवेषपथानं विधन्ते,—''खहात दिख उपद्धाति प्रदरे केतदे निर्द्धाया प्रायतनः ख एवायतने निर्द्धातं निर्वद्यते" (५।२।४ प्र०) दित । खहातं (खयमेव निष्पन्तं), न तु देवान्तरादानीय चयनखान द्व प्रचित्रं, तादुव्वे 'द्रिणे' (जवरें) वा, 'प्रदरे' (भ्रक्छिद्रें) वा, ह्यणाखिस दष्टका उपद्धात्। एतदुभयमेव निर्द्धायां 'प्रायतनम्' (खानम्), प्रति-खष्टमिति, तिसान्तिष्ठकोपधानं यदि कियते, तदा 'स्व एव' खाने तौ 'निर्द्धातं' 'निर्वद्यते' (देवयजनान्निष्कृष्य दमामवस्त्वापयित)।

त्रिकास्रोपरिजासमूलभागं परित्यस्य पात्ररूपमयभागमिन-सच्चावस्तितो यो देशसं देशमिष्टकोपधागस्य विधक्ते,—"त्रिश्च-सम्युपद्धाति नैकंतो वै पात्रः साचादेवेगं निकंतिपात्रात् मुद्धति" (५।२।४ अ०) द्दति। 'जिकाम्' 'त्रभि'-सन्ध (तत्पात्र-भागमिसस्य) अवस्थितो यो देशस्त्रनेपद्धादित्यर्थः। 'साचात्' (विसम्ममन्तरेष)। 'एनं' (यजमागम्)।

दृष्टकानां सङ्घां विधन्ते,—''तिस उपद्धाति नेधा विदिते। वै पुद्देश यावानेव पुद्दससात्रिष्टं तिसवयजते'' (५।२।४ प्र०) इति । अरीरस्य ऊर्द्धाधोमध्यमभागैः 'पुद्द्यः' 'नेधाविद्दितः', तादृष्टात् पुद्द्यादादाय निसङ्घा 'निष्टं तिम्' 'श्रवयजते' (विनावयति)। यदुक्तं स्वनकारेण, 'पराचोर्षः स्पृष्टा द्विणा-पर्वाम्' इति। ति विश्व ते निष्यं ते पराची वपद्धाति पराची मेवा सा विश्व ति प्रणुदते (५ । १ । ४ च ०) दित । दिच्छा मुखः पुद्य एका मुपधाय तते । दिच्छतो दितीयां, तते । दिच्छत स्तृतीयाम् 'उपद्धाति' दिति यत्, तदिदं पराक्षम् । एवं वित 'श्रसात्' देवयञ्चा वृ यञ्चानादा पराक्षम् । हता 'निर्द्ध ति' निः वार्यति ।

खपधानादू द्वें देवयजनं प्रति श्वागमनं विधत्ते,—'श्वप्रतीषमा-चिन निर्श्वता श्रन्तिष्ठिं" (५।२।४ श्व०) दति । 'श्वप्रतीषं' (पृष्ठते। दृष्टिमञ्जलेखर्थः)। तच 'निर्श्वत्या' श्वन्तार्द्वानाय (दर्शना-भावाय भवति)।

कत्यः, 'निवेत्रनः धक्तमने। वस्रमाभित्याद्वनीयं मार्चपत्यं चोपतिष्ठनो' रति। पाठन्त,—"निवेत्रनः सङ्गमने। वस्रमां विश्वा रूपाभिष्ठे प्रचीभिः। देव दव सविता सत्यधर्मेन्द्रो न तस्यो समरे पथीनाम्^(११)" दति। श्रयमग्निः, 'निवेत्रनः' (यजमानानां स्वस्वग्रहे निवेत्रयिता), 'वस्रनां' 'धक्तमनः' (प्रजापग्रह्ररूपाषां द्रयाषां प्रापकः) सन् 'श्रचीभिः' (स्वकीयाभिः क्रक्तिभिः) 'विश्वा रूपा' (सर्वाणि रूपाणि) 'श्रभिष्ठे' (श्रभितः स्वापयित)। तच दृष्टान्तः,—'सविता' 'देवः' 'द्रव' (यथा स्वर्थः सर्वाणि रूपाणि प्रकाश्रयति तदत्); तादृशोऽग्निः 'सत्यधर्मा' ('सत्यो'ऽवश्रसावी- प्रसोपते। 'धर्मा'ऽग्निहोत्रादिसच्ले। यस्त्रामे। 'सत्यधर्मा'), 'दन्दः' परमैत्रर्थवान् ; श्रत एव 'पथीनां' 'समदे' 'न तस्त्री' (परि-

^{*} पराक्षुखीमिति पाठी भवितुं युक्तः।

[†] खनग्रंभानि-इति पाठी भनितुं युक्तः।

पन्तिनां बच्चूषां समागमे पुरतः खयमागत्य न तिष्ठति, किन्तु सकीयनामग्रहणमाचेष ते प्रसायना इत्यर्थः)।

त्रनेन मन्त्रेण साध्यमुपस्तानं विधत्ते,—"मार्जयिले।पतिष्टन्ते मेधलाय" (५।२।४ प्र०) इति । 'क्रको देवी:' इतिमन्त्रेष मार्जनं कुला पद्मात 'निवेश्वनः' इति मन्त्रेष 'उपतिष्ठन्ते'। श्वनेनाप-खानेन चजमानी मेधी भवति।

उपस्तेयं विधत्ते,—"गार्षपत्यमुपतिष्ठको निर्कतिस्रोक एव चरिला पूता देवक्राकमुपावर्त्तनो'' (५।१।४% ०) इति। दक्षिण-पश्चिमावान्तर्रे 'निर्कं ति'-खाने चयनाचे 'चरिला' तते। मार्जनेन 'पूताः' यन्तो 'गार्चपत्य'-समीपरूपं 'देवलोकम्' त्रागक्कन्ति ।

मन्त्रगतामेकलमञ्जां प्रशंसति,—''एकचापतिष्ठन्त एकधैव यजमाने वीर्ये द्धति" (४।२।४ % ०) रति। 'एकधा' (युगप-दित्यर्थः)।

मन्त्रगतस वसुत्रब्दसार्थं दर्भयति,—"निवेत्रनः सङ्गमना वसनामित्याच प्रजा वै पश्चवा वसु प्रजाये वैमं पश्चिभः समर्द्ध-यनि" (५।२।४ %) इति।

त्रचाग्निचयनभूमेः परिमाणं विधत्ते,—"पुरुषमाचेण वि-मिमीते यज्ञेन वे पुरुषः मिमतो यज्ञपर्षेवैनं विमिमीते" (५।१। ५%) इति। पुरुषः प्रमाणं यस्य दण्डस्य मेाऽयं 'पुरुषमानः', तेन दण्डेन भूमेः प्रमाणं कुर्यात्। यज्ञाभिमानी देवेन समान-

^{*} यज्ञाभिमानि-इति पाठी भनितुं युक्तः।

प्रमाणा सीकिकः 'पुरुषः', 'पुरुषमात्रेण' विमिमीते सति यश्चस्य 'परुषा' (पर्वणा) प्रमाणेन 'एव' 'एनम्' (श्रव्रिं) विमीतवाज् भवति।

पुरुषो हि दिविधः, श्रवाग्याङ्गरुद्धंयाङ्गरेति, श्रतो विशेषं विधन्ते,—"यावान् पुरुष ऊर्द्धयाङ्गरावान् भवत्येतावदे पुरुषे वीर्ये वीर्येणैवैनं विभिन्नोते" (५।१।५% १०) दति। पुरुषेऽप्यूद्धं प्रवादितस्य बाहोदपरिस्थितं वस्त स्पृष्टुं न श्रकोति, श्रतः पुरुष-वीर्यस्य तावन्यास्ताद् वीर्येणैव मानसिद्धार्यम् ऊर्द्धपुरुषप्रमासं सुर्यात्।

वामद्शिषपार्श्वयोः पश्च्यानं विधन्ते,—''पश्ची भवति न श्चपश्चः पतितुमर्हति'' (५।१।५% ०) इति । पश्चभङ्गे स्ति श्रपशेष उत्पतितुमश्च्यावात् पश्चाकारस्थाग्रेश्त्यततः पश्चयुक्ततं कुर्यात् । यदुकं स्वकारेण, 'शतुर श्वात्मानि पृद्वान् विमिमीते पृद्धं दश्चिणे पश्चे पृद्धं पृद्धे पृद्धसुत्तरेऽरक्षिना दश्चिणते। दश्चिणं पश्चे प्रवर्द्धं यह्येवम् अत्तरत अत्तरम्' इति ।

तथोः परिमाणाधिकां विधक्ते,—"करितना पर्के द्राघी-याश्मे भवतस्त्रसात् पचप्रवयाश्चि वयाश्चि" (५।२।५ % ॰) दति। चतुर्विकत्यङ्गस्त्रथोऽरितः, तैन 'ऋरित्तना' 'पर्की' पुरुषात् दीर्घतरा सुर्यात्। यसादेवं, 'तसात्' से के पिषणेऽपि पच्चीः-रभिष्टद्भियुक्ता दृष्यन्ते।

पचथाराधिकां जं विधाय खड्पविरमाणं विधत्ते,—'व्याम-माची पची च पुच्चच भवत्येतावदे पुद्दे वीर्थं वीर्थंगसितः'' (५।२।५ प्र.) रति। बाङ्गोः प्रसार्वं 'बामः', तत्वच्याः पुष्क्यः च परिमार्चं, पुरुष्क्यवदारसामर्थेकः च तावलाद्वमग्निर्विचे समिता भवति।

मानसाधनं विधत्ते,—''वेषुना विभिन्नीत त्राग्नेयो वै वेषुः स्योनिलाय'' (५।२।५ त्र॰) इति । त्रिज्ञना प्रविष्टलात् 'वेषुः' 'त्राग्नेयः'; तथा त्राष्ट्रातम्,—'त्रिग्निवेशेऽनिलायत स वेषुं प्रावित्रत्' इति । श्रेगेऽग्नेः स्वकीयसानपहितलास वेषुना विमानं सुर्यात्।

कथः, 'सं वर्षा द्धातनित संप्रेयित' इति। पाठसु,— "सं वर्षा द्धातन निराहावान् इस्तेतन । सिद्धामहा अवटमुद्धिणं वयं विश्वाहाऽद्द्धमित्तम् (११)" इति । हे कर्षकाः पुरुषाः, 'वर्षा' (पर्ममयी रच्जुः (?)) 'सं'-'द्धातन' (सम्यक् खापयत) । तष् 'आहावान्' (ससीवर्दानामुदकपानार्थे द्रोषीवित्रेषान्) 'निः'-'इस्तेतन' (निष्पाद्यत) । 'श्वटम्' (स्देतिद्वर्षाय समादितं कूपं) 'सद्धं' (सहसोदकयुक्तं यथा भवति तथा) 'सिद्धामहैं (भतसगतपहोद्धर्षेन हेकयुक्तं प्रस्ववेषोपेतं श्ववटं सुर्मः) । कोहृत्रमवटं ?—'विश्वाहा' (सर्वेष्वयहःसु) 'श्वद्धं' (कूखपात-राहित्येनाहिंसितम्), 'श्वितं' (धर्मकाकेऽपि श्रीषाभावस्त्रष्यम्)।

कस्यः, 'निष्कृत्याद्यातमवटिमत्यवटादुदकमाद्यविषूत्विद्यति' दित । पाठन्तु,—''निष्कृताद्यावमवटः सवरत्रः सपेत्रमम् । एद्रिकः विश्वे त्रक्तिम्^(१४)" दित । काष्ट्रपावास्तिर्मितानां द्रोषीनामन्तः स्तितावकाश्रद्भेग चेऽयमवटः, तम् 'त्रवटम्' त्रदं 'सिक्के' (तमेदकं कारवामि)। कीदृष्ठमवटं?—'निक्कृताहावं' (पार्चेतु विक्कृत्रकेन निक्कृता निक्यादिता बाहावा द्रोक्षे वक्क खबटस्त सेऽयं निक्कृताहावः, तं); 'स्वरचं' (क्रूयादुदकमृद्धमुं ब्रोधना हृदा वरवाद्यर्भमयरक्कवे। बक्कासी स्ववरचसं); 'स्वेचनं' (स्वृष्ठ चेत्रुंचीग्यानि स्वकोद्धरक्षमधनानि पात्राक्ष सकासी स्वेचनसं); 'स्वितम्' (स्वदक्ष चनक्षितलेन चपक्षरहितम्)।

कस्यः, 'सीरा युद्धनीति दाश्या स्वीरं कुनिकः' इति ।
तय प्रथमामादः,—''सीरा युद्धन्ति कवयो युना वितन्तते प्रथकः ।
भीरा देवेषु सम्बा(१६)'' इति । 'कवयः' (खिकर्माभिष्ठाः)
'सीरा' (सीरं खाष्ट्रखं) 'युद्धन्ति' (सम्बीखुर्वन्तु) । तथा युगानि
निषु षद्सु वा कच्छाविषेषेषु चपेषितानि 'प्रथक्' 'वितन्तते'
(एकैकं विद्यार्थन्तुं) । कीदृष्ठाः कवदः ?—'धीराः' (धेर्ययुक्ताः)
भवस्या इत्यर्थः ; 'देवेषु' (देवताविष्वेषविषयेषु) 'सम्बया'
(सम्बं सम्बमिन्कनीति सम्बया (१)) ।

भय दितीयामाइ,—"युनक सीरा वियुगा तनात कते योगी वपतेद बीजं। निरा च मुष्टिः सभरा पर्स ने। नेदीव दस्युष्णा प्रक्रमायत्^(१९)" दति । दे कर्यकाः, 'सीरा' 'युनकः' (खाङ्गसं बीजयत); 'युगा' 'वि'-'तनीत' (युगानि विस्तारयत); 'क्रते'* (कर्यकेन योग्गे) 'इद' 'योनी' (प्रसिन् स्नाने) 'बीजं' 'वपत'। किस्न तद्वीकं 'गिरा' (प्राधीवंद्द्रेष मङ्गस्वाकोन) युक्रमिति

^{*} कतेन रति बार्श्यपुक्तकपाठेर न सम्बन्।

त्रेष: । 'मुहिः' (तत्र निव्यक्षः क्रकः) 'मः' (श्रवाद्ये) 'वश्ररा' (श्रवत्यक्षक्षभारयुक्षः) श्रवः । 'पर्वः' फर्कः 'मे।' 'नेदीय इत्' (श्रविन्य- तमनेव, (श्रव्यक्षक्षानिव्याद्यमेव श्रवत्") 'द्यद्या' (खबनवाधनेम दावेक) खूनं सत् 'मः' 'श्रायत्' (श्रवाद्यमीपमागक्कतः)।

मनाः, 'चाम्र चं पवीरविभितिदाश्वां क्रवितं' इति । तत्र प्रमामाइ,—''चाम्र चं पवीरविर्द्ध सुमेविर्द्ध सुमेविर्द्ध । द्वित् ह्वविति गामविं प्रफर्च स्वां पोवरीं। प्रखावद्र चवा इनम्(१०)'' इति । इवं 'चाम्र चं' ''उदित्कृषित', (उद्धृतानि प्रोद्ध कोष्टानि चया भवनितः, तस्वेव क्रवतः)। की हु मं खाम्र चं?—'पवीरवं' (वज्रवदितिती स्त्र चं), 'सुमेवं', (कर्षकः सुष्ठु चेवितः(?) प्रकां), चितित्वह्यं वक्ष्यं स्वाम्न-भेदात् कर्षकाणां नाद्ध प्रचास इत्यर्थः। 'सुमेतित्वह' (कर्षकः ग्रोभन-मिदमिति सन्यमानः 'सु' भितित्वहः' भूमो निचेष्मतत्वन विच्यित्व-गमनित्रेषः चया, तत् सुमितिस्तः । भूमेन कर्षकेन प्रखाधिको यति नवादिकं चन्नमनः प्राप्ते।ति प्रेषः। तत्र गैः चिविद्युभमं प्रसिद्धं, 'प्रफर्चा' (प्रचमवयक्ता कन्या), 'पीवरी' (पृष्टा मैः), 'प्रचा-वत्' (प्रयाखसमर्थम्) 'रचवाइनं' (रचं वादुं चोस्यममादिकं)। चदा हि क्रविः सम्दद्धा भवति, तदानीनेतत् सर्वे चन्नमानस्य स्वभम्।

चच दितीयामाइ,—"ग्रुनं नः फासा वितृद्नु अमिष्ट ग्रुनं कीनावा चभियन्तु वादान्। ग्रुनं पर्वन्या मधुना पर्याभिः

^{* &#}x27;चन्पवाचानियाद्यमेव चसत्' इत्ययमंत्रः '(चसत्यचभारवृत्तः) 'चनु' इत्यवनारं मवितुं युक्तः।

^{🖟 🕆} प्रवर्षेत्र इति टीमानुसारी पाठः वस्त्रमित्रं गुताः। 👑 🗇

द्रश्वावीरा द्राममधास धत्तम्(रण)" इति । 'नः' (श्रवाकी) 'द्रानं' (सुक्षं) यथा भवति, तथा 'फासाः' (साञ्चसमुवानि) 'भ्रमिं' 'नितुद्गु' (वित्रेषेष क्यम्तु) । 'कीनाजाः' (कर्षकाः) 'वादान्' (बसीवर्दान्) 'द्रानं' यथा भवति, तथा 'श्रभियमु' (स्रभितः प्रेरयमु, श्रभितः प्रेरयमो गच्चमु) । 'पर्जन्यः' (मेघः) 'द्रानं' यथा भवति, तथा 'मध्ना' (मध्ररदेन) युकैः 'पयोकिः' (स्रद्भैः) दृष्टिमतिस्त्रतिति श्रेषः । 'द्रामाधीरा' (बाव्वादित्याः), ध्रवां 'द्रानं' (सुक्षं) 'श्रक्षास्' 'धन्तम्' ।

'बीरा युद्धनि' इतिमन्त्रदयेन साध्यं साष्ट्रसयोगं, 'साष्ट्रसं स्वीरवम्' इतिमन्त्रदयेन साध्यं कर्षसञ्च समेष विधन्ते,—''यजुवा सुनक्ति यजुवा कवित खाटन्ये" (५।२।५ प्र ०) इति। 'यजुवा' सन्नेष। सोकिकन्तु कर्षणममन्त्रकमिनि खाटन्तिः।

वजीवर्षस्यां विभन्ते,—"कर्गवेन स्थित वज्रा श्वतव श्वतुभिरेवेनं स्वति" (५।१।५२०) रति। कच्छात्रयक्षेणाव-श्वितेषु चिषु युगेषु वश्वमानाः वट्यक्काका गावा बसीवरी श्रक्त साञ्चलका तत् 'वज्रावम्'।

प्यानारं विधनो,—"यत् दाद्यगवेन संवाहरेषेव" (१।२।५६०) इति । कच्छावद्रगतेषु वध्यमाना दाद्यसञ्चाका गावे वस्य साञ्चल तन् 'दाद्यगवम्', तेन चदि खपेत्, तदानीं दादक-भाषाताकेन 'संवाहरेषेव' कर्षणं क्रतं भवति ।

चयनसामस बाकस्रोन कर्षमात्री तदार्थितं विधन्ते,— "इयं वा ऋग्नेरतिदाचाद्विभेसीतद्विगुषमपस्रात् कष्टचाकस्य ततो वा दर्भा नात्यद्द्वलाष्ट्याक्रष्ट्य भवत्यका यनित्राद्याय'
(१।१।५ प०) दति। वाककोन हाष्टे खाने जीयमाने।ऽग्निर्श्वम्भवनां द्वति, तक्षात् 'त्रतिदाद्यत्' विभेति; 'वा' (भूमिः) तमित्दाद्यं परिवर्त्तुमृपायं विचार्यं किस्वित्रदेत्रे 'क्ष्टं' किस्वित् 'त्रक्ष्टं' दत्येवमेतत् 'दिगुक्यं' (अभयविधक्षानम्) उपायन्तेन 'त्रप्यत्'। खोकेऽपि प्रदारेष विकेऽवयवे त्रश्चियामीयेन वावान् वन्तापः, न तावानितरिक्षस्त्रवयवे दृष्यते। तस्मात् कष्टाक्ष्टभेदेन देगुक्ये यति त्रश्चित्रवेते। भूमिं नात्यनां द्वति। तस्मात् क्षाक्ष्यभेदेन देगुक्ये यति त्रश्चित्रवेते। भूमिं नात्यनां द्वति। तस्माद्वसे: 'त्रनित्रद्वाय' किस्वित् 'क्षष्टं', किस्वित् 'त्रक्षप्टम्' दत्येवं 'दिगुक्यं' कुर्यात्।

तदेतद्देगुष्यं प्रकारानारेष प्रश्नंवति,—"दिगुषं ला श्रश्चिमृद्यनुम्हतीत्याद्धर्यत्वष्टश्चाक्षष्टश्च भवत्यग्नेद्द्यत्ये" (५।२।५ श्र ०)
दित । गार्हपत्यादुन्तरवेदिं प्रत्यग्निप्रणयनकाले सिकताभिरेकं
पापमापूर्यं, तथ्योप।र पाचान्तरे 'श्रश्चिं प्रविष्य दिगुणेन पाचेषाग्नेदश्चमनं दृष्टं, तददचापि कष्टाक्षष्टभेदेन 'दिगुणं' स्नानम् श्रग्नेद्यमनयोग्यमित्यभिद्या श्राद्धः। तसाद्यमनाय 'दिगुणं' कर्मस्यम्।

श्रम कर्षवसमाप्ते र वदा वली वदानुत्यु अति तदानी मृत्यार्जनाय दिन्मिश्रेषं विधन्ते,—"एतावन्तो वै पत्रवा दिपादस्य सतुष्पादस्य तान् यत् प्राच अत्यु अद्भुद्रायापि दध्यासद्विका पिर्टेशो निधु वेद् यत् प्रतीचा रचाश्चि र न्यु रदीच अत्यु अत्येषा वै देवसनुष्याचाश्च श्रामा दिक् ता मेवना ननूत्यु अत्यया स्विमा दिश्र मृत्यु अत्यस्त्रीः वा श्रादित्यः प्राचः प्राचमे वैना ननूत्यु अति"

(५।१।५ %) इति। वसीवर्दप्रेरकाः कर्षका 'दिपाइः', वसीवरी: 'चतुव्यादः', 'तान्' उद्कृत्वलेन निःसारवेत् । इदः खदिक्साभीयात् प्राचां दिशि शागता निर्मच्छते। बछीवदीन् ग्रहीयामीत्यवतिष्ठते, श्रतस्तव निर्गमने 'ब्रह्राय' दला भवन्ति। दिचषद्यां दिन्नि पितरः स्तत एव तिष्ठको, तव निर्गमने ते भो 'निधुवेत्' (नितरामर्पयति)। प्रतीचां वर्षप्रेरितानि 'रचांबि' चवितष्ठको, तानि च पत्रून् 'इन्युः'। छहीची त बाधकरहितलात् 'देवानां' 'मनुष्याणां' च 'त्रान्ता'। चनः 'तामेव' 'चनु' 'एनान्' (बसीवर्राम्) 'अस्वित्'। 'मधा खसु' (प्रिप च) येवमुदीची, ताम् 'इमां' 'दिमं' प्रति चदा 'जसृत्रति', तदानीं प्राणक्ष्यम् चादित्यमनुत्सर्जनं कतं भवति । चादित्यका प्राचक्रपतं प्राच-खामिलार्वगनायम्। यत एवार्खकाष्डे समावायते,-"योऽसी तप्त्रुदेति, स सर्वेषां अतानां प्राणानादायोदेति" इति । चार्थ्यविकाचामनिन, 'त्रादित्यो इ वै वाद्यः प्राप उदवत्येव चीनं चाचुवं प्राथमनुग्रकानः' इति । तस चादित्यक्षेक्तरदिम्बर्त्तिमं पुरुषविश्रेषापेचया द्रष्टचं। मेरीः परितस्तत्तक्षेकेषु तत्तत्पाधिना वर्तने; तथा सति मेर्च प्रदक्षिणीवुर्वन् 'त्रादित्यः' ऋकादपे-चया या उदीची, तसामपागच्छति। तदानीं कसिंसियोद-पार्चेऽविक्तिरादित्यो विक्षाकाते; चाऽवं तेषां प्रत्युद्यः। एतसर्व-मभिप्रेत्य तकोत्तर्दिगुदयमङ्गीहत्य या दिक् प्रवस्ते।

कर्षणादूर्श्वमुत्तर्जनप्रकार उत्तः। त्रय कर्षणकास्रे कचिद्रिष्टेन उच्यते। कव्यः, 'पुच्काच्किरोऽधिक्वपति कामं कामदुवे धुच्हेति ग्रदिषयमावर्त्तंथंखिखिखिखाः योताः यश्रहिताः छवति मध्ये मंभिद्या भवित दिख्यात्पचादुत्तरसाहिष्याचे त्रोणेदत्तरम् षश्यमुत्तराचे दिख्यम्' इति । पाठस्तु,—''कामं कामदुचे धुक्क मित्राव वद्याय च । इन्हायाग्रये पूष्णे त्रीपधीश्वः प्रजाश्यः('९')'' इति । काम्यन्त इति कामाः भीगाः, तान् देशिय सन्याद्यतीति कामदुचा चाङ्गचपद्धतिः । हे 'कामदुचे' (मित्रादीनां 'कामम्' (त्रपेष्टितं भोगं) 'धुक्क' (सन्याद्य) ।

कर्षणे प्रकारविशेषं विधन्ते.—"तिस्रस्तिसः योताः हषति चित्रतेव यश्चमुखे विपातयति" (५।२।५ श्र. १०) इति । साङ्गस-पद्भतिः 'यीता', पुष्कादारभ्य त्रिरःपर्यन्तं 'तिस्रः यीताः क्रवति'। तथा दिष्णात्पचादारभ्य उत्तरपचपर्यनं तिस्रः वीताः क्रवेत्। तथा दिष्णस्याः श्रेणेरारभ्य उत्तरांसपर्यनं तिस्रः वीताः क्रवेत्। तथोत्तरस्याः श्रेणेरारभ्य दिष्णांसपर्यनं तिस्रः वीताः क्रवेत्। एवं द्वादत्र 'वीताः' सम्बन्ते। एवमा-कृतवा निस्क्राया निष्ठत्सोमनेव यश्चप्रारस्थे विस्तार्यति।

कत्यः, 'घृतेन योतेति योतामाराखान्यभिम्बत्तते' इति। पाठकः,—''घृतेन यीता मधुना यमका विचैदैवैरनुमता मदिः। कर्जखती पयया पिन्यमानास्मान्त्वीते पययाभ्यावदृत्खं(र॰)" इति। इयं 'यीता' 'मधुना' (मधुरेष) 'घृतेन' 'यमका' (यमन्याद्रीकृता); चत एव 'विचैदैवैः' 'मदिः' यमीचीनेयमित्यक्ती-द्यता। या पुनः 'कर्जखती' 'पयया पिन्यमाना' (जलेनाप्यायिता) वर्त्तये। हे 'यीते', जलेनाप्यायिता लं 'चस्मान्' प्रति 'च्रभान् वदृत्खं' (चिनत च्रादृत्ता भव)।

श्रन विनियागसंगरः,—

यं, गार्डपत्य चखात्रं चतुर्भिर्निवपेदमुम्।
माता, त्रिकादुखां मुद्दोत्, यद, त्रिकापरिग्रहः ॥
नमा, नैकंतदेशे तिक्कां त्यव्यं, चित्तत्यतः।
त्रिकावालेन याः कृष्णा रष्टकान्कादयेदमूः॥
चखाक्तिभिस्तिस एताः कृष्णा जपद्धाति हि।
निवे,ऽग्रिमुपतिष्ठेत, यं व, यम्प्रेव्यतीतरान् ॥
निकृताहा, ऽवटे विद्येत्पीरा,-दाश्यां इखापंषम्।
खान्नु,-दाश्यां कृषेत्, काममावर्त्तेत प्रदिष्णम्॥
घृते,ऽनाराखे संस्पर्भ द्रति मन्नास्तु वित्रतिः॥

त्रव मीमांबा,—हतीयाधायस दितीयपारे चिनितम्। (त्र०२)
"एन्द्रा निवेत्रनेत्वित्रं गार्डपत्वं भवेदिति।
प्रकास्रो मुख्य इन्द्रो वा गोषो? मुख्यस् पूर्ववत्॥
एकस्र गास्रताप्राये मन्त्रस्वानुवादतः।
गास्रतातेऽन्यपस्थाने मन्त्रः शुद्धा नियुच्यते॥

प्रशिचयने 'निवेशनः यङ्गमनः' द्रत्यादिका काचिरैक्री ऋक् समाचाता; तखा उत्तरार्द्धे 'इन्ह्री न तखीं' इति विद्यमानलात् तनान्त्र इन्द्रविषयः। ब्राह्मणश्चीवमाखायते,—'निवेत्रनः सङ्गमना वसनामित्येन्द्रा गार्चपत्यमुपतिष्ठते' इति ; एतेन ब्राह्मचेन गाईपत्ये विनियुच्यमाने । वे प्रकाशयन् मुख्यमिन्दं प्रकाशयति । मुखायेन्द्रः खर्गाधिपतिः सद्दत्वातः, तचैवेन्द्रत्रब्द्धः इद्वात्। गीषस्त्रिन्हो गार्षपत्यः, तस्त्रीयर्वगुषचागेन यज्ञयाधनसेन मुखेष्ट्रबदृत्रतात्। तत्र पूर्वन्यायेन शीव्रप्रतिपत्त्या मुख्येन्द्रे मन्त्रेक प्रकाशिते यति मन्त्रज्ञाञ्चर्ययेविंशंवादं वार्यितुं गार्चपत्वश्चन्देनः मुक्केन्री गार्चपत्यदेशी वा सचणीयः। इति प्राप्ते श्रूमः,--इन्द्र-गाईपत्ययोत्न्यतरस्य गाँषकेऽवस्यभाविन सति त्राद्याणवाकास्य विधायकलाद्प्राप्तार्थलेम, विधा सचणाया श्रन्यायलात् प्राप्तार्थ-लेनानुवादका मन्त्र एव स्वघटकेन्द्रबब्देन विक्रं खचयति। तते। गाईपत्यप्रकात्रने समर्थे मन्त्रम् 'ऐन्द्र्या' इति हतीयात्रुतिर्वज्ञा-पसाने विनियुष्ते" इति ।

रति सायनाचार्यविरचिते माधवीये वेदार्थप्रकामे ज्ञष्णयजुः-वंहिताभाय्ये चतुर्यकाच्छे दितीयप्रपाठके पद्ममाऽनुवाकः॥ ०॥ वा जाता चार्षध्या देवेभ्यस्तियुगं पुरा। मन्दा-मि ब्यूषामुद्धः श्रुतं धामानि सप्त चं । श्रुतं वी अम्ब धामानि सद्यसमुत वो रहः। श्रया शतकतो यूय-मिमं में अगुदं होत^(२)। पुष्पावतीः प्रस्वितीः फुलि-नीरफुला उत। श्रश्वा देव सुजित्वेरीवृि र्धः पार्य-ष्णवं: । श्राष्ट्यीरिति मात्रुक्तदे। देवीरुपं श्रुवे। रपार्थस विद्युतीरित् रपं:॥१॥

माताया युयर स्य संक्रतीः। स्राः पंत्रियीः॥२॥

स्थन यदामयति निष्कृत () । श्रुन्या वे श्रुन्या-मेवत्वन्यान्यस्या उपावत । ताः सर्वा श्रेषंधयः संविद्वाना दृदं मे प्रावता वर्चः () । उच्छुष्पा श्रेषं-धीनां गावा गाष्ठादिवरते । धनं सिन्धन्तीनाम्।-सान् तव पूर्ष () । श्रति विश्वाः परिष्ठा स्तेन देव वुजमंत्रमुः । चार्षधयः प्राचुच्यवुर्वत्विच्चं तृतुबाः रपः(११) याः ॥ ३॥

त श्रात्रश्रुरात्मानं या श्रीविविशुः पर्वः-परः।
तास्ते यद्यां विविधन्तामुग्रे। मध्यम्शिरिवं(१९)। सार्वं
यद्या प्रपंत श्रोनेनं किकिदीविना। सार्कं वातस्य
प्राच्या सार्कं नश्र निष्ठाक्या(१९) श्रुश्रावृतीः सामवृतीमूर्जयन्तीमुदाजसम्। श्रावित्सि सर्वा श्राष्ट्रीन्तीमुदाजसम्। श्रावित्सि सर्वा श्रीष्ट्रीन्तीमुदाजसम्। श्रावित्सि सर्वा श्रीष्ट्रीन्तीमुदाजसम्। याः क्षिन्तिवी श्रेष्ट्राः
श्रीष्ट्रा श्रीष्ट्रतातये(१४)। याः क्षिन्तिवी श्रीष्ट्रास्ता नी
स्थन्वः श्रीसः(१६) याः॥ ॥ ॥

श्रीषधयः सामराज्ञीः प्रविष्टाः पृष्टिवीमन् । तासां त्वमस्युत्तमा प्राणी जीवातेवे सुव (१९)। श्रवपतंन्तीरवदं दिव श्रीषधयः परि । यं जीवम् श्रवाम है नसरिष्णाति पूर्व पः (१०)। याश्रेद मृपश्रव्यक्ति याश्रे दूरं पर्गगताः । इह सङ्गत्य ताः सवा श्रम्भ सन्देत्त भेष्ठ (१०)। मा वा रिषत् खनिता यसी चा हं खनीमि वः । दिपञ्चतं - षदसाक् सर्वमस्त्वनातुरं (१८)। श्रीषधयः संवदन्ते सोमेन सह राजा। यसी करोति ब्राह्मणस्त रोजन् पार्यामिस (१०)॥ ५॥

र्षः। पत्विकीः । याः। अश्हंसोयाः । खनामि वः। अष्टार्यम् च ॥ ६ ॥

रित तैत्तिरीयसंहितायां चतुर्थकाएडे दितीय-प्रपाठके षष्ठोऽनुवाकः॥ • ॥

पश्चमेऽनुवाके श्रमिकेनकर्षकमुक्तम्। श्रथं वहे श्रोविधवापा विधीयते। क्यः, 'था जाता श्रोवधयं दित शतुर्वमिनेषिन निवपति' दिति। तत्र प्रथमामा इ,,—"या जाता श्रोवधयो देनेश्वक्तियुगं पुरा। मन्दामि बश्लूषाम इ श्र मतं धामानि सप्त श्र() "दिति। युगन्न व्यः का खवाची। 'चियुगम्' (वर्षाः, श्ररत्, वसकः - दिति का खत्रयम्) छद्श्यः 'पुरा' (द्वादाः) 'देनेश्यः' सका श्रात् 'याः' 'श्रोवधयः' खत्पञ्चाः। 'बश्लूषां' (प्राणिभरणसमर्थानां, परिपाकेन पिन्न खवर्षानां वा) तासाम् श्रोवधीनां 'वतं धामानि' (श्रतसङ्खाकान् जातिभेदान्) 'सप्त च' (विश्रेषाकारेष ग्रान्यान् श्रार्थां सप्तधाऽन्यभेदान्") श्रवेष्य 'मन्दामि' (श्रयामि)।

श्रव दितीयामाइ,—''व्रतं वे श्रम धामानि सहस्रमृत वे दरः। श्रया व्रतकतो यूयमिमं मे श्रगदं क्रत^(१)'' इति। हे 'श्रम' (माहस्वानीया श्रीवधयः), 'वः' (युश्राकं) 'धामानि' (ब्रातिभेदाः चेत्राचि वा) 'व्रतं' सन्ति, 'उत' (श्रपि च) 'वः' (युश्राकं) 'दरः' (प्रदेश्या श्रद्धराख) 'सहस्रं' सन्ति; 'व्रतं'-'सहस्रम्'-

^{*} सप्त धान्त्रभेदान् रत्नपि कचित्।

इत्याभ्याम् अपरिमितत्वमुपखच्यते । 'श्रथ' (एवंबङविधोपेतत्वे स्ति) (इतसङ्काकाद्याः कतवे। याभिर्युग्राभिर्निष्पाद्यन्ते तादृष्यः) 'इतक्रवे।' 'यूयं' 'मे' (मदोयम्) 'इमं' (यजमानम्) 'श्रगदं इत' (जुत्पिपासादिरोगर्षतं कुद्त) ।

त्रथ हतीयामाइ,—''पुष्पावतीः प्रस्वतीः फिलिनीरफला छत। त्रया दव पिजलरीविष्धः पारियण्यवः (१)'' द्रति। त्रव भोषधया नानाविधैविप्रेषणेः प्रवस्ते । 'पुष्पावतोः' कासित् भोषधयः (पुष्पमाचपर्यवसायिन्यो न तु फलिनीः' प्रस्वतोः' त्रन्या श्रोषधयः (पुष्पपूर्वकफलोत्पित्स्वायिन्यः); 'फिलिनीः' पराः कासिरोषधयः (पुष्पं विना केवलन फलन युक्ताः); 'छत' त्रपि च) 'त्रफलाः' त्रन्याः कासिरोषधयः (फलेन तद्धेतुपृष्पेण च विरहिताः), तरेतत् धर्वे लेकिसिद्धानुसारेणोदाहरणीयं; 'वीद्धः' कासिरोषधयो (खतारूपाः), 'पार्यिष्णवः' (फलपाकान्तलं परित्यच्य पारं बद्धसंवत्यरावसानं प्राप्तुं श्रीलं यासां, तासचा-विधाः), तद्यया नागवलोप्रस्तयः, 'त्रसा दव सिजलरोः' (यथा त्रया युद्धे बहवः सह ग्रीमं गला जयन्नीला भवन्ति, एवस्रोषधयोऽपि बहवः सहीत्यन्नाः फलपर्यन्तलचणजयन्नीला भवन्ति)।

श्रय चतुर्थीमाइ,—''श्रेषधीरिति मातरसदो देवीदपत्रुवे। रपाट्रसि विद्वतीरित रपद्यातयमानाः(४)'' रति। हे 'मातरः' (माहसमानाः), 'देवीः' (देवः), रतिशब्देाऽच हेलर्थे, यसात् 'श्रेषधीः' यूयम् (श्रेषधः), 'तत्' (तसात्) 'वः' (युशान्) 'उपत्रुवे' (प्रार्थिय)। 'श्रोषी' दाष्टः,—फलपाकी धीयते खायते यासु, ता श्रीषधयः, श्रती युगान् प्रति प्रार्थनमुचितमित्यर्थः। कथं प्रार्थनमिति ?—तदुच्यते—'रपांषि' 'विव्रतीः' (पापानि विनात्र-यन्यः), 'रपञ्चातयमानाः' (पापफलं दुःलमपि विनात्रयन्यः), 'द्रत' (प्राप्नुत)।

श्रथ पश्चमीमा ह,—"श्रश्तये वे निषदनं पर्षे वे वसिः हता । गोभाज इत् किलासय यत् सनवथ पूर्षम्(६)" इति । हे श्रोषधिदेवताः, 'वः' (युग्नाकम्) 'श्रश्तये' 'निषदनं', 'पर्षे' (पलाग्ने रुक्क) 'वः' (युग्नाकं) 'वसिः हता' (निवासकार्षं ग्रदं हतम्)। देवताधिष्ठितलादेव लोकेऽश्त्यरुषः प्रदक्षिणनमस्कारादिभिः" पूज्यते । पलाग्रयुश्चभादिक्षेष कर्मसाधनसम्पनः । ईत्रश्लोऽपि यूयं 'गोभाज इत्' (भवदीयस्वावर्ष्येष श्रमभाज इव) श्रता 'श्रमथ' 'किल' (स्थिता इत्येतक्षोकं प्रमिद्धम्)। तिक्तमर्थमिति?— तदुष्यते—'यत्' (यस्मात् कारणात्) 'पूर्षं' (मनुष्यं) 'सनवय' (श्रश्नदानेन पोषयय); तस्मादेवं स्थावर्ष्यावस्थानित्यर्थः।

श्रय वहीमाइ,—''यदइं वाजयित्तमा श्रोवधीईस श्रादधे। श्रातमा यद्माख नम्मति पुरा जीवग्रभी यथा^(१)" इति। 'यत्' (यथा[†]) 'श्रहं' 'वाजयन्' (श्रत्नमिक्कन्) 'इमाः' 'श्रोवधीईसे' श्रादधामि। तदानोमेव 'यद्माख' (बुधादिरोगस्य) 'श्रातमा'

^{*} प्रदक्षियानमस्त्रारादिभिः इति खादर्भपुत्तकपाठः। † यदेति भवितुं युक्तः।

(खक्पं) 'पुरा' 'नम्नति' (भोजनात्मागेव नष्टसदुन्नो भवति)। तच दृष्टान्नः, 'यथा' कोको 'जीवग्रभः' (धीवरैर्जीवस्त्र बन्नादेर्गं इस्रात् पुरा भीतः भन्नः कर्षान्यां नेचे पिधाय अमिसंसिष्टो स्टत दव तिष्ठति तदत्)।

श्रथ सप्तमीमाइ,—"यदोषधयः सङ्कल्ले राजानः समिता विव। विप्रः स उच्चते भिषयचे। इाडमोवचातनः (०)" इति। 'यत्' (यदा) 'श्रोषधयः' सर्वाः 'सङ्कच्छले' (फलदानाय चेत्रसङ्गता भविक्तः); तत्र दृष्टान्तः, 'राजानः समिताविव' (यथा युद्धे प्रतिपिचिषः सेनां जेतुं परस्परमनुकूला राजानः सङ्गच्छले, तदत्); तदानीं सङ्गतासु श्रोषधोषु 'विप्रः' (मेधावी रस्वीर्य-भावनाभिष्ठीः यः पुद्धः), 'स' 'भिषक्' 'उच्चते' (चुधादिरोगस्य चिकित्सक इत्यभिधीयते) । कयं भिषक्षमिति?—तदुच्चते— 'रचाद्दा' (पक्काभिः एताभिः पुरोद्दामं रचोप्नं छला रचसं इन्ता, तदुपद्रवद्भपं रोगं निवारयति) । 'श्रमीवचातनः' (श्रोषधिजन्यपच्यादिभिरमीवान् रोगांद्वातयित विनामयतिति श्रमीवचातनः)।

श्रयाष्टमीमाइ,—"निष्कृतिर्नाम वे। माताया यूयः स्व सङ्कृतीः। सराः पतिष्णेः स्वन बदामयित निष्कृत^(८)" इति। दे श्रीवधयः, 'वः' (युग्राकं) 'निष्कृतिर्नाम' (जुधादिविनाश्रनमेव) 'माता'(माहवत् उत्पत्तिनिमत्तं जुधादिकं निवार वितुमेव भवती-नामुत्पत्तिः)।'श्रथ' (एवं सति) 'यूयं' 'सङ्कृतीः' 'स्व' (सम्यक् स्वकार्ये समा भवत)। 'सराः' (जुधादिविनाश्रयिश्वः), 'पतिष्णोः' (पतचं पचं, तस्रात् प्रत्यागमनेने पिताः) 'खन' (भवत)। 'यत्' (चुधादिकं) 'त्रामयित' (रागवद्वाधेत) तत् 'निष्कृत' (विनात्रयत)।

श्रथ नवमीमाइ,—"श्रम्या वे। श्रन्यामवलन्यान्यस्या छपा-वत। ताः पर्वा श्रोषधयः संविदाना इदं मे प्रावता वर्षः (८)" इति। हे श्रोषधयः, 'वः' (युग्नाकं) मध्ये 'श्रन्या' काचिदे।षधी-व्यक्तिः 'श्रन्याम्' श्रोषधीच्यक्तिम् 'श्रवतु' (रचतु)। तथा रचिता सा 'श्रन्या' श्रपि 'श्रन्यस्या' रचिकाचा 'छपावत' (समीपमागत्य तामपि 'श्रवतु'; सम्भूयकारितात् परस्परचित्र-मृचितं। तथाविधाः 'सर्वाः श्रोषधयः संविदानाः' (परस्पर-मैकमत्यं गताः) 'इदं' 'मे' (मदीयं) 'वषः' (वाक्यं) प्रार्थनारूपं 'प्रावत' (प्रकर्षेण रचत)।

श्रय दश्रमीमाइ,—"उक्कुशा श्रोवधींनां गावा गाँछादिवे-रते। धनप्र सनियम्नीनामात्मानं तव पूर्व(१०)" इति। 'श्रोवधीनां' 'ग्रुशाः' (तद्पभागजन्या बखित्रवाः) 'उत्'-'इरते' (उद्गक्किना)। तत्र दृष्टामाः, 'गावा गाँछादिव' (यथा गावेर निवासस्यानाद् ग्रहाद रस्यदेशं प्रत्युद्गक्किन तदत्)। की दृशीना-भोषधीनां?—'पूर्व' 'तव' 'श्रात्मानं' 'धनं' 'सनिय्यन्तीनां' (हे यजमान, तदीयं श्रीरं धनमित्र दातुमिक्कन्तीनां), यथा धनं दास्यन्ति, एवमोषधयोऽपि तदीयश्ररात्कारेस परिस्ताः श्रीरं दास्यन्तीत्यर्थः।

श्रधैकादश्रीमारः,—''श्रति विश्वाः परिष्ठाः स्तेन इव त्रजमक्रमुः। श्रोषधयः प्रापुर्ण्यवृर्थेत्किञ्च तनुवाष्ट्र रपः(११)'' इति । 'परिष्ठाः' (बरीरस्थापरिस्वा उदरमध्ये प्रविष्टाः) 'विद्याः' सर्वाः 'श्रोषधयः' 'त्रति' (त्रजीर्षादिदेाषमतिखङ्घा) 'त्रक्रमुः' (क्रान्ताः) देचे बाप्ता दत्यर्थः। तत्र दृष्टान्तः,—'स्रोन द्रव व्रजं' (यथा राजे। मुप्तचोरी गेष्ठं प्रविष्य गामपहर्सु सावधानी गात्राखार्या सर्वता व्याप्नाति तदत्)। 'तनुवां' (प्ररीराणां सम्बन्धि) 'यत्किञ्च' 'रपः' (व्यरगुष्मातीसारादिरूपं पापफलं यत्किञ्चित्) श्रसि, तसर्वम् 'श्रीषधयः' 'प्राचुच्यवुः श्' (विनाशितवत्यः) ।

श्रथ दादश्रीमार,--"यास त्रातस्त्रातानं या त्राविविद्यः पद:-पदः । तास्ते यद्मां विवाधन्तामुग्रे। मध्यमन्नीरिव^(११)'' इति । हे यजमान, 'ते' (तव) 'त्रात्मानं' (प्ररीरं) 'या:' (त्रोषधयः) 'त्रातस्युः' (त्राक्रम्य तिष्ठन्ति)। 'याः' (त्रीषधयः) 'पदः-पदः' 'माविविग्रः' (रसरूपेष तत्तत्पर्व प्रविष्टवत्यः), 'ताः' सर्वाः 'ते' (तव) 'यद्यां' (रागं) 'विवाधनां' (विशेषेण नामयन्त)। तच दृष्टान्तः,--'मथ्यम-श्रोरिव',--मध्यमेन खकीय-परकीय-पचपात-रितन काच्नीयमार्गेण क्रेते वर्त्तते, इति 'मध्यमभीः', तादृशी राजा द्ष्टान् प्रति 'उपोा' सत्ता यथा विनात्रयति तदत्।

चय चयोदश्रीमाइ,—"सानं यद्या प्रपत घोनेन किकिदीविना। मार्क वातस्य भाज्या मार्क नम्य निहाकया^(१९)" रति। सेमा-वहद्भकष्ठजन्यध्वनेः । त्रनुकरणार्थे।ऽयं 'किकि'-ग्रब्दः, तेन किकिना धनिविश्रेषेण दोच्यति व्यवहरतोति रागविश्रेषः 'किकिदीविः',

^{*} प्राचुचुवुः इति उ. प्॰ पाठः।

च्यावरीधकाळ्जनाध्वतेः हति चादर्भम्सकपाठः।

स च क्रेंग्रजन्य:। क्षेत्रवत् तीव्रतरतात् पित्तवन्या रेगः 'क्षेतः'। हे 'यक्ष'-राज (यक्षादिरोत्त), तं पित्तवन्येत क्षेत्रजन्येत च रोतेक 'साकं' 'प्रपत' (प्रकर्षेष नष्टा भव)। तथा 'वातक्ष' 'प्राच्या' (वातरेगन्य गत्या क्याप्या) 'साकं' नष्टा भव। तथा वया प्रोज्या निक्तेऽस्मि (का कप्टमितिबन्दं करोमि), सा 'निक्राका', तथा सक्ष नष्टा भव।

श्रय चतुर्शिमाइ,—"त्रयावती श्रवामती मूर्जयनी सुरे जिसम्।
श्राविति सर्वा श्रोषधी रक्षा श्रिरितात थे (१४)" इति । का चिर्
श्रोषधी जातिः 'श्रयावती',—श्रया श्रखां सन्तीति 'श्रयावती',
श्रोषधी सम्द्रीः वत्यां धनदारे पाश्रा लक्ष्यन इत्यर्थः । श्रव्या का चिरेषधी जातिः 'वामवती',—शे मयागे (द्रामक्तीति 'वे मिवती', धान्यसम्द्रीः सत्यां वे समयागः कर्नुं श्रक्यत इत्यर्थः । श्रव्या वती', धान्यसम्द्रीः सत्यां वे समयागः कर्नुं श्रक्यत इत्यर्थः । श्रव्या जातिः 'वरे जाः',—ज्ञजं वसं प्रापचे ष्टां वा करे ति त्यर्थः । श्रव्या जातिः 'वरे जाः',—ज्ञजं वसं प्रापचे ष्टां वा करे ति त्यर्थः । श्रव्या जातिः 'वरे जाः',—ज्ञजं वसं प्रापचे ष्टां वा करे ति त्यर्थः । श्रव्या जातिः 'वरे जाः', श्रव्या श्रित्यात्यः । ताः 'वर्षाः' 'श्रावित्यः' (श्रावित्यः' (श्रव्या त्याति इत्यातिः), श्रक्य यमानस्य श्रद्धिं वा वा ति इत्यातिः । तरे वमे विधायां श्रव्या वा स्वत्यत्रं श्राव्याः । तरे वमे विधायां वा स्वयत् द्रश्र श्राव्याः ।।

^{*} खोवधीः सम्बद्धा हति सर्वेष पाठा न सन्यन्।.

[†] चोषधीम् इति भाष्यस्प्रपाठी न संवितानसारी।

^{‡ &#}x27;चर्चिसाराणिकायेक्यंः' हित चार्व्यमुक्तमपठीः न सम्बन्। तत्याठमची चिंसाराणिकायेति पठितुं युक्तः।

श्रवाचैव विकक्तिः वड्ष श्राक्षायको,—''वाः प्रसिनीर्या श्रप्तवा श्रपुष्पा यास पृष्पिणोः । टहस्रतिप्रस्तासा को सुस्रक्ष्ट्रशः(१६)" इति । 'काः' श्रोषधयः प्रस्युक्ताः, 'वाः' प्रसरहिताः, 'वास' पृष्परहिताः, 'वास' पृष्पयुक्ताः; 'ताः' सर्वा 'टहस्रतिप्रस्ताः' सत्यः 'नः' 'श्रंह्सः' (पापात्) मे। चयक्तु।

श्रव दितीयामाइ,—"या श्रोवधयः सामराश्रीः प्रविष्टाः प्रश्चिमेनु। तासां लमस्युक्तमा प्रश्ने जीवातवे सुव (१९)" इति। सामो राजा स्वासं ताः 'सामराश्रीः (१)'। तासृष्ट्यो 'या श्रोवध्यः' 'प्रथ्यिनेमनु' 'प्रविष्टाः', 'तासां' मध्ये इदानीम् उप्यमाने हे श्रीवधे, 'लम्' 'उक्तमा' 'श्रवि'। श्रतः 'नः' (श्रक्षान्) 'जीवातवे' (श्रीवने विश्वाय) 'प्र'-'सुव' (प्रकर्षेष प्रेर्य)।

श्रुष हतीयामाइ,—''श्रवपतन्तीरवदन् दिव श्रोषधयः परि। यं जीवनश्रवामदि न स रिखाति पूर्वः(१०)'' इति। युवेग्कात् पतन्ते। दृष्टिविन्दवः श्रोषधीक्षेणेत्रयक्ते । तथा वाश्रिक्षेश्रामश्राष्ट्रये समाधायते, 'यावनाः सीका श्रवापयनाः। ताक्तिरेश्रिक्षेश्रापदितनप्रदेशात्) 'श्रवपतन्तीः' (श्रधसाङ्ग्मी पतन्त्रः) 'श्रोषध्यः' 'श्रवदन्' (वचनमुक्तवत्रः)। कीदृशं वचनम् ?—इति तदुखते,—'यं जीवम्' 'श्रश्रवामदे' (याप्रुमः), 'स' 'पूर्वः' 'न' 'रिकाति' (नैव विनस्रति)।

त्रव चतुर्थीमार,—"वाश्चेदमुपग्रहणानि वाश्च दूरं परा-नताः। इष्ट सङ्गत्य ताः सर्वा त्रश्री संदत्त भेषजम्^(१०)" इति । 'याख' श्रोषधी देवताः 'र्हं' (महीयं प्रार्थमम्) 'खप ग्रस्किन्त', 'याख' श्रन्या श्रोषधी देवताः 'दूरं' यथा भवति, तथा 'परा-गताः' बत्यः रेषत् ग्रस्किन्त, 'ताः' 'सर्वाः' श्रोषधी देवताः 'र्ह्र' (कर्मिष्) सङ्गता भ्रत्या 'श्रक्षे' (यजमानाय) 'भेषजं' 'संदत्ता' (श्रुधा दिरागिषिकित्सां सम्यक् सुद्ता)।

श्रथ पश्चमीमाइ,—''मा वा रिवत् खनिता यसी वा दं खनामि वः । दिपचतुष्पदस्माकः सर्वमस्तनातुरम्(१८)'' दति । हे श्रोषधयः, 'वः' (युग्नाकं) 'खनिता' (चिकिस्माये युग्नदीयं मूणं ग्रहोतुं खननस्य कर्त्ता) 'मा' 'रिवत्' (मा विनम्नतु) । 'श्रहं' 'च' 'यसी' (हग्णाय) चिकिस्मायें 'खनामि' (युग्नस्मूखं ग्रहीतुं खननं करोमि), वे।ऽपि मा विनम्नतु । किं बद्धनाः श्रसाकं सम्बन्धि यत् 'दिपत् चतुष्पद्'वा प्राण्जातं युग्नदुपजीवित, तत् 'सर्वम्' 'श्रनातुरं' (रागरहितम्) 'श्रस्त'।

श्रय वहीमाइ,—''श्रोवधयः संवदन्ते सामेन सह राजा । यसी करीति ब्राह्मणस्य राजन् पारयामिस्(१०)'' इति । 'श्रोवधयः' (श्रोवधिदेवताः) खकीयेन खामिना 'सोमेन' 'राजा' 'सह' संवादं कुर्वन्ति । कथं संवादः?—इति तदुष्यते,—'यसी' (इग्णाय) चिकित्साम् श्रसदीयमूलादिना 'ब्राह्मणः' 'करोति', हे 'राजन्', 'तम्' (श्रातुरं) वयं 'पार्यामिस' (व्याधेदन्तार्याम) ।

एतेर्भकीः साध्यमेषिधवापं विधक्ते,—"श्रीवधीर्वपति त्रञ्जाषा -स्रमवहत्थेऽकेंऽर्कदीयते" (५।२।५ द्र०) दति । 'त्रञ्जाषा' (श्रीविधवापदेतुस्थतमक्षयामर्थेन) 'श्रमं' याप्नीति । किश्चैवं सत्ति 'मर्के' (मर्चनीये खाने) 'मर्कः' (मर्चनीयः) म्रिमिशो भवति।

मन्त्रसङ्खां विधत्ते,—''चतुर्दश्रभिर्वपति यत्र गान्या श्रीवधयः सप्तारच्या उभयोषामवरुष्या त्रमस्यात्रस्य वपत्यत्रस्यात्रस्यावरुष्ये" (५।२।५७०) रति । तिल-माष-त्रीष्टि-यवाः प्रियङ्गणवे गोधूमा-द्येति सप्त गाम्या श्रीषधयः । वेणु-म्यामाक-नीवार-अर्त्तिला-गवेधुका-मर्कटका-गार्मुताञ्चेति यत्र त्रारुखा त्रोवधयः नानाविधस 'श्रञ्जाख' वीजवापेन नानाविधमन्त्रमाप्नोति । तद्कां स्वकारेण, 'सप्त यान्याः छष्टे सप्तार्प्या प्रकृष्टे' द्ति ।

तत्र ग्राम्याणां देशविशेषं विभक्ते,—''कष्टे वपति क्रेष्टे च्चोषधयः प्रतितिष्ठन्ति" (५।२।५ च०) इति। 'इत्वे' देचे 'वपित' ग्राम्या रति शेषः । मूखानां धर्वतः प्रसर्णे दुःद्वावखानं प्रतिष्ठा ।

एकैक खां सीतायां मूलमारभाषपर्यन्तमनुगतं वपनं विधत्ते,— "श्रृम्सीतं वपति प्रजाती" (५।१।५ श्र ॰) इति । प्रभूतसेने।त्पत्तिः 'प्रजातिः'।

सर्वाखिप सीतासु वीजावापं विधन्ते,—"दादश्रसु मीतासु वपति दादत्र मासाः संवत्यरः संवत्यरेणैवासा ऋतं पचितः' (५। २।५७०) इति । यद्कं स्वन्तारेण, 'यामीषधिं नाधिगच्छेत तस्याः स्थाने यवान् मधुमित्रान् वपेदुप्ता मेऽसीति वा मनसा ध्यायेद्धिगताया यः प्रथम इभा श्रामक्तेत्, तसिन्नेनामुपसन्न ह्य थे वनस्पतीनां फलगइयसानिभा उपसम्रद्धा प्रोचेत्' इति ।

^{*} इभा इति उ. पु॰ पाठः।

तिहरं वनस्तिप्रोच्णं विधन्ते,—"यद्ग्निचिद्नवद्भूसाञ्ची-यादवद्भेन कृष्येत ये वनस्तिनां पालग्रहयसानिष्मेऽपि प्रेर्त्व-दनवद्भुस्यावद्ष्ये" (५।१।५१०) इति। यद्ययम् 'प्रिज्ञिचित्' पुद्रः 'पानवद्भुस्य' सीतास्त्रमुद्र्य द्रश्यस्यम् 'प्रश्रीवात्', तदानीम् 'पावद्भूत्य' सीतास्त्रम् धान्येनापि वियुक्ते। भवेत्। प्रति।ऽपानुप्रस्वायुप्रलसिद्भये 'वनस्ति।नां' मध्ये ये पुष्पमन्तरेष्य पालं ग्रह्मन्युद्रम्दाद्यः 'तान्' प्रयादाय द्रभेन सह सन्न ह्रा प्रोप्यवै सुर्थात्। ततः सर्वमपि भद्यजातमस्यावद्भुमेव भवित्।

श्रव विनियागसंग्रहः,—

या जा, ग्राम्यास्तयारस्याः खष्टाख्यसुवीर्वपेत्।
यतुर्दश्रभिरन्यास्त षड्चैव विकल्पिताः॥
यय मीमांषा, दश्रमाध्यायस्य पञ्चमपादे चिन्तितम्। (श॰५)
"धूनने वपने चाग्री सप्त चेक्तास्तुर्दश्र।
किमाधारस्रनियमः किंवाऽऽरस्रो निजेक्क्या?॥
कपास्रवत् क्रमः प्राप्तः, केचित् प्रकरणोदिताः।
यर्थाः सुस्तेन मक्ताणामारस्रोऽच विकल्पितः॥

श्रीज्ञ सन्ता श्राधूननाथी श्रावपनाथी स बहदः पिटताः, प्रदेशे त तदेकदेशसङ्घाऽभिहिताः, 'धप्तिभराधूनोति चतुर्वश्रीम-वंपति' दति । तच प्रथमाधिकर्णेश्वकपास्त्रधासिधेनो न्याचेन श्रथमपिटतस्त्रेव मन्त्रस्रोपक्रमः प्राप्तोति । तद्युकं ; सुतः ? यथोक्तसङ्घातिरिकानां प्रकर्षपिटतानां मन्त्राणां वैवर्ध-

मयङ्गात्। तस्मात् प्रकर्षेन कमं वाधिमा निजेच्छयेव प्रचमता मध्यमतेः उन्तता वापक्रम्य विचित्तसञ्ज्ञा पूरणीचा ॥"

इति सायनाचार्यावर्षिते माधवीये वेदार्घप्रकागे कृष्णयज्ः-संहिताभाव्ये चतुर्थकाण्डे दितीयप्रपाठके षष्टेाऽनुवाकः॥ ०॥

मा नैं। हिश्सीजानिता यः पृंचिया या वा दिवेश सुत्यर्थमी जुजानं। यञ्चापञ्चन्द्रा रहितीर्जुजान कसी देवायं इविषं विधेम(१)। अभ्यावंर्तस्व पृथिवि यज्ञेन पर्यंसा सुह । वृपां ते श्रुमिरिं षिताऽवंसर्पतु (१)। श्रमे यते शुक्रं यचुन्द्रं यत् पूतं यद्यज्ञियं। तद्देवेभ्ये। भरामसि^(२)। द्रषुमूर्जमुहम्ति श्रा॥१॥

दद् ऋतस्य धामी श्रुम्हतस्य योनेः। श्रा ने। गोषु विशुत्वीषधीषु जद्दामि सेदिमनिर्ाममीवां(॥)। अमे तवु अवी वये। मर्षि भाजन्य चेया विभावसा। रहे-द्वाने। शर्वसा वाजमुक्यं दर्धासि दाशुषे कवे(॥)। दर्ज्यक्रमे प्रथयस्य जुन्तुभिरुस्मे राये। समर्त्य। स दंर्भतस्य वर्षुं वे विराजिस पृणिष्ठं सानुसि र र्यां (१)। जर्जीऽनपाज्ञातंवेदः सुशक्तिभिर्मन्दंख ॥ २ ॥

धीतिभिद्दितः। त्वे द्रषः सन्देधुभूरिरेतसः चिचीतंया वामजाताः । पावकवर्षाः शुक्रवर्षा अनूनवर्षा उदियिष भानना। पुषः पितरा विचर्द्युपावस्युभे पृषिश्च रेर्द्सी । स्तावानं महिषं विश्वचंषिणम्प्रिः सुमायं द्धिरे पुरा जनाः। शुल्तं श्रेः
स्प्रयंक्तमं त्वा गिरा देव्यं मानुषा युगा । निष्क्तिरंमध्वरस्य प्रचेतसं श्वयं तुः राधसे मुद्दे। राति भृगूणामुश्चिष्ठं कृविकतं पृष्ठि सान् सिं। इ॥

र्यिं(१) चितं स्थ परिचितं जङ्कचितं श्रयधं तया देवतंयाऽऽक्रिर्खङ्कवाः सीदत(११)। श्राष्ट्रायस्व समेतु ते विश्वतंः सेाम् दृष्णियं। भवा वार्त्रस्य सक्र्ये(१९)। सन्ते पयाः सिम् सम्यन्तु वाजाः सं दृष्णियान्यभिमा-तिषादः। श्राष्ट्रायमाना श्रमताय सेाम दिवि श्रवाः स्युत्तमानि धिष्व(१९)॥ ४॥

त्रा। मन्दंख। सानुसिं। एकोनचंत्वारि्रश्यर्च॥०॥

इति तैत्तिरीयसंहितायां चतुर्थकाएडे दितीयप्रपाठके सप्तमोऽनुवाकः॥ • ॥ वहेऽनुवाके कोविषवायोऽभिक्तिः। कय बक्क कोव्यक्षेणादिकमिश्रधीयते। कयः, 'मा में दिश्योक्रानिता यः पृथिका
दित यतस्थिरिंग्सी कोवःन् समस्रति येऽनार्विधाददिविधमापना भवना' इति। कर्षने वे कोवः परिमिन्नकेषाद् विधमापना भवना' इति। कर्षने वे कोवः परिमिन्नकेषाद् विधमापना भवना' इति। कर्षने वे कोवः परिमिन्नकेषाद् विधः
पतिन, तान् पुनरनाःपातवेदिव्यर्थः। तत्र प्रवस्तावाद,—"मा
मो दिश्योक्रानिता यः पृथिका वे वा दिवश् सव्यक्षमा वजान।
यद्यापसन्ता प्रदिश्यान्य कस्ते देवाय इविचा विधेम(१)" इति।
'सः' प्रजापतिः 'पृथिकाः' 'जनिता' (प्रत्यादकः), 'वे। वा'
प्रजापतिः 'सव्यक्षमा' (प्रवित्यधारप्रवितः' वन्) 'दिवं'
'स्वान' (कत्याद्यामाव)। पुनर्पि 'सः' प्रजापतिः 'कहाः'
(पाद्वासाय); तादुषः प्रजापतिः 'नः' (प्रसान्) 'मा' 'दिवेनित्';
तादुष्ठाच् 'कस्ते' (प्रजापतये) 'द्विवा' 'विधेम' (परिचरेम)।

त्रच दितीयामार,—"त्रभावर्त्तस प्रथिव सक्षेत प्रवत्ता सह। वर्षा ते त्रशिरिविते। उसपंतु (१)" इति । हे 'पृचिवि', 'सक्षेत्र' त्रमुहातयोन, 'पयसा' च तत्त्रसभ्यतेन 'सर्थ' 'सभावर्त्तस्य' (स्थादाभिमुख्येनामच्ह)। 'इनितः' (इच्छावान्) 'स्रशिः' 'ते' 'वर्षा' (सदीयन्पासदृक्षम्) इसं प्रदेशम् 'स्वस्पंतु' (प्राप्नोतु)।

श्रय हतीयामार,—''सम्ने यत्ते ग्रजं ययन्तं यत्पूतं ययश्चियं। तहेवेश्वो भगमयि^(२)'' रति । हे 'सम्ने', 'ते' (लदीयं) 'सत्' स्कं 'द्रुतं' (हीक्षिमत्), 'यत्' काम्बद्कं 'क्लूम्' (साम्वादकरं),

^{*} व्यवितयं धारवद्यक्तिः इति सर्वेत्र पाठे। न सम्बद्।

'यत्' ऋषन्यद्रक्तं 'पूतं' (इ.इ.), 'यत्' ऋषन्यद्रक्तं 'यज्ञियं' (यज्ञार्च), 'तत्' सर्वे सोष्टरूपं 'देवेभ्यः' (देवानामर्थे) 'भरामसि' (सम्पाद्यामः) ।

यस यतुर्थीमाइ,—"रवमूर्णमइमित या दर स्थास धाकी यस से बोने!। या नो गोषु विव्रत या योषधीषु जहामि से दिक्क निरामभीवाम्(")" इति। 'स्थास' (यश्वस्थ) 'धायः' (खानभ्रतात्) 'बन्दतस्य योनेः' (कारपभ्रतात्) 'इतः' (देशात्) 'दवम' (यश्वस्पम्) 'ऊर्वे' (रमस्पं) खोष्टम् 'याददे' (खोकरोमि)। य खोष्टः 'नः' (यसदीवेषु) 'गेषु' 'या'-'विश्रतः' (यागस्य प्रविश्रत्)। तथा 'खेषधीषु' 'या'-'विश्रतः', सोदन्यदेति बेदिर्श्वमिः। 'यनिरां' (यखरिताम्) 'यमीवां' (रागथ्यां) 'सेदिं' (स्विं) परित्यजानि।

एतेर्मकीः साथं से। हानां चेनमधे सापनं विधन्ते,—''दिग्सा से। हान् समस्ति दिशामेव वीर्यमवद्य दिशां वीर्येऽग्निं चिनुते'' (५१११५%) दिता कर्षसावसरे से से। हा विस्ता विभितादिश्चित्राद् विदिद्यु पितताः, ताथः 'दिग्सः' तान् 'से। हान्' आनीय सेने संयोजसेत्। तथा सित 'दिशां' सामर्थम् असिन् सेने 'स्वद्या' तिसन् सामर्थे 'सिग्नं' चितवान् भवति।

चतुर्धमन्त्रे कश्चिदिशेषं विश्वते,—''यं दिखाद्यन सः स्थात् तस्त्रे दिशे से। हमास्टेदियमूर्जमस्मित श्रादद स्तीयमेवे। जं तस्त्रे दिशोऽवद्ये से। धुको भवति यससां दिश्रि भवति''(५।१।५११०) स्ति। श्रयस्ति, चिं (पुरुषं) 'दिखात्', 'सः' (पुरुषः) यसां 'दिश्वि' चवित हेत्, तसा 'दिश्वो' 'से एहम् क' 'द्वमूर्जम्'—इतिमन्नेस चाररेत्, तथा सति तदीयमसं रस स स्वीकरोति। स्वीक्रते सति 'तस्वां दिश्वि' 'यो' देखः 'भवति' (वर्तते), स देखः 'चे प्रमः' (चुधां प्राप्तः) चन्नरहितो भवति।

बदुक्तं स्रमकारेष, 'उत्तरवेदिम् उपवपति बावानियः' बांधारणान्तां छला' इति । मदेतिदिध से,—"उत्तरवेदिम् पवप-त्युत्तरवेदाः द्वाधिवावतेऽथा प्रमवा वा उत्तरवेदिः पृष्ट्रनेवाव-दम्धेऽथा बद्यपद्वाऽनम्तरित्वे" (५।२।५ प्र०) इति । प्राक्तिन प्रकारेष 'उत्तरवेदिं' सुर्यात् । तस्ताम् 'उत्तरवेदां' पद्यात् 'प्रश्चियविते' । प्रिष् च उत्तरवेदाः समीपगतेषु प्रद्रावस्थात् 'प्रवः' एव 'उत्तरवेदिः', उत्तरवेदिः पृष्ट्रना प्राप्तचे भवति । 'प्रथा' (प्रिष च) प्रकृतावृत्तरवेदि इपं यद्मस्य 'प्रकः' (प्रवं), तस्तान्तराया मा स्वित्युत्तरवेदिः कर्त्तया ।

कर्यः, 'श्रग्ने तव श्रवे। वय इति षड्भिः विकतान्ग्रशः' इति ।
तव प्रथमामाइ,—''श्रग्ने तव श्रवे। वये। महि भ्राजन्यच्ये।
विभावसे। इहज्ञाने। श्रवसा वाजमुक्ष्यं द्धासि दाग्रुषे कर्वे(६)" इति । वीयते प्राणिभिरस्रते इति वयोऽसं। हे 'श्रग्ने', 'तव श्रवः' (लदीयलेन श्रूयमाणं) 'वयः' (श्रसं) 'महि' 'महदक्ति)। 'विभा' (दीप्रिरेव) 'वसु' (धनं) यस्त्रासे। विभावसुः, हे 'विभावसे।', 'श्रचंबः' (तव दीप्रसः) 'भ्राजन्ति' (दीप्यन्ते)। इहन्ते। भानवे। यस्त्रासे। वृहज्ञानुः । कविः (विदान्) यजमानाभि-

^{*} अप्रच सर्वेत्र को ए ग्रन्दस्थाने की छ इति आ दर्शे पुकाके सर्वे J. पुकाकी पाठः।

प्राथाभिश्वः । ताद्वत्र हे 'चग्ने', 'दाग्रुवे' (दक्दिंश्वते) यजनःगाय 'छक्षं' (प्रचाचुपेतं) वश्वयोग्यं 'वाजम्' (वर्षं) 'प्रवसा' (तदीवेन वर्षेन) 'दधासि'।

श्रय दितीयामाइ,—''द्रस्यसग्ने प्रथयस बनुभिरसो राषो समार्थ। य दर्गतस वपुषे विरावित प्रवित सानिष्ट रिवम्(')'' इति। हे 'समार्थं' (मरबर्श्वत) 'स्रग्ने', 'जनुभिः' (पुरेश्वात्रादि-श्वाःप्रदेः प्राविभिः) 'द्रस्वन्' (दीसमानः) सन् 'ससी' (श्रसासु) 'राषः' (धनानि) 'प्रथयस' (विसारय)। 'स' 'दर्जतस' 'वण्डः' (दर्शवीयस्य विद्याग्निस्पत्र प्ररोरस्क) मध्ये 'विरावित' (विश्वेषेस दीस्पर्य), 'सानिं' (ब्रह्मविधदानाई) 'रविं' (धनं) 'श्रम्भिं' (श्रसाद्ये प्रथ)।

भय हतीयामार,—"जर्जी नपाम्नातवेदः सुत्रसिभि-र्गेन्द्स धीतिभिर्दितः । ले इतः सन्दधुर्श्वरिनेत्वश्चिषेत्रयो वामवाताः (*)" इति । 'जर्जैः' (यमकः) 'वपान्' (प्रविनात्रधिता), नाष्ट्रत्र हे 'वातवेदः', 'धीतिभिर्दितः' (दीप्तिभिर्द्युकः) सन् 'सुत्रसिनिः' (त्रोमणाभिः स्वतिभिः) 'मन्दस्न' (प्रवस्तः) । 'शूरिर्तवः' (प्रभूतवाराः) 'इतः' (श्वस्त्रद्याः) चाह्नतीः 'ले' (लियः) 'यम्दधुः' (यजमानाः सन्यादितवन्तः) । कोदृत्रा यजमानाः ?—'विचेत्रवः' (विचास्त्रया हता जत्रयो रूषा येवां हे विचेत्रयः), 'वामजाताः' (वननीये सन्यजनीये देने सुन्ने

वसनीये इति पाठी भवितुं युक्तः ।

षय षत्रधीमाइ,—''पावकवर्षाः ग्रुकवर्षा अनुववर्षा उदिवर्षि भानुना । पुषः पितरा विषरसुपावसुभे पृष्णि रे।इसो(प) रित्ता (पावकवर्षाः' (म्रीधकदोप्तिः) 'ग्रुकवर्षाः' (निर्मेंसदोप्तिः), 'प्रनूनवर्षाः' (स्म्यूर्बदीप्तिः); देवु प्रस्तं 'भानुना' (भासा) 'उदिवर्षि' (स्रक्षते गच्छि। 'उभे' 'रे।इसी' (धावा-प्रचिक्षी) 'विषरन्' 'खपाविष' (स्मीपमागत्य रचि।), 'पृष्णि' च (तकोः सम्यूर्क्तिमपिकरोषि)। परिषर्षे दृष्टान्तः, 'पुषः पितरा',— वद्या स्रोके प्राक्षीयमार्गेषानुत्रिष्टः पुषः पितरी परिषर्ति तद्ता।

यथ पश्चमीजाइ,—"स्तावार्ग महिषं विश्वविषिमग्निः स्याय दिधरे पुरे। जनाः। त्रुत्कार्णः सप्रथसमं ला निरा देखं मानुषा युवा(९)" दात । 'मानुषा' 'जनाः' (मनुष्यजातिषुक्राः जनाः) स्वत्रियजमाना 'पुरः' (पूर्विष्मिन् काखे) 'युना' 'निरा' (वेग्रयण स्तिरूपणा वाचा) 'सुषाय' (सुष्यार्थे) 'त्रग्निम्' स्वनं 'दिधरे' (खापितवन्नः)। कोदृष्तमग्निम् ?—'स्तावानं' (स्रश्यक्तं) 'महिषं' (महान्नं) विश्वचर्षक्यो (मनुष्याः) परिचारकलेन यस्य विन्त, स्रोऽष्टं 'विश्वचर्षक्यः'। 'त्रुत्क्वले' (ग्रद्रष्ट्रक्वल्क्षे),—यदिश्वायते, तस्य वृत्व क्वें त्रुत्व स्वायं । 'सप्रयस्तमं' (स्रति- व्रयोग प्रथासहितं, कीर्क्तंमन्नं), तम् देदृषं लां 'व्यग्नं' (स्रितेश्वा हितं) 'दिधरे' द्रायन्वयः।

त्रथ वडीमाइ,—"निष्कर्त्तारमध्यरस्त प्रचेतसं खयनाश्र राधचे मदे । राति स्मृष्यम्त्रियं कविकतं प्रविच सानसिश्र

रविम्(१॰)" इति । हे म्रग्ने, सं (यजमार्ग) 'र्यि' 'पृक्चि' (सम्पृत्रं करोषि) प्रापयसीत्यर्थः । की दृष्टं यजमानं ?—'ऋध्वरस्व' 'निष्कर्तारं' (यज्ञस्य निष्पादकं), 'प्रचेतसं' (प्रक्रष्टिचन्युक्तम्), श्रद्धालुमित्यर्थः ; 'मरे' 'राधवे' (मस्ते राधवे स्विक्षंचयाय प्रमाय) 'घवनां' (इविदीतुमिद्य निवसनामित्यर्थः) ; 'रातिं' (दातारं), 'सगूषां' (महर्षीषां तपखिनां) मध्ये 'उन्निजं (कमनीयं) त्रात्यनां तपे।युक्तमित्यर्थः ; 'कविकतं' (कवीनां विदुषामिव कतुः कर्मानुष्ठानं यखाया कविकतुसं), सर्वमपि कर्त्तवां सम्यक् जात्वेवानुतिष्ठतीत्वर्थः । सानसिज्ञस्दो वजमान-विश्वेषणं वा, यजमानपचे दानश्रोसिमित्यर्थः । धनपचे सम्बज-नोयमित्यर्थः।

एतान् मन्त्रान् विनियुद्धे,--''बाग्ने तव अवे। वच इति सिकता निवपत्थेतदा त्रापुर्वेत्रानरस्य स्न हरू सक्तेनैव वैद्यानरमवहत्थे" (५।२।६ त्र•) इति । एतत् वडुचात्मकं 'वैत्रानरस्य' (सर्वमनुख-प्रियस) अग्ने: सम्बन्धि सम्मम्, अत एतेन सिकतावापे सति वैशानरक्षमिशं प्राप्ताति।

स्रक्रगतमन्त्रमञ्जां विधत्ते,—"वज्भिनिवपति वज्वा श्वतवः मंत्रसरः मंत्रसरोऽभिर्वेशानरः माचादेव वैशानरमवद्ये" (५। २।६ प्र ॰) इति। 'संवस्तरम् ७ स्थं स्ता' इत्यादे। संवस्तरधारण-सम्बन्धात् श्रग्नेः संवत्सररूपत्मम्। श्वतुसंवत्सरास्यवधानेन वैश्वानरं साचादेव सर्वथैव प्राप्नाति।

स्रक्तगतासु चनु परसारविखन्नणं यच्छन्दसात् प्रशंसति,—"समुद्रं

वै नामैतच्छन्दः समुद्रमनु प्रजाः प्रजायको यदेतेन सिकता निवपति प्रजानां प्रजननाय" (५।१।६ प्र०) इति । ध्या समुद्रो ब्रष्टलस्या प्रजल्याच्छन्दोऽपि ब्रष्टविधलात् समुद्रमित्युच्यते। तथा हि प्रथमा विष्टारपिष्ट्रः, मध्यमयोः पादयोरेकाद माचरलात्। लात्; दितीया पदपिष्ट्रः, त्राधोत्तमपादयोः दाद माचरलात्। ध्या दितीया तथा हतीया, ध्या प्रथमा तथा चतुर्थी। छपरिष्टाच्च्योतिः पश्चमी, चतुर्थपादस्थाष्टाचरलात्, तथा पष्टी। एवं ब्रह्मविधलाच्छन्दसः समुद्रलं, लोके हि समुद्रमनुस्त्य प्रजा उत्पादको,-समुद्रो ब्रह्मः, तथा प्रजा त्रपि ब्रह्मविधाः। तथा स्ति समुद्रसदृष्टेन छन्दसा सिकतानिवापः प्रजानामृत्यत्ये सम्बद्रोते।

कल्पः, 'चित ख परिचित इत्यपरिमिताभिः प्रकराभि-

^{*} **चाद्यव्रतीय**पादयाः इति J. पु॰ पाठः।

[†] यस च सन्दर्भी न पिक्कस्त्रतं हुन्होः संवादी, तच हि हतीयाध्याये "विकारपिक्रस्तः। 8१।" "परपिक्तः पद्य। 8६।" "उपरिटाच्च्योतिरन्तेन। ५६।" इति स्त्रत्रयेस, "वदा जागती (१२६०)
पादी मध्ये भवतः, खाद्यन्तयेश्व ग्रायत्री, (८००), तदा विकारपिक्तनंभ"। "पद्यता इत्वन्वर्त्तते, यदा पद्याच्चरा पद्य पादा भवन्ति,
तदा पदपिक्तनीम इन्दः।" "यदा चलारो ग्रायत्राः पादा भवन्ति,
वन्ते च चैठुभः (११६०) तदा उपरिद्याच्च्योतिनीम चिठुन भवति।
तथा जगतीत्वनुवर्त्तनीयं, तेन, खन्तेन जागतेन भ्रविष्व ग्रायत्रेखतुनिः
उपरिद्याच्च्योतिनीम जगती भवति।" इति तत् स्त्रच्येन तद्द्या च
खन्यचैव कच्चयानि पदिर्प्तानि। यनं दितीया-हतीययीः प्रथमापतुर्थोः पद्यमी-वर्षेग्रस्व परस्परं विकच्चयाच्चरसङ्खाकतया तुल्यतामिश्रतम्यि न सन्यग्निय प्रतिभातीत्ववध्यम्।

राइवनीयचितरायतनं परिश्रवति' इति । पाठखु,—"चित ख परिचित ऊर्द्धचितः स्रयध्वं तया देवतवाङ्गिरखद्भृवाः सोदत^(११)" इति । चौयन्ने भूभा प्रचियन्त इति चितः प्रकराः । हे प्रवेराः, यूयं 'चितः ख', (भूमा प्रचिप्ताः ख); 'परिचितः' (परितः प्रचिप्ताः) ख । 'ऊर्द्धचितः' (उपरिप्रचिप्ताः) ख । ताहुम्या यूयं 'श्रयध्वं' (रमां चितिं सेवध्वं) । युग्नाकं मध्ये यच्याः प्रकराचाः या देवता, 'तया' 'देवतया' साह्ये यूयं 'भुवाः' (खिराः) सद्यः 'बीदत' (इह तिष्ठत) । तत्र दृष्टानः,—'चङ्गिरखत्' (यथा चङ्गिरसां चयने भुवाः सीदन्ति तदत्) ।

यनेन मन्त्रेष साधं प्रकर्रास्तापनं विधन्ते,—''दन्द्रो ह्याव वयां प्राहरत् स नेधा स्थानत् स्पाकृतीयः रस्युतीयं सूप सृतीयं सेऽन्तः प्रकार्यन्त ताः प्रकर्रा श्रभवन् तत्स्वक्तराखाः प्रकर्तं वद्यो वे प्रकर्राः पद्मुर्ग्यार्थस्क्तराभिग्धां परिमिनेति वद्येणवासी पश्चन् परिस्ट्याति तसाद् वद्येण पत्रवः परिग्रहीताः तस्मात् स्थेयानस्थेयसा नेपहरते" (५।१।६ श्व०) दृति । रन्त्रेण प्रहितो वद्योऽत्यन्तकिनं स्वश्वरीगं प्राप्य विधा भग्नी-ऽभवत्। तेषु चिषु भागेषु 'स्करः' एका भागः, 'रवः' श्वपरा भागः, 'यूपः' श्वन्यः। तदा वद्यस्थान्तःशोर्णः श्ववयवाः भग्नी पतिताः, 'ताः' भू मगताः 'प्रकराः' (श्वत्यन्तं दृदाः) भुद्रपाषाणा 'श्वभवन्)। प्ररेः क्रियन्ते निष्पाद्यना दृति स्वत्यस्था प्रकरा दृति नाम सम्पन्नम्, श्वता 'वद्यः' एव 'प्रकराः', श्रश्चिस्य पद्मु-साधनत्वात् पद्मुस्वरूपः। श्वताऽश्चिप्पदेशे प्रकराभिः प्रदिश्वकत्। तथा यति 'वञ्जेणैव' साधनेन यजमानार्थं 'पज्जून्' 'परिग्रझाति'। यसादेवं, 'तसात्' लेकिऽपि वञ्चसमानेन करेण पाजादिना वा 'पज्ञवः' 'परिग्रझोता' भवन्ति । यसाद च अग्नेदीक्याय प्रकरा-पेचा न तु 'कर्कराणां' अम्यपेचा, 'तसात्' लेकिऽपि 'स्त्रेयान्' (स्तिरतराऽतिप्रवसपुद्धः) कश्चिदपि 'अस्वेयसः' (अत्यन्तम् अस्तिरान् दुर्वसान्) 'ने।पहरते' (नैवाअयति) ।

यर्करासु काम्यां विधक्ते,—''विसप्ताभिः पग्नुकामस्य परि-मिनुयात् सप्त वे शोर्षस्याः प्राणाः प्राणाः प्रायाः प्राणेरेवास्मै प्रमूनवक्त्भे'' (५।१।६ अ०) इति । चीणि सप्तकानि यासां शर्कराणां तास्तिसप्ताः, ताभिरेकविंगतिसङ्घाकाभिरित्यर्थः, 'परिमिनुयात्' (परितः स्थापयेत्)। सप्तसङ्घया व्यवस्थिताः श्रिरोगताः 'प्राणाः' सर्यन्ते, तेस 'प्राणैः' (तसुकाः) 'प्राणाः' 'पश्चवः', तथा सति सप्तसङ्घया 'प्राणेरेव' युक्तान् 'पशून्' प्राप्तोति ।

श्रधान्यां काम्यां मङ्कां विधत्ते,—"विषवाभिश्वां स्थान्यते चित्रतमेव वज्रः मभृष्य आह्याय प्रदर्श सृष्ये" (५।२।६%) दित । चीषि नवकानि यामां ताच्चिषवाः मप्तविंग्रतिमङ्काका दृष्यथः। चिषवमङ्कोपेतिच्चित्रत्योगः सर्थते । तमेव चित्रत्योमं वज्रतेन मनाद्य आह्यदिंसा 'प्रदर्शत'।

पचान्तरं विधत्ते,—"त्रपरिमिताभिः परिमिनुयादपरि-मितस्यावरुधैं''(५।२।६ त्र॰) इति ।

त्रधान्वययितरेकाभ्यां परिश्रयणं दृढ़ोकरे।ति,—"यं कामयेतापद्यः स्थादित्यपरिमित्य तस्य व्यर्कराः सिकता यूहेत्

श्रपरिख्डीत एवास विष्युचीन है रेतः पराधिश्वत्यपाइरेव भवति । यं कामधेत पद्ममान्स्यादिति परिमित्य तस्य वर्षराः चिकता खूहेत् परिख्डीत एवासे समीचीन है रेतः धिश्वति पद्ममानेव भवति" (५।१।६ श्र०) रित । पूर्वन्युप्तायाः चिकताया चूड्वं विधास्ति । यजमानस्य पद्मराज्ञियं कामयमाने। उन्धर्यः परितः वर्षरास्तापममञ्ज्ञेव चिकताप्रधार्षं खुर्यात्, तथा चितः परिश्रयस्थाभावात् 'श्रपरिख्डोत एव' स्वाने यजमानस्य 'रेतः' विविधं यथा गच्छति, तथा विनाशयति, तते। उयम् 'श्रपद्मरेव 'भवति';—चे। उयं व्यतिरेकः ; एतस्यादिपरोते। उत्तयः । तस्यात् पद्मसाथ वर्षराभाय वर्षरापरिश्रयस्पूर्वक मेव सिकताय् दूष्णं कर्स्यमिति तात्पर्यार्थः ।

कच्यः, 'श्राणायस्व समेतु ते इति सिकता स्यूष्त्युत्तरस्वा चिष्टुभा राजन्यस्य' इति। तच प्रधममन्त्रमाष्ठ,—'श्राणायस्व समेतु ते विश्वतः सेाम दिष्ण्यं। भवा वाजस्य सङ्गर्थे^(१९)" इति। के 'सेाम', लम् 'श्राणायस्व' (सर्वतो वर्द्ध्यस्व(?)), 'ते' (तव) 'दृष्ण्यं' (रेतः) 'विश्वतः' (सर्वस्नात् दृष्ण्यादाद्वारात्) 'समेतु' (सम्प्राप्नोतु)। 'वाजस्य' (श्रवस्य) 'सङ्गर्थे' (सङ्गमने) लं निमित्तं 'भव'।

श्रधोत्तरां विष्टुभमाइ,—''सं ते पर्याष्ट्रसि समु यम्तु वाजाः सं दृष्णियान्यभिमातिषाइः । श्राष्ट्रायमानो श्रस्टताय सेम्म दिवि श्रवाष्ट्रसुत्तमानि धिख^(१९)" दति। हे 'सेम्म', 'ते' (तव) 'पर्यांसि' (पातव्यानि चीरादोनि) 'समु यम्तु" (सम्प्राप्तानि भवम्तु)।

[📍] षत्र 'सं'-'यन्तु' इति पाठी भवितुं युक्तः।

तथा 'वाजाः' (श्रम्नानि) श्रिष 'सं'-'यम्तु'। 'दृष्णियाणि' (रेतांसि)
श्रिष 'सं'-'यम्तु'। की दृष्णस्य तव ?-- 'श्रिभमातिषादः' ('श्रिभमाति'
पागाने महते के तिरस्करोतीत्यभिमातिषाट्,तस्र)। चीराहिसम्पत्तीः
सत्यां सम् 'श्राप्यायमानः' (वर्द्धमानः) 'श्रम्तताय' (सत्रमानस्रास्तत्वाय, देवभावाय) 'दिवि' (द्युक्तिके) 'श्रवांसि' (श्रोतुं प्रियाणि)
'उत्तमानि' (चित्राणि) श्रश्नानि 'धिष्य' (धार्य, सम्पाद्येत्वर्षः)।

तदेतदृग्दयं सामान्याकारेण विनियुक्के, "साम्या यूहर्त सामा वै रेताधा रेत एव तद्द्धाति" (५।१।६ ५०) रति। सामा देवता यखास्यणि प्रतीयते सेयस्क सामो ; 'विश्वतः साम' रत्याद्यायास्यणि प्रसीयते, 'श्रम्हतास साम' रत्युत्तरसा-स्टिष प्रतीयते। तथा 'साम्या' पूर्व न्युप्ताः सिकताः विविधं प्रसारयेत्। तथा स्ति सामस्य रेताधारकलात् तयान्यनिष्याद्य-स्यूह्नेन यमसाना 'रेता' धार्यति।

मन्तदयस पुरुषभेदेन ष्ववस्थां दर्भयति,—"गायनिया बाह्यस्य गायने। हि ब्राह्मपत्तिष्टुभा राजन्यस नेष्टुभी हि राजन्यः" (५।२।६ त्र ०) इति । 'त्राप्यायस्य' इति बायनी, 'सन्ते' इति निष्टुप्।

पन विनियागसङ्गुदः,---

भा-चतुर्भिः चिपेक्षेष्टान्, श्रग्ने-वट्केन वाचुकाः। चित्र, श्राद्यवनीयस्त्र परिश्रयति ग्रर्कराः॥

^{*} अपत्र पाणानं सहते इति पाठो भवितुं युक्तः। २ म २

श्राष्टा, विषय सिकता यूहेत्, समी पेरोताय। चित्रयस भवेद् यूह इति मन्त्रास्त्रयोदम् ॥

दति यायनाचार्यविर्चिते माधवीये वेदार्थप्रकाने खब्ध-धजुःमंदिताभाये चतुर्थकाच्छे दितीयप्रपाठके यप्तमीऽनुवाकः॥ ।।

श्रुश्येखादिश्वाः प्रतेना अरोतीस्तदिप्तरीष्ट् तद् सेमं श्राष्ट्र। ष्टष्ट्रस्पतिः सिवता तन्मे श्राष्ट्र पूषा माऽधात् सुक्तस्यं खोके (१)। यदक्रेन्दः प्रद्यमं आर्यमान जुचन्त्संमुद्रादुत वा पुरीषात्। स्थेनस्यं पृष्टा हेरि-णस्यं बाह्र जपंस्तुतं जिनम् तत्ते श्रवन् (१)। श्रुपां पृष्टमंसि योनिर्गेः संमुद्रम्भितः पिन्यमानं। वर्ध-मानं मुद्रः॥१॥

त्रा च पुष्करं दिवा मार्चया विर्णा प्रथस्व । ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्तादि सीमृतः सुरुचा वेन श्रावः। सुबूधिया उपमा श्रस्य विषाः सृतस्व यानिमस्तस्य विवः । हिर्ग्णगर्भः समवर्त्ततार्थे भूतस्य जातः पतिरेकं श्रासीत्। स दीधार प्रथिवी द्यामृतेमां कसौ देवाय इविधा विधेम(१)। द्रापार्थंस्तम्द पृष्टिवी-मनु ॥ २॥

धामिमच् यानिमन् यख् पूर्वः। तृतीयं यानिमन् स्चरंन्तं द्र्षं शृंधायत् सप्त होचाः (१)। नमी अस्तु स्पॅभ्या ये के च प्रधिवीमन् । ये ज्ञन्तरिक्षे ये दिवि तेथः स्पॅभ्या नमः (१)। येऽदा राचन दिवा ये वा स्यंस्य र्ष्मिष् । येषाम् सूर्यः कृतं तेथः स्पॅभ्या नमः (१)। या दर्षवा यातुधानानां, ये वा वनस्पत्रो १- रन् । या दर्षवा यातुधानानां, ये वा वनस्पत्रो १- रन् । ये वाऽव्टेषु प्रेरत् तेथः स्पॅभ्या नमः (१)॥ ॥ मुद्दः। ज्ञन् । यातुधानानाम्। एकाद्य च ॥ ८॥ दति तैत्तिरीयसंहितायां चतुर्थका एउ हितीय-प्रपाठके ज्ञष्टमाऽनुवाकः॥ ०॥

^{*} अप्यमंस्राद् विन्धा इति ^{गु}. पु॰ पाठः।

सेनाः) 'त्ररातीः' (शतखखादाष्टक्षाः) 'त्रम्खखात्' (पादेन त्रभि-क्रम्य तिष्ठतु)। 'तत्' (त्रभिक्रमणम्) 'त्रग्निः' 'त्राष्ट्' (त्रनुमे।दतां); 'सेमः' त्रपि 'तत्' 'त्राष्ट्' (तदनुमे।दतां); 'दृष्टखितः' 'मे' (मम्) 'तत्' 'त्राष्ट्' (तदनुमे।दतां); तथा 'स्विता' त्रपि तदनुमे।दतां; 'पूषा' 'सुद्यतस्थ' 'सेवि' (फलभृते स्वर्गे) 'माऽधात्' (मां स्वापयतु)।

कल्पः, 'प्रद्विणमावर्त्तियला यदकन्द् इति पुनरेवाकमवति' इति । पाउस्त,—"यदकन्दः प्रथमं जाबमान उद्यन्तमृहादुत वा पुरीवात्। ग्रेनसा पचा हरिकसा बाह्न उपस्तुतं जनिम तन्ते ऋर्वम् (१)" इति। दे 'ऋर्वन्', 'यत्' (यस्नात् कारणात्) 'जाय-मानः' (अत्पद्यभानः) एव 'प्रथमम्' (चारीः) 'त्रकन्दः' (कन्दित-वानिस), त्रहा त्रम्यादीनामदं साधनमिति महानां बन्दम् भ्रकरोः; 'तत्' (तस्रांत् कारणात्) 'अनिम' 'उपस्ततं' 'ते' (तव जना समीचीनमिति सर्वेरपि स्तुतम्) श्रासीत्। जासमानलमेव विश्वदीकियते,—'धमुद्रात्' 'उचन्' (धमुद्रीपखचितादुदकात् लमु-त्पद्यमानः), 'त्रपुचेानिर्वा अत्रः' इति अतेः। 'उत वा पुरीवात्' (पुंद्ध्व प्रक्रिसम्बद्धात् महतोऽश्वादुत्पद्यमानः)। जन्मन उपस्ततने दृष्टान्तीऽयमुचाते,—'घोनसा पत्ता इरिणसा वाक्न', उपस्ततब्दी-ऽवाधाइर्मवः; यथा ग्रेनाखास पाचणः पचा त्रीचेत्पतन-हेतुलात् सर्वेद्पन्तुता, यथा वा 'इरिषस्य' (स्मरः) 'बाइ' (पादै।) त्रीव्रगमनदेतुलादुपस्ती, तद्ददिखर्चः।

उक्रमन्त्रमाध्यमश्राक्रमणं विधत्ते,—"त्रंशुं बाईखळं मेधी

नेशियानससीऽशिं प्रावित्रत् चे। शिः जान्यो रूपं हालेशियत चे। श्रमं प्रावित्रत् चे। श्रम् स्थावान्तर्यक्षोऽभवद्यस्यमानमयित च एव मेथे। श्रमं प्रावित्रत् तमेवावर्त्ये" (५।१।६ प्र०) रति। पुरा कदाचित् प्रंयुनामानं वृद्दस्यतिपुत्रं केनापि निमित्तेन 'मेथे।' (यञ्चपुद्यः) 'नेश्यानमत्' (न प्राप्तवान्)। स पुनः ग्रंयुना प्रन्वियानमाणे। न्याप्रं 'प्रावित्रत्'। तनायानेवणाय प्रंयावागते सित 'स' चञ्चः ह्यास्यां। स्रत्या तदीयं 'रूपं' सावस्येन 'क्रत्या' 'प्रश्चेः' सकाजात् 'खरायत' (खर्गच्छत्); खद्गत्य च 'सेऽश्चं प्रावित्रत्', प्रविद्य चात्रसम्बन्धनः प्राद्यक्षस्य मध्ये यो। यस्य 'प्रवान्तर्वक्षः', तद्रपः 'प्रभवत्'। ततः 'श्वश्वम्' प्राक्रमयेत्; तथा सित 'यः' यञ्चः 'श्वश्वं 'प्राविज्ञत्', 'तमेव' प्राप्नोति।

प्रकारान्तरेष प्रश्नंसति,—"प्रजापितनाशिश्चेतव्य इत्याद्यः प्राजापत्योऽश्वे यदश्वमाक्रमयित प्रजापितनेवाश्चिं चिनुते" (५।२। ६श्व०) इति । श्रयम् 'श्वश्निः' 'प्रजापितना' चेतुं योग्यः— 'इति' श्वभिद्या 'श्वाद्यः'। श्वश्वस्त्व प्राजापत्यत्वात् तदाक्रमणे सित 'प्रजापितनेव' चिता भवति ।

कच्यः, 'त्रपां प्रष्ठमधीत्यत्रस्य परे पुष्करपर्णमुत्तानमुपद्धाति' हित । पाठन्त,—''त्रपां प्रष्ठमित चीनिरग्नेः समुद्रमितः पित्तमानं। वर्द्धमानं मदः त्रा च पुष्करं दिवा मात्रया विरिषा प्रथस्व^(२)" हित । हे पुष्करपर्णं, लम् 'त्रपां प्रष्ठमि (प्रष्ठवत् उपरिभागवर्त्ती" त्रिस्)। तथा 'त्रग्नेः' 'चे।निः' त्रसि, 'लाम् त्रग्ने

[🝍] सत्र उपरिभागवर्त्ति इति पाठी भवितुं युक्तः ।

पुष्कराइध्यर्था निरमन्थत'इति मन्तवर्णात्। तथा 'समुद्रमभितः' 'पिन्वमानं' (समुद्रसमानस्य तटाकजलस्य प्रीतिकरं), 'वर्द्धमानं' (श्रयूत्पद्य दिने-दिने दिस्युक्तं), 'महः' (निर्लेपलाद्युक्ता पूजनीयं), 'पुष्करम्' (श्रविनिष्पादनदारा पृष्टिकरं)) तादृश्रस्तं "भाजया' (परिमाणेन) 'दिवः' 'वरिणा' (श्राकाश्राद्याधिकोन) 'श्रा' (समन्तात्) 'प्रथस्त' (विस्तृतं भव)।

त्रमेन मन्त्रेण साधं पद्मपत्रोपधानं विधत्ते,—"पुष्करपर्ण-मुपदधाति योनिर्वा त्रग्ने: पुष्करपर्णश्र सयोनिसेवाग्निं चिनुते" (५।२।६ %) इति।

तच मक्तं विनियुक्को,—"श्वपां पृष्ठमधीत्युपद्धात्यपां वा एतत् पृष्ठं चत् पुष्करपर्णः रूपेणैवेनदुपद्धाति" (५।२।६ श्व०) इति । 'रूपेणैव' विद्यमानार्थवाचित्रादनुरूपेणैव मक्त्रेण 'एनत्' पुष्करपर्णम् उपहितवान् भवति ।

कत्यः, ब्रह्म जज्ञानिमिति पुष्करपर्ण उपरिष्टानिर्बोधः रक्यमुपधायं द्रति। पाठन्तु,—''ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरसादि मीमतः
सुरुषो वेन आवः। स बुधिया उपमा अस्य विष्ठाः सतस्य
थे। निममतस्य विवः (४)''दित। 'प्रथमं' 'जज्ञानं' (आदावृत्पन्नम्)द्दं
रक्यास्वरूपं 'ब्रह्म' (परिदृष्टुं आत्यन्तं महिंद्रिष्ट्यर्थः)। तस्य रुक्यस्य
दृष्टान्तत्वेन सूर्यः प्रपद्यते। 'पुरस्तात्' (पूर्वस्यां दिशि) अवस्थितः
'वेनः' (कमनीयः सूर्यः) 'सीमतः' (सर्वस्यां भीक्वि) 'सुरुषः'
(श्रीभनरिक्षविश्रेषेण) 'श्रावः' (श्रादृणे। । 'श्रस्थ' (हक्यास्थ) उप-

^{*} ताद्व संविति पाठे। भवितुं युक्तः।

मानस्ताः) 'विष्ठाः' (विशेषेणाविष्तताः) 'बुधियाः' (बुधे मूखे पृथिवीरूपे भवाः पदार्थाः), तानपि च 'वेनः' 'विवः' (विद्यतवान्, प्रकान्नितवानित्यर्थः)। 'सतस्य' (विद्यमानस्य घटपटादेः) 'थेनिं' (कारणं स्टदादिरूपं), 'श्रमतस्य' (श्रविद्यमानस्य नर्विषाणादेः) कारणं मनुष्यमूद्धादिकमपि विद्यतवान्, तथाविधेन स्र्येण चहुन्ने।ऽयं दकाः प्रकान्नत इति तात्पर्यार्थः।

तिममं मन्तं विनियुद्गे,—''मञ्ज जज्ञानमिति रुक्तामुप-द्धाति मञ्जमुखा वे प्रजापितः प्रजा ग्रस्जत मञ्जमुखा एव तत्रजा यजमानः स्जते" (५।२।०५०) इति। 'मञ्ज' (म्राज्ञण-जातिः) 'मुखम्' (उपक्रमे।) यासां, ताः 'मञ्जमुखाः'।

त्रसिन् मन्त्रे ब्रह्मपदाभिधेयस प्रथमेत्यित्तिवर्णने तात्पर्थे द्र्मयित,—''ब्रह्म जज्ञानमित्याद तसाद् ब्राह्मणे मुख्यः' (५। १।७५०) दति। यसात् चित्यादेर्जनाप्राधम्यमनुपन्यस ब्रह्म- ब्रह्मार्थेव प्रधमजना उपन्यस्तते, 'तसात्' सोकेऽपि ब्रह्मज्ञन्यार्थे। 'ब्राह्मणः' एव 'मुख्यः'।

एतदेदमं प्रश्नंसति,—"मुख्या भवति य एवं वेद" (५।२। ७१४०) इति।

दक्कोपधानं प्रश्नंषित,—"त्रह्मवादिने वदिन न प्रथियां नामरिचे न दिखग्निसेत्य इति यत् प्रथियां चिन्नीत प्रथिवीश इत्वार्पयेक्षेषधयो न वनस्पतयः प्रजायेरम् यदमारिचे चिन्नीता-मारिचश इद्धवार्पयेक्ष वयाशिम प्रजायेरम् यदिवि चिन्नोत दिवश इद्धार्पयेक्ष पर्जन्यो वर्षेद्रकामुपद्धात्यस्तं वै दिरस्वमस्त एवाग्नि चिनुते प्रजाश्ये" (५,१२।७२०) रित । 'ग्रुचार्पचेत्' (समापेन चोजचेत्), तिसान् समापे सित खोकनचे चे देवास्त्रश्चाहत्त्रवे सहेराधारलेन दक्कामुपदच्चात्; दिरखकाग्निसम्पर्केऽपि विनाज्ञा-भावात् तिसान् 'चसते' दिरखे 'चित्रं 'चित्रवान् भवति । चयमेव दक्कोपधानं विद्धातीति चदि खोकियते, तदानीमेतदनुवादेन पूर्वे। सक्तमानविधिः; चंदि त स एव विज्ञिष्टविधिः, तदानीम् चर्चवादसम्बन्धाय स एवानूचत रित द्रष्टयम्।

कचाः, 'चिरक्षनर्भः समवर्त्तारो इति तिसन् दिरप्सं पृद्धं वाचीनमुत्तानं दिण्येनाव्यं प्राप्तु उपधायं इति। पाठस्तु,— ''चिरप्यनर्भः समवर्त्तारो स्वतय जातः पितरेक प्रामीत्। स्व दाधार प्रचिवीं धामुतेमां कसी देवाय चिवत विधेम(६)''इति। 'चिरक्षे' मह्यास्त्रक्षे गर्भक्षेणाविस्तः प्रजापितः 'चिरक्षनर्भः', स्व भ 'स्वतस्य' (प्राणिजातस्य) 'श्रये' 'समवर्त्तत',—प्राणिजातोः त्यत्तेः पूर्वं खयं वरीरधारी सस्त्व, स भ 'जातः' (अत्यस्त्रमानः) 'एक' एवे।त्यत्यसमानस्य सर्वस्त्र जगतः 'पितः' 'प्राचीत्'। प्रत एव 'प्रचिवीं' 'खां' (विस्तीर्था दिवं) 'दाधार' (धतवान्)। 'खत' (प्रपि च) 'इमां' (स्तिने) 'दाधार'। तादृष्ठाय 'कसी' (प्रजापित)—'देवाय' 'चिवता' 'विधेम' (परिचरेम)।

एतकाकारायं हिरण्सयपुरवीपधानं विधन्ते,—"हिरण्यायं पुरवनुपद्धाति यजमानस्रोकस्य विधत्ये" (५।२।७५०) इति ।

^{*} बीकियेत हित उ. मु॰ पाठः।

'चत्रमान खेत्व ख' (खेताः खानं तकः) धार्यमनेने । वधाने च भवति ।

देशविश्रेषं विभन्ते,—"यहिष्टकाचा श्राष्ट्रसमृपदस्यात् पत्रृगाञ्च व्यवमानस्य च प्रावनपिद्धाद् इचित्रतः प्राञ्चमुप-द्धाति दाधार यजमान हो कंन पश्चनाच चललान छ प्रायमपिद्धात्वचा खन्तिष्टकाचा प्राष्ट्रचमनूपद्धाति प्राचानाम् **चस्**चे" (५।२।७घ०) इति । इटका क्**का**क्पा, त**मा 'माहवं'** नसन्धनस्थार्थे हिद्रं, यदि तिष्क्रम् 'त्रनूपर्थात्', श्रस हिट्रस पिक्षानेन 'पंजूनां' 'बजमानस' 'च' प्रासः पिदिता भवेत्,-प्राचनचार्ष्क्रिस्क पिहितलेन याचा न निर्गक्केदित्यर्थः। तकात् तद्देषपरिचाराय पश्चिमदिग्भाने तक्तिद्रमुपेका रकारपाचा रष्टकाचा रिजयां रिप्रि प्राक्षिरपं पुरवस् पवलापबेत्। एवच सति बाइक्नीयस द्विबदेशहरी है। वजमानस्य स्रोकः, व विष्टता भवति, तिस्त्रसानावृतलात्, 'यजमानख' 'पशूनाञ्च' प्राणे। उपनाष्टते। भवति । 'त्रथे।' 'ब्रुं'-रति पचाक्तरीपव्यावः, - द्कार्याचा 'रहकाचाः' हिट्रमन्प-बच्चीव पुरुवमुपद्धात्। यति दि किहे 'प्राचानाम्' उत्पर्णः (यश्वारा) भवति ।

कराः, 'द्रपाश्चक्कन्देति पुरवमिमस्याः' इति । पाठाह,— द्रपाश्कान्द प्रचिवीमन् धामिमश्च चीनिमन् पश्च पूर्वः । हतीयं चीनिमन् सञ्चरकां द्रघां जुह्यामान् यत्र है। चाः(())" इति । द्रशामारसङ्गद्दनेन क्षुटितो हिरायस्यपुरवश्चाक्यवद्येतः 'द्रपः', स च 'पृथिवीमनु' 'चस्कन्द' (पृथियां पतित इत्यर्थः)। स च 'द्रपः' इतः सन् खानचये 'चनु'-'मञ्चरति',—चुलेकिऽन्तरिच-क्षोके असोके च। तदेतद्भिप्रेत्य सार्यते,—

"त्रग्री प्रासाङ्गतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठति ।

श्वादित्याकायते दृष्टिर्दृष्टेरशं ततः प्रजाः"॥इति (मनु॰)।
वाऽयमर्था 'द्याम्' इत्यादिनाऽभिधीयते,—'द्यामिमञ्च योनिमनु'
(श्वनारिचरूपम् 'इमं' खानम् 'श्वनु'-धञ्चरति); 'यद्य पूर्वः' (यो दि
'पृथिवीमनु चस्कन्द' इति पूर्वेक्तः खानविष्ठेषः), तर्माप 'श्वनु'धञ्चरति; 'द्वतीयं योनिं' (धुक्षोकमादित्यखानम्) 'श्वनु'-धञ्चरति,
तम् इमं चित्रु खानेषु 'श्वनु'-'धञ्चरन्तं' 'द्रष् जुक्षे।मि' (मनवा
क्वतमिव भावयामि)। कुच होमः ?—तदुच्यते,—'धप्त हे।चाः'
इति। यखां दिन्नि 'द्रषः' पतितः, तद्वातिरिका होमयोग्याः
धाः धप्त दिश्वः धन्ति, ताधामनुक्रमेष 'जुहोमि'। धधाऽयं द्रषः
कत श्वादित्यादिखानचयेषु धञ्चरश्वपकरोति, तथा भावयाभीत्यर्थः।

तिममं मन्तं विनियुक्के,—"द्रपाश्यक्कन्देत्यभिस्त्रति होना-स्वेवैनं प्रतिष्ठापयति" (५।२।७ म •) इति । 'होनासु' (होट-मैनावरणादिषु वप्तसु, श्रयवा द्रपास्कन्दनदिग्यतिरिक्कासु होमयोग्यासु वप्तसु दिखु) ।

कचाः, 'नमे श्रस्त सर्पेश्व इति तिस्तिश्विश्वस्ताः' इति। तत्र प्रथमामाइ,—''नमे। श्रस्त सर्पेश्वा ये के च प्रथिवीमनु। ये श्रम्तिको ये दिवि तेश्वः सर्पेश्वा नमः(⁹⁾'' इति। 'वे' केचित् सर्पाः 'प्रथिवीमनु'-गताः, 'तेभ्यः' 'सर्पेभ्यः' 'नमः' 'त्रस्तु'। 'श्रम्मरिचे' (यचगन्धर्वादिस्रोके) वर्त्तमाना 'ये' सर्पाः, 'ये' 'च' 'दिवि' (खुलोके) वर्त्तमाना राज्ञप्रस्तयः, 'तेभ्यः' 'वर्षेभ्यः' 'नमः' 'त्रसु'।

त्रय दितीयामाइ,—''येऽदो रोचने दिवा ये वा सर्थस रिक्षाषु । येवामपु सदः इतं तेभाः सर्पेभी नमः(^{८)}" इति । 'दिवः' (श्रमारिचस्व) 'रोचने' (भाषके) 'श्रदः' (श्रमुक्तिन) 'सूर्यस्य' मण्डले 'ये' सर्पा वसन्ति, 'ये' चान्ये 'सूर्यस्य रिक्षाषु' (श्रमाभिरदृश्यमाना वर्त्तनो), 'येषाम्' (श्रन्येषां वर्षाणाम्) 'त्रप्' (जलमधे) 'सदः' (खानं) 'हतं', 'तेभ्यः सर्पेभ्यः' (हत्द्वेभ्यः) 'नमः' श्रस्त ।

श्रय हतीयामाइ,—''या द्ववा यातुधानानां ये वा वनसाती हरनु। ये वाऽवटेषु भेरते तेभाः सर्पेभी नमः(९)" इति। 'याः' सर्पेकातयः 'यातुधानानां' (रचसाम्) 'दघवः' (वाणरूपाः) वर्त्तमो, 'चे वा' श्रन्ये 'वनसातीन्' (चन्दनादि रुचान्) 'श्रृनु'-वेख त्रविखताः, 'ये' चान्ये 'त्रवटेषु' (विखेषु) 'ग्रेर्ते', 'तेभ्यः' 'बर्पेभ्यः' 'नमः' श्रस्तु । एते मन्त्राः स्पष्टार्घलात् ब्राह्मचे चपेचिताः ।

यथा पुष्करपर्णस्काचिरप्सयपुरुषे।खानामस्त्रायेष्टकानामुप-धानं वि**चितं, तथैव सुचारस्टकायेष्टकये।**क्पधानं विधक्ते,— "सुचाबुपदधाति" (५।२।७५०) इति ।

तथा: खुचयार्विभेषणं दर्भयति,—"त्राज्यस्य पूर्णां कार्मर्थ-

मवीं इमः पूर्णामीद्वत्रीम्" (५।२।७म •) इति । श्रीपर्शस्था दृष्ठित्रेषः कार्मर्थः, तेन निर्मिता काचित् सुक् 'कार्मर्थमयी'। या चाच्येन पूर्णाः उदुम्बरेष निर्मिता काचित्, या च दभा पूर्णाः। एतहुणवित्रिष्टयोः सुचे।इपधानस्थ विधानान्न वाक्यभेदः प्रकृतियः।

ते च वित्रिष्टे सुचै। स्रोकदयस्पेस प्रशंसति,—"दसं वै कार्जर्यमव्यसावीदुमरीमे एवापधत्ते" (५।२।०५०) इति।

इष्टकान्तरोपधानवसमन्त्रतस्य बद्धां सै। किकवाकां निवार-बितुं विधत्ते,—"द्वस्थीमुपद्धाति न हीमे बजुवाप्तमईति" (५।२।७५०) इति । वस्ताद्याती मन्त्री नास्ति, तस्ताद् 'वजुवा' (मन्त्रेष) एते खपधातुं 'न' 'म्रईति'।

तथेर्दिम्बिवे विधत्ते,—"दिष्णं कार्यर्यमयोमुत्तरामीदु-मरीं तसादका श्रमावृत्तरा" (५।१।०१०) इति। यसाद् युक्तेकरूपा उद्दुन्तरी सुगुत्तरक्षां दिम्मुपहिता, 'तसात्' स्रोकेऽपि 'सदी' (दीः) 'श्रसाः' (पृथिद्याः) 'उत्तरा' (ऊर्द्धभाविनी)।

व च दिम्बिनेषः स्वकारेच साष्टमभिष्टितः, 'पाच्यस पूर्वा कार्ज्ञर्थमवीं दिच्छेन पुरवमुपद्धाति दश्रः पूर्णामे। दुम्बरोमुत्तरेच पुरुषम्' दति ।

प्रकारा नारेण सुम्बिग्रेवं प्रश्नंत्रति,—''त्राच्याचा पूर्णी कार्पर्य-सर्वी बच्ची वा त्राच्यं वजाः कार्प्ययो वज्रेचेव यज्ञसा द जिस्ती।

^{*} दभ्रः हति चादर्भपृक्तकवाठः।

[†] स्वमेव सर्वेच पाठः। प्रश्नया हति तु भवितुं युक्तः।

रबाष्ट्रक्षपद्यम् दक्षः पूर्णाभादम्मरी पत्रका वै दक्षि छर्क्छदुम्बरः पद्मुख्येवे। अ दक्षाति" (४।२।०५०) इति ।

भाज्यस्य वज्जनं तानूनप्रवाश्वये समाचातम्, 'घृतं ससुवै देवा वज्जं छता साममञ्जन्'रति।

कार्मर्थस्य रचोपघाते(?) देतुनादज्ञलं, तदणातिस्य बाद्याचे समासातम्, 'ते कार्मर्थमधान् परिधीनसुर्वत तैर्वेते रचाप्र-सपान्नना' इति ।

सुचे। देशाका पूर्णलं प्रशंसति,—"पूर्णे उपदधाति पूर्णे एवेनम् श्रमुश्चित्ते उपतिष्ठेते" (५।२।७२०) रति ।

सुगुपधानं प्रमंति,—"विराज्यशिसेतस रत्याङः सुमै विराट् यत् सुचानुपदधाति विराज्येवाशि चिनुते"(५।२।७५०) इति। विविधे राजमाने प्रदेशे चेतकोऽशिरित्यभिष्ठा 'श्राइः'। 'सुक्' चाळ्यादिपूर्णलात्" विशेषेण राजते, तसात् तच चयनाय 'सुचै।' खपदधात्।

पात्र को सरवेदिवह का स्थापिर व्याघारणं विधस्ते,—"वज्र मुखे वज्र मुखे वे कियमाणे वज्र रचा एसि जिया एसिन वज्र मुख एक्षो व्यापारयित वज्र मुखादेव रचा एक्षपदिना" (५। १।०५०) दति। वज्र समस्थित एकैक स्थाप्त स्वापारयित वज्र मुखान् रवा मुखान् पत्र प्राप्तानां रचसाम् अतो दक्षोपधानकापि वज्र मुखलात् तत्र प्राप्तानां रचसाम् उपचाताय व्याघारयेत्।

^{*} पूरवात् इति चादर्भपुत्तकपाठे। न सन्यक्।

'हणुष्यपाज(?) इति पश्चिमः' इति स्वकारेष थे मका उदाइतासानव विनियुक्के,—''पश्चिमर्याघारयति पाक्को यश्चो यावानेव यश्चससाद्रचा स्थपहिना" (५।२।०१०) इति। 'धानाः करसः' इत्यादिभिर्दविर्भिर्यः(?) 'पश्चिमः' यश्चस पाक्कलम्।

स्वकारेण, 'दिण्णमः समुक्तराः त्रीणं दिण्णं से। पिम् उक्तरमं संस्थिति' इति पाग्रुकोक्तरवेदिस्थाधारणे येयं वक्ष-रीतिक्का, तामच विधक्ते,—"मद्याया स्थाधारस्थित तस्मादद्याया पण्णवाऽङ्गाणि प्रदक्ति प्रतिष्ठित्ये" (५।१।७५०) इति । 'श्रद्याया' (वक्षरीत्या)। श्रत एवाधारस्य विविधतात् स्थाधा-रणमित्युच्यते, स्थादाधारणे वक्षक्षमः, 'तस्मात्' 'पश्रवः' गमन-काले स्वकीस्थागाङ्गाणि वक्षरीत्या 'प्रदर्शन' (प्रवक्षयन्ति),— पुरेविक्तनं दक्षणं पादं पुरतः प्रचिष्य पाद्यात्यं वामपादं पुरतः प्रवक्षयिक्ता तस्मात् प्रतिष्ठाये तदिदं वक्षत्वं सम्पद्यते"।

त्रव विनिये। गमंग्रहः,—
त्रभ्यसं क्रमयेहभें, यदाष्ट्रितः प्रद्विषम् ।
त्रपां, दध्यात् पद्मपनं, ब्रह्म, दक्कोपधानकम् ॥
दिर, स्वर्षमयं दध्यात्, द्रप्र,-सस्याभिमर्गनम् ।
नम,-स्विभिर्मन्त्रयेत मन्ता श्रव नवेरिताः॥

द्दति सायनाचार्यविरचिते माधवीये वेदार्धप्रकाणे कृष्णवजुः-संहिताभाखे चतुर्थकाण्डे दितीयप्रपाठके चष्टमाऽनुवाकः॥ •॥

संपाचते इति बादर्शमुक्तकपाठः।

भ्रवासि धुरुणाऽस्तृता विश्वकर्मणा सुक्रता। मा त्वा समुद्र उद्देधीन्या सुपर्णी व्यंथमाना प्रथिवी है रह (१)। प्रजापतिस्ता सादयतु प्रथियाः पृष्ठे व्यचस्तर्ती प्रयंखतीं प्रयोऽसि पृथियंसि भूरंसि भूमिर खदिति-रित विश्वधाया विश्वस्य भुवनस्य धर्नी प्रशिवी यंच्छ पृथिवीं है इ पृथिवीं मा हि सीर्विश्वसी प्राणार्यापानायं व्यानार्यादानायं प्रतिष्ठार्ये ॥ १ ॥

चरिचायाग्रिस्वाभिषातु मुख्या खुस्या छुदिषा शन्तेमेन तया देवतयाऽक्रिर्स्वद्ववा सीद^(२)। कार्यडात् काण्डात् प्रदेश इंन्ती पर्हवः पर्ह्यः परिं। युवा नी दूर्वे प्रतंतु सुइसेंग शतेन च^(२)। या शतेन प्रतृनीर्षि सुइसंग विरोहित। तस्यास्ते देवोष्टके विधेम इविषा व्यम्(१)। अषाढासि सहमाना सहस्वारीतीः सई-खारातोयतः(६)। सङ्ख् प्रतंनुाः सर्हस्य प्रतन्युतः। सहस्वीर्या॥ २॥

श्रुसि सा मा जिन्व^(६)। मधु वार्ता ऋतायते मधुं श्वरन्ति सिर्ख्यं । माध्वीर्नः स्नवे। षंधीः (°) । मधु नक्तमुतावसि मधुमृत् पार्थिव् रर्जः। मधु द्यारेल् नः पिता । मधुमाद्या वनुस्पतिमधुमार अस्त ह्याः। माध्वोगीये। भवन्तु नः(८)। मुद्दी श्रीः पृथिवी च न

इमं यज्ञं मिमिश्चतां। पिष्टुतां ने भरीमिभः(१०)। तिद्विष्या परमं॥ ३॥

पदश् सदी पश्चित्त सूर्यः दिवीव चक्षुरातंतं (११)।
भुवाऽसि प्रिवित्त सद्देख प्रतन्दतः । स्यूता देवेभिरुम्त्तेनाऽऽगाः (१२)। यास्तं चम्ने स्वर्धे क्चं उद्यता दिवेमात्त्वितं रुग्मिभिः । ताभिः सवीभीक्चे जनीय नः
क्षि (१२)। या वी देवाः स्वर्धे क्चो गोषश्चेषु या क्चः।
दन्द्रीमी ताभिः सवीभीक्चं ना धन्त सहस्पते (१३)।
विराद ॥ ४॥

ज्योतिरधारयत् समाट् ज्योतिरधारयत् ख्राट् ज्योतिरधारयत् (॥)। अग्ने युक्ता हि ये तवाश्वासा देव साधवं:। अर् वर्षन्त्याणवं: (१०)। युक्ता हि देव् हतमा अश्वार्थ अग्ने र्योरिव। नि होता पूर्वः संदः (१०)। द्रपर्यक्तन्द प्रिव्वीमन् चामिमञ्च योनि-मनु यञ्च पूर्वः। तृतीयं योनिमन् सञ्चरेन्तं द्र्षं जुहे। स्यन् स्ता ॥ ५॥

होचीः (१०) । अभूदिदं विश्वस्य भुवनस्य वाजिन-मुग्नेवे श्वान् रस्यं च । श्रुग्निज्यो तिषा ज्योतिषान् क्को वर्षसा वर्षस्वान (१८) । स्ट्वे त्वां क्वे त्वा (१०) समित्स्विनित सुरितो न धेनाः । श्रुन्तस्वदा मनसा

पूर्यमानाः। घृतस्य धारी ऋभि चाकशीमि हिरुखया वेत्रो मर्थ त्रासां (११) । तस्मिन् सुपर्गी मधुक्रत कुलायी भननास्ते मधु देवताभ्यः। तस्यासते हर्यः सुप्त तीरे, खुधां दुई।ना भूष्टतस्य धारां(११) ॥ n é n

मृतिष्ठाये । सुइसंवीया । पर्मं । विराद् । सुप्त । तीरें। चुलारिंच ॥ ८॥

इति तैतिरीयसंहितायां चतुर्थकाएडे दितीयप्रपाठके नवमाऽनुवाकः॥ • ॥

श्रष्टमेऽन्याके पृष्करपर्णाद्यस्पस्येष्ठकोपधानमुक्तम् । श्रयं ववमे खयमाष्ट्रबादीष्टकीपधानमुच्यते । कस्पः, 'श्रुवासि धरुणा-सृतेति खयमाद्रसामभिष्टस्थाश्वेने।पन्न।य प्रजापतिस्ता साद्यतु पृथिचाः पृष्ठ इत्य विदुषा अश्वाणेन यह मधेऽग्रेइपद्धाति' इति। तचा भिमर्शन मन्त्रपाठस्त,—''भुवासि धरुषाऽसृता विश्वकर्मणा सुक्रता। मा ला समुद्र उद्दधीना सपर्वे।ऽव्यथमाना प्रथिवी हु १ इ^(१)" इति । हे खबमाहणे, लं 'भुवा' (खिरा) 'श्रवि' । की दृत्री ?—'धरूषा' (भूमिरूपेष विश्वस धारयित्रो), श्रत एव 'श्रस्तृता' (केनापर्सिसता), 'विश्वकर्मणा' (जगत्कर्चा) 'सुक्रता' (सृष्टु निर्मिता); 'ममुद्रः' लां 'मा' 'उदधीत्' (खोदरमधे 2 K 2

मञ्चनस्थां बन्धं मा कार्वीत्); 'सुपर्णः' (पिचराजः) श्रपि वर्षे दूरविसायां सामादाय 'मा' 'खदधीत्' (हूरे परित्यान-स्वयं बन्धं मा कार्वीत्); एवं यति 'श्रव्यथमाना' (भवरिहतः) सं 'पृथितीम्' दमां 'हुँ ह' (दृढीकुरः)।

खपधानमन्त्रपाठसु,—"प्रजापतिस्वा मार्यतु पृथियाः पृष्ठे श्चचखतीं प्रथखतीं प्रधाऽवि प्रथियवि भूरवि भ्रमिरस्रदिति-रिम विश्वधाया विश्वस्त भुवनस्य धर्नी प्रश्चिवीं यच्छ पृथिवीं **दृ** १ प्रथिवीं मा हि १ सीर्वियसी प्रामायायानाव वानायादानाय प्रतिष्ठाये। परिचायाग्निस्साभिपातु मञ्चा सस्या हर्दिया प्रकामेन तथा देवतथाऽप्रिरखर्भुवा सीद^(२)" रति । हे खयमाहस्त्रे, 'प्रजापतिः' लाम् ऋस्मिन् प्रदेशे 'पृचिचाः' उपरि 'मादयतु'। की दृष्टी लां ?—'यच खतीं' (विसारयुक्तां), 'प्रथखतीं' (पृथुखां), 'प्रचाऽसि' श्रसाखितेः (प्रचर्न विकारक्पमसि), लया हि चितेर्विकारो भवति ; पृथियामुत्पन्नतात् 'पृथियविः' । 'भूरिः युखानां (भावियव्यपि), 'भूमिर्पि' (सृप्तयपृथ्वियभिमानी *-भूमिदेवताऽिष), 'श्रदितिरिष' (श्रवाखनीयाऽिष)। 'विश्वधायाः' (विश्वस्य पेषिश्वस्यिश्व), तथा 'विश्वस्य' 'भुवनस्य' (सर्वस्रोकस्य) 'भर्नी' (भारयिको) ऋसि। तादृत्री लं 'पृथिवीं' 'यक्क्' (निवर्ता कुर); 'प्रचिवीं' 'हुँद' (दृदीकुर), 'प्रचिवीं मा सिंसीः'

^{*} स्यायप्रधिविभिमानीनि इति उ. पु॰ पाठः। स्यायप्रधिविभि-मानि-इति पाठो भनितुं युक्तः।

(पृथिषा हिंगं मा कुर)। 'विस्था' (पर्वसी) प्राणापानयानी-दानाख्यवायुटिनिंसाभाय, 'प्रतिष्ठाये' (खग्टहिखितिसाभाय), 'चरित्राय' (ब्रान्तीयाचरबसाभाय)। प्राणिनामेतस्य सर्वस्य सिद्धार्थम् त्रयम् 'त्रिश्चः' लामभितः 'पातु'। केन रखबम् दृति?— तदुच्चते,—'मद्धा खस्या' (महत्या योगचेमसम्म्या) 'प्रक्रमेन' 'हर्दिवा' (त्रत्यनसुस्कारिणा दीप्तिविशेषेण) तव स्वामिभूता या देवता, 'तया' अनुगृहीता लं 'भुवा' (स्विरा) सती 'सोद' (दह्रोपविष्ठ), 'अक्रिरस्वत्' (बिक्ररसां चयनानुष्ठाने यथा लं भुवा (स्विरा), तदत्)।

एतसम्बर्धाधमुपधानं विधन्ते,—"खयमाहवामुपद्धातीयं वै खयमाहवेमामेवोपधन्ते" (५।१।७२०) इति । प्रक्रिंग-ख्वानां चुद्रपावाषानां मध्ये पुरुषप्रयक्षमन्तरेष या खत एव क्रिद्रयुक्ता, वेयं प्रक्री 'खयमाहवा', तामवे।पद्धात्। वा च खयमाहवा प्रथिवोजन्यतात् प्रथियोव, त्रातः प्रथिवीमेवे।पधने ।

तस्याः स्वयमाद्यसाया चये।पघूषणं विधत्ते,—''चयम् उपघूषयति प्रावसेवासां द्धात्ययो प्राजापत्यो वा चयः प्रजापतिनैवाग्निं चिनुते'' (५ १ १०५०) रति ।

श्रन्तरसा रष्टकायाः स्ताःसिङ्क स्विद्धं प्रगंपति,—"प्रयसे-प्रकापधीयमाना पश्रूनाश्च यजमानस च प्रायमपिद्धाति स्वयमाद्यस भवति प्रायानामुख्या श्रथो सुवर्गस स्रोक्स्या-नुस्कार्त्ये" (५।२।७२०) इति । पुष्करपर्णादिषूपधेयलसास्येन रहकालम्पचितं। 'स्वयमाद्या' तु यद्यपि पुरुषेरनिर्मिता, तथापि तसा रष्टकालं मुख्यमित्यभिष्रेत्य मुख्यासिष्टकासस्याः प्राचम्यमुच्यते । प्रचमा रष्टका उपधीयमाना सती प्रमूनौ यजमानस्य च मासं निक्थात्, म्रतः मासस्य निर्गमनाय स्रतःसिङ्क च्छित्र युक्ता कार्या। 'त्रयो।' (त्रपि च) सच्छित्र वे सति भावरणाभावात् खर्गकाेकाऽपि प्रकाश्विता भवति ।

चदुक्तं स्वकारेण,'ऋविदुषा ब्राह्मणेन वह मध्येऽग्रेरूपद्धाति' इति। तदेतदिधन्ते,—"श्रगावग्नियेतय इत्याक्तरेष वै श्रग्नियानरा यद् बाञ्च पत्सी प्रथमामिष्टकां यजुम्कृतां प्रयच्छेत्रां बाञ्च एश्ची-पदभ्यात् तामग्रावेव तदग्रिं चिनुते" (५।२।७५०) इति। भग्निमेवाधारं स्वता तिसान् 'श्रग्नी' एवायम् 'श्रीश्चेतय इति' भभिज्ञा 'बाज्ञः' । तस्य क खपायः इति ?—तद् खते,—योऽयं त्राञ्चषः, य एवाधारभूतो वैयानरनामके।ऽग्निः, त्रग्नेत्रेज्ञाषाभि-मानिदेवलार् नाञ्चषकाग्निनम्। त्रते।श्रीकपक नाञ्चषका इसी मन्त्रमंक्कतां खर्यमाद्रवां ददात्। ततः स त्राह्मचा-उध्यर्थेय मिलिला 'ताम्' उपदध्यातां, तावता श्रविशिता भवति ।

यदुक्तं समकारेष, 'मनिदान् त्राह्माषो वरं ददात्येकं दै। चीन् वा' इति । तदेनदिधत्ते,—''ई खरो वा एव चार्त्तिमार्त्ती चाऽविदानिष्टकामुपद्धाति चीन् वरान् दचात् चया वै प्राणाः प्राणानाए स्रात्ये दावेव देथी दे हि प्राणावेक एव देथ एको हि प्रापः" (५।२।७५०) इति। 'वः' खयम् 'प्रविदान्' यन् खबमाद्रवाम् 'इष्टकामुपद्रधाति', य 'एवः' 'त्रार्त्तिम्'

त्राप्तुं समर्था भवित । त्रतसात्पि हारायाध्वर्धवे वरदानं कुर्थात्। वरत्रब्देन श्रेष्ठलाड् गाँक्ष्यते। चोन्, दी, एक:-इति पद्मा विकल्पिताः। प्राणेऽपाने। यान इति विलं; यानमन्न-भीय प्राणापानाविति दिलम्; त्रपानमन्तर्भाय प्राण राधेकलम्।

कस्यः, 'काण्डात् काण्डात् प्ररे। इन्नीति दाश्यां दूर्वेष्टकाम्' इति।
'खपदध्यात्' इत्यमुवर्त्तते' इति । तत्र प्रथमामाइ,—''काण्डात्
काण्डात् प्ररोधन्ती पद्यः पद्यः परि। एवा नो दूर्वे प्रतनु
यहस्थेष प्रतेन स्व^(१)'' इति। 'काण्ड'-प्रब्दः सम्बवाची। 'पदः'प्रब्दः (पर्ववाची)। यावनाः काण्डाः (सम्बाः) यन्ति, तन्नैकैकसात्
सम्बात् प्रकर्षेष दूर्वा खत्यद्यते; एकसिम्निप सम्बे यावन्ति पर्कृषि
(पर्वाणि) यन्ति, तेब्वेकैकस्य पर्वषः परितः प्रकर्षेण दूर्वा खत्यद्यते।
हे 'दूर्वे', लं तत्त्रस्काण्डात्यलात् तत्त्रत्यविष प्रकर्षेणात्पद्यमाना
वर्त्तवे। 'एव' (एवमनेन) प्रकारेष 'नः' (श्रसाद्ये) प्रतसक्नाकेन सहस्रमक्नाकेन च लदीयभेदेन लत्स्वरूपं 'प्रतनु'
(प्रकर्षेष विस्तृतं कुरः)।

श्रथ दितीयामाइ,—''या मतेन प्रत्नोषि महसेष विरोहिष। तस्मास्ते देवीष्टके विधेम हविषा वयम्(४)'' इति। हे दूर्वे, 'या' लं मतस्क्राकेन स्वरूपेष 'प्रतनोषि' (त्रत्यन्तं विसारयिष)। तथा सहस्रक्राकेन त्राकारेष 'विरोहिष' (विविधमुत्पद्यते) । हे 'दृष्टके' 'देवि' 'तस्मास्ते' 'वयं' 'हविषा' 'विधेम' (परिचरेम)।

^{*} विविधमुत्यविद्यति भवितुं युक्तः।

एतकाकादयगाध्यमुपधानं विधक्ते,—"पश्चितं एव यद्शिनं सन् वै पश्चव श्रा-यवि रमको दूर्वेष्टकामुपदधाति पश्चनां ध्रत्ये" (५।२,०१०) रति । पश्चमाप्तिष्ठेतुलादग्नेः पश्चलम्। रवदर्यवाची श्राङ्। यवश्चदो वागवाची। श्रव्यवाचे प्रदेशे पश्चवा नैव 'रमक्ते'; श्रतः पश्चनां धारणाय वागक्यां दूर्वेष्टकामुपदधात्।

तसास सर्पं सन्कारेणामं, 'सम्रोष्टः इरितं दूर्वासम्मर् सप्रक्रिसायम्' इति ।

मन्त्रद्यं प्रश्नंपति,—''दाभ्यां प्रतिष्ठित्ये" (५।२।७२०) इति । प्रथममन्त्रस्य प्रथमपादार्थः प्रसिद्ध इति दर्भयति,—''काष्डात् काष्डात् प्ररोहकीत्याद काष्डेन काष्डेन द्वीवा प्रतितिष्ठति" (५।२।७२०) इति ।

दितीयेऽर्द्धे सदसम्ब्तात्पर्ये दर्भयति,—"एवा ना दूर्वे प्रतन् सदस्य मतेन चेत्याद साइसः प्रजापतिः प्रजापतेराष्ट्री" (५।२।०१०) दति। सदस्यस्माकप्रास्त्रात्मायुत्पादकलात् प्रजापतेः साइस्रतम्।

कस्यः, 'श्रवादासीति दाश्यामवादामुपरिष्टाश्वस्यकाम्' इति । उपदध्यादिति श्रेषः । तत्र प्रथमामात्र,—'श्रवादाऽसि सदमाना सदस्यारातीः सदस्यारातोयतः(६)'' इति । अस्यानिर्माणकास एव श्रेष्टामष्टका निर्मिता, भ्रेथम् 'श्रवादा'; तथा च स्वस्कारेणेकिं, 'य असां करेति सेऽबादामेतस्या एव स्टरस्टब्सीं चतुरश्रां श्रासिखितामिष्टकाम्' इति । हे इष्टके, लम् 'श्रवादा' (केनापि श्रपरिश्वता), 'सहमाना' (विरोधिनः परिभवन्तो) 'श्रसि'। श्रे श्रक्षाओं दातवां न प्रयक्ति, तथाविधान् श्ररातीन् (सनून्) 'सद्द्व' (प्रतिभव)। ये तु पूर्वमरातयो न भवन्ति, इतः परम् श्ररातिनमिक्ति, ताविष श्ररातीन् (अपून्) 'सद्द्व' (परिभव)।

श्रय दितीयामाइ,—"महस्त प्रतमः सहस्त प्रतम्यतः। सहस्रतीर्थासि सा मा विम्न(१)" इति । हे इष्ट्रने, 'प्रतनाः' (वैरिसेनाः) 'सहस्त' (परिअव)। ये तु पूर्वे सेनारहिता श्रीप वैरिस इतः परं सेनामिक्हाना, तानपि 'प्रतन्यतः' वैरिसः 'सहस्त' (परिअव)। (सहस्र सङ्क्षाकं वीर्षे यसाः सा) 'सहस्त-वीर्थाऽसि'; 'सा' (ताहृश्ली) तं मां 'जिन्न' (प्रीएय)।

त्रमध्यसिरेकाभ्यामगादायाः स्वापनप्रकार विश्वेषं विभन्ते,—
"देवलकां वे त्रालिखिता तमुत्तरलक्षाणं देवा लपाद्धताधरसक्षाणमसूरा यं कामयेत वसीयाग्यादित्युत्तरलक्षाणं तस्त्रोपदथादसीयानेव अवित यं कामरोत पापीयाग्यादित्यधरलक्षाणं तस्त्रोपदधादस्वरयोजिमेवेनमनु पराभावयित प्राणीयान् अवित"
(५।२।८००) इति। यस्ताम् त्राद्धायाम् इष्टकायां चिपु प्युवद्वेस्वानसं, वेयं 'व्यालिखिता', तत् त्रालिखितनं देवानां चिक्नं। तते। देवासामगादाम् ऊर्डदेशवर्त्तिचिक्नयुक्ताम् 'लपादधत'। 'त्रसुराः' तु त्रधोदेशवर्त्तिचिक्नयुक्ताम् 'लपादधत'। तसाद् देववत् धनसम्बद्धार्थमूर्डभाविचिक्नयुक्ताम् 'लपादधत'। तसाद् देववत् धनसम्बद्धार्थमूर्डभाविचिक्नयुक्ताम् 'लपादधत'। तसाद् देववत् धनसम्बद्धार्थमूर्डभाविचिक्नयुक्तामेव 'लपदधात्'; से। ध्यमन्वयः। अस्तरतत् त्रधोमुखिक्कले सित 'एनं' (यजमानम्) अस्तरजात्यन्सारिणं क्रवा पराभ्यतं करे।ति।

श्रय देविषिष्ठं विधन्ते,—"श्रासिखिता भवतीमे वे लेका-स्थालिखितेभ्य एव लेकिभ्ये। आष्ट्रयममारेति" (५।२।८श्र०) इति। तिस्रिभरङ्गाखिभिर्लिखिता 'श्रासिखिता', तथाविधां कुर्यात्; तथा यति चिलयास्याक्षेकचयक्षा भवति। तेम लेकिचयाद् आष्ट्रयः निःसारितो भवति।

कस्यः, 'मधु वाता स्तायते इति तिस्भिर्दधा मधुमित्रेष कूर्ममध्यय' इति। तत्र प्रथमामाइ,—"मधु वाता स्तायते मधु खरिन विश्ववः। माध्वीर्गः वन्तेषधीः(०)" इति। स्तं (यज्ञं) त्रात्मन इस्कृतीति 'स्तायत्', तस्मे (यजमानाय) 'वाताः' (वायवः) 'मधु चरिन्त' (मधुरं रसं स्नावयिन्त)। 'विश्ववः' (समुद्राः) च मधुरं रसं स्नावयिन्त। 'त्रोषधीः' (त्रोषधयः) त्रिपि 'नः' (त्रस्नद्धें) 'माध्वीः' (मधुररवापेताः) 'सन्तु'।

ष्रण दितीयामा इ.— "मधु नक्तमुतीषि मधुमत् पार्थिवश् रजः। मधु धौरस्त नः पिता (म)' इति। 'नक्तं' (राजा) 'मधु' श्रस्ताकम् 'श्रस्त'। 'खत' (श्रपि च) 'खषि' (प्रभाते) 'मधु' 'श्रस्त'। तथा यत् 'पार्थिवं रजः', तस्तवें 'मधुमत्' (माधुर्य-रचे।पेतम्) 'श्रस्त'। 'नः' (श्रस्ताकःं) 'पिता' (पिहस्तानीया) 'धाः' 'मध्यस्त' (मधुररमे।पेतोऽस्त)।

त्रच हतीयामाइ,—''मधुमान्नो वनस्यतिर्मधुमाः त्रस सर्चः। माध्वीर्गावी भवन्तु नः(९)" इति। 'वनस्यतिः' (त्रस-त्वादिः) 'नः' (त्रसाद्धें) 'मधुमान्' 'त्रस्तु' (माधुर्यर्शेपेताऽस्तु)। 'सर्चः' त्रपि 'मधुमान्' (सन्तापराहित्यस्वस्त्रमाधुर्यर्शेपेता- ऽस्तु)। तथा 'गावः' 'गः' (श्रस्ताद्धे) 'माध्वीः'(मधुरचीरापेताः) 'भवन्तु'।

कराः, 'मही चाैः पृथितो च न रित पुरसात् खयमाद्यवायाः प्रत्यश्चं जीवनां कूर्में प्राङ्गुख उपद्धाति' रित । पाठस्त,— "मही चाैः पृथितो च न रमं यश्चं मिमिन्नतां । पिपृतां ना भरीमिभः' रित । 'मही चाैः' येथं (महती चाैः) 'पृथिती' 'च' (द्यावापृथिती), ते उभे 'नः' (श्रस्तदीयम्) 'रमं' 'यश्चं' 'मिमिन्नतां' (फलट्यादि (?) मेनुमिन्कतां); ततः 'भरीमिभः' (भरक्षप्रक्रिभिः) 'नः' (श्रसान्) 'पिपृतां' (पूरयन्ताम्)।

एतकाक्षवाध्यमुपधानं विधत्ते,—''त्रक्तिरसः सुवर्गे खेतिं यतः पुरेखातः कूर्मे। भृताऽनु प्रावर्षद् यत् कूर्ममुपद्धाति यथा चेत्रविद्ख्यग नयत्येवनेवेनं कूर्मः सुवर्गे खेतिमञ्जम नयति" (५। २। प्रतः) इति । 'त्रक्तिरसः' महर्षयो यदा खर्गे 'खेत्कं' नताः, तदा तान् 'त्रनु' 'कूर्मः' श्रपि श्रव्याक्कत् । श्रतः खर्गमार्गाभिष्ठः 'कूर्मः' चेत्र इत सम्यक् नेतुं क्रक इति तमने।पद्धात्।

प्रकारान्तरेष कूर्मे। प्रधानं प्रश्नंति,—''मेधा वा एव पश्कृतां यत् कूर्मे। यत् कूर्ममुपदधाति खमेव मेधं प्रथमः प्रश्नव उपतिष्ठनो'' (५।२। प्रश्नः) इति। योऽयं 'कूर्मः', य एव 'पश्कृतां' 'मेधः' (यज्ञवल्याप्तिहेतः), श्रतः कूर्मे। प्रधानेन 'प्रश्नवः' तं 'कूर्में' खहेतुम्द्रतयञ्चलेन 'प्रश्ननः' यजमानस्हे प्राप्ता भवन्ति।

ष्ठपधेयस्य कूर्मस्य जोवनापेतलगुणं विधन्ते,—"साधानं वा एतत् क्रियते यसृतानां पप्रह्नाः श्रीषाष्णुपधीयन्ते यस्त्रीवनां कूर्ममुपद्धाति तेनामाज्ञान चिद्धासायो वा एव यत् कूर्मः" (१। १। पत्रः १) इति । 'स्तानां' 'पग्नः नां' (त्रश्वेभ स्विष्यवस्तानां) किरांपि उपधेयानीत्युपरिसाद च्यति, ततः 'एतत्' स्वानं 'साज्ञानं' एव स्तं भवति । जीवन्कूर्मीपधानेनायं यजमानः 'साज्ञानचित्' म भवति । किञ्च यः कूर्मीऽस्ति, स एव 'वास्त्रयः' (निवास्येग्नयः), कूर्मप्रहे स्रमेरवस्थितलात्, ततोऽपि कूर्मीपधानमित्यर्थः ।

खपशानात् पूर्वमश्वद्यमं विश्वत्ते,—"मधु वाता खतायत द्ति द्या मधुमित्रोणाग्यनित्त खदयहोवैनम्" (५)१।४४०) द्ति । प्राथञ्जनेनैनं कूमें खादूकरोति ।

श्रभ्यञ्चनसाधनद्रयदयं प्रशंसति,—"वाम्यं वा एतदेशं यद् इत्यारकः मधु चह्ना मधुमिश्रेणाश्वनक्ष्रभयस्यावद्ये" (५।१। पश्च) इति । 'खभयस्य' याम्बसारकास्य च भाग्यजातस्य ।

कूर्मे। प्रधानमको थाः पृथिवी चेति शब्ददयस्य तात्पर्धे दर्शयति,—''मदो थाः पृथिवी च न द्रत्याद्वास्थामेवेनमुभयतः परिग्टकाति" (५।१।८॥०) द्रति ।

स्वमाहस्याः पूर्वदेशं कूर्मस्य विधन्ते,—"प्राश्च मुपद्धाति सुवर्गस्य स्रोकस्य समस्यै" (४।२। स्त्र ०) इति । 'प्राश्च' प्राग्देश-वर्त्तिनं; स्वर्गसोकीऽपि प्राग्देशवर्त्ती।

तसिन् प्राग्देशे कूर्मस प्रताङ्मुखलं विधन्ते,—"पुरसात्रात्यश्चमुपद्धाति तसात् पुरसात् प्रताशः पत्रवा सेधमुपतिष्ठनो"
(६ १।८५०) इति। स्वयमाहसायाः पुरसात् उपधेयः कूर्मः,
तं कूर्मे प्रताङ्मुखमुपद्धात्; यसादेवं, 'तसात्' श्राह्वनीयस

'पुरस्तात्' यूपे बद्धाः 'पन्नवः' प्रत्यक् मुखा चन्नं चेवन्ते । यदुनं स्वकारेषः 'प्रादेशमानं चतुत्र-(?)-मोद्मरमृष्ट्यलम्तरेऽ श्रेषे प्रयुनिक्तं सर्वेषधस्य पूर्णयलावस्त्य परा यूपेदं विष्णुर्विचकम स्ति मध्ये प्रदेशाति' दति ।

तदैतिहिधत्ते,—''या वा त्रपनाभिमग्निं चिनुते यजमानस्य नामिमनुप्रविष्ठति स एनमीत्ररी हिश्सिती द्वसूखसमुपद्धात्येषा वा त्रग्नेनीभिः स नाभिमेवाग्निं चिनुते हिश्सायाः" (५।२।८४०) इति । नाभिर्द्धतत्वेन चीयमानीऽग्निः 'यजमानस्य' 'नाभिं' प्रविष्य हिंसितं प्रभवति, त्रते नाभिस्तानीयम् 'उलूखसम्' स्रपद्मश्चात्। तथा स्रति सनाभित्वेनास्य हिंसा न भवति ।

चलूबलका प्रक्षतिह्रकां तिधत्ते,—"श्रीदुम्बरं भवत्यूर्मा उदुम्बर जर्जमेवावरमे" (५।२।८%) इति ।

देशविश्वेषं विधन्ते,—''मधात उपद्धाति मध्यत एवासा कर्जे द्धाति तसावाधात कर्जा सुद्धते" (५।२।८५०) इति ।

इस्रोनाभिनीय उन्नूखन्य प्रादेशपरिमाणं विधन्ते,— "इयद्भवति प्रजापतिना यञ्चमुखेन सम्मितम्"(५।२।८%) इति।

खपधानात् पूर्वभाविनं धर्वेषिधाववघातं विधत्ते,—"यव-इन्यस्त्रमेवाकरेति" (५।९।८४०) रति।

श्रन्यत्रास्नातम् 'इदं विष्णुः' इति मन्त्रमुबूखलेगिधाने विनियुङ्को,—"वैष्णव्या श्वता उपदधाति विष्णुर्वे यज्ञो वैष्णवा धनस्मत्रवेग यज्ञ एव यज्ञं प्रतिष्ठापयति" (५।१।८॥०) इति ।

कस्यः, 'तदिक्षोः परमं पदमिति मुधस्यम्' इति । पाठस्त,—

"तिर्देखोः परमं पद् स्वा प्रसमित स्वर्यः । दिवीव चचु-राततम्(११)" इति । 'स्वर्यः' (विद्यांसः, वेदान्तपारंगताः); 'विष्णोः' 'तत्' 'परमं पदं सदा प्रसन्ति'। को हुमं?—'दिवि' (भाकाभे, निरावरणे) 'चचुः' 'दव' 'भाततं' (खान्नं)। तादृष्ठस्य विष्णोरनुपद्यादेष्यववनस्यतिकाचे मुम्बस्पद्धातीत्यर्थः । एत-मान्त्रसाध्यमुसलोपधानविधिलेन।पि पूर्वीदाद्यतं 'वैष्यव्या स्वता' इत्यादि ब्राह्मणं वेष्टिनीयम्।

कत्यः, 'भुवासि पृथिवीति मध्येऽग्नेरपर्धाति' इति। तन प्रकृतलात् उखामित्यनुवर्त्तते। पाठन्तः—''भुवासि पृथिवि सदस्स पृतन्यतः। स्तूता देवेभिरस्टतेनागाः(१२)'' इति। हे 'पृथिवि' (कार्यतया तत्स्वरूपे), हे उखे, लं 'भुवासि', 'पृतन्यतः' (सङ्ग्रामं कर्त्तुमिन्कतः) प्रचून् 'सदस्स' (त्रिभिभव)। 'देवेभिः' (देवैः) 'त्रास्टतेन' 'स्तूता' (त्रास्टतसमानेन घृतेन पूरिता) सती 'त्रागाः' (त्रागन्क)।

एतसम्बसाधम् उद्योपधानं विधन्ते,—"एवां वा एतक्षोकानां च्योतिः सम्भृतं यदुखा यदुखामुपदधात्येश्य एव लेकिस्थे च्योति-रवक्त्ये" (५।२।८ %) इति । उद्याक्रपं 'यत्' वस्तु, तद्दिम् 'एवां' (प्रथियादोनां) 'लेकानां' च्योतिः सम्मादनाय "उद्याम्' उपद्धात्।

देशविशेषं विधन्ते,—''मध्यत उपदधाति मध्यत एवासी च्योतिर्दधाति तसावाध्यतो च्योतिरपासारे'' (५।२।८ प्र०) रति।

^{*} अच 'च्योतिः', च्योतिःसम्पादनाय इति पाठो भवितुं गुक्तः।

'मध्वतः' (उद्रमध्वे) जठराग्निरूपं 'च्यातिः' 'उपास्नाहे' (प्रति-दिनमनुभवामः)।

उपधेयायाः उखायाः विकतापूरणं विधत्ते,—"विकताभिः पूर्यत्येतदा श्रग्नेवेंशानरस्य रूपः रूपेणेव वैश्वानरमवहन्धे" (४।२।८ १४०) दति ।

श्रम्ययातिरेकाभां पूरणं प्रश्नंति,—''यं कामयेत चोधुकः स्वादित्यूनां तस्वोपदध्यात् चोधुक एव भवित यं कामयेतानु-पदस्वद्वमद्यादिति पूर्णां तस्वोपदध्यादनुपदस्वदेवात्रमित्तः" (५। १।८ श्र०) दिति। सिकताभिः पूरिताया देवत्यूनाया उखाया स्पधाने सित 'चोधुकः' (श्रस्तरहितः चुधास्तीनः) भवेत्; सेाऽयं स्वतिरेकः। सिकतापूर्णाया उपधाने तु 'श्रनुपदस्वदेव' (श्रचीय-माणम् एव) 'श्रन्नमित्त'; सेाऽयमन्वयः।

कर्यः,—'प्रवाञ्चगिष्टकायाः हिरस्वज्ञकसावध्युद्धा यासे अग्ने या वे। देवाः सर्थे इच इति दाश्यां वामस्तम्' इति । तत्र प्रथमामाइ,—''यासे अग्ने सर्थे इच उद्यते। दिवमातन्त्रान्त्रा रियमिः । ताभिः सर्वाभी इचे जनाय नः क्षधि (११)" इति । हे 'अग्ने', 'सर्थे' (सर्थमण्डले) 'उद्यतः' (उद्यं गच्छतः) 'ते' (तव) 'इचः' (दीप्तयः) 'रियमिः' (रियास्वरूपेण) 'दिवमातन्त्रान्ता' (सर्वते। व्याप्त्रवन्ता), रात्री या अग्नेदिष्तयः ता एव सर्थोदय-काले सर्थरमाथे। भवन्ति । एतचा अग्निहोत्रयः ता एव सर्थोदय-काले सर्थरमाथे। भवन्ति । एतचा अग्निहोत्रशाद्वाणे समाचातम्, 'उद्यन्तं वावादित्यमिग्नरमु समारोष्ट्रति' इति । 'ताभिः' 'प्रवीभिः' दीप्तिभिः 'नः' (अस्वदीयाय) 'जनाय' (यजमानाय) प्रकामं कुइ । त्रथ दितीयामाइ, चा वे। देवा: सूर्ये दक्ते गेथ्यसेषु आ दक्तः। दक्ताग्री ताभिः धर्वाभीदक्ते। धक्त एइस्तते (१३) दति । हे 'देवा:', 'वः' (युगाकं) सम्बन्धन्यः सूर्यमण्डले वर्त्तमाना या 'दक्तः' (दीप्तयः) सन्ति, तथा 'गेषु त्रसेषु' च या दीप्तयः सन्ति । हे 'दक्ताग्री', हे 'एइस्पते', चयोऽपि यूयं, 'नः' (श्रक्षदधें) 'दक्तं' 'धक्त' (प्रकाशं सन्यादयत)। एतसन्त्रसाध्यं वामस्दरास्त्राया दक्ष्ताया चपधानमापानुवाकाकाण्डे द्रष्टस्थम्।

क्ष्यः, 'विराङ्क्योतिरिति तिस्रो रेतः विषः' इति । पाठसु,—"विराङ्क्योतिरधारयत् सम्राङ्क्योतिरधारयत् स्वराङ्-क्योतिरधारयत् (१४/१६/१०)" इति । विश्वेषेण राजत इति 'विराट',— एवंविधा रेतः विगाक्या प्रथमेष्टका श्रम्मद गुग्रहार्थे 'क्योतिरधारयत्'। सम्यक् राजत इति 'सस्राट', तादुत्री दितीया रेतः सिगिष्टका । स्वयमेव राजत इति 'स्वराट', तादुत्री द्वतीया रेतः सिगिष्टका ।

कर्णः, 'त्रग्ने युक्ता हि ये तव युक्ता हि देवह्रतमानिति दाम्यामुखायाः इत्वा' रति । तत्र प्रथमामाह,—''त्रग्ने युक्ता हि ये तवाक्याचा देव साधवः । करं वहन्याग्रवः(१८)'' दति । हे 'त्रग्ने',देवसन्वधिनः 'त्रत्राची' थे केचिद् (त्रज्ञाः) 'साधवः' (दान्ताः) यन्तः 'बाह्रवः' (श्रीव्रगामिनो) स्त्रता 'ग्रदं' (त्रसं) 'वहन्ति', सुष्ठु वहन्तीत्वर्थः ; तान् श्रद्थान् 'युक्त्व' (योज्य) ।

श्रथ दितीयामाइ,—''युक्ता हि देवह्नतमार श्रश्नार श्रश्ने रथीरिव। निहाता पूर्वः सहः(१८)" इति। हे 'श्रश्ने', तं 'देव- इतमान्' (देवानामतिशयेन श्राह्मादृन्) 'युक्त' (य्रोजय)।

'दि'-बन्दः प्रसिद्धवाची। प्रसिद्धेऽस्मिन् कर्मणीत्यर्थः। चीजने हुष्टान्त:,—'रची' 'श्रमान्' 'इव' इति, (रघी खामी यथा श्रयान् चेाजयति तदत्)। किञ्च लं 'पूर्यः' (पुरातनः); 'हाता' (हामात्यादका) भूवा 'नि'-'षदः' (त्रस्मिन् यागखाने निषीद)। वामस्यान्त्रयोतिव रेतःसिङ्मन्त्राणां हात्रमन्त्रयोस बाह्यक्री।पानुवाक्यकाण्डे द्रष्ट्यम्।

कल्यः, 'पुरवित्रसि हिरक्षत्रकलान् प्रत्यस्नित द्रपाञ्चस्कन्दे-त्याखेऽश्रदिदं विश्वस भुवनस्रोत वर्चे लेति द्विणाविगासके इन्चे लेति सद्ये चुते लेति कर्णयोभी से लेति द चिणस्यां नासिकार्यां च्ये।तिषे लेखुत्तरस्थाम्' इति। उदाइतेषु मन्त्रेषु प्रथमास्चमाइ, —''द्रपञ्चक्कन्द प्रथिवीमनु द्यामिमञ्ज योनिमनु यञ्च पूर्वः। हतीयं यानिमनु सञ्चरनं द्रयां जुड़ाम्यनु सप्त होना(१०)" द्ति। द्रयान्तरसङ्गद्दनेन स्फुटिता दिरस्थावकलेा 'द्रपः', 'पृथिवीं' 'त्रनु' 'चस्कन्द', पृथियां पूरित इत्यर्थः। स च द्रपो जतः यन् खानचये '८नु'-यञ्चरति (द्युलेको श्रन्तरिचलेको स्रलेको रू)। तदतदभिष्रेत्य स्मर्थते,

"त्रग्री प्रास्ता इतिः सम्यगा द्यमुपतिष्ठते ।

त्रादित्याच्चायते दृष्टिर्देष्टेरत्रं ततः प्रजाः" इति (मनु ०)। वेाऽयमर्था द्यामित्यादिनाऽभिधीयते । 'द्यामिमञ्ज योनि-मनु' (श्रमारिचक्पमिदं खानमनु सञ्चरति)। 'यश्च पूर्वः' (चाऽपि प्रथिवीमनु चस्कन्देति पूर्वेक्तस्थानविश्वेषः), तमयनु-सञ्चरति। 'हतीयं योनिं' (चुलोकरूपमादित्यस्वानम्) त्रनु- सश्चरित। तिममं त्रिषु खानेषु 'त्रनु सश्चरमां' 'द्रपां' 'जुहोिमि' (मनसा क्रतमिव भावयामि)। कुत्र होमः ?—इति—तदुच्यते— 'त्रनु सप्त होत्रा' इति । यखां दिश्चि द्रपाः पतितः, तद्यति-रिक्ता होमयोग्याः सप्त दिश्चे। याः सन्ति, तासु त्रनुक्रमेण जुहोिम। यथा द्रपो क्रत श्वादित्यादिखानचयेषु सञ्चरनुप-करोति, तथा भावयामीत्यर्थः।

त्रय विकल्पितां दितीयास्चमाइ,—"त्रस्टिदं विश्वख भुवनस्य वाजिनसग्नेवेशानरस्य च । श्रिग्रिश्चोतिषा च्योतिश्वान् रुक्को वर्षसा वर्षस्थान्^(११)" इति । 'इदं' (हिरक्षं) 'विश्वस्थ' 'भुवनस्थ' (स्तजातस्त्र) 'वाजिनम्' (श्रव्यम्) श्वस्त् । तथा 'वैश्वानरस्थ' 'च' (विश्वेषां नराणां स्वामिनः) 'श्रग्नेः' 'च' श्रव्यमस्त् । श्रयम् 'श्रग्निः' हिरक्षेन 'ञ्चोतिषा' स्वयं 'ञ्चोति-श्वान्' श्रस्त्, तथा 'इक्कः' (राचमाने।ऽग्निः) 'वर्षमा' (हिरक्षकान्या) 'वर्षस्वान्' (स्वयमपि कान्तिमान्) श्रस्त् । बाद्यगतप्रभा ज्योतिः, श्ररीरगतकान्तिवेर्ष इति ।

"च्चे ता, क्चे ता(१२,१२)" द्रि यजुर्देयं। हे हिर ख्या कल, येयम् च्यक् स्तोचक्पा, तद्धं तां दिचणाचिगालके प्रत्यस्थामि। तथा हे हिर ख्याकल, याऽमी क्क् (दोप्तिः), तद्धं तां वामा-चिगे। खके प्रत्यस्थामि।

एतेर्मन्त्रेयं खावयवेषु हिर खागक जानि प्रत्यखन्ते तसा पुरुष-शोर्षस्रोपधानं विधत्ते,—"सहस्रं वै प्रति पुरुषः प्रयूजां यस्क्रित

^{*} वयमिति सर्वेत्र पाठी न सम्यक्।

य इस्रमन्ये पत्रवे। मध्ये पुरुवत्रीर्षमुपदधाति सवीर्यताय" (५।२। ८ प्र •) इति । प्रच हि पुरुषशोधी प्रर्धभष्टिष्णवसानां क्रिरां-क्षुपधेवानि । तेवां 'मध्ये' यः 'पुरुषः' स एक एव 'पश्चर्णां' 'सइसं' यजमानाय 'प्रयक्ति'। 'ऋगे' तु ऋर्यभष्टिक्विक्ता-खलार: 'पत्रवः' मिलिला 'पश्रूनां' 'सइस्रं' प्रयच्छन्ति । तथा सति चयादिभाः पुरुषस्थातिप्रवसालात् तदीयं विरो मध्ये उप-दथात्। तचे।पधानं वीर्यमाहित्याय मन्यसते।

तस्य पुरुषभीषं स्थासामीपदेशं विधत्ते,—"उखायामपिद्धाति प्रतिष्ठामेवेनद्गमयति" (५।२।८ %) द्ति। 'उखायां' उखासमीपे।

तस्य पुरुषप्रीर्षस्य त्रास्थादि च्छिद्रेषु दिरस्था वसप्रेचेपं विधन्ते, —"ब्रह्हं वा एतत् प्राणिरमेधं यत् पुरुषक्रीर्षम् श्रष्टतं खसु वै प्राणा ऋस्तर हिर्षां प्राणेषु हिर्ष्यव्रक्षाम् प्रत्यस्रति प्रतिष्ठामेवैनद्वमयिला प्राणै: समर्द्धयित" (५।२।८ त्र ॰) इति । तदेतत् पुरुषस्य भिरः 'प्रापैः' वियुक्तवाद्यज्ञानर्दः, प्राणास्त मरणहीनलात् 'श्रम्टतम्' रुत्युचन्तेः खेरि हि, प्राणविधागे स्रति बरीरस्थेव सर्णं, न तु प्रास्थानां। 'दिरस्थं' चाग्नि-मंथागे सति विनात्राभावात् 'त्रम्टतम्' ; त्रतः प्राणसञ्चारस्यानेषु न्नास्थादिषु हिरस्थ्रमकलान् प्रचिपेत्, तथा पति उखायां प्रति-ष्ठापितं विरः 'प्राणैः' यसृद्धं भवति।

कस्यः, 'विमित्खवनीति प्रतातक्क्षीन दशा मधुमित्रेण पुरुष-ब्रिर: पूरवति' इति । पाठस्त,—"समित्सवन्ति सरिते। न भेनाः। त्रन्तर्देदा सनसा पूर्यसानाः। घृतस्य धारा व्यक्ति-

चाकत्रीमि । दिर्ण्यो वेतसा मध्य त्रासाम् (१८) दित । 'धेनाः' (पानयोग्याः) दिधमध्वययाः 'समित्स्वन्तः' (सम्यक् प्रवह्नयोत्र)। तत्र दृष्टान्तः,—'सिता न' (सित इव), यद्या नद्यः प्रवहन्ति, तदत्। ते च 'त्रनः' (त्ररीरस्थान्यन्तरे) 'ह्दा' 'मनसा' (हृदयपुण्डरीकवर्त्तिनाऽन्तः करणेन) 'पूयमानाः' (क्रोध्य-मानाः) दिधमध्वययाः 'घृतस्य धाराः' सम्पद्यन्ते । तास्य 'धाराः' 'त्रिमचाकत्रोमि' (त्रिभितः प्रकाशयामि) त्रानुभवामीत्यर्थः । 'त्रासां' घृतधाराणां 'मध्ये' 'हिर्ण्यः' (सुवर्णमय इव तेजो इपः) पृह्वस्य मूर्द्धा 'वेतसः' (जलप्रवाहमध्यगतवेतस्रहच इव) त्रवभासते ।

एतयास्त्रमार्थं पूरणं विधत्ते,—''दम्ना मधुमित्रेण पूर्वित मध्योऽमानीति''(५।२।८-त्र ०) इति । त्रइं 'मध्योऽमानि'-(मधुर-रयभोगयोग्यो भवानि)-इत्यभिप्रायेण तत्पुरुषित्रिरो मधुसमृत्रेन 'दभ्रा' पूर्येत् ।

तस्य द्धा गुणविश्वेषं विधन्ते,—"ग्रहतातस्त्रोन मेधानाय" (५।२।८ प्र॰) इति । दिविधं दिध तष्वैकं रजतप्रचेपादिना स्वयमेव घनीभवति, श्रन्यन्तु पक्त चीराद्यातस्रमेन निष्यस्ते ; तत्र पक्तचीरातस्रमाभ्यां निष्यसं यागयाग्यं, तस्मात् तादृश्चेनेव पूर्येत् ।

तदिदं दिधमधुदयं प्रश्नंसित,—"ग्राम्यं वा एतदन्नं चत् दिधि त्रारस्यं मधु यद्क्षा मधुमित्रेण पुरयत्युभयस्यावहर्षे" (५।२।८.२४०) इति ।

कल्पः, 'तिसान् सुपर्णे मधुकत् कुलायोति पुरुषन्निर श्वादाय'

दति । पाठन्त,—''तिमान्त्युपर्णे मधुक्तत् कुलायी भजनास्ते मधुदेवताभ्यः । तस्रायते इग्यः यप्ततोरे खर्धादुद्दाना त्रम्टतस्य धाराम्^(१६)" इति । 'तस्मिन्' (वेतमस्यानीये) पुरुषत्रिरसि 'मधुक्रत्'कञ्चित् (मधुकरः) 'त्रास्ते'।को दृष्तः?—'सुवर्षः' (श्रीभन-पचापेतः); 'कुखाथी' (कुकाया मधुकराणां निवासस्थानं, सा-ऽस्त्रास्तीति सुसायी) । किं सुर्वेन्?—'देवताभ्यः' (देवतार्थे) 'मधु' 'भजन्' (सम्पादयन्), 'तस्य' (पुरुषज्ञिर्यः) 'तीरे' (समापे) 'हरयः' (मधुद्दरणशीलाः) सप्तच्छिट्रवर्त्तिलेन सप्तमञ्चाका मधु-करा 'त्रासते'। किं कुर्वमाः ?—'खधा' (खधाकारापलचित-भाग्यवस्तरूपम्*) 'त्रस्ततस्त्र'(मधुनः) 'धारां' 'दुहानाः' (स्राव-यनाः) ते । पुरुषित्ररिष प्राणसम्हद्भिभमादनाय दिरण्याकलप्रचेपः पूर्वमभिह्तिः, प्राणेषु सम्द्रहेषु सत्तु चैतनं जीवात्मानमासाद्य मधुकर रूपलं सम्पाद्य तेन पुरुषित्रदः प्रत्रस्थते। यथा खोके, मधुकरः कसिंशिद् रुचे खनिवासाय कुलायं छला मधु स-मादयति, तच मध्वर्थं यदपूर्वे तुलायं कतं, तस्य किट्रक्पासु नाड़ीषु चुद्रा मधुकराः खखन्नकःनुमारेण मधु ममादयन्ते। वर्त्तानो, तदत्। तदेतत्। क्रिक्सच रूपकत्यनया सम्पादितम्, दत्यं प्रज्ञसामिदं पुरुषिज्ञरीऽनेन मन्त्रेण स्तीतुर्य।त्। यत् पूर्वे विचितं पुरुषश्चीर्षमुपद्धातीति, तदेतदुपधानं कर्त्तीमदं पुरुषश्चीर्षादानं द्रष्ट्यम् ।

^{*} रूपामिति पाठा भवितुं युक्तः।

श्रव विनियागसंग्रहः,—

भुवेति खयमादृषां स्थान् ग्रेति द्धाति तां।
काण्डाद्, दूर्वेष्टकां, दाभ्यामषाढां, मधुमित्रिभिः॥
श्रमित्रेण दभा कूमें, महीति च।
कूमें द्धीत, तदिष्णार्भुष हि, भुवेत्युखाम्॥
यास्ते वाममृतं दाभ्यां, विराड्, रेतः सिचिक्तिभिः।
श्रमे-दाभ्यामुखाहे। मो द्रपः पुरुवश्रीषंके॥
श्रास्त्रे खणे चिपेत्तव, मन्त्रोऽश्रदिति वा भवेत्।
स्वचे द्वे द्योरह्णोः सुवर्णभक्ते चिपेत्॥
सिमद्भा च मधुना पूरयेत्रदशीर्षकम्।
तिस्त्रन्, तिस्त्र्रं श्रादक्ते, पश्चविश्रतिरोत्ताः॥
मीमांसा,—हतीयाध्यायस्याष्टमे पादे दितीयाधिकर्णे

श्रथ भीमांषा,—हतीयाध्यायखाष्ट्रमे पादे दितीयाधिकर्णे चिन्तितम,—

> "र्ष्टका वरदानं किं खामिनः खादुतर्लिजः। खामिनः पूर्ववन्नेवमध्वर्योर्वचनादिति॥

'य एतामिष्टकामुपदध्यात् स चीन् वरान् दद्यात्' इत्याचा-याध्वर्थोगीः-चयदानं वाचनिकं, न द्वास्ति वचनस्वातिभारः ॥"

दति गायनाचार्यविर्विते माधवीये वेदार्थप्रकान्ने कृष्ण-यजुःमंदिताभाय्ये चतुर्थकाण्डे दितीयप्रपाठके नवमाऽनुवाकः॥ •॥ श्रादित्यं गर्भं पर्यसा समुख्यन्त्मृहसंस्य प्रतिमां विश्वरूपं। परिचंधि हरेसा माभिन्नेष्ठः श्रातायुंषं क्षणुहि चीयमानः (१)। इमं मा हिंश्सीर्द्धिपादं पश्रूनाश् सहसास्र मेध् श्राचीयमानः। म्युमीर् एयमनुं ते दि-शामि तेन चिन्वानस्तनुवो निषीद (१)। वार्तस्य भ्राजिं वर्षस्य नाभिमश्रं जज्ञानश् संदिरस्य मध्ये। शिशुं नदीनाश् हरिमद्रिबुबुमग्ने मा हिंश्सीः॥१॥

प्रमे ब्यामन् । इमं मा हि स्मीरेकं प्रफं प्रभूनां केनिक् दं वाजिन् वाजिनेषु। गीरमार् स्थमनु ते दिशामि तेने चिन्दानस्त नुवे। निषीद् । अजिस् निन्दुं मह षं भुर् स्थमि मिन्दुं मह षं भुर् स्थमि मिन्दुं मह षं भुर् स्थमि मिन्दुं पूर्विचित् । कि मिन्दुं मह पं भुर स्थमि नो गां मा हि स्मीर दि ति वि-राजे ॥ । इम समुद्र श्रामार् मुतं ब्राच्यमानं भुवनस्य मध्य। घृतं दु होना मदि ति ं जना या ग्रे मा ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

हिश्सीः पर्मे ब्यामन्। गव्यमार्ग्यमन्ति दि-शामि तेन चिन्दानस्तुन्दो निषीद् । वर्षचि लष्टु-वर्षणस्य नाभिमविं जज्ञानाः रर्जसः परसात्। महीः साष्ट्रस्तीमसुरस्य मायामग्रे मा हिश्सीः पर्मे ब्यामन् । इमामूर्णायुं वर्षणस्य मायां त्वचं पश्नीं द्विपदां चतुंष्यदां। त्वष्टुंः प्रजानीं प्रथमं जुनिच्मग्रे मा हिंश्सीः पर्मे थे।मन्। उष्ट्रमार्ख्यमन्॥ ३॥

ते दिशामि तेन चिन्दानस्तनुवो निषीद । या श्रीप्रग्ने सेप्सोऽधिशातः श्रीचात् प्रश्विया उत वा दिवस्परि येन प्रशा विश्वक्षमा व्यान्द् तमेग्रे हेड़ः परि ते वणक्तु । श्रुशा द्यांगर्जनिष्ट् गभात् सा वा श्रीपश्यक्रनितारमश्री।तया राह्मायद्गप मेध्यास्स्तर्या देवा देवतामश्री श्रायन्। श्रुभ,-मार्ग्यमन् ते दि-शामि तेन चिन्दानस्तनुवो निषीद (१)॥ ४॥

श्रम् । सिंश्सीः। श्रम् । सा। उद्रमार्ख्यमनु। शर्भं। नवं सा१०॥

इति तैत्तिरीयसंहितायां चतुर्थकाएडे दितीय-प्रपाठके दश्माऽनुवाकः॥०॥

नवमेऽनुवाके खयमाहणाद्युपधानमुक्तम्। दश्रमे पश्चश्चीर्या-पधानं वक्तव्यम्। कत्त्यः, 'श्चादित्यं गर्भमित्युखायां पुरक्षाः चुवुकं प्राचीनमुत्तानं प्राङमुख उपधाय' दति। पुरुषक्तिर दत्यनुवर्त्तते। पाठस्तः—'श्चादित्यं गर्भे पयसा समञ्चन्त्राहस्त स्व प्रतिमां विश्वरूपं। परिदंधि हरसा माभिन्दनः श्वतायुषं कृष्षि चीयमानः(९)" दति। हे श्वश्ने, तं 'चीयमानः' सन् 'श्चादित्यं' 'गर्भम्' (प्रदितिदेवतायाः समस्धि ताकार्यक्षं गर्भसदृष्ठम्) इदं पुरविषे 'परिष्टं धि' (परिता वर्जितं कुर्)। 'हरसा' (तेजसा) लदीयञ्चालाक्षेष 'मार्डाभस्यः' (श्वभिमधंनं खर्षे मा कुर्), ञ्चालया सर्वे दश्कण्येतत्पुरविष्ठीचे मा दहेत्यर्थः। प्रनेन दाहा-भावेन तं गर्भे यजमानं वा 'प्रतायुषं' 'क्रणु हि' (कुर्)। की दृष्टं गर्भे ?—'सहस्वस्थ' 'प्रतिमां' (पद्मुसङ्खेण तुन्नं, सदृष्ठम्); प्रत एव ब्राह्मणेऽभिहितम्, 'महस्वं वे प्रतिपुद्दः पणूनां यन्त्रति सहस्वभन्ये प्रवा मध्ये पुरविष्ठीष्ठमुपद्धाति सवीर्थलाय' इति।

कत्यः, 'पग्रज्ञीर्षाखुपदधाति यं कामयेतापग्रः खादिति विवृचीनानि तखेत्युक्तं, वातस्य भ्राजिमिति पुरसात् प्रतीचोनम् श्रम्यः, श्रजसमिन्दुमिति पद्यात् प्राचीनस्वभस्य, वहिनं त्रष्टुरिति दिख्यतः उदीचीनं दृष्णेः, यो श्रिग्निग्रोरित्युक्तरते। दिख्यं बस्तस्य ताम्ययत्रायेने स्मर्गेद्यतिष्ठते दमं मा चिश्रसोदिपादमिति पृद्यस्य दमं मा चिश्रसोरेकश्रफमित्यश्रस्य, दमश् समुद्रमित्यृषभस्य, दमामू-र्षायुमिति दृष्णेः, श्रशा श्राग्न द्वित्यस्य दित । तक्तमूर्भेष्यान-मक्तेभ्ये। द्वार्यान्यात्रास्त्रस्य प्रसानमन्ताः, 'श्रमु ते दिश्रामि' दत्युत्यर्गस्त्रकृत्व। दुत्यर्गा दत्युष्यानमन्त्राः, 'श्रमु ते दिश्रामि' दत्युत्यर्गस्त्रकृत। दुत्यर्गा दत्युष्याने । तेसेर्मन्त्रेस्त्रक्तिस्वरस्य एप-स्थानं सुर्थात्।

तत्र पुरवद्योवंस्थापस्तानमन्त्रमात्र,—"इमं मा विश्वीर्द्धपार्द्ध पश्चनाश्च सद्याच मेध त्राचीयमानः। मयुमारस्थमन् ते दिश्वाम् तेन चिन्नानस्तन्वो निवीद्^(२)" इति । हे 'सद्याच' (सद्य-सञ्चाकत्र्यासाह्यचनुर्युक्त), हे 'मेध' (यञ्चनिष्पादक), 'त्रा- चीव गानः' (वर्षनः पर्रमू क्रीभिष्यचं प्राप्नुतानः), 'प्रमूनां' (यास्वाणामारणानाञ्च) मध्ये 'दमं' (प्रविश्वीर्व-मूर्कुरूपं) 'दि-पादं' (यास्वपर्द्र) 'मा दिसीः' (दाष्ट्रपा दिसां मा कार्षीः) । धदि तव भच्छापेचा, तर्दि 'ते' (तव) भचणाय 'दमं' 'श्वारण्यं' 'मयुं' (जन्मस्त्रगं) 'श्रनु'-'दिश्वामि' (पृद्वश्वीर्धमनु लङ्गच्छालेगानु- स्त्रजामि) । 'तेन' (मयुभचणेन) ज्वासाद्यपः 'तनुवः' (लदोय- तनुः) 'चिन्वानः' (पोषयन्) 'निषीद'।

मधामित्र उपधानमकामार,—''वातस प्राणि वर्षस नामिमसं क्षान् परिरस मधे। विद्यं नदीनार दिन्मित्र क्षान् परिरस मधे। विद्यं नदीनार दिन्मित्र क्षां परमे से। मन्(१)" दिति। हे 'क्षाे', 'क्षां' 'मा दिसीः' (व्यासया मा द्य), (विविधरे। गर्चक्षभदारः), स्वसम्बस्ध रोगाः सन्ति, तेश्वः सर्वेश्वः पास्त्रमित्यर्थः। तथ्य परमम् (उत्कर्धं), रिक्षतसामस पुनद्दद्वकदा स्था न मासते तथा रचणं, रचणस परमनं ; तादृष्ठस्वां परमे से। मन् प्रम्म् स्मापयेति भेषः। कीदृष्ठममं ?—'वातस्त्र' 'प्राणिं' (वासी-गंतिस्वर्धः) वायुक्की मगितिस्वर्धः। तथा 'वद्यस्य' 'गाभिं' (प्रपामित्रविद्यस्य नाभिस्यानोयं), यथा सोदर्मध्यवर्त्तिनी नाभिक्षप्रावर्षादिना पास्रते, तददत्यन्तप्रियताद् वद्यन प्रास्तिनीयस्यः। स्न एव प्रियतमभिग्नेत्य, 'प्रजापतिर्वद्याया-समनयत्' दत्यासायते। स्रभेधकाष्टेऽपि, 'वाद्यो वा स्वः'

^{*} पुने बपड़वः कदापि इति पाठी भवितुं युक्तः। † ताष्ट्रणे इति पाठो भवितुं युक्तः।

Digitized by Google

दशासातम्। 'सरिरस' 'मधे' 'जजानं' (समुद्रजसस्य मध्ये वड्वाक्षेणेत्पन्नम्), त्रत एव 'त्रप्रयोगिवं त्रत्रः' दश्यन्यत्र त्रुतं। 'नदीनं' 'त्रिप्रुं' (यथा नदीनां पतिः समुद्रः पूर्वे क्रन्यायेन पिता, तथा नदीनां माहत्वादसं तिष्क्रारुः); 'इरिं' (अपर्याक्तदस्त्र पुद्रवस्त्र हर्नारं नेतारम्); 'त्रद्रिवृद्धं' (मार्गमध्ये खुरैसूर्वितता ये त्रद्रयः खुद्रपाषाषाः, तेर्बुद्धं तादृत्रान् पाषाषान् दृद्धा सार्गेऽसिन् त्रसो गत दति नेद्धं त्रकाते)।

भयायित्र खपखानमकामाइ,—"इमं मा हिल्धीरेकश्रमं प्रमूनां किनक्षदं वाजिनं वाजिनेषु। गारमारकामनु ते दिशामि तेन चिन्वानसनुवे। निषीद^(१)" इति। 'प्रमूनां' (चतुष्पदां) मध्ये 'एकश्रमं' 'इसम्' अयं 'मा डिंसीः'। की दृश्रमयं?—'किनक्दं' (हेषाखक्षेणाळाकाकन्दनेने। पेतं)। 'वाजिनेषु' 'वाजिनं' (श्रोष्ट्रन्त्याक्षेषु प्राण्यकु श्रायकाश्रीष्ट्रगतियुक्तं)। 'गारः' सिंहः। ब्रेषं पूर्वतत्।

श्रथ खवभित्र उपधानमक्तमार,—''श्रवसिन्दुमहवं भुरखुमिश्रमीड़े पूर्विति नमेशिः। स पर्विभिक्तं श्रः कल्पमानी नां मा हिश्मीरदितिं विराजम्(५)" इति। पूर्वेषां महवीणां चितिर्बुद्धः, 'पूर्विचितिः'; पूज्यमानिमिति श्रेषः; तैर्धेयम् एतम् 'श्रश्निं 'नमेशिः' (नमस्कारैः) युक्तः श्रदं 'ई.ड़े' (स्तिमि)। कोदृश्रमिशं?—'श्रवस्मिन्दुं' (निरन्तरं परमैश्वर्योपेतम्)। 'श्रदः'-श्रद्धो मर्मवाची, मर्भयक्वातं "भुरखुं'(भरनां वेश्वयनां,,—

^{*} मर्बसंधातम्ति J. पु • पाठः।

चया यजमानस मर्माण वैरिणो ने द्वाटबिन तथा सुर्वनमित्यर्थः। 'सः' (त्रग्निः) त्रादित्यक्षेष सिता 'पर्वभिः' (त्रमावास्मादिभिसाधिभः) 'ऋतुत्रः' (तस्मिन् तस्मिन् क्रिते) 'कल्पमानः'
(कर्माणि सम्माद्यम् वर्त्तते); तादुत्र हे त्रग्ने, 'नां' (ऋषभमूर्द्धानम्) एतं 'मा हिंसीः'। की दृत्रमग्निः ?—'कदितिं' (त्रस्यस्यनोसं) 'विराजं' (विजेषेण राजमानम्)।

श्रय च्यभित्र उपस्थानमन्त्रभाष्ठ,—"इनश्र ससुद्रश्र त्रतथारसुसं यास्त्रमानं स्वनस्त्र मध्ये । चृतं दुष्टानामदितिं जनायाग्ने मा दिश्मीः परमे बीमन्। नवस्रभारस्वमन् ते दिव्रामि तेन विन्नानस्तन्ते। निषीद्(())" इति । 'जनाय' (स्वन्नमानार्थम्) 'इमं' (गाम् स्वन्नमूर्ज्ञानं) 'मा दिंसीः', किन्तु 'परमे खोमन्' (उत्तमे विविधरस्त्रो) स्तितं खुद् । कीदृशं?— 'इमं' 'समुद्रं' (सम्यगुत्रतं) 'श्रतधारं' च (खन्नातोसधेनुदारा प्रतम्क्राकसीरधारापेतं); त्रत एव 'उत्तं' (जस्त्रवाष्ट्रसदृशं)। 'स्वनस्त्र मध्ये' 'खन्नमानं' (विस्नानं", सेखमानं वा); 'घृतं दुष्टानां' (खन्नातीयधेनुसीरादिदारा घृतदेष्ट्रमयुक्तां), 'सदितिं' (श्रव स्वनीयां?)। 'गवथा' गे।सदृश्र श्रारस्त्रस्त्रगवित्रेषः। प्रेवं पूर्ववत्।

त्रथ दृष्यित्रस उपधानमक्तमाइ,—''वद्तिं तदुर्वद्यस नाभिमविं बद्धानाष्ट्र रजनः परसात्। मदौष्ट्र साइस्रोमसुरस्य भाषामग्रे मा हिष्ट्रसीः परमे स्थामन्(°)" इति। हे 'स्रग्ने', 'सर्वि'

^{*} वाचमानं इति उ. पु॰ पाठः।

(क्षिजिरः) 'मा डिंगेः'। की दृष्ठोमितं ?—'लष्टुः' 'वक्षिं'
(क्षिणणं निर्माता यस्त्रष्टा,तणान्यदादरणोयक्ष्यवृत्तां)।'वक्ष स्र
नाभिं' (परिष्टनिवारकम्याग्रेने।भिस्तानोयां),'परस्नात्' 'रजयः'
'जञ्चानां' (उत्कष्टाव्यमद्रस्ननात् प्रजापत्युरसः 'जञ्चानाम्'
खत्पकां)। यप्तमकाच्छे, 'प्ररमी बाज्यसाम्' दत्यादिवाको 'प्रविः
पत्रुनाम्' दति त्रुतं। 'मद्यां' (भदतीं) यदसमूखां 'प्रसुरस्य मार्था'
(सुवर्मानारस्य सम्बन्धिलेन निर्मितां)। प्रत एव दितीयकाच्छे
'सुवर्मानुः' दत्यादिवाकोनाभिदिता।

हिष्णित्रस उपसानमकामाइ,—"इमामूर्णां युं वद्यस मार्थां मण्डमं विपदां चतुष्पदां। म्हः प्रजानां प्रथमं जनिक-मग्ने मा दिश्वीः परमे स्थानम्। उद्यमारस्ममृ ते दिशामि तेन चिष्णानस्नुवे निषीद (क)" इति। हे 'छग्ने', 'इमामूर्णाण्डम्', (स्रविं) हिष्णित्ररोद्धपाम् 'मा दिसीः'। कोहृत्रीं?—'वद्यस्य' 'मार्था' (प्रनिष्टिनिवारकस्थाग्नेः सम्बन्धिलेन निर्मितां); 'दिपदां' (मनुस्तायां) 'चतुष्पदां' (गवादीनां) च 'लचं' (लक्षदृष्टीं), यथा लचा प्ररीरमाहतं, तथा दिपादे। मनुस्याः प्रीतिनवारस्य प्रविजन्येन कम्मलेनाष्ट्रादिता भविताः स्वत्यादेऽस्यस्य समीवदास्य भारवाद्यने मार्द्वाय पृष्ठे कम्मलेनाष्ट्रादिता भविता। तथा 'लष्टुः' (प्रवापतेः) सकाप्रादृत्पद्यमानानां 'प्रजानां' मध्ये 'प्रस्तां' 'जनिषं' (प्रधानलेनोत्पन्नं), प्राधानस्य वीर्थवस्थात्; वीर्यवस्य वाज्ञजन्यानां सर्वेषामास्यातं, 'तस्यात् ते वीर्यावस्थान वीर्थाक्षस्थानां सर्वेषामास्यातं, 'तस्यात् ते वीर्यावस्थान वीर्थाक्षस्थानां सर्वेषामास्यातं, 'तस्यात् ते वीर्यावस्थान वीर्थाक्षस्थानां सर्वेषामास्यातं, 'तस्यात् ते वीर्यावस्थानां वीर्थाक्षस्थानां सर्वेषास्थानां सर्वेषास्थ

षच वस्तिवर्य उपधानमस्त्रमारु,-"थी प्रश्लिरग्ने सप्यो-ऽधिजातः श्रीचात् प्रथिया चत वा दिवसारि। येन प्रजा विश्वकर्मा व्यानट् तमग्रे हेड्: परि ते ट्रचकु^(८)" इति । श्रच पञ्चन्नोऽग्निम्बे।ऽपषीवयोगेन प्रजापतिवाची । तस च सहि-बङ्कारूपं चत् तपः, तस्रात् 'तपसः' 'सः' श्रवम् 'श्रीकः' व्यवदार देतुर्जातः, तपायुकादग्रिजातः—इत्येतद्वीहनाञ्चाचे समा-बातं,—'तद्भयोऽतपत. तसात् तेऽपानादग्रिरजायत' इति । प्रजापतेः 'तपसः' 'श्रधिजातः' 'यः' 'श्रश्निः' 'पृथियाः' 'परि' (अमेरप्ररि) 'भ्रोचात्' (ब्रोचित, तपतीत्वर्षः)। 'अत वा दिवस्परि' (कपि च सर्गस्रोपरि) क्रीचिति। किञ्च 'वेन' (बस्तक्षेण) 'विश्व-कर्मा' (जमत् खष्टा प्रजापितः) 'खानट्' (विविधाः प्रजाः, प्रभून् व्याप्तवान्) । बसस्य प्रजापश्चसृष्टिसाधनतं काम्यपश्चकार्ष्टे सराचातं,—'ततोऽजलपरः समभवतः साचै देवतावै पासभत ततो वै स प्रजाः प्रजूनस्जत' इति । हे 'श्रग्ने', तपसा चः श्रधिवातः तथाविधे, † 'हेड्ः' (कोपः), 'घेन' (बसेन) 'विश्वकर्मा' मसर्ज, 'तं' वसं 'परि'-'हणक्तु' (परिवर्जितं करोतु), मा वि-न। प्रचित्तितार्थः ।

तस्वेत वस्तित्र उपसानमन्त्रमाइ.—"त्रजा द्वाग्रेरजनिष्ट गर्भात् सा वा चपद्मकानितारमये । तथा रेश्इमाचन्तुप केथास्त्रचा देवा देवतामय चायन्। प्ररभमारस्थमनु ते दिश्रामि

^{*} समभवतुः ग्र. पु • पाठः।

[🕇] तथाविश्व, हति पाठी अवितुं युक्कः। 👡

तेन चिनानसनुवा निषीद^(१०)" रति। 'हि' (बसात्) रचम् 'चना' 'चग्नेः' 'नर्भात्' (उदरात्) 'चनिष्ट',। चत एव चानातं, 'स चाताना वपामुद्दित्वदत् तामग्रे। प्रायकात् ततोऽजस्त्रपरः समभवत्' रति। 'सा' एव चग्नेः प्रजापतेस्रोत्यक् (?)—'जनितारं' (स्रोत्यादकं) प्रजापतिम् 'चपम्रत्' (उत्यत्त्वनन्तरमेव दृष्टवती); समादेवम् चना प्रमसा, तस्रात् 'तया' (चजया) 'मेश्वासः' (धामयोग्याः) यजमावा 'रोषं' (स्र्वम्) 'उपाचन्' (सामीकेनैद प्राप्ताः) विस्तममन्तरेच प्राप्ता रत्यर्थः। किस्त द्रदानीं वर्णमाना 'देवाः' चग्नेः पूर्वस्मिन् चन्नानि 'तथा' एव (चजया(कर्मास्थनुष्ठास्य 'देशाम्' 'चायन्' (देवलं प्राप्ताः)। रेतृष्ठस्य वस्त्रित्से। महिमेति तात्ययोर्थः। 'चरभः' सिंद्रधाती क्रूरस्वनः।

छत्रैर्मकी: साथं ब्रोवीपधानं विधत्ते,—"पर्द्धवीर्वासासुप-दक्षाति पत्रवा वै पर्द्धवीर्वासि पश्चनेवानद्यने" (४। १।८ अ०) इति ।

यन्त्रयातिकाश्वां पद्मश्रीषीषां पृद्वश्रीषीतिमुक्यं विधत्ते,—
"यं कामधेतापद्मः खादिति विषृषीनानि तखोपद्मादिषूषी
एवासात् पत्रून् द्धात्यपद्मदेव भवति यं कामधेत पद्मसान्त्यादिति समीचीनानि तस्तोपद्म्यात् समीच एवासौ पत्रून् द्धाति
पद्मसानेव भवति" (५।२।८, भ०) इ.त.। 'विष्योगानि' (स्कमुसानि, पुद्वश्वदः प्रति विमुखानीत्यर्थः), सेऽयं स्वतिरेकः।
'समीचीनानि' (पुद्वश्वदः प्रत्यशिमुखानीत्यर्थः), सेऽयमन्त्रयः।

धामान्धेन विदितं पुनर्वित्रेषाकारेष विधन्ते,-पुरस्तात्

प्रती चीनम र खोपदधाति पद्यात् प्राचीन मृष्य भसापत्रवी वा अनी गोत्र श्रेशः पत्रवी गोत्र शानेवासी समीची दधाति" (१।१। ८ अ ०) इति । अश्रवितः पूर्वसां दित्रि प्रत्य सुख उपद्यात् , ख्यभितः प्रतीचां दित्रि प्राच्युख उपद्यात् । 'गोत्र सेश्वः' च थे 'पन्नवः', ते जातिमः पद्भवे तु अन्त्र स्वातात् 'श्रपत्रवः' एव ; मसात् प्रत्र स्वीगंवा श्रवित् से रिशि स्थि। प्रधानेन वजनानार्थे सर्वान् 'पन्नृन्' अभिमुखान् 'एव' करोति ।

श्रघोपस्तानमन्त्रेखार श्रानामनुदेशन य तात्पर्वे दर्भवति,--"एतावनो वे पन्नवा दिपादसतुष्यादस तान् वा एतदन्नी प्रदर्भाति चत् पद्भविषेणुपद्भात्यमुमारस्थमनु ते दिवामोत्वाद वाम्बेभ्य एव पर्यस्थ श्वारकान् प्रमुन्क्यमनूत्वृत्रति तस्नात् यमावत् पत्रूनां प्रजायमानामार्यद्याः पत्रवः कनीयाः यः . इड्डा इताः" (५।२।८५०) रति । चे 'दिपादः' (मनुखादवः), चेऽपि 'चतुष्पादः' (गवादयः), 'एतावमाः' एव खेरने विद्यमानाः 'पन्नवः', एवं सति पुरुषन्नीर्यस पन्नःभोर्षाकास्रोपधानेन 'तान्' वर्वः न् 'चग्ने।' प्रचिपति । ऋतसात्परिकारायारव्यपश्चनामनुदेवनं । तेन चानुदेवनेन 'गास्थेभः' 'गाउभः' वपत्रस्य 'वारस्वान्' 'पश्रून्' प्रति 'इउ्चं' (विक्रितापं) प्रेरचित । 'सि' (यस्रात्) 'चार्याः' 'ग्रुचा' (वक्रितायेन) 'चताः' (प्राप्ताः), 'तसात् चाम्यैः पद्मुभिद्रत्पित्तम्।म्येऽपि ते 'कनोयांसः' (मूखानर्दाः) । बदुकं सूचकारेष, 'नमा चन्छ सर्पेभ्य इति द्चिणेऽ१से सपेकिर . खपद्थादिवूचीनं पार्ष्वोर्षेरपि वा युज्रेव वर्ष्वोपद्भात्' इति।

तचापधानं विधन्ते,—"वर्षत्रीर्वमुपर्धाति यैव वर्षे लिवि-स्वामेवावद्ये" (५।१।८ घ०) इति । लिविदीितः ।

मक्तपाठमाचं विधन्ते,—"यत् समीचीनं पद्मश्रोर्वेदपदश्चाद् याम्यान् पत्रून् दृष्ट्यकाः खुर्यदिवृचीनमारकान् यजुरेव बदेदवतां तिविष्ट्र दन्धे या सर्पेन ग्राम्यान् पद्मृत् दिनखि नारक्यान्" (५।२।८ घ०) इति । सर्पत्रीर्वस्य समुख्विमुख्यते च बाधकसद्भावात् प्रकाराक्तरसभावाच तद्पधानं परित्यच्य मक्तमेव पठेत्, तदा मक्तपाठेन सर्पतिविर्णि प्राप्यते; समुख्विमुख्यत्यो-रभावात् देशवद्यमणि नाखि।

तिममं नेवलमन्त्रपष्णिच्य उपधानपष्णेत प्राप्तिप्रतिप्रसर्व विधन्ते,—"त्रथा खलूपधेयमेव चदुपद्धाति तेन तां लिपि-मवह्न्धे या सर्पे चयुजुर्वद्ति तेन प्रान्तम्" (५।२।८ % ०) इति। 'सर्पे' 'या' 'लिपिः' 'ताम्' उपधानेन स्थते; मन्त्रपाठेन सर्पेत्ररसः प्रान्तसात् दंजनमपि न भवति।

श्रव विनिधागसंग्रहः,—

षायुखायां जिरे धत्ते, रमिस्युपतिष्ठते । बातायस्य विरः प्राच्यां दध्यादिमं, जपेत्तया ॥ ष्यत्र,-वंभविरः पद्यादिममिस्यश्मित्तवस्य । वद, दिख्यते। दृष्यिविरस्वयान्त्रणं तिमां ॥ था, उद्योच्यां बस्तविरस्वयान्त्रणमवेत्यतः । दश्रमे समुवाकेऽस्तिम् दश्च मन्त्रा उदीरिताः॥

2 0

त्रय मीमांसा,—प्रयमाधायस चतुर्यपादे बेाड्याधिकरणे चिन्तितम्।

"पत्रवे। उत्ये गवासे स्वाऽपत्रवा वा इति सुतम्।
त्राजादि स्वपद्धलं हि गुक्वा दे। इय वा सुतिः ?॥
स्वायभावा हुण स्वेषु पद्धकार्य निषेधनम्।
पत्रवाऽपद्धत्रस्ये घटा द्यांभिधा सिना ॥
पत्रवाऽपद्धत्रस्ये प्रात्रस्याभावसास्यतः।
सद्यासान निमित्तमा प्रशंसेव गवास्योः॥

त्रमान्नायते, 'त्रपन्नवा वा सम्ये गोस्योधः पन्नवः' रति ।

तत्राजादिषु स्रूयमाणं यदपग्रमं, तस्यार्थवादमं न सम्भवितः,

पन्नाजादिषु स्रूयमाणं यदपग्रमं, ततः पग्नाकार्थनिवेधक्षेण

गुणारिभिधीयते रति चेत्। मैवं, श्रजादिपग्नाविधिवर्ष्यमम् हिष्टे सम्मान्नात्। श्रपग्नाक्षः पग्नाक्षः पग्नाक्षः चटादिपदार्थम्

श्रिवद्वातात्, तिसान् घटादा गवास्वत् प्राण्ञक्षः नास्ति, कार्षः

प्राण्नस्याभावारजादिषु पग्नाक्ष्यने प्रश्चनाभिप्रायेण पन्नव एव

सन्तेरप्रजादयो घटादिसाम्यादपग्नाक्ष्यं सस्त्रमे । पूर्वत्र

यजमानकार्यधिद्वराग्नेये मुख्जलमादित्यतेजस्वित्रस् वजमानादि
ग्रक्षाः प्रस्तराद्ययेषु प्रदक्तिनिमन्तं, तत्प्रदन्तिमसं प्रस्तरादि
प्रश्नं प्रस्तराद्ययेषु प्रदक्तिनिमन्तं, तत्प्रदन्तिमसं प्रस्तरादि
प्रश्नं प्रस्तराद्ययेषु प्रदक्तिनिमन्तं, तत्प्रदिन्तमसं प्रस्तरादि
प्रश्नं प्रस्तराद्ययेषु प्रदक्तिनिमन्तं, तत्प्रदिन्तिमसं प्रस्तरादि
प्रश्नं प्रस्तराद्ययेषु प्रदक्तिनिमन्तं स्वर्ते सम्पादिते। गुक्तिन्तर्योः

गुणात्कर्षं एकः प्रकारः, स्नावकेन मन्देन सम्पादिते। गुक्ते। स्वरं प्रदेशे सम्पादिते। गुक्ते।

बीऽम निम्तं। मजाइयः पत्रवीऽपि समी गवायेभः पत्रवः स्वयम् । स्यान् । तसात् । तसात् । तसात् । पत्रवो वा मन्ये रत्ययमर्थवादः। मयमेव न्याय उदाइरणाम्तरे योजनीयः;—'त्रयद्या वा एव योऽसामा' रत्येकमुदाइरणम् 'मपनं वा एतयद्क्रन्दोमम्' रत्यपरमुदाइरणम्। मग्निहोचदर्मपूर्षं-मासादिर्यज्ञोऽपि सामहीनलादयज्ञा भवति, देरुषः समी महिमा । इन्दोममञ्देन चतुर्विभयतुश्चलारिभेऽष्टाचलारिभ रत्येते चयसोमा उत्यम्, म्मद्रमञ्जासायेन गायत्री-निष्टृप्-जमतीक्कृन्दोभिभीयमाणलात् । तेषास विष्टृतिः सामनाद्यापे रत्येते स्वतःस्वमपि चतुर्दमरानादिकं कृन्दोमर्हितलाद्यनं भवतीत्येवं स्वावकलाद्यंवादलम् ॥

इति सायनाचार्यावर्त्ति माधवीये वेदार्घप्रकामे कृष्णयजुः-संहिताभाष्ये चतुर्थकाण्डे दितीयप्रपाडके दम्रमेरऽनुवाकः॥ •॥

इन्द्रीमी रेचिना दिवः परि वाजेषु सूषयः। तदी वेति प्रवीर्थे (१) । अर्थद्व चमुत संनेति वाजिनद्रा थे। भूमी सर्द्वरी सपुर्यात्। इर्ज्यन्ता वसुर्थस्य भूरेः

^{*} खप्रदः इति याठी भवितुं मुक्ताः।

सर्वसम् सर्वसा वाज्यन्तां (१) । प्र चंद्विभ्यः प्रतन्।-इवेषु प्र प्रविच्या रिरिचाचे दिवर्षः प्र सिन्धुंग्यः प्र गिरिभ्ये। महित्वा प्रेन्द्रीग्री विश्वा सुवनात्यन्या (१) । मर्वते। यस्य हि ॥ १॥

श्रये पात्रा दिवा विमहसः। स सुंगोपातेमे। जनः(")। युत्रैवी यज्ञवाहसो विप्रस्य वा मतीनां। मर्रतः श्रक्षता हवं(")। श्रियसे कं भानुभिः संमिनिश्चिरे ते रश्मिभिक्त ऋकंभिः सुखादयः। ते वाशीमन्तो द्रिष्मश्री सभीरवे। विद्रे प्रियस्य मार्यतस्य धार्मः(")। श्रवेते हेड् उद्ग्तमं(") कया नश्चिष श्राभुवदूती सदा हेधः सखा। कया श्रविषया वृता(")॥२॥

को खु युंड्को धुरि गा छृतस्य शिमीवता भा-मिना दुई शायून खासित्वन् हृत्वसा मयोभून्य रंषां खृत्याच् षधृत्स जीवात् (१०)। खग्ने नयाऽऽ देवानाः (१९।१०) शक्तो भवन्तु वाजे वाजे (१९।१०)। खुर्ष्वमे सिध्टव् साषधीरनुंद्धसे। गर्भे सञ्जायसे पुनः (१६)। हषी सेम खुमाः चित्त हषा देव हष्त्रतः। हषा धमीखि दिधषे (१९)। हमं मे, वद्या तस्त्रा यामि (१०।१०) त्वना खग्ने स त्वना खग्ने (१८।१०)॥ ३॥

हि। बुता। में। एकादश च ॥ ११ ॥

विष्णाः क्रमाऽसि। दिवस्परि। अवुप्ते। अपेत्। सिमत्ं। या जाता। मा ना हिश्सीत्। अभ्यस्थात्। भ्रुवासि धृरुषा। श्वादित्यं गर्भम्। इन्द्रांग्री राष्ट्रना। एकाद्य ॥ ११ ॥

विष्णेः (१४०)। श्रस्मिन् इव्या ३४०)। इतिं त्वाइं (५४०)। धीतिभिः (७)। होचां (८४०)। सुष्टा-चंत्वारिः श्रत्॥ ४८॥

॥ * ॥ इरिः श्रीम् ॥ * ॥

द्रति तैत्तिरीयसंहितायां चतुर्थकाएडे दितीय-प्रपाठके रकादभाऽनुवाकः ॥ ॰ ॥

॥ • ॥ समाप्तय दितीयः प्रपाठकः ॥ • ॥

द्यमेऽनुवाके पश्चित्रसामुपधानमुक्तम्। अधैकाद्ये धाव्यानुवाक्या उच्यके। चातुर्माखेषु वद्यप्रधासाद्यं यद्दितीयं पर्वे,
तिसान् दर्वीवि चलार्याचातानि। 'ऐन्द्राग्रमेकाद्यकपासं, मादतीमामिषां, वाद्यीमामिषां कायमेककपासम्' दितः त्रिक्षाग्रस्य
पुराजनुवाक्यामाइ,—"दन्द्राग्री रोचना दिवः परि वाजेषु
अवधः। तदां चेति प्र वीर्यम्(१)" दति। 'दिवः' (युक्षोकस्य)
'रोचना' (भासकी) चे 'दन्द्राग्री', 'वाजेषु' (इविर्वच्येक्कोषु)

'परि'-'भूषयः' (परितः प्राप्नुतः) भागमिति बेषः । 'तत्' (तस्मात् कारणात्) 'वां' (युववाः) 'वीयं' (सामर्थे) 'प्र'-'चेति' (प्रकर्षेणाञ्चायि) लेकि सर्वेज्ञांतिमत्यर्थः ।

तंत्रेव याक्यामाइ,—"अयदुवमृत सनाति वाजिमका या यग्नी कहरी सपर्यात्। इरक्यना वस्त्रस्य भरेः सहस्तमा सहसा वाजयना(१)" इति। 'यः' (यजमानः) 'इन्हा'-'श्रग्नी' 'सपर्यात्' (परिचरति)। कीदृबाविन्हाग्नी?—'सहरी' (समानाहाने।)। स यजमानः 'दृवं' (वैरिषं) 'श्रयत्' (विनावचित)। 'खत' (श्रिष च) 'वाजम्' (श्रश्नं) 'सनोति' (सर्वेभ्यः प्रयच्छति)। पुनर्षि 'श्ररेः' (बद्धस्य) 'वस्यस्य' 'इरज्यन्ता' (ईश्वरत्वं प्राप्तवन्ता)। 'सहसा' (सकीयेन बलेन) 'सहस्तमा' (श्रित्रयंन सेढ़ारो) पर-बस्त्य श्रीभभवितारावित्यर्थः। 'वाजयना' (वाजमन्नमात्मन इच्छन्ता)।

तचेव विकस्पितां याच्यामाइ,—''प्र चर्ष किथः पृतनाइवेषु प्र पृथिया रिरेचाये दिवस् । प्र सिन्धुभ्यः प्र गिरिभ्या महिला प्रेम्हाग्री विसा भुवनात्यन्या (१)" इति । हे 'इन्हाग्री', 'पृतना' (सृन्धानेषु) 'त्राहवेषु' (इवि:स्वीकारार्थेषु भाष्ट्रानेषु) च 'चर्ष विभाः' (मृत्येभ्यः) 'प्र'-'रिरिचाये' (प्रिक्ती भितिरिक्ती भवयः) वर्वानिष मृत्यानिति य वर्त्तेथे इत्यर्थः। तथा 'पृथिया' 'दिवस्' 'प्र'-'रिरिचाये' (तदुभयमिति य वर्त्तेथे)। तथा 'विन्धुभ्यः' 'प्र'-'रिरिचाये'। तथा 'गिरिभ्यः' (वर्षतेभ्यः) 'प्र'-'रिरिचाये'। किम्बद्धना ?—'क्रस्यन्या' (प्रत्यन्तिमत्राणि) 'विस्वा' 'भुवना'

(सर्वाणि भुवनानि) 'महिला' (स्नकोयेन महिसा) युवां चिति -'प्र''रिरिचाचे' (श्रतिरिच्च वर्त्तेचे)।

श्रम मारुषा श्रामिचायाः पुरेऽनुवाक्यामाइ,—"महतो यस हि चये पाणा दिवा विमहनः। स सुगोपातमी जनः(*)" इति । हे 'महतः', 'दिवः' (बुखोकात्) श्रागता यूयं 'यस्य' (बजमानस्य) 'चये' (ग्रहे) 'पाण' (रचां कुह्य)। की हुत्रा महतः?—'विमहसः' (विज्ञिष्टं महस्तेजो येवां ते) 'विमहसः'। 'स' 'जनः' (तादृत्रो यजमानः) 'सुगोपातमः' (श्रतित्रयेन रखको भवति।

तचैव विकल्पितामनुवाकामा इ,—''यजैर्वा यज्ञवाहवा विप्रस्थ वा मतीनां। सहतः प्रश्नुता हवम्(६)'' इति। 'यज्ञ-वाह्यः' (यज्ञस्व वेद्धारः) हे 'महतः', 'यजैर्वा' निमित्तभृतैः 'हवं' (मदीयाज्ञानं) 'प्रश्नुत'। श्रथ वा 'विप्रस्थ' (यजमानस्थ) 'मतीनां' (वित्तवसीनां) श्रमुगहाय 'हवं' (महीयाज्ञानं) 'प्रश्नुत'।

तत्रैव बाज्यामाइ.—''मियसे कं भागुभिः समिमिचिरे ते रिकाभिको चक्रिः सुलाइयः। ते वाक्रोमना दक्षिणे ज्यभी-रवा विद्रे प्रियम माइतमा धामः(')'' दति । हे मदतः, † पुरावातस्त्रक्ष्णाः मनाः 'कं' 'मियसे' (प्राणिभिरात्रथितं) 'भागुभिः' (भासुरैः) 'रिकाभिः' (सूर्यरक्षिभिः) यहिताः

^{*} खयम् 'खति' प्रब्दोऽधित हव प्रतिभाति।

[†] खन 'त' (मबतः) हति पाठा भवितुं युक्तः।

'स्वामिचिरे' (मेघरुष्या श्रमिं सम्यक् सेमुमिक्कामा)। 'ते' (मस्तः) 'स्वाभिः' (याज्यापुरे। तृवाक्याक्षणभिः स्विभः) स्वतः समः 'सुखाद्यः' (ग्रोभमं इतिः खादितवन्नः)। ततः 'ते' मस्तः, 'वाजीमनः' (उत्साद्यप्रयुक्तघोषक्षपवद्यविधन्नव्यवनः), 'दिशिषः' (स्वर्याग्पित गमितवनः), 'ज्ञभीरवः' (स्वकार्यस्य निष्यत्रतेन विद्यकारिभः असरेभो भयर्षिताः), 'प्रियस्य' 'माद्यस्य' 'धाषः' (मद्तां समस्य यत् प्रियं स्वानं तत्) 'विद्रे' (स्थवनाः)।

ष्य वाद्योमानिषामित्यस्य थाकानुवाकाथोः प्रतीके दर्ध-षति,—"श्ववते हेड़ो, खदुक्तमम्(^{०-८)}" दति । 'षवते हेड़ः' दति पुराजनुवाकाः; 'खदुक्तमम्' दति याच्या । एतचोभयं "वैद्यानरा न जत्या" दत्यसिन्ननुवाके (१।५।११ष०) याक्यातम्।

श्रथ कायमेककपासमित्यस पुरे। जुवाक्यामाइ,—"कथा निश्च श्राभुवदूती सदा हुधः ससा। कथा प्रचिष्ठया हुता(०)" इति। कस (प्रजापतेः) समन्धिनीत्यसिन्धर्ये क्लीसिङ्गः केतिप्रस्रो वर्त्तते। 'जति'-प्रस्रो रक्षणवाची। 'कथा' जत्या (प्रजापति-समन्धिना रक्षणेन) 'चिन' 'श्राभुवत्' (विचिने। उयं यद्यः) 'नः' (श्रसान् प्रति) श्रागतः। कोदृशो यद्यः?—'सदा दृधः' (सदा वर्द्धमानः); 'ससा' (सस्ववत् प्रियतमः)। स च चद्यः 'कसा' (प्रजापतिसम्बन्धिन्या) 'प्रचिष्ठया' (श्रतिप्रयितया प्रक्रा) 'हता' (युक्त इत्यर्थः)।

श्रमेव वाकामाइ,—''को श्रम वृद्धे धृरि ना स्तक श्रमोवतो भामिना दुर्श्वायून्। श्रामित्रपून् इत्खरी मवी-श्रम् व एवां श्रत्वास्त्रपभत् च जीवात् (१०)'' इति। 'कः' (प्रजा-पतिः) 'श्रयः' (श्रसिन् दिने) 'क्षतसः' 'धृरि' (यञ्चस्र भारे) वञ्चप्रवृत्तिवेकायामित्यर्थः। 'नाः' (वाम्बिशेवान् श्रमदोयस्तृति-स्पान्) 'खुद्धे' (खित्रचे बीजयित)। कीवृत्रान् वाम्बिशेवान् ?— 'श्रिमोवतः' (श्रम्युक्तान्) एतत्कर्मयोग्यानित्यर्थः। 'भामिनः' (खार्यावभासकान्) 'दुर्श्वायून्' (दुःखइरणश्रीसान्) 'श्रावित्रपून्' (श्रसदीयमास्त्रं मुखम् इस्थित् गस्त्रमीत्यासित्रयः तान्); 'इत्खरः' (इस्यु स्त्रत्यानां इदयेषु तिष्ठक्तीति इत्खयः तान्); 'इत्खरः' (श्रस्य स्त्रत्यानित्यर्थः। 'मयोग्धन्' (स्रस्त्य भावियद्वन्)। 'यः' (यञमानः) 'एवां' (वाम्बिशेवाचां) 'स्त्र्यां' (भरस्तिवां) 'स्वध्रस्' (बर्द्वयिति) पुनःपुनः सेतितिवर्थः। 'स' (वजमानः) 'वीवात्' (विरं जीविति)।

यथ खिष्टकतो याज्यानुवाक्ययोः प्रतीके दर्भवति,—"यग्ने नयाऽऽ देवानाम्(११-११)" इति । 'क्यो नय सुपथा' इति पुरोऽनुवाक्या । 'क्या देवानामपि पन्था' इति याच्या । एतचाभयम् "उभा वामिक्राग्नी" इत्यनुवाके (१।१।१४ प्र•) याच्यातम्।

त्रामिचानुनिच्यादिने। वाजिनद्दविषे याञ्चानुवाक्ययेाः प्रतीके दर्भयति,—''त्रले। भवन्तु वाले वाले^(११-१३)" इति। 'त्रले। भवन्तु वाजिने। द्वेषु' इति पुरोऽनुवाक्या। 'वाले वाले ऽवत वाजिनः' इति याच्या । एतकोभयं 'देवस्थाहः सवितुः प्रमवे' इत्यनुवाके (१।७।८५०) व्यास्थातम्।

त्रयावस्ये प्रथमाञ्चभागस्य पुरेाऽनुवाक्यामादः,—"त्रस्वग्ने सिध्यव मेषिधोरनृहथ्यते । गर्भे सञ्चायते पुनः(१६)" इति । हे 'त्रग्ने', ते (तव) 'सिधः' (सहा बलम्) 'त्रपु' वर्त्तते । 'स' लम् 'त्रोषधीरनृहथ्यते' (त्रीदियवाद्योषधीरनुसरितः'), जाठराग्नि- रूपेण तत्स्वीकारात् । त्रर्ष्शाः 'गर्भे' स्थितः सन् 'पुनः'-पुन- जीयते ।

श्रथ दितीयाज्यभागस्य पुरे। जनवाक्यामा ह,—''हवा से म सुमा श्र श्रिस हवा देव हवजतः। हवा धर्माणि दिधिषे (१९)'' दिति। हे 'मे। म', लं 'हवा' (कामानां वर्षियता) 'श्रिम'। 'सुमान' (दीप्रिमान्) च 'श्रिम'। हे 'देव', यस्रात् लं 'हवा' (वर्षियता) तस्रात् लं 'हवजतः' (वर्षणिनिमित्तं जतं कर्म यस्य श्रेमे। हवजतः)। किश्य यस्रात् लं 'हवा' (वर्षियता), तस्रात् 'धर्माणि' (पुष्प्रानि) 'दिधिषे' हे मे। म (धार्यिता श्रिस)।

श्रथ वार्णस याज्यानुवाक्ययोः प्रतोके दर्भयति,—"इमं मे वर्ण तत्ता यामि^(१०-१८)" इति । 'इमं मे वर्ण श्रुधि' इति पुरोऽनुवाक्या, 'तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानः' इति याज्या । एतचोभयम् "इन्हं वे। विश्वतस्परोन्हं नरः" इत्यनुवाके (२।१।१९श्व०) व्याख्यातम् ।

[🍍] सरसि इति पाठो भवितुं युक्तः।

भणाशिवाक्षिखिष्टकतः संयाज्ययोः प्रतोके दर्भयति,—"सकी भाग्ने स लको भग्ने^(१८-१०)" इति । 'लस्नो भग्ने वक्षस्य विदान्' इति पुरे। उनुवाक्या, स लन्ने। भग्नेश्वने। भवति' इति याज्या। एतचे। भयम् "भ्रायुष्ट भायुदी भग्ने" इत्यसिन्न मुवाके (२।६। १२भ०) बास्यातम्॥

श्वव विनियागसंग्रहः,---

वाद्षाख्यप्रघाषेषु याच्या श्रम्यानुवाकगाः । इन्ह्राग्नी तिस्त ऐन्ह्राग्नेभीहते तु मद्द्र्यम् ॥ श्रवोद्द्र, वाद्यो यागे; कया, कायाख्ययागके । श्रम्न, श्रा देव, संयाच्ये; मस्रो वाजेति वाजिने ॥ श्रम्,-दरां चावस्योऽनुवाक्ये श्राज्यभागयोः। इमं, तत्वा, प्रधानस्य प्रोक्ते, त्वं स त्वमित्यमू॥ संयाच्ये इति मन्त्रास्त विंगतिः समुदीरिताः॥

वेदार्थस्य प्रकाशेन तमा इन्हें निवारयन्। पुमर्थां खतुरेन देयादिद्यातोर्थम हेश्वरः॥

इति सायनाचार्यविर्चिते माधवीये वेदार्थप्रकाशे कृष्णयजुः-संहिताभाय्ये चतुर्थकाण्डे दितीयप्रपाठके एकादशेऽनुताकः॥ ०॥

^{*} खत्र 'त्रयम्' इति पाठो भवितुं युक्तः।

[🕇] चात्र 'काया को काययागको' हित पाठी भवितुं युक्तः।

इति मोमद्राजाधिराजपरमे यरवैदिकमार्गप्रवर्तकभी वीरवृक्ष-भ्रत्यासयामान्यधुर्भरेष यायगाचार्येष विरचिते माधवीये वेदार्थप्रकावना मकतै तिरीययणुः यंदिताभाये चतुर्थका छे दितीयः वपाडकः यन्पूर्थः॥०॥

॥०॥ ॐ तस्त्।।•॥

श्रीगणेश्राय नमः ।

श्रव तैतिरीयसंहिताभाष्ये

चतुर्घकाण्डे हतीयप्रपाठके

प्रथमाऽन्यायः।

श्रुपं त्वेमंन्ताद्याय्यपं त्वा श्रेन्ताद्याय्यपं त्वा भस्नंन्ताद्याय्यपं त्वा श्रोतिष साद्याय्यपं त्वा-ऽयंने साद्यामि(१.५) श्रुण्वे सद्ने सीद् समुद्रे सद्ने सीद् सिख्छे सद्ने सीद्ापां श्रुयं सीदापाः सिधिष सीद्(१-१०) श्रपां त्वा सद्ने साद्याय्यपं त्वा सुधस्यं साद्याय्यपं त्वा पुरीषे साद्याय्यपं त्वा बानां, साद्याय्यपं त्वा पार्यसि साद्यामि(११-१६) गाय्वीर्छ-न्दस्तिष्ठुप् बन्दे। अगंतीबन्दीऽनुष्ठुप् बन्दः पंक्तिन्दन्दः (१९-१०) ॥ १ ॥

योनी । पर्चंद्य च ॥ १ ॥ इति तैसिरीयसंहितायां चतुर्थकाण्डे दतीयप्रपाठके प्रवसेऽनुकाकः॥ ० ॥

श्रीगणेशाय नमः।

यस निम्नसितं वेदा यो वेदेभ्योऽखिलं जगत्। निर्ममे तमइं वन्दे विद्यातीर्थमहेश्वरम्॥ प्रपाठके दितीये हि चितिचेत्रं निरूपितम्। वाच्यासृतीयके पद्म चितयोऽच चयोदम्॥ श्रमुवाकास्तिभिद्यांश्यां तथा दाभ्यां चतुष्ट्यात्। एकेन चितयो याच्या द्रत्यर्था श्रमुवाकगाः॥

तम प्रथमानुवाके प्रथमचितिगता ऋपस्याभिधाना इष्टका खर्चको । कच्यः, 'ऋपस्या उपद्धात्यपां लेमन्त्साद्यामीति पश्च पुरसात् प्रतीचीरणंवे घदने मीदेति पश्च दिच्चित उदीचीरणं ला सदने मादयामीति पश्च पश्चात् प्राचीगायत्रोक्कन्द इति पश्चोक्तरता दिच्चा' इति । तम प्रथमपश्चकमन्त्राना इ,—"ऋपां लेमग्त्सादयाम्यपां लोग्नग्त्सादयाम्यपां ला भक्षग्त्सादयाम्यपां ला क्यातिषि सादयाम्यपां लाऽयने मादयामि(१-५)" । हे दष्टके, लाम् 'श्वपाम्' 'इमन्' (जलमनिध्यत्रवाहादिगमनप्रकारे) 'सादयामि' (स्वापयामि) । एवमुक्तरचापि योज्यम् । 'श्वोद्यन्' (वोचीनतरङ्गादिक्षे उद्यक्ते), 'भक्षन्' (भासके ग्रुक्तरूपे), 'ख्योतिषि' (प्रकाशनैर्मस्थे द्राय्यंः) । 'श्रयने' (मदीकूपाद्याधारे) ।

षण दितीयेष्टकाप सकमन्त्राना इ, — ''सर्ववे यदने सोद समुद्रे सदने सोद सलिसे सदने सीदापां चये सीदापां सिर्वि सीद^{((-१)}"दित । ऋषैतक्षम्देन सादृष्ट्यात् प्राढ्तटाका सुपस च्यते । तस 'सपां' सदनं । तस्मिन् स्थाने हे दृष्टके, 'सीद' (उपितक्षे) । 'समुद्रः' प्रसिद्धः । सिल्लक्षम्देन स्वनिर्द्धारितिविष्ठेषे असमाना-धारो सिच्तः । चीयने ग्रुप्यन्यापाऽचेति ग्रुप्कतटाकादिः चयः । जलेन सह मेघे धीयते स्वायते इति सधीर्ववापसादिः ।

भय हतीयपश्च सम्त्राना इ,—'भ्रपां ला सदने सादयम्यपां ला योनी सादयाम्यपां ला पाणिस सादयामि(११-१६)"। हे दृष्टके, लाम् 'श्रपां' 'सदने' (नदादीं) 'सादयामि' (खापयामि)। श्रद्धिः सह विद्युदादया यन मेघे तिष्ठन्ति, से।ऽयं मेघः 'सधस्तः'। पुरीषश्रब्देन नदादिगताः सिकता उच्यन्ते। योनिश्रब्देन जल-कारणश्चतोऽग्निर्चते। 'श्रग्नेरापः' द्रति श्रुतेः। पोयते जलं मेघेर्चेति पाणः सम्द्रः।

श्रथ चतुर्थपञ्चकमन्त्राना इ.—"गायत्री हन्द स्ति हुप् हन्दो जगती हन्दे । उनु हुप् हन्दः पिक्किश्चन्दः (१९-१०) इति । हे इष्टके, लंगायश्रास्त्र स्कन्दो रूपि । एविनतर्वापि ।

एते भेकीः साध्य मुपधानं विधत्ते,—"पग्न वां एव यद ग्रियों निः खबु वा एवा पन्ने विकियते यत् प्राचीन मेष्टका खजुः कियते रेताऽ-पखा अपखा उपद्धाति याना वेव रेता द्धाति" (५।१।१०%) इति । योऽयम् 'श्रामः', स 'एव' पग्न प्राप्ति हेतु लात् 'पन्न ः' एव । इष्टकी पधानात् पूर्वे यद क्रजातमनुष्ठीयते, तेन पन्ने रेवा यो निरेव विक्रता भवति । यथा स्रोके स्तुका से विक्रता यो निः रेता- धारणमपेचते' तददित्यर्थः । श्रक्तिङ्गगतै मैन्नैरपधेया इष्टका 'श्रपस्याः' तास रेतस्वानीयाः, श्रतसा उपद्धात् । तदुपधानेन 'योनावेव' 'रेता' धारितं भवति ।

सामान्येन विद्यितं विशेषाकारेण पुनर्विधत्ते,—"पञ्चीपद्धाति पाङ्काः पत्रवः पश्चनामेवासी प्रजनयति" (५।२।१०२०) इति । स्त्रच पुरसादित्यधादृर्त्तयं। पूर्वस्यां दिशि पञ्चेष्टका उपद्धात्। सपुक्कैः पादैः पञ्चभियागत् 'पश्चवः' 'पाङ्काः'।

त्रथ दितीयपञ्चकस्य देशं विधत्ते,—"पञ्च दिल्लोतं वज्जो वा त्रप्रसा वज्जेलैव यज्ञस्त दिल्लितो रक्षाश्रस्यपद्यानां वज्जवम्। १०८०) दिति। वज्जवदैरिनिवारणसमर्थवादपस्तानां वज्जवम्।

श्रथ हतीयपश्चकस्य देशं विधसो,—"पश्च पश्चात् प्राचीद्य-दधाति पश्चाद् वे प्राचीन १ रेतो धीयते पश्चादेवासी प्राचीन १ रेतो दधाति" (५।१।९० श्र०) द्ति । 'प्राचीः' (प्राक्क्ष्याः) । स्रोके पश्चिमस्यां दिशि श्ववस्थितेन प्राक्क्ष्येन पुरुषेण 'रेतः' 'प्राचीनं' समुख्येनेव गर्भाग्रये स्थाप्यते । श्वता यजमानार्थमिष तथा इतं भवति ।

पूर्वपिश्वमये। रिष्टकाः सह प्रशंसति, — "पश्च पुरस्तात् प्राची-इपद्धाति पश्च पश्चात् प्राचोस्तसात् प्राचीन ह रेता धीसते प्रतोचोः प्रणा जायन्ते" (५।२।९०%) इति । 'प्रतीचीः' प्रतायक्षाः । प्राच्चां प्रथमामाधाय ततः पश्चिमायां दितोयां

चित्रप्रातेः हति कचित् पाठः साधुरिव प्रतिभाति ।

तताऽपि पश्चिमायां वतोयेति एषा रीतिः। प्राचीरित्यच तदिपरीता रीतिः; क्षेकिऽपि पुराऽभिमुखलेन रेतःसापनं, तदिपर्येष प्रजननम्।

चतुर्थेषञ्चकस्य देशं विधत्ते,—"पञ्ची त्तरतन्त्रस्याः पत्रवे।
वे कन्द्रसाः पत्रुनेव प्रजातान्रस्यमाचतनमभिपर्यूद्वते" (६।१।
१ - प्र॰) इति । पूर्वेषिधानेन 'प्रजातान्' 'प्रमून्' प्रनेनेष-धानेन स्वस्थानं प्रापयति ।

देशविशेषाम् विधाय समुदायाकारेण प्रशंसित,—"इयं वै श्रश्नेरित्राहादविभेत् वैता श्रपस्था श्रपस्थक्ता उपाधक्त तते। वा इसां नात्यदृह्यदृपस्था उपद्धात्यस्था श्रमतिदृष्ट्ययः (५।२।९०१०) इति । श्रपां श्रामत्वादपस्थाभिरतिदृष्ट्यः परिहारः।

पुनः प्रकारानारेण प्रजंगित,—"खवाच देयमदित्स प्रजाणा-प्रजं यस्मेता खपधीयानों य खचेना एवं वेदिदिति"(५।१।९०५०) दित । 'यस्म' (यजमानस्म) 'एताः' श्रपस्का खपधीयनो, 'यः' 'खच' विदान् एता श्रपस्का खन्नप्रकारेण जानाति, 'व' (स्वमानः) च च वेदिता 'ब्रह्मस्म' (मुख्यया द्याः। 'श्रमम्' 'श्रद्दित्' (श्रम्भित्तः), 'स्वं' ददं वाकाम् 'द्यं' पृथ्विती 'खवांस् स्'। तस्मात् श्रपस्थाः प्रश्रस्ता दृति तात्पर्थार्थः॥

^{*} इतीवानिति इति पाठै। भनितुं युद्धः।

श्वन विनियोगसंग्रहः,— श्वपामप्रसादिष्ट्येता उपधेयास्त विंत्रतिः ।

र्ति सायनाचार्यविरचिते माधवीये वेदार्यप्रकामे हन्त्रयजुः-यंचिताभाके चतुर्यकाण्डे हतीयप्रपाठके प्रथमाऽनुवाकः ॥ • ॥

श्रयं पुरे भुवृक्तस्य प्राणा भीवायना वंस्कः प्राणायना गायनी वास्की गायनीय गायनं गायन वास्का गायनीय गायनं गायन वास्का गायनीय गायनं गायन वास्का प्राण्या स्वाम स्वाम प्राण्या स्वाम स्वाम स्वाम स्वाम प्राण्या स्वाम स्वाम स्वाम स्वाम स्वाम प्राण्या स्वाम स्वाम स्वाम प्राण्या स्वाम स्वा

युक्तामि प्रजाभ्यः (१) अयं प्रशादिश्वर्थेचास्तरः चर्रावेश्वर्थेचसं वृषीणि चाश्वषाणि अगेती वृषि वर्गत्या स्टांम्स्टांमास्कः युकात् संतद्शः संत-दृशादेक्षं वेक्ष्पादिश्वामिष् स्टिषः प्रजापतिराष्टी-तया त्वया चर्छं रेक्क्षामि प्रजार्थः (१) दृद्मुन्तरात् सुवस्तस्य श्रोषे स्तीवः श्ररस्ट्रीत्यं नृष्टुप्हार् चनुष्टुभंः स्वारः स्वारान्यन्यी मृन्यिनं एकविः श्र एकविः शाद् वैराजं वैराजाक्रमदेशिक्षं प्रजापतिराष्टीत्या ॥२॥

त्वया श्रोचं यह्णामि प्रजार्थः । इयमुपरि मृतिः ।
तस्यै वाक्याती हेमन्तो वाच्यायुनः पृक्तिहेमन्ती पृक्तेप्र
निधनंविद्यभवत श्राप्रयुष श्रीप्रयुणिश्चिणवचयस्त्रिश्शो चिणवचयस्त्रिश्शास्थीश शाकररेवृते श्रीकररेवृतास्थी विश्वकर्मिः । प्रजापंतियहीतया त्वया वाचं
यह्णामि प्रजास्थः ॥ ३॥

त्वया मनः। जुमद्ग्रिकिषः प्रजापतिरहीतया। चिश्रम्बे॥२॥

इति तैतिरीयसंहितायां चतुर्थकाएडे तृतीय-प्रपाठके हितीयाऽनुवाकः॥ •॥

प्रथमेऽनुवाके भाषसा छकाः । भाष दितीये प्राणस्त सम्यन्ते । कत्यः, 'भायं पुरे। भुव इति पञ्चाजत् प्राणस्तो दम २०२ दत्र प्रतिदित्रमञ्जूया दत्र मधीऽनारासुपधाय' इति। तच पूर्वेका दिख्यपधेयानां दशेष्टकावां मन्त्रमा ४,—"पर्य पुरेर श्ववद्याचा प्राची भीवाचनी वसन्तः प्राचाचनी गायची वासनी गायनिये गायनं गायनारुपाश्चाद्रपाश्चीक्रित् विदते। रचनार्थ रचनाराद् विशव ऋषिः प्रजापितस्रिशीतया प्रापं ग्रकामि प्रजाभाः (१)" इति । भवत्वसाच्यगदिति 'सुवः', भुव:बब्दः " प्रजापतिमाचष्टे । 'पुरः' (पूर्वस्तां) दित्रि 'त्रयं' 'भुवः' वर्त्तते इति श्रेषः; हे रष्टके, नद्रूपाऽचीत्यभिप्रायः। एवम् **उत्तरेव्यपि वाकीषु बोक्यं। 'तस्त्र' (भुवःशब्दाभिधेयस्त्र) प्रजापतेः** क्षम्त्रभी 'प्रापः', ऋत एवापत्यत्ममुपचर्य 'भै।वाचनः' इत्युच्यते। तस च प्रावस वावर्शसम्बद्धापतालेगे। पचरितः 'प्रावायनी' वयमार्नुः । तकः च धमिश्चिती 'वायमी' 'गायमी' । तका-न्दन्रोद्धपाचा गायव्याः ममिन्नि 'गायबं' साम । तसाच गायवस्य सत्यम् इत 'खपांद्र'-यदः। मसाचापांद्र्यहादृत्यस इव 'चिष्टत्' स्तोमः। तस्रात् चिष्टत्स्तोमाद्त्यस्तिव 'रथकारं' बाम। तसाद्रचन्तरसाम जत्पन इव वसिष्ठाख 'ऋषिः'। 🕏 रष्टके, चचाकप्रकारेच प्रवासिनप्राय-वसनादिक्षेगपचारेच 'प्रजापतिरहत्तिया' 'लया' 'प्रजाभ्यः' (सर्वासं प्रजानां) 'प्राचं' 'ररकामि' (प्रजानौ प्रावसिद्धये लाम् उपद्धामीत्यर्थः)। चद्याययमेकवाकातादेक एव मन्त्रः, तथापि प्रतीष्टका दश्या दश्र मन्त्राः सम्बद्धन्ते।

^{*} भुवषस्य इति पाठी भवितुं बुक्कः।

यय दिख्या दिख्यपेथयानामिष्टकानां नक्तजार,—"यर्थं दिख्या विश्वकर्मा तस्त्र मनो वैश्वकर्मणं गोग्नो मानयित्रष्टुन्-ग्रेग्नी विष्टुन ऐड्मेड्रादक्तर्थानाऽक्तर्थामात् पञ्चदत्रः पञ्चदत्राद् नृष्ट्रृप्टतो भरदात्र खिः प्रजापितस्य देतिया स्वा मने। एकानि प्रजाभः (१)" इति । विश्वानि कर्माणि जमह्यापार्ण्याचि चस्र, खेशे 'विश्वकर्मा' (प्रजापितः) । 'दिख्या' (दिख्यां) दिश्च यः 'खवं' विश्वकर्मा, हे रहके, तद्रूपा समिव। प्राय-वयक्तादिपरक्षरेव मने।गीग्नादिपरक्षरा खाळेखा । 'ऐड्म्'-इति सामविश्वेषः ।

चय पश्चिमामां दिख्यपथेयानामिष्टकानां मन्त्रमा ए,—"चनं पश्चादिययानास्त्र चनुँदेययानां वर्षाचि चानुवाचि सन्ती वार्षी जगता खनमस्चमाच्छुकः ग्रुकान् वत्रद्रवः सप्तर्वाष्ट्र वेद्भपदियामिन खविः प्रजापतिग्रहीतया लक्ष चनु- ग्रेवामि प्रजाभ्यः (१)" इति । विश्वं (सर्वे जगन्) वाचित खाप्नोति इति 'विश्वययाः' प्रजापतिः । ग्रेवं पूर्ववद्येशजनीयम् । 'वर्षाचि' वर्षेनुः । 'क्ष्यभम्' इति वामवित्रेषः ।

श्रीतरसां दिश्रुपधेवानामिष्टकानां मन्त्रमार,—"रदम् उत्तरासुवसस्य श्रोनश्र सेवश् ग्ररत् श्रीती श्रनृष्टुप् बारदी श्रनृष्टुभः सारश्र सारानान्यो मन्त्रिय एकविश्र इकविश्र शादेराशं वैराजाक्यमद्भिश्चिषः प्रजापितग्रशीतमा लवा श्रीणं ग्रहानि प्रजाभ्यः (१)" रिति। साति सर्वे जगत् प्रेरयतीति सुवश्रस्यः प्रजापतिवाची। उत्तरसां दिश्र यदिदं 'सुवः' (प्रजापतिश्रदीरं), हेर हके, लंतद्रूपाऽचीति योज्यम्। खारमिति सामवित्रेषः। त्रेषं पूर्ववद्याखोयम्।

त्रच मध्यमदेते उपधेयानाभिष्टकानां मन्त्रमाइ,—"इयम् उपरि मतिः तस्य वाद्माती हेमको वाच्यायनः पङ्किईमकी पक्कीर निधनविश्वधनवत श्राययण श्राययणास्त्रिकव वयस्ति ए श्री चिखवचयित्तः प्राभ्याः प्राकररैवते प्राकररैवताभ्यां विश्वकर्मर्षिः प्रकापतिरुद्दीतया तथा वाचं रुद्धामि प्रकाश्वः(^{५)}'' दति। भन्यते छत्त्रं वगज्जागातीति 'मतिः' प्रवापतिः। ऊर्द्वार्था दित्रि चेचं 'मितः' (प्रजापतिर्मेतिः), चे द्रष्टके, तद्रुपा लमिख । मतिनाचः प्रजापते स्त्रंपत्यक्षा वा इयं 'वाक् माती' । वाचे। उपतं 'वाच्यायमः'। 'निधनवत्' इति सामविशेषः। तत्रैकैकस्मिन् मरू प्रजापतिः इन्द्रियम् ऋतुः इन्द्रः सामविज्ञेषय इः स्रोमः पृष्ठस्रोत्रं माम ऋषिरिति नवानामेतेषां पदार्थानां यद्यपि खोकप्रसिद्धो जन्यजनकभावा नास्ति, तथापि मन्त्रार्थलेन मनसा भावित्त-मिर्मुक्तमित्यविरोधः।

एतेर्मकी: बाध्यमुपधानं विधन्ते,—"प्रावस्त उपदधाति रेतस्थेत प्राणान् दधाति तस्राददन् प्राणं पम्यन्कृष्यन् पद्म-र्जायते" (५।२।२०४०) इति । पूर्वे रेतो रूपा अपसा उपहिताः, तत ऊर्द्धे प्राणस्तामुपधानेन 'रेतिष' प्राणं खापयित । यसात् एवं गर्भाषये विको 'रेतिसि' प्राषाः खायको, तस्रात् रेत:-कार्यपद्भवंदनादिभिवागादियापारेर्युको जायते।

सामान्देन विहितं पुनर्विभेषाकारेण विधन्ते,—''सबं पुणे

भव इति पुरसाद्यस्थाति प्राचमेवैताभिर्दाधार, यथं दिश्वा वियक्रमैति दिश्वतो मन एवैताभिर्दाधार, यथं पद्यादिययशा इति पद्याच बुरेवैताभिर्दाधार, इदमुक्तरात् सुवित्युक्तरतः स्रोपमेवैताभिर्दाधार इयमुपिर मितिरित्युपरिष्टाद् वाचमेवैताभि-र्दाधार" (५।२।९ • घ ०) इति । तक्तदिष्टके प्रधानेन चित्यका-ग्रेथैनमानस्य वा प्राणादयो धता भवन्ति ।

एकैक कां दिष्णुपधेयाना सिष्टकानां सङ्घां विधक्ते,—''दश्व-दश्रीपदधाति सवीर्यलाय" (५।२।२०२०) इति । एकैकं सक्तं दश्रक्तत आवर्ष्ट दश्रेष्टका छपदधात् । तथा सति चितेः सवीर्यलदा्ह्ये भवति ।

तचे। प्रधाने वक्कलं विधत्ते,—"श्रद्ध्ययोपद्धाति तसाद्द्य्यया प्रविद्यानि प्रदर्गना प्रतिष्ठित्ये" (५।२।९०%) इति । प्रतीश्वामुपद्मस्य प्राश्वामवद्याने स्ति श्वार्श्वयं भवति । नैर्श्वत्या-मुपद्भस्य श्रेष्ठान्यौ समापनं वक्षत्रम्; एवमितरशापि; तद्दिम् 'श्रद्ध्या' इत्यनेनेश्यते । प्रवे। उपि द्श्यां पुरे। वर्षिपादं प्रशास्त्र वामायवर्षिपादं प्रशासयिना, एवं पश्चनां पादशासने वक्षत्रम्।

तत्ति स्विधिष्टा दष्टकास्तत्त्वस्त्रगतान् विश्वहादीनृषीस्य प्रश्नंचित,—''याः प्राचीस्ताभिवैसिष्ट* श्वाप्तीत्, या दिख्या ताभिभैरदावा, याः प्रतीचीस्ताभिर्विश्वामिना, या खदीचीस्ताभि-

[&]quot; वसिक इति चादर्भसंहितामुक्तके पाठः।

र्जमद्गिर्वा खर्डासाभिवियक्मी" (५।१।९०४०) इति। सप्टम्।

एतदेदनं प्रशंसित,—''य एवनेतासास्त्रह्मं वेद खश्चेत्येव, ख आसामेवं बत्धृतां वेद बत्धुमान् भवति, य आसामेवं क्षृतिं वेद कस्पते खस्ने, य आसामेवमायतनं वेद आयतनवान् भवति, य आसामेवं प्रतिष्ठां वेद प्रत्येव तिष्ठति'' (५।२।२०६०) इति । 'ऋद्भिः' (सस्टिइडेतुल्यम्) । बत्धूनां समूद्देा 'बत्धुता', दशानां समूद्दाकार इत्यर्थः । 'क्रुतिः' वक्षकस्पना। 'श्रायतनं' प्रागादि-देशविभेवः । 'प्रतिष्ठा' तत्र स्वापनम् ॥

> चन विनियोगसंग्रहः,— चयं प्राचभृता दथात् पद्मात्रत् पद्ममन्त्रकेः।

चय मीमीता, प्रयमाधायस चतुर्थपादे चतुर्वाधकर्डे चिनितम्।

> "इष्टिक्त् प्राणभृत् तत्र वादुम्यं चित्रभ्रमतः। प्रवेशसम्बगा चित्रसमुदाया विशेखते।

'प्राणभृत उपद्धाति' दत्यचापि स्टिन्यायेन मक्कविधिरिति पूर्वः पचः । सिङ्गप्रकर्णप्राप्तमकानुवादेन दृष्टकोपधाने विधिः । 'रितस्थेव प्राणान् द्धाति' रत्यस वच्यमाषस्यार्थवादस्थे।पपक्तवे प्राणसम्बन्देन मकानुवादः। पूर्वच दितीयादिमक्केषु स्टिनिङ्गानां बाइस्थम्, दृष्ट् तु प्रथममक एव प्राणस्तिङ्गमासायते,—'त्रयं पुरा भुवसास प्राणो भावासनः' दृति । एकस्थैव मक्कस्य प्राप्त- सनेऽपि 'इपिणे। गक्काना' इतिवत् तत्व इचिताः सर्वेऽपि मन्ताः प्राणभुक्कान्देन सन्दानो ॥

द्ति यायनाचार्यविर्त्तिते माधवीचे वेदार्थप्रकाग्रे छणायजुः-संदिताभाय्ये चतुर्थकाण्डे स्तीयप्रपाठके दितीथाऽनुवाकः॥•॥

प्राची दिशां वेस्न क्षंत्रनाम् प्रिदेवता ब्रह्म द्रविणं विष्टत्त्तोमः स उ पष्टद्श्यवंत्तीन् क्ष्यविवयः क्षतमे-यानां पुरावाता वातः सानग् क्षिषः (१) दक्षिणा दिशां श्रीषा क्षंत्रनामिन्द्रा देवता क्ष्यं द्रविणं पष्टद्शः स्तोमः स उ सप्तद्श्यवंत्तिनिर्दित्यवाद्वयस्त्रेताऽयानां दक्षिणादाता वातः सन्तातन् क्षिषः (१) प्रतीची दिशां वृषा क्षंत्रनां विश्वे देवा देवता विद्॥ १॥

द्रविण्यं सप्तद्भः स्तोमः स उ वेकिष्ट्रश्यंतिनि-स्विवृत्सो वया द्वाप्रोऽयानां पश्चाद्वाता वातांऽहुभून् ऋषिः (१) उदीची द्रिशाः श्रूरहंतूनां मिचावर्णी द्वेता पुष्टं द्रविणमेकिष्ट्रिशः स्तोमः स उ विण्व-वर्त्तिनस्तुर्थ्वाद्भ्वयं श्रास्त्रन्दे।ऽयानामुक्तराद्वाता वातंः प्रव ऋषिः (१) ऊद्धी द्रिशाः हेमन्तिशिश्रराष्टंतूनां ष्ट्रह्म्पतिदेविता वचे द्रविणं विण्वः स्तोमः स उ षयस्त्रःश्रवंत्तीनः पष्ट्वादयो, ऽभिभूरयोनां विश्वग्वाता वार्तः सुपूर्ण ऋषिः (१) पितरः पितामुद्याः परेऽवरे ते नः पान्तु ते नें।ऽवन्वस्मिन् ब्रद्धंवस्मिन् श्रूपेंऽस्थामा-शिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कमैक्स्यां देवह्रंत्याम् (१) ॥ ॥ २॥

विद। पंष्ट्रवादया। ऋष्टाविश्यतिस्व ॥ ३ ॥

द्रित तैत्तिरीयसंहितायां चतुर्थकाएडे तृतीयप्रपाठके तृतीयाऽनुवाकः ॥०॥

दितीयेऽनुवाके प्राणभृत इष्टका छकाः। ष्रष्य क्षतीये श्रामनभृत उच्चके। कच्यः, 'वाष्मां प्राची दिष्मामित पश्चाव्रतमपानभृता ष्या प्राणभृतः' इति। प्राच्यां दिश्रुपधेयानामिष्टकानां
मन्त्रमाष्ठ,—''प्राची दिश्रां वसना च्ह्यतामग्निर्देवता ब्रह्म द्रविष्
चित्रत्योमः स ७ पश्चदव्रवर्त्तनिस्थ्यविवैद्यः क्रतमयानां पुरीवाता वातः सानग च्यवः(१)" इति। हे इष्टके, 'दिश्रां' मध्ये
था प्राची', सा लमसि। 'च्ह्यतां' मध्ये यो 'वसनः', तद्रूपाऽसि।
देवतानां मध्ये यः 'ब्रग्निः', तद्रूपाऽसि। सकीयलेन सन्पादनीयानां द्रविष्मानां मध्ये विश्विष्ठबाद्याष्ट्रस्पं यद्भनं, तद्रूपा लमसि।
थो। सानां मध्ये चित्रस्वामको यः 'स्रोमः', तद्रूपा लमसि।
'स छ' (साऽपि, चित्रत्योग्नः) 'पश्चद्ववर्त्तनिः' (पश्चद्वश्रामक्क

प्रवर्णकः), बिख्यवमान खोचे चिहत् सो मप्रहत्ती सत्यां तत ऊर्द्धभाविषु त्राच्यसोचेषु पश्चदम खोमाः प्रवर्णने, तत्प्रवर्णनेन मिक्स्पा लमसि। वयसां मध्ये सार्द्धसंवत्परक्षपं यद् 'वयः', तद्रूपा लमसि। 'श्वविः'-मन्दः सार्द्धसंवत्परस्रुपसञ्चितः; तथासि श्वविजाते। प्रायेख गर्भधारणमारभ्य यष्ठे माखेव विद्युजीयते; चिस्क्याका श्वविजन्मकासा यस्म वयसः, तत् वयः श्वविमन्देने।-श्वते। 'श्रयानां' मध्ये यत् क्रतयुगं, तद्रूपा लमसि। वायूनां मध्ये पुरेवातास्था यो वायुः, तद्रूपा लमसि। श्ववीषां मध्ये यः सानगरस्त्र 'श्विः', तद्रूपा लमसि।

यथ दिख्यां दिख्यपेथानां मन्त्रमाइ,—"दिख्या दिशां गीम च्छतनामिन्द्रो देवता चनं द्रविषं पश्चदश्वः स्त्रोमः स ख सप्तद्रवर्त्तानिर्दित्यवाज्वयक्तेताऽयानां दिख्यादाता वातः सना-तन च्यविः (१)" दति। माध्यन्दिनस्वने पश्चदश्रस्तोममनुष्ठाय तत ऊर्ध्वभाविषु पृष्ठस्त्रोभेषु सप्तद्रश्रस्तोमोऽनुष्ठातयः, तथा च स एव पश्चदश्रस्ताः सप्तद्रश्रस्तोमं प्रवर्त्तयतिः, तच या प्रवर्त्तनश्रक्तः, सा लमसि। वयसां मध्ये दिसंवत्यस्वयोद्धपाऽसिः, 'दित्यवाट'-श्रन्तेन संवत्यस्वयमुपखच्यते, तथादि 'दित्यं' (पृद्दं बाखंं') वद्द-तीति 'दित्यवाट', श्रजादिभेदेषु कश्चिदवान्तरजातिरेष्ट्कः, स च संसत्यस्वयेन वाखं वद्दतीति दित्यवाट्शब्दः संवत्यस्वयोपखचकः। दितिः खच्चनं भाष्यभङ्गादिचापखं, तदर्दतीति 'दित्यः' पुंवाख

^{*} वाजिमिक्वेतच्याचीका॰ इर्वं पु॰ पाठः। सर्वं परच । 2 n 2

इत्यर्थः । दिचिषादित्यययं, तत् दिचिषयां दिजीत्यमुमर्थे त्रूते । यो वायुर्देचिषयां वाति, स 'दिचिषादातः', तेन वातवित्रेषयेन वित्रेयो यो वायुः, तद्रूपा लमसि । क्रेषं पूर्ववत् ।

प्रतीचां दिख्यपश्चेयानामिष्टकानां मन्त्रमाइ,—"प्रतीची दिश्चं वर्षा खत्रगं विसे देवा देवता विड्ट्रविष्ट्र सप्तद्रश्चः स्तोमः स छ वेकविष्ट्रश्वन्तंनिस्त्रिवस्था वयो दापरे। प्रयादातो वातो। इस्तृन खविः (१) इति । चयो वस्ताः वस्तरा खस्त्रां चितसः, वर्षचयं, तत्परिमितं यदयः, तद्रूपा लमि । श्रयन्ति गच्छिना तत्तत्कासानुसारेष वर्णमे प्राणिने। पेति, श्रया युगविश्चेयः । तेषां मध्ये यः 'दापरः', तद्रूपा लमि । पश्चमायां दिश्चि यो वायुर्वाति, तस्त्र 'पश्चादातः' इति सञ्ज्ञा, एतस्वञ्ज्ञको यो वातविश्चेषः, तद्रूपा लमि । 'श्रद्वश्चन' इति कद्याच्छिनं मध्येयम् ।

खदीचां दिख्युपधेयानामिष्टकानां मन्त्रमाइ,—"खदीची दिज्ञाश करदृद्धनां मिनावद्यो देवता पृष्टं द्रविषमेकविश्वकः स्रोमः स ख चिषववर्त्तनिस्तर्यवाद्वय चास्कन्दोऽयानामुत्तरा-दातो वातः प्रत्न च्हविः(१)" दति । पृष्टचन्दः परिचर्यया वर्ष-चयपेषिकत्वाच्छूद्रजातिमाच्छे । चत एव बाजसनेयिनः समा— मनन्ति, 'स ब्रोद्रं वर्षमस्कत् पूष्यम्' दति । तुर्थे चतुर्थे

^{*} रवनेव सर्वेत्र पाठः, किन्तु 'खयः' इति पाठो अवितुं युक्तः । † देश्विति का॰ इ॰ पु॰ पाँठः ।

चतुर्थमंतसरोपक्रमं वहतीति 'तुर्थवाट्', सार्द्ध विसंवसर रूपं यत् 'वयः', तद्रूपा लमसि । 'शा, (सममात्) स्कन्दनं (धर्मस्य शेषणं) यसिन् कसी , से।ऽयम् 'श्रास्कन्दः'। 'प्रक्र' इति कस्यचिदृषे र्नाम ।

मध्यदेत्र उपधेयानामिष्टकानां मन्त्रमाइ,—"ऊर्धा दित्राष्ट्र हेमन्तित्रित्राहृतनां बृष्यतिर्देवता वर्चा द्रविणं निषवः स्रोमः स उ वयक्तिष्ट्रप्रवर्त्तानः पष्टवादयोऽभिभूरयानां विस्त्रमाताः वातः सुपर्ण ऋषिः (१)" इति । 'वर्षः' वर्षसान् यतुर्क्षि वर्षेषु यो बस्तवान्, तद्रूपं धनं लमिष्ठ । 'पष्ठे' (१ष्ठे) भारं वहतीति 'पष्टवाट' स एवं दकारान्त्रप्रदेने। च्यते । चतुर्थवर्षे सम्पूर्णे सित प्रायेण बस्तविर्दे भारं वहति, श्रतो वर्षचतुष्टयद्भपं यद् 'वयः', तद्रूपा लमसि । इत्द्रं धर्ममिभभवतीति 'श्रिभिसः', -किस्युगावसानकासः, तद्रूपा लमसि । नानादिसु साङ्ग्येण सञ्चरन् वायुः विस्त्रमात्म सञ्जकः, तथाविधा यो वायुः, तद्रूपा लमसि । 'सुपर्ण' इति कस्यचिद्ववेनीमधेयम् ।

सर्वे खेतेषु पश्चस्त मक्तेषु अनुषश्चनीयभेषमक्तमाइ,—''पितरः पितामहाः परेऽवरे ते नः पान्तु ते ने ।ऽवन्वस्तिन् ब्रह्मश्रस्मिन् चनेऽस्वामाधियसां पुरेश्वायामस्तिन् कर्मश्रसां देवक्रत्याम् (१) ।' इति । हे 'पितरः', हे 'पितामहाः', हे 'परे' (प्रपितामहादयः),

^{*} काको इति सर्वेत्र पाठा न सम्यक्। काको इत्यपि भवितुम ईति। † स्वमेव सर्वेत्र पाठः, स्व इति पाठी भवितुं युक्तः।

हे 'मवरे' (आहपुनार्यः)। ईतृ मा ये भवनाः यन्ति, 'ते' (भवनाः)
'नः' (मसान्) कमानृष्ठानाय 'पानु' (पासयनु)। किस 'ते'
(भवनाः) 'नः' (मसान्) पासनियद्ययें 'मवनु'। 'मसिन्'
'मम्नन्' (मसां माम्राणजाता) 'मसिन्' 'चने' (मसां खिन्यजाता) 'मसान् मामिषि' (एतसां कामनायाम्) 'मसां'
'पुरे।धायाम्' (एतसां राजपारिहत्यव्याः) 'मसिन् कर्मन्'
(मसिंख्यनक्षे कर्मणि) 'मसां देवहत्याम्' (एतसां देवतामानक्षायां) कियायास निमित्तभतायां सत्यां हे रहके
लासुपद्धानीति मेषः।

गतिर्मकीः साध्यमुपधानं विधत्ते,—"प्रायभृत उपधाय संयत उपदधाति प्राणानेवास्मिन् धिला संयद्भिः संयक्कति तत् संयताः संयत्मधा प्राणे एवापानं दधाति तस्मात् प्राणापानाः सद्यतः" (५।२।९० घ०) इति । घनार्देशे प्राण्मृदास्थाः पूर्वेकता इष्टका 'उपधाय' विद्वेशे संयदास्था दमा घपानभृत उप-दधात्। तथा सति घग्ना प्राणान् स्थापयिला संयदास्थाभिरिष्टका-भिः 'संयक्कति' (दृढीकरे।ति)। घतः संयक्क्ष्येताभिरिति खुत्पत्ता संयक्षाम सन्यत्रम्। घपि च विदःसद्यार्कपे 'प्राणे' पुनरक्तःसद्यार्कपम् 'प्रपानं'स्थापयति। तसाहोकेऽपि 'प्राणा-पाना' सम्भूय 'सद्यरतः'।

प्राणभृद्धो विपरीतप्रकारं विधन्ते,—"विषूचीरपदधाति त-स्मादिस्तद्दी प्राणापानी" (५।२।२०४०) १ति। स्सात् प्राण-भृतामपानभृताद्व ऋन्योन्यविपर्ययक्रमः, तस्माद्वीकेऽपि प्राणा- पानी श्रन्थोन्यविपरीतखरूपै। बहिर्गतिः प्राषः, श्रन्तर्गतिरपान इति विपर्ययः।

संयतामासामुपधानं प्रशंसित,—"यदा स्रग्नेरसंयत-मस्वर्ग-मस्त तत् सुवर्ग्योऽग्निर्यंत् संयत उपद्धाति समेवैनं यच्छति सुग्रमंभेवाकरः" (५१९१९०२०) द्रति । स्रग्नेः समन्धि यदङ्गं सम्बङ्गियमितं न भवति, तद्षुं खर्गिष्ठतं न भवति, स्रग्निस्त खर्गिष्तोऽस्नाकमपेश्वितः, तस्नाद्ग्निं खर्गे कर्त्तुं संयत उप-द्धात्।

प्रथममको कस्विदंत्रस्य तात्पर्यमास्,—"स्वितंयः इत-मयानामित्यास वयोभिरेवायानवहाने वैर्वयाः सि" (५।२। १०%०) स्ति। सार्द्धमंवत्वरादिक्पैर्वयोविश्रेषेर्याभिधेयानि इतादियुगानि प्राप्नोति, तेस युगैस्तान् वयोविश्रेषान् प्राप्नोति;— न सि वयोविश्रेषमन्तरेस जनादीनस्य इतादियुगैः सम्बन्धोऽसि, नापि इतादियुगक्पस्य कासस्याभावे कश्चिदयोविश्रेषः सम्बन्ति। मद्दाप्रस्यये युगराहित्येन कन्यर्हितानां वयोविश्रेषासदर्शनात्। तस्यादन्यान्यसापेस्रयोवंयायुगयोहभयोर्ष्यनेपादानम्।

पञ्चलि मक्तेषु पुरे वाती दिचणादात रत्यादीन् वायु- विशेषान् प्रश्नंसति,—''सर्वती वायुमतीर्भवित तस्मादयः सर्वतः पवते'' (५।१।९०भा•) इति । यसादेता रष्टकाः सर्वा भिष् वायुभ्रक्तेपेतमक्तेदपधेयाः, 'तस्माद्यं' लेकिऽपि वायुः सर्वे।स दिचु सभरति ।

श्रव विनियागसंग्रहः,---

प्राचोत्यपानस्रसंयदिति-नामदयान्विताः। पञ्चात्रत् पूर्वविद्यु मध्ये चापदधाति ताः॥

इति सायनाचार्यविरिचने माधनीये वेदार्थप्रकाते छचा-यजुःसहिताभाये चतुर्यकाण्डे हतीयप्रपाठके हतीयोऽनुवाकः॥०॥

भ्रविश्वितिर्भृवये। निभ्रवासि भ्रुवा यानिमासीद साध्या। उद्यंख्य केतं प्रयमं पुरस्ताद्त्रिनाध्वर्य सी-द्यतामिह त्वा । स्वे द्रश्चे दर्श्वपितेह सीद देवचा पृथिवी एइती रराणा। स्वास्त्या तनुवा संविशस्य पितेवैधि सूनव आ सुभ्रेवाश्विनाध्वर्य साद्यतामिह त्वा । कुलायिनी वस्त्रमती वयाधा र्यिको वर्षे बहुल स्वीर ॥ १॥

त्रपामितं दुर्मतं बार्धमाना रायस्पोषे यज्ञपीत-माभजन्ती सुवधिद् यजमानाय पार्षम्त्रिनीष्वर्यू सी-द्यतामिह त्वा (१)। श्रुग्नेः पुरीषमित देव्यानी तां त्वा विश्वे श्रुभिर्यणन्तु देवाः। स्तोमेप्रष्ठा धृतवितीह सीद प्रजावद्सो द्रविणाऽऽयंजस्वाश्विनीष्वर्यू सीद्यता- मिड र्त्वा^(*)। दिवा मूर्नासि पृष्टिष्या नाभिविष्टभेनी दिशामधिपत्नी सुवनानां॥ २॥

ज्रिंद्र भा श्रुपामसि विश्वकंमी ते कर्षिर्श्विनाध्वर्य सादयतामिह ला (१) । स्त्रकृतिमः स्त्रुर्विधामिः स्त्रुर्वस्तिः स्त्रुर्द्देः स्त्रुर्दादित्ये स्त्रुर्विश्वेद्वैः स्त्रुर्द्वैः स्त्रुर्द्वैवेवयानाधर्मये ला विश्वान्रायाश्विनाध्वर्य सादयतामिह ला (११०) । प्राणं मे
पाद्मपानं मे पाह व्यानं मे पाह चर्रुमे उर्था, वि
भाहि श्रोषं मे स्नोक्य (११०१०) श्रुपस्य विधिर्जिक्ष
दिपात् पाहि चर्तुष्वाद्व दिवा दृष्टि मेर्य (१९०१०) ॥ ॥

सुवीरं । सुवनानाम् । जुर्था । सप्तदंश च ॥ ४ ॥

इति तैतिरीयसंहितायां चतुर्यकाएडे तृतीयप्रपाठके चतुर्योऽनुवाकः ॥०॥

हतीयेऽनुवाके श्रपानभृदास्था रहका जनाः। तावता प्रथमः चितिः यमाप्ता। श्रथ चतुर्थेऽनुवाके दितोषधां चिते। श्रासिन्यास्था रहका श्रभिधीयन्ते। कत्पः—'स्रोभूते पार्वाहिकीभ्यां प्रचर्वे दितीयां चितिं चिनेति भुक्षितिर्भुवये।निरिति पृद्धासिनीरपन क्षाति' इति । तत्र प्रथमामान्,—"मुवनितिर्भववोनिर्भवानि भुवां वोनिमासीद वाधा । ष्रकास केतं प्रथमं पुरस्तादनि-नाधार्यू बाद्यतामिह ना^(१)" इति । 'भुवा' (स्विरा) 'नितिः' (निवासभूमिः) यसा इष्टकायाः, वा 'भुवनितिः'; यसां भूमा-विष्टका निवसनि तसा भूमे वाख्याभावात् सैये द्रष्टयम् । 'भुवा' (नामरिता) 'योनिः' (खत्पत्तिन्देतुर्वंद्रूषा) यसा इष्ट-काथाः, वा 'भुववोनिः'। दे इष्टके तादृष्णे, नं खरूपते।ऽपि 'भुवासि,' वर्मकपासादिभिः संयोक्ष निर्मितनात् भुवनं। 'वाधा' प्रसामिः (वाधनीया, खपधातया) नं 'भुवां योनिं' (भुवं व्यान्वे विक्रम् सानं), पावीद, (बागत्योपविष्ण)। तदेव खानं वि-विक्रमें (क्षानं), पावीद, (बागत्योपविष्ण)। तदेव खानं वि-विक्रमें (क्षानं) पृवंभेव निष्यन्त्रं), प्रते दे दक्षके, 'इष्ट' (प्रसान्) प्रसिने पंप्रसान्' (पूर्वस्तां) दिनि देवताम् 'प्रध्वर्यं' स्वभैा विक्रमें 'प्रसान्' (पूर्वस्तां) दिनि देवताम् 'प्रध्वर्यं' स्वभैा विक्रमें लो 'प्रसान्' (पूर्वस्तां) दिनि देवताम् 'प्रध्वर्यं' स्वभैा

चय दितीयामाइ,—''से दचे दचिपते इसीद देवना प्रथितो हुइती रराणा। सामसा तनुता संवित्रस पितेवैधि सनव मा-सुत्रेवान्तिनाध्वयू सादयतामिइ ला^(१)" दति । हे दछके, ससाने निषीद। तन दृष्टानाः,—'दणिता' दति, जुत्रोपमा,— सचा 'दणिता', दणाणां चवदारसुत्रसानां पुणाणां ग्रहे पिता निषीदित तदत्। 'देवणा' (देवेषु मध्ये) 'तनुवा' (सक्रीयेन हरीरेण) 'संवित्रस्त' (सम्यगवस्तिता भव)। कीवृत्रो ?—'प्रथिती,' (सन्द्राचंनेन भूमिस्रस्ता) 'द्रहतो' (प्रीद्रा); 'दराणा' (निद्रपद्रव-

नाइममाका); 'सांसका' (समकरेऽसिन् काने किता) हे रहकें, 'का-सुन्नेवा' (सर्वत: सुखेन मेवितं नका) 'एसि' (भव); क रव, 'सनवे' 'पितेव' (क्या पुत्रार्थे पिता सुखेन सेयो म्बति, तदत्)। प्रितिकादादि पूर्ववत् ।

यथ हतीयामार.—''बुसाविनी वस्त्रमी क्वोधा रविको वर्ड वड्स स्वीरं। यपामितं दुर्मितं वाधमाना रावकोषे वयपितमाभवनी सुवर्धेष यवमानाय पावमियनाध्वर्थं गार-वतामित्र ला^(२)'' रित । चे रहके, लं 'बुसाबिनो' (निवाब-खानवती); 'वस्त्रमती' (धनवतो) धनप्रदेखर्थः। 'वयोधाः' (दीर्षा-व्याख क्यादिका) वती 'नः' (बस्नदर्थे) 'वड्रसं' 'रिधं' (प्रभूतं धनं) 'स्वीरं' (प्रोमनपुष्तं) च 'वर्ध' (क्याद्य)। 'यमितं' (प्रश्लामान्तं) 'दुर्मितं' (पापवृद्धिं) 'यप'-'वाधमाना' (निःप्रेवेख विनावकों) 'रावसेकि' (धनपृष्टै।) 'यद्यपितं' 'बाधजनो' (सर्वतः प्रापयनो) 'स्वः' (स्वर्गकोको 'वजमानाय' (यजमानार्थे) 'पीर्ष' (पृष्टिं) 'धेदि' (क्याद्य)। प्रियनेखादि पूर्ववत्।

श्रय चतुर्धीमाइ,—"श्रग्नेः पुरीवमित देश्याणी तां ला विश्वे श्रमिग्रयम् देवाः। स्रोमप्रष्ठा चृतवती स्वोद प्रजावद्खें द्रविषाऽऽयमसाश्चिमाध्वर्षु वाद्यतामित्र ला(*)" इति। चे इष्टके, 'देवयानी' (देवान् प्राप्नुवती) लम् 'श्रग्नेः पुरीवमित् (चित्व-साग्नेः पूरकं वस्त्रयि); 'तो' (तादृशीं) लो 'विश्वे' 'देवाः' (सर्वे-ऽपि देवाः) 'यमिग्रयम्,' (सर्वतः कीर्लयम्,)। 'स्रोमप्रष्ठा' (सर्व-स्रोमेर्जुकानि प्रदक्षीणापि यस्ताः सा स्रोमप्रष्ठा), 'पृष्ठेदपतिष्ठते' 2 # 2 रति वच्चति। 'घृतवती' (रेष्यमाचघृतवंयुका) सती 'र्र्स' (व्यक्षित्) सभस्ये 'सीर' (तिष्ठ)। 'चस्रो' (प्रसाभ्यं) 'प्रजावत्' (पुच्याचादियुक्तं) 'द्रविचा' (धनम्) 'चायत्रस्त' (सर्वते। रेर्स्डि)। चित्रतेत्वादि पूर्ववत्।

षय पद्ममीमाइ,—"दिवा मूर्धां विषया नाभिर्वष्टयानी दिश्वामिष्यामी भुवनानां । जिर्मिद्रं यो यपामिष विश्वकर्मा ते क्षिवरिश्वनाध्वयूं सादयतामिह ला(१)" इति । हे इष्टके, लं स्वीत्मिका यसि, कयम्?—इति, तवुच्यते,—'दिवो मूर्धासि' (सुस्रोकस्य मिरस्रानीय यादित्योऽसि); 'पृथिष्या नाभिः' (असे-नाभिस्तानीया, असेश्वरिसि) । 'दिश्वां' 'विष्टयानी' (प्राच्यादीनां दिश्वां विविधसाह्ययेष संस्राभयन्ती व्यवस्वापयन्ती); तथा 'अवनानां' सर्वेषाम् 'यधिपन्नी' (याधिक्येन पास्विश्वी) । 'यपां' य 'किसिः' 'द्रपः' च तदुभयक्षपाऽसि ; 'विश्वकर्मा' (प्रजापतिः) एव तव 'क्षिः' (द्रष्टा) । यश्विनेत्यादि पूर्ववत् ।

एतेर्भकी: साध्यमुपधानं विधक्ते,—"लखस्त्रयश्ची वा एव यहिंग्नः किं वाहैतस्व कियते किं वा न यहे यश्च कियमाचस्वानार्थिता पूर्यात वा श्वस तदाश्विनीहपदधाति श्वश्विनी वे देवानां भिषत्री ताभ्यामेवासी भेवनं करोति (५।३।१११०)" इति । योऽयं चीय-मानोऽग्निः, स 'एव' 'लखस्त्रयश्चः' एव—श्वसित्रग्नावनुष्ठेयानां श्वतिबञ्जसत्तात् सर्वश्वापि प्रमादादिना कचित् किश्चिदक्रम् लस्स्यं भवत्येव, एतस्वाग्नेः सम्बन्धि किं नाम श्वष्टमनुष्ठितमिति को

^{*} रवमेव सर्वेच पाठः। भूमेरचिर्यस हति पाठी भवितुं युक्तः।

ज्ञातं ज्ञज्ञोति, (ज्ञज्ञस्दो निवेधार्थः) सर्वथा ज्ञातं न ज्ञज्ञोत्येव ; तथा सत्यनुष्ठीयमानस्य 'चज्ञस्य' 'यत्' यगम् 'चन्नर्वन्ति' (चन्न-रितं खुर्वन्ति) 'चन्नः' (यज्ञस्त) एतत् चक्नं 'पूर्यति' एव (नम्ब-त्येव)। 'तत्' (तस्तात्) जन्तरायदे।वपरिचारार्थम् 'चामिनीः' इष्टका खपदस्थात्। चित्रदेवयुक्तेर्मन्त्रेद्पधेया दष्टका चामिन्यः। तदुपधानेन देवभिवग्भ्याम् 'चन्नी' (यज्ञाय) चैत्वधं 'करोति'।

सङ्घां विधन्ते,—"पञ्चोपदधाति पाङ्को चज्ञो यावानेव यज्ञ-सन्दी भेवजं करोति" (५।१।९७०) इति ।

कत्यः, 'सर्जूर्कतिभिरिति पद्यतं या या या निर्मूपधाय'
रित । पाठस्त,—''सर्जूर्कतिभः सर्जूर्वधाभिः सर्जूर्द्धेः सर्जूर्देवैः सर्ज्वाद्द्रिः (समानगितिः) यसिः वस-नादीनां चादुत्री प्रीतः, तादुत्री तवेत्यर्थः । एवमुक्तर्वापि सर्जुः प्रतः 'विधाभः'; वसवा, रहाः, चादित्याः, विचे देवा, देवास्त्र प्रसद्धाः । तिरेतेः पद्धविधेः पद्धधा मन्त्रभेदः । पूर्वे। क्त्रस्तां सर्वे। सर्ज्वद्र्याः । तेरेतेः पद्धविधेः पद्धधा मन्त्रभेदः । पूर्वे। क्त्रस्तां सर्वे। सर्ज्वद्रवेवेवेशानाधः' रत्याद्यक्तरे । 'विधाभिः' रत्यन्तः पूर्वे। भागः ; 'सर्जूर्देवैवेशोनाधः' रत्याद्यक्तरे । भागः । एतिकान् भागे पूर्वे। काः सर्वेऽपि समानदेवज्ञन्दाभिधेयाः; ते च सर्वे 'वशेनाधाः,' चायुः-प्रदा रत्यर्थः । तादुः 'देवैः' समानगितिकां 'वैत्रानराय' 'चग्रवे' (सर्वपुद्धावां दितकारि-वक्त्रप्रथे) नामुपद्धामि रति

त्रेषः। मधापहितां तां देवानाम् 'त्रध्वर्षू' त्रात्रिना के 'इह' चेचे खापथताम्।

पतिर्मकैः बाधमुपधानं विश्वते,—"श्वतद्या छपदधाति श्वतः कृष्टी" (१।२।१४०) रति । वस्तादीनाम् श्वतः नां खस्रवापारसामार्थाय एतदुपधानम् ।

रष्टकाषद्धां विधन्ते,—"पञ्चापरधाति पञ्च वा कतवा वावक स्वनंबसान् कव्यवित" (५।३।९६०) इति । हेमनावित्रित्योः समावेग क्यूनां पञ्चलं । 'कक्यति' (सस्त्रोक्तियवहार्षमान् करोति)।

मकावामायनानुष्क्री विधन्ते,—"यमानप्रसत्यो भवनित यमानोदकीस्त्रधात् यमाना क्षतवः" (५।६।९५०) इति । 'यजूर्कतिभः यजूर्विधाभिः' इत्ययमुपन्नमा भानः 'प्रस्तिः'। यमानप्रसत्यय यमानधर्माः, नोपन्नमाः सर्वे मन्ता इत्यर्थः। 'यजूर्देवैर्वधानाधैः' इत्याद्यवयानम् 'खदकैंः'; बे।६पि सर्वेषां मन्त्रावां यमानः। यसात् मन्ताः यमानाः, 'तसात् सानेऽपि माय-दयाताकनेन सर्वेऽपि क्षतवः यमानाः।

मक्तेषु समानमंत्रमुक्ता भेदकमंत्रं दर्भयति,—''इकेन पदेन व्यावर्णने तसायुत्तवे। व्याक्त्रंको'' (५।३।९ प्र०) इति। 'वस्रभः' इत्येवं पदं, तेनेतरेभ्वे। मक्त्रेश्व प्रायमको व्यावर्णते। एवं रहादित्यादिभिक्वे।हेत्तिये।अनीवा। वस्ताद्वे।पक्तमाव-

^{* &#}x27;चित्रिने।' रित पाठी भवितुं बुक्कः।

सामधास्ये परमाचेच याद्यतिः, तकाक्वाके मासद्यासाकत-मास्येऽपि नसमाधादिपरभेदेन चळनां परखरं वाद्यतिः।

कर्यः,—'वार्षं ने पादीति पद्य प्रावस्त स्तवा चनूपधाय'
दित । पाठस्त,—''प्रावं ने पाद्यपानं ने पादि खानं ने पादि
चकुर्ने चर्चा विभादि श्रीषं मे क्षेक्ष (१९-१६)'' दित । दे
दृष्टके, 'मे' (मदीयं) 'प्रावं' 'पादि'' (पाख्य), एवमुत्तर्वापः; 'उर्चा' (विज्ञाख्या दृष्णा) 'वि-''भादि' (विज्ञेषेच प्रकावय) दर्धन-यम्बे वुर्विद्यर्थः; 'क्षेक्ष्य' (वस्त्यद्वाते वक्षं कुद्) वद्ववेदवास्त-यम्बस्य मधे कुर्विद्यर्थः।

एतेर्ननेः साध्यमुपधानं विधत्ते,—"प्रायभृत उपद्धाति चारुव्वेव प्रायान् दधाति तस्मात् समानाः समा चार्वे न बोर्चिमा प्रवा प्रवन्यति एवेनान्" (५।३।९४०) हति । चत-व्योपधानादुर्जे प्रायभृत उपधाने सति 'चारुव्वेव प्रायान्' चापवित । वसादेषु स्वापिताः प्रायाः, 'तस्मात्' पुनःपुनरा-द्याविप 'चत्वः' 'समाना' एव दुस्यसो, न तु जीर्षा भवन्ति । प्रिप प्रायस्वापनादेतानृत्वन् पुनक्तुपाद्यस्वेव ।

क सन "भं दें नं ऋं तूं गां मं रं सां रं सिं" हत्वियः पाठः सर्वेषेवास्ति स्ताः सम्माखते,—यत्, रक्षिम् पुक्तके प्रथमं, कर्त्तनिक्रेन प्रत्वक्तरमितिनानुसारेव स्यं पाठोऽधरीकतः, ततस्, यथादृष्टं तथा जिखितमिति न्यायेन सर्वेरेन प्रतिचिपिक्रद्भिक्ताचैना-वेशीति स्वामिरिधिवतानां पुक्तवानमेष्यमेन मूजपुक्तवमासीदिति।

स्तवाभ उत्तरभाविनीः प्रापभृतः प्रकारान्तरेष प्रश्नंवति,—
"एव व वायुः यत् प्राणा यत् स्ततवा उपधाच प्राणभृत उपदश्चाति तस्मात् वर्वानृद्धनम् वायुरावरीवर्त्ति'' (५।६।९ प्र०)
इति । चीऽयं 'प्राणः', स 'एव' 'वायुः' एव। तथा चितः
स्तव्यानामूर्जे प्राणभृतामुप्धानेन 'वर्वान्' स्रिप 'स्नद्धन्' 'सनु'स्त्य वायुः पुनरावर्त्तते।

कस्यः, 'श्रपसिन्नेति पञ्चापसा श्रनुपरिहारम्' इति । पाठस्त,—"श्रपसिन्नेषधीर्जन्य दिपात्पादि चतुषादव दिवे। दृष्टिमेरय^{(१(-१-))}" दृति । हे दृष्टके, लं 'श्रपे।' (जलानि) 'पिन्य' (प्रीणय) ; 'श्रोषधीः श्रपि 'जिन्य' (प्रोणय) ; 'दिपात्' (मनुष्य-श्ररीरं) 'पाहि' (पाखय) ; 'चतुष्पात्' (पश्चश्ररीरम्) 'श्वय' (रख) ; 'दिवः' सकाशात् 'दृष्टिम् 'श्रा-देर्य' (श्रा समन्तात् प्रवर्त्तय) ।

एतेर्भकोः बाध्यमुपधानं विधक्ते,—"दृष्टियनोद्दरधाति दृष्टिमेवावद्न्थे" (५।३।९% •) इति । 'दृष्टियनीः' दृष्टिप्रदानेन एतमामका इष्टकाः ।

तत्र प्रकारिवश्चेषं विधत्ते,—"यदेकधोपदध्यादेकस्तुं वर्षेदनुपरिचार्थ बादयित तस्मात् सर्वानृह्यन् वर्षति" (५१६१५ अ०)
इति। पञ्चानामेकप्रयक्षोपधाने वित एकस्मिन् एव स्थता दृष्टिभवित्, नेतरेख्यपृतुषु, अतस्तत्परिचाराय अनुक्रमेण परिते।
इता स्वापयेत्,—प्राचीमुपधाय प्रदिचणिमष्टकामावर्थ दिचणामुपदस्थात्; पुनरपि इष्टकाइस्वः प्रदिखणीक्तस्य पश्चिमामुप-

र भ्यादित्येवं योजनोयं। तथा स्रति सर्वानपृद्धन् प्रति दृष्टि-भैवति।

प्रावस्तां दृष्टिसनीनां च पूर्वे त्तरभावं प्रश्नंसि,—"सत् प्रावस्त जपधाय दृष्टिसनी द्यद्धाति तस्ताद् वायुप्रचाता दिवे। इष्टिरोत्तें" (५।३।६ च ०) दति । यस्तात् प्रावस्तः पूर्वभाविन्यः, दृष्टिसनयः पसाङ्गाविन्यः, 'तस्तात्' चोकेऽपि 'दिवः' सकात्रात् पूर्वे वायुना प्रेरिता 'दृष्टिः' पश्चात् प्रवर्त्तते ॥

श्रव विनियागसंग्रहः,—

दितीयसां चिता पश्च भुवेत्याद्याश्विनीस्तया । पश्चर्तव्याः सजूर्भन्तेराद्यन्तावनुषङ्गको ॥ ससुद्दादित्यविश्वेदेवेर्भन्त्रभिदा भवेत् । प्रापं, प्रापभृतः पश्च श्वापाऽपस्यास्य पश्च दि ॥ ता एव दृष्टिमन्यास्त्याः प्रोक्ता मन्त्रास्तु विश्वतिः ।

इति सायनाचार्यविरचिते माधवीये वेदार्थप्रकाशे हाणायजुः-संहिताभाये चतुर्थका एडे हतीयप्रपाठके चतुर्थी (नुवाक: ॥ ॰ ॥

^{*} तया इति सर्व्यत्र पाठी न सम्यक्। तथा इति तु भवितुं वृक्तः। स्वं 'खास्त्रिनीः' इति दितोयान्तः पाठीऽपि न समीचीनः।

त्यविषये स्तिष्ठु प्छन्दे दित्य वाड्र वया विराद्छन्दः पर्चाविषयो गायची छन्दे स्तिवृत्तो वयं जुल्ला हा
छन्दे सुर्यवाड्र वया अनुष्ठ प्छन्देः पष्ठ वाद् वया छ हती
छन्दे जुल्ला वयः स्ते ता छं हती छन्दे प्रमुभा वयः कृष्ठछन्दे। धेनु वया जगती छन्दे। अनुष्या वयः पुरुक्तिक्रन्दे। धुने वया जगती छन्दे। दुल्ला वया विश्वासं
छन्दः पुरुषा वयः, तन्द्रं छन्दे। दुल्ला वया विश्वासं
छन्दः पुरुषा वयः, तन्द्रं छन्दे। विश्वसा वया अधिपतिक्रन्दः। श्रुषं वया मयन्दं छन्दे। विश्वसम् वयः
परमेष्ठी छन्दे। मुद्दा वयः प्रजापितिछन्दे। श्रुषं वया मयन्दं छन्दे। विश्वसम् । वयः
परमेष्ठी छन्दे। मुद्दा वयः प्रजापितिछन्दः । धुषं वया । पड्वायः प्रजापितिछन्देः । धुषं वयः । पड्वायः प्रजापितिपर्वेषा वयः । पड्वायः प्रजापितपर्वेषा वयः । पड्वायः प्रजापितिपर्वेषा वयः । पड्वायः प्रजापितिपर्वेषा वयः । पड्वायः प्रजापितिपर्वेषा वयः । पड्वायः प्रजापितिपर्वेषा वयः । पड्वायः । पड्वायः पर्वायः । प्रण्वायः । प्राव्यः ।

इति तैत्तिरीयसंहितायां चतुर्थकाएडे तृतीय-प्रपाठके पच्चमाऽनुवाकः॥ •॥

चतुर्थानुवाके श्राश्वन्यादीष्ट्रका उकाः। श्रथ पश्चमे वयसा-ख्या दष्टका उच्यन्ते। कलाः, 'श्विववय दित पश्च दिचिषसाप्ट्र श्रोष्णां, पष्टवादय दित पश्चोत्तरसाप्ट्र, बस्तो वय दित दिचिणेऽप्ट्रसे, द्यिष्ववय दत्युत्तरेऽप्ट्रसे, व्याच्चो वय दित दिचिणे पन्ने, सिप्ट्रचे। वय दत्युत्तरे, एतदा विपरीतं; पुरुषो वय दित मध्ये, विद्यक्षो। बच दित चतस्ते। वयस्याः पुरसात् प्रतीचीः' दित। पाठस्त,— "श्विववयस्तिष्टुप्हन्दो(१)दित्यवाद्वयो। विराट्हन्दः(१) पश्चा- विर्वची गायची छन्दः^(१) चिवली वय उच्छिचा छन्दः^(४) तुर्चवाज्वयोऽनुषुप्रन्दः(६) पष्ठवादयो एचती सन्दः(६) उना वयः सतारहकी इन्दः^(०) समभा वयः कतुष्कन्दः^(८) धेनुर्वयो जगती छन्दः^(९) श्रनदान् वयः पङ्किश्चन्दः^(९०) बस्रो वये। विवसं हन्दः(१९) दृष्यावयो विज्ञासं हन्दः(१९) पुरुषा वयः तन्त्रं इन्दः(११) व्याम्री वयोऽनाष्ट्रष्टं इन्दः(१४) सिप्त्रेची वयः इदिन्छन्दः(१६) विष्टको वयोऽधिपतिन्छन्दः(१९) चर्च वयो मयन्दं क्न्दः (१०) विश्वकर्मा वयः परमेष्ठी क्न्दः (१०) मूर्धा वयः प्रजापति न्क्न्दः (१९)" इति । 'च्चवि'- ज्ञब्दः पूर्वे करीत्या सास-षट्कमुपलचयति । ततः सार्द्वसंत्रसर्परिमितः कासः 'चाविः' दृत्युच्यते। हे दृष्टके, तथाविधं यत् 'वयः' तद्रूपाऽसि। 'विष्टुप्' चतुञ्चलारिंबदचरा, तादुवं 'इन्दः' लमसि। एवं सर्वेच थे।च्यं। 'दित्यवाट्' (दिसंवत्यरपरिमितं)। 'पञ्चाविः' (सार्द्धिसंवतारपरिमितं)। 'चित्रताः' (संवतारचयपरिमितं)। 'तुर्दवाद' (सार्ह्धसंवत्यरचयपरिमितं)। 'पष्टवात् (संवत्यरचतु-ष्टयपरिमितं)। 'उचा' (सार्द्भसंवत्यरचतुष्टयपरिमितं)। तात्रति चि काखे गैाः मेक्ता भवति । एवम् च्रवभादिकद्दाः तच तच प्रसिद्धार्थदारेण तत्तदर्थसम्बन्धिवयोविभेषलेने।स्रेया:। विवसविज्ञासादिज्ञन्या स्रोकप्रसिद्धन्त्रांसि धनिभद्धाना श्रीप अतपथत्राद्यापादिप्रसिद्ध च्छन्दोविशेषवाचिन दति द्रष्टव्यं। 'विश्वकर्म'-ब्रब्दः प्रजापतिवाची ; तत्मास्त्रिधाद् 'विष्टमा-चन-

^{*} सोच्चा भवति इति पाठी भवितुं युक्तः।

² т 2

मूर्डं - प्रस्तास तदीयमेकदेशविषेषमाच्यते। तच विस्तर्मप्रस्तेन प्रजापत्यायः परिमितः कास उपसच्यतेः 'विष्टस्य'प्रस्तेन जगद्वार्णवाचिना एकस्याः सृष्टेः खितिकास उपसच्यते।
'चच'प्रस्ते वसवाची, ततः यावता कास्रेनेत्पस्नं ब्राह्मस्यं प्रवसं
भवति, तावान् कासः चनवन्देनेत्पसच्यते, 'मूर्ड्ं प्रस्ते युस्नोकस्पं विराजी मूर्ज्ञानमाच्ये, तेन युस्नेकस्य यावान् कासः,
तावान् कास्रो सच्छते। नानाविधवयोद्धपा, वानाविधव्यन्दोस्पा च समगीति तात्पर्यार्थः।

एतेर्मन्तेरपधेया वयसाखा रष्टकाः; तार्थां पूर्वामुवाकावसाने पिठताभिरपद्याभिः यह पार्वापर्यं नियेतुं प्रस्ताति,—''पन्नवा वे वयसा नानामनयः सनु वे पन्नवा नानामनासेऽप एवाभि समनसः'' (५।१।९ १०) इति । वयसानां पर्रुप्राप्तिचेतुनात् तद्वुपतं, पन्नवस् नानाविधर्षयुक्ताः,—यसे पन्नवे यादृत्रं स्वादे रोचते, तादृत्रमेवान्यसापि रोचते इति नास्ति नियमः ; एकेनान्नाय परित्यक्तसापि स्वस्तान्येन भन्नस्र्वं नात् ; प्रतेनान्नाय परित्यक्तसापि स्वस्तान्येन भन्नस्र्वं नात् ; प्रतेनान्नामनस्कतं। तता 'नानामनाः' (भिन्नकर्माषः),—एकः पर्युक्तां कृति, भपरः प्रकटं, श्रन्यस्तु पृष्ठभारम्,—एवं विविधर्ययो विविध्यापारा श्रपि पन्नवः 'भपः' श्रभिसस्य वर्वेऽपि समानमनस्का एव, मध्याक्रकासे युगपदुर्कपानद्रश्चेनात्।

^{*} चत्र यसी इत्यस्य स्थाने रकसी इति पाठी भवितुं युक्तः, चन्यचा साकाङ्कता स्थात्।

तचाचववतिरेकाश्वां वयकागाम् सरभाविलं विधन्ते, चयं कामयेतापग्रः सादिति वयसासासापायापसा उपदधाद-सञ्ज्ञानमेवासी पद्राभः करे।त्यपद्भारेव भवति; यं कामयेत पशुमान्त्यादित्यपसासासापधाय वयसा उपद्यात् सञ्जान-मेवासी पद्धभिः करोति पद्धमानेव भवति" (५।३।९ घ०) इति । वयः बन्दो पेतेः "चाविर्वयस्तिष्टृप्कन्दः" इत्यादि भिर्मन्त्रे-दपधेया दष्टका वयस्याः । ऋप्त्रन्दोपेतः "ऋपस्त्रिन्व" दूळा-दिभिर्मन्त्रेरपधेया रष्टका अपद्याः ; तवापद्यानामुक्तरभाविते ताभिरितरासां पग्राङ्पाणामभिभूतलात् प्रसा यजमानस 'पश्डभिः' 'श्वथञ्ज्ञानं' 'करोति',—पश्छिनिमत्तकं सञ्ज्ञानमञ्जतं भवति । अतः प्रमामवज्ञाततात् प्रग्रुरिक्ता भवति । प्रग्रु-रूपाचा वयसानामुत्तरभावित्वे पुनः श्रमिभूतलात् अस यज-मानक 'पग्रुभिः' 'बट्यानं' 'करोति',—पग्रुनिभिन्तकं 'बट्यानं' क्रतं भवति? । श्ववज्ञाविपरोत श्वादरः सञ्ज्ञानं । तेनायं 'पग्रसान्' भवति 'एव'। तस्रादपस्राः पूर्वभाविन्यः, वयस्रा उत्तरभाविन्य दूर्वार्घः ।

'विष्टभी वयः' इत्यादि भिर्भक्ते दपधे चानां प्रदेशं विधत्ते,—

^{* &#}x27;वस्थाः' इति सर्व्वेत्र पाठी न सम्यक्।

[†] श्वसंद्यानमञ्जरं भवति इति खादधंपुत्तको का॰ इ॰ पुत्तको च पाठी न सन्यक्। श्वसंद्यानं ज्ञतं भवति इति का॰ सं॰ पुत्तकपाठः संद्यानमञ्जरं भवति इति पुत्तकान्तरपाठी वा साधुः।

[🕽] गुवानभिभूतलादिति पुच कान्तरपाठः।

[§] यसंचानमक्ततं भवति इति खादर्भपुक्तको पाठः।

"चतस्रः पुरसादुपरधाति तस्राचलारि चमुवा रूपावि दे ग्रुझे दे कम्पे" (५।३।९५०) इति।

च प्रतिष्रयममन्धिनोर्दयोगी सक्यो मंध्ये प्री हे दे प्रक्रमण्डले,
तयो मंध्ये दे स्वामण्डले,—इत्येवंक्पचतुष्टयं। तेषु च तुर्षु मन्त्रेषु
प्रतिममन्त्रे यो मूर्ड् प्रव्यक्षं प्रश्नंयति,—"मूर्ड् न्यतीभंवित्त तसात्
पुरस्तान्गूर्द्धा" (५।१।२४०) इति। मूर्ड् न्यव्येषेति मन्त्रेद्धयेया
दष्टका मूर्ध्वन्याः। यसात् पूर्वस्यां दिख्यपधेया मूर्ड् न्यव्येषेनतमन्त्रसाधाः, 'तसात्' प्रस्त्याकारेण चीयमानस्वाग्नेरिप 'मूर्द्धा'
पूर्वस्थां दिश्चि भवति।

'श्विवंदः' रत्यादिमक्तपश्चकेन, 'पष्ठवाद्यः' रत्यादिमक्त-पश्चकेन च खपधेयानामिष्ठकानां देशविशेषं विधक्ते,—''पश्च दिखायाः श्रोष्णामुपद्धाति पश्चोक्तरस्यां, तस्मात् पश्चादवि-यान् पुरस्तात् प्रवणः पश्चः'' (५।३।९%) र्रति । यस्माद्य श्रोष्णेवंद्व दष्टकाः । 'तस्मात्' पश्चोरिप श्रोष्णेतः पूर्वभागे। निषः ।

श्रय मन्त्रदयेने।पधेयये। देंश्वितश्रेषे। विधन्ते,—"बस्ता वय इति द्षिणेऽश्रम उपद्धाति दृष्णिर्वय इत्युक्तरेऽश्रमावेव प्रति-द्धाति" इति। 'उत्तरे' 'श्रंशे उपद्धाति' इत्यनुवर्त्तते। तेने।-पधानदयेनाग्नेरंधावेव सन्पादयित।

श्रन्थेन मन्त्रद्येने।पधेयथोर्देश्विशेषा विधन्ते,—"याचा वय इति दिखेषे पच उपद्धाति विश्वे वय इत्युत्तरे पचयोरेव वीर्ये द्धाति" (५।३।९॥०) इति। 'उत्तरे' 'पच उपद्धाति' इत्यनुवर्त्तते । व्याष्ट्रिंष्योर्धिकवीर्यापेतलादेतेने।पंधानद्येन पच्चयोविधे स्वापस्योव ।

श्रन्थेन मस्त्रेणोपधेयाया स्तानं विधत्ते,—"पुरुषो वय इति मध्ये तस्तात् पुरुषः पश्चमामधिपतिः" (५।१।९२०) इति। यस्तात्मध्यदेत्र उपधानमन्त्रे पुरुषत्रद्धोऽस्ति, 'तस्तात्' स्रोके 'पुरुषः' 'पश्चनां' स्तानी भवति; इतरास्तु वयस्ताः पश्चव इति द्युक्तम्।

श्रन विनियागसंग्रहः,—

तं अविस्त वयसास्त द्धादेकानविश्वतिः॥

इति बायनाचार्यविरिचते माधवीये वेदार्घप्रकाचे ख्रण्याच्यु:-बंदिताभाष्टे चतुर्घकाण्डे हतीयप्रपाठके पश्चमाऽनुवाकः॥ ।॥

इन्द्रीमी अर्थयमानामिष्टकां हंइतं युवं। पृष्ठेन् चावापृथिवी अन्तरिश्च विवाधतां()। विश्वकर्मा त्वा सादयत्वन्तरिश्चस्य पृष्ठे व्यचस्तृतीं प्रयस्तृतीं भास्तृतीः स्रिप्तृतिमा या चां भास्या पृथिवीमा-वन्तरिश्चमन्तरिश्चं यच्छान्तरिश्चं हः हान्तरिश्चं मा हिंद्रसीविश्वस्ते प्राणायापानायं व्यानायादानायं प्रतिष्ठाये च्रिचाय वायुक्त्वाऽभिपातु मुद्धा स्वस्था स्रुदिंषा ॥१॥

^{*} तमिति पदं आदर्श्यपुक्तके गक्ति।

शन्तेमन् तया देवतयाऽकिर्खद्भुवा सीद (१)
राज्ञंगिस प्राची दिग्(१) विराइंसि दक्षिणा दिक्(१)
सम्राइंसि प्रतीची दिक्(१) ख्राइंस्यदीची दिग्(१)
श्रिधंपत्यस रहती दिक्(१) श्रायुंमें पाहि(१) प्राणं
में पाहि(१) श्रपानं में पाहि(१०) ख्रानं में पाहि(१०)
चक्षुंमें पाहि(१०) श्रीचं मे पाहि(१०) मना में जिन्व(१०)
वाचं में पिन्व,(१०) श्रातमानं मे पाहि(१०) ज्योतिमें
यक्क(१०)॥२॥

छुर्दिषा। पिन्व। षट् चं॥६॥

इति तैत्तिरीयसंहितायां चतुर्थकाएडे तृतीयप्रपाठके षष्ठेऽनुवाकः॥ ॰ ॥

पश्चमेऽनुवाके वयसास्त्रा दृष्टका उक्ताः। तावता दितीया चितिः समाप्ता। त्रय षष्ठे हृतीयस्त्रां चिति स्वयमाह्मचाद्या उच्चने। कल्पः,—'श्वोभृते पार्वाह्मकीभ्यां प्रचर्य हृतीयां चितिं चिनेतित्राग्नी त्रव्ययमानामिति स्वयमाह्मचामभिष्टस्याश्वेनीप- व्ययः दित। पाठस्त,—'दृष्ट्राग्नी त्रव्ययमानामिष्टकां दृष्ट्रदृतं युवं। पृष्टेन द्यावापृथिवी त्रक्तिरचश्च विनाधताम्(१)" दृति। दे 'दृष्ट्राग्नी', 'युवं' (युवां) 'त्रव्ययमानां' (भक्तर्ह्तां) स्वय-माहम्बास्थाम् 'दृष्टकां' 'दृष्ट्रां, (दृष्टोक्चद्रतं)। द्यश्चेष्टका

स्वकीयेने।परिभागेन स्रोक्तवयं 'विद्याधतां' (दाधमानेव) याप्ना-लित्यर्थः ।

कन्य:, 'विश्वकर्मा ला साद्यलकारिषस्य पृष्ठ इत्यविद्वा ब्राह्मणेन यह मध्येऽग्रेरपद्धाति' इति । पाठसु,—"विश्वकर्मा ला सादयतन्तरिचस पृष्ठे व्यचसतीं प्रयसतीं भासती स्दरि-मतीम् त्राया यां भाषि त्राष्ट्रियीम् त्राष्ट्र त्रमारिष-मनरिचं यच्कानरिचं दृष्ट्रशनरिचं मा हिएसीर्वियसी प्राषायापानाय व्यानायादानाय प्रतिष्ठाये चरिचाय वाय्स्ता-ऽभिपात मञ्चा खस्वा कर्दिषा जनमेन तया देवतयाऽक्किर-खद्भुवा सीद^(१)" इति। (विश्वानि कर्माणि यसासी 'विश्वकर्मा' प्रजापितः) हे खयमाष्ट्रहे, प्रजापितः, लाम् 'त्रन्तिक्छ' 'पृष्टे' (उपरि) 'सादयतु'। को दृशीं ?—'य चखतीं' (य कियुकां), 'प्रथस्तीं' (विस्तारयुक्तां), 'भास्ततीं' (भायुक्तां), 'स्ररिमतीं' (विदक्षिक्वित्रिर्भुकां), तां ; 'या' इयं खयमाहवा, वा लं चुने कम् 'म्रा'-'भासि' (सर्वत: प्रकाशयिः)। तथा 'पृथिवीम्' 'म्रा'-'भामि'। 'उद्द' (विस्तीर्णम्) 'त्रनारिचं' लम् 'त्रा'-'भामि'। तारुभी लम 'त्रनिर्जं' इदं 'यक्कं' (गन्धर्वापरोगणादि-धारकतया (नयमय)। तथा 'ऋन्तरिचं' 'दृंद' (परेापद्रवराहित्येन दृढ़ी बुद्) । लमपि तत् 'त्रम्तरिचं' 'मा चिंसीः'। 'विश्वसी' (सर्वसी) प्राणापानवाने।दानाख्यवाय्ट्तिसाभाय, 'प्रतिष्ठायै' (खर्टें प्रतिष्ठासाभाय), 'चरिचाय' (प्राच्तीयाचरणाय), प्राण-मामेतस्य सर्वस्य सिद्धार्थे श्रयं 'वायुः' लाम् 'श्रभितः' 'पातु'।

केन रख्यमिति? तदुच्यते,—'मञ्चा खख्या' (मञ्च्या चेग्यचेम-यम्पत्या) 'श्रम्तमेन' 'हर्दिया' (सुखकारिणा दीप्तिविश्वेषेण) तय खामिश्रता या देवता, 'तथा' श्रनुग्रश्चीता, 'तथा' 'भ्रवा' (खिरा) यती 'सीद' (दशेपविश्व)। 'श्रक्षिरखत्' श्रक्षिरशं चयनानुष्ठाने यथा भ्रवा (खिरा) तदत्।

एतसम्बद्धसाधमभिमर्शनपूर्वकमुपधानं विधत्ते,—"इन्हाशी भ्रम्थयमानामिति खयमाहबामुपद्धातीन्द्राग्निभां वा द्रमें। बोकी विधतावनयोर्बोक्तयोर्विध्यो" (५।३।२५०) दति। ब्रमा-दिन्द्राग्निभां बाकद्यं विधतं, तस्माद्चापि बोकद्यधार्षाय 'दन्द्राग्नी' दति मन्तः प्रयुक्षते ।

प्रकाराक्तरेषेत्राग्नी मक्तगती प्रशंत्रति,—''अप्रतेव वा एषा यक्तथ्यमा चितिरक्तरिचमित वा एषेत्राग्नी दत्याचेत्राग्नी वै देवाणागेलोस्तावाजसैवैनामक्तरिचे चिनुते एत्ये" (५।१। १%) इति । अधसाचितिदयं पूर्वमुक्तं, उपरितनक्तु चितिदयं वच्यते, तस्मात् इयं द्वतीया चितिर्मध्यमा । सा च अमि-स्थाभावात् केनापि 'अधता' वक्तंते, अतोऽक्तरिचयदृत्री, अतसस्याचितर्धतिस्थर्धमित्राग्नी इति मक्तं पठेत् । देवानां मध्ये तावित्राग्नी बस्तधारिखी, तद्दक्षेत्रवैनामक्तरिचे अमिस्पर्धन्मक्तरेख 'चिनुते'। अमिस्पर्धाभावेऽपि तद्दक्षेत्र चित्रतात् धता भवति ।

पूर्वे विश्वितां खयमाष्ट्रधामनूष प्रश्नंत्रतं,—"खयमाष्ट्रधामुप-द्धात्मन्त्रं वे खयमाष्ट्रधाऽकत्त्वमेवोपधत्ते" (४।३।२ प्र॰) रति । भूमिखर्ज्ञाभावादकारिजवादुः ग्रं। यदा तु श्रयम् उपधान-विधिः, तदानीमेव तदमुवादेन पूर्विको सन्त्रविनिवागी द्रष्टवः।

उपधानात् प्राचीनमयोपचपषं विधत्ते,—"त्रयमुपन्नापवति प्राचमेवास्थां द्धात्यथे। प्राजापत्ये। वा श्रमः प्रजापतिनैवाम्नि चिनुते" (५।३।२२०) इति।

दृष्टकागतिक्द्रं प्रत्रंसति,—"खबमाह्या भवति प्राथानाम् चमुखा त्रची सुवर्गस्य क्षेत्रस्यानुस्वाही" (५।२।२८०) इति। यति हि किर्रे याचा अनुपद्धः सन् निर्मेक्कति, चावरवा भावात्, स्रोगीऽपि द्रष्ट्ं त्रकाते ।

कस्पः,--'राज्यसि प्राची दिगिति पञ्च दिम्बाः प्रतिदित्रमेकां मधे' इति । पाठम्त,—''राज्ञासि प्राची दिक्^(२) विराड्सि दिच्छा दिक्^(४) यसाङ्घि प्रतीची दिक्^(६) खराङ्खुदीची दिक्^(१) अधिपत्यिम टइती दिक्^(०)" इति । हे इष्टके, लं राजमाना दोष्यमाना सती 'प्राची दिक्' 'ऋषि' (पूर्वेदियूपाऽिष)। 'विराट्' (विविधं राजमाना) 'दिख्या' 'दिक्' 'त्रवि' । 'सवाद' (सम्बक् राजमाना) 'प्रतीची' 'दिक्' 'त्रसि' 'खराट्' (खयमेव राजमाना) 'खदीची' 'दिक्' 'श्रमि'। (श्रमिकं पातीति) 'श्रमिपल्ली', ताइश्री तं, 'रुइती' (प्रादा) 'ऊर्द्धा' 'दिक्' 'त्रिधि'।

एतेर्मनीः साध्यमुपधानं विधक्ते,—"देवानां वे सुवर्गे श्लोबं यतां दिशः समझीयना त एता दिम्बा श्रपम्बत् ता खपाद्धत ताभिर्वेते दिन्नो दृष्ट्रक् यहिस्सा उपद्धाति दिन्नां विध्रती" (५।३।२९४०) इति । देवाः पुरा भूमी व्यिताः, कदाचित् 2 11 2

स्वर्गे 'स्रोकं' गताः, तत्र गत्कतां 'देवानां' सम्यन्धिन्या या श्रियद्या 'दिश्वः', 'ताः' 'समग्रीयना' (रचकाभावात् सम्यक् विश्वर्षाः)। दिम्बर्त्तानां प्राणिनां श्राखास्त्रमेव दिश्वां विश्वर्षम्। 'ते' तदा विचार्य, दिश्वां धारणसमर्था 'एता दिश्वाः' नामेष्टका 'श्रपश्चन्'। 'दिक्'-श्रब्दोपेतैर्मन्त्रैदपधेया दष्टका 'दिश्वाः'। तदुपधानात् 'देवानां' दव यजमानस्वापि दिश्वो दृढा भवन्ति।

कत्यः, 'श्रायुर्भे पाशित दश्र प्राणस्तः पुरसादुपधाय' इति । पाठस्तु,—"श्रायुर्भे पाशि^(c) प्राणं मे पाशि^(c) श्रपानं मे पाशि^(c) यानं मे पाशि^(c) चतुर्भे पाशि^(c) श्रोषं मे पाशि^(c) मना मे जिन्न^(c) वाणं मे पिन्न^(c) श्रात्मानं मे पाशि^(c) क्योतिर्मे यक्क्^(c) इति । हे इहके, महीयम् 'श्रायुः' 'पाशि' (रख) । एवमुक्तरवापि योक्यं। 'जिन्न' (प्रीणय)। 'श्रात्मानं' (जीवस्तक्ष्पं)। 'क्योतिः' श्राभिः 'यक्क' (देशि)।

एतेर्मन्तेः वाध्यमुपधानं विधन्ते,—"दश प्राष्णस्तः पुरस्ताद् खपदधाति नव वै एक्षे प्राणा नाभिर्दश्रमी प्राणानेव पुरस्ताद्धन्ते तस्मात् पुरस्तात् प्राणाः" (५।३।२ % ०) इति । प्राणश्रन्दोपेतान् मन्तान् खपधानकास्ते विश्वतीति 'प्राणस्तः' । श्विरवि सप्त स्दिद्राणि, श्रधसादुभे, तेषु किद्रेषु वश्चरन्तः 'प्राणा' 'नव'-बङ्गाकाः, 'नाभिर्दश्रमी' (किद्रक्षा), श्वतस्तनत्यप्राणेन वह 'दश्र' प्राणान् पूर्वस्तं दिस्पुपहिताः, 'तस्मात्' लोके प्राष्ट्राख्य पुरुषस्त्र सावदृष्टिप्रशारादयः पूर्वस्तामेव दिश्व भवन्ति ।

चर्ममको को तिः बन्दं प्रधंवति,—"को तिचती मुलमा मुप-

द्धाति तस्रात् प्राणानां वा ज्यातिहत्तमा" (५।३।२ श्र०) इति । ज्याति: बन्द्युक्तेन मन्त्रेणोपधातया इष्टका 'ज्योतिसती' । चस्रात् या चरमा, 'तस्रात्' लोकेऽपि खार्चप्रकामकलेन ज्योतीह्रपा वाक् सर्वेषामिन्द्रियाणाम् 'उत्तमा' भवति ।

यक्कां प्रश्नंसित,—''दश्नोपदधाति दशाचरा विराद विराद् कन्दमां च्छे।तिच्छे।तिरेव पुरसाद्धत्ते तसात् पुरसाज्ज्छे।ति-स्पासारे" (५।२।२श्न०) १ति। दोप्तिवाचिना राजति-धातुजन्थेन निर्दिश्वमानलादियं 'विराट्' 'क्रन्दमां' मध्ये 'च्छे।तिः'। तथा मित तादृग्दश्चानां पूर्विद्युपधानेन च्छे।तिरेव तत्र धारितं भवति। यसात् पूर्वस्यां दिशि च्छे।तिर्धतं, 'तसात्' वयं प्रातः-सन्ध्याकास्त्रे पूर्वस्यां दिशि च्छे।तिर्धतं, 'उपासार्दे'।

चन विनियागमंग्रहः,—

हतीयसां चिताविन्द्रा, खयमाहसकां सृष्टेत्। विश्वेत्युपदधात्वेनां, राज्ञि दिस्तास्तु पश्चभिः। त्रायुर्देत्र प्रापक्षते। मन्त्राः सप्तद्येरिताः॥

द्दति सायनाचार्यावर्षिते माधवीये वेदार्घप्रकामे कृष्णयजुः-संहिताभाय्ये चतुर्थकाण्डे हतीयप्रपाठके षष्टेाऽनुवाकः॥ ०॥

^{*} स्वतेव सर्वेच पाठः, 'राची' इति पाठो भवितुं युक्तः।

मा छन्दं प्रमा छन्दं प्रित्मा छन्दे। खोत्रक्ति विक्लन्दंः प्रांक्तिक्लन्दं जिल्ला छन्दे। एड्ती छन्दे। जगती छन्दंः विराट्छन्दे। गायुची छन्दे खिल्लुप्छन्दे। जगती छन्दंः पृथिवी छन्दे। जन्ति छन्दे। धोन्छन्दः समान्छन्दे। नर्ध्वचाण् छन्दे। मनुन्छन्दे। वाक् छन्दंः कृषिन्छन्दे। हिर्रेष्यं छन्दे। गौन्छन्दे।जा छन्दे।ऽश्वुन्छन्दंः। श्रुप्ति-देवता॥१॥

वाती देवता स्र्यो देवता चन्द्रमा देवता वसंवा देवता रहा देवताऽऽदित्या देवता विश्व देवा देवता म्रुक्ता देवता रहस्पतिदेवतेन्द्रा देवता वर्षेषा देवता (१—१९) मूर्डास् राट् भ्रुवास् ध्रुक्षा यंत्यस् यमिष्विषे ल्वाजे त्वा स्रुष्ये त्वा स्रेमाय त्वा (१०-४९) यन्त्री राट् भ्रुवास् धरेणी ध्रुष्येस् धर्ष्त्रियाऽऽयुषे त्वा, वर्षसे त्वाजेसे त्वा बर्णाय त्वा (४४-४०) ॥ २॥

देवता। त्रायुंषे त्वा। षट् चं ॥७॥

इति तैत्तिरीयसंहितायां चतुर्थकार्ग्डे तृतीयप्रपाठके सप्तमेऽनुवाकः ॥०॥

षष्ठेऽनुवाके खयमाद्यखाद्या रहका जनाः। त्रथ सप्तमे रहत्त्वाच्या रहका जच्चन्ते। कन्यः, 'षट्चिश्वतं रहतीर्मा छन्द रति दादम दिचणतः पृथिवी छन्द रति दादम पञ्चाद्ग्रिदैवतेति दादश्रीत्तरतः' दति। पाठखु,—"मा छन्दः^(१) प्रमा छन्दः^(१) प्रतिमा इन्दः^(९) श्रसीविञ्डन्दः^(४) पङ्किन्दः^(५) उच्चिहा कन्दः^(१) तृहती कन्दः^(०) भनुष्टुप्कन्दः^(८) विराट्कन्दः^(१) गायची क्रन्दः^(१०) चिष्टुप्कन्दः^(११) जगती क्रन्दः^(११) पृथिवी इन्दः(११) श्रमारिशं इन्दः(१४) धाञ्चन्दः(१४) समाञ्चन्दः(१९) नचत्राणि इन्दः^(९०) मनम्बन्दः^(९८) वाक्**क**न्दः^(१९) क्विम्कृन्दः^(९०) हिरक्षं इन्दः(^{११}) गीम्कन्दः^(९१) त्रजा इन्दः^(१२) त्रत्रमञ्जन्दः^(१४)। श्रग्निद्वता (१५) वाते। देवता (१९) सूर्ये। देवता (१०) चन्द्रमा देवता^(९८) वसवा देवता^(१८) क्ट्रा देवता^(१०) त्रादित्या देवता^(१९) विश्वे-देवा देवता^(११) महतो देवता^(११) हहस्पतिर्देवता^(१४) इन्हो देवता^(२५) वर्षो देवता^(२६)" इति । श्रव 'मा'-'प्रमा'-'प्रतिमा'-'उस्रोवि'-प्रब्दादयम्बन्दोविशेषाः, केचिद् वेदे प्रसिद्धाः, केचि-क्रोकेव्वपि प्रसिद्धाः। हे इष्टके, लं 'मा'-नामक्कन्दोक्पाऽसि। एवं सर्वच चेाट्यम्। चान्यादीनां देवतालं तु प्रसिद्धं। 🕏 रष्टके, लम् ऋग्निदेवतारूपासि । एवमुत्तरचापि योज्यम् ।

एतेर्मकैरिष्टके प्रधानं विधातं प्रस्ताति,—"ह्न्दा श्वा प्रशु-ब्वाजिमयुस्तान् त्रहत्युद्जयत् तस्मादार्हताः प्रव उच्चन्ते" (४।३।२५०) रति। पुरा कदाचित् गायच्यादिच्छन्दोदेवताः परस्परं मात्सर्वेण कच्चित् 'त्राजिं' (मर्यादां) प्राप्ता। त्रहसेव पश्चन् स्वीकरिक्यामीति प्रतिज्ञा मर्यादा। तदानीं त्रहत्यास्था हन्दोदेवता देवतान्तराणि उज्जञ्ज स्वयसेव 'त्रजयत्'। त्रतसादीय- नासा 'पन्नवः' 'वाईताः' द्त्येवं प्रसिद्धं गताः। यथा रहतो क्रन्दशं मध्ये प्रमस्ता, एवं रहत्याख्या द्रष्टका श्रिप प्रमस्ता दित तात्पर्यार्थः।

तत एता इष्टका देशविशेषेषु विधन्ते — "मा छन्द इति दिश्णत उपद्धाति तसाइ चिणायते माधाः, पृथिती छन्द इति पश्चात् प्रतिष्ठित्ये, श्रायदेवते दुत्तरत श्रोका वा श्रायरे अपवित्त धन्ते तसाद त्तरि प्रमायो जयति" (५१३। २%) इति । 'मा'-श्रव्येन 'माधाः' उष्यन्ते । दिश्चिष्टिन्-विधानेन दिश्चिषादिष्टिन्तः, स्वयंस्य गोस्तकप्रदिश्चिषायत्या निष्पाय-मानता श्रेवादिमाधा 'दिश्चिषायतः' । पश्चिमदिस्प्रपधेयानाम् इष्टकानां मन्त्रेखादो 'पृथिवो'-श्रव्यः पठितः, पृथिवो च धर्वस्य जगतः प्रतिष्ठाः, तसात् तदुपधानं 'प्रतिष्ठित्ये' भवति । उदीश्चां दिश्च उपधेयाना मिष्टकानां मन्त्रादो 'श्रायः' द्रयुश्चते, तसात् 'श्रोजः' प्रतिश्च दश्चिषामुपद्दितं भवति । यसात् उदीश्चामन्यादि-देवता श्रक्ति 'श्रोजः' तिष्ठति, 'तसात् उदीश्चामन्यादि-देवता श्रक्ति 'श्रोजः' तिष्ठति, 'तसात्' उत्तर। भिमुखत्वेन प्रयाणं सुर्वन् तीर्थया चादिकन्यपृथ्यो पेतता त् परक्षाकं 'जयति'।

मन्त्रपाठप्राप्तामिष्टकां प्रशंसित,—"वट् विश्वात् सन्पद्यन्ते षट्-चिश्वाद् चरा दृष्टतो वार्षताः पश्चता दृष्टतोवास्य पशूनवद्रन्थे दृष्टती कृन्द्रसाश् खाराच्यं परीयाय यस्त्रेता उपधीयन्ते गच्छति खाराच्यम्" (५।३।२५०) इति । दृष्टत्या जितलात् पशूनां वार्षततं। चेहलादेव दृष्टत्याः खाराज्यमपि ।

कचाः, 'मूर्ड्रापि राड़िति यप्त बाखखिखाः पुरकात् प्रतीची-वैकी राजित यत पवात् प्राचीः' इति । पाठख,—"मूर्द्रावि राट्^(१०) भ्रुवासि धर्का^(१८) वन्त्र्यसि चमित्री^(१८) रूपे ला^(१०) र्जर्जे ला⁽⁸¹⁾ क्रथे ला⁽⁸¹⁾ घेमाय ला⁽⁸¹⁾ घकी राट्⁽⁸⁸⁾ ञ्चवासि भरकी(^{४५)} भर्श्वसि धरिनी(^{४६)} श्रायुवे ला^(४०) वर्षसे ला^(४८) भ्रोजसे ला^(४९) बलाय ला^(५०)" इति। हे द्ष्टके, सं मूर्ह्सवदुक्तमा 'राट्' (राजमाना) च 'श्रवि'। हे दष्टके, लं 'भ्रवा' (खिरा) 'धर्षा' (धार्षहेतुः) च 'त्रसि'। हे दृष्टके, लं 'यन्त्री' (खयमपि नियता), 'यमिची' (सर्वेषां नियमनकारियो) च 'श्रमि'। हे इष्टके, 'द्वे' (श्रमाय) लां खपदधामोति श्रेवः। 'ऊर्जे' (बचाय) तां उपद्धामि, 'हायें' (मस्तिव्यक्तये) तां चपद्धामि, 'चेमाय' (समादितस्य धनस्य रचवाय) वां उप-दधामि । हतैः वप्तिभिक्तैः पुरस्ताद्वधेयाः । हे इष्टके, लं 'बन्ती' (निवमापेता) 'राट्' (राजमाना) च 'श्रवि'; तथा 'भुवा' (खिरा), 'धरषी' (धारषचेतुः) च 'त्रवि' । 'धर्ती'* (धारणं चुर्वन्तो), 'धरिची' (भूमिरूपा) च 'त्रिधि'। 'चायुषे' (भायुर्दं सूर्य), 'वर्षसे' (कान्यर्थ), 'त्रीलसे' (भ्रष्टमधातुरु सूर्य), 'बलाय' रति प्रत्येकमन्वयि ; (कार्यार्थे) लां उपद्धामि । एतेर्मन्त्रैः पश्चिमायां दिश्वपधानम् ।

तेरतेदभयविधेर्भन्तेः साध्यमुपधानं विधत्ते,—"सप्त वाखिखाः

^{*} जब धरित्रो इति सर्वत्र पाठी न सम्बन्।

पुरस्ताद्पदभाति यत्र पत्तात् यत्त वे बोर्चकाः प्राचा दाववाद्याः प्राचावाद्यः (५।६।२५०) इति । वालक्षिकामकीर्मुनिभिरादे। दृष्टलात् इष्टका चिप वालक्षिकात्वाः । इष्टकागतवा यत्रवद्भावा बीर्चक्षक्रद्रवात्यः , पुरस्तात् एकं यत्रकं,
पद्मात् एकं यत्रकमिति यत्रकयोदिलादधोदेशवर्त्तिक्षद्रदयवान्त्रम्, त्रतः सर्वेषां 'प्राचानां' 'सवीर्यलाय' इदमुपधानम् ।

यप्तकदये मक्तविभागं विधक्ते,—"मूईािस राजिति पुरस्तार् खपद्धाति, यक्ती राजिति पद्यात्, प्राणानेवासी समीचा द्धाति" (५।३।२७०) इति । सप्तकदयसानां प्राणानां परस्तराभिमुख्ये सम्यक्षं सम्पद्यते । सम्यक्षं नाम स्वस्त्रयापार-चमतम्॥

त्रव विनिधागसंग्रहः,—

मा, दिचयां दृषतीः, पृथि, पञ्चादयोक्तरा । श्रिप्रित्यादिकाः सर्वा दादत्र दादत्रोदिताः॥ मूर्द्भा, वन्त्री, बाखिख्याः पुरः पञ्चाच स्त्रभिः। सप्तमे लनुवाकेऽसिन् मन्त्राः पञ्चाबदीरिताः॥

रति सायनाचार्यविर्चिते माधवीये वेदार्थमकात्रे क्रच्ययजुः-शंहिताभास्ये चतुर्थंकाच्छे हितीयप्रपाठके सप्तमाऽनुवाकः॥ • ॥ श्राशुः, विष्ट्रहान्तः पेश्वद्शा व्याम सत्तद्शः प्रतूर्ति-रष्टाद्शस्तपा नवद्शीऽभिवृत्तः संविश्शा धृष्णं एक-विश्शा वर्षे दाविश्शः सम्भर्णस्त्रयाविश्शा यानि-श्रतुर्विश्शा गर्भाः पश्चविश्श श्राश्रीस्त्रण्यः क्रतुरेक-विश्रशः प्रतिष्ठा चयस्त्रिश्शो व्रश्नस्य विष्टपं चतुस्त्रिश्शो नार्कः षट्विश्शो विवृत्तीऽष्टाचत्वारिश्शो धृर्वश्चेतु-ष्ट्रोमः (१—१०) ॥ १॥

श्राश्चः। सुप्तिषंश्यत्॥ ८॥

2 x 2

इति तैत्तिरीयसंहितायां चतुर्घकाएडे तृतीयप्रपाठके अष्टमाऽनुवाकः ॥ • ॥

सप्तमेऽनुवाके दृश्याचा दृष्टका श्रमिष्टिताः । तावता हृतीचा चितिः समाप्ता । श्रयाष्टमे चतुर्थां चिता श्रद्ध्याची मीयाक्षे-ष्टकास कासिदुष्यने । कष्पः, 'श्रोधित पार्वाचिकीभ्यां प्रचर्य चतुर्थीं चितिं चिने। ह्याग्रुक्ति हृद्ग्री भीगीऽभी होताभ्या मनुवाकाभ्यां यथा त्राष्ट्रमुपधाय' द्रति । तथा सनुवाक पाठष्तु,—'श्राप्रु-क्तिहत् (१) भागाः पञ्चद्श्री (१) छोम सप्तद्गः (१) प्रद्वत्तिं रृष्टाद्शः (४) तथा नवद्शः (५) श्रभिवर्त्तः सविश्रभो (१) धद्ष्य एक विश्रभो (९) वर्षा द्राविश्रभः (८) सभारषक्तियो विश्रभः (८) छो निस्तुर्विश्रभः (१०)

मर्भाः पञ्चविष्ट्रश्रः^(११) चोजिक्सववः^(१२) ऋतुरेकिष्ट्रशः^(१२) प्रतिष्ठा चयक्तिश्रतः^(१४) त्रत्रका विष्टपं चतुव्तिश्रत्रः^(१६) नाकः वट्-चिश्रमः^(१५) विवर्त्तोऽष्टाचलारिश्रमः^(१०) धर्मसृतुष्टोमः^(१८)" इति। चन निरुत्पञ्चदत्रसप्तरत्राष्टादत्रनवदत्रादित्रस्य स्तामवित्रेष-वाचिनः। स्रोमाञ्च ष्टचनिष्ठस्य साच श्राव्यक्तिभेदास्त्रिष्यस्यक्ते। भावित्रकार्यु विवृत्पञ्चदश्रमप्रदश्रानां 'समिधमातिष्ठति' रत्यसित्रनुवाके सामनाद्वापीदाइरणेनासाभिर्यास्थातः; एक-विश्व-विषव-वयक्तिश्वाख्या चपि स्तामा: सामनाञ्चर्वे निरूपिताः; त्रष्टाद्य-नवद्याद्यसु न्यायेने।स्रेयाः उपस्रोमाः, ते तु ब्राह्मचे पाचाताः, तदुव्ययगार्थस्वादिकाप्रकारः साम-स्वादवगम्बयः ; अव विष्टदादयञ्चतुष्टेामान्ता ऋष्टादश्रसङ्खाका-सो मविषेषा त्रासाताः । 'त्राग्रः' 'भानाः'— इत्यादीनि स्रोम-विष्रवाचि, तत्र कानिचिहुचवाचीनि कानिचिह्रखवाचीनि, तथा वति गुण्यमन्धद्रयतादाव्यं स्रोमेषूवचर्यं तत्तत्स्रोमरूपलं तन्तिहरूकाचाः प्रमंबार्यमुपन्यस्यते । तचैवमचर्योजना,—'माइः' (ब्रेच्यगुणेपितः) 'चिटत्'-स्तामः ; हे इष्टके, तद्र्पा लमसि। एवमुक्तर्वापि चोच्छं। 'भाकाः' (भाषमानः), 'छोम' (प्रसिद्धं ष्ट्रचं)। (प्रकटा द्वर्त्तः [लरा] यखासे।) 'प्रद्वर्त्तः' भीषकारिणीत्वर्धः। 'भपः' प्रसिद्धं, 'श्रभिवर्त्तः' सामवित्रेवः । (सद विंत्रत्या यञ्चाया वर्त्तते इति) 'वविंत्रः' क्रोमवित्रेषः। 'धर्षः' धार्कः। 'वर्चः' वसचेतुः । 'सभारवः' सम्यक् पेरवकः । 'द्योजिः'। 'प्रकात्पादकः। 'गर्भाः' प्रसिद्धाः । 'चीजः' च्रष्टमी धातुः ।

'कतः' खोतिष्टे मादिः। 'प्रतिष्ठा' खितिहेतः। 'अध्यां भादित्य-खः, 'विष्टपं' निवासखानं 'ममे वा मादित्यो अधः' रित मुत्यम्नरात्। 'नाकः' खर्गाखा भोगभ्रमः। विपरोतलेन वर्णनं यखासी 'विवर्णः'। निष्टत्प सदम-सप्तरमेकविंग्न-निषय-नयितंमा भनेनेवाखातकसेख कविदनुष्ठोयसो. कवित्तु विपरोतकसेखः; भत एव समकारेख कविद्रकं,—'मयिकंग्रारभाषास्त्रिष्टदुत्तमाः' रित। 'धर्षः' धारकः। 'चतुष्टामः' निष्टत्प सदमसप्तरमेकविंग्रानां समूरः। एतैः स्रोमवाचिभिरष्टादम्भर्मन्त्रैः स्रोम इपलमापा-दिता भ्रष्टाद्रमेष्टका खपद्धात्।

एतेर्नन्तेः साध्यम्पधानं विधत्ते,—"देवा वै यद्यन्ने त्रात्तं ते देवा एता त्रस्ण्यासोमीया त्रप्रभन् ता त्रव्याऽनूष्णान्यथोपादधत तरस्रा नान्यवायन् ततो देवा त्रभवन् परास्रा यदस्ण्यासोमीया त्रन्यथाऽनूष्णान्यथोपरधाति भाव्याभिभव्ये भवत्यात्मना परास्र भाव्यथो भवति" (५१३) १ता । पुरा कदाचित् देवसाम्यं प्राप्तुं 'त्रस्रा' देवसमेपे गूडचारिणं पुरवमवस्राय तद्युखेनावगत्य 'देवा' 'यन्ने' 'वत्' (यत् श्रृज्ञम्) त्रकुर्वन्, 'तत्' सर्वे स्वयमपि तथेवानुष्ठित-वन्नः । तताऽस्ररान् वस्यित्ं 'देवा' 'त्रस्ण्यासोमोयास्त्रा 'स्तां भावाद्या 'त्रवा' देवा' 'त्रस्ण्यासोमोयास्त्रा 'स्तामीयाः', तथापि मन्त्रपाठकममुस्त द्वा वक्रवेनानृष्ठेथलात् 'त्रस्ण्यासोमोयाः' । कथं वक्रविमिति ?—तदुष्यते,—'त्रन्यथा' मन्त्रानुवन्तम्, 'श्रन्यथा' दृष्ठकोपधानमिति वक्रवं । 'भानाः

पश्चदशः' रत्ययम् श्रमुवषने दितीया मणाः; खपधाने त्ररीयः।
'धाम सप्तदशः' रत्यमुवषने हतीया मन्त्रः, खपधाने त् दितीयः।
एवं सर्वन वक्तलं द्रष्टयं। तदानीं गूद्षारी विश्वानाः, तन्युद्धाः
दनवगतश्रद्धाः 'श्रमुरा' श्रपि देवान् श्रमुगम्, नाश्चकुवन्। तताउम्रगणां पराभवा देवानां जयसामीत्। तम्मात् यजमानाऽपि
तथेव खपदश्चात्, तदुपधानं श्लाहयसाभिश्वत्ये खस्य जवाय च
सम्बद्धते।

तदेवं सामान्याकारेण विधाय विशेषाकारेण प्रयमं मन्त्रं विनियुक्के,—''श्राद्धक्तिहरित पुरस्ताद्दपदधाति यश्चमुखं वै चिहद् यश्चमुखमेव पुरस्तादियातयति'' (५।३।३%) इति। स्तामानां मध्ये प्रथमभावितात् चिहता यश्चमुखनं। तन्मन्त्रको-प्रधानेन पूर्वस्यां दिश्च यश्चमुखं प्रसारयति।

श्रधानुवचने दतीयं मन्तं विनियुक्के,—"चीम सप्तदश्र इति दिचिषतीऽसं वै चीमात्रः सप्तदश्रोऽत्रमेव दिचिषती धन्ते तसाद् दिचिषते। धने तसाद् दिचिषेनासमग्रते" (४।१।२१२०) इति । चीमतदाकामग्रसे चैने वद्धधान्यनिष्यत्तेची चीऽसलं । सप्तदश्रसे मद्यासमग्रदेने-वैद्धीः यह प्रजापतेर्मध्यदेशादुत्पस्रलादस्रलं। यसादी दृष्टेन मन्तेष दिच्युपधानं निद्ति सन्नोपधानतुष्यं, 'तसात्' खोकेऽपि दिच्युपधानं निद्ति सन्नोपधानतुष्यं, 'तसात्' खोकेऽपि दिच्येन हस्तेनासं सुज्यते ।

भय यप्तमं मन्तं विनियुक्को,—"धरण एकविश्व इति पद्मात् प्रतिष्ठा वा एकविश्वः प्रतिष्ठित्यै" (५)२)३ भः) इति । यामि-धेनीप्रकर्षे एकदिवसीमानां प्रतिष्ठेत्यासातलादस्य प्रतिष्ठालम् । श्राच दितीयं मकं विनियुक्के,—"भाकाः पश्चद्व द्रष्टुत्तरत श्रोचो वै भाका श्रोजः पश्चद्व श्रोज एवे। तरते धन्ते तस्नात् स्वत्तरते। अभिश्यायी जयित" (५।३।३१०) दति । भाषनस्व श्रोजः कार्यं वादे। जस्म । श्रम्य पश्चद्शे। वजः द्रष्टा सातवात् श्रोजे। वद्यस्त्रेत्वादे। जस्म ।

श्रय चतुर्थं मन्तं विनियुक्के,—"प्रत्वित्तिरहादत्र इति पुर-सादुपद्धाति है। चिह्नाविभपूर्वे यज्ञमुखे विद्यातयित" (५। ३।३ श्र•) इति । श्रहादश्रसोमस्य पूर्वे त्तरभागयोर्नवसङ्घोपेत-लात् है। चिह्नते। समस्ते । ते। च 'श्रभिपूर्वम्' (श्रनुक्रमेख) 'यज्ञमुखे' प्रसारयित ।

श्रय षष्ठं मन्त्रं विनियुक्को,—"श्रभिवर्त्तः सविश्रय द्ति दिष-षतोऽसं वा श्रभिवर्त्ते।ऽसं सविश्र्योऽस्रमेव दिखियता धन्ते तसात् दिखियेनास्त्रमद्यते" (५।३।३%) द्ति । श्रभिवर्त्तमाकोऽस-साधनतादस्त्रनं। विश्रश्योमस्य दश्रसङ्खाकद्योपेतस्य विराज्दारा श्रस्तम्।

श्रवाष्टमं मन्तं विनियुक्को,—''वर्षे दाविश्व दति पञ्चाद् बदिश्वतिर्दे तेन विराजे। यद् दे प्रतिष्ठा तेन विराजे।रेवाभि-पूर्वमवाधे प्रतितिष्ठति'' (५।३।३% •) दति । दाविंवति-सञ्चामधे या 'विंवतिः', 'तेन' (विंवतिसञ्चाविवेषेष) द्वसञ्चोपेते 'दे' 'विराजे।' सन्त्रधेते । विंवतेदपरि 'यत्' 'दे' (या दिसञ्चा-विजेषेष) पादधोरिव प्रतिष्ठादेतुलात्, 'प्रतिष्ठा', 'तेन' (तादुव-दिसञ्चाविवेषे) तथा यति 'विराजे।' सन्नत्थिन्येव श्रवाधे क्रमेण प्रतिष्ठितो भवति। श्रथ नवमं मन्तं विनियुद्धे,—''तपा नवदत्र इत्युत्तरतस्तसात् सथो इसथोस्तपस्तितरः'' (५।३।२श्व•) इति । यसात् उदीर्श्यां दित्रि 'तपः' इति मन्तः प्रवर्त्तते, 'तसात्' उत्तरदिम्बर्ता वामइसो द्योर्धस्योर्मधे श्रतित्रयेन तपस्ती, द्विषद्सवद्भेष्णन-श्रत्भावात्, श्रमश्रमस्य तपाद्भपत्वात्।

श्रथ दश्रमं मन्त्रं विनियुक्को,—"योनिश्चतुर्विष्ट्रश्च रित पुर-सादुपद्धाति चतुर्विष्ट्रश्चयाचरा गायची गायची यश्चमुखं यश्च-मुखमेव पुरस्तादियातयति" (५।३।३%) रित । प्रातःसवने प्रदक्ते यद्वायऱ्या यश्चमुखलम् ।

श्रधिकादशं मक्तं विनियुष्क्ते,—"गर्भाः पश्चविश्व इति इचिषते। इतं वै गर्भा श्रवं पश्चविश्वोऽत्रमेव दिच्छतो धक्ते तसाहि चिषेना समद्यते" (५।६।३ श्र॰) इति । गर्भाणामञ्जकार्येला-दसं, पश्चविश्वस्था सहेतुलादस्यम् ।

त्रय दादमं मन्त्रं विनियुक्के,—"त्रीजिक्तिणव दति पञ्चादिमे वै खोकाक्तिणव एम्बेव खोकोषु प्रतितिष्ठति" (५।३॥३॥०) दति । विणवे विसङ्घाया विद्यमानतात् खोकत्रयक्पतम् ।

त्रथ नवमं मन्त्रं विनियुक्को,—''सक्षरणक्तयोविष्ट्रम इत्युत्तरत-क्तसात् सयो इस्तयोः सक्षार्यतरः' (५।३।३ त्र०) इति । सम्यग्-भरणीयं भिचापाचादिकं येन वामइस्तेन, सेाऽयं 'सम्मार्थतरः', स च त्रतिभयेन इस्तयोदभयोर्मध्ये धार्ये धारयति ।

चाच चये।दशं मन्त्रं विनियुष्क्ते,—"क्रतरेकचिश्रम इति

^{*} प्रवर्शनी हति सर्वेत्र पाठी न सम्बद्।

पुरसाद्पदधानि वाग् वै कतुर्यज्ञ मुखं वाक् यज्ञ मुखमेव पुरसाद् वियातयिन" (५।३।१४०) इति । मन्त्र निष्पाद्यलात् कतोर्वाग्-रूपलं, सा च 'वाक्' यज्ञस्य 'मुखं', प्रथमं मन्त्र मुचार्य पद्या-दन्ष्ठेयलात् ।

त्रय पश्चद्यं मन्तं विनियुक्ते,—"त्रभस्य विष्टपं चतुन्ति १ त्र दिल्पाताऽसे। वा त्रादित्यो त्रभस्य विष्टपं त्रस्तवर्षमीत दिल्पाते। धन्ते तस्माद्द चिणोऽद्धे। त्रस्तवर्षमतरः" (५:१।६%) दिल्पाते। यद्यप्यादित्य एव 'त्रभः', 'विष्टपं' तु तस्य निवासस्यानं, तथायवाभेद उपचर्यते। दिचणस्याम् श्वादित्य मन्त्रेणोपधानात् दिचणस्सो। त्रस्ता त्रस्तावर्षः अस्तवर्षः धारयति, 'तस्मात्' दिचणभाग एवातिश्रयेत त्रस्त्रावर्षस्य स्त्रावर्षे धारयति, 'तस्मात्' दिचणभाग एवातिश्रयेत त्रस्त्रावर्षे स्त्रमः; श्रत एव श्राचीर्वादादी स एव प्रसन्तः।

श्रथ चतुर्दशं मन्त्रं विनियुङ्को,—"प्रतिष्ठा चयन्ति १ इति पञ्चात् प्रतिष्ठित्ये" (५।३।३%) इति । मन्त्रगतेनेव प्रतिष्ठा- श्रब्देन प्रतिष्ठा स्वचिता ।

श्रय घे। इग्रं मक्तं विनियुङ्को,—''नाकः षट्चिश्रा इत्युक्तरतः सुवर्गे। वै सोको नाकः सुवर्गस्य स्नोक्स्य समध्ये" (५।३।३॥०) इति । नाकमञ्दार्थः प्रसिद्ध एव ।

श्रव विनियागसंग्रहः,-

त्राद्भरष्टादशादधादच्लयासीमधंयुता इति।

द्ति सायनाचार्वविरचिते माधवीये वेदार्थप्रकामे हन्ण-यजुःसंहिताभाये चतुर्धकाण्डे हतीयप्रपाठके श्रष्टमाऽनुवाकः॥ ०॥ २ ४

श्रुप्रेभीगारित दीक्षाया श्राधिपत्यं ब्रह्मं स्पृतं चि-वृत्स्तोमुः (१) इन्द्रंस्य भागाऽसि विष्णेुाराधिपत्यं श्रुचः स्पृतं पंचद्शः स्तोमंः(१) नृचर्धसां भागाऽसि धातु-राधिपत्यं जुनिवर् स्पृतर सेप्तद्शः स्तोमः (१) मिचस्यं भागीऽसि वर्षणस्याधिपत्यं दिवा चृष्टिवात्। स्पृता रकविर्रशः स्तोमः(") ऋदित्यै भागाऽसि पृष्ण आर्ध-पत्यमार्जः स्पृतं चिंखुवः स्तोमः(॥) वस्नेनां भागाऽसि ॥

र्द्राणामाधिपत्यं चतुष्पात्स्यृतं चतुविश्यः स्तोमः (९) चादित्यानीं भागें। सि मुरुतामाधिपत्यं गर्भाः स्प्रताः पंचिव्हिश्यः स्तोमं:(0) देवस्य सिवतुर्भागे।ऽसि वहस्यते-राधिंपत्यः समीचीर्दिशं स्पृतार्श्वतुष्ट्रामः स्तोमः(=) यावानां भागाऽस्ययावानामाधिपत्यं प्रजा स्पृता-र्यतुयत्वारिक्षणः स्तोमं:(e) ऋभूणां भागाऽसि विश्वेषां द्वानामाधिपत्यं भूतं निर्शान्तर स्पृतं चयस्त्रिःशः स्तोर्मः(१०) ॥ २ ॥

वस्नं भागे। पर्चत्वारि श्या ॥ ८॥

इति तैत्तिरीयसंहितायां चतुर्धकाएडे तृतीयप्रपाठके नवमाऽनुवाकः ॥०॥

त्रष्टमेऽन्वाके काश्चिद्रणयास्त्रोमीयाख्या इष्टका उन्नाः। श्रय नवमेऽविश्वष्टासा उचाने। तासामविश्वष्टानामिष्टकानां मन्त्रेषु प्रथमं मन्त्रमाइ,—"त्रग्नेर्भागोऽधि दीचाया त्राधिपत्यं ब्रह्म स्पृतं चिटत्स्तोमः^(१)" दति । हे दष्टके, बोऽयम् 'ब्रग्नेभीगः' (इविर्धेचणः), यच 'दीचाया' 'त्राधिपत्यं' (खामिलं), 'स्पृतं' 'ब्रह्म' (देवानां प्रीतिकरं मन्त्रजातं ब्राह्मणजातिर्वा), योऽपि चिट्रास्थः स्रोमविभेषः; तस्रवे लम् 'ऋषि'।

चय दितीयं मक्तमाइ,—''दक्ख भागोऽसि विश्वोराधि-पत्यं चवर स्पृतं पञ्चदशः सोामः (१) " इति । हे इष्टके, याऽयम् 'दुक्स भागः' (इविविंशेषः), यच 'विष्णाः' (परमेत्र्रस्थ) 'म्राधिपत्यं', यदपि 'स्पृतं' (प्रीतिष्ठेतुं) 'चनं' (बलं चित्रजाति-र्वा), चोऽपि पञ्चद्शास्त्रः 'स्तामः'; तस्त्रवं त्वम् 'श्रमि'।

श्रय हतीयं मन्त्रमास,—''मृचचमां भागेऽिम धातुराधिपत्यं जनिवर स्पृतर सप्तद्यः स्तामः (२)" इति । ये मनुष्याः सन्तः चक्तते (वेदं यक्तमुचारयन्ति), ते 'नृचचमः' (ऋत्विगादयः) ; तेवां 'भागः' दक्तिणारूपा गवादिः, 'धातुः' प्रजापतेर्यत् 'म्राधि-पत्यं', यच 'स्पृतं' (प्रीतिकरं) 'जनिचं' (जननशीसम् अतं) या हि सप्तद्वाखाः स्तामिविषेषः; तत् भवे लम् 'त्रसि'।

त्रय चतुर्घे मन्त्रमार,—"मिनस भागेऽसि वर्णसाधि-पत्यं दिवा दृष्टिवाताः स्पृता एकविश्वः स्तामः(४)" इति । प्रीतिद्देतवः 'वाताः' (वायुविश्वेषाः) 'दिवः' सकान्नादागताः ; 'वृष्टिः' च।

2 v 2

श्रय पञ्चमं मक्तमार,—"श्रदित्ये भागेऽिष पृष्य श्राधि-पत्यमोत्रः स्पृतं चिषवः स्रोमः(६)" इति । 'श्रोजः' (बसम् श्रष्टमधातुर्वा) ।

श्रय वहं मन्त्रभाष,—"वस्नां भागेऽवि इदाणामाधिपत्यं चत्रयात् स्पृतं चतुर्विशः स्त्रोमः(())" इति । 'चतुष्पात्' (गवा-श्रादिः)।

त्रय सप्तमं मन्त्रभाइ,—''श्रादित्यानां भागे।ऽसि महता-माधिपत्यं गर्भा स्पृताः पञ्चांवश्चः स्रोमः' द्रित । 'गर्भाः' दिपदां चतुष्पदां चोदरगताः ।

श्रयाष्टमं मन्त्रमाष्ट्र,—''देवस्य सवितुर्भागे।ऽसि वृष्टस्यतेराधि-पत्यः समीचीर्दिशः स्पृतासतुष्टोमः स्रोमः(⁽⁾⁾' दति। यासु दिष्ट-वस्त्रिताः प्राणिने।ऽनुकूलाः ता 'दिशः' सभीष्यः ता एव 'स्पृताः'।

श्रथ नवमं मन्त्रमाइ,—"यावानां भागोऽख्ययावानामाधि-पत्यं प्रजाः स्पृतासतुस्रलारिष्ट्रज्ञः स्तेमः (१)" इति । युते। (मिश्रीभवतः) ग्रुक्तकृष्णपंत्री श्रवेति 'यावाः' मासाः । श्रतथा-विधलात् 'श्रयावाः' श्रद्धंमासाः ।

त्रय दश्रमं मक्तमार,—"स्थारणं भागे।ऽसि विशेषां देवा-नामाधिपत्यं भूतं निश्वान्तः स्पृतं चयक्तिःश्यः स्तोमः(१०)" इति । स्थिभुश्रस्ता देवसामान्यवाची । गणविशेषोविश्वे-देवाः । 'भूतं' निष्यन्तं । 'निश्वान्तं' ग्रसं ।

एतैर्मन्त्रेदपधेयासु श्रव्णयास्त्रीमीयासु दृष्टकासु मन्त्रविष्ठेषेषु देशविष्ठेषेषु च बद्यापधानं विधीयते । तच प्रथममन्त्रं विनियुद्धे,—''म्रोभागीऽभीति पुरसादुप-द्धाति यज्ञमुखं वा म्रियंश्वमुखं दीचा यश्चमुखं ब्रह्म यश्च-मुखं विद् यश्चमुखमेव पुरसादियातयित" (५।३।३ म॰) इति। प्रथमम् माहितेऽग्ना पद्याद्यग्रस्य प्रदृत्तेरियः 'यश्चमुखं'। से।मयागस्य दीचीपकमनाद् दीचाया यश्चमुखनं । यश्चस्य स्विम्बरणपूर्वकलात् मार्विज्यस्य च ब्राह्मणधर्मानात् ब्राह्मण-जातिः 'यश्चमुखं'। से।चाणां मध्ये प्रथमसे।चश्च विद्यादमानस्य विद्यत्सीमेन निष्पाद्यमानलात् विद्यते। यश्चमुखं। क्षेन मन्त्रेणीपधाने 'यश्चमुखं' सर्वे 'पुरस्तात्' प्रसारयित।

श्रय हतीयं मन्तं विनियुक्के,—"नृचचमां भागेऽमीति दिचियतः ग्रुश्रवाश्चे वे नृचचमे।ऽसं धाता आतायेवासी श्रममि दधाति तस्ताच्याते।ऽसमित्त जनिष्णं स्पृतः सप्तद्याः स्तोम रत्यादानं वे जनिवमस् सप्तद्यो।ऽस्रमेव दिचिषते। धत्ते तस्तात् दिचिषेनास्त्रमद्यते" (५।६।३२०) रति । वेदशास्त्रपारं-गताः 'ग्रुश्रवांसः' एव 'नृचचाः'-शब्देनाभिधीयन्ते, चचते व्यक्तं स्तति 'चचसः', नरच ते चचस रति 'नृचचसः'; यदा नृषु मनुष्येषु मध्ये चचसे। (व्यक्तं वक्तारः)। धातुरस्रोत्पादकत्ता-दस्त्रं, स्तो मन्त्रं धाद्यबद्धपाठेने।त्पन्नाय यणमानाय 'स्रसं' सम्पाद्यति । तिसान् मन्त्रं 'जिजवम्' रत्याचुत्तरभागमि स्त्रव्यत् । जायत रति व्यत्पत्त्या जनिष्मस्दे।ऽस्त्राची । सप्तद्यन् स्त्रामस्य श्रमकार्पलादस्रलं। एवं सित क्रस्त्रमि 'स्रसं' दिचिषस्यां स्त्रास्य श्रमकार्पलादस्रलं। एवं सित क्रस्त्रमि 'स्रसं' दिचिषस्यां

दिन्नि सम्पादयति। यसात् दिणिदिशेऽस्रभागिलं, 'तस्रात्' दिन्नण इसोगासं भुक्के ।

त्रय चतुर्थे मन्तं विनियुक्ते,—"मिनस भागेऽसीति पञ्चात् प्राणी वै मिनेऽपानी वहणः प्राषापानावेवास्मिन् द्धाति दिवे। दृष्टिवाताः स्पृता एकविश्रमसोम दृष्टाइ प्रतिष्ठा वा एकविश्रमः प्रतिष्ठित्यै" (५।२।२४०) दृति। मिनावहणयोः प्राषापाना-भिमानित्वात् तद्रूपतं। तस्य मन्त्रस्थोत्तरभागे सर्वस्रोमप्रतिष्ठा-इपस्य एकविंत्रस्थाभिधानं 'प्रतिष्ठित्यै' सम्बद्धते।

श्रध दितीयं मन्तं विनियुक्के,—''इन्द्रस भागोऽसीत्युत्तरत श्रोजो वा इन्द्र श्रोजो विष्णुरोजः चनमोजः पञ्चदश्र श्रोज एवोत्तरतो धन्ते तसादुत्तरतोऽभिप्रयायी यजित'' (५।३।३%) इति । इन्द्रादीनां बस्रवन्तात् श्रजोक्तपतं । ततः सर्वमिष 'श्रोजः' उदीचां दित्रि स्वापितं भवित । श्रोजोयुक्तलादेव उत्तरदिग्गामी तीर्थयानादिपुष्टेन स्वर्गं 'जयित'।

श्रय वहं मन्तं विनियुक्के,—"वस्नां भागे। प्रमिति पुरस्ता-दुपद्धाति यश्चमुखं वै वसवा यश्चमुखः रहा यश्चमुखं रतु-विंश्रशे यश्चमुखनेव पुरसादियातयति" (५।३।३%) रति। 'वस्नां' प्रातः सवनाभिमानिलात् यश्चमुखलं। प्रातः सवनाभि-मानिलश्च इन्देश्या श्वामनिन्त, 'मञ्जावादिने। वदन्ति यद् वस्नां प्रातः सवनम्' रति। 'रतं' (शब्दं मन्त्र इपं) द्रवयन्ति'

^{*} प्रावयन्ति इति का॰ **इ॰ पु॰** पाठः।

दति 'ब्ट्राः', तथा सति ब्ट्रप्रवर्त्तितमन्त्रपूर्वकलात् यज्ञस्त्रेति ब्द्रार्षा यज्ञमुखलोपचारः । 'चतुर्विद्यः'* चतुस्रवारिंज्ञाष्टा-चलारिंगक्षेषु सोमेषु प्रथमलाचतुर्विंगस्य यज्ञस्य यज्ञमुखलम्।

त्रय सप्तमं मन्त्रं विनियुक्के,—"त्रादित्यानां भागोऽमीति द चिचनोऽसं वा त्रादित्या त्रन्नं महते।ऽसं गर्भा त्रन्नं पञ्च-विश्रेष्ठाऽसमेव दिचयते। धत्ते तसात् दिचयेगसमद्यते" (५। २।३% ०) इति।

"त्रादित्याकायते दृष्टिर्देष्टेरस्रं ततः प्रजाः"। (मनु०) इत्यस्रहेतुलाद। दित्यागामत्रलं। महतां वैश्वरूपलेगास्रम्यादक-त्वादन्नतं। गर्भाणामन्नकार्यतादनतं। पञ्चवित्रसोमस्य त्रास्तः **चिद्धान्न हेतुलाद न्नलम्**।

श्रय पञ्चमं मन्त्रं विनियुक्ते,—"श्रदित्ये भागाऽसीति पञ्चात् प्रतिष्ठा वा चदितिः प्रतिष्ठा पूषा प्रतिष्ठा चिणवः प्रतिष्टिती' (५।३।३४०) इति । 'श्रदितिः' भ्रमिः, सा च निवासच्छेतुलात् 'प्रतिष्ठा'। पूष्णः पेषकलेन प्रतिष्ठालं। त्रिणव-स्रोमस प्रास्तिसद्धं प्रतिष्ठातम्।

श्रथाष्ट्रमं मन्त्रं विनियुंको,—''देवस्य सवितुर्भागे।ऽसीत्युत्तरते। ब्रह्म वै देवः मितता ब्रह्म एइस्पतिब्रह्म चतुष्टामा ब्रह्मवर्चस-मेवान्तरता धन्ते तसादुन्तराऽर्द्धी ब्रह्मवर्षस्तरः साविचवती भवति प्रस्तयै तसार् ब्राह्मणानामुदीचो मनिः प्रस्ता" (५।३।

^{*} रक्सेव सर्वेत्र पाठः। चतुर्विभ्र-इति पाठो भवितुं युक्तः।

१ प्रः । प्रातः सन्धादे आह्य णैर्पास्तवात् स्वितः अद्भातं । रहस्यते आह्य प्रकातः । स्व प्रस्ति । स्व प्रे स्व व देवानां रहस्यतिः दित श्रुत्य न्याराद्व गस्यते । स्व रे । स्व

पूर्वानुवाकासाती सप्तद्याष्टादयम्कावितः पूर्वं न विनियुक्ती । तत्राष्टादयं मक्तं विनियुक्ते,—''धर्वस्तिष्टोम इति
पुरस्ताद्पदधाति यज्ञमुखं वै धर्षा यञ्चमुखं चतुष्टोमो
यज्ञमुखमेव पुरस्तादियातयित" (५।३।३%०) इति । 'धर्यः'
(धार्थिता) 'श्रियष्टोमः', स च चामयागानां प्रथमभावित्तात्
यज्ञमुखं' । 'चतुष्टोमः' तस्य यज्ञभृतिचद्दाद्यात्मकत्वात् 'यज्ञमुख्लम्' ।

त्रय प्रकृतानुवाकगतं नवमं मन्त्रं विनियुक्ते,—"यावानां भागे। उपीति द्विणता माषा वै यावा त्रर्जुमामा त्रयावाः तसाद्विणावता माषा त्रसं वै यावा त्रसं प्रजा त्रस्ति। द्विणता धत्ते तसात् द्विणेनासमद्यते" (५ १ १ २ प ०) इति। गोस्रोकस्य प्राद्विण्येष सञ्चरता त्रादित्येन समाद्यतास्मासमां .इचिषादर्भ। यावच्छन्दवाच्यानां माषानां कासाङ्गाणामस्रपाक-चितुलादस्रलं। प्रजानामस्रभोकृलादस्रलम्।

यय दब्रमं मन्त्रं विनियुक्ते,—"स्था भागीऽधीति पद्मात् प्रतिष्ठित्वै" (५।६।२४०) इति । देवानामनुपास्कलेन प्रतिष्ठा-हेतुमम ।

भय पूर्वामुवाकगतं सप्तदमं मन्तं विनियुक्ते,—"विवर्ताः श्राप्तारिश्रम द्रत्युक्तरते। उनयोक्षींकयोः स्वीर्यंताय तस्मादिमे। स्रोक्ती समावदीयाँ।" (१।३।३ भ०) दति । स्रोमानां सभ्ये 'श्रष्टाचलारिंग्रः' स्रोमः सर्वे। मनः, तते। अथिक स्रोमस्राभावात्, मनुष्यस्रोके दिशां मध्ये विन्ध्यादुक्तरा दिक् उक्तमाः भव सक्तमद्रसमेसनेन मनुष्यस्रोको वीर्यवान् सम्पन्नः । स्रमस्र स्रोक्तनेन मनुष्यस्रोको वीर्यवान् सम्पन्नः । स्रमस्र स्रोक्तनेन मनुष्यस्रोको वीर्यवान् एवस् सति उभयोः 'स्रोक्तस्य देवाधिष्ठितलात् वीर्यवन्तं प्रसिद्धम् । एवस्र सति उभयोः 'स्रोक्तयोः' समानवीर्यलं भवति । यस्रादेवं मनुष्यस्रोकस्य वीर्यवन्तं समादितं, 'तस्रात्' 'दमीः' 'स्रोक्ताः' 'समावदीर्याः' ; मनुष्यस्रोकः पृष्णानुष्ठानिष्पादनेन वीर्यवानिति समलम्।

श्रुवाकदयेन वक्रलेके। पहितानाम् इष्टकानां मध्ये एकेकि खां दिश्चि या उपहितासाः सर्वा दिग्विश्रेषे। पिश्चा संग्रह्म प्रश्नंसित,—"यस मुख्यक्तोः पुरस्तादुपधीयन्ते मुख्य एव भवति श्रा श्रुख्य मुख्ये। जायते यसास्रवतीर्देषिणते। उत्ति श्रुसम् श्रा श्रुखा-स्रादे। जायते यसा प्रतिष्ठावतीः पश्चात् प्रश्चेव तिष्ठति यस्था-जस्ततीक्तरत श्रीजस्तेयव भवति श्रा श्रुष्टी। जायते" (५।३।३श०) इति । मुख्यलेन पूर्वे। क्रेष्ट्र श्रुष्टवादेषु स्तुता इष्टका 'मुख्यवत्यः'। तार्षा पूर्वेखां दिष्णुपधानेन खवं 'मुख्यो' भवति, खपुष्य 'मुख्यो' 'जायते'। प्रम्नलेन खता रहका प्रम्नवत्यः। त्यात् रिष्णुपधानेन खयं पुष्याम्ववन्ते। सम्बोते। प्रतिहालेन खता रहकाः प्रतिहालत्यः। तार्षा पश्चिमार्षा दिष्णुपधानेन प्रतिहितो भवति। चेव्यस्तेन खता रहका चेव-खत्यः। ताषामुक्तरखां दिष्णुपधानेन खयं पुष्योजस्तिने। भवतः।

वक्कतेन थोऽयमुपधानप्रकारोऽभिहितः तसेतं सोवक्रस्यक्तिन प्रमंति,—"चर्की वा एव धर्मिस्स्येतदेव सोवसेत्रक्तं यदेवा विधा विधीयतेऽर्के एव तदक्यंमनुविधीयते" (५।१।१६०) इति । यः 'त्रमः' त्रस्ति, स 'एव' 'चर्कः' (चर्चनीयः), तस्य सर्वनाक्रसेन सोवक्रसे त्रपेत्ति, तथा यति थे।ऽयं वक्कतेनोप-धानप्रकारोऽभिहितः, तबेकेनानुवाकेनोक्तं 'स्रोत्रम्,' इतरेषानु-वाकेनोक्तं 'क्रसं'। एवं यति त्रचंनीये वक्की एवार्चनयोग्यमनुष्ठानं क्रमेण सन्यादितं भवति ।

एतर्नुष्ठानं तहेर्नस् प्रशंधित,—"सम्बद्धम् सा स्रक्षास्तादे। बायते यखीवां विधा विधीयते य उ चैनामेवं वेद" (५।३। ३ स.॰) इति। 'एनां' विधाम्।

श्रव विनियागसंग्रहः,—

चन्ने, त्रिष्टा दत्रादधाद्यवाक्रीमयञ्ज्ञका रति।

इति सायनाचार्यावर्षिते माधवीये वेदार्घप्रकामे क्रणायजुः-वंदिताभासे चतुर्थकाच्छे हतीयप्रपाठके नवसाऽनुवाकः॥ •॥ रक्षयाऽस्तुवत प्रजा अधीयन प्रजापितरिधिपति-रासीत्^(१) ति्स्तिभिरस्तुवत ब्रह्मासच्यत् ब्रह्मास्यत्-रिधपतिरासीत्^(१) प्रचिभरस्तुवत भूतान्धसच्यन्तः भूतानां पतिरिधिपतिरासीत्^(१) स्प्तिभिरस्तुवत सप्तर्ष-योऽस्टच्यन्त धाताऽधिपतिरासीत्^(१) न्वभिरस्तुवत पितरीऽस्टच्यन्तादितिरिधिपत्यासीत्^(१) एकाद्यभिर-स्तुवत्त्वेवाऽस्टच्यन्तात्वे।ऽधिपतिरासीत्^(१) चयाद्य-भिरस्तुवत् मासी अस्टच्यन्त संवत्सरे।ऽधिपतिः ॥ १॥

श्रासीत् (१) पृच्द्शिभरस्तुवत श्रुचमेस् ज्यन्ते द्रो-ऽधिपतिरासीत् (६) सप्तद्रशभरस्तुवत पृश्वे। स्ट ज्यन्त रहस्यित् रिधेपतिरासीत् (१), न्वद्शिभरस्तुवत श्रुद्रा-यावेस्ट ज्येतामहोर्षे श्रिधेपत्नी श्रास्ताम् (१९) स्के विश्-श्रात्मास्तुवति केशकाः पृश्वे। ऽस्ट ज्यन्त वर्षे। ऽधिपति-रासीत् (१९) चये। विश्शत्यास्तुवत श्रुद्राः पृश्वे। ऽस्ट ज्यन्त पृषाधिपतिरासीत् (१९) पच्चे विश्शत्यास्तुवतार् स्थाः पृश्वे। ऽस्ट ज्यन्त वायुर्धिपतिरासीत् (१९) स्प्तविश्शत्यास्तुवतार् स्थाः पृश्वे। उस्ट ज्यन्त वायुर्धिपतिरासीत् (१९) स्प्तविश्शत्यास्तुवत द्यावे। पृश्वे। वि॥ २॥

युतां वर्तवा बुद्दा चादित्या चनु व्यायन् तेषामा-धिपत्यमासीत् (१४) नववि श्यत्यास्तुवत् वनुस्पत्ये वाऽसः-ज्यन्तु सोमोऽधिपतिरासीत् (१५) एकं विश्यतास्तुवत प्रजा श्रंसच्यन्त यावानान्वायावानान्वाधिपत्यमासीत् (१९) चर्यस्त्रिः शतान्तुवत भूतान्यंशाम्यन् प्रजापंतिः पर्मे-ष्यधिपतिरासीत् (१९) ॥ ३॥

संवृत्सुरें। दि । पर्चिषश्या ॥ १० ॥

इति तैतिरीयसंहितायां चतुर्थकाग्रडे तृतीयप्रपाठके दशमाऽनुवाकः॥•॥

वनमेऽनुवाके भविष्टा भद्यायासीमीया उत्ताः। भय इत्तमे स्टिमन्दाभिधेया दृष्टका उच्चने। कन्यः, 'एकयाऽस्वतेति सत्तम स्टोः' दति। पाठस्,—"एकयाऽस्वत प्रजा भधीयना प्रजापित्रिधिपित्रासीत् तिस्भिरस्वत ब्रह्मास्च्यत ब्रह्माश्याति-द्धिपित्रासीत् पञ्चभिरस्वत स्तान्यस्च्यन्त स्तानां पति द्धिपित्रासीत् सत्तभिरस्वत सत्तर्थे।ऽस्च्यन्त धाताऽधिपित-दासीस्रवभिरस्वत पितरे।ऽस्च्यन्तादितिर्धिपत्यासीदेकाद्म-भिरस्वत स्त्ते।ऽस्च्यन्तातेव।ऽधिपित्रासीत् चयोदम्भिरस्वत मासा श्रस्च्यन्त संवत्यरे।ऽधिपित्रासीत् पञ्चदम्भिरस्वत स्वमस्च्यन्तेन्द्रोऽधिपित्रासीत् सत्तद्मभिरस्वत प्रवोऽस्च्यन्त दृष्ट्यित्रिधिपित्रासीस्वदम्भिरस्वत ग्रूटार्थे। श्रस्च्येतामहा-राचे श्रधिपत्नी श्रास्तामेकविश्रमत्यास्वतं खुद्राः प्रवोऽस्वचन्त वद्योऽधिपित्रासीत् वयोविश्रमत्यास्वतं खुद्राः प्रवोऽस्वचन्त्र पूर्वाऽधिपतिरासीत् पञ्चविश्रमत्वास्त्रकत चारखाः पत्रवेाऽसञ्चन वायुरिधपतिराचीत् सप्तविश्रमत्यास्तुकत यावाष्ट्रियवी वि एतां क्यवे। इद्रा त्रादित्या त्रनु वि त्रायन् तेवामाधिपत्यमासोस्रवः विश्वात्या अस्तुवत वनसातयोऽस्रव्यमा सामाऽधिपतिरासीदेव-चिट्रवतास्तवत प्रवा प्रस्वाम यावानाञ्चायावानाञ्चाधिपत्मा-बीत् चयक्तिः वतास्त्वत भूतान्यवास्यव् प्रजापितः पर्मेष्टो प्रधि-पतिरासीत्^(१-१०)" दति। पूर्वे मद्येयः कदाचित् यागकाले 'एकया' कोचियया ऋषा खतिमकुर्वम्, तत्मामर्थात् 'प्रजाः' 'ऋधीयना' (तै: महर्षिभि: खद्पायना); तदानी 'प्रजापितः' तासां, प्रजानां 'त्रिधिपतिरासीत्'। त्रय कदाचित् 'तिस्रिभः' स्रोचियाभिः 'ब्रस्तुवत', तत्सामर्थात् 'ब्रह्म' (ब्राह्मणजातिः) तैः 'श्रयःच्यतं'; 'ब्रह्मणस्यतिः' इति प्रसिद्धीः देवः, स ब्राष्ट्राणजातेः 'श्रिधपति-रासीत्'। एवं सर्वेच थाज्यम्। 'भूतानां पतिः' कश्चि देवविशेषः। श्रत एवान्य नास्रातम्, 'भ्रतानां पतये खादा' इति । चेाऽयमन 'स्रतानां पतिः 'त्रिधिपतिः' ⁽खामी) 'त्रासोत्' । 'धाता' जगत्-छष्टा। 'ऋदितिः' भूमिः। 'श्रार्त्तवः' ऋतुपासकः कश्चिद्देव-विश्रेषः। 'चर्ष' चिषयजातिः। श्रूदः वैष्ययेति जातिदयम्। श्रद्धैवता राविदेवता चेत्येते जातिदयस 'श्रधिपत्नी' (स्वामि-इपे) 'चासां'। यप्तविंवतिस्तीचसामधीत् पूर्वमेकोस्रते 'द्यावा-पृथियो। परसारं वियुक्ते ऋसतां। तयार्वियागम् 'ऋनु' वस्ता-इयस्तथा गयाः परस्परं वियुक्ता श्वभवन्। 'तेषां' (वस्वादीनां) ्रचावाष्ट्रचिक्याः प्रति 'त्राधिपत्यम्' 'त्राबोत्'। 'यावाः' (मास-

देवताः)। 'श्रवादाः' (श्रद्धमासदेवताः), खभषविधदेवतानां प्रजाः प्रति 'श्राधिपत्यमासीत्'। 'भ्रतान्यज्ञास्तन्' (प्राचिनः श्रामान् खपद्रवरहितान् श्रक्षवंत)। परमे सत्यक्षेके तिष्ठतीति 'श्रकेष्ठी' तादृशः प्रजापतिः खामी श्रभृत्।

इतैर्मन्त्रेः साधमुपधानं विधन्ते,—"सृष्टीरपदधाति यथा-सृष्टमेवावरुत्रे" (५।३।३% ०) दति ।

श्रव विनियागसंग्रहः,—

एक, सप्तद्वाद्धादिष्टकाः स्ष्टिसञ्जिकाः ।

प्रथ मीमांसा, प्रथमाधायस चतुर्चपादे चिनितम् (प्र॰९७)।

"स्टीक्पद्धातीति चे मन्ताः स्टिसिक्निकाः। विश्वेयासे गुणलेन वादा वाच गुणो विश्वः॥ त्रास्त्रातेनाभिसम्बन्धादविश्वन्तरयोगतः। सिङ्गप्रकरणप्राप्तेमेन्त्राणां विश्वसभावात्॥ ताननू सेटकाधानं विद्धात् सोत्यते चतः। च्यास्टेत्यनेनातः स्टीरित्यच वादगीः॥ एकचाऽस्वतेत्यादे मन्त्रमङ्गः कविश्वदि। स्टिक्रस्स्याणुक्तिः स्टिक्नस्न भ्रमतः॥

श्रीययने श्रूयते, 'स्टोरपर्धाति' रति । स्टिशस्तेपेता मन्त्रा यासामिष्टकानाम् उपधाने विश्वने, ता रहकाः स्ट्य रत्युचन्ते, स्टिमान् श्रासामुपधाना मन्त्रः रति विस्त्य ''तदान् षायामुपधानः" (४।४।१ २५ स०) द्यादियाकरणिस्तुप्रक्रियया तिष्यादनात्। स्टिमन्दोपेतास्रोपधानमन्त्रा "एकषाऽस्तुवत" द्यस्मिन्नन्वाके समाधाताः, मन्नास्च्यत स्तात्यस्च्यन द्या-दिना स्वतिधातास्तेषु मन्तेषु प्रयुक्ततात्। ते च मन्ता प्रच स्टिमन्देन खपधाने गुणलेन विधीयन्ते। कुतः?। खपद्धाती-त्यनेनास्त्रातेन सन्त्यात्। न चार्थवादलमस्य सन्धवति, विध-न्तेन पर्वेकवाक्यताभावात्।

दति प्राप्ते ब्रूमः, — प्रशिषयन प्रकर्षे पठितलात् तेषां मन्त्राणां सामान्यत्ययनसम्भे गम्यते; विभेषसम्भेष स्जिति- लिक्वाद्वगम्बयः। तथा सित प्राप्तलाख ते मन्त्रा प्रव विभीयमे, किन्तु तान् मन्त्रानगूच दृष्टकोपधानं विधीयते। सिष्टि बन्देश नृताद्सु वन्त्रमाणां प्रवादे। यथा 'स्ष्ट- मेवावद्भे' दति हि वन्त्रमाणां प्रयादः। यदि विधिवाक्ये मन्त्राणामनुवादः सिष्ट बन्देश स्थात्, तदानी मर्थवादे सिष्ट बन्देश स्थात्, तदानी मर्थवादे सिष्ट बन्देश स्थात्, तदानी मर्थवादे सिष्ट बन्देश स्थात्। तस्यानामन्त्र वादी सिष्ट बन्देश स्थात्। तस्यानामन्त्र वादी सिष्ट बन्देश स्थात्। तस्यानामन्त्र प्रवाद प्रवाद स्थात्। तस्यानामन्त्र स्थात्। तथात्। वादं। तथापि दितीयहतीयादिषु स्थातिधातुप्रयोगात् सम्हप्य सर्वाणि वाक्यानि स्ष्टि बन्दे। तेषानि तन

^{*} वैय्यधिकरण्य इति सर्वेत्र पाठो न सम्यक्। वैयधिकरण्यभन इक्रम वैविधिकरण्यनेव स्थात् इति का॰ इ॰ पु॰ पाठः।

यथा इष्टिश्नमात्, तथाचापि श्रमगुणयोगेन स्वाद्धियके एष्टि-जन्दप्रयोगः॥"

इति सायनाचार्यविरचिते माधवीये वेदार्थप्रकामे छणायनुः-संदिताभाय्ये चतुर्थकाण्डे हतीयप्रपाठके दक्षमीऽनुवाकः॥०॥

् इयमेव सा या प्रयमा व्याच्छंद्रन्तर्स्यां चरति प्रविष्टा। व्धूर्णजान नव्गज्जनिष्टी षर्य एनां मिष्ट्-मानः सचन्ते()। छन्दंखती उपसा पेपिश्राने समानं योगिमनुं सम्बर्गन्ती। ह्यपिह्मी विचरतः प्रजानती केतुं केखाने श्रूजरे भूरिरेतसा()। स्ट्रतस्य पन्या-मनुं तिस श्रागुस्त्रया ध्मासो श्रनु श्रोतिषागुंः। प्रजानेका रक्षत्यूज्ञमेका॥ १॥

व्रतमेकी रक्षति देवयूनां । चतुष्टोमा श्रमवृद्धा तुरीया यज्ञस्य पृक्षाचेषया भवन्ती । गायची चिष्ठुभं जर्गतीमनुष्ठुभं दृष्टद्कें युञ्जानाः सुव्राभरिवदं । पृच्छिम्धाता विद्धाविदं यत्तासा स्वस्टृरजनयुत् पञ्च पञ्च । तासीमु यन्ति प्रयुवेण पञ्च नानाकृपाणि कर्तवो वसीनाः । चिर्श्यास्वसीर उपयन्ति निष्कृतः समानं केतुं प्रतिमुज्यमीनाः ॥ २॥ चहुतंस्तंस्वते कवयः प्रजानतीर्मधे इन्द्रमः परि यन्ति भास्तंतीः (१) । ज्योतिषाती प्रतिमुचते नभेा राची देवो स्वर्थस्य वृतानि । वि पंष्यन्ति पृष्णवे। जाये-माना नानारूपा मातुरस्या उपस्थे (१) । यृकाष्ट्रका तपसा तप्यमाना ज्ञान गर्भे मिहमानुमिन्द्रं । तेन् दस्यून् व्यसदन्त देवा इन्ताऽस्रेराणामभव्षक्वीभिः (६) । श्रानानुजामनुजां मामकर्त सत्यं वदन्यन्विष्ठ एतत् भूयासं ॥ ३॥

श्रुख्य सुमृता यथा यूयम्न्या वे श्रुत्यामित मा प्रयुक्त () श्रुत्ममं सुमृता विश्ववदा श्राष्ट्रं प्रतिष्ठा-मविद्वि गाधं। भूयासमस्य सुमृता यथा यूयम्न्या वे श्रुत्यामित मा प्रयुक्त (())। पश्च ब्युष्ट्रीरनु पश्च दे हा गां पश्चनामी स्तवे। पश्च दिशः पश्चद्शेने स्नृप्ताः संमानमू ब्रीर्भि खोक्नेक (())॥ ४॥

ऋतस्य गर्भः प्रथमा व्यूष्ट्यपामेक् । महिमानं बि-भित्तं। स्वर्यस्यैका चरित निष्कृतेषु घुमस्यैका सिव्-तैकां निर्यच्छिति (११)। या प्रथमा व्याच्छित् सा धुनुर्र भवद्यमे। सा नः पर्यस्वती धुन्तोत्तरामृतराः समीं (१९)। युक्किया नर्भसा च्योतिषाऽगाद् विश्वक्षेषा शवुची-रिप्रकेतः। सुमानमर्थः स्वप्स्यमाना विश्वती ज्रा- मंजर उष् श्रागीः(१३) । कृतूनां पत्नी, प्रयमेयमागा-दक्षी मेची जीन्ची प्रजानीं । स्की स्ती बहुधाषे। ब्रुक्सिजीसा त्वं जरयसि संवैमुन्यत्(१६) ॥ ५॥

उर्जुमेको । प्रतिमुच्चमीमा । भूयास्म् । एकु । पत्नी । एकोनिविं श्यातिर्यं ॥ ११ ॥

इति तैत्तिरीयसंदितायां चतुर्थकाएढे तृतीय-प्रपाठके एकाद्ग्राऽनुवाकः ॥ ॰ ॥

द्वनेऽनुवाने दृष्टिनामका रष्टका मन्ताः छकाः। चयैका-द्वे खुष्टिनामका छच्चने। कचः, 'र्यमेव सा वा प्रयमा द्वी ख्रिति वोष्ट्व खुष्टीः' रित । तन प्रथमामाइ,—"र्यमेव सा या प्रयमा खोष्ट्यर नरस्वां चरित प्रविष्ठा । वधूर्वजान नवनकानिनी नय एनां मिर्डमानः मचनो(१)" रित । प्रनीप-धीयमाना 'या' रष्टकासि, 'र्यमेव' 'सा' (तथाविधयुष्टिरूपा, तद्धद्देन पराम्ह्यमाना पुनर्विविच्यते), सेयं खुष्टिरूपा काखानां प्रयमश्रता सतो 'खोष्ट्रत्' (वित्रेषेष प्रकात्र स्पाऽश्वत्) । चादिस्प्रिकासी प्रथमा यः प्रभातकासः तद्रूपेयिनिष्ठकेत्यर्थः। 'सा' (स्प्रिकासीना) 'प्रथमा' खुष्टिरादित्येनानु'प्रविष्ठा' सती 'त्रस्वां' (प्रथियां) दैनन्दिनप्रभातरूपेष 'चरित'। तन दृष्टाकाः, 'बधूर्णकान नवनव्यनिनी' (नवं वरं गच्छतीति) 'नवनन्' (नूतन- विवादनती) 'वधूः' 'वनिषो' (उत्तरोत्तरप्रवेतत्वादिका) 'वजान' (जाता), तदद्यमपि चुष्टिदत्तरोत्तरप्रभातिनच्यादिकेत्वर्धः । 'चवः' (चिषञ्चाकाः) 'महिमानः' (महिमोपेताः) चिष्ठसर्वचन्द्रह्मपा देक्ता 'एनां' (खुष्टं) 'सचन्ने' (समवयिना)। देवतात्रयप्रकात्र-कानुग्रह्मद्भाः प्रभातह्मप्रकार्यः। एवंविधां खुष्टिह्मपा-मिष्टकामुग्रद्धामीत्वभिप्रायः।

यथ दितोयामा इ,—''क्रन्दसती खवसा पेपिताने समानं यो निम्नु सस्ता। सर्यप्रकी विचरतः प्रजानती केतं छखाने सबरे अरिरेतसा(१)'' इति । दे श्रुपमी,—एका स्विकासीना, 'प्रयमा' इति पूर्वमन्त्रीकाः सपरा प्रतिदिनसञ्चारिषीः सापि 'श्रयां परित प्रविष्ठा' इति पूर्वमन्त्रीकाः। एवं सती 'खवस' 'विचरतः' (दे श्रयुपसी विविधं परतः); राचाविष प्रस्यकासे तिरोदितजनत शाबिभावसम्बद्धिस्पा सती दिवससादृष्ण-मापादयित, तदिदमेकसां परसम्, बार्वरतमोनिवर्णकमपरसां परसम्, बार्वरतमोनिवर्णकमपरसां परसम्, बार्वरतमोनिवर्णकमपरसां परसम्, बार्वरतमोनिवर्णकमपरसां परसम्, कार्यरतमोनिवर्णकमपरसां परसम्, कार्यरतमोनिवर्णकमपरसां परसम्, कार्यरतमोनिवर्णकमपरसां परसम्, कार्यरतमोनिवर्णकमपरसां स्वाविष्ठपं प्रसान स्वाविष्ठपं प्रसान स्वविष्ठपं कार्यप्रभातं स्वविद्यां चेत्रुपीः समानः,—महाप्रभातं स्वविद्यां कार्यप्रभातं स्वविद्यां चेत्रुपीः कार्यविद्योगः, ते। स्वकीयं कर्यप्रभातं देवन्दिनं चेत्रुपीः कार्यविद्येषाः, ते। स्वकीयं

^{*} खर्वविधनिति सर्वत्र पाठा न सम्बक्।

^{† &#}x27;सच्चमभातं इन्हिन्यन्तव्यवभातम्' हति दाः इ॰ पु॰ सर्व B. पु॰ पाठः। वन्तुतः 'मच्चामभातं दृष्टिक्यम्, व्यव्यवभातम्' हति साठे। भवितुं युक्तः।

कालवामान्यम् 'त्रम्'-एत्य वर्त्तते रित 'त्रम्'-यस्रक्ती उवसी;
ते च 'स्वर्यपत्नी' (स्वयं स्व जाये); 'प्रजानती' (स्वयं देवतारूपलेन प्रज्ञानवत्यी); 'के तुं' 'छ खाने' (ज्ञानं खुर्वन्ती),
प्रकाषप्रदानेन दि प्राणिनां रूपज्ञानं जनयन्तः); 'त्रजरे'
(कदाचिदपि जरारदिते); 'श्रुरिरेतया' (प्रश्वतरेतस्के) बद्धयापारकार्णश्चते दत्यर्थः।

श्रथ हतीयामाइ,—''स्तस्य पन्यामनु तिस्व शारगुस्तयो धर्मासे श्रमु श्रोतिषाऽऽगुः। प्रवामेका रचत्यूर्णमेका व्रतमेका रचति देवयूनाम्(१)" इति । 'तिस्वः' खष्यः 'स्वतस्य' (यञ्चस्य) 'पन्यां' (मार्गम्) 'त्रनु'-'श्रा'-'श्रगु' (श्रमुप्राप्ताः) यञ्चरचक्रतेन धक्ता खबस्तिता इत्यर्थः। 'चये। धर्मासः' (दीप्तिरूपाः) श्रवि-चन्द्रादित्याः 'श्रोतिषा' (प्रकाशदानेन यञ्चमार्गम्) 'श्रनु'-'श्रा'-'श्रगः' (श्रमुप्राप्ताः)। तिस्रणामुष्यां देवीनां मध्ये यञ्जमानस्य 'प्रजामेका' 'रचिति'; यञ्जमानस्य 'ज्ञे' (बस्रम्) 'एका' 'रचित'; देवान् श्रात्मन इत्स्कृतां यञ्जमानानां 'व्रतं' (कर्मानुष्ठानम्) 'एका' 'रचित'।

श्रध चतुर्थीमारु,—''चतुरोमो श्रभवद् या तुरीया यश्रस पचायवयो भवन्तो। गायत्री चिष्टुमं अगतीमनुष्टुमं वहदके युद्धानाः सुतराभरित्रदम्(")" इति। यधयेकैव उवा, तथापि जगद्रचषाय योगैस्यीदनेकश्ररीरस्वीकारे स्ति बहद उवसे भवन्ति। तत्र 'या' 'तुरीया' (चतुर्थी), सा च उवा 'चतुरोमः' (चिर्दादिस्तोमचतुर्थयुक्ताग्रिष्टोमकतुरूपः) 'श्रभवत्'।को दृशी?—

'चन्नस्य' 'पची' (प्राच्यप्रतीच्याक्षस्या पचनकृत्री दाववयते।) 'भवन्ती' (भावयन्ती) सभावयन्तीत्यर्थः, तथा 'खवयः' (खवीन् धन्निच्याद्कान् खिल्जः) जनयन्तीः, तथा 'टइदके' (प्राद-भर्चनारूपं स्तापं) 'युच्चानाः' (सन्यादयन्ती)ः, गायच्यादिदेवता-खतसः, 'स्रवः' (फलभृतं खर्गम्), 'इदं' कर्म च 'शाभरन्' (सर्वते। इरन्ती) प्रावयन्तीत्यर्थः।

षय पश्चमीमाष,—"पश्चभिधीता विद्धाविदं यशासार सस्रजनयत् पञ्च-पञ्च। तासामु चिना प्रथवेष पञ्च नाना-कपाचि कतवा वसामा:(1)" इति । 'यत्' 'इदं' ऋस्ति तसर्वे 'धाता' (खष्टा प्रजापितः) 'पश्चभिः' खवे।भिर्देवीभिः 'विद्धाे' (निर्मित-वान्)। 'तासां' (पञ्चानामृषयां) प्रत्येकं 'पञ्च'-'पञ्च' 'खर्-रजनयत्'। एवस सति पश्चमञ्चाका व्येष्टा उपसः, तार्मा स्वसारः पञ्चवित्रतिसङ्गाका इत्येकसिन् मासि प्रतिपदादिरूपाव्यित्रदुषसः सम्बद्धको । 'तासामु' (तासामपि) खवसां 'प्रथवेष' (प्रकृष्टक्षेत्र मित्रणेन) 'पच' मुख्या उषयः 'क्रतवः' (क्रतुनिव्यादिकाः), (म्राच्हादयन्थः, क्रलङ्गानि सर्वाणि व्याप्नवन्धः), 'नानारूपाषि' (बङ्घविधस्ररूपाषि) 'चिना' (प्राप्नुविना)। तर्वेका दिनं दिनम् श्रमिक्राचं निष्यादयति; तते। दे दर्भपूर्णमासा निम्पादयतः; चै।पवसम्यदिनक्रत्यम् एका निम्पादयति; सुत्या-दिनक्रत्यमेकेत्वेत्रं पञ्चानामुपयोगात् प्रकष्टमित्रणानाः प्रकष्टोपः कारिलं, क्रववानारभेदनिष्पादकलेन । नानारूपत्रम्।

भक्तकसिखंशानं। सिति कवित्पाठः।

[†] वान्तरिक्यादकालेन इति B. एवं का॰ इ॰ पु॰ पाठः।

चव वडीमार,—"विश्वत् सवार उपयन्ति निक्कृतः समानं केतुं प्रतिमुखमानाः। ऋतुः सन्ति कववः प्रजानतीर्मधेक्न्द्रसः परि यन्ति भासतीः^(६)'' इति । 'चित्रत्' (मार्यातचिक्येष विंबसम्बाकाः) 'खवारः' (अगिन्यः) उववा देखा 'निव्कृतम्' (चत्रसं छतम्°) पश्चिहाचादिकर्म 'खपद्यन्ति' (प्राप्नुवन्ति) । की दृष्तः ?—'समानं केतुं' (सदुत्रं चिक्रं) प्रकात्रक्षं 'प्रति-मुखमानाः' (क्युक्वद्वारयन्यः); ताख 'क्ववः' (विद्वसमानाः); 'प्रजानतीः' (तत्तह्नसम्पादनीयं प्रजानन्यः); 'च्छंसन्यते' (खयमेव पुनःपुनरावक्तंनेन वसनादीन् चळन् सन्यादयन्ति); इन्दर्भा वेदानां मध्ये तिष्ठतीति 'मध्येक्न्दाः' सूर्यः ; तचा चान्यचाचायते, 'च्हासाः पूर्वाक्रे दिवि देव ईयते। वर्जुर्वेदे तिष्ठति मध्येत्रकः। सामवेदेगासमये महीयते। वेदेरप्रद्रकः क्लिभिरेति सर्वः' इति । तस 'मधेइन्द्रमः' (सर्वस्र) 'परि' (पार्चेषु) 'भाखतोः' (भाक्सत्यः प्रकात्रमानाः) 'द्यन्ति' (मञ्ज्ञानाः) वर्त्तने रत्वर्धः।

त्रथ यप्तमीमाइ,—''न्येतिशती प्रतिमुश्चते नभी राची देवी सर्थस नतानि। विपश्चित्त पत्रवी जायमाना नानाह्मपा मातु-रस्ता उपसे^(९)" इति। सेयमुषा 'न्येतिशती' (न्येतिहर्पर्नचने-र्युन्तवात्); 'राची' चेयं, सर्वेदियात् पूर्वभावितात्; 'देवी' दीणमाना; तादृगुषा 'नभः' (नभस्च[?]) 'सर्वस' 'नतानि' (सर्वसनिभत्नेन नतवित्रयतानि) रश्चित्रास्तानि 'प्रति'-'मुश्चते'

^{*} चत्रचं क्रतमिवि याठः का॰ इ॰ मुंत्रको नाकि।

(कशुकि मिव खीकरे। ति)। तथामुषि 'नानाक्ष्पाः' (गीमहिषादि-जातिभेदिभिकाः) 'पत्रवः' 'नाषमानाः' (जकावदृष्टं निद्रायाः प्रदेशेषं प्राप्त्रवन्तः); 'मातः' (माद्रयमानायाः) 'श्रखाः' भूम्बा 'उपसे' (जस्त्रेष्ट्र) प्रमानि (विविधमरद्यममनादिष्यवदारमन-स्रोकथिका)।

त्रवाष्ट्रमीमाइ,—''एकाष्ट्रका तपमा तप्यमाना जजान गर्भे महिमानमिन्हं। तेन दखून् व्यम्हन्त देवाः हन्ताऽसुराषामभवक्षिमीभः (क्ष्णे) इति। 'एकाष्ट्रका' इति माघलकाष्ट्रमी कव्यते,
तथा चापस्तमः, 'या माध्याः पाष्ट्रमाखा छपरिष्टात् ब्रुष्टका
तखामष्ट्रमी व्यष्ट्रया यन्यचते तामेवेष्टकेत्याच्यते' इति। येथम्
'एकाष्ट्रका' 'तपमा तप्यमाना' (पुचार्थं तपस्रक्ती) 'महिमानं'
(महिमेग्पेतं) 'गर्भे' (खोदरवर्ष्णां) 'इन्हं' 'जजान' (खत्यादवामाध), 'तेन' (इन्हेष) 'देवाः' यर्वे 'दस्त्रृन्' (तस्करक्ष्णान्
राष्ट्रयान्) 'व्यस्का'(विश्लेवेषाभिभृतवन्तः)। य चेन्हः 'प्रचीभिः'
(स्वकीयप्रक्रिभिः) 'प्रसुराष्ट्रां' 'इन्ता' 'प्रभवत्'।

षय नवसीमाइ,—''धनानुजामनुजां मामकर्त्त यहां वद-नविष्ट एतत्। श्रवासमस्य सुमते। यथा यूयमन्या देश प्रन्यामित मा प्रयुक्त^(८)'' इति। हे एकाष्टका देशो, 'मां' षजमानं पूर्वम् 'प्रनानुजां' सन्तम् इदानीं 'प्रनुजां' 'प्रकर्त्त' (ज्ञतवह्यः)। 'त्रा' (समन्तात्) कर्मानुष्ठानस्थानुकूलक्षेत्र जायत इति 'प्रनुजा', तिहपरीतस्त 'प्रनानुजाः'; प्रमुष्ठानर्हितं 'मां' प्रमु-

^{*} रवसेव सर्वेत्र पाठः। वि-पक्षाना इति पाठकु भवितुं बुक्तः।

चव वडीमाइ,—"विश्वत् सवार उपयन्ति निम्नुतः वनानं केतुं प्रतिमुखमानाः। ऋद्वश्रसन्तरे कवषः प्रजानतीर्मधेकस्दद्यः परि वन्ति भाखतीः(())' इति । 'वित्रत्' (मार्वतिचिक्षेष निंबस्यक्काकाः) 'खसारः' (भगिन्यः) उपका देथी 'निव्युतम्' (चनचं कतम्*) चन्निहाचादिकर्म 'खपचिना' (प्राप्नुविना) । की दुष्तः ?—'समानं केतुं' (सदुत्रं चिक्रं) प्रकात्रक्षं 'प्रति-मुखमानाः' (क्षय् कवद्वारचन्यः); ताख 'क्षयः' (विद्रसमानाः); 'प्रजानतीः' (तत्तदिनसन्पादनीयं प्रजानन्यः) ; 'ख्वं सन्पते' (स्वयमेव पुनःपुनरावर्त्तनेन वसनादीन् स्वतन् बन्पादयन्ति); ब्रन्दर्श वेदानां मध्ये तिष्ठतीति 'मध्येक्न्दाः' सर्वः ; तथा चान्यचाचायते, 'च्हिंभः पूर्वाञ्चे दिवि देव ईयते। यजुर्वेदे तिष्ठति मध्येत्रकः। सामवेदेगासमये मशीयते। वेदैरग्रह्न-क्लिभिरेति सूर्वः' इति । तक 'मधेइन्द्रः' (सूर्यक्) 'परि' (पार्चेषु) 'भाखती:' (भाषाय: प्रकात्रमाना:) 'यन्ति' (मन्दन्ति) वर्त्तने रत्यर्थः।

श्रथ यप्तमीमाच,—"कोतियती प्रतिमुखते नभी राची देवी सर्थय जतानि । वि प्रकृति प्रवी जायमाना नाना हपा मातु-रसा उपसे(°)" रित । वेयमुषा 'कोतियती' (कोती हपैनं चने-र्युक्तलात्) ; 'राची' चेयं, सर्थी द्यात् पूर्वभावितात् ; 'देवी' दीषमाना ; तादृगुषा 'नभः' (नभस्य[?]) 'सर्थस्य' 'जतानि' (सर्थयनिभलेन जतविज्ञवतानि) रिक्या जासानि 'प्रति'-'मुखते'

^{*} व्यत्रवं व्रतमिवि याठः का॰ इ॰ मुंकाके नाकि।

(कब्रुकिमिव खीकरे।ित)। तथामुविष 'नानाक्ष्पाः' (गोमहिवादि-जातिभेदिभिकाः) 'पत्रवः' 'नावमानाः' (जक्षवदृष्टं निद्रावाः प्रवेषिं प्राप्नुवन्तः); 'मातः' (माह्यमानावाः) 'चयाः' भूमा 'उपसे' (उत्पन्ने) प्रमन्ति (विविधमरद्यममनादिव्यवदारमन-स्रोकथिका)।

श्रवाष्ट्रमीमाइ,—''एकाष्ट्रका तपया तप्यमाना जजान गर्भे महिमानमिन्हं। तेन दखून् व्ययहमा देवाः हन्ताऽसुराषामभव-व्यविभः(ट)" इति। 'एकाष्ट्रका' इति माच्छव्याष्ट्रमी कव्यते, तथा चापसामः, 'या माच्याः पीर्ष्माच्या छपरिष्टात् ब्रुष्टका तक्यामष्टमी व्येष्टया यम्पद्यते तामेवेष्टकेत्याच्यते' इति। चेयम् 'एकाष्टका' 'तपया तप्यमाना' (पुचार्थं तपस्यम्मी) 'महिमानं' (महिमापेतं) 'गर्भ' (स्नोदरवर्त्तानं) 'इन्हं' 'जजान' (खत्याद-वामाय), 'तेभ' (इन्हें क्ष) 'देवाः' यर्वे 'दक्ष्ट्रम्' (मस्करक्ष्पान् राच्यान्) 'व्ययहमा' (विश्ववेषाभिभृतवन्तः)। य चेन्हः 'श्रवीभिः' (स्वकीयश्रक्तिभः) 'श्रसुराष्ट्रां' 'इन्ता' 'श्रभवत्'।

षय नवसीमाइ,—''धनानुजासनुजो सासकर्त्त यहां वद-नवन्तिष्क एतत्। अधायसय सुमते। यथा यूयमन्या वे। प्रन्यामित मा प्रयुक्त(८)'' इति। हे एकाष्टका देखी, 'मां' यजमानं पूर्वम् 'धनानुजां' यन्तम् इदानीं 'प्रनुजां' 'प्रकर्त्त' (ज्ञतवह्यः)। 'त्रा' (समनात्) कमीनुष्ठानस्थानुकूलक्षेत्र जायत इति 'प्रमुजा', तिहपरीतस्त 'त्रनानुजाः'; प्रमुष्ठानर्हतं 'मां' प्रमु-

^{*} रवसेव सर्वेत्र पाठः। वि-पक्षाना इति पाठकु भवितुं बुक्तः।

हाने। पेतं क्रतवत्य दत्यर्थः । कोदृष्ण एकाष्टकाः?—'सत्यं वदक्ताः' (त्रवितयं धर्मे वदक्यः) हे यजमान, एवमेतं धर्ममनृतिष्ठेत्येवं वे। धयक्य दत्यर्थः । धतस्त्रप्रसदात् सम्प्रागृहित्तरहम् 'एतत्' 'प्रत्य्के' (वद्यमाणमेतत् प्रपेणितं प्रार्थये)। किक्तदपेणितमिति?—तदुष्यते, हे एकाष्टकाः, 'यूयम्' 'प्रस्थ' (युप्तत्पुत्रस्थ) दक्रस्य 'समते।' (कस्त्राधनुद्धे।) 'यथा' खिताः, एवमहमपि 'प्रस्थ' (दक्रस्थ) 'समते।' अनुग्रहणित्ते 'भ्रयायं'। 'वः' (युप्ताकं) मध्ये 'प्रन्यां' (दत्तरां) 'प्रति'-लङ्गु 'मा प्रयुक्त' (प्रयोगस्यवहारं न करे।ति) किक्तु परस्वरानुक्रस्थेनैव स्थवहरक्ता 'भ्रयायम्'।

चय दमनीमाइ,—"चभ्रत्राम सुमते। विश्ववेदा शाष्ट्र
प्रतिष्ठामिवदद्धि गाधं। भ्रयासमस्य सुमते। यथा यूयमन्या वे।
सन्यामित मा प्रयुत्त(१०)" इति । 'मम' यजमानस्य 'सुमते।'
(भित्तयुक्तायां बुद्धे।) 'विश्ववेदाः' (सर्वजगदिभिन्ना) इयमुषा 'स्थ्रत्'
(स्थितवती)। सा च 'प्रतिष्ठां' 'श्राष्ट' (ऋस्वद्रनुपदे स्थेये स्थाप्तवती; 'हि' (यस्थात्) इयमुषा 'गाधं' (प्रतिष्ठानिमिन्तभूतं)
यजमानम् 'श्वविदत्' (स्थ्यवती), तस्थान्यद्रमुपदे स्थेयेवतीत्यर्थः।
भूयासिमत्यादि पूर्ववत्।

^{*} रवसेव सर्वत्र पाठः। वज्जतः'-'चन्धा' (इतरा) 'चन्धाम्' (इतराम्) 'चिति'-जङ्घ 'यघा' 'मा प्रयुक्त' (प्रयेशाखवद्यारं न करे।ति) किन्तु परस्परानृकूळोनेव खवद्यरिन' इति पाठे। अवितुं युक्तः।

अधैकादशीमाइ,—"पश्च खुष्टीरनु पश्च दे हा गां पश्च-नाचीस्टतवेाऽनु पञ्च। पञ्च दित्रः पञ्चदत्रेन क्रुप्ताः समान-मृद्गीरिभ खोकमेकम्^(१९)" इति । त्रग्निश्चाच-रर्शपूर्णमासीपवसथ्य-सुत्यास्त्रकर्भनिष्यादिकाः पद्म मुख्याः उपसा याः पूर्वमुक्ताः, तान्(?)'पञ्च खुष्टीरनु' पञ्चात्मकं सर्वमिदमुत्पन्नमिति । तदुच्चते— 'पञ्च दे । हा ' जत्मकाः,-तमिका च्योत्स्ता सन्ध्यादयम् प्रहरित्येते पश्च देश्याः। ते च देशचत्राद्वाणे, 'इदं वा चम्रे नैव किञ्चन त्रासीत्' इत्यनुवाके, 'यास्य सा तनूरासीत्। तामपाइत। सा र्तामसाऽभवत्' द्रत्यादिना समासाताः। तर्वेव, 'तेभ्वे। सृप्सये पाने अमुर्दत्' रत्यादिना दोषा श्रामाताः । श्रामाय पाने तद्पर्यं दतम्,—'एते वै प्रजापतेरी दाः' इति । एते 'पञ्च दोदाः' 'पञ्च खुष्टीरनु' उत्पन्नाः । येथं गाः (प्रचिवी), 'पञ्चनान्नीं' (पञ्च-विधनासे विवात्, अपि पश्च युष्टीरनूत्पन्नां विद्यात्, व्यक्तर्ती पुष्पवतीति नाम, गीमर्ने तापवतीति नाम, वर्षनी वृष्टिवतीति नाम, प्ररद्तीं " जखप्रसादवतीति नाम, देमनात्रित्रिर्योः प्रैत्य-वतीति नाम, सैव पञ्चनाची खुष्टीरमृत्यना । तथा हेमना-भिभिरयोरिकोन 'पश्च' 'ऋतवा' युष्टी: 'श्रनु' उत्पन्नाः । तथा प्राच्यादयः यद्रोर्द्धया 'पञ्च'दिशो' युष्टीरनृत्यन्नाः। पञ्चदशाख्य-सोमेन 'क्रृप्ताः' (समादिताः), पश्चविधवस्युपेताः स्रोवियाः पश्च

^{*} प्रदर्नी इति सर्वंत्र पाठः, प्रारद्नी इति प्ररहते। इति वा पाठे। भवितुं युक्तः। एवं दृष्टिवतीत्वत्र दृष्टिमतीति पाठे। भवितुं युक्तः। † वृष्टिरमुत्यक्ताः इति सर्वत्र पाठे। न सम्बन्।

गुष्टीरनृत्पन्नाः। तथा सोमस्य विधायने ब्राह्मके 'पञ्चन्वे। विद्युरेति' इत्येवं चिवारमाधातं। ता एताः पञ्च गुष्ट्यः। 'एकं' 'लेकम्' 'श्रिभ' 'समानमूर्द्वीः',—'लेकः' श्राक्षोकः प्रकातः, तमेकं प्रति समानस्वभावाः। मूर्द्वत्रक्ष्यं अत्तमाङ्गवाची सन् मुख्यं स्वभावमुपलचयित। मुख्यसभावञ्च श्रुष्टीनां प्रकात्रलं। एवं-विधव् ष्टिक्पेयमिष्टकेति ख्यते।

त्रथ दादक्रीमाइ,—''श्वतस्त गर्भः प्रथमा खूष्यपानेका महिमानं विभक्ति। स्वर्यस्तित परित निष्कृतेषु घर्मस्तिका सिनिकां नियन्स्वित (१९)" रित। या एताः पूर्वेतकाः पञ्चीषचे मुख्याः, तायां मध्ये 'प्रथमा' या खुष्टिक्यःकासन्सपाऽस्ति, सा 'श्वतस्य' (सत्यस्थ) 'गर्भः' (गर्भयदृत्री) तेन जादित्येन सदैव वर्णते। 'एका' काचिद्याः रिक्षयहकारिणी 'त्रपी' 'महिमानं' 'विभक्तिं' (धर्मकासे रिक्षादारा जसमानीय मेघोदरे गर्भ-स्पत्तं भक्तं पोषयति)। 'एका' काचिद्या एषाः 'स्वर्यस्य' सम्बन्धिषु 'निस्कृतेषु' प्रदेत्रेषु 'चरित' (प्रकात्रं कुर्वती वर्णते)। 'एका' काचिद्या प्रग्नः सम्बन्धिषु 'चरित' (प्रकात्रं करेति)। 'एका' काचिद्यामुष्यं 'स्विता' 'नियन्स्वति' (दैनिस्त्नं प्रकाशकारिलेन नियतां करोति)।

श्रष्ट श्रोशाह,—''या प्रथमा बी स्कृत् या धेनुरभवर् यमे। या नः पयखती धुस्त्रीत्तरामुत्तराष्ट्र यमाम्^(१२)'' इति। मुख्यास पश्चस उष्टास 'या' 'प्रथमा' उषा 'बी स्कृत्' (तमा व्यवास्थत्) प्रकाभीत्पादनेन तमो निराकरातीत्वर्थः। 'सा' (ता कुन्नाः) 'समे' 'धेनुरभवत्' (यमसामिके सोके प्रकाम-प्रदानेन धेनुवत् प्रीतिकेतुरभवत्)। तथाविधे उषः, 'या' लं 'पद्यस्तती' (सुस्दृदक्युमा वती) 'मः' (सम्माकं) उत्तरोत्तरेषु सर्वेष्यपि संवत्तरेषु निरमारं 'धुक्क' (दे। इनं खुद्)। यथा धेनुः स्वीरं प्रयक्कति, तदत् लं सृष्टिं प्रकास स्व प्रयक्केत्यर्थः।

चच चतुर्दत्रीमाइ,--"इइक्रवंभा नभवा खोतिवाऽइगादिय-रूपा बन्बीर्शिकेतः। बमानमर्थः खपखमाना विश्रतो जरामजर उव त्रागाः (१४)" दति। येयमुवा 'द्राकवंभा' (द्राक्रेषु प्रकाष रिषु नवचारिषु मध्ये मेहा), वेयमुवाः 'नभवा' 'ख्यातिवा' (चाकाव्यक्तिप्रकावेन युका) 'चागात्' (इड समागता)। की दू बी?-'विश्वक्षा' (सर्वाणि प्रकास्त्रानि यसाः सा 'विश्वक्षा'), 'मबलीः' (सर्वादयात्पूर्वम् प्रन्थकारलेबानुहत्तेर्मित्रवर्षा); 'प्रग्नि-केतुः' (प्रग्निहोत्तिभिद्यःकाले विद्या प्रज्यालिता येऽग्रयसे मेतवा ध्वज्ञानीया घद्धाः या 'त्रश्चितेतुः'। 'यमानमर्थे' 'विश्वती',—सर्वस यग्नयोजनम् ज्रन्थकार निवारण इपं,—तदेवा-बबाइपि प्रयोजनं, त्रतः सर्वेष यह समानप्रयोजने।पेता: 'सपखमाना' (श्रोभनान्यपंसि कर्माणि तानि श्रात्मन इच्छतोति 'खपखमाना'। हे 'भजरे' 'खषः', लं 'जराम्' 'शानाः' (बली-पिंचतादि रूपवरार्श्वतापि स्वादिमारभ्य प्रवस्तात् चिर-काससम्बद्धां जरां प्राप्ताऽसि । तादृगुवाद्धपा द्यमिष्टकेत्यर्थः ।

^{*} खुटिः प्रकाश्च इति सर्जेत्र प्रथमानापाठे। न सम्बक्।

[🕇] भ्रतयोजनम् इति आ॰ 💗 प् । पाठः।

त्रथ पद्यश्रीमाइ,—"क्द्रनां पत्नी प्रथमेयमागादकां नेची जिनची प्रजानां। एका वती बद्धधोषी व्युक्त्यजीवां लं जरयि वर्षमन्यत् (१६)" इति। 'इयं' 'प्रथमा' उपा 'श्रागात' (इत्त कर्मण्यागता)। की हुत्री?—'क्ट्रनां' (वसनादीनां) 'पत्नी' (पास्तिची), उपःकासकासकाराक्षया क्रतवः सन्पद्यन्ते। 'श्रक्रां' 'नेची' (नयनस्त्र हेतुः, प्रकामप्रदानेन निव्यादिकेत्यर्थः)। 'प्रजानां' 'जिनची' (उत्पादिचची) उपःकासकृत्या हि नवमासगर्भ-धारणादिना प्रजा उत्पद्यते। हे 'उपः', 'लं' सक्ष्येष 'एका' 'सती' 'बद्धधा' (दिनभेदेन बद्धप्रकारा) भ्रत्या 'व्युक्तियं' (तमा वासयिश) निक्तासयसीत्यर्थः। की हृत्री लं?—'श्रजीकां' (वसीपिसतादिजरारहिता)। 'सर्वम् श्रन्यत्' (मनुष्यत्ररीरादिकं) 'जरयिं (जीर्षे करोसि)। इत्यं पश्चद्रप्राक्षाताः, वे।द्भी लन्यम द्रष्ट्या।

एतेर्नन्तेः साधमुपधानं विधन्ते,—''न वा ददं दिवा न नक्तमासीद्यादृन्तं ते देवा एता युष्टीरप्रमन् ता उपाद्धत ततो वा ददं यीष्ट्रद्यसैताः उपधीयने येवासा उष्क्रययोक्तम एवापहते" (५१३१४४०) दति । 'दरं' कालस्कर्णं यत् दिवाराचये।यादिन्तिकया उपसा रहितलात् 'श्रयादृन्तं' 'श्रासीत्', तथा सति 'दिवा' श्रपि 'न' 'श्रासीत्', 'नक्तम्' श्रपि 'न' 'श्रासीत्', यादृन्तस्करप्रस्थ निश्चेतुमश्रकालात्, तदानीं 'देवाः' यादृन्ति-कारिणीर्युष्टिसञ्ज्ञका 'एता' दृष्टका 'श्रपस्थन्'। (विश्रयेण) 'उष्क्रित' तमे। विनाश्चयतीति 'युष्टिः' उषः कालः, तदाष्टकश्च्येनोपेतैर्मन्तैद्प- धेया रष्टका युष्टयः। 'ताः' युष्टीरिकीः 'खपादधत'। 'ततः' जिर्ज्ञेम् 'रदं' कालखरूपं 'खीक्कत्' (खाष्टिक्तिया युक्या दिवा-नक्तभेदेन याष्टक्तमासीत्)। तस्मात् युष्टीदपदधात्। तदुपधाने दि यजमानार्थे 'युक्कति' एव। प्रिप च बुद्धिगतभान्तिरूपं 'तमे।' विनावयित।

श्रन विनियागसंग्रहः,—

द्यं युष्टि द्पाद्धात् मन्त्राः पञ्चद्येरिताः॥

द्दित सायनाचार्यविर्विते माधवीये वेदार्थप्रकाशे कृष्णयजुः-संदिताभाखे चतुर्थकाष्डे हृतीयप्रपाठके एकाद्गाऽनुवाकः॥ ०॥

श्रमें जातान् प्रणुदा नः स्पत्नान् प्रत्यश्रीतां जात-वेदे नुद्ख । श्रम्भे दीदिहि सुमना श्रष्ठं ड्लावं खाः श्रमें चिवक्षंय उद्भित्^(१) । सष्ठं सा जातान् प्रणुदा नः सुपत्नान् प्रत्यश्रीतां जातवेदे नुद्ख । श्रिधं ना ब्रूष्टि सुमन्खमीना व्यः स्थाम् प्रणुदा नः स्पत्नान्^(१) । चतुश्चत्वादिःशः स्तोमे वर्चे द्रविणः शे षोड्शः स्तोम श्रोजे द्रविणं शिष्ट्याः पुरीषमिस ॥ १ ॥

^{*} शुद्धीदक्या इति सर्व्वंत्र पाठा न सन्यक्।

अधो नामं । रव्यक्ते विव्यक्ते म्मूय्क्देः पर्मूयक्दे आक्कते मन्यक्ते व्यक्तिक्दः सिन्धु-यक्तः समुद्रं छन्दः सिन्धु-क्ति एष्टक्ते एयम् ए छन्दे निकायम्बन्दे विव्य-म्बन्दे गिर्म्यन्दे सम्मूरं छन्दे निकायम्बन्दे विव्य-म्बन्दे गिर्म्यन्दे सम्मूरं छन्दे निकायम्बन्दे विव्य-म्बन्दे गिर्म्यन्दे सम्मूर्यक्ते स्पृप्बन्दे जुष्प्बन्दे क्षुक्कन्दे स्विक्षुक्तिन्दे काव्यं छन्दे । क्षुप् इन्दे ॥२॥

पृद्पंक्षिम्छन्दे। श्वरं पृष्ठकन्दे। विष्टारपंक्षिम्छन्देः श्वराध्रज्ञां छन्दे पृष्ठकन्देः पृष्ठछन्देः पृष्ठकन्देः युक्तकन्दे। वर्षेष्ठम्दे वर्षेष्ठकन्दे। वर्षेष्ठकन्दे। वर्षेष्ठकन्दे। वर्षेष्ठकन्दे। वर्षेष्ठकन्दे। वर्षेष्ठकन्दे। वर्षेष्ठकन्देम्छन्दे। दूरे। ष्ट्रणं छन्देक्तन्द्रं छन्दे। - ऽक्षांकं छन्देः (१-४५)॥ ॥ ॥

श्रुसि । श्रृंकुपं छन्दः । श्रयंस्त्रिःशश्य ॥ १२ ॥ इति तैत्तिरीयसंहितायां चतुर्थकाएडे तृतीय-प्रपाठके दादशोऽनुवाकः ॥ ० ॥

एकादमानुवाके व्युक्षास्था इष्टका श्रभिहिताः, तावता चतुर्थितिः समाप्ता। भ्रथ दादमे पश्चम्यां चित्यामसपत्नास्था स्रथमो । कस्पः, 'से। भृते पैर्वाह्मिकीभ्यां प्रचर्थ पश्चमीं चितिं चिनेत्यमे आतान् प्रणुदा नः सपत्नानिति पुरस्तादुपदधाति' इति । पाठस्तु,—"भग्ने जातान् प्रणुदा नः सपत्नान् प्रत्यजातान् भातवेदी गुरख। असे दीदिष समना अहेड्नाव खाप्त अर्मन् चिवक्च उद्भित्^(२)" इति । हे 'स्रग्ने', 'नः' (स्रस्नाकं) 'वातान्' 'सपल्लान्' (ये पूर्वमृत्पन्नाः अववः तान्) 'प्रणुद' (प्रकर्षेष नामय) । हे 'आतवेदः', ये पूर्वमनृत्पन्ना इतः परमृत्यित्तप्रमित्रमृत्वस्तान् 'स्रजातान्' अत्रृन् 'प्रति'-'नृदस्त' (उत्पत्तिप्रतिवन्धेन निराकुद्) । 'स्रमनाः' (सानुपद्चित्तः) लं 'स्रहेड्न्' (स्रजुर्वन्) 'चिवक्यः' (चिवक्यः प्राम्बंध-सदी-इविद्वीनक्ष्यय्द्यवयोपेतः) 'उद्भित्' (सनुष्ठेयकर्मीत्पादकः) सन् 'स्रस्ने दीदिह्'(स्रस्नदादीन् प्रकामय)। 'तव' प्रसादात् 'सर्मन्' 'स्राम्' सासुखवान् भवेद्यम्।

एतस्यस्त्रसाध्यमुपधानं विधक्ते,—"श्रमे जातान् प्रणुदा नः सपक्षानिति पुरस्तादुपद्धाति जातानेव श्राह्यान् प्रणुदते" (५।३।५,२०) इति।

कराः, " "सइसा जातान् प्रणुदा नः सपक्रान् प्रयाजातां जातवेदो नुदख। अधि ना ब्रूडि प्रमनस्वमाना वयः स्थाम प्रणुदा नः सपक्रान् (र)" इति। 'सइसा' (बखेन) 'जातान्' इति पूर्ववत्। 'स्रमनस्वमानः' (सामनस्वं प्राप्तः) सन् 'नः' (स्थान्) 'अधि'-'ब्रूडि', 'वयम्' अपि लदनुग्रहाद्धिकाः 'स्थाम', 'नः' (स्थादीयान्) 'सपद्वान्' (प्रचून्) 'प्रणुद'।

एतकाकाध्यमुपधानं विधत्ते '—''बइसा जातानिति पद्या-कानिकामाचानेव प्रकुदते" † (५।३।५ प्र॰) इति । 'पद्यात्' 'छप-* चन तु 'सहसा जातान् प्रमुदा नः सपत्नानिति पद्यादुपदधाति इति । पाठकु' इत्यधिकः पाठी भवितुं युक्तः ।

† 'प्रतिनुदते' इति चादर्भ पुक्तकपाठः।

द्धाति' द्वानुवर्त्तते । पूर्वमन्त्रे खत्पस्रविनाश्रप्राधान्यम् दृ ह ह ख्राल्यमानप्रतिबन्धप्राधान्यम्, नश्रेनाभिप्रायेषेशभयत्र एवकार-प्रयोगः ।

कच्यः, 'चतुस्रवारिष्ट्रज्ञ इति इचिषतः' इति। पाठस्त,— "चतुस्रवारिष्ट्रज्ञः स्तोमे। वर्षे। द्विषम्^(२)" इति। योऽयं 'स्रोमः' चतुस्रवारिज्ञदात्रस्या सम्पन्नः, 'वर्षः' (बस्रक्षं धनं); हे इष्टके तदुभयक्षा समस्रि।

एतकान्तं विनियुक्ते,—"चतुचनारिएषः सोम इति द्विषतः, मह्मवर्षमं वै चतुचनारिएषो मह्मवर्षमनेव द्विषते। धन्ते तसाद्विणेऽर्द्धा मह्मवर्षमितरः" (५।१।५६०) इति । माह्मषानामार्तिञ्चात्, तैर्निष्पाद्यस्तोमस् मह्मवर्षः सद्भावम्।

कस्पः, 'वेरिकाः स्रोम रत्युत्तरतः' इति । पाठस्त,—''वेरिकाः स्रोम श्रीजे द्रविषम्(१)" इति । वेरिकाभिराविष्याद्यः 'वेरिकाः', यसादृषाः 'स्रोमः', यद्याष्टमधातुरूपं धनं वा, हे दृष्टके तदुभयक्षा लम्भि ।

एतसान्तं विनियुद्धे,—"वेड्झः स्रोम इत्युत्तरत मोजा वै वेड्झ त्रोज एवेक्तरते। धन्ते तसादुत्तरते। अभिप्रयायी जयति" (५।३।५,२०) इति । वेड्झस्तोमस्य मोजाटद्भिहेतुलात् भ्रोजस्तम् ।

त्रधेष्टकादयं सद प्रशंसित,—"वज्री वै चतुस्रवारिष्ट्रश्री वज्रः वीज्ञी यदेते दृष्टके उपद्धाति जाताष्ट्रस्रेव जनिस्समाणाष्ट्रस् आह्यान् प्रणुद्य वज्रमनुप्रदर्ति सृत्ये" (५।३।५॥०) दति। स्रोमयोर्निष्टनिवारकलेन वज्जलं। 'प्रणोदनम्' श्रसात् स्नाना-जिवार्णं। ततो वज्जस्नानुप्रहारः 'सृत्यै' (हिंसायै) सम्बते।

कस्यः, 'रष्टकायां पुरीवमधूष्मं पृथियाः पुरीवमसीति मधेऽग्नेः पुरीवनतीम्' रति । पाठस्त,—''पृथियाः पुरीवमस्यभ्रोः नाम^(५)'' रति । हे रष्टकास्त्ररूप, लं 'पृथियाः' (चितिरूपायाः) 'पुरीवं' (पूरकम्) 'श्रवि' । साति भचयति विनाश्रयतीति सः, न सातीत्यभः । हे रष्टके लम् 'श्रभः' 'नाम' 'श्रवि' ।

एतकाकाश्यमुपधानं विधक्ते,—''पुरीववतीं मध्य उपदधाति पुरीषं वै मध्यमात्मनः सात्मानमेवाग्निं चिनुते'' (५।३।५ अ०) इति। पुरीवमध्युष्ठा तस्त्रोपर्युपधीयमानलात् पुरीववती । 'पुरीवं वै' 'श्रात्मनः' (गवादिश्वरीरस्त्र) 'मध्यं' उदरमध्ये वर्क्तमानलात्। श्रतः पुरीवलेन 'सात्मानं' (श्ररीरसंदितम्) 'एव' 'श्रग्निं' 'चिनुते'। एतदेदनं प्रशंसति,—''सात्माऽमुश्चिंक्षोके भवति य एवं वेद"

(५।३।५%) इति। नामकरणं पूर्वमुक्तम्।

दृष्टकापञ्चकं प्रशंसित,—''एता वा असपद्वा नामेष्टका वर्धेता खपधीयन्ते नाच्य सपद्वो भवति'' (५।३।५ अ०) दति । सपद्वानां अनूषां विनाजकलात् 'असपद्वा' द्रत्येतास। मिष्टकानां नाम ध्येयम् ।

कस्यः, 'एवम्बन्दो वरिवम्बन्द इति चलारिंग्रतं विराजा दत्र दत्र प्रतिदित्रमद्याय' इति । पाठसु,—''एवम्बन्दो^(१) वरि-वम्बन्दः^(७) प्रस्कृत्वन्दः^(८) परिभृष्टन्द^(८) श्राष्ट्रक्टन्दो^(१०)

^{*} मचादिश्ररीरख इति बादर्श्युक्तकपाठः।

[†] नामधेयमिति पाठी भवितुं युक्तः।

मनम्बन्दो (११) याचम्बन्दः (११) विश्वम्बन्दः (११) वमुदं बन्दः (१४) याखन्दाः (१४) वं वक्त्रं (१४) वं वक्त्रं (१४) विषयम्दो (१०) हर कन्दो (१४) रथमरं बन्दो (१८) निकायम्बन्दो (१०) विवधम्बन्दो (११) निरम्बन्दो (११) अवम्बन्दः (११) यहुप्बन्दः (१४) यनुष्ठुप्बन्दः (१४) क्रबुक्त्रं (११) क्षिक्तुक्त्रं (१०) कावं बन्दः (१४) यदुप्बन्दः (१४) क्ष्र्यं व्यादे (१८) । पङ्गिम्बन्दो (१०) कावं बन्दः (११) विष्ठारपङ्गिम्बन्दः (११) युर्वे व्यादे वन्दः (११) युक्त्रं व्यादे क्ष्रं (११) विष्ठारपङ्गिम्बन्दः (११) विष्ठार् (११) व्याद्वार् वन्दः (११) व्याद्वार् वन्दः (११) वर्षे वर्षे वन्दः (११) वर्षे वर्षे वन्दः (११) वर्षे वर्षे

एतकाकाध्यमुपधानं विधत्ते,—''पर्ह्या एव व्यद्मिविंदान क्षणावा विद्यामुपद्धाति विराजनेवात्तमां पर्ह्रषु द्धाति तथात् पर्ह्मानुत्तमां वाषं वद्दि'' (५।३।५ घ॰) दति। पर्ह्मानि पर्मानि पर्ह्मानि पर्ह्मानि पर्ह्मानि पर्ह्मानि पर्ह्मानि पर्ह्मानि पर्मानि पर्ह्मानि परह्मानि पर्ह्मानि परह्मानि परह्मानि परह्मानि पर्ह्मानि पर्ह्मानि परह्मानि परह्मानि परह्मानि पर्ह्मानि पर्ह्मानि पर्ह्मानि पर्ह्मानि पर्ह्मानि पर्ह्मानि परह्मानि पर्ह्मानि पर्ह्मानि पर्ह्मानि पर्ह्मानि पर्ह्मानि परह्मानि परह्मानि पर्ह्मानि परह्मानि पर्ह्मानि पर्ह्मानि पर्ह्मानि परह्मानि परह्मानि परह्मानि परह्मानि परह्मानि परह्मानि परह्मानि पर्ह्मानि पर्ह्मानि पर्ह्मानि पर्ह्मानि पर्ह्मानि पर्ह्मानि पर्ह्मानि पर्न्मानि पर्मानि परह्मानि पर्ह्मानि पर्ह्मानि परह्मानि पर्ह्मानि पर्न्यानि प

चूचं मङ्गुष्टे समागच्छत, सुज्यताम् रति। वेदं उत्तमा वाक्।

एकैनकां दित्रीष्टकायकां विधत्ते,—"दत्र दन्ने।परधाति सवीर्यवाय" (५।३।५ ५०) इति। 'वर्श्यवं (दार्क्के।पेतवं)। तत्र बक्किनिष्टकाभिः सम्बते।

सम्यक्पिक्क्रिक्पलं वारियलं वक्रलं विधन्ते,—"श्रद्धयोप-इधाति तसाद्द्ध्या पत्रवे । ज्ञानि प्रदर्गन प्रतिष्ठि ये" (४।३। ५ अ०) इति।

जक्ता विराजः प्रजंपति,—"चानि वे क्न्दाश्चि सुवर्गाखा-सन् तेर्देवाः सुवर्गे स्रोक्तमायम् तेनर्षयोऽत्राम्यम् ते तपाऽत्यन्त तानि तपसा श्रप्याम् तेभ्य एता रष्टका निरमिमतेवश्क्न्दो वरिव-श्चन्द इति ता जपाद्धत ताभिवते सुवर्गे स्रोक्तमायम् यदेता रष्टका जपद्धाति यान्येव क्रन्दाश्चि सुवर्गास्य तेरेव यजमानः सुवर्गे स्रोक्तमेति" (५।३।५%) इति । स्वर्गम् श्रव्हेन्सिति 'सुवर्ग्यास्थि', तादुशानि 'यानि' श्रासातानि 'क्रन्ट्रांसि' स्वर्गनोके स्थितानि, तेश्क्रन्देशिः 'देवाः' स्वर्गे प्राप्ताः,—तत्पाठस्तेषां स्वर्ग-प्राप्तिसाधनं । 'स्थयः' च 'तेन' (स्वर्गप्राप्तिनिमित्तेन) 'श्रश्रास्यम्' (जपायमित्यासभमानाः स्वित्रा श्रासन्) 'ते' पुनर्विचार्य स्वर्गप्राप्त्रये 'तपः' क्रतवनाः, तताऽन्दितेन 'तपसा' 'तानि'

^{*} भुज्यन्ताम् इति तुज्जचित् पाठः। † अज्ञचार्ययतुमिति पाठे। भवितुं युक्तः।

'कन्दांचि' खर्गसाधनानि 'त्रपस्तन्', 'तेम्यः' (कन्दोभ्यः) 'एता' (विराजाखा) 'इष्टका' निर्मितवन्तः, निर्माय च 'एवन्कन्दो 'विरिवन्कन्दः' इति मन्त्रीः 'ता' (विराजः) 'उपादधत' 'तािभः' (इष्टकािभः) तिद्वषयं प्राप्ताः । श्रतो यजमाने।ऽपि तदुपधानेन खर्गेसीन्कन्दोिभः खर्गे प्राप्तािखेव॥

श्रत्र विनियोगसंग्रहः,—

पञ्चम्याम् चिताविश्वर्षं पप्तास्य पञ्च च। एवं श्वलारिं बदुका विराजा दिचु वक्रगाः॥

इति सायनाचार्यविरचिते माधवीये वेदार्थप्रकाशे क्रण्ययुः-संदिताभाव्ये चतुर्थकाण्डे हतीयप्रपाठके दादशेऽनुवाकः॥ ०॥

श्रुव्राणि जङ्गनद् द्रविण्र्युर्विप्न्यया। सिमंडः
श्रुव्र आहुतः (१)। त्वर सीमासि सत्येतिस्वर राजात
है च्हा। त्वं भद्रो असि कर्तुः (१)। भद्रा ते अमे
स्वनीक संहर्णे। स्यो स्तो विष्णस्य चार्यः। न यते
श्रोचिस्तमसा वर्गन्त न ध्वसानस्त नुवि रेप आ धुः १।
भद्रं ते अमे सहसिन्ननीक मुपाक आ रीचते द्वर्यस्य॥
॥ १॥

कर्मदृष्ट्रभे देहमे नक्त्या चिद्रू कितं हम आ कृषे असं (१)। सैनानीकेन सुविद्रचे आसो यष्टा देवार आयंजिष्ठः ख्रास्ति। आदं को गोपा जुत ने पर्स्पा अमें चुमदृत रेविहंदीहि (१)। ख्रास्त ने दिवा अमे पृष्टिक्या विश्वायंधिह युजर्थाय देव। यत् सीमिहं दिविजात् प्रमेस्तं तद्सासु द्रविणं धेहि चिषं (१)। यथा होत्मन्षः॥२॥

देवताता युष्ठीभेः स्ननी सहसो युष्ठीस एवा ने।
श्रद्ध संमना संमानानुश्रद्धंग्न उश्रता येश्व देवान्(१)।
श्रिप्तमीड़े पुरोहितं युष्ठस्य देवसृत्विष्ठं। होतारः
रक्ष्यातमं(१)। हषा सोम सुमाः श्रीस हषा देव हर्षवतः। हषा धर्माणि दिधषे(१)। सान्तपना इदः
हिवर्मर्रतस्त ज्ञुंजुष्टन। युष्पाकोती रिशादसः(१)। या
ने। मर्ती वसवा दुर्ह्णायुक्तिरः सत्यानि मरुतः॥३॥

जिघीश्सात्। द्रुष्ठः पाश्चं प्रति स मुंचीष्ट् तिपष्टेन्
तपंसा इन्तना तं (११) । संवृत्सरीणां मुक्तः खुकी उक्स्रयाः सर्गणां मानुषेषु । तेऽसात् पाश्चान् प्रमुच्चन्वश्इंसः सान्तपना मंदिराः मादियुष्णवं (११) । पिप्रीहि
देवाश उश्वता यंविष्ट विद्वाश स्तुत् स्तेतुपते यञ्चे ।
ये दैव्या स्तुत्विज्ञस्तेभिरग्ने त्वश्च हेत्युणाम्स्यायंजि-

ष्टः^(११)। अग्ने यद्च विश्वा अध्यास्य हे।तः पावेक॥ ॥ ४॥

शेषे वेस्तर हि यज्या। स्ता यंजास महिना वि यह दृष्ट्या वह यविष्ट् या ते श्रुष्ट् (१) श्रिष्ट्र प्रिमं र्याः मंज्ञवत् पेषं मेव दिवे-दिवे। यूग्रसं वीरवंत्तमं (१) । ग्यस्फानी अमीवृहा वसुवित् पृष्ट्विष्ट् नः। सुमिषः सीम ना भव(१) । यहं मेधास आगंत महेता मापं-भूतन। प्रमुख्यती ना अश्हंसः(१०) पूर्विभिहिं दंदा-श्रिम श्रादिर्महतो व्यं। महीभिः॥ ५॥

चर्षेणोनां (१०) । प्र बुधिया ईरते वो महा १ सि प्र खामानि प्र यज्ञवस्तिर्ध्वं । स्हृ सियं द्रम्यं भागमेतं यह मेथीयं महता ज्ञष्धं (१८) । उप यमेति युव्तिः सुद्र्यं देवावक्ते हिवस्ती घृताची । उप स्वेनम्रमंति-वंसूयः (१९) । द्रमे चंग्रे वीतत्मानि ह्याजसी विश्व देवतात्म इ । प्रति न दे सुर्भी खं वियन्तु (१९) । क्रीडं वः शहीं मार्वतमनुवाण र रये शुभं ॥ ६ ॥

कर्खा श्राम प्रगायत (११) । श्रात्यासे न ये मुरुत् स्वश्वी यस्टु श्रो न शुभयन्त मर्थाः । ते इंग्यें छाः शिश्वेषो न शुभा बृत्सासे न प्रक्री डिनं पये । प्रेषा मञ्मेषु विषुरेव रेजते सुमिर्या मेषु यह युश्चते शुभे । ते ब्रीड्या धुनया धार्षष्ट्यः ख्यं महित्वं पंनयन्त धूतयः (१४)। जुपुच्चरेषु यद्चिध्वं य्यिं वर्यं इव महर्तः केनं॥ ७॥

चित् पृथा। श्वातंन्ति केश्या उपं वे। रश्रेषा घृतमुश्चता मध्वर्णमर्घते (११)। श्रुश्ममं श्रिः हवीमिभः सदी
हवन्त विश्वपति । इत्युवाहं पुरुष्प्रियं (१९)। तः हि शर्यन्त
ई इंते खुचा देवं घृत्रश्वता। श्रुशिः हत्याय वाइंवे (१०)।
इन्ह्रीशी राचना दिवः श्रयं हुचम् (१०-१८) इन्ह्रं वे।
विश्वतस्परीन्द्रं नरे। (१०-१८) विश्वकर्मन् हविषा वाष्टधानी विश्वकर्मन् हविषा वर्ष्टनेन (११-१९)॥ ८॥

सूर्यस्य । मनुषः । मस्तः । पावकः । महीभिः । रथेशुभं । केन् । षट्चेत्वारिष्ट्रश्च ॥ १३ ॥

इति तैतिरीयसंहितायां चतुर्यकाएडे तृतीयप्रपाठके चयादभाऽनुवाकः॥ •॥

श्रुपां त्वेमन्। श्रुयं पुरः। प्राची। भ्रुविर्धितिः। स्यिषिः। इन्द्रीग्री। मा छन्देः। श्रुग्रास्त्रवृत्। श्रुग्रे-भागाऽसि। एक्वया। इयमेव सा या। श्रग्ने जातान्। श्रिष्ट्रिचार्षि अङ्गनृत्। चयोदश्॥ १३॥ चुपां त्वा (१।१)। इन्ह्रांग्नी (६।१)। इयमेव सा (११।१) देवताता (१३।३)। घट्चिरंशत् ॥३६॥ इरिः श्रोम्॥

॥०॥ समाप्तश्च तृतीयप्रपाठकः ॥०॥

दादग्रेऽनुवाके असपक्षा विराजसीकाः । अथ वयोदमस्य अन्यानुवाकतात् तन याच्यानुवाक्या उच्यमे । चातुर्मास्ये साक-मेधास्ये हतीये पर्वषि 'सग्नयेऽनीकवते पुरोड़ामसष्टाकपासं निर्वपति साक्ष्र स्वर्येणे। सता' दत्यादिईवींषि अध्यातानि । तम प्रथमस्याच्यभागस्य पुरोनुवाक्यासाइ,—"त्रश्चिर्दनाषि जङ्गनद् द्रविषः स्वृतिपन्यया । सिद्धः ग्रुक त्राक्षतः(१)" इति । स्वस् 'स्रिः' सस्याननुग्रकालिति ग्रेषः । कीदृनः स्रिः?—'त्रवाषि' 'जङ्गनत्' (कर्मानुग्रकालिति ग्रेषः । कीदृनः स्रिः?—'त्रवाषि' 'जङ्गनत्' (कर्मानुग्रकालिति ग्रेषः । कीदृनः स्रिः?—'त्रवाषि' 'त्रव्यन्त्र' (स्रस्यस्थे द्रविषस्थः' (स्रस्यस्थे द्रविषस्थः' (स्रस्यक् प्रज्यासितः); 'ग्रुकः' (श्रेषमानः); 'प्राक्रतः' ('सा' समन्तात् स्रसाभिराकारितः, स्रनेनाक्येनाक्रते। वा) ।

षय दितीयाच्यभागस्य पुरानुवाकामाइ,—''ल्रू सामासि सत्पतिस्मूराजात वयहा। लं भद्रो प्रसि कतुः(र)" दति।

^{*} रत्नादीनि चर्नीयि हति, रत्नादिना चर्नीयि हति वा याठीः भवितुं युक्तः।

[†] चनेनाच्ये ऊवा वा इति इचित् पाठः।

हे 'सेम', 'लं' सतां (सम्यगनुहितानां) कर्मवां 'पतिः' 'मसि'; किम्च 'लं' 'रामा' (दीप्तिमान्); मपि च 'लं' 'दचहा' (पापचाती); किम्च 'लं' 'भद्रः' (फलप्रदलेन मङ्गलः); 'क्रतः' 'मसि' (तम्ब क्रतार्निच्यादकलात्)। चर्चचेतनान्त्रदयम्चोदकप्राप्तं, तथाण्यमावास्त्राविक्ततिलप्रयुक्तं दधन्वशेः प्राप्तिं वार्थितं पुनः-पाठः।

भय प्रधानखाग्नेरनीकवता हिवयः पुरानुवाक्यामाह,—
"भद्रा ते अग्ने खनोक सदृग्घोरख सता विषुषस चादः ।
न यसे ग्रे।चिस्तमसा वरना न ध्वसानसनुवि रेप भाषुः(र)"
रित। ग्रे।भनमनीकं सैन्यं यसामी खनोकः, तादृष्ठ हे 'णग्ने',
'ते' (लदीयानि) च गानाणि 'भद्राः' (भद्राणि मञ्जलानि) ।
कथं भद्रलमिति ?—तदुष्यते,—लं 'सदृक्' (यजमानान् प्रथमि,
यजमानादिभिवा सम्यक् दृष्यसे)। तथा लं 'घोरस्न' (उगस्ते),
'सतः' (सर्वथा विद्यमानस्ते), 'विषुषस्ते' (वज्जलास्त्रेष विद्यम्याप्तस्ते) 'चारः' (चरणहेतुः), ग्रिष्टिनिवारकस्त्र निरम्नस्त्रः
व्यासासमूहस्य प्रवर्त्तक रत्यर्थः। 'यत्' 'ते' (तव) 'ग्रे।चिः'
(प्रकावनी), तत् कदाचिद्यि 'तमसा' 'न' 'वरमा' (नानियन्ते)।
'ध्वसानः' (ध्वंसहेतवः) राचसाः 'तनृवि' (प्ररीरे) लदीये 'रेपः'
(प्रहारस्पं पापं) 'न' 'न्नाधः' (नैव समादितवमः)।

त्रय तर्नेव याच्यामार,—''भद्रं ते त्रग्ने सहस्मिनीकमुपाक त्रा-रोत्तते सर्वेद्य। इत्रद् दृत्रे दृत्रते नक्तया चिद्रक्तितं दृत्र त्रा रूपे त्रक्षम्⁸⁾'' इति। 'सहो' (बस्रम्) त्रकारहोति सहसी, तादृत्र हे 'त्रग्ने', 'स्वंस' 'ते' (स्वंसदृत्रस्य तव) 'भद्रं' (कस्याणं) 'कनीकं' व्यासारूपं (सैन्यं) 'उपाके' (उपानिकं समीपे) 'त्रा-रेग्वते' (सर्वते दीयते)। तादृत्रं व्यासारूपं लदीयम् त्रनीकं नक्तम् त्रपि गाड़ान्धकाराष्ट्रतायां रात्राविप 'दृत्रे' (विस्पष्टं प्राधिभद्दं स्थते)। किमधं रात्री तञ्ज्यासादर्शनिति?-तदुत्र्यते,— 'इत्रत्' (हिंसकं सर्वाधिकं) 'दृश्चे' (मार्गे द्रष्टुं), तथा रात्री भेग्नवेसायां 'त्रा"' 'रूपे' (प्रता निरूपिते पात्रे) 'त्ररूचितं' (रूसेपस्वितं मित्रस्वतं स्वतं स्वतं

श्रथ तत्रैव विकल्पितां याज्यामाइ,—'मैंगागीकेन सुविद्कों ससो यहा देवाए श्रायिष्ठिः स्वसि। श्रद्भो गोपा जत नः परसा श्रग्ने सुमद्त रेविद्दिशि (१)" इति। हे 'श्रग्ने', 'स' लं 'सुमत्' (दीप्यमानः); 'जत' (श्रिप च) 'रेवत्' (ब्रद्धभनयुक्तं ग्रद्धचेत्रादिकं) 'दिदीहि' (प्रकाश्रय)। कीदृश्रस्तं?—'एनानी-केन' (एतेन ज्वासासमूहेन), 'सुविद्चः' (सुष्ठु वेदिता) 'श्रस्नो' (श्रसाद्ये) 'देवान्' 'यहा' (देवान् जिद्द्या यागनिव्यादकः) 'स्रस्ति' (विद्वराहितां) यथा भवति, तथा 'श्रायिष्ठिदः' (श्रति—श्रयेन क्रत्स्यागसमाप्तिकारो); 'श्रद्भः' (केनाप्यहिंसितः); 'गोपाः' (यश्रस्य गोष्ट्याः) 'जत' (श्रपि च) 'नः' (श्रसाकं) 'परसा' (श्रतिश्रयेन पास्रियता)।

^{* &#}x27;च्या' इति पाठी का॰ इ॰ पुक्तको नास्ति।

[†] रूचीपचित्रमचिनायुपद्रवरितम् इति पाठा भवितुं युक्कः।

[‡] गोप्ता इति पाठी भवितुं युक्तः।

त्रथ सिष्टकतः पुरे। ज्वाकामाइ,—''सिं ने। दिवा प्रो
प्रथिया विसायुर्धेहि यजयाय देव। यत् मीमहि दिविजात
प्रवसं तदसास द्रविषं धेहि चिनम्(')'' इति। हे 'प्रग्ने', 'नः'
(श्रस्मभ्यं) 'स्रसि' (निर्विन्नं) 'विसायुः' (सम्पूर्णमायुः) 'धेहि' (सम्पाद्य)। किमधें?—'यजयाय' (यागानुष्ठानाधें)। कुत्र?—'दिवः'
(श्रुसोकें), 'प्रथिया' (श्रसोकें)। हे 'देव', यथा युस्रोके श्रस्तोकें
तिष्ठासः, तथा सर्वसम्पूर्णमायुः प्रयक्तियर्थः। हे 'दिविजात'
(स्वर्गसमृत्यस्र) श्रग्ने, 'यत्' 'द्रविषं' 'धीमहि' (वयं सेवेम), 'तत्'
'द्रविषम्' 'श्रसास् 'धेहि' (सम्पाद्य)। कीदृशं द्रविषं?—
'प्रवस्तं' (विद्यमानश्रेष्ठ्यं); 'चिनं' (मिष्मुकादिजात्युपेतम्)।

तंत्रेव याच्यामाइ,—"यथा द्देतर्मगुषे देवताता यश्चेभिः सनी यद्देवाग् पणा गो त्रय समना समानानुष्रज्ञ प्र प्र या या विश्व देवाग् (०)" इति। 'स्ट्रको' (मयन इपस्य बलस्य) 'स्नुः' (पुषः) त्रिशः, स च देवानामाञ्चाता, दे 'स्ट्रसः' 'स्नो' 'द्देवताता' (देवान्) त्रपि यश्चेः 'सनुषो' (मनुष्यान्) त्रनुपदेष पाखयि, 'देवताता' (देवान्) त्रपि यश्चेः 'यजािष' (पूजयि)। ताित-प्रत्ययस्य खार्चे विद्यतलाद् देवा एव देवतातयः; 'देवताता' (देवताितन्")। इतर्यजमानानां पालनं तदीयदेवयजनञ्च दृष्टानः, दािहािन्तकन् सकीयदेवयजनमुच्यते। 'एवा' (एवमेव) दे 'त्रशे', 'नः' (त्रसाकं) 'त्रय' (त्रसान् कर्मण) 'देवान्' 'यद्दि' (लं यज्ञ)। कीदृष्ठस्वं?—'समना' (तेर्देवैः सह समानमनस्कः), यदा

^{* &#}x27;देवतातीन्' इति पाठी भवितुं युक्तः।

⁸ D 2

समान सेर्देवे स्त स्टार्थः ; 'स्त्रम्' (कामयमानः) श्रास्तायुक्त रत्यर्थः । की दृष्टान् देवान् ?—'समानान्' (तथा तुस्तान्) । 'स्त्रतः' (कामयमानान्) तथि प्रीतियुक्तानित्यर्थः ।

भय महद्भाः सामापतेभी मधन्दिने चहिमत्यत्र प्रथमाध्य-भागस पुरे। दुनुवाक्यामाइ,—"प्रिमी हे पुरे हितं यञ्चस देव-म्हिलं। हे। तार्ष्ट्र रक्षधातमम्(ड)" इति। इमम् 'प्रिमि' महम् 'ईहे' (सीमि)। की दुमं?—पुरे दिन्ने माह्यकी से सापितं; 'यञ्चस्य' (मनुष्ठीयमानस कर्मसः) 'स्विजं' (स्विङ् निष्पादकं है); 'देवं' (शेतमानं); 'हे। तारं' (देवतानामाङ्कातारं); 'रक्षधातमं' (मिष्मुकाप्रस्तीनां सन्पादकम्)।

श्रय दितीयाच्यभागस पुरे। जनवास्त्रामार, — "हवा से म सुमा श्रूष हवा देव हवजतः । हवा धर्माण द्धिषे(८)" दित । हे 'से म', तं कामानां वर्षयिता । 'सुमां' (दीप्तिमान्) 'श्रवि' । स्थात् तं 'हवजतः' (हपनिमित्तं कर्म स्थापे। हपजतः) । किस स्थात् तं वर्षयिता, तसात् पृष्णानि 'द्धिये' (धारस्थि) ।

श्रय प्रधानस्य इतिवः पुराऽनुतास्त्रामाइ,—''सान्तपना इद्र इतिर्मद्तस्तज्जुजुष्टन । युग्नाकातो रिश्राद्धः (१०)'' इति । सम्यक् तप्यन्ते श्रवत एभिरिति 'सान्तपनाः', तादृश्रा हे 'मद्तः', श्रम्भाभिदीयमानं यत् 'इदं' 'हितः' श्रस्ति, 'तत्' 'जुजुष्टन' (सेवध्वं) । 'युग्नाकातो' (युग्नाकमूत्रये चुद्वाधाता रचणात्र)।

[🍍] निष्पादम इति पाठे। भवितुं युक्तः।

को हुत्रा सदतः ?—'रिवाद्यः' रिवन्ति दियनीति रिवाः, तान् प्रदन्ति भचयन्ति विनावयन्तीति 'रिवाद्यः'।

श्रय तनैव यात्र्यामाइ,—"यो नो मर्त्तो तसवा दुईषायु-खिर: सत्यानि महतो जिवाश्चात्। द्रुइः पात्रं प्रति स मुचीष्ट तिपष्ठेन तपसा इन्तना तम्(१९)" इति। 'वसवः' (वासहेतवः) हे 'महतः', 'यः' 'मर्त्तः' (मनुखः) 'दुईषायुः' (दुष्टकोधोऽत्यन्तं-पाप-युक्तबुद्धिः) सन् 'सत्यानि' 'तिरः' श्रस्तान् प्रतिक्रतान् सर्वथा नानिष्टं करिखामीत्येवंरूपां श्रपथां तिरस्त्रत्य 'नः' (श्रस्तान्) 'किषांसात्' (इन्तुमिक्केत्), स 'द्रुइः' (द्रे।ही) 'पात्रं' (भवदीयं सन्धनरञ्जुं) 'प्रति'-'मुचीष्ट' (प्रतिमुश्चत्त) स्वगस्ते वधालित्यर्थः। 'तं' द्रोहिशं 'तिपष्ठेन' 'तपसा' (श्रत्यधिकेन सन्तापेन) 'इन्तना' (मार्यत)।

तचैव विकल्पितां वाच्यामाइ,—''मंदत्सरीषा महतः खर्का खह्च्याः मगणा मानुषेतु । तेऽस्तत् पात्रान् प्रमुचन्वश्र्षः मान्तपना मदिरा माद्यिष्णवः(१२)'' इति । ये 'महतः' मन्ति, 'ते' 'पात्रान्' (खकीयम्भनरञ्जुं) 'श्रस्तत्' (श्रस्तनः) श्रपनीय 'मानुषेतु' विरोधिननेषु 'प्रमुचनु' (गले बश्रम्तु) । कीवृत्रान्?—'श्रंदसः' (पापिष्ठान् श्रत्यन्तनोषदेह्य्नित्यर्थः) । कीवृत्रा महतः?—'संवस्तरीषाः' (स्वद्यामेनाराधिताः संवत्सरपर्यनां रचकाः) ; 'स्वकां' (स्वष्ठु श्रषंनीयाः); 'खहच्याः' (विस्तीर्षय्यद्याः); 'सगसाः' (स्वप्तिभिनेषेः सहिताः), 'सप्तम्या वे महतः' इति श्रुत्यन्तरात्।

^{*} यवंरूपान् ग्रमधान् इति पाठो भवितुं युक्तः।

'साक्तपनाः' (सम्यक् अनुतापकारिषः); 'महिराः' (खयं इष्टाः); 'माद्यिष्णवः' (श्रसानपि इर्षयक्तः)।

तचैव खिष्टक्रतः पुरेरिनुवाक्यामार,—''पिग्रीरि देवा प्रविक्रक्ती यिव विदार प्रति प्रविक्ष क्रित्रेष्ट क्रि. प्रविक्ष (युवतम) 'क्रि. 'अत्रतः' (कामयमानान्) 'देवान्' 'पिग्रीरि' (ऋतिक्षेत्र प्रीष्य)। हे 'क्रि. प्रविद्याना काखपरिपासक), 'लं' 'क्रि. प्रविक्ष प्रविद्याने' (काखिविष्ठेषान्) 'विद्यान्' (जानन्) वर्त्तेषे। तस्यात् 'द्रह्य' (अचितकासे) 'यज'। देवेषु भवा 'देया' 'ये' 'क्रि. तिजः' सिना,— 'क्रि. क्रि. क्रि. युवतका क्रि. प्रविक्ष क्रि. प्रविक्ष क्रि. व्यादिना क्रि. क्रि. विक्ष क्रि. व्यादिना क्रि. क्रि. व्यादिना क्रि. क्रि. व्यादिना क्रि. व्याद

तनैव याच्यामाइ,—''त्रग्ने यद्य विद्रो त्रध्वरस्य होतः यावक श्रोचे वेस्त्र हि यज्या। स्ता यजासि महिना वि यद्भूईत्या वह यविष्ठ या ते त्रय् (१४)'' इति। हे स्विष्टस्त 'त्रग्ने', 'विष्नः' (प्रविष्टसानुष्टितस्य) 'त्रध्वरस्य' समन्धि 'यत्' हविरस्ति तत् 'त्रयः' (त्रत्रान भचय)। 'होतः' (हे। सकर्त्तः) 'पावक '' (श्रोधक), 'श्रोचे' (दीष्यमान); तान्येतानि त्रग्निविशेषणानि। 'हि' (यस्नात्) 'त्रं' 'यज्वा' (यागस्य कर्त्ता); तस्नात् स्त्रते त्रसादीय-'महिना' (महिस्ना), 'यजासि' (देवान् प्रीण्यिष)। 'यत्' (यस्नात् कार्णात्) 'वि'-'भ्रः' (विश्विष्टा भविष), तत् (तस्नात् कार्णात्)

^{*} व्यापक इति सर्व्यंत्र पाठी न सम्यक्।

हे 'यविष्ठ' (युवतम), 'श्रद्य' 'ते' (तव) 'या' (यानि) इयानि श्रद्धाभिदीयको, तानि खीतुह्र"। यद्ययेतकाकाद्यं दार्शिके है। च-काण्डे समाचातलात् चादकादेव प्राप्तं, तथापि विख्रष्टाधे पुन-वैचनमिति द्रष्ट्यम् ।

श्रथ मर्झो यहनेधिन्यः धर्वासां दुन्धे वायं चर्तित्वच प्रथमस्यास्थानस्य पुरे। जुवाक्यामा ह, — "श्रिश्चना रियमश्रवत् पेषिनेव दिवे-दिवे। यश्चसं वीरवत्तमम् (१४)" इति । श्रनेन 'श्रिश्चना' 'रियं' (धनम्) 'श्रश्चवत्' (धर्वे। जनः प्राप्नोति)। न केवसं धनस्य स्वरूपमानं, किन्तु दिने-दिने तस्य धनस्य पृष्टिमेव प्राप्नोति न तु ष्ट्रासं। 'यश्चसं' (कीर्त्तांकरं), 'वीरवत्तमं' (वीरा श्रस्सदीयाः पुत्रा श्रस्तेति वीरवान् श्रितश्चयेन तथाविधम्)।

त्रय दितीयाक्यभागस पुराऽनुवाक्यामाइ,—"गयस्कानो त्रमीवहा वस्तित् पृष्टिवर्द्धनः। समित्रः साम ना भव^(१६)" इति। हे 'साम', 'नः' (त्रसान्) जक्यमानविभेषणविश्रिष्टा 'भव'। कानि तानि विभेषणानि? इति, तान्युक्यनो,—'गयस्कानः' (गृहाणां वर्द्धियता); 'त्रमीवहा' (रागाणां हन्ता), 'वस्तित्' (धनस्य सभयिता); 'पृष्टिवर्द्धनः' (गवादिपृष्टेवर्द्धियता); 'समित्रः' (भाभनं यक्रमानक्ष्पं मित्रं यस्त्रीते। समित्रः)।

त्रय प्रधानस्य पुरेाऽनुवाक्यामाइ,—"ग्रहमेधाय त्रागत महती माऽपश्चतन प्रमुखनो नी त्रष्ट्रसः(१०)" इति। ग्रहे कियमाणी मेधी यज्ञी येषां ते 'ग्रहमेधासः', तादुणा हे

^{*} अत्र 'वष्र' (खीकुर) हित पाठी भवितुं युक्तः।

'सद्तः', 'चागत' (चागक्त)। 'साऽप स्तन' (कराचिर्षि सा गक्त")। किं कुर्वतः ?—'चंद्रधः' (पापात्) 'नः' (चसान्) 'प्रमुचन्तः' (प्रकर्षेष भाषयनः)।

तचैव याज्यामाइ,—''पूर्वीभिर्षं ददात्रिम कर्द्धिर्मक्ते। वयं। महोभिस्वर्षणीनाम्(१०)'' इति । हे 'महतः', 'वयं' (यजमानाः ं) 'पूर्वीभः' (श्रनादिकाखप्रदक्ताभिः) मीज्ञादि-यन्पूर्णतेबा महनीयाभिः 'कर्द्धः' (संवत्यरेः) 'चर्षणीनां' (मनु-व्याणां कालिजां) मध्ये खायोभिः यस्तात् 'ददात्रिम' (हविद्देस), तस्ताद् यूयम् इष्ट श्रागक्कत ।

तत्रैव विकल्पितां याच्यामार,—"प्र बृत्तिया देरते वे सरा १ कि प्र कामित प्र यव्यवस्तिरधं। सर्वियं दन्यं भागमेतं ग्रहमेधीयं महते जुवध्वम् (१८)" दति। हे 'महतः', 'बृत्तिया' (बृत्ते मूले भवानि बृत्तियानि कालप्रहत्तानीत्यर्थः), 'वे महांसि' (युत्ताकं तेजांसि)'प्र'-'देरते' (प्रकर्षेष गच्छिता) प्रष्टत्तानीत्यर्थः। 'प्र'-'यव्यवः' (प्रकर्षेष गच्छिता) प्रयुत्तानीत्यर्थः। 'प्र'-'यव्यवः' (प्रकर्षेष वागुकाः) यूवं 'नामानि' (ग्रहमेधिनः महतो वयमित्या-दीनि भवदीयनामधेयानि) 'प्र'-'तिरध्वं' (प्रकर्षेष क्षेत्रे ख्वायत) । 'सहस्त्रियं' (सहस्त्रसमार्हे) 'ग्रहमेधीयं' (ग्रहमेधिना युत्तानुह्यः दीयमानसेतं भागं पुराज्ञाह्यं) 'जुवध्वं' (सेवध्वम्)।

श्रय तजैव खिष्टकतः पुरेाः नुवाकामारः,—"उप वसेति युवतिः सदर्वं देशवा वकोर्रविश्वती घृताची। उप खैनमरमति-

^{*} मा गच्छतः इति का॰ इ॰ पु॰ पाठः।

[†] यजमान हति सर्वेत्र एकवचनानाः पाठी न सम्यक्।

र्वस्यः (१०)" इति । 'युवितः' (मन्तेष मित्रीभृता) 'इविन्नती' (समूर्णइविर्युक्ता) 'घृताची' (घृते पृष्टा) रयमाङ्कतिः 'दोषा' (राचा) दिवसे च 'दचं"' (कुन्नचं) 'यं' (खिष्टकतमग्रिम्) 'खप'-'एति' (प्राप्नोति) । येन खिष्टकतमग्रिम् 'त्ररमितः' (कदाचिद्णुप-रमित्रर्दितः), 'वस्र्युः' (धनमिन्क्न्) यजमानः, 'स्ना' (स्किग्येन) इविषा 'खप'-'एति' (प्राप्नोति), सेवत रह्यर्थः ।

तंत्रैव याज्यामाइ,—"इमेर अग्ने वीततमानि इव्याऽजस्ते विच दवतातिमच्छ। प्रति न ईश्ल सुरभीषि वियन्तु (१९)" इति। हे 'अग्ने', 'इमो' (इमानि), 'वीततमानि' (श्वतिष्रयेन कान्तानि), 'इव्या' (इवींषि) 'देवतातिमच्छ' (देवानिभप्राप्तुम्) 'अञ्चः' (अनुपरतः), 'विच' (वहनाकासम्बन्धीनि), 'सुरभीषि' (सुन् गन्धीनि) इवींषि 'प्रति न ईश्ल' (प्रत्येकमेव) 'वियन्तु' (भच्चयन्तु)।

श्रथ 'मरुद्धाः क्रीडिम्बः पुरे। ड्राइइ सप्तकपाखं निर्वपति साकः सूर्येणो सत' इत्यस इतिषः पुरे। उनुवाक्यामा इ,— ''क्रीड़ं वः क्रमें मारुतमनवीषः रचे इद्धमं कष्ता श्रभिप्रगायत (१९)'' इति । हे 'कष्ताः' (कष्तप्रस्तयो वेदाचार्याः), 'ग्रधंः' (यसम्) 'श्रभि-प्रगायत' (श्रभिता वैदिकेः स्रोचेः प्रकर्षेण गानं सुरुत)। की दृशं यसं?— 'वः' 'क्रीड़ं' (युग्नाकं क्रीड्राकारणं), 'मारुतं' (मरुतां सम्बन्धि), 'श्रनवीषां' (श्राह्येरितरक्ततं), 'श्राह्यो वा श्रवीं' इति श्रुत्यकरात्। 'रचे इद्धमं' (रच प्रेरणे समर्थम्)।

तत्रेव याच्यामाइ,—"त्रात्यात्री न ये महत खद्यी यचहुत्री

^{* &#}x27;सदचां ' इति पाठो भ वितुं युक्तः।

न ग्राभयना मधीः। ते इन्वेष्ठाः विश्वती न ग्राभा वत्साचीः व प्रकोडिनः पयोधाः (११) इति । हे 'मदतः', 'ग्राभयना' (श्रीभवनां) स्वस्थारेष सर्वे जगदसंकुर्वनात्यर्थः। ततोऽस्मान् अनुग्रहन्तिति ग्रेषः। कीदृत्रा मदतः ?—'श्रत्याधी न' (सतत– यमनश्रीला श्रश्वादय दव), 'स्वश्वः' (ग्रीभनगतयः), 'यचदृत्रो न' 'मर्थाः' (यागदर्भगार्थिनो मर्त्या दव) श्रीत्मुक्तेनाच समागता इति ग्रेषः। हे 'हर्न्येष्ठाः विश्वती न ग्राभाः' (प्रासादमारूदा राजबास्तवा दव पर्वतेषु ग्राभाः) सञ्चरन्तीति ग्रेषः। 'वत्साचा न प्रक्रीडिनः' (यथा श्रत्यन्तवास्ततः) भ्रष्मितस्ततः पस्तायमानाः प्रकर्षेण कीड्नि, तथा श्रम सञ्चरनाः कीड्रापराः), 'पर्योधाः' (सेषानुत्यास अस्थारिणः)।

तचेव विकक्षितामन्यां पुरे। जुवाक्यामा इ,—"प्रैषामञ्जेषु विद्युरेव रेजते अमिर्यामेषु यह युद्धते ग्रुभे। ते कोड्यो धुनद्यो आजदृष्ट्यः खयं महिलं पनयना धूत्यः (१४)" इति। 'एषां' (मदतां) 'ग्रुञ्मेषु' (गमनेषु) 'असिः' प्रकर्षेष 'रेजते' (क्यते), स्वां अक्ष्यजनकानि मदतां गमनानीत्यधः। तच दृष्टानाः,—'विद्युरेव' (यद्या भर्टरहिता योषित्पासकाभावाद-त्यनं कसते तदत्)। यदा येभिर्मदतः 'वामेषु' (अलस्य नियामकेषु भेषेषु) 'युद्धते' (जसं योजयिना), 'ते' (मदतः) 'महिलं' (खकीयं महिमानं) 'स्वयं' 'पनयना' (खयमेव यव-स्वतं खवन्नि वा)। कोदृष्टास्ते?—'क्रीड्यः' (क्रीड्रापराः),

^{*} येऽमी मदतः इसेव पाठी भवितुं युक्तः।

'धुनयः' (कमयुकाः विषेदा बलवना रत्यर्थः), 'भाजवृष्टयः' (भाजो दीप्तिर्विषुदूर्ण येषां ते भाजवृष्टयः),। 'धूतयः' (अपूर्णः कम्पदेतवः)।

तचैव विकस्पितामन्यां याच्यामाइ,—''उपकरेषु घदिषधं ययं वयः इव महतः केनिचित् पथा। श्वीतिमा केष्त्रा उप वेष रथेन्या घृतमुचता मधुवर्षमर्धते (१६)" इति। हे 'महतः', 'यत' (यदा) वयं 'केनिचित् पथा' (केनिपि मार्गेष) 'उपकरेषु' (उपेत्रा चर्तयोषु ताइनीयेषु मेघेषु) 'यथिम्' 'चिष्नं' (गितं समादितवनः), यथा जलपूर्षमेघमास्माखयमा भवमा इत्यर्थः। तदानीं 'केष्ताः' (धनपूर्णग्रहसदृत्राः अलपूर्षमेघाः के 'वः' (युमाकं) 'रथेषु' 'उप' (समीपम्) ज्ञागतेषु सम्भु 'श्वीतिन्त' (सावयिन्त)। यूयमपि 'चर्चते' (यजमानाय) 'मधुवर्षे' (मधुररसे।पेतं) 'घृतं' (घृतसमानमुद्दकम्) 'चा' (समन्तात्) 'स्वतः' (सिश्चत)।

त्रच तनेव खिष्टकतः पुरे। उनुवाक्यामार, — "श्रीमिशि श्र हवीमिशः यदा हवना विश्वति । हव्यवाहं पुरिष्यम् (१८)" इति 'त्रियमिश्रिं' (तत्त्वागगतिखष्टकतं) 'हवीमिशिः' (त्रा-इति 'त्रियमिश्रिं' (तत्त्वागगतिखष्टकतं) 'हवीमिशिः' (त्रा-इति 'त्रियमिश्रिं' (प्रवानां यजमाना त्राइयिन्त) । कीट्यमिश्रिं? — 'विश्वति' (प्रवानां पालकं), 'हव्यवाहं' (देवान् प्रति हविषा वादारं), 'पुरुषियं' (पुरुषां बह्नां यजमानानां प्रीतिहेतुम्)।

^{ः *} सेघ इति सर्वेत्र पाठी न सम्यक्।

त्रवेव बाच्यामाइ,—"तर् हि प्रयक्त देवं घृत-खुता। श्रिप्त इच्याच वेदिवे^(१०)" दिति। 'प्रयक्तः' (निरक्तर-मनुतिष्ठकाः) खिलाः 'घृतसुता' (घृतं रचता) 'सुचा' युक्ताः 'तं' 'श्रिप्तं' 'देवम्' 'देवने' (खवते)। किमधें?—'इच्याच वेदिवें' (इविवेदिस्)।

षय यान्यत्यानि चीषि इवीयाचातानि, 'ऐन्हाग्रमेका-इत्रकपासमेन्द्रं चवं वैयकर्मणमेककपासम्' इति । तनेन्द्राग्रस्य याच्यानुवाक्ययोः प्रतीके दर्भयति,—''इन्द्राग्नी रेषिका दिवः अध्यद्वनम् (१०-१८)'' इति । 'इन्द्राग्नी रेषिका दिवः' इति पुराऽनुवाक्या। 'अध्यद्वनम्' इति याच्या। एतच्योभयं पूर्व-प्रपाठकस्यान्यानुवाके यास्यातम्।

श्रयेत्रस्य याच्यानुवाक्ययोः प्रतीके दर्शयति,—"दर्श वे। विश्वतस्यरीत्रं नरः(१०-१९)" इति । 'दर्श वे। विश्वतस्यरि' इति पुरेऽनुवाक्याः; 'दर्श नरः' इति याच्या । एतचे। भयम् 'द्रत्रं वे। विश्वतस्यरि इवामदे जनेभ्यः' (१।६।१२%) द्रत्यनु-वाके यास्यातम्।

भाष वैश्वकर्मणस्य याच्यानुवाकायोः प्रतीके दर्भयति,—
"विश्वकर्मन् इविषा वाद्यधाना विश्वकर्मन् इविषा वर्द्धनेन (१९-१९)"
इति । तन 'विश्वकर्मन् इविषा वाद्यधानः' इति पुराऽनुवाकाः,
'विश्वकर्मन् इविषा वर्द्धनेन' इति याच्या । एतचे।भयं 'इमा'
विश्वा भुवनानि जुद्धत्' इत्यनुवाके (४।६।२%) व्याख्यास्त्रते॥

^{*} अत्र 'य इमा' इति पाठो भवितुं युक्तः।

श्रय याच्या साकसेधेऽम्यनीक इति यागके।
श्राच्यभागानुवाको दे श्रिव्यंति वर्षिते॥
भद्रा,-तिस्वः प्रधाने खुः, खिसा, खिष्टकृति दयम्।
श्रिव्यां, सान्तपनीयाच्यभागयोद्धे, प्रधानके॥
सान्तितिस्वः, पिप्रीहि,-दयं खिष्टकृतीरितम्।
श्रिश्चा, यहसेधीये दे स्थातामाच्यभागयोः॥
यह, प्रधाने तिस्वः सुद्य, खिष्टकृति दयम्।

यन विनियागसंग्रहः,-

कीड़ं,-चतुष्टयं कोड़े, कीयाग्निं विमिति दयम्॥ संयाच्ये सामये ऋग्नी, ऋयचे ऋग्नायागके। इऋमग्निं चैक्यागे, विश्व,-दे वैश्वकर्मणि॥ चयक्तिंबदृषः प्रोक्ता श्रम्वाक इङ्गानिने॥

वेदार्थस प्रकाभेन तमा हार्दे निवारयन्॥ पुमर्थास्तुरा देवादिद्यातीर्थमदेवरः॥

रति सायनाचार्य्यविर्विते माधवीये वेदार्थप्रकामे क्रणायकुः -संहिताभाष्ये चतुर्थकाण्डे हतीयप्रपाठके चये।दभाऽनुवाकः॥ ०॥

इति त्रोमद्राजाधिराजपरमेश्वरवैदिकमार्गप्रवर्तकत्रीवीरबुक्क-भ्रयाख्यसम्बद्धाञ्चधुरत्थरेण सायनाचार्येण विर्विते माधवीये वेदार्थप्रकाश्चनामकतै सिरीययजुः संहिताभाय्ये चतुर्थकाण्डे द्वतीयः प्रपाठकः सम्पूर्णः ॥०॥

^{*} चत्र "तिमिति" हति पाठी भवितुं युक्तः। † चत्र 'हत्त्रसित्रं' हति पाठी भवितुं युक्तः।

श्रीगणेशाय नमः।

श्रव तैत्तिरीयसंहिताभाष्ये चतुर्थकाण्डे चतुर्थप्रपाठके

प्रथमाऽनुवाकः।

A

र्शिमरं सि श्रयं। य त्वा श्रयं जिम्ब प्रेतिरसि धमीय त्वा धमें जिम्बाम्बितिरसि दिवे त्वा दिवं जिम्ब सन्धिरस्यन्तरिश्चाय त्वान्तरिश्चं जिम्ब प्रतिधिरसि पृथिको त्वा पृथिवी जिम्ब विष्टुमीऽसि दृष्टी त्वा दृष्टिं जिम्ब प्रवास्त्रक्टे त्वा इंजिन्ब (१-०) श्रनुवासि राचिये त्वा राचिं जिम्बोशिगंसि॥१॥

वसुंभ्यस्वा वहं जिन्व प्रक्तेताऽसि रुद्रेभ्यस्वा रुद्रां जिन्व सुद्गितरं स्याद्त्र्यभ्यस्वाऽऽद्त्र्यां जिन्वोजोऽसि प्रक्रभंस्वा पिृद्धं जिन्व तन्तुरिस प्रजाभ्यस्वा प्रजा जिन्व प्रतनावाङ्गिस प्रमुभ्यस्वा पृत्रं जिन्व (०-९४) रेव-दस्योषधीभ्यस्वाषधीर्जन्वाभिजिन्वाभिजिन्दंसि युक्तग्रावेन्द्रीय त्वेन्द्रं जिन्वाधिपतिरिस प्राणायं॥२॥

त्वा प्राणं जिन्व युन्तास्येपानायं त्वापानं जिन्व स्र सपेंडिस चक्षंषे त्वा चक्षंजिन्व वयाधा चिस् श्रीचीय त्वा श्रीचं जिन्व चिष्टदंसि(१४-११) प्रष्टदंसि संटदंसि विष्टदंसि सहरोहें।ऽसि नीरोहें।ऽसि परो-हें।ऽस्यनुरोहें।ऽसि(११ १०) वसुकें।ऽसि वेषंश्रिरसि वस्य-ष्टिरसि(११-११)॥ ३॥

जुशिर्गिसि । प्राणाय । चिचेत्वारि श्या ॥ १ ॥ द्रिति तैत्तिरीयसंहितायां चतुर्थकार्यं चतुर्थप्रपाठके प्रथमाऽनुवाकः ॥०॥

।।। श्रीग**ये**शाय नमः ।।।।

यस निम्नसितं वेदा यो वेदेभ्शेऽखि अं जगत्। निर्मने तमदं वन्दे विद्यातीर्थम देश्वरम्॥ प्रपाठके हतीये दि चितयः पश्च वर्णिताः। चतुर्थे पश्चमचितेः श्रेषः सर्वे। विभीयते॥

तत्र प्रथमानुवाके स्रोमभागा उत्यक्ते। कसः, 'रियारिष प्रयाय ला षयं जिन्नेति स्रोमभागाः यप्त यप्त प्रतिदिश्रमविश्वष्टा मध्ये दिति। तत्र पूर्वस्यां दिस्सुपधेयानामिष्टकानां यप्त मन्त्रा-नाइ,—"रियारिष चयाय ला षयं जिन्न(१) प्रेतिरिष धर्माय ला धर्मे जिन्त्र(१) श्रन्तित्रिय हिते ला दितं जिन्त्र(१) यिश्व सा प्रधिर्वी जिन्त्र(१) प्रतिधिरिय प्रधिर्यो ला प्रधिर्वी जिन्त्र(१) विष्टभोऽिय हम्पे ला दृष्टिं जिन्त्र(१) प्रवासको लाइ- जिन्त्र(९)" इति । हे इष्टके, लमादित्यरिमारूपायि । श्रतः 'चयाय' (निवायिखार्ये) लाम् उपद्धामि, लं च असावं 'चयं' (निवाये) 'जिन्त्र' (प्रीचय, सन्पादयेत्यर्थः) । एवं यर्वत्र - योजनीयं । प्रकृष्टा गितर्यस्थाः सा 'प्रेतिः' । 'धर्मः' विहित- कर्मानुष्टानं । श्रनुकूसा गितर्यस्थाः 'श्रन्तिः' । स्थाः सर्गः । यावाप्रविद्योग्ध्यवित्रदेशः 'प्रस्थिः' । 'श्रम्तिः' । स्थाः सर्गः । यावाप्रविद्योग्ध्यवित्रदेशः 'प्रस्थिः' । 'श्रम्तिः' गर्भवंदिस्तिक- भागः, श्रम्तिष्ठश्वस्ते अस्त्रोक्षास्थान प्रस्वेति क्षास्थान वार्यते इति 'विष्टभः' मेषः । प्रथमं वाति गस्क्रित, प्रवक्तत इत्युषःकासः । उषा हि सर्वेदयात् पूर्वे प्रवक्ति, श्रतेषाविध्यर्थे । लाम् उपद्धामि ।

श्रय दिश्वपद्धां दिश्वपिधेयानामिष्टकानां यप्त मन्त्रानाइ,—
"श्रनुवाऽिष राचिये ला राचि जिन्त्र() उन्निगिष वसुम्यस्ता
वसं जिन्त्र() प्रकेतोऽिष दर्भेयस्ता दर्ग जिन्त्र() सुदोतिरस्मादित्येभ्यस्तादित्यां जिन्त्र(११) श्रोजोऽिष पिष्टभ्यस्ता पिष्ट्रं
जिन्त्र(११) तन्तुरिष प्रजाभ्यस्ता प्रजा जिन्त्र(११) प्रतनाणाङ्धि
पश्चभ्यस्ता पश्चरं जिन्त्र(१४)" इति। 'श्रनु' सर्वास्तमयात् पस्ताद्
वाति चरति प्रयातीति 'श्रनुवा' सायंग्रन्था। 'उन्निगिष'

^{*} चत्र प्रतिधित्रव्दार्थपनात्रकाऽ ग्रः प्रतित इव प्रतिभावि।

[†] षत्र 'षत उषासिद्धार्थम्' इति पाठो भवितुं युक्तः ।

(काम्यमानासि), श्रतः 'वसुभ्यः' (वस्नां प्रीत्यर्थे) लाम् छप-दधामि, लं 'वसं' 'जिन्न' (प्रीषय)। एवमुत्तरत्र योज्यं। प्रक्रष्टः केतः प्रकेतः, इद्राणां यः 'प्रकेतः', तद्रूपा लम् 'श्रसि'। ब्रोभना दितिदीप्तिः* 'सुदीप्तिः', सा लम् 'श्रसि'। 'श्रोजः' वर्षं, पितृषां यद्वलमनुग्रहसमधं तद्रूपा लम् 'श्रसि'। 'तन्तुः' पुत्रपात्रादिसान्तव्यं। स्वकीयान् गवादिपश्रून् श्रपदर्त्तुम् श्रागता था परकीयसेना सा प्रतना, तां सद्दते श्रभिभवतीति 'प्रतनाहाद'।

त्रय पित्रमायां दिख्रुपधेयानामिष्टकानां यत्र मन्दानाइ,—
"रेनद्खोषधोभ्यस्तोषधीर्जन्न(१॥), श्रमिजिद्धि युक्त्यावेन्द्राय
लेन्द्रं जिन्न(१६), श्रधिपित्रिषि प्राणाय ला प्राणं जिन्न(१०),
यन्नाद्यपानाय लापानं जिन्न(१०), बण्डपेंऽिष चचुवे ला
चचुर्जिन्न(१८), तथोधा श्रमि श्रोचाय ला श्रोचं जिन्न(१०),
विद्यद्धि(१६)" दति। रा श्रखासीति 'रेनत्' श्रोषधिमाध्यं
यद्धनं तदत् जोवनं, तद्रूपा लम् 'श्रधि'। श्रमितो जयि प्रत्रून्
श्रमिभवसीति 'श्रमिजित्'। पाषाण्यदृशो वज्रमिव 'युक्तः' (इस्रो
स्त्रीक्तः) 'ग्रावा' यद्यासी 'युक्त्यावा'। 'इन्द्रः' चजुरादोन्द्रियास्विध्याय पास्तिया। यः श्रामक्ष्यो वायुः स 'श्रिपितः',
तद्रूपा लम् 'श्रसि'। विद्रिजित्ततः श्रासस्य पुनरप्यनाःप्रवेशाय
नियामको थे। वायुविशेषः स 'यन्ता', तद्रूपा लम् 'श्रसि'।
सम्यक् सर्पयित बस्नेनित 'संसर्पा' श्रहो धनदृष्टिप्रसारण्या धनम्

^{*} अब दीतिदीं तिरिति पाठी भवितुं युक्तः।

त्रवित एवं मामवतुं धने दृष्टिं प्रधारय । 'वयः' पची तदम् द्धातीति 'वयोधाः' पची, तन तम गता खकाये साधयति, तथा श्रीचेन्द्रियम्भाः तम् मन्दं प्राप्य निश्चिने ति, तच्च किरूपा तम् 'श्रीय'। तिसः 'श्राष्टतः' (श्रवयवविश्वेषाः) यस्य मिथ्यो-भावस्य से।ऽयं 'चिष्टत्',—पुमान् योषित् सङ्गस्रोद्यवयवनयं, तथा-विधिमिथुनीभावरूपा तम् 'श्रीय'।

श्रणेदी चां दिशि उपधेयाना मिष्टकानां यत्र मन्ताना इ,—
"प्रवद्धि(११), संवद्धि(११), विवद्धि(१४), स्र्रोहोऽधि(१५),
नीरोहोऽधि(१९), प्ररोहोऽधि(१०), श्रनुरोहोऽधि(१८)" दृति ।
स्रोपुद्वयो: संसर्गान नारभाविनी या प्रवृत्तिः सा 'प्रवृत्, तद्रूपा
लम् 'घि'। प्रवृत्यन नारभावी यः सम्यग्यापारः से।ऽवं 'संवृत्,
तद्रूपा लम् 'श्रिथं। सङ्घापारादृद्धं या निवृत्तिः सा 'विवृत्,
तद्रूपा लम् 'श्रिथं। सङ्घापारादृद्धं वोजस्य केचे यः समारोपः
से।ऽयं 'संरोहः', तद्रूपा लम् 'श्रिथं। केचे चित्रस्य वीजस्य
निःश्रेषेष गर्भाश्रययाप्तिः 'नोरोहः', तद्रूपा लम् 'श्रिथं। गर्भाश्रये याप्तस्य श्ररीराकारः परिषामः 'प्ररोहः', तद्रूपा लम् 'श्रिथं।
तस्य च परिष्तस्य श्ररीरस्यानुक्तुकः पुचादिक्षेष प्रादुर्भावः 'श्रनुरोहः', तद्रूपा लम् 'श्रिथं।

^{*} खन 'खन्नो' रत्यन खन्निरिति एवं 'मामवतुं' रत्यन मामवितु-मिति पाठो भवितुं युक्तः। सम्यक् सर्पयति बन्नेनानिनान्नीति खनु मां विति धनद्षिप्रसार्याय दृष्टि इति का॰ ए॰ पु॰ एवं B. पु॰ पाठः।

[†] तदत् धावतीति खादर्भपु • पाठः।

[‡] तत्तत् इति खादर्भपु॰ पाठः।

श्रथः मध्यदेशे खपधेयानामिष्टकानां चीन् मन्तानाइ,— 'वसुकाऽसि^(१६), वेषश्रिरसि^(६०), वस्रष्टिरसि^(६९)'' इति । 'वसु' (धनम्) श्रक्षास्त्रोति 'वसुकः' (धनीपुषः के तद्रूपा लम् 'श्रसि'। 'बेषः' यात्रं धनं, वेषं श्रयति चेवत इति 'वेषश्रिः' (प्राप्तस्थाभिष्टद्भि-कारीत्यर्थः), तद्रूपा लम् 'श्रसि'। 'वसुनः' (श्रभिष्टद्भस्य धनस्थ) 'श्रष्टिः' (भोजनं) यस्राक्षे। 'वस्रष्टिः ।' (धनं सन्यास्त तद्भिष्टद्भिस्य हाला तथाऽभिष्टद्भा जीवतोत्यर्थः), तद्रूपा लम् 'श्रसि'।

एतेर्मकीः साध्यमुपधानं विधन्ते,—"घन्नेन वै प्रजापितः प्रजा प्रस्कात ता स्नोमभागैरेवास्त्रत यत्स्रोमभागा उपद्धाति प्रजा एव तद् यजसानः स्रजते" (५।३।६ प्र॰) इति । 'प्रजापितः' यदा 'घन्नेन' 'प्रजा' 'प्रस्कात', तदानीं यज्ञमध्यवित्तंनः स्नोमः भागसन्त्रा एव वृद्धिहेतवः, निवदादिस्नोमयुकानि यानि विख्यवमानादिस्नोत्राणि, तानि भजन्ते इति । रिक्षिरिव्यादयो सन्त्रा स्नोमभागाः । ब्रह्मा तु स्नोत्ताष्ट्रम् प्रति रिक्षिरिव्यादयो सन्त्रा स्नोमभागाः । ब्रह्मा तु स्नोत्त्राष्ट्रम् प्रस्किते सन्त्रमुचार्य प्रभवनुज्ञान।ति । एतच प्रस्माभिः पूर्वम् ''च्ययो वा इन्द्रं प्रव्यचम्" (३।५।१) इत्यनुवाने स्पष्टमुक्रम् । प्रति रिक्षिरिव्यादयो सन्त्राः स्नोमभागः । तद्रप्धानेन 'यजन्मानः' 'प्रजाः' 'स्रजते' 'एव' ।

ता एता स्रोमभागास्या रष्टका यज्ञप्रतिष्ठालेन च कमेल प्रश्नंसति,—"दृष्यस्यतिर्वा एतद् यज्ञस्य तेजः समभरद् यत्स्रोतः

^{*} धनिपुत्रः विवंता धनी पुत्र इति पाठो भवितुं युक्तः।

[†] वकारस्थाने यकारः कथमिति चिन्तनीयम्।

भागा यत्सीमभागा उपद्धाति सतेत्रसमेदाग्निं चिन्ते हरू-स्वतिवी एता बच्च प्रतिहासपम्यत् चत्कासभागा चत्कास-भागा जपदधाति यञ्चस प्रतिष्ठित्यै" (५।३।६ स्र॰) इति ।

सामान्येन विचितं पुनर्विज्ञेषाकारेष प्रशंसति,—"सप्त सप्ताप-इधाति सवीर्यंताय तिसी मध्ये प्रतिष्ठित्ये" (५।३।६ अ.०) इति। एकैकस्तां दिक्रि सप्त सप्तापधानेन स्वीर्धलं वाह्यं भवति। 'मधे' तिस्वाम्पधानेन प्रतिष्ठासीय भवति ।

प्रजापति: स्रोमभागैरेव प्रजा श्रद्धजत इति सामान्यत उक्तं, तच कै: खोमभागै: किमस्जत ?—इति एकैकिमिष्टकामध्यं विअञ्जते, - ''रियारित्येवादित्यमस्जत, प्रेतिरिति धर्मम्, प्रनितिरिति दिवश, सन्धिरित्यक्तरिषं, प्रतिधिरिति पृथिवीं, विष्टमा इति . ष्टष्टिं, प्रवेत्यदः, श्रनुवेति राचिम् , उन्निगिति वस्नन् , प्रकेत इति इहान्, सदीतिरित्यादित्यान्, श्रोज रति पितृन्, तन्तुरिति प्रजाः, प्रतगावाजिति पश्चान् , रेविदित्योषधीः" (५।३।६ %) इति । प्रत रिकारित्यादया मन्त्रास्त्तत्युज्यपदार्थंसमन्धिलेन पूर्वे बाखाताः। श्रतस्तेन तेन मन्हेस तत्तत्पदार्धमस्त्रतत्व्यपनम्। एवं पञ्चदप्रभिर्मन्त्रेः स्टिट्सिस्ता ।

त्र्य सृष्टसः जगते। रचाहित्वं वे।स्त्रमन्त्रस्य दर्भयति,— "त्रभिजिद्सि युक्तगावा इन्हाय लेन्हं जिम्बेटोव द्विषता वज्रं पर्दे। इदिभिजित्ये" (५। १।६ अ०) इति । अस्मिन् मन्ते उक्क एव यम्बाध्यते । हे वज्ज, लं 'ग्रभिजित्' (जयहेतु:†), 'युक्तपावा'

^{*} सबीर्थंतस्य इति पाठी भवितुं युक्कः। † सर्व्यक्षिन् पुक्तके व्यक्ति इति निर्विक्षकी पाठी न सम्यगिवाभाति।

(खापितपावास इव हुड:) च 'ऋषि'। श्रत इन्द्रश्रीत्यर्थे लां पर्यूहामि, तेन 'इन्द्रं' प्रोषय इति मन्त्रार्थः । प्रजापतिरेतकान्त-मुचारयन् द्विषदस्तेन सृष्टस्त जगतः प्रेरितवान्, तेन बाधक-विनामे सति स्व्याऽभिजयोऽभ्रत्।

याः सष्टाः प्रजा वज्रीणाभिर्वितासासु शरीरक्षासु प्रजासु मन्त्रचतुष्ट्येन दन्त्रियस्वापनं दर्शयति,—"ताः प्रजा ऋपप्राणा श्रस्जत तास्विधपतिरसीत्येव प्राणमद्धाद्, यन्तेत्यपानः, सःसर्प दति चकुः, वयोधा दति श्रोत्रम्" (५।३.६%) दति।

एवमिन्द्रिययुक्तैः श्ररीरै खंवहरक्तीषु प्रजासु मन्त्रचतुष्टयेन मिथुनीभावसम्पत्तिं दर्शयति,—"ताः प्रजाः प्राणतीरपानतीः पम्यन्तीः प्रदेखतीर्ने मिथुनी श्रभवन् तासु विट्टमीत्येव मिथुनमद्धात्" (५।३।६ श्र•) इति ।

मिथुनीस्तासु प्रजासु मक्त्रचतुष्टयेन प्रजात्पाद्नसामधी दर्शयति,—"ताः प्रजा मिथुनोभवन्तीर्न प्राजायन्त ताः सूर-राष्ट्राऽसि नौराष्ट्राऽसीत्येव प्राजनयत्" (५१३।६४०) द्रति।

श्रपत्थे पेतानां प्रकानां प्रतिष्ठा भवती त्येतह्र्यंयति,—"ताः प्रजाः प्रजाता न प्रत्यतिष्ठन् ता वस्रके । उसि, वेषश्रिर्धि, वस्य- ष्टिर नीत्येवेषु लेकिषु प्रत्यस्थापयद् यदाद वस्रके । उसि वेषश्रिर्धि वस्यष्टिर सीति प्रजा एव प्रजाता एषु लेकिषु प्रतिष्ठापयिति" (५। ३।६ श्र•) इति ।

एतदेद्नं प्रशंसति,—"सात्मान्तरिचः रे।इति स प्राणाऽ-मुश्चिकोको प्रतितिष्ठत्यचर्धकः प्राणःपानाभ्यां भवति च एवं वेद" (५।३।६ प्र०) इति । 'सात्मा' (सप्तरीरः) 'त्रकारिचं' गला चचगत्थवीदिखेलेषु भेगाम् भुक्के, खर्मकीकेऽपि प्राणप्ररीरयुक्र एव 'प्रतितिष्ठति', 'प्राणापामार्था' कदाचिदपि न वियुक्ते। 'भवति'।

श्रव विनिधागसंग्रहः,—

इष्टका रिकारित्येकचिंग्रनु स्रोमभागका। इति।

दित सायनाचार्यविरचिते माधवीये वेदार्थप्रकाशे कृष्णयजुः-संदिताभाय्ये चतुर्थकाण्डे चतुर्थप्रपाठके प्रथमाऽनुवाकः॥०॥

रार्च्यास् प्राची दिग्वसंवक्ते देवा अधिपतशाऽगि-हेंतीनां प्रतिधृक्तां चिट्टत् त्वा क्तोमः पृष्टिक्याः श्रयत्वाच्यंमुक्यमव्यंययत् क्तभातु रयन्त्रः साम् प्रतिष्ठित्ये (१) विराइंसि दिख्या दियुद्राक्ते देवा अधि-पृतय इन्द्रें। हेतीनां प्रतिधृक्ता पंचद्शक्त्वा क्तोमः पृष्टिक्याः श्रयतु प्रजंगमुक्यमव्यंययत् क्तभातु दृहत् साम् प्रतिष्ठित्ये (१) सुचाइंसि प्रतीची दिक्॥१॥

श्वादित्यास्तं देवा श्रधिपतयः सामा हेतीनां प्रति-धृत्तां संसदशस्त्वा स्तोमः प्रश्वित्याः श्रयतु महत्त्वतीय-मुक्यमत्र्यंथयत् स्तभातु वैकृपः साम् प्रतिष्ठित्ये (१) खराड्स्युदीची दिक् विश्वें ते देवा श्रधिपत्या वर्ष्या हेतीनां प्रतिधर्तैकविश्यस्ता स्तोमः पृश्वियाः श्रयत् निष्नेवत्यम्क्यमर्थययत् स्तभातु वैराजः साम् प्रति-ष्टित्ये अर्धिपत्यसि रहती दिङ् मुरुतंस्ते देवा ऋधि-पतयः॥ २॥

रहस्पति हें तीनां प्रतिधृत्ती चिंगवचयस्त्रिः श्री त्वा स्तीमा पृथिव्याः श्रंयतां वैश्वदेवामिमारते उक्ये श्रव्यंत्रयन्ती स्तस्रोताः शाकर्रेवते सामनी प्रति-ष्ठित्ये^(x) अन्तर्रिक्षायप्वयस्त्वा प्रथम्जा देवेषु दिवा मार्चया वरिणा प्रयन्तु विधुत्ती चायमधिपतिश्च ते त्वा सर्वें संविदाना नार्कास्य पृष्ठे सुवर्गे खोके यर्ज-मानच सादयन्त् (१) ॥ ३॥

प्रतीची दिक्। महतस्ते देवा ऋधिपतयः। चला-रिश्रम् ॥ २॥

इति तैत्तिरीयसंहितायां चतुर्थकाएडे चतुर्थप्रपाठके दितीयाऽनुवाकः॥ ०॥

प्रथमेऽन्वाके स्तामभागाच्या दृष्टका उन्नाः। श्रथ दितीये नाकसदाख्या द्रष्टका श्रभिधीयन्ते। कल्पः, 'राज्यसि प्राची दिगिति पश्च नाकसदः प्रतिदिश्वमेकां मध्ये' इति। पाठस्त,-तच प्रथमामाइ,—''राश्चास प्राची दिम्बस्तसे देवा श्रधिपतथोऽग्निर्देतीनां प्रतिधन्तां चिद्यला स्तोमः प्रथियाण् श्रयलाच्यमुक्यमय्ययम् स्त्रधातु रथकर्ण् साम प्रतिष्ठिती(१)" इति।
हे इष्टके, लं 'राश्ची' (राजमाना) 'प्राची दिक्', तद्रूपा लम्
'श्रसि'। 'ते' (तव) 'वसवः' श्रष्टसङ्खाका 'श्रधिपतयः' (श्रधिकं
पाखितारः); 'श्रग्निः' तवोपद्रवकराणां 'हेतीनां' (परकीयायुधानां) 'प्रतिधन्तां' (निराकर्ता); थोऽयं चिद्रदाख्यं-स्तोमः', स
लां 'प्रथियां' स्तापयतु। यत् 'श्राच्यमुक्यम्' (श्राच्यमामकं,
'प्र वो देवायाग्रये' इत्यादिकं श्रस्तम् श्रविद्यतं, लाम् 'श्रव्ययत्'
(ख्यारिक्तां सुर्वन्*) 'स्त्रधातु' (दृद्दीकरे।तु)। यत् 'रथक्तरं'
'साम' तत्, 'प्रतिष्ठितीं' तव चिरावस्तानाग्र) भवतु। एत्रमुक्तरेखिप मक्तेषु थोच्यम्।

श्रय दितीयं मकामार,—"विराद्धि द्विका दिगुद्रा के देवा श्रधिपतय दक्तो हेतीनां प्रतिभक्ता पश्चदश्रक्षा कोमः प्रियाप् श्रयतु प्र जगमुक्यमय्ययत् सभातु दृश्काम प्रति- हित्ते (१)" दति । तक्तसम्बन्धिन व्विद्धदादय विभाक्षे च "मिध-मातिष्ठ" (१। ११ १) दृष्टा नैवं व्याख्याताः । "वायुर्ये गाः" दृष्टादिकं शक्तं 'प्र जगम्' ।

श्रथ द्वतीयं मन्त्रमाइ,—''सम्राड्सि प्रतीची दिगादित्यासी देवा श्रधिपतयः बामा इतीनां प्रतिधक्तां सप्तरक्रसा सोमः

^{*} कुर्वत् इति पाठा भवितुं युक्तः।

[†] तत्तत्सम्बन्धिवदादय इतंत्रः का॰ इ॰ गुक्तके गास्ति।

ष्ट्रीयबार त्रवतु महलतीयम्क्यमयथयत् स्रक्षातु वैद्भार माम प्रतिष्ठित्ये (२) द्ति। "चा मा रघं यथे।तयः" द्रायादिकं 'मदलतीयं' प्रस्तम् ।

श्रव चतुर्घे मन्त्रमाष, — "खराड्खुदीची दिक् विश्वे ते देवा अधिपतयो वर्षो हेतीनां प्रतिधर्त्तेकविश्वस्वा स्रोमः पृथियाश् त्रवतु निष्केवस्वमुक्यमस्ययवत् स्वक्षातु वैराजः साम प्रतिहित्ये (४)" इति। "प्रभिला प्रद्रो नोनुम" इत्यादिकं 'निम्केवस्यम्'।

त्रघ पश्चमं मकामार,—"त्रधिपत्यवि टरतो दिश्चरतसे देवा ऋधिपतया टहरातिईतीमां प्रतिधर्मा निषवयदिल्ला हो। ला सोमी पृथिबार अवता वैसदेवाग्रिमास्ते उस्वे प्रवाययनी साक्षीता शाकररैवते वामनी प्रतिष्ठित्वे (६)" दति। अधिकं पास्विची 'मधिपत्नी'। 'रुहती दिक्' (प्रीहा ऊर्ड्डा दिक्)। "तस्रवितुर्वं बीमदे'' इत्यादिकं त्रक्तं वैसदेवम्। "वैश्वानराय ष्ट्रणाजव" रत्यादिकं बक्तम् श्राधिमारतम्।

त्रच वर्वेव्यपि मक्तेव्यन्वज्ञनीयं त्रेवमाइ,--"प्रमारिचाय-र्षयस्ता प्रथमका देवेषु दिवा माचया वरिषा प्रथमु विधर्मा चायमधिपतिञ्चते ला सर्वे संविदाना नाकस्य पृष्ठे सुवर्गे लोके यजमानच साद्यम्।⁽⁽⁾" इति । 'देवेषु' मध्ये याः* 'प्रथमजा' 'ऋषयः' (नारदाद्याः), त्रत एव सार्यते, 'देविर्षिनारदसाया' इति, 'ते' (महर्षयः) लां (इष्टकां) 'दिवा' 'मानया' (श्राकात्रस् यत् परिमाणं, तेन परिमाणेन) 'प्रथमु' (विसारयमु)।

^{*} ये इति पाठी भवितुं युक्तः।

किमर्थे?। श्रमारिचार्थे—श्रमारिचं व्याप्तुमित्यर्थः। की हु श्रेम प्रमाणेन?—'वरिषा' (वरषीयेन)। न केवसम्बवः प्रथम्, किम्तु 'विधर्मा चायमधिपितय' (थे। ध्यमिष्टकानां निष्पाद विता यस पासकः) ताविष प्रथतां। तेन मर्चयः विधर्मा श्रिषपितय 'सर्वे' 'संविदानाः' (परस्परमैकमत्यं प्राप्ताः) 'नाकस्य' 'पृष्ठे' (स्वर्गसङ्क्रसास्य चेनस्थापि) 'ला' 'सादयम्तु', 'यजमानश्च' 'स्वर्गे' 'स्रोके' 'सादयम्तु'।

त्रत्र यान्युद्दाइतानि बस्ताधि तान्याश्वस्त विशेषित,—
"प्रवी देवायेत्याच्यम्पसम्मनुयादिति। वायुर्गे मा बद्धप्रीरिति
सप्तानां पुरेदिषां तस्यासस्याः उपरिष्टामृषस्तृषं ग्रंवेदायवायादि दर्गतेति सप्तद्रशा दितीयां, प्रजमे जिः इति। मदलतीयं
बस्तं ग्रंवेत् श्रक्षयों भा सावामिति माध्यन्दिने बस्तादिखाद्याव श्रा ला रथं यथातय इदं वसा सुतमंध इति मदलतीयस्य
प्रतिपदनुषराविति। निष्वेवस्यस्ताभि ला ग्रूर् ना नुमाऽभि ला
पूर्वपीतय इति प्रमाणा स्रोत्यानुद्भपा धदि रथक्तरप्रद्रमिति।
तस्यवितुर्वणोमद्रे द्याना देवस्वितिहित वैसदेवस्त प्रतिपदनुषराविति। स्वभ्यमाग्रिमादनं तस्यां पक्तः स्वगावानं पक्तः श्रस्याचेद्धं वंश्व
इतरां समानमुक्तमेनां वचनेन वैसानराय प्रथुपाञ्चे" इति।

राज्ञासीत्यादि भिर्मन्त्रैः साध्यमुपधानं विधत्ते,—"नाकसद्धि-वैदिवाः सुवर्गे स्रोकमायम् तं नाकसदां नाकसत्तं चत् नाकसद

^{* &#}x27;ते' च हति पाठो भवितुं युक्तः।

[†] उत्तमे ये इति इ॰ पु॰ पाठः।

उपद्धाति नाक्सद्भिरेव तद्याजमानः सुवर्गे स्रोक्सेति" (५।३। ७ प्र•) इति। 'नाकः' (सर्गः) सद्यते प्राप्यते यैर्मन्त्रेनीकः ते 'नाकसरः',तथा च मन्त्रसिङ्गं 'नाकस्त पृष्ठे सुवर्गे स्रोकं यजमान स षादयम्, रति, तैर्मन्तेरपधेया इष्टका भपि 'नाकषदः'। यसात् ताभिः 'देवाः' खर्गे गताः, तस्रात् 'नाकसत्' इति नाम सन्पन्नं, तद्पधानेन यजमानः खर्गे लोकं प्राप्नीति।

द्:खनिवारकलेन तद्पधानं प्रमंसति,—"सुवर्गा वै खोका नाका चर्चीता उपधीयनी नासा श्रकं भवति" (५।३।०५०) इति। कं सुखं 'त्रकं' दःखं, न विद्यते तदुःखं यत्र सेाऽयं 'नाकः'; खर्गस्य तादृषः। ततो नाकसरामुपधाने यजमानस्य इःखं न भवति।

पनर्पि खानसमादकलेन प्रश्नंसति,—"यजमानायतनं वै नाक मदो यन्नाकसद उपद्धात्यायतनसेव तदानमानः कुरुते" (४।३।७४०) इति।

पृष्ठक्षेत्रसम्बन्धितेचेत रूपलेन पुनः प्रत्रंसति,—"पृष्ठानां वा एमनेज: सम्भृतं यञ्चाकषदे। यञ्चाकषद उपद्धाति प्रष्ठानामेव तेनाऽवद्ये" (५।३।७५०) इति॥

श्रव विनियागसंग्रहः,--

राजि[†],--नाकसदः पञ्च, सर्वेभेषेाऽन्तरित्ययम् ।

इति सायनाचार्यविर्चिते माधवीये वेदार्थप्रकान्ने हृज्ययज्ः-संचिताभाये चतुर्घकाण्डे चतुर्घप्रपाठके दितीयोऽन्वाकः॥ •॥

Digitized by Google

^{*} अन 'नाकः' इति ग्रन्दः अधिव इव प्रतिभाति।

^{† &#}x27;राभी',-इति पाठी भवितुं युक्तः।

श्रृयं पुरे। इरिकेशः ह्यरिश्मास्तस्य रवयुत्सञ्च रवै। जाख सेनानियाम् ग्यै। पुष्टिकस्युका च कतस्युका चाप्युरसे। यातुधाना हेती रक्षार्रस्म प्रहेतिः (१) श्रृयं देख्यि विश्वकर्मा तस्य रवस्व नश्च रवेचित्रश्चे सेनानियाम् ग्यौ। नेन्का च सहज्ञ्या चाप्युरसे। दंख्यवं: प्रश्वी हेतिः पौर्षवेया वधः प्रहेतिः (१) श्रृयं पृथादिश्वव्येषास्तस्य रयेपे। तृथासंमर्वेश्व सेनानिया-मृग्यौ। पृन्वोचन्ती च ॥ १॥

श्रृन्दीचेन्ती चाष्रसी स्पी द्रेतिक्षेत्राः प्रहेतिः (२)
श्रृयमुन्तात् संयदंसुस्तस्य सेन्जिचं सुवेशं स सेनानिग्राम्खी विश्वाची च घृताची चाष्रसावापा द्रेतिवीतः प्रहेतिः (४) श्रृयमुपर्य्वीग्वंसुस्तस्य तार्क्ष्यारिष्टनेमिश्व सेनानिग्राम्ख्यावुर्वशी च पूर्विचितिस्वाष्रसी विद्युद्देतिर वृस्पूर्जन् प्रहेतिः (४) तेभ्या नम्स्ते ने।
सद्दयन्तु ते यं ॥ २ ॥

दियो यर्थ ने दिए तं के जंभे द्यामि (१) आयो स्वा सदने साद्याम्यवतम्बायायां नमेः समुद्राय नमेः समुद्रस्य चर्थसे (१) परमेषी त्वा साद्यत दिवः पृष्ठे व्यचस्त्रतीं प्रथस्त्रतीं विश्वमतीं प्रभूमतीं पर्मुस्तीं

^{*} गायं खतन्त्री मन्तः।

दिवं यच्छ दिवं दृश्ह दिवं मा हिर्म्सीर्विश्वसी प्राणा-यापानायं व्यानायादानायं प्रतिष्ठाये चरिचाय सर्थं-स्वाभिपातु मुद्या खुस्या, च्हुर्दिषा प्रनंमेन तया देवतंयाऽक्रिर्स्बद्भवा सीद्(७)। प्रायदश्ची न यवसे त्रविष्यन् युदा मुद्रः सुवरं णादु व्यर्थात्। त्रादंस्य वातो अनु वाति श्रोचिर्धं सा ते वर्जनं कृष्णमंस्ति(ह)॥ 131

प्रमोर्चन्ती च। यः। खुस्या। श्रष्टाविरं शतिय ॥ ३॥ इति तैतिरीयसंहितायां चतुर्थकाएडे चतुर्ध-प्रपारके तृतीयाऽनुवाकः ॥०॥

दितीयेऽनुवाके माकसदाख्या रष्टका उक्ताः। श्रथ हतीये चोड़ाख्या रष्टका उच्चनो । कस्यः, 'तासु पुरीवमधूचा, 'त्रयं पुरः' इति पञ्चचे। इ. प्रभुपद्धाति, देखं मनसा धायन् पञ्चात् प्राचीमुक्तमाम्' इति । तत्र प्रथममादः,—''वयं पुरा दिक्केशः सर्वरिमस्य रचयस्य रचे।जस वेनानिपामधी पुञ्जित-स्रका च कतस्रका चापारकी यातुधाना हेती रचा १ कि प्र-देतिः^(९)" दति । 'त्रयम्' (त्रग्निः) 'पुरः' (पूर्वेखां दिज्ञि) 'इरिकन्नः' (दिरप्यवर्षकेन्नसमाना व्याखा यसासी इरिकेन्नः), 'तख' (तादुष्ठसाग्रेः) परिचारका दा 'वेगानि-गामधा',-

एकः वेनां परराच्छेषु नयित, त्रपरः साराच्छे यामं नचित । तम 'र्चग्रसः' इति वेनान्छे नामधेयं । ग्रस्तो गर्धवान्", बस्त रखे महती बच्चा वे। श्वं 'र्चग्रसः' । 'र्च्छोजाः' इति ग्रामच्छो नाम-धेयम् । त्रोजा वसं, यस रचारोहणे वसाधिक्यं, य 'र्घ्योजाः' । यथैते। मुख्या परिचारका, तथा हे 'त्रप्रची' परिचारिके, तम 'पुच्चिकस्थला' इत्येकस्या नामधेयं, 'कृतस्थला' इत्यपरस्या नामधेयं । 'चातुधाना' 'रचांचि' 'च' इत्यवान्तरज्ञातिभेदे।ऽव-गन्तस्यः । 'हेति—प्रहेती' त्रप्यायुधविशेषा,—तम यातुधाना क्रूरास्तीच्छाहेतिस्वरूपाः ; 'रचांचि' त्रितिक्रूराः तोच्छाप्रहेति-स्वरूपाणि । यस्याग्नेरिदं सर्वे, हे इष्टके, तदिग्नस्वरूपाऽसीत्यभि-प्रायः । एवं सर्वेन योज्यम् ।

यथ दितीयं मकामार,—"ययं दिख्णा विस्तर्मा तस्य रचसास रचेषित्र सेगानियामस्था मेगका च सर्जन्या चास्त्रसी दंख्याः पत्रवा हेतिः पाद्यसेयो वधः प्रहेतिः(१)" दिता। विसानि कर्मास्त्रीश्रीचादीनि यस्त्राग्नेः, सेऽयं 'विस्वकर्मा' दिख्यां दिखि स्तितः। 'तस्य' 'रखसानः' 'सेगानीः'। 'रचे-चित्रः' 'यामसीः'। 'मेगका' दिति 'सर्जन्या' दिति चास्त्रसेः नामधेयं। 'दंख्यवः' (दंबनशीखा याज्ञादयः) 'हेतिः'। सङ्गामेषु पुद्वसम्बन्धी यो 'वधः' स 'प्रहेतिः'।

त्रथ हतीयमाइ,—''त्रयं पञ्चादित्रयचासस्य रथप्रेतिञ्चा-समरचञ्च मेनानियामची प्रचीचनी चामुसीचनी चामुरसी

^{*} प्रत्ये। गन्धर्वाम् इति इ॰ पु॰ पाठः।

यपा देतिर्थाष्ट्राः प्रदेतिः (१)" इति । विश्वं व्यवति प्राप्नेतिति 'विश्वव्यवाः' । सर्वमन्यत् पूर्ववद्यास्थेयम् ।

श्रव चतुर्थं मन्त्रमाइ,—''श्रयमुक्तरात् संयदसुसाय सेनजिष सुवेणश्र सेनानियामधी विश्वाची च घृताची चाप्तरसावापे। हेतिवीतः प्रहेतिः(॥)'' इति । 'संयत्' (प्राप्तं) 'वसु' (धर्मं) यखाग्नेः, साऽयं 'संयदसः', सोऽग्निः 'उक्तरात्' (उक्तरस्रां दिशि) वर्कते । श्रेषं पूर्ववत् ।

श्रय पश्चमं मन्त्रमाइ,—"श्रयमुपर्यर्वाम्बस्सस्य तार्च्यद्या-रिष्टनेमिस्य सेनानियामणावृतेशी च पूर्वचितिद्यापरसा विद्य-द्वेतिरवस्पूर्णन् प्रहेतिः (१) इति । 'श्रवीमसः' (श्रधीमसलेन) 'वसुनो' (मेघात्) भूमी पतनात् वैद्युतोऽग्निस्तयोच्यते, स च 'खपरि' (ऊर्द्वायां दिश्वि) प्रवर्त्तते । भयहेतुः प्रकाशा (१) 'विद्युत्' । मारको ज्ञनः 'श्रवस्कूर्णन्' ।

एतेषु पश्चस्यि मकेंद्रगृतश्चनीयं श्रेषमाइ,—"तेश्वो नमसे ने। स्टड्रम्मु ते यं दिशे। यश्च ने। देष्टि तं वे। जभे द्धामि(९)" इति। योऽयमग्निः, ये। च 'सेनानिग्रामण्डीः', ये च 'श्रपुरसे।' ये। च 'हेतिप्रहेती', 'तेश्वः' सर्वेश्वः 'नमः' श्रस्तु 'ते' सर्वे 'नः' (श्रस्तान्) 'स्टड्यम्मु' (सुखयम्मिः)। 'यं' वैरिणं 'ते' वयं 'दिशः', 'यश्च' वेरी 'नः' (श्रस्तान्) 'देष्टि', 'तं' वैरिणं युग्नाभिरमुस्टहीते।ऽहं 'वः' (युग्नाकं) 'जभे' (विदारितान्द्रो) 'द्धामि' (ख्राप्यामि)।

^{*} संखयन्तु इति पाठो भवितुं युक्तः।

एकः सेनां परराच्छेषु नयति, अपरः साराच्छे गामं नवति । तम 'र्थयस्यः' इति सेनान्छे नामभेषं । स्रक्षे गर्धवान्", यस रखे महती ह्या से। वं 'र्थस्यस्यः' । 'र्थीजाः' इति गामछो नाम-भेयम् । त्रीजा वसं, यस र्थारोहणे वसाधिकां, य 'र्थीजाः' । यथैते। मुखी परिचारकी, तथा हे 'त्रप्रमी' परिचारिके, तम 'पृद्धिकखला' इत्येकस्या नामभेषं, 'क्रतखला' इत्यपरस्या नामभेषं । 'यातुभाना' 'र्चांसि' 'च' इत्यवान्तरज्ञातिभेदे।ऽव-गन्तवाः । 'हेति—प्रहेती' अपायुभविभेषा,—तच यातुभाना कूरासीद्याहेतिस्वरूपाः, 'र्चांसि' अतिकूराः तीद्याप्रहेति-स्वरूपाणि । यस्योग्नेरिदं सर्वे, हे इष्टके, तद्गिस्वरूपाऽसीत्यभि-प्रायः । एवं सर्वेन योज्यम् ।

त्रथ दितीयं मक्तमार,—"त्रयं दिख्णा विश्वतमां तस्य रचसास रचेषित्रस सेगानियामस्यो मेगका च सर्जन्या चापरसे। दंद्यायः पत्रवे। हेतिः पे। इतेयो वधः प्रहेतिः (१)" दिता। विश्वानि कर्मास्यग्निहोत्तादीनि चस्याग्नेः, से। इयं 'विश्वकर्मा' दिख्यां दिखि सितः। 'तस्य' 'रचस्यनः' 'सेगानीः'। 'रचे-चित्रः' 'ग्रामसीः'। 'मेगका' दिति 'सर्जन्या' दिति चापरसेः नामधेयं। 'दंद्यावः' (दंत्रनभीसा चात्रादयः) 'हेतिः'। सङ्ग्रामेषु पुद्वसम्बन्धी यो 'वधः' स 'प्रहेतिः'।

त्रथ वृतीयमार,—''त्रयं पञ्चादिश्रयचास्त्रस रथप्रेतिया-समरथ्य मेनानियामधी प्रकाचनी चानुकीचनी चाप्रसी

^{*} स्रत्ये। मन्धर्वान् इति इ॰ पु॰ पाठः।

सपा हितर्थाष्ट्राः प्रहेतिः(१)" इति । विश्वं खर्चित प्राप्नातीति 'विश्वखराः' । सर्वमन्यत् पूर्ववद्वाख्येयम् ।

श्रथ चतुर्थे मक्षमाइ,—''श्रथमुक्तरात् संयदसुसाय सेनजिक सुषेषच सेनानियामची विश्वाची च घृताची चापारसावापे। हेतिवीतः प्रहेतिः(४)'' इति । 'संयत्' (प्राप्तं) 'वसु' (धनं) यस्ताग्रेः, साऽयं 'संयदसः', सोऽग्निः 'उक्तरात्' (उक्तरस्यां दिश्वि) वर्क्तते । श्रेषं पूर्ववत् ।

त्रय पश्चमं मन्त्रमार,—"त्रयमुपर्यर्वाम्बस्स तार्ह्या-रिष्टनेमिश्व सेनानियामणावृतेत्री च पूर्वचितियाण्यरसे विद्यु-द्वेतिरवस्पूर्णन् प्रहेतिः(१) इति । 'त्रवाम्बसः' (त्रधोमुखलेन) 'वसनो' (मेघात्) भूमी पतनात् वैद्युतोऽग्निस्तयोच्यते, स च 'खपरि' (ऊर्द्धायां दिज्ञि) प्रवर्त्तते । भयदेतुः प्रकामा (?) 'विद्युत्' । मारको मनः 'त्रवस्कूर्णन्' ।

एतेषु पश्चस्यि मन्त्रेयनुषश्चनीयं श्रेषमाइ,—"तेश्वी नमसे ने। म्डड्यन्तु ते यं दिश्री यश्च ने। देष्टि तं वे। जसी द्धामि(१)" इति। योऽयमग्निः, यो च 'सेनानियामणी', ये च 'श्रप्ररसी' यो च 'हेतिप्रहेती', 'तेश्वः' सर्वेश्वः 'नमः' श्रस्तु 'ते' सर्वे 'नः' (श्रसान्) 'म्डड्यन्तु' (सुखयन्तिः)। 'यं' वैरिणं 'ते' वयं 'दिशः', 'यश्च' वैरी 'नः' (श्रसान्) 'देष्टि', 'तं' वैरिणं युग्नाभिरनुग्रहोतोऽहं 'वः' (सुग्नाकं) 'असी' (विदारितास्त्रे) 'द्धामि' (स्नापयामि)।

[🍍] सुखयन्तु इति पाठी भवितुं युक्तः।

एतेर्नन्तैः साध्यमुपधानं विधत्ते,—"पञ्चचोड़ा उपदधाति श्रप्यत्त एवेनमेता भ्रता श्रमुशिक्षोक उपभित्तेऽथे। तनूपानोरेवेता यजमानखः" (५।३।०१०) इति । 'गूइ संवर्षे' दत्यसादाते।- दत्यस्रद्योडाश्रम्दः; नाकसदामुपिर क्षिद्रावरणार्थलात् 'चेन्डाः' दत्युष्यने। पञ्चसङ्क्षाकाद्योदाः 'पञ्चचेन्डाः'; तासामुपधाने धित 'एता' इष्टकाः 'श्रप्यत्यः' 'एव' 'भ्रताः' स्वर्गक्षोके 'एनं' (यजमानम्) 'उपभेरते'। श्रपि च 'एता' 'श्रप्यत्यः' 'वजमानस्व' 'तनूपानोरेव' (श्ररीरपाकनपरा एव)।

खपधानकाले खानिविषेषं विधत्ते,—''यं दिखात्तमुपद्धृद् धायेदेतास्य एवेनं देवतास्य त्राष्ट्यति ताजगार्त्तमार्क्कति'' (५। १।७प्र॰) रति। त्रयं यजमानः, 'यं'पुद्दं 'दिखात्' 'तं' (देखम्) प्रध्वर्षुद्दपधानं कुर्मन् 'धायेत्'। तेन धानेन 'एतास्यः' 'एव' (प्रश्चिनान्यादिस्यः) 'देवतास्यः' 'एनं' देखम् 'प्राष्ट्यति' (धर्वता विच्छनं करोति) 'ताजक् प्रार्त्तमार्क्कति' (तदानोमेव मर्खं प्राप्नोति)।

नाकषदामुपरि पश्चचोड़ोधानं विधत्ते,—"उत्तरा नाकषद्भ उपद्धाति यथा वायामानीय ग्रेडेषु निषादयति तादुगेव तत्" (५।३।७५०) इति। ग्रेड्खानीया नाकषदः, वायास्त्रानीयाः पश्चचोड़ाः।

तत्र 'त्रयं पद्मात्' इति हतीयमक्षेणेपधेया येयमिष्टका, तस्त्राद्यरमलं विधक्ते,—''पद्मात् प्राचीमुक्तमामुपद्धाति तस्मात् पद्मात् प्राची पत्थन्यासी'' (५।२।०१०) इति । यस्मात् पश्चिमार्था दिश्वि प्राक्तुसलेनोपधेया रष्टका चरमलेने।पधक्ते, 'तस्मात्' पश्चिमार्था दिम्मवस्माय प्राक्तुसी पत्नी गाईपत्यमुपवित्रति।

कसः, 'त्राचोस्ता सदने सादयामीति स्वयमाहकामिनक्रमात्रेनोपघाष परमेषी ला सादयिल्यिविद्वा त्राञ्चणेन सद मध्येऽग्रेहपदधाति' इति। त्रभिमर्भनमन्त्रपाठस्तु,—"श्रावोस्ता सदने सादयास्वतन्द्राचायां नमः समुद्रस्य चन्नसे(१)" इति। एति निरन्तरं गच्छतीति 'त्रायुः' त्राहित्यः, स स सव जगद् त्रवति, तस्तात् 'त्रवतः' 'त्राचोः' 'क्रायायां' सत्यां, सन्तापपरिचारेष त्रेत्ये कते सतीत्यर्थः। 'सदने' (त्रसिन् स्वाने) हे दष्टके, 'लां' 'सादयामि'। 'समुद्राय' (समुद्रसदृत्रा-दित्याय) 'नमः' श्रस्तु। 'समुद्रस्य' 'त्रचसे' (प्रकावकाय) 'नमः' श्रस्तु।

खपधानमन्त्रपाठस्तु,—"परमेष्ठी ला सादयतु दिवः पृष्ठे व्यच्छतीं प्रथसतीं विश्वमतीं प्रश्नमतीं परिश्वमतीं दिवं वच्छ दिवं दृश्च दिवं मा चिश्रमीविंत्रस्ते प्राणायापानाय व्यानायोः-दानाय प्रतिष्ठाये चित्राय स्वयंस्त्राभिपातु मद्या स्वस्या इदिवा बन्तमेन तथा देवतथाऽङ्गिरखद्ध्रवा सीद्^(०)"दित। 'परमे' (उत्कृष्टे सत्यक्षेत्रे) तिष्ठतीति 'परमेष्ठी' (ब्रह्मा) । स 'ला' 'दिवः' 'पृष्ठे' (स्वर्गस्थोपि) 'सादयतु' । कीदृष्टीं लां ?—'खचसतीं' (प्रभि-व्यक्तिमतीं), 'प्रथसतीं' (विस्वार्वतीं), 'विश्वमतीं' (विविधवर्त्तनें ने न्याद्मक्रमतीं), 'प्रश्वमतीं' (पर-वेन्यपराभवक्रक्तमतीं), 'दिवं' 'यक्क' (स्वर्गभोगं यजमानाधीनतया

नियतं कुक्)। 'दिवं' 'दृष्ट्र' (युक्तोके भोगं दृहोकुक्)। 'दिवं'
'मा हिष्ट्यी:' (दिवं युक्तोकभागं, मा हिंसीमी विनामय)।
'विश्वसी' (धर्वसी) प्राणापानयानीदानास्त्रवायुद्धत्तिसाभाय, 'प्रतिहाये' (स्वय्रद्धे स्तितिसाभाय), 'चित्रवाय' (प्रास्त्रीयाचरणाय);—
प्राणिनाम् एतस्य धर्वस्य सिद्धार्थे श्रयं 'स्वर्थः' 'लाम्' श्रभितः 'पातु'। केन रचणमिति?—तदुच्यते, 'मद्या' 'सस्या' (मद्या योगचेमसम्पत्त्या), 'श्रन्तमेन' 'इदिवा' (श्रत्यन्तसुखकारिणा दीप्तिविभेषेण), तव स्तामभूतया 'देवतया' श्रनुग्रहीता स्तिरा सती 'सीद' (इद्देपिवश्च)। 'श्रष्ट्रिरस्तत्' (श्रद्धिरसा चयनानुष्टाने यथा लं 'भुवा' स्विता, तदत्)।

कस्यः, 'प्रीयद्य द्रत्युक्तरेऽ श्रे विकर्णीम्' दित । पाठस्तु,—
''प्रीयद्यी न यवधे प्रविद्यन् यदा मदः संवर्णाद् व्यस्तात् ।
प्रावस्त्र वातो प्रनु वाति ग्रीक्तिस्य स्न ते त्रजनं कृष्णमस्ति (०) ''दिति ।
प्रयमग्निः, 'प्रयो न' (प्रय दव) 'प्रीयत्' (प्रीयति, जाञ्चस्त्रमानः व्रन्दं करोति) । दृष्टाक्तभ्रते। प्रयः कथं प्रस्दं करोति?—दित, तदुष्यते, 'यदा' 'मदः' (मदतः) 'संवर्णात्' (प्रयव्यासाद्यपात् संवतस्वानात्) 'व्यस्तात्' (विनिर्गक्कति), तदानीम् प्ररुष्धे 'यवधे' 'प्रविद्यन्' (घाषार्थे गमित्र्यन्) प्रस्वं करोति। 'प्रात्' (प्रतः) प्रवक्तरं 'प्रस्व' (प्रब्दं कुर्वताऽग्नेः) 'ग्रोपिः' 'प्रनु' (दीतिमन्) 'वाता' 'वाति' (वायुः प्रवक्तते),—प्रग्निज्ञासाप्रस्वमनक्तरमेव वायोर्वस्यं प्रवक्तरयमग्निवंयुक्त दित स्रोक्तेऽभिधीयते। 'प्रध'प्रस्वो वर्गपतुर्थयुक्तोऽप्यानक्तर्यमेवापष्टे। दे प्रग्ने, तव ज्ञासाया

वायुषंयागानन्तरं 'त्रजनम्' (त्रर्ष्यगमनस्वानं) 'रुष्णमस्ति' (दाहेन कृष्यमस्ति, दाहेन कृष्यवर्षमेवावभाषते) ।

यायोख्नेत्यादिम विश्वाचिमुपधानं विधन्ते,—"खयमादृषा य विकर्णि द्योत्तम उपद्धाति प्राणे वे खयमादृषायुर्विकर्णी, प्राण-द्येवायुद्ध प्राणानामुक्तमा धन्ते, तस्मात् प्राणद्यायुद्ध प्राणाना-मृक्तमा" (५।३।७४०) रति। 'खयमादृषा' (खतिष्ठद्रेष्ट्यका) पूर्वमणुक्ता; उक्तरेऽ' से संस्पृष्टा सती, वामभागे विभक्तः कर्ण द्वावभासमानलात् द्यमिष्ट्यका 'विकर्णी' रत्युच्यते। या 'खय-मादृष्ट्या' चा च 'विकर्णी' ते अभे अपि 'उक्तमे' उपद्धात्; सर्वासाम् रष्ट्यानामवसाने तथा रपधानमित्यर्थः। खयमादृष्यातः प्राणक्पलात् विकर्णाद्यायु:खक्पलात् तथा रक्तमने सति चजु-रादीनां प्राणानां मध्ये सासक्पमायुद्धाक्तमने धतवान् भवति, तस्माक्षाकेऽपि सासायुवि सर्वेषां 'प्राणानां' दतरेषां मध्ये उक्तमे, तथा खितया द्युरादी द्रियवैक स्थमपि सहन्ते।

श्रन्यासामिष्टकानामुपरि यथैते इष्टके उपिहते, तथा तथी-दपरि श्रन्थेष्टकोपाधानप्रसिक्तं वार्यतं निषेधित,—"नान्यामुक्त-रामिष्टकामुपद्ध्यात् यदन्यामुक्तरामिष्टकामुपद्ध्यात् पश्कर्ताञ्च यत्रमानस्य च प्राणञ्चायुञ्चापि द्ध्यात् तस्त्राञ्चान्योक्तरेष्टकोपधेया" (५।३।०१०) दति । एतथे (दपरि श्रन्थेष्टकोपधाने श्वासायुषी स्हादिते भवतः, 'तस्नात्' 'श्रन्थां' न 'उपद्ध्यात्'।

3 H 2

^{*} अन यासायुषी इति पाठा भवितुं युक्तः।

प्रथमिती वा खयमाहवा, सा श्विमित स्ता; मध्यम-चिता समारिक्षतेन। ददानीं पश्चमिती बुक्षेकतेन साति,— ''खबमाहवामुपर्धाहायी वे खबमाहवास्मूमेवापधन्ते'' (५।३। ७॥०) इति।

खपधानात् प्रागकीपष्पापणं विधत्ते,—"श्वत्रमुपष्पापवति प्राथमेवासां दधात्ययो प्राजापत्यो वा श्वतः प्रवापतिनेवाशिं श्विनते स्वयमाद्रवा भवति प्रायानामुस्य श्वे श्वयो सुवर्गस्य स्रोक-स्वानुस्थात्ये एवा वे देवानां विकास्तिर्यदिकस्वी व्यदिकसीमुप-दधाति देवानामेव विकास्तिमनु विक्रमते" (५।३।०१०) इति । विकर्षा एव पराक्रमस्पत्नात् तदुपधानेन यजमाने।ऽपि देववत् यराक्रमवान् भवति।

खत्तरासक्ष्यदेशं विधक्ते,—"खत्तरत खपद्धाति तक्षाक् खत्तरत खपचाराऽग्निः" (४।३।७२०) इति। चेषु खपचारेषु देशविश्रेषा न विक्तिसो सर्वेऽपि वक्नेः 'खत्तरतः' खिला कर्त्तव्याः, तक्षा ब्रह्मुवरकानाधानजपाद्यः।

भवितका खपधाने 'भादक वातो चनुवाति ब्रोचिः' इति बायुवाचित्रक्टाम्हर्च विनियुक्के,—"वायुमती भवति समिष्टे" (५।२।७४०) इति। यति हि वायाविद्याः समिष्टते ।

श्रव विनियागसंग्रहः,---

चयं पुरः, पश्चचोदास्थेन, रत्यनुबच्चते । त्रा, सुमेत् सममाहचां, परमेडीति सादचेत् । प्राचर्, विकर्णीमाद्धायायाया वष्टाविहेरिता: ॥

द्ति सायनाचार्यविर्त्तिते माधवीये वेदार्थप्रकान्ने कृष्णयजुः-संदिताभाय्ये चतुर्थकाण्डे चतुर्थप्रपाठके हतीयोऽनुवाकः॥०॥

श्रीमूर्डा द्वः क्कुत्पतिः पृथ्विया श्र्यं। श्र्याः रेताः सि जिन्निति । त्वामंग्रे पृष्कंराद्ध्यर्थ्वं निरं-मन्यत । मूर्धा विश्वस्य वाघतः (१) । श्र्यमृग्निः संइ-सिखो वाश्रस्य श्रीतम्स्पतिः । मूर्डा क्वीर्योणां (१) । सुवा यश्रस्य रश्रस्य नेता यश्रीन्यद्भिः सश्रे श्रि-वाभिः । द्वि मूर्डानं द्धिषे सुव्धां जिल्लामंग्रे कन्नषे इव्यवार्षं (१) । श्रवाध्याः स्मिधा अनानां ॥ ॥ १॥

प्रति धेनुर्मिवायतोमुषासं। युद्धा देव प्रव्यामुज्जि-हानाः प्रभानवंः सिखते नाक् मर्च्छं । अवेश्वाम क्वये मेथ्याय वद्यां वृन्दार्घ ष्ट्रष्ट्यभाय प्रष्णे। गर्वि-ष्टिरो नर्मसा स्तोर्ममुग्ना दिवोवं र्कामुर्व्यच्नमञ्जेत् (१)। अनस्य गोपा संजनिष्ठ जार्यविर्प्ताः सुद्धः सुविताय

^{*} बद्धाविदेशिता हति पाठी भवितुं युक्तः।

मर्थसे । घृतप्रतिका रहता दिविस्प्रश्री सुमहिभाति भर् तेभ्यः शुचिः (०) । त्वामंग्रे अक्रिरसः ॥ २ ॥

गुडाडितमन्वंविन्दिकित्रियाणं वने-वने। संजीयसे मृष्यमानः सद्दी मृद्दामाडुः सद्देसस्युचमित्ररः (°) युत्रस्य केतुं प्रथमं पुराद्दितमृग्निकरंस्त्रिषधस्थे सिम-स्थते। इन्द्रेण देवैः सुरुष्युः संवृद्धि सोद्निकेता युज्ञयाय सुक्रतुः (०)। त्वां चित्रश्रवस्तम् इवन्ते विश्वु जन्तवः। श्रोचिष्केशं पुरुष्टियाशे ह्व्याय् वादंवे (°)। सस्वायः संवः संग्यन्युमिषं॥ ३॥

स्तामेन्द्राप्रये। वर्षिष्ठाय क्षितीनामूर्जी नत्ते स-इंस्वते (११) सः स्मिद् युवसे वर्षन्त्रमे विश्वान्यर्थ त्रा। इड्स्प्रदे समिध्यसे स ना वसून्यामेर (१९)। एना वे। त्रुमिं नमसोर्जी नपातमाई वे प्रियं चेतिष्ठमर्तिः स्वध्वरं विश्वस्य दूतमृक्षते (१९)। स योजते ऋष्षे। विश्वभाजसा स दुंद्रवृत् स्वाहृतः। सुब्रह्मा युज्ञः सुश्रमी॥ ४॥

वस्नां देवः राधा जनानां (१४) । उद्देश श्रोचिरं-स्थादाजुद्धानस्य मीदुषं । उद्गुमासा श्रम् वासा दिवि-स्थादाजुद्धानस्य मीदुषं । उद्गुमासा श्रम् वासा दिवि-स्थादा सम्प्रिमिन्धते नर्रः (१५) । अग्रे वासस्य गामत् ईश्रानः सहसा यहा । श्रमो धेहि जातवेदो महि- श्रवं:(१६)। स इंधाना वर्सुष्क्वविर्मिरोड़ेन्छा गिरा। रेवद्सार्थं पूर्वणीक दीदिहि(१०)। श्रुपा राजसुत स्मनाग्ने वस्तीकृतावसंः स तिग्मजमा॥ ५॥

र्श्वसी दृष्ट प्रति (१०)। त्रा ते त्रग्न द्वीमहि सुमन्तें देवाऽत्ररं। यह स्वा ते पनीयसी सुमिद्दीद्यंति स्वी-यरं स्ते। त्रभ्यः त्राभेर (१८)। त्रा ते त्रग्न स्वा द्विः शुक्रस्य त्र्योतिषस्यते। सुर्वन्द्र दस्म विश्यंते द्वयंवाद तुभ्यं ह्रयत् द्वर्षं स्ते। त्रभ्यः त्राभर (१०)। जुने सुवन्द्र सुपिषे द्वी त्रीषोष त्रासनि। जुता न जत्यंपूर्याः॥॥६॥

जुक्येषु शवसस्यत् इष्ट्रं स्तोत्थ्य श्राभंर (११) । श्रमे तम् धार्श्वं न स्तोमैंः कतुत्र भद्रः हृद्स्पृशं । श्र्यामं ते श्रीहैं: (११) । श्रधा श्रमे कर्ताभ्द्रस्य दर्शस्य साधाः । र्ष्ट्रोक्तस्य रहता बुभूशं: (११) । श्राभिष्टे श्र्य गीभि-र्ण्यन्ते। प्रमे । प्रते दिवा न स्तेनयन्त् श्रुष्ताः (१४)। र्मिनें। श्रकेंभवा ना श्र्वाङ् ॥ ७॥

सुवर्न ज्योतिः। अग्ने विश्वेभिः सुमना अनीकैः (१६)। अग्निः होतारं मन्ये दास्त्रेन्तं वसाः सूनुः सहसा जातवेदसं। विग्रुक्त जातवेदसं। य जुर्ह्वया स्वध्वरा देवा देवाच्या छुपा। घृतस्य विश्वाष्ट्रमन् गुक्रशाचिष बाजुद्धानस्य स्पिषंः (१०)। अग्ने त्वक्रो अन्तं मः। जुत बाता शिवा भेव वरूष्यः (१०)। तं त्वा श्रोषिष्ठ दीदिवः। सुस्रायं नूनमीमहे सर्विभ्यः (१०)। वसुर्गिर्वसुश्रवाः। अच्छा नश्चि गुमत्तेमा रुथिं दीः (१८)॥ ८॥

जनानाम्। चक्तिरसः। इषेशः। सुम्रमी। तिग्म-जमः। पुपूर्याः। चुर्वाङः। वसुत्रवाः। पर्च च ॥ ॥ ॥

इति तैतिरीयसंहितायां चतुर्यकार्यः चतुर्यप्रपाठके चतुर्थाऽनुवाकः ॥ ० ॥

षय हतीयेऽनुवाने पश्चिषाड्य रहका जनाः। श्रम्भ वहायेऽनुवाने बन्दोभिधा रहका जन्मे। कत्यः, 'श्रीममूर्द्धेति तिस्रो गायमीः पुरस्तादुपद्धाखेवमुत्तराणि भीणि निष्टुभी दिल्लिता जगतीः पश्चादमृष्टुभ जन्तरता रहतीयण्यहाः पङ्गी-रचरपङ्गीरिति विषुरूपाणि कन्दाप्ट्सि स्यावकाममतिकन्दसं मध्ये दिपदा श्रम्ताः' रति। तन तिस्रषु गायभीषु प्रथमां गायनीमाइ,—'श्रीमर्मूई दिवः कसुत्पतिः प्रथिया श्रयं। श्रपाप्ट्ररेताप्ट्सि जिन्दित्।'श्रद्धाः दिवः कसुत्पतिः प्रथिया श्रयं। श्रपाप्ट्ररेताप्ट्सि जिन्दित्।'श्रद्धाः 'श्रिकः'श्रादित्यक्षेष 'दिवः' (श्रुक्ताक्यः) 'ककुत्' (अच्छितः)'मूई।'(श्रिरस्तानीयः)। 'प्रथियाः' 'प्रतिः' (दाइपाकादिकारिसेन पासने।ऽपि) 'श्रवं'। किस्र

'त्रपां' 'रेतांषि' (खदककार्याचि स्नावरजङ्गमप्ररोराणि) जाठराग्नि-रूपेष 'जिन्तित' (प्रीचयति) ।

श्रय दितीयामाइ,—''लामग्ने पुष्करादश्रयर्वा निरमन्दत। मूर्द्वी विश्वश्च वाचतः(१)" इति । हे 'ब्रग्ने', श्रववीस्य ऋविः 'पुष्करपर्थादधि' (पद्मपत्रक्षे।परि) 'लां' 'निरमन्वत' (नि:त्रेषेष मचितवान्)। त्रत एव पञ्चमकाच्छे त्राञ्चषमाचातं, "पुष्करे पर्धे भ्रेनमुपश्चितमविन्दत्" दति । की दृषात् पुष्करपर्थात् ?—'सूर्द्गः' (उत्तमाङ्गवत् प्रत्रसात्), 'विश्वस्व' 'वाघतः' (सर्वस्य जगता वास्-कात्)। दरं हि पुष्करपर्धम् प्रश्निमञ्जनयज्ञनित्यादनादिदारा सर्वे जनिवर्दहित।

षय हतीयामाइ,--"प्रयमग्निः सहित्रणे वाजस्य प्रतिन-रातिः। मूर्डा कवी रवीषाम्(२)" रति। 'वर्ष' समिधमानः 'श्रम्भिः' यदस्यक्कावतः त्रतयक्कावतस्य त्रत्रस्य 'पतिः'। श्रत एत 'मूर्ड्सा' (बिरोवदुत्तमः), 'कविः' (विदान्), तादृष्टी 'रथीणां' (धनानां) दाता भवत्।

यथ तिस्तु चिष्टुप्स प्रथमां चिष्टुभमाइ,—"श्रुवे। वज्रस रजस्य नेता यत्रानियुद्धिः यत्रसे त्रिवाभिः। दिवि मूर्द्धानं दिधवे सुवर्षा जिक्रामग्ने चलवे चयवाचम्(^{४)}'' इति । त्रयमग्निः, भूखोकस्य (तचामुष्टेयस्य) 'यञ्चस्य' तस्मिन् यञ्चे प्रवर्त्तकस्य 'रजसः' (गुबक्) 'च' 'नेता' (निर्वाहकः) । तादृत्र हे 'चग्ने', 'यव' (यखां दिवि) सर्वरूपे। भूला 'नियुद्धिः' (रचे नितर् योज्यमानाभिः) 'त्रिवाभिः' (उत्तमाभिर्यजातिभिः) 'सचसे' (समवैषि), तस्तां 'दिवि' 'मूर्ड्डानं' (चिरोवद् जनिखितं) 'दिधिषे' (धारयिष) । की हुत्रं मूर्ड्डानं ?—'सुवर्षां' (सुव: स्वर्गे स्वति सर्वदा तिष्ठतीति सुवर्षास्तां) । सामपात्रस्दवत् पुंसिक्वोऽयं। हे 'त्रग्ने', तम् प्रसिन् यशे हस्यवाहं' (हवि:प्रापिकां) 'जिक्कां' (ज्वालां) 'चक्कषे' (करोषि) ।

त्रथ दितीयां विष्टुभमाइ,—''त्रवेश्विद्धः विमधा जनागां प्रति धेनुमिवायतोमुषायं। यद्वा द्रव प्र वयामुक्तिद्दानाः प्र भानवः मिस्ते नाकमक्क्ष(ध)'' द्रति । 'जनानाम्' क्रित्वां सम्बिधाः 'प्रमिधा' प्रयम् 'प्रद्धिः' 'प्रवेशिः' (प्रवेशितः, प्रव्यक्तिरेऽस्त्)। तव दृष्टान्तः,—'त्रायतीमुषायं' 'प्रति' 'धेनुं' खषःकाखे समागते यति देश्वनाय प्रयमाद्धेनुं यथा खत्यापयित, तदत्। बुध्धमानस्व प्रद्धेः 'भानवः' (रम्भयः) 'प्र'-'खिल्क्ष्दानाः' (प्रकर्षेषोद्धक्कनः), प्रिष्टि प्रवेशितः (?)। 'नाकमक्क्ष' (खर्गमभिप्राप्तुं)' 'प्र'-'विस्तते' (प्रतिष्ठवेन प्रयर्थाः)। तत्र दृष्टानाः,—'वयां' 'यक्कां' 'द्रव'— 'वयां' (वीनां, पिष्ठपां) मध्ये 'यक्कां' (महानः) पिष्ठपे। यथा प्रकर्षेणेत्यतन्ति तदत्।

श्रय हतीयां चिष्ठुभमाइ,—''श्रवीचाम कवये मेध्याय वचे। वन्दाइ दृषभाय दृष्णे। गविष्ठिरा नमसा स्तोममग्नी दिवीव इक्तमुर्यद्ममग्रेत्^(१)" इति । वयं 'कवये' (विदुषे) वक्रये 'वचे।' (वाक्तम्) 'श्रवीचाम'। कीदृशाय कवये?—'मेध्याय' (यश्च-योग्याय),'दृषभाय'(श्रेष्ठाय),'दृष्णे'(कामानां वर्षयिने),'गविष्ठिरः'-गविष्ठिराय (भूमी खिरलेगाविखताय)। कीदृशं वचः"?—'श्रग्नो'

^{*} चात्र वर्षः इति सर्वेत्र पाठी न सन्यक्।

'नमसा' 'सोसं' (श्वग्निविषये नमस्कारेष युक्तं, स्रोत्रक्षं), श्वत एव 'वन्दाक्' (वन्दनश्वीसं)। तच दृष्टाम्तः,—घणा 'दिवि' (शुलोके) 'दव' 'क्कां' (रोषमानं), 'उर्खश्चं' (विस्तीर्षगतिम्), श्रादित्यं सन्ध्यावन्दनादिषु नाश्चणैः प्रयुक्तं वाकाम् 'श्रश्चेत्' (श्राज्ञयति) तदत् श्रस्मद्वोऽपि विक्रमात्रयतु।

त्रय तिस्व जगतीव प्रथमां जगतीमाइ,—''जनस्य गोपा प्रजनिष्ठ जारुविर्धाः सुद्दाः सुविताय नयसे। घृतप्रतीका वृष्टता दिविस्पृत्रा सुमदिभाति भर तेथः ग्रुष्टिः (९)'' इति। प्रयम् 'त्रियः' 'त्रजनिष्ठ' (उत्पन्नः)। किमधें ?—'सुविताय' 'नयसे' (सुष्ठु दीप्राय स्तियुक्ताय कर्मणे), एतत्कर्मसिध्यर्थमि-त्यर्थः। कीदृत्रस्य *?—'जनस्य' 'गोपाः' (प्राणिनो रचकः),'सुद्धः' (त्रत्यम्तकुत्रसः), 'जारुविः' (कर्मणि सावधानः), (घृतं प्रतीकं मुखे यस्यामे। 'घृतप्रतीकः'; तादृत्रोऽयम् 'त्रिग्नः' 'वृष्टता' (प्रीष्टेन) 'दिविस्पृत्रा' (शुक्षोकस्पर्धिना) ज्यालासमूदेन 'सुमत्' (दीणमानः) 'ग्रुप्टिः' (ग्रुद्धः सन्) 'भर', 'तेथः' (भर्णकुत्रस्व-यजमानास्थें) 'विभाति' (विश्वषेष भासते)।

त्रथ दितीयां जगतीमाइ,—''तामग्ने पङ्गिरचे। गुहाहित-मन्यविन्दिञ्जित्रियाणं वने-वने। स जायचे मध्यमानः सदे। महत्त्वामाडः सहसस्युचमङ्गिरः(^{८)}'' इति। हे 'त्रग्ने', 'ताम्' 'त्रङ्गिरसः' महर्षयः 'त्रन्वविन्दन्' (त्रन्विय सभवनाः)। कोदृशं

^{*} अाच की दशः स ? इ.ति पाठो भवितुं युक्तः।

लां ?—गुद्दादितं??—(चरकीप्रसतीषु गीषखानेव्यवखितं), 'वने-वने' 'विविधाकं' (तिक्षान् तिक्षान् वने दावाविक्रियेकात्रितं)। 'ध' लं 'मद्दत्' 'घदः' (प्राटं वक्षं) वि-'मद्यमानः' 'आवधे'। दे 'चित्ररः' (चक्रकीष्टवयुक्त चग्ने), 'लां' 'यद्द्यस्पुनं' (वसस्य पुत्रम्) 'चाद्वः', मदता वस्तेन मत्यने सति जायमानलात्।

श्रव हतीयां जगतीमाइ,—"यश्रव केतुं प्रथमं पुरे। हितमग्निकरिक्क प्रथमे प्रिम्थते। दन्तेष देवैः सरय प्र स वर्षिष
धोदं नि होता यजयाय स्वततः (ट)" दति। सह-स्वितानि स्वानानि
सथसानि, बीपि सथसानि यसिन् देवय तने तत् 'निवधस्वं',
तिस्वन् 'नरः' (खिलजः) 'श्रीग्रं' 'समिन्थते' (दीपयिना)।
कीदृशं?—'यश्रस्य' 'केतुं' (श्रातारं), 'प्रयमं' (खागोपक्रम एव
सव्यक्ं), 'पुरोहितं' (पुरोदेशवर्त्तानं)। 'स्वत्रतः' (श्रोभनक्रतुनिव्यादकः), 'स' श्रिगः 'यत्रयाव' (धागसिष्ययें) 'होता'
(देवानामाङ्गाता) सन् 'दन्तेष' 'देवैः' च सद्य 'सर्यं' (रथस्विता यथा भवति, तथा 'वर्षिष' श्रस्तिन् यश्चे 'निवीदत्'
(खपविष्टवान्)।

श्रव विस्तृतुषु प्रथमामाइ,—''तां विषयवस्य इवनो विषु जन्मवः। ग्रेषिक्षेत्रं पुरिप्रयाग्ने इत्याय वेद्विवे(१०)'' इति। 'विषयवो' (विविधा की र्त्तियस्याची विषयवाः) स्रतिप्रयेव विक-स्रवाः 'विषयवस्याः'। 'पुरूषां' (यस्रमानानां) 'प्रिय', तथाविध हे 'स्रग्ने', 'विषु' (प्रजास्त) मध्ये 'सन्तवः' (सन्तव इव सनाः) 'तां' 'इवनो' (श्राष्ट्रयन्ति)। किमधे ?—'इव्याय' 'वेद्वेव' (इवि- वींतृम्)। कीदुवं लां?—'ब्रोचिच्केवं' (ब्रोचींवि ज्यासा एव नेत्रसानीया यसाया क्रोचिक्वेत्रः तं)।

त्रय दितीबामनुष्यमाइ,—"स्वाय सं वः संस्व श्विमदू स्रोमञ्चाग्रये। वर्षिष्ठाय चितीनामूर्जी नम्ने सहस्वते(११)" इति। हे 'मखायः' (परत्यरबख्ययुका ऋतिग्यजमानाः), 'वः' (युग्नाकं) 'बंम्बच्च मिषं' (बमीचीनमभीष्टाकं) सन्पादयतु । समित्वस्थापसर्ग-क्वापेचितः त्रेवेडिक्याइतः । यूयं च 'त्रग्रये' 'स्रोमं' (स्रोचं) मन्पाद्यत । कीदूबायाग्रये ?—'चितीनां' मध्ये (रचकाणां मध्ये) 'वर्षिष्ठाय' (ष्टद्भतमाय)। 'ऊर्जा' 'नप्नु' (बसस्य न पातयिचे, विनात्रमकुर्वते) * खयमतित्रयेन बसवते।

षण हतीयामनुष्टुभमाष,—"मः समिद् युवचे रुवन्त्रे विश्वान्यर्थं श्वा। रुज्खदे समिध्यये स ना वस्नुन्याभर(११)" इति। हे 'द्यम्' (कामानां वर्षक) 'श्रग्ने', 'विश्वानि' (सर्वाणि) फखानि 'सं-सिक्त्' (सन्पाच सन्पाच) एवं 'युवसे' (चजमाने) संमित्रयसि । 'मर्थ' 'मा' (रैमर्स्नमागत्व) 'र्ड्सरे' (प्रचिवीरूपाया वेद्याः काने) 'समिधरे' (सम्बक् व्याकारे)। एता दृष्टी महान्भावस्तं 'न:' (त्रक्षाश्वं) 'वस्नि' (धनानि) 'सम्'-'त्राभर्' (सम्यगाइत्य प्रयक्क)।

श्रथ तिस्तृ बृहतीषु प्रथमामाह,—"एना वे। श्रव्धिं नम-बे।जा नपातमाञ्जवे। प्रियं चेतिष्ठमर्ताः सध्यरं विश्वस दूत-मस्तम्^(१९)'' दति। हे ऋतिग्रवमानाः, 'वः' (युपाकं) धर्मिश्चनम्

^{*} अप 'सप्खते' इति ग्रब्दः प्रतित इवाभाति ।

'श्री म्' 'एना' 'नमसा' (एतेन नमस्कारेख युक्तः) श्रहम् 'श्राक्ठवे' (श्राक्रयामि) । की दृष्ठमग्निं ?—'ऊर्जाे' (श्रम्रस्क) 'नपातं' (श्रिव-नाष्ठयितारं), 'प्रियं' (यजमानानां प्रीतिहेतुं), 'हेतिहं' (श्रित्रयेन हेतियतारं, श्रातारं) 'श्ररतिं' (रितः हक् तद्रहितं) सर्वदे युक्त-मिटार्थः । 'स्रस्वरं' (श्रीभनस्य क्रतोर्नियादकं), 'विश्वस्य दूतं' (सर्वस्य जगता दूतवत् कार्यकर्त्तारं), सर्वस्य हि स्टहे दाहपाका-दिकार्यं करोति । 'श्रम्टतं' (मरणरहितं); न हि मनुस्ववद्देवानां सहसा मरणमस्ति ।

यथ दितीयां बृहतीमाह,—"य योजते यहवा वियभोजया य दुइवत् खाइतः । सुम्न्या यद्यः सुम्नमी वस्नां देवः राधेः जनागम्(१४)" इति । 'य' (य्राः) 'योजते' (प्रस्तं कर्म योज-यतीत्यर्थः)। 'यहवः' (रोषरहितः) यजमाने खिम्ध इत्यर्थः। 'वियभोजया' (वियं जगद्वोजनीयं दाञ्चलेन यस्मायो विय-भोजयः, 'य' य्राः 'राधः' (य्रयं) 'दुइवत्' (इवयत्) सम्पादयत् इत्यर्थः। कीदृष्यं 'राधः' ?—'वस्नां' 'जनानां' (निवासार्थिनां प्राणिनां व्यवहारकारणं)। कीदृष्यः से।ऽग्नः ?—'खाइतः' (स्वितिमः सुष्टु कर्मस्थाह्नतः), 'सुम्न्य्या' (ग्रोभन क्रांतियः), 'सुम्मी' (पापं सुष्टु प्रमयतीति सुम्मी)।

त्रय हतीयां बृहतीमाइ,—"खदस्य ग्रेशिक्सादाजुङ्गानस्य मीढुवः । खङ्गमाचा त्रहवाचा दिविस्पृतः समग्रिमिन्धते नरः(१६)" इति । 'त्रस्य' (त्रग्नेः) 'ग्रेशिवः' (दोप्तिः) 'खत्'-'त्रस्वात्' (खित्यतं)। की दृष्णसाग्नेः ?—'त्राजुङ्गानस्य' (सर्वते। हो मिनव्याद-कस्य), 'मीढ्षः' (त्राङ्गतिदारा दृष्टिचे चनसमर्थस्य), 'जुङ्गासः' (धूमाञ्चोत्यिताः)। 'त्रद्वासः'(रे वरिहताः), चनुरा शुपद्रवमसुर्वन्तः दृष्टार्थः। 'दिविस्पृत्रः' (त्राकात्रस्पर्धिनः) त्रत्युत्रता दृष्टार्थः। त्रयै-तस्ये भवति। तथा 'नरः' (कृतिस्यत्रमानाः) 'त्रग्निमिन्धते' (दीपयन्ति)।

श्रथ तिस्वृष्णिषु प्रथमामृष्णिहमाह,—"श्रमे वाजस गोमत रैशानः सहसे। यहा । श्रस्मे धेहि जातवेदो महिश्रवः(१६)" रूति। 'सहसः' (बलस्म) 'यहः' (स्रनो), 'जातवेदः' (उत्पञ्जगद्भिश्च) 'श्रमे', 'गोमतः' (गोभिर्युक्तस्म) 'वाजस्म' (श्रश्नस्म) 'रैशानः' लं 'श्रसे' (श्रसास्) 'महिश्रवः' (महतीं को न्ति) 'धेहिं' (समादये)।

श्रथ दितीयामुख्यादमाइ,—"स द्वधाना वसुष्कविरिप्तरी हेन्या गिरा। रेवदसाम्बं पूर्वणीक दीदि हि^(१०)" इति। पृद् बड़ श्रमीकं सैन्यं यस श्रमी 'पूर्वणीकः'। तादृश हे श्रग्ने, 'स' लम् 'श्रस्तम्ं' 'रेवत्' (धनयुक्तं, स्टइचंचादिकं) 'दीदिहि' (प्रयक्तः)। कीदृश्रस्तं?—'द्वधानः' (दीष्यमानः), 'वसः' (निवासहेतः), 'कविः' (विद्वान्), 'श्रग्निः' (श्रयणीः), प्रथमं यज्ञप्रवर्त्तक इत्यर्थः। 'गिरा' (मन्त्ररूपया वाचा) 'ई.हेन्यः' (स्तत्यः)।

श्रय हतीयामुण्णिइमाइ,—''चपा राजसृत तानाग्ने वस्तो-इतीवयः। य तियाजका रचका दह प्रति^(१८)'' इति। हे 'श्रग्ने',

^{*} सत्र 'उद्भूमासः' (धूमास्रोत्यिता यसात् तस्य), 'सरवासः' (रे।वरश्वितस्य) चन्तुराद्युपदवमकुर्वत इति पाठो भवितुं युक्तः।

'वस्तः' (श्रष्टानि) 'षपः' (षपष)। 'छत' (श्रपि प) 'छषः' (छषःकाखान्) श्रपि षपष। दितीयाद्या श्रद्धान्तसंयोगवाचित्रात् सर्वेश्वयुवःकासेषु राषधान् विनाश्रयेत्यर्थः। हे 'राजन्' (होष-मान) 'श्रग्ने', न केवसं सकीययेनामुखेन रचर्या पपणं, 'त्मना' श्रपि (स्वयमपि) पपयेति मुखविदार्षवाचिना जसाश्रद्धेन व्याखा खपसञ्चाने। तिमासी ह्या जसा यस्त्रायो 'तिमाजसः', 'स' तं 'रष्ठवा' (राष्ट्रधान्) 'इष्ट' (भस्नोकुद्ध)।

षण तिस्तु पिष्क्रिषु प्रथमामाइ.—"चा ते चग्न द्वीमिइ सुमनं देवाऽजरं। यह स्था ते पनीयसी समिद्दीदयति स्वीप्र्र् स्वीद्धश्य चाभर्(१८)" इति। हे 'चग्ने' 'देव', 'च्रजरं' (जरार्हतं) 'ते' (लां) 'सुमनं' (दीप्तिमनं) 'द्वीमिह' (स्वतः प्रज्याखयामः)। 'वत्' (धसात् कार्णात्) 'पनीयसी' (चित्रमयेन स्तृतियुक्ता) सा॰ 'ह' 'समित्' (चचेतनक्षा सा समिद्षि) स्वि-स्वि (प्रतिदिनं) 'दीदयित' (लां प्रकावयित), तस्त्राचेतना वसं दीपयाम इति किमु वक्तस्यं। तश्च 'द्वम्' (चन्नं) 'स्वोद्धश्वः' स्वत्रिश्वः 'चाभर' (समाद्य)।

चय दितीयां पिक्कमार,—''चा ते चग्न क्रवा दितः ग्रुकस्य च्योतिषस्पते। सुसन्द दस्म विस्पते दस्यवाट् तुभ्यः इत्यत दषः स्रोहभ्य चाभर^(१०)'' दति। 'ग्रुकस्य' (ग्रुड्स) 'च्योतिषः' 'पते' (पासक), (सुष्टु चाक्कादकारिन्) 'सुसन्द्र', (पापस्रोपचपिता) 'दस्य', (प्रजानां पासक) 'विस्पते', (इविवेष वोड़ा) 'इस्थवाट्';

^{*} चन 'स्था' इति पाठी भवितुं बुक्कः। एवं उत्तर्भ खवि स्ववि इत्वम 'स्वि' इति।

तथाविध हे 'त्रग्ने', 'ते' 'ऋचा' (सत्समस्थिना मन्त्रेष) 'तुश्वं' 'हविः' 'त्रा' (समन्तात्) 'क्रयते' । 'इतम्' इत्यादि गतम्।

श्रथ हतीयां पिक्कमार,—"उभे सुसन् सर्पिया दर्वी श्रीकां श्रासनि । जता न जत्पपूर्याः । जन्येषु प्रवस्तात द्वः सीहम्ब श्राभर(११)" दति । हे 'सुसन्द्र' (सृष्टु श्राह्मादकर), 'श्रासनि' (लदीवाक्) 'सर्पियः' सम्बन्धिन्या 'उभे' 'दर्वी'सदृष्टे इनू 'श्रीकीये' इनूप्रकपर्यन्तं सर्पिक्वया पीतिमत्यर्थः । 'उतः' (श्रिप च) हे 'प्रवस्ताते' (बक्काधिपते) 'उन्थेषु' (प्रक्रवस्तु) यज्ञेषु 'नः' (श्रक्षान्) 'पुपूर्थाः' (अक्कावेष पूर्य) प्रापयेत्यर्थः । 'स्ताहम्बः' (यजमानेभ्यः) 'द्वम्' (श्रक्षम्) 'श्राभर' (सन्यादय) ।

श्रवरपङ्गीषु चतुर्षु प्रथमामाइ,—''श्रग्ने लमद्यासं न सो मैं:
कतुल भद्र इदिख्यां। खधाम ते बाई:(१९)" इति। दे
'श्रावे', 'इदिख्यां' (इद्यम्, श्रन्नःप्रियं) तं लाम् 'श्रद्य' (श्रिस्तिन्
कर्माष) 'श्रीदेः' (समूद्रक्षेः) 'सो मैंः' (लदीयेः सो पैः) 'खधाम'
(सद्धद्वं करवाम)। तजेका दृष्टान्तः,—'श्रयं न',—यथा श्रयं
धासादिप्रदानेन समर्थयनि तदत्। श्रयापरा दृष्टान्तः,—'कतं
न भद्रं' धथा समीचीनं खोतिष्टामादिकतं सर्वयागानुष्ठानेन
समर्थयनि तदत्। 'भद्रं' (कखाणम्) इत्यग्निविभेषणं वा।

श्रथ दितीयामचरपङ्किमार,—'श्रथा श्रग्ने क्रतार्भद्र स दचस

^{*} खत्र इनुपूरवपर्यंक्तमिति पाठे। भवितुं युक्तः । सन्यथा प्रक्रम-भक्तदेशिकः स्वात् ।

^{† &#}x27;उत्'-'पुपूर्याः' इति पाठा अवितुं युक्तः ।

बाधोः । रथीर्ष्वतस्य बृहतो बभूथ (११) रति । हे 'त्रग्ने', 'त्रध' (श्रसादीयसोचानन्तरं) 'क्रतोः' (श्रनुष्ठीयमानस्य कर्मणः) 'रथीः' 'बभूष' 'हि' (रथोऽस्वास्तीति रथो बार्धिर्निर्वाहकः, तथा लं निर्वाहको बभूथ खणु) । की हृत्रस्य 'क्रतोः' ?—'भद्रस्य' (कस्याण-रूपस्य), 'दचस्य' (स्वपद्प्रधानसमर्थस्य') 'साधोः' (रिमिशिः । साधस्य) 'स्टतस्य' (सत्यस्य, श्रमेष्ववकस्य) 'बृहतः' (प्राहस्स) ।

श्रय हतीयामचरपिष्क्रभा च,—'श्विभष्टे श्रय गीर्भिर्यंषन्ताऽग्रे दाग्रेम। प्रते दिवा न स्तनयन्ति ग्रः ग्राः(१४)" इति। चे 'श्रग्ने', 'श्रय' (श्वस्मिन् कर्मणि) श्राभिः 'गीर्भिः' (मन्त्रक्पाभिः) 'ग्र्यस्नः' (स्तन्त्रः) वयं 'दाग्रेम' (इविद्धाः)। 'ते' (लदीयाः) 'ग्रः ग्राः' (प्रवक्षा व्याखाः) लां प्रकर्षेण 'स्तनयन्ति' (श्रव्दयन्ति)। तत्र दृष्टान्तः,—'दिवा न' (ग्रुका मेघा इव)।

श्रथ चतुर्थी मचरपिक्क माइ,—''एभिनें। श्रवें भेंवा ने। श्रवें ख्रिनें ख्रोतिः। श्रमें विश्वें भिः समना श्रमोकैः (१४)'' इति। हें 'श्रमें, 'विश्वेभिः' 'श्रमोकैः' (सवंसैन्धेः) सिहतः 'समनाः' (स्रामनस्यं प्राप्तः) 'एभिः' (इदानीं क्रियमाणैः) 'नः' (श्रसात्-सम्बिभिः) 'श्रकैंः' (श्रर्थनीयैः) 'नः' (श्रसात् प्रति) 'श्रवें स्ं' 'भव' (समीपस्रो भव), समीपदेशमभिगस्कतीति श्रवें स् । तच हृष्टान्तः,—'स्वर्न' (स्वर्गस्रोक प्रकाशक्ष श्रादित्या यथा समीपवित्रो भवति तदत्।

[🕈] खपदप्रदानसमर्थस्य इति पाठोऽच भवितुं युक्तः।

[†] रिषिभिरिति रिष्मिभिरिति च पाठानारम्।

श्रचातिक्क न्द्यमाइ,—'श्रीय श्रेषातरं मन्ये दाखनां वसाः सनु सहसे जातवेदमं। विप्रस्न जातवेदमं। य जर्ख्या खध्यरे देवा देवाच्या छपा। घृतस्य विभाष्टिमनु ग्रुक्तभोषिष श्राजुङ्गानस्य सिर्पेषः (१९)'' इति। इसम् 'श्रीयं' 'होतारं' (देवानामाङ्गातारं) श्रहं 'मन्ये'। की हु समग्रिं?—'वसोः' 'दाखनां' (धनस्य दातारं), 'यहसः' 'सनुं' (यखस्य पुत्रं) 'जातवेदसं' (खत्यस्रजगद्भिष्ठां)। तत्र दृष्टानाः,—'विप्रं न जातवेदसं' (यथा ब्राह्मणकुलीनमृत्यस्य-पुत्राद्यभिष्ठां मन्यन्ते तदत्)। 'यः' श्रियः 'देवः' 'ऊर्ज्यया' (श्रियुक्तत्या) 'देवाच्या' (देवान् प्रति नक्कन्या), छपया (ख्रास्या) 'देवाच्या' (देवान् प्रति नक्कन्या), छपया (ख्रास्या) 'स्वध्वरः' (सृष्टु यागनिष्यादके। भवति)। स्रोऽग्निः 'घृतस्य' 'विभाष्टिं' (विभेषेण दीप्तिम्) 'श्रनु'हाय दौष्यत इति भेषः। को हुक्रस्य घृतस्य?—'ग्रुक्तभोषियः' (ग्रुद्धदीप्तियुक्तस्य), 'श्राजुङ्गानस्य', (सर्वती ह्रयमानस्य) 'सर्पेषः' (सर्पणक्रीस्रस्य)।

त्रथ तिसृषु दिपदासु प्रथमामाइ,—''त्रग्ने लन्ने त्रन्तमः। उत त्राता शिवा भव। वरूथः(^(२०)'' दति। हे 'त्रग्ने', 'लं' 'नः' (त्रम्माकं) 'त्रन्तमः' (त्रन्तिकतमा भव)। 'वरूथः' (वरूथे गृहे नित्यधित्रहिता भव)।

श्रध दितीयां दिपदामार,—''तं ला श्रोचिष्ठ होदिवः।
सुवाय नूनमीमरे सखिभ्यः' रित । हे 'श्रोचिष्ठ' 'होदिवः'
(श्रद्धतम दोष्यमान), 'सखिभ्यः' (सखीनामस्माकं) 'सुवाय'
(सुखाय) 'नूनं' (पूर्वेक्तगुषयुक्तं) लाम् 'ईमहे' (प्राप्नुमः)।

श्रय हतीयां दिपदामाइ,—"वसुर्ग्निवसुत्रवाः । श्रक्का

निष युमक्तमे रथिं दाः(१८)" इति । 'वषः' (वसमान्) ण्यम् 'ब्राजः', वसब्दादिदेवैरादरेख श्रूषत इति 'वस्त्रवाः', चे तादृश्राग्ने, खाभिमुखो 'निष' (प्राप्तृषि) ।

एतेरिप्रार्मृशिंत्यादिशिः वाध्यमुपधानं विधत्ते,—"हन्दा एखुप-दधाति पत्रवे। वे हन्दा एसि पत्रुनेवावद शे हन्दा एसि वे देवानां वासं पत्रवे। वासमेव पत्रुनेवह शे एता ए ह वे यञ्चवेन-वैिचाधक विति विदासकार तथा वे स पत्रुनेवाद शे धदेता मुप-दधाति पत्रुनेवाद शे" (५१६१८ स०) दित। नाय स्थादिक न्दी-धृत्रे के स्वे पत्रुनेवाद शे" (५१६१८ स०) दित। नाय स्थादिक न्दी-धृत्रे के स्थाप पत्रुचे त्वाधक सामः 'पत्रुन्' प्राप्ते। कि स्व 'हन्दि विशे प्राप्ते। कि स्व 'हन्दि विशे पत्रुने 'एव' 'देवानां' वननीय धनक पाणि, त्रतका दृष्टा पत्रुन्' सवं प्राप्ते। कि स्व विषया सक्त कि पत्रुवक स्व वंश्वे समुत्यका स्व स्वादितां कि विदिता कि तवान्, ततस्व वेव वित्या पत्रुन् प्राप्ते। विदिता कि विदिता कि तवान्, ततस्व वेव वित्या पत्रुन् प्राप्ते। एवसन्थे। प्राप्ते। प्राप्ते।

सामान्त्रेन विदितं पुनर्विज्ञेवाकारेख विधत्ते,—"मायनीः पुरस्ताद्यद्धाति तेना वै गायनी तेत्र एव मुखते। धत्ते" (५। ३।८८०) इति। प्रिज्ञिर्धेत्वादिभिगीयनी व्हन्दोभिर्धुकैर्मन्तेदप-धेवा इष्टका गायष्टः।

मक्तेषु मूर्धक्क्व्यस्य तात्पर्धमारः,—"मूर्धन्ततीर्भविन मूर्धा-नमवैनश्र समानानां करोति" (५।३।८७०) दति। मूर्धक्क्व्य-

^{*} विम्मूधकादिभिरिति सर्वेत्र पाठो न सन्यव्।

युक्तेमंन्त्रेरपधेया रहका मूर्धन्वत्यः। समानानां मध्ये यजमानस मूर्धलं बिरावदुक्तप्टलम् ।

भुवा वज्रस्रोत्यादिभिक्तिष्टुप्रन्दोयुक्तैर्मन्त्रेदप्रया दष्टकान् * विभक्ते,—"विष्टुभ उपद्धातीन्त्र्यं वै विष्टुनिन्द्रियमेव मध्यती धक्ते" (५।३।यम्न) इति।

जनस नेता रत्यादिभिजेगतो छन्दोभिर्मन्ते रूपधेया रष्टका विधत्ते,—"जनतीइपद्धाति जागता वै पत्रवः पत्रूनेवावइन्धे" (४।३।८४०) इति।

तां चित्रमनेत्यादिभिरनृषुप्रुन्दोयुक्तेर्मन्त्रेदपधेया रहका विधन्ते,—"त्रनृष्टुभ उपदधाति प्राचा वा त्रनृष्टुप् प्राणानाम् **चत्रुचे"** (५।३।८४०) इति ।

'एना वा त्रियम्' रत्यादिभिः, 'त्रग्ने वाजस्त्र' रत्यादिभिः, 'बाते बन्न इधीमहि' द्वादिभिः, 'बन्ने तमग्न' द्वादिभिन्नोप-भेवा विभन्ते,—"बृष्टतीरिष्यषाः पङ्कीरचरपङ्कीरिति विषु-रूपाचि इन्दार्खुपदधाति विषुरूपा वै पत्रवः पत्रवः इन्दार्शव विषुक्रपानेव पश्चनवरूथे" (५।३।८२०) इति । पूर्विक्रेषु क्रन्दःसु समानाचराः सर्वे पादाः, बृचत्यादिषु विषमाचराः, श्राते। विषु-क्पनं। 'पन्नवः' ऋषि गामिश्वादयः पर्वारविश्ववादिष्-क्याः क्रन्द्साञ्च पद्भः हेतुलात् पद्भलं। तथा सति एतदुपधानेन बक्जविधान् पत्रूनाञ्चाति ।

चयोपधानेन वेदनस्य प्रजंसति,—"विवृद्धपमस्य यसे दुस्तते

[🝍] बान उपधेया इसना इति पाठी भवितुं युक्तः।

यस्रोता उपधीयको य उ चैनाः एवं वेद्" (५।३।८४०) इति । 'विषुरूपं' (बक्रविधं धनं) ।

त्रियं होतारमिति मक्तेणे। पथेषां विधक्ते,—"त्रिक्टन्द्यमृपदधात्यतिक्टन्दा वै सर्वाणि इन्दाप्रि सर्वेभिरेवेनं इन्दोभियिनुते वर्षे वा एषा इन्द्रसां यदितक्टन्दा यदितक्टन्द्रसमुपदश्चाति वर्षेवेनप्र समानानां करोति" (५।३। प्रत्र ०) दति ।
गायत्रादीनां सर्वक्टन्द्रसां येयमचरसञ्ज्ञा तस्या त्रतिक्टन्द्रस्वाभावात् सर्वक्टन्द्रोक्पलं। किञ्च सर्वेषामक्तर्भावादेवेतदीयेष्टका
त्रतिक्टन्द्रोभिधानादन्यासां इन्द्रोभिधानानां दृष्टकानां त्ररीरम्।
त्रत एतदुपधानेन यजमानं समानानां पृद्दाणां त्ररीरस्वानं
करोति, सर्वेऽयोनमुपत्रीवक्तीत्यर्थः।

'त्रग्ने लत्रः' इत्यादिभिद्यधेया इष्टका विधत्ते,—''दिपदा खपदधाति दिपाद् यजमानः प्रतिष्ठिते" (५।३।८५०) इति ।

त्रव विनियागसंग्रहः,—

श्रीत,-खिखख गायश्रो, भुवस्त, विष्टुभा वयं।
जन, तिस्रो जगत्यः खुस्तां चित्रानृष्टुभा वयं॥
एना, तिस्रो बृहत्यः खुरग्न दत्युष्णिहा वयं।
श्रा ते, पंत्रिवयं, श्राग्नेऽचरपंत्रिचतुष्टयं॥
श्रीग्रमेका श्रातिच्छन्दा, श्रग्ने लं, दिपदाचयं।
एकानचिंग्रदेतानि छन्दांस्पुपदधाति हि॥

द्दति सायनाचार्यावर्षिते माधवीये वेदार्थप्रकाणे कृष्णयजुः-संहिताभाय्ये चतुर्थकाण्डे चतुर्थप्रपाठके चतुर्थोऽनुवाकः॥ •॥ दुन्द्राग्निम्यां त्वां स्युजा युनज्याघाराभ्यां तेजसा वर्षसे क्योभः स्तोमे भिन्छन्द्रीभी र्य्ये पाषाय सजातानां मध्यम् स्थेयाय मया त्वा स्युजा युजा युनज्मि अम्बा दुखा नितृ त्विर्भयंन्ती मेघयंन्ती वर्षयंन्ती चुपुणीका नामासि प्रजापितना त्वा विश्वा-भिर्धो भिरूपंद्धामि (८१॥) पृष्यि ब्युंदपुरमन्त्रेन विष्टा मनुष्यास्ते गेषारो राज्ञि वियेत्ते रस्यां ताम् इं प्रपंद्ये सा॥ १॥

मे शर्म च वर्म चास्तु (१०) श्रधि शौर्न्तरिष्ठं ब्रह्मणा विष्टा मुरुतेस्ते गोतारा वायुर्वियत्तोऽस्यां तामुष्टं प्रपंद्ये सा मे शर्म च वर्म चास्तु (१०) शौरपराजिताऽस्तेन विष्टादित्यास्ते गोतारः स्रया वियत्तोऽस्यां तामुष्टं प्रपंद्ये सा मे शर्म च वर्म चास्तु (१०)॥२॥

सा। ऋष्टाचेत्वारि श्रम् ॥ ५ ॥

इति तैत्तिरीयसंहितायां चतुर्थकार्ण्डे चतुर्थप्रपाठके पच्चमाऽनुवाकः॥ ०॥

चतुर्चेऽनुवाके कन्दोभिधाना इष्टका उकाः । श्रथ पश्च मे मंयुगादय दष्टका उच्चन्ते । कचाः, 'दन्द्राग्निम्यां ला सयुजा युजा युनज्योत्यक्षे सयुजः' दति । पाठस्त,—''दन्द्राग्निम्यां ला

एते मंन्हे: साध्यमुपधानं विधन्ते,—''सर्वाभ्ये। वै देवताभ्ये।ऽग्निसीयते यत् सयुजा नापदध्याद्देवता श्रक्षाग्निं दुन्नीरन्
यस्ययुज उपदधात्वात्वानैवेन स् सयुजं चिनुते नाग्निना खृध्यतेऽथा
यथा पुद्दः खाविभः सन्तत एवमेवेताभिरग्निः सन्ततः" (५।३।
८.२०) हिता थाऽयं चीयमानः 'श्रग्निः' स सर्वदेवतार्थः । तथा
स्वति सयुगास्त्रानामिष्टकानामनुपधाने स्वति 'श्रस्ताग्निं' हन्द्रान्याधारादिदेवताः परित्यजेयुः । देवताभिः सद्दाग्निं थोजयन्तिति सयुजो मन्त्राः । तैर्मन्त्रेदपधेया दष्टका श्रिप 'सयुजः' ।
तासामुपधाने सति धजमानः खेन सद्द बोजियलाऽग्निं चितवान्

अवित । तता नाग्निना वियुक्ता भवित । श्रिप च यथा साकी पुरुषः स्नाविभः श्ररीरे सर्वता याप्तः तददेताभिरिष्टकाभिरग्निः सर्वता याप्ता भवित, तसादेता उपद्धात्।

करणः, 'श्रमा नामासीति सप्त क्रिक्ता' इति । पाठस्तु,—
"श्रमा दुला नित्रक्षिरभयमी सेघयमी वर्षयमी पुपृणीका
नामासि प्रजापितना ला विश्वाभिधीभिद्द्यधामि(१-१६)'' इति ।
श्रमादि पुपृणीकामानि सप्त पदानि सप्तानां क्रिक्तादेवीनां
नामानि । 'नामासि' इत्यादिशेषः सर्वेष्विप पदेष्वनुषञ्चते, ततः
सप्तिते मन्त्राः । हे इष्टके, या इष्टका 'श्रमा'नामा तद्रूपा
लम् 'श्रसि', तादृशी लं 'प्रजापितना' देवेन प्रेरिता, या श्रसाद्बुद्धयः ताभिः सर्वाभिः 'खपदधामि', (सावधानोऽषं बुद्धिवैचित्र्येण सम्यगुपदधामीत्यर्थः) । एवं 'दुला' 'नामासि' इत्यादिकं
धीजनीयम् ।

हतेर्मकीः साध्यमुपधानं विधत्ते,—"त्रविना व देवाः सुवर्गं लोकसायम् ता त्रमूः लिक्का त्रभवम् चस्तिता लपधीयको सुवर्गमेव लोकसेति गच्छति प्रकाशं चित्रमेव भवति" (५।३।८) इति। पूर्वमेताभिरिष्टकाभिश्चितेन 'त्रविना' 'देवाः' स्वर्गं प्राप्ताः, 'ताः' च इष्टकाः तैः सह मला तच 'त्रमूः' (हुम्समानाः लिक्काः) 'त्रभवन्' त्रतसदुपधानेन स्वर्गप्राप्तिः भवति। किञ्च त्रनेन स्वर्गे 'प्रकाशं' प्राप्नोति, 'चित्रम्' (त्राभरणादिकं) च त्रस्थ 'भवति'।

कस्यः, 'प्रथिख्दपुरमञ्जेनेति मख्डलेष्टकाम्' इति । पाठस्र,—

"पृथिखुदपुरमञ्जेन विष्टा मनुवाको ने। त्रारीऽग्निविंबक्तोऽक्षां तामकं प्रपद्ये वा ने वर्म च वर्म चाक्त(१९)" इति। 'क्यनेन' 'विष्टा' (क्यनेन मनूक्षा) या पृथिवी, के इष्टने, वा 'पृथिवी' 'खदपुरं' (उद्यम्पूर्षे(?)। 'मनुव्याः' 'ते' (तव) 'ने। त्रारः' (रक्तितारः), 'क्यां' (पृथिव्याम्) 'क्यिविंधकाः' (रक्ष्वाच विज्ञेषेष प्रयम्नवान्), तादृत्रीं पृथिवीक्पां 'तां' (इष्टकाम्) 'क्यं' 'प्रपद्ये' (प्राप्नोमि)। 'वा' (तथाविधेष्टका) 'ने' (मम) चलमानक 'व्यमं' (प्रर्षं, ध्रक्षानं) 'क्यं', 'वर्मं' 'क' रक्षणाथ (कवक्यानीयम्) प्रपि 'क्यं'।

कराः, 'मधियोरिति मण्डलेष्टकाम्' इति । पाठस्त,— ''मधियोरकारिणं प्रम्नणा विष्टा मदतस्ते गोप्तारे। वायुर्वियत्तो-उद्यां तामदं प्रपत्ते सा ने कर्म च वर्म चास्त्र^(१०)" इति । 'ब्रह्मणा विष्टा' (प्रावेश जनेन विष्टा युक्ता) 'त्रधियोः' दिवे। उप्यधिका या पूः, सा 'क्रकारिणं' (त्रकारिणनामकं) हे इष्टके, तव पुरं 'मदतः' (वायवः), तेखेका मुख्या वायुः । क्षेषं पूर्ववत् ।

कस्यः, 'द्यौरपराजितित मक्क लेष्टकाम्' इति । पाठस्त,— ''द्यौरपराजिताम्हतेन विष्टादित्याके नेष्ठारः सर्वेष वियक्षेष्ठस्यां तामचं प्रपद्ये सा ने क्षमं च वर्म चास्त्र^(१८)" इति । 'त्रम्हतेन विष्टा' (पीयूषेच पूर्णा) 'द्यौः' (द्युलेकास्था) हे इष्टके, तव पूः, तेनापि 'चपराजिता' । 'त्रादित्या' दादश्रमञ्ज्ञाकाः तेम्बेका मुख्यः सर्वः । श्रेषं पूर्ववत् ।

^{*} विधिकायाः इति सर्वेत्र माठी न सन्यक्।

एतेर्मकीः वाध्यमुपधानं विधत्ते,—"मण्डलेष्टका उपदधाति इसे वे खेका मण्डलेष्टका इसे खन्नु वे खेका देवपुरा देवपुरा एव प्रविन्नति नार्त्तिमार्च्यत्वाग्नं चिकानः" (५।३।८-४०) इति । मण्डलाख्या इष्टकाल्विसः प्रथममध्यमेश्ममचितिषूपदध्यात् । जागां चेष्टकानां लोकनयद्भपलात् लोकनयद्भ देवपुरलात् 'देवपुरा एव' त्राप्तित् 'प्रविन्नति'॥

चन विनियागसंग्रहः,--

इन्हेति सयुजस्तव, त्राचारादिपदेखपि। त्रनुवङ्गस्तेति तथा 'र्य्या' इत्यव्यते मतः॥ त्रमेति कत्तिकाः सप्त, नामासीत्यनुवव्यते न पृथि,—विभिनेस्क सास्या सन्ता त्रवादमेरिताः॥

दति सायनाचार्यविरचिते माधवीये वेदार्थप्रकात्रे स्वव्ययजुः-संहितासास्ये चतुर्थकाण्डे चतुर्थप्रपाठके पश्चमाऽनुवाकः॥ •॥

रहुस्पतिस्वा सादयतु पृष्टिच्याः पृष्ठे ज्योतिषातीं विश्वंस्मे प्राणायापानाय विश्वं ज्योतिर्यच्छामिस्तेऽधि-पतिः(१) विश्वकंमी त्वा सादयत्वन्तरिश्वस्य पृष्ठे ज्योति-षातीं विश्वंस्मे प्राणायापानाय विश्वं ज्योतिर्यच्छ वायुस्तेऽधिपतिः(१) प्रजापंतिस्वा सादयतु द्विवः पृष्ठे ज्योतिषाती विश्वंसी प्राखायापानाय विश्वं ज्योति-र्यच्च परमेषी तेऽधिपतिः (१) पुरावात्सनिरस्यस्यति-रसि विद्यासनिः ॥ १ ॥

श्रुस्त स्वायान्यसि स्वायान्यसि देवान्यसि देवान्यसि देवान्यसि देवान्यसि (१९-१९) व्यायार्थिस देवान्यसि (१९-१९) श्रुक्ति सिस्य यान्यसि देवान्यसि (१९-१९) श्रुक्ति सिस्य यान्यसि देवान्यसि (१९-१९) श्रुक्ति सिस्य यान्यसि देवान्यसि (१९-१९) श्रुक्ति सिस्य स्वायक्ति सिस्य व्यासि विवाय त्वा सतीकाय त्वा सतीकाय त्वा केताय त्वा प्रचेतसे त्वा विवस्तते त्वा दिवस्वा श्रोतिष श्रादित्येभ्यस्वा (१०-१९) श्रचे त्वा स्वे त्वा य्रवे त्वा, भ्रासे त्वा श्रोतिषे त्वा (१९-१९) श्रचे त्वा स्वे त्वा य्रवेसि त्रवे त्वा तेश्रीस प्रयादा त्वा पर्यसि वर्चीदां त्वा वर्षसि द्रविणादां त्वा द्रविणे साद्यामि तेनिष्या तेन वर्षसि द्रविणादां त्वा द्रविणे साद्यामि तेनिषया तेन वर्षसि द्रविणादां त्वा स्वावसि स्वायसि सिद्रि (१९-१९) ॥२॥ विद्यसिनीः। द्यते त्वा। एक्ताकि सुरुक्ति ॥ ६॥

द्रित तै तिरीयसंदितायां चतुर्यकाण्डे चतुर्यप्रपाठके षष्ठोऽनुवाकः॥ •॥

पश्चमेऽनुवाने संयुजाचा र एका लक्षाः । श्रथ वहे विश्व-च्योतिराचा र एका लच्चने । कच्यः, 'ट इस्पतिस्वा सार्यत पृथियाः पृष्ठे च्योतिसतीमिति विस्वच्योतिषाम्' इति । पाठस्त,
—"दृष्यतिस्ता साद्यतु पृथियाः पृष्ठे च्योतिसतीं विस्येषे
प्रावायापानाय विश्वं च्योतिर्थेच्काग्निस्तेऽधिपतिः(१)" इति । हे
इन्ने, तां 'दृष्यितः' 'पृथियाः' 'पृष्ठे' (उपरि) खापयतु ।
कीदृष्णीं तां ?—'च्योतिसतीं' (प्रकाषवतीं) । किमर्थं ?—'विस्यों'
'प्रावायापानायं ।

कराः, 'विश्वकर्मा ला साद्यलमरिचस पृष्ठे च्येतिसतीमिति विश्वच्येतिसतीमिति विश्वच्येतिषम्' इति । पाठसः,—''विश्व-कर्मा ला सादयलमरिचस पृष्ठे च्येतिसती विश्वसी प्राणाया-पानाच विश्वं च्येतियंच्य वायुसोऽधिपतिः(१)" इति । पूर्ववद् व्याख्येयम् ।

कत्यः, 'प्रजापितस्ता साद्यतु दिवः पृष्ठे च्छोतिश्वतीमिति विश्वच्छोतिषम्' इति । पाठस्त,—"प्रजापितस्ता साद्यतु दिवः पृष्ठे च्छोतिश्वती विश्वसी प्राणायापानाय विश्वं च्छोतिर्यं च्छ परमेष्ठी । तेऽधिपितः (९)" इति । एतदपि पूर्ववद्वाख्येयम् ।

एतेर्मन्त्रैः साध्यमुपधानं विधन्ते,—"विश्वच्योतिष उपद्धाती-मानेवैतामिर्णाकान् च्योतिश्वतः कुरुतेऽयो प्राणानेवैता यजमानख दाप्रत्येता वै देवताः सुवर्णासा एवान्यारभ्य सुवर्णं लेकिमेति" (१।३।८ श्र०) इति । विश्वश्रब्दोपेतेस मन्त्रेरपधेया 'विश्वच्योतिषः,'

[🍍] रवसेव सर्वेत्र पाठः। विश्वकोतिवमिति पाठो भवितुं बुक्तः।

[†] खिंधक इव गाठः प्रतिभाति।

[‡] षात्र परमेशीति टकारयुक्तः सर्वेषु भाष्येषु पाठे। न सम्यक्।

नाय तिसः प्रयममध्यमेशसमितिषु उपद्धात्, तदुपधानेन खेलान् प्रकाष्ट्रतः करोति। किञ्च एता रहका 'यजमानस्य' प्राणान् रृढं धारयन्ति। एतेषु मन्तेषु प्रतीयमाना दृष्टसाद्या-र्यः 'एता' 'देवताः' स्वगंयोग्याः 'ता' 'एव' श्रनुस्रत्येष्टका उपधाय स्वगं प्राप्तोति।

कचाः, 'पुरे।वातयनिरसीति पश्च दृष्टियनीरनुपरिद्यारम्' इति। पाठन्त,—"पुरे।वातयनिरद्यक्षयनिरिध विद्युक्षनिरिध क्षनिया विद्युक्ष विद्यु

एतकाका वाध्यमुपधानं * विधक्ते,—"दृष्टिवनी इपद्धाति दृष्टि-नेवावह्ये" (५।३।२०४०) इति । 'दृष्टिवनिवय्युके भेके इप-धेषा इष्टका दृष्टिवनयः । तदुपधानेन दृष्टिं प्राप्नोति ।

एकप्रयक्षीपधानं वार्यितुमनुक्षमेष परिता इता इता तदुपधानं विधक्ते,—"यदेकधोपद्धादेकस्तृतं वर्षेदनुपरिचार्ष्ट्र सादयति तस्मात् सर्वान् ऋतन् वर्षति" (५।३।२०४०) इति। एकामिष्टकां चिक्के धता चयनचेषं प्रदक्षिकेत्वोपद्धात्। एवमनुक्रमेणोपधाने सति सर्वेष्ट्यपृतुषु दृष्टिर्भवति।

मक्षेषु पुरावातादिककानां तात्पर्यं दर्भयति,—"पुरावात-वनिरवीत्यादैतदै दन्धे रूपः रूपेणैव दृष्टिमवद्भे" (५।३।

^{* &#}x27;विधानं' रत्वधिकः पाठः का० इ॰ पुद्धकेऽस्ति।

[†] अन रखका इति निर्मुखारः पाठी न सम्बन्।

१०८०) रति । पुरावातास्रविद्युत्सनयिम्वर्षणानि मिस्रिला पञ्च रुष्टेः सन्दरम्, त्रता दृष्टिवाचिना मन्त्रेणैव दृष्टिं प्राप्नाति ।

कत्यः, 'त्रग्नेर्यान्यगिति हे ग्रंथान्यै।' इति । पाठन्तु,— त्रग्नेर्यान्यिम देवानामग्नेयान्यिमि(^८-^{९०})" इति । हे इष्टके, लम् 'त्रग्नेः' (चीयमानस्य वक्रेः) 'यानी' (प्रापिका) 'स्वि' । त्रनेन मन्त्रेष यजमानस्यापि प्राप्तिक्ता । दितीये देवानामग्निप्राप्ति-रस्थते । हे 'त्रग्ने' (लं) 'यानी' (प्राप्नेतियोतादु गुचार्षं) यस्याम् दष्टकार्या सेयम् 'त्रग्नेयानी' । इष्टके देवानां सन्तन्धिनी तथाविधाः लम् 'त्रिसि' ।

कत्यः, 'वाचार्यान्यमीति दे संयान्धाः' इति । पाठस्तः,—"वाचा-चीन्यमि देवानां वाचायान्यमि^(११-११)" इति । पूर्ववद्वास्त्रोयं ।

कत्यः, 'चन्तरिचयः वान्यमीति दे संवान्यो' इति । पाठस्तु,— "चन्तरिचयः वान्यसि देवानामनारिचयान्यसि^(११-१४)" इति । एतदपि पूर्ववद्वास्थेयं ।

कत्यः, 'त्रनिरिचमस्यमिरिचाय लेति दे संवान्ये।' इति। पाठस्त,—''त्रमिरिचमस्यमिरिचाय ला^(१५-१९)'' इति। हे दृष्टके, तं त्रमिरिचरूपायि। हे दितीयेष्टके, त्रमिरिचपीत्यर्थे लाम् उपद्धामीति भेषः।

यते मंन्ते: बाध्यमुपधानं विधन्ते,—"शंयानोभिर्वे देवा इमा-माकान्समयुक्तसंयानीनाष्ट्र शंयानीलं यसंयानी हपदधाति यथापु नावा शंयात्येवमेवैताभिर्यजमान इमाम्रोकान्संयानी" (५।३। १० १०) इति । शंयानीमध्योपेतैर्मन्ते हपधेया इष्टकाः शंयान्यः। ताभिः 'देवाः' 'इमान्' 'लोकान्' सम्यक् प्राप्ताः । ततः सम्यक् यान्ति खोकानाभिरिति संयानीबच्दो खुत्पन्नः, तदुपधाने सति यथा लोके नदादिअलेषु नावा परतोरं सम्यग् याति, एवम् 'एताभिः' 'लोकान्' सम्यक् प्राप्तोति ।

पूर्वं नीदृष्टान्तेन प्रशंसा कता, श्रथ अवक्ष्पलमारीष्य
प्रश्नमित,—"अवा वा एषे। अर्थे संयोगीर्थं संयोगीर्थं स्थानि अवमेवैतमग्नय उपद्धाति" (५।३।१० श्र०) इति। चीयमानस्थाग्नि—
यमुद्रस्य संयोगीयमूद्रे। अवक्ष्पः, श्रतसद्प्धानेनाम्बर्धे
अवक्ष्पमेवे। पद्धाति।

प्रकाराक्तरेण पुनः प्रशंसित,—''उत यस्नैतासपिहतास्वापे।ऽग्निष्ट हरत्यहत एवास्वाग्निः" (५।३।९०च०) हति। चपि च
तद्पधानादूर्द्वां यदि कथित् वज्जबदृष्टिं सन्पादितप्रवाहेष॰
चीयमाने। हते। भवेत् तथापि 'चर्च' (यजमानस्त) 'चग्निः'
'चहतः' 'एव' भवति।

कत्यः, 'मिल्लाय लेत्यष्टावादित्येष्टका' इति । पाठस्त,—
"मिल्लाय ता मर्पीकाय ता मतीकाय ता केताय ता प्रचेतमे
ता विवस्ते ता दिवस्ता क्योतिष पादित्येभस्ता (१०-९४)" इति ।
मिल्ल-मर्पीक-मतीकष्रस्या जलावान्तरविश्रेषवाचिनः,—यस्मिन्
मफ्रले जले पतितं वस्तु सीनं भवति, तद्वक्रस्त्रमसं 'मिल्लं' । दे
इष्टके, तथाविधक्रसमिद्यार्थं ताम् उपद्धामि । एवमुत्तरचापि

[.] चनमेव सर्वेच पाठः। तदुपधानादू वें यदि कथित् व ज्ञव-बिरुसम्पादितप्रवाहेब इति पाठकु भवितुं युक्तः।

चोळं। प्रवाहरूपेष सरषगीसं जसं 'सर्थीकं'। तमेव सद्वावमापत्रं जसं 'सतीकं'। 'केता' ज्ञानमामं। 'प्रचेतः' प्रस्तृष्ट्यानं। विश्वेषेष वासहेतुः सर्थप्रकाशे हि 'विवस्ताम्'। युलाकवर्त्ती मणणादि-प्रकाशे 'दिवा' 'च्यातिः'। ज्ञादित्याः प्रसिद्धाः।

एतेर्भन्तैः साध्यमुपधानं विधन्ते,—"त्रादिखेष्टका खपदधा-त्यादित्या वा एतं अर्त्ये प्रतिनुदको चेाऽसं अत्ये सन् अर्ति न प्राप्तीत्यादित्या एवेनं भृतिं गमयन्त्रमा वा एतसादित्या रूप-मादने योऽग्निं चिला न राचते यदादित्येष्टका खपदधात्यमा-वेवासिमारिखो इपं द्धाति यथाकी देवाना १ राचत एकमेवैव ममुखाषाप्र राचते" (५।१०४०) दति। श्रादित्यब्रव्होपेते-र्मकेदपधेया 'त्रादिखोष्टकाः'। 'यः' राजा त्रमात्यादिपुत्रलेन भ्रत्यये यमर्थाऽपि 'भूति न प्राप्ताति', 'एनम्' 'चादित्या' एव भूतेर-पनचिन, जातस्त हादित्येष्टकापधानेन जादित्या एव भूते: प्राप-**यितारी भवन्ति। 'यः' (यजमानः) उन्नक्रमेष 'त्रग्निं चि**वा' चिप मन्येभ्या न 'राचते'। चयमग्रिचिदित्येवं मनुष्या बद्धमानं न नुर्विना, तदानीमखाग्निपिता 'इचं' (प्रीतिम्) 'त्रादित्य' छप-'श्राद्त्ते'। तस्राद्तिष्टेष्टेकोपधाने सति श्रादित्य एव तस्मिन् स्नाप-यति । ततः शास्त्रीयवचनेन यथा देवानां प्रियः 'एवमेव' 'मनुष्यार्षा' प्रियो भवति । ततः—

"बग्निवित् कपिका सभी राजा भिचुमंदे।दिधः।

^{*} बसकेतुरिति का॰ स॰ पु॰।

दृष्टमाचाः पुनन्धेते तस्रात् प्रस्तेत नित्यत्रः" । इत्यादिस्पतिविषयलेनेनं मनुष्या गणयन्ति॥

कत्यः, 'श्रमे ला दमे लेति पश्च घृतेष्टकाः' इति। पाठस्तं,—
"श्रमे ला दमे ला सुते ला भासे ला ज्योतिषे ला^(१६-९८)"
इति। हे इष्टके, पादबद्धं मन्त्रसाध्यस्त्व्यर्थं लाम् उपद्धामि।
एवमुक्तरमापि योज्यं। प्रकाववाचिनी 'दक्'। 'शुत्'-'भा'-'ज्योतिः'-प्रव्दा श्वादित्यचन्द्राग्निमचनदोत्रिविषयतया क्रमेष व्यास्त्रियाः।

एतकाक्षमध्यमुपधानं विधक्ते,—"धृतेष्टका खपदधात्येतदा ब्रग्ने: प्रियं धाम यहुतं प्रियेषैतेनं धाबा ममर्द्र्यत्यथे। तेजसा" (५।३।९०व्र०) इति। घृतपिष्डा एव 'घृतेष्टकाः'। ब्राह्मस्यीषु इष्टकासु स्वकारेष परिगणितवात् घृतसाग्निप्रयह्न्यवात् तेनाग्निः सम्दद्धो भवति। किञ्च 'तेजसा' व्रपि युक्ते। भवति।

तवापि पूर्ववदेकेकसा इष्टकायाः प्रद्विणाष्ट्रितपूर्वकलं वि-धन्ते,—"त्रनुपरिचारण् साद्यत्यपरिवर्गसेवास्मिन् तेका द्धाति" (५।३।९०८०) इति । परितः कापि वर्जनं कला । सर्वते। यजमाने 'तेजः' खापयति ।

कत्यः, 'यन्नोदां लेति पद्म यन्नोदा' इति । पाठन्त,— यन्नोदां ला यन्निध तेनेदां ला तेनिध पयोदां ला पयपि वर्चेदां ला वर्चवि द्रविधेदां ला द्रविषे सादयामि तेनिर्धणा तेन

^{*} यादवज्र-इति पाठी भवितुं युक्तः।

[†] चक्रला इति पाठा भवितुं युक्तः।

त्रश्चाषा तथा देवतचाङ्गिरखद्भवा सीद (१०-१४) रित। 'घत्रः' कीर्तिः। 'तेत्रः' कािनाः। 'वर्षः' क्यं। 'पयः' कीरं। 'द्रविषं' धनं। हे दृष्टके, यत्रःप्रदां लां यत्रे निमत्तं 'सादवािम'। केन सह?—यस्तदिभन्न ऋषिः, यत्र ब्रह्मलप्रतिपादकं मन्त्रवाक्यं, या च लदिभमािनिनी देवता; तैः सर्वैः सह लाम् प्रदं 'सादयािम'। यथा चित्रवः सादयिन तदत्। एवं 'तेवादां ला' द्रत्यादिषु चतुर्षु मन्त्रेषु सादयािनीत्यादिकं सर्वमनुषच्य व्याख्येयम्।

एतेर्मकी: बाध्यमुपधानं विधन्ते,—"प्रजापितरिग्नमित्तृत स यश्रमा व्यार्थत स एता बन्नोदा अपस्तत् ता उपाधन्त तासिर्वे स यश्र आत्मक्षमा यश्रमोदा उपद्धानि वश्र एव तासिर्यज्ञमान आत्मश्रमो" (५।२।१०%) इति। अग्निं चिवाय्येतासामनुप-धानात् 'प्रजापितः' बन्नसा वियुक्त आसीत्। तत एता दृद्दा ता उपधाय यश्रो सन्धवान् । एवं यजमाने।ऽपि तदुपधानेन यश्रो सन्ते ।

रष्टकासञ्चां विधन्ते,—"पश्चोपदधाति पाष्ट्रः पुरुषे। यावा-नेव पुरुषस्तिम् यभ्रो दधाति" (५।२।९०५०) इति। इस-पादिश्वरोभिः पश्चभिर्वयवैः पुरुषस्य पाष्ट्रस्तम्॥

श्रव विनियोगसंग्रहः,-

रुष, — विश्व, — प्रजेत्येता विश्वज्योतिष देरिताः । पुरो, — रुष्टिमनीः पञ्च, श्वाग्नेः, संथानिकाष्टकम् ॥ सन्द्रादित्येष्टका श्वष्टारुषे पञ्च घृतेष्टकाः । थतः,-पञ्च यजीदाः खुः साद्याम्यनुषक्यते । षष्टान्याके संप्रोकाञ्चतुक्तिंत्रमु सन्त्रकाः ॥

रति सायनाचार्यविरचिते माधवीये वेदार्घप्रकात्रे हृज्ययुष्युः-इंद्रिताभाव्ये चतुर्थकाच्छे चतुर्थप्रपाठके चल्लाऽनुवाकः॥०॥

भूयल्वदं सि वित्वल्वदं सि प्राचित्र द्वी स्थलि स्थलि स्थलि स्थलि से सोद (१-५) अस्वदं सि स्थलि से स्थलि स्थलि स्थलि से स्थलि से स्थलि से स्थलि से साद से सि स्थलि से साद से सि स्थलि साद यामि दिवल्ला द्वि साद यामि दिवल्ला दि

पाद्मार्युर्मेपाहि विश्वार्युर्मेपाहि सर्वार्युर्मेपाहि (१४-१९)
श्वार्ये यसे पर् हत्नाम तावेहि सर्रभावहै पाश्च-श्रन्थेषप्यध्यप्रे (१९) यावा श्रयावा रवा जमा सकः सर्गरः सुमेर्कः (११-१८) ॥ २॥

व्यानं मे । दाचिरंश्व ॥ ७ ॥

इति तैत्तिरीयसंहितायां चतुर्घकाएडे चतुर्घप्रपाठके सप्तमाऽनुवाकः॥ •॥ षष्ठेऽनुवाके विश्वकोतिराद्य इष्टका उन्नाः। त्रय सप्तमे भ्रयस्त्रद्य इष्टका उच्चने । कष्पः, 'भ्रयस्त्रद्यति पश्च भ्रयस्त्रतः' इति । पाठस्त,—''भ्रयस्त्रद्धि विवस्त्रद्धि प्राच्च- खूर्ड्वास्त्रमित्रपदस्यमिति वे बोद्(१-५)" इति । हे इष्टके, तं, 'भूयो' (बाइस्त्रं) करोतीति 'भ्रयस्त्रत्', तथाविधा 'श्रमि'। एवमुभर्गाप योख्यं । 'वरिवो' (भूमेः पूच्यतं) करोतीति 'वरिवस्त्रत्'। स्पष्टमन्यत् ।

एतेर्मकीः साध्यमुपधानं विधक्ते,—"देवासुराः संयक्ता त्रासन्, कनीयाश्चे। देवा त्रासन्, स्रयाश्चे। स्मरास् देवा एता रहका त्रपम्मन्, ता जपादधत स्रयक्तद्वीत्येव भूयाश्चे। स्मन् व्यतिभिरोपधी भिर्वदिवक्तद्वीती मामज्यन्, पाण्यवीति प्राचीं दिव्रमजयनुर्द्धाचीत्यमूमन्यस्न तिष्वद्व्यक्तरिषे बीदेत्यक्तरिष-मन्यन् तते। देवा त्रभवन्, पराऽसुरा यद्योता जपधीयको भूयानेव भवत्यभी माँकोकान् जयित भवत्यात्मना पराद्य श्वाह्यो भवति'' (५।३।११ त्र०) रति। देवास त्रसरास यदा युद्धायो सुन्नाः, तदा देवाः पुद्वसङ्ख्या द्रव्यसम्बद्धाः च त्रस्या भूवा तत्परि-हाराय 'एता रहका' दृद्धा 'ता' जपधाय प्रथममन्नेष वनस्यत्यो-षधिद्रव्यसम्बद्धा तद्यस्वित्तपृद्वसम्बद्धाः च त्रतिवज्ञत्वा त्रभवन्। जपरितने मेक्नेर्भस्यादिक्यं प्राप्ताः, तते। देवा विजयिनाऽभवन्, त्रसरास पराभूताः। यजमानाऽयेतासामुपधानेन तथा भवति। कस्यः, 'त्रपुषद्वीति पञ्चाग्निक्पाष्टि' रति। पाठस्त,—

^{*} इक्स इत्र्या चेति क ॰ इ॰ पु॰ पाठः।

"अषुषद्धि स्रोगसद्धि स्प्रसद्धि सुपर्णसद्धि नातसद्धि((-९०))" रति । चोऽग्रिरपु सौद्दित, हे दृष्टके, तद्रूपा तम् 'अधि'। श्रादणकेतुक्तप्यमे, जानुद्शीमृत्तरवेदिमङ्किः पूर्रायता तास्त्वग्नि-चीयते । स्रोगस्प्रसुपर्णाः पिषविभेषाः, तत्तदाकारेक स्तितोऽग्निः स्रोगसद्दिश्रक्तरे चाते । नाके (स्तर्गे) वर्त्तमाने।ऽग्निः 'नाकसत्'; तद्ग्रिक्षा दृष्टके तम् 'श्रवि' रति चोज्यम् ।

मक्तेश्वयुषदादिपदानामन्याकारवर्तं दर्शवति,—"श्रयुषद्धि स्थेनसद्धीत्याहैतदा स्रग्नेरूप्ट रूपेणैवाग्निमवहत्थे" (५।३। १९५०) इति । स्रम्याकारवाचिनां पदानां पाठेन योग्यरूपेष युक्तमग्निमेव प्राप्ने।ति । स्रग्निरूपवाचिभिर्मन्तेरपधेयलादिष्टका स्रणग्रिरूपाषीत्येवे। स्राप्ने

कष्णः, 'पृथिष्यास्ता द्रविषे सादयामीति पश्च द्रविषोदा' इति। पाठस्त,—''पृथिष्यास्ता द्रविषे सादयाम्यकारिचस्य ता द्रविषे सादयामि दिवस्ता द्रविषे सादयामि दिवां ता द्रविषे सादयामि दिवां ता द्रविषे सादयामि (११-११)'' इति। 'पृथिष्याः' समन्धि यत् द्रविषं (धनं), तिसान् 'द्रविषे' 'तां' 'सादयामि'। एवमुक्तरचापि चेामं। द्रविषप्रदां ताम् जनुक-विश्वेषेऽपि सर्वसान् 'द्रविषे' 'सादयामि'।

मन्ताणां तात्पर्थं दर्शयित,—"पृथियास्ता द्रविणे सादया-मोत्याहेमानेवेताभिर्कोकान् द्रविणावतः कुरते" (५।२।९ १२०) इति 'एताभिः' एतयान्त्रसाधाभिः, द्रविणोदास्त्राभिर्द्रविणोदा-शब्द्युक्तैर्कन्त्रेदपधेयलात् 'द्रविणोदा' दत्यासां नाम ।

कस्यः, 'प्राणं से पाद्दीति वडाय्याः' इति । पाठसु,—"प्राणं मे पाचापानं से पाचि व्यानं से पाचायुर्ने पाचि विमायुर्ने पाचि वर्वाय्में पाचि(१९-१९)" इति । हे इष्टने, मदीयां प्राणवित्तं पास्तय। एवं सर्वत्र। स्त्रकीयायुषः साकस्त्रं विसन्नस्त्रेनाच्यते। खयमन्धिषु पुत्राद्यायुकं भवंत्रव्देनाच्यते ।

एतेर्मन्त्रैः बाधम्पधानं विधन्ते,—"त्रायुखा उपद्धात्वायु-देवासिन् दधाति" (५।३।९१%। इति। श्रायुः ब्रब्होपेतेर्मन्त्रे-इपधेयलादेता दष्टका 'त्राय्याः'।

कल्पः, 'श्रग्ने यसे पर् इत्रामेत्वग्नेर्यम्' इति । पाठन्तु, —''त्रग्ने यसे पर्र इसाम तावेडि स्र स्मावडे पाश्चलयेख्ये-ध्यमें (१९) दित। हे 'श्रमें', 'इत्' दित 'यसे' 'परम्' (जक्क छं) 'नाम', ऋनिष्टपापं इरतीति 'इत्' तेन नावा युक्रस्तम् 'एडि' (मसमीपमागच्छ)। 'ता' (लञ्च प्रदच्च इत्युभी) प्रावां 'संरक्षावहै' (सङ्गता कुर्मः वर्षः) । पश्चजनब्रम्दः सञ्जाया समस्तवादन चितिपञ्चकमाच्छे। हे 'त्राग्ने', लं 'पाञ्चजन्येव्यपि' (पञ्चचिति-सम्बन्धेषु सर्वेष्ट्यपि खानेषु) 'एधि' (त्रवस्थिता भव)।

मकाख प्रथमपादे इच्छ्न्द्स तात्पर्धं दर्शयति,—"श्रग्ने यत्ते पर् प्रमामेला हैतदा मारे: प्रयं धाम प्रियमेवास धामा-पान्नीति" (१।३।११म्न) इति। इच्छम्दवाचं पापदारिखरूपं 'यत्', तदेव 'श्रग्नेः' 'प्रियं' खानम् ।

मध्यभागे पंरमावहै इत्यस तात्पर्यं दर्भयति,—"तावेहि

^{*} चसम्बिष्टाद्यायुष्यमिति पाठो भवितुं युक्तः। † "कुर्मः" इति चिधिच इव प्रतिभाति।

बण्रकावदा रखाद खेवेनेन परिधक्ते" (५।३।१९%।) इति । बद्दानुष्टानप्रार्थने सति 'श्रनेन' श्रश्चिना सास्य परिधानं प्रावर्षं विश्रेषेण क्रतं भवति ।

हतीयभागे पाश्चनन्यज्ञन्यशे दर्जयति,—"पाश्चनन्येख्यधेश्वये इत्याहैव वा श्रव्धिः पाञ्चनन्ये यः पश्चितीकसस्मादेवमाइ" (५)३।११% •) इति ।

कत्तः, 'यावा प्रयावा इति वप्तर्स्रखाः' इति । पाठन्तु,—
''यावा प्रयावा एवा जमाः समः सगरः सुमेकः (११^{-९८)}''इति ।
यावाद्याः वद् प्रम्या वसन्ताद्युतवाचिनः । सुमेकप्रम्यः संवत्यरवाची । हे रष्टमे सं तद्रूपासीति योज्यम् ।

एतकाकाधमुपधानं विधक्ते,—''स्तव्या उपद्धात्वेतदा सहनां प्रियं धाम यद्गतव्या सहनामेव प्रियं धामावद्ग्ये। स्रमेक इत्यास संवत्यरो वे स्रमेकः संवत्यरस्थेव प्रियं धामा-पाप्ताति" (५।१।९९५०) इति । एतद्यावादिकस्तानास्तु-सम्बन्धितात् तैद्पधेया इष्टका प्रपि 'क्तव्या' इत्युष्णको॥

श्रम विनियोगसंग्रह:,---

भ्रची, --भ्रयस्त्रतः पश्च, पश्चाप्तित्वाशिक्ष्पकाः।
प्रिथ, --पश्च द्रविणोदाः, प्राणमायुव्यकास्त षट्॥
स्रो, -- ऽग्ने इंद्यं प्रीर्त्तं, यावाः सप्त क्ष्तव्यकाः।
त्रमुवाने सप्तमेऽसिन्द्रेने। निज्ञदीरिताः॥

१ति यायनाचार्य्यविर्विते माधवीये वेदार्थप्रकान्ने सम्बायजुः-र्दाह्माभाक्ये चतुर्थकाण्डे चतुर्थप्रपाठके यप्तमोऽनुवाकः ॥ ०॥ श्रामा, विश्वावार्() इत्यें ख्रार्() आत्वा श्राचीपतिः(१) श्राव्भिण त्वष्टी(१) युत्रेन म्घवान्(१) दक्षिणया सुव्गें(१) मृन्युनी ष्टच्डा(१) सीडीवेंन तन्धा(१) श्रवेन गर्यः(१) प्रश्वियासेनार्(१) श्रामि-रंद्वारे(११) वेषदकारेण्धः(११) साम्री तनूपा(११) विराजा श्रीतिषान्(१४) ब्रह्मणा साम्पा(१४) ग्रीभियंत्रं दी-धार्(१६) श्रवेण मनुष्यान्(१०) श्रश्वेन ष् रथेन ष व्जी(१०) श्रंतुभः प्रभुः(१८) संवत्मरेण पर्भुः(१९) तपुसानाध्यः(१९) द्वर्यः संतन्तुभः(१९)॥१॥

श्रुग्निना। रक्तान्नपंश्राग्रत्॥ ८॥

इति तैत्तिरीयसंहितायां चतुर्थकाएडे चतुर्थप्रपाठके चष्टमाऽनुवाकः ॥०॥

सप्तमेऽनुवाने भ्रयस्तदाचा दष्टका एकाः । श्रष्टाष्टमे दण्दतन्ताखा दष्टका एका । कत्तः, 'श्रिश्चना विश्वावादिति
दावित्रतिमित्रसम्,' दित । पाठन्त,—'श्रिश्चना विश्वावाद्^(१)
सर्वेष खराट्^(१) काला बचीपितः^(१) क्षयभेण लष्टा^(४) यज्ञेन
सभवाम्^(६) दिख्या सर्वेगें^(१) मन्युना स्वद्यां^(९) सीदार्चेन
तनूधां^(८) श्रश्चेन गयः^(८) प्रविद्याऽसने।द्^(१,९) क्रियारस्रादे।^(१,९)

वषट्कारेकर्थः(१९) सामा तमूपा(१२) विराजा च्योतिमान्(१४) त्रज्ञाषा चेतमपा^(१६) गीभियंत्रं दाधार्^(१६) चचेष मनुखान्^(१०) त्रमेन च रचेन च वजी^(१६) खतुभिः प्रभुः^(१८) संवस्ररेड परिभूः(१०) तपचाऽनाधष्टः(११) सर्थः यन् तनूभिः(११)" इति । विसं सहते तत्पाखनप्रयासमङ्गीकरोतीति 'विश्वाषाट्'। 'श्रश्चिना' षद 'विशाषाड्' च रन्द्रः, हे रष्टके तद्रुपा लम् श्रमि । एवं सर्वेष घोट्यं। 'सर्वेष' यह खता राजत इति 'खराट्' इन्द्रः । 'कला' (च्यातिष्टीमादिपादकर्मणा) महितः । जच्याः देखाः 'पतिः' इन्हः । 'ऋषभेष' (वर्षिना धर्मेष) सद्द 'लष्टा' (रूपकत्) रूट्रः । 'चन्नेन' (त्रस्पेन पाकयन्नेन) सहितो 'मघवान्' (मन्नवान्) रुष्ट्रः । 'द्विषया' (गवादिक्पया) 'सुवर्गः' (खर्मकोकात्मको यः) रुद्रः । 'मन्युना' (कोधेन वर्ष) 'त्रवदा' (ब्रमुघाती) रऋः। सुद्दो भावः 'से।हार्च' खेहातिबयः, तेन यहितः 'तनुधाः' (प्ररीरधारी) इन्द्रः । 'त्रक्षेन' यहितः 'गवः' (स्टइवित्रेवरूपः) रन्द्रः । 'पृथिया' सइ 'त्रसने।त्' (द्रधादिदानं कतवान्) रम्:। 'च्याः' मन्त्रविष्ठेषैः सहितः, 'म्रम्नादो' (इविर्मचण्यामस्य भोका) रुन्रः। 'वषट्कारेष' (इवि:प्रदानचेतुना) यह 'चड्डः' (सम्टड्कः) रूट्रः। 'साबा' (गीयमानमन्त्रेष्) सर 'तनूपाः' (बरीरपासकः) रुद्रः । 'विराजा' (दत्राचर्च्छन्द्सा) सद 'च्योतिसान्' (प्रकाबवान्) रुद्धः । 'ब्रह्मणः' (मुख्येन श्वतिजा, मन्त्रेष वा) यह 'सामपाः' (सामपानस्य कर्त्ता) रुद्रः। 'गेाभिः' (दिचिषाक्पाभिः) यद 'यद्यं दाधार' (यद्यधारकः)

दन्तः। 'चनेष' (राज्ञा) सद्द 'मनुष्यान्' दाधारेत्यनुवर्णते"।
योऽयम् त्रत्रः यस्य रथः, ताम्यासुभाभ्यां सद्द 'वजी' (वज्रयुक्तः)
दन्तः। 'खतुभिः' (वसन्तादिभिः) सद्द 'प्रसुः' (फल्लदानसमर्थः)
दन्तः। 'संवत्यरेष' (कालक्षेपण) सद्द 'परिभूः' (परिता
व्याप्तवान्) दन्तः। 'तपसा' (त्रज्ञनवर्जनधनदानादिक्षेपण)
'त्रनाध्रष्टः' (केनाप्यतिरक्ततः) दन्तः। 'तनूभिः' (दादज्ञमूर्त्तिभः)
सद्द 'स्र्यः सन्' (स्र्यंक्षेपा भूता) दन्ते। हे दष्टके
तद्रूपा लम्पि।

एतेर्नन्तः साध्यमुपधानं विधन्ते,—''देवासुराः संयना त्रासन् ते न व्यन्नन्त स एता र इसन् रूपम्मत् ता उपाधन्त ताभिर्वे स तनुविमित्र्यं वीर्यमात्मन्नधन्त तता देवा त्रमनन् पराऽसुरा यदिक्तन् रूपद्धाति तनुवनेव ताभिरिक्त्रियं वीर्यं यजमान भात्मन्धन्तेऽणो सेक्सनेवाग्निः सतनुं चिनुते भवत्यात्मना परास्य श्राह्मणो भवति" (५।४।९५०) रति । देवानामसुराणास्य संग्रामे प्राप्ते दुर्वसा देवा विजयं न प्राप्ताः, तदानीं विजयाय 'स' 'रक्तः' 'एताः' 'तनू'-नामिका रष्टका दृष्ट्वा तदुपधानेन मरीरपृष्टिम् र इत्यपाटवं ग्रीयंपाटवस्य धतवान्। तता देवानां जयाऽसुराणां पराभवस्याधीत्। तता यजमानाऽपि र इतन्तृनाम् सपधानेन तथाविधा भवति । विश्वाषाद्वित्यादिग्रस्दा र इतन्तृन् विश्वषवास्त्राः। तसुक्तिर्मन्तेद्विष्धेया रष्टका र इतन्तः। ॥

2 n 2

^{* &#}x27;'तथा मनुष्यधारव इन्द्रः'' इत्वधिकः पाठ बादर्श्यपुक्तक रवाक्ति । † तनव इति का॰ ए॰ पु॰ पाठः । तनुव इति बादर्शयुक्तवपाठः ।

चन विनियागसंग्रहः,—

चग्रीकृतनुवामाने। दाविंवतिरितीरिताः ॥

इति सायनाचार्यविरचिते नाधनीचे वेदार्चप्रकाने छणायनुः-यंदिताभागे चतुर्यकाच्छे चतुर्यप्रपाठकेऽष्टमाऽनुनाकः॥ • ॥

प्रजापेतिर्मनुसान्धेाऽच्छेता (१) धाता दीश्चायाः (१) सविता सृत्यां(१) पूषा सीमृक्षयंस्यां(१) वर्षणु उपनुदी(६) अर्सुरः॥ कीयमाया^(१) मिचः कीतः^(०) त्रिपिविष्ट आ-सीदिता(क) नुरंधिकः प्रीक्षमावी(८) अधिपतिरागतः(१०) प्रजापंतिः प्रखीयमाने। (११) श्रिप्तरामीभे (११) रहस्पति-राम्नीभात् प्रणीयमान् (११) इन्द्री इविकाने (१४) ऋदिति-रासंदिता(१५) विष्णुरुपाविष्ट्यमाखा(१५) ऽयुर्वीपीती(१०) यमाभिषुता(१०) अपूत्पा ऋष्यमाना(१८) बायुः पूय-माना(११) मि्चः श्रीरुश्रीः(११) मुन्यी संतुश्रीः(११) वैश्वद्व उन्नीता (११) बुद्रः, चार्ह्नता (१४) बुया राष्ट्रता (१६) मृचस्याः प्रतिखाते।(१९) भुद्ध शार्गतः(१०) पितृषां नीराष्ट्रश्रेसी(रण) ऽसुरात्तः (१८) सिन्धुरवस्यमंवप्रयन् (१०) संमुद्रोऽवंगतः (१९) सिक्षाः प्रश्नेतुः(११) सुवेद्दचं गेतुः(११) ॥ १ ॥

बुद्रः। एकं विश्वातिश्व ॥ १ ॥

इति तैतिरीयसंहितायां चतुर्यकाएडे चतुर्यप्रपाठके नवमाऽनुवाकः ॥०॥

श्रष्टमेऽनुवाके र्ऋतन्वाख्या रहका उत्ता:। श्रथ नवसे यज्ञ-तवाख्या इष्टका खच्चको । कष्पः, 'प्रजापितमंगमान्धाऽक्केत इति चयस्त्रिष्ट्रज्ञतं यज्ञतन्रूः' इति । पाठस्तु,—''त्रजापतिर्मनसान्धा-ऽच्छेता^(१) धाता दीचाया १^(१) स्विता स्रत्यां^(२) पूषा सेाम-क्रयर्थां $^{(8)}$ वर्ष उपनद्धः $^{(4)}$ त्रसुरः कीयमाणे $^{(4)}$ मित्रः कीतः^(०) विपिविष्ट त्रासादिता^(०) नरंधिषः प्रीज्ञमाणः^(९) ऋधिपतिरागतः^(९०) प्रजापतिः प्रणीयमानः^(९९) ऋग्निराग्नीप्रे^(९९) ष्टइस्पतिराग्नीभात् प्रणीयमानः(१२) दन्ह्रो इविर्द्धाने(१४) श्रदिति-रासादिता(१६) विश्वादपाविष्ट्रवमाणः(१६) ऋषवेषि नी(१०) वनी-भिषुतः^(१६) त्रपूतपा त्राधूयमाना(१९) वावुः पूयमाना(१०) मिनः चोरश्रोः^(११) मन्यो समुश्रीः^(११) वैश्वदेव उन्नीते।^(११) रुष्ट्र त्राञ्जतो^(१४) वायुराहतो^(१६) नृचचाः प्रतिखातो^(१६) भच त्रागतः^(९०) पित्वर्षां नाराग्रष्ट्रसः^(९०) त्रसुरात्तः^(९८) सिन्ध्रदस्य-मवप्रयन्^(२०) सनुद्रोऽवगतः^(२१) सन्निनः प्रमुतः^(२१) सुवर्दहःचं गतः"(११) द्ति। अच सङ्ख्यमार्भ्य समाप्तिपर्यमां ये साम-वागाः, ते यञ्चपुरवस्य तनुविश्वेषाः । तद्रूपलिमृहकानामुख्यते । चे। यजमाने।ऽस्ति त्रसे।, 'मनसा', 'त्रन्थः' (त्रस्नं) तेन तद्भेतुर्यञ्च खपसच्छते, यज्ञं 'श्रच्छेतः' (प्राप्तुं नतः); मनसा यज्ञं करियामि

इति सङ्ख्यतवानित्वर्थः । चाऽयं सङ्ख्यद्त्रामापन्ना यञ्जस्य विश्वष्टः 'प्रजापति'-नामकः । हे दष्टके, तद्रूपा लमि । 'दीवायां' चाउर्च विग्रहा वज्ञयमन्थी, य 'धाता' (धाहयदृत्रमूर्ण्जः)। हे इष्टके, तद्रुपा लमसि। एवं सर्वेष योज्यं। 'स्रतिः' यज्ञभिचा, तखां सविद्यमानमूर्त्तिर्यज्ञतनुः । 'सामक्रयणी' (एक हायनी गाः), तस्यां पूषसमानाः वज्ञविग्रषः। 'खपनद्वः' (वस्त्रेष बद्धः) थः सामः, स वद्यसमानप्रतीरा यज्ञपुदयः। 'क्रीयमायः' यः, वाऽयम् 'त्रसरः' रज्ञसमानविग्रहः। त्रजूनस्रति सिपतीति चसुरः, बस्रम् (प्राषान्) राति (ददानि) इति वा ब्रसुरः । यः 'क्रीतः' चेामः, चेाऽयं मित्रममानविग्रहेः यज्ञः। 'श्रामादितः' यजमानस्य स्हरी यः स्थापितः सामः, साऽयं 'त्रिपिविष्टः' (विष्णुसमानविषहा) यज्ञः । 'प्रोक्समाषः' ज्ञकटेन प्राम्बंजं प्रति नीयमाना यः वामः, वाऽयं 'नरंधिवः' (त्रविवमानविवहा) षज्ञः । नरैर्यनमानैर्धीयते त्राधीयते इति 'नरंधिवः' (त्रग्निः) । 'चागतः' प्राम्बंधे चायन्दीं प्रति यमागती यः वेतमः, वेाऽयम् 'श्रधिपतिः' (श्रधिकं पासकः) य पाइवनीयः, तसमान-विग्रष्टः। 'प्राषीयमानः' प्राम्बंबादाग्रीधीयं प्रति नीयमाना यः बामः, बाऽयं प्रजापतिषमानविश्वष्टः । 'ब्राग्नीप्रे' प्रविख्यता थः बामः, बाज्यमग्रियमानविषदः। 'त्राग्रीभात्' इविधारं प्रति नीयमाने। यः चामः, सः दृष्यितिसमानविश्वष्टः । 'इविधाने'

^{*} पूर्व समाग इति सर्व्यं पाठो न सम्बन्।

प्रविष्टः 'इन्द्र'-धमानविषदः । 'श्रासादितः' (श्रासन्तां सापितः) वामः 'त्रदिति'-समानविग्रष्टः । 'उपाविष्ट्रयमाषः' (त्रकटा-द्धिव्यवषप्रसक्तस्त्रयावस्ववराष्यमाषः) से मः 'विन्तु'-समान-विग्रष्टः । 'खपेान्तः' (वषतीवरोभिरङ्किः क्वेदितः) बामः 'श्रथवां' (त्रयर्वमर्वियमानवियरः) । 'त्राधूयमानः' (त्रदाश्यपरे वार्मा-इइभिद्यास्त्रमानः)। त्रपूनं मूत्राद्यपदतं भूप्रदेत्रं पाति त्रेवयतीति* वित्रेषेष ग्राद्धं करेातीति 'त्रपूतपाः' (त्रादित्यः) । 'पूचमानः' (दब्रापवित्रेष क्राध्यमानः) सामः 'वायु'-समानविग्रहः। 'चीरत्रीः' (मैनावर्षयहे पथसा मित्रितः) सामः 'मिन'-समानविग्रहः। 'सक्तुत्रीः' (मन्विग्रष्टे सक्तुभिर्मित्रितः) सासा 'मन्वी' (मन्वि-यहदेवताक्षेत्रसमानवियहः)। 'खन्नीतः' (चमसेषु पूरितः बामः) 'वैयदेवः' (वियेदेवै: समानविग्रहः) । 'त्राक्रतः' (वक्री प्रचिप्तः) सेामः 'स्ट्र'-समानविग्रदः। 'त्राष्टतः' (भचार्थं सदसि चानेतुं प्रतिनिद्यतः) चामः 'वायु'-समानविग्रषः। 'प्रतिख्यातः' (भचार्थमपे चितः) र्वामः 'मृचचाः' (मनुखदु ष्टिसमानविगदः)। 'त्रागतः' (त्रास्त्रे प्रवेत्रितः) सामः 'भचः'(वै यानर्यमानविग्रहः)। भचयनीति युत्पचा भचडम्दसदाची। 'नाराग्रंगः' (भचित्रवेषः सन् पुनर्वसतीवरीभिराषाचितः) सामः पित्रसमानविग्रहः।'श्रनः। (त्रवस्रथगमनार्थं सीहतः) सामः, 'त्रसुः' प्राणदेवतासमानवियहः।

 [&]quot;ग्रीधयतीति" इति पाठी भिवर्तुं युक्तः।
 † 'चाक्तः' इति पाठी भिवर्तुं युक्तः।

'श्वतस्थमवप्रयम्' (श्वतस्थकर्मार्थं मार्गे मञ्चम्) वामः 'विम्धः' नदीदेवतायमानविषयः । 'श्वतमतः' (श्वतस्थप्रदेशं प्राप्तः) वामः यमुद्धदेवतायमानविषयः । 'प्रयुतः' (जले प्रविष्तः) वामा अक-देवतायमानविषयः । 'खरूचम्' (खन्तमान्ध्यं यमाप्तिक्षं नतः) वामः स्वर्गनवास्दिदेवतायमानविषयः ।

एते मंकीः वाध्यमुपभागं विभन्ने,—"यश्रो देवे श्वीपाक्रमत् तमवद्भं नाम्रक्षवन् त एता यश्चतनूरपद्मन् ता उपाद्भत ताभिवे ते यश्चमवाद्भत यश्चनतूरपद्माति यश्चमेव ताभि-र्यंक्रमानीऽवद्भे" (४।४।९२०) इति । केनापि निमित्तेन 'देवेश्वः' यपरको यश्चीऽन्यनापगच्छत्। 'तं' (वश्चं) देवा यप-रेष्ट्रिं 'नाम्रक्षवन्', तद्वरोधोपायलेन यश्चतन्याच्या इष्टका दृष्ट्वा ता उपधाय 'यश्चमवाद्भत'। ततो यञ्चमानोऽपि यश्च-तनूभियंशं प्राप्तोति । यश्चतनुप्रतिपाद्क्षमञ्ज्यम्भैमंन्हेदपथेया इष्टका यश्चतन्वः।

रष्टकासक्कां विधन्ते,—"चयक्ति श्रवतमुपरधाति नयक्ति श्रवते देवता देवता एवावक न्धेऽयो सात्मान सेवाग्निश्र सतनुं चिनुते" (५।४।९%) रति। इविभाजां देवता ना सिखं सक्का चित्र-अयस्वेति सन्त्रे समाचाता। अतः सक्काया तावती देवताः प्राप्नोति। अपि च तनूपधानेन समरीर सेवाग्निं चितवान् भवति।

एतदेदनं प्रशंसति,—''सातामुशिंदोके भवति य एवं वेद'' (५।४।९७०) इति। यदुकं स्वकारेष, 'खोतियतों ता सादयामोति दादव खोतियतोः' इति ।

तदिदं विधन्ते,—"च्यातिश्वती स्वयाति च्यातिरेवासिन् द्धात्येताभिवा श्वश्वितो श्वस्ति ताभिरेवेन स्मिन्ध उभयो-रस्मे लोकयोर्च्यातिर्भवति" (५।४।९ १०) इति। च्यातिश्वती-श्रम्थ्युकेर्मन्त्रेदपधेया इष्टका च्यातिश्वतः। ते च मन्ता श्वारप्य-काष्डे समाचाताः। तदुपधानेन च्यातिः स्वापयतीति। किश्व एताभिः 'चितः' 'श्वश्वः' प्र-'ञ्चलति', चतः 'ताभिरेवेनम्' श्वश्वं दीपतवान् भवति। ततः 'श्वस्ते' यत्रमानाय 'उभयोः' 'लोकयोः' 'च्यातिः' सम्बद्धते ॥

श्वन विनियोगसंग्रहः,-

प्रजेति यज्ञतनवस्त्रयस्त्रिंगतमीरिताः॥

द्दति सायनाचार्यविर्चिते माधवीये वेदार्थप्रकाभे क्रण्यायुः-संचिताभाखे चतुर्थकाच्छे चतुर्थप्रपाठके नवसे।ऽन्वाकः ॥०॥

क्रतिका नर्श्वमृग्निर्देवताग्नेर्यः स्व प्रजापंतिधातुः सामस्यर्चे त्वा क्षे त्वा चुते त्वा भासे त्वा ज्योतिषे त्वा() राष्ट्रिणी नर्श्वचं प्रजापंतिर्देवता सगजीषे नर्श्वच्र सामा देवताद्री नर्श्वचः क्द्री देवता पुनर्वसू नर्श्वच- नदितिदेविता तिष्या नर्धनं रहस्यतिदेवितास्तेषा नर्धन नः सूर्पा देवता सूघा नर्धनं प्रितरी देवता फर्स्नुनी नर्धनं ॥ १ ॥

श्रुयमा देवता पर्णुनी नश्चेष भगे। देवता इस्ता नश्चेषः सिवता देवता चिषा नश्चेषमिन्द्री देवता खाती नश्चेषं वायुदेवता विश्वां नश्चेषमिन्द्राग्नी देव-तीनूराधा नश्चेषं मिषा देवता रे। दिश्वी नश्चेषमिन्द्री देवता विष्कृती नश्चेषं पितरी देवता अवढा नश्चेषमापी देवता श्वाढा नश्चेषं विश्वेदेवा देवता श्रोखा नश्चेष्टं विष्युदेवता श्रविष्ठा नश्चेषुं वस्तवः॥२॥

देवता श्रुतिसंषुक्रसंषुमिन्द्रो देवता प्रोष्ठपदा नर्श्व-षम् अ एकंपाद्देवता प्रोष्ठपदा नर्श्वचमित्रं देव-ता रेवती नर्श्वचं पूषा देवताश्वयुत्री नर्श्वचम्त्रिनी देवताप्भरंगीर्नर्श्वचं यमा देवता (१-१०) पूर्णा प्रश्वात्(१) यत्ते देवा अदंधः(१) ॥ ३॥

फल्गुनी नक्षं । वसंवः। चर्यस्त्रः शव ॥ १०॥

इति तैतिरीयसंहितायां चतुर्थकार्यं चतुर्थप्रपाठके द्रमनाऽनुवाकः॥०॥

बक्तीऽन्वाके यज्ञतन्वाख्वा रहका छन्नाः। श्रय दक्रने नचने-ष्टका उच्चन्ते। कचाः, 'पूर्णा पञ्चादिति पूर्णमाधीं पुरसाद्यधाः क्रिका नचनमिति नचनेष्टकाः पुरसात् प्रतीचीरसप्रसृष्टाः पूर्वा पूर्वामुपधायापरामपरामाविज्ञाखाभ्यां दचिषेन स्वयमाद्यबाध् रीतिं प्रतिपादयति यसे देवा भद्धरित्यमावास्तां पञ्चादुपधाया-विज्ञष्टावां पूर्वामापभरणीभ्य उत्तरेण खयमाद्रवार रीतिं प्रतिपाद्यति पै। र्षमासीमन्ततः । अपे ला रूपे लेति सर्वासु नचनेष्टकासनुषजित' इति । येथं खयमाहचेष्टका तसाः पूर्वसां* दिश्रमारभा प्रदिचिषादृत्वेष्टका उपद्धात्। तत्र या दृष्टका पार्थमाञ्चाक्या पूर्वेचां दिक्षुपधेया, तां वर्वावाम् 'त्रनातः' द्रपद्भात् । तच प्रथममन्त्रपाठस्त,—"क्रसिका नच्चमग्निदेवताग्ने-कूचः स्त्र प्रजापतेर्धातुः सामस्त्रेचे ला क्ते ला स्रोते ला भासे का क्योतिषे ला^(९)" इति। श्रमाञ्जला-(?)[†] नितिबदित्यादिका क्योतिक्या या देवता दिव्या भासन्ते ताः क्रन्तिकाः । तासां प्रमुदायरूपमेकं नचनं, तस्र च नचनसाग्निदेवता स्नामिलेन वर्त्तते। हे क्रिकाः, यूयम् 'श्रग्नेः' 'प्रकापतेः' 'धातुः' 'वासस्य' च समन्धिनो ये : 'इच:' (दीप्तयः) 'चा'। प्रजापतेधातुः पास-कुलोत्पादकलाकारेण भेदः। एकदेवतारूपे हे रूष्टके, 'सूचे' (स्तिक्पमक्विध्यर्थं) लाम् उपदधामि । तथा 'क्चे' (प्रारीर-

^{*} पूर्वामिति पाठो भवितुं युक्तः।

[†] कम्बाइड्झा इति का॰ इ॰ पु॰ पाठः।

[‡] सम्बन्धिया द्रवि पाठे। अतितुं युक्तः।

कामिसिष्यरैं) लाम् उपद्धामि । युतिभान्धेति:बद्धाः विद्याचे चन्द्राचां दीप्तिवाचकाः; तत्सिष्यर्थं लाम् उपद्धामि । एवमुक्तरेव्वपि नचनेषु योजनीयम् ।

दितीयमचनमन्त्रमारभ्य विद्वित्रतिमचनमन्त्रार्खा पाठस्तु,— "राचिची नचर्च प्रजापतिर्देवता^(२) स्वाबीर्यसम्य सामा देवता^(२) मार्द्रा नचन हरे। देवता^(४) पुनर्वस नचनमदिति-र्देवता(६) तिको नचन् एएस्तिर्देवता(९) श्रश्चेवानचन् सर्पा देवता^(०) मचा नचत्रं पितरा देवता^(०) फल्गुनी नचत्रम् ऋर्यमा देवता^(८) फलानी नचचं भगे। देवता^(९०) इस्रो नचच सविता देवता^(११) चित्रा मधनमिन्नी देवता^(११) खाती नवनं वायु-ईवता^(११) विज्ञासे नचनमिन्हाग्रीदेवता^(१४) अनूराधा नचनं मिचा देवता^(१६) राहिणी नचनमिन्हो देवता^(१९) विचृती नचर्च पितरा देवता(१९) श्रवादा गचनमापा देवता(१५) श्रवादा नचनं विश्वेदेवा देवता^(१८) श्रीणा नचचं विष्णुर्देवता^(१०) श्रविष्ठा नचचं वसवा देवता^(१९) जतभिषक्रचनिन्द्रो देवता^(१९) प्राष्टपदा नचनमञ्जरकपाद्देवता^(१२) प्रोष्ठपदा नचनमरिर्नुद्वियो देवता^(१३) रेवती नचनं पूषा देवता^(१६) श्रययुकी नचनमस्विनी देवता^(१९) त्रपभरखीर्न चर्न यमा देवता^(१०)" रति। श्रव रोहिखादयी मज्ञविभेषा च्योति:बास्त्राभिज्ञेषु तदीयव्यवदाराभिज्ञेषु प्रसिद्धाः। 'तिस्यः' पुर्यः। दितीया रेाचिणी ज्येष्टा। विचृत-प्रब्दी मूलवाची, च्योतिमैण्डलदिक्पता दिवचनं । पित्रव्रब्दीऽच निर्श्वतिवाची । श्राधानेन पासनात् पिटलम् । श्रीकात्रब्दः अवखवाची । अविष्ठाज्ञन्दो धनिष्ठावाची । जनभिषक्रचनस्य वहको देवता, स च परमैश्वर्ययोगादिन्द्र दत्युच्यते । 'प्रोष्ठपदाः' भाद्रपदाः ।

त्रय पैर्णमास्त्रमावास्त्राभिधेययोरिष्टकयोथी मुकी तथाः प्रतीके दर्भयति,—"पूर्णा पद्यान्(१) यसे देवा श्रद्धुः(१)" इति। एतचोभयं दृतीयकास्त्रस्त पद्ममप्रपाठकादी बाख्यातम्।

एतेर्मन्त्री: साध्यमुपधानं विधक्ते,—"नचनेष्टका उपद्धात्ये-तानि वे दिवा च्याति १ वि तान्येवाव इस्ते" (५ । ४ । १ प्र ०) इति । नचन प्रन्दे। पेतेर्मन्त्री इपधेया इष्टका 'नचनेष्टकाः' । यानि क्रान्तिका-दीनि सुलेक्सम्बन्धीनि 'च्यातीं वि', श्रत उपधानेन 'तान्येव' प्राप्तीति ।

प्रकाराकारेण प्रशंवति,—"स्कर्ता वा एतानि खोती हिष चक्रचवाण तान्येवाप्ने त्याया प्रमूका समेवेतानि खोती हिष कुर्ते सुवर्गस्य लेकस्यानुख्यात्ये" (११४१९ प्र०) दति । ये ब्रोभनं ब्रास्क्विहितं पृष्यं कर्म कुर्विका ते सुक्कतिनः, तेषाम् 'एतानि' दिवि दृष्यमानानि नचनरूपाणि 'खोतींषि'। ते हि पृष्यकतः स्वर्गे गला भासमानविग्रहाः तान्याप्नुविका। श्रत एव तद्पधानेक तदीयानि 'खोतींषि' प्राप्नुविका। श्रिप प 'एतानि' नचन-खोतींषि 'श्रनु' तेने।पधानेन कि श्रित्मकाशं करे।ति। स प्रकाशः स्वर्गेलोकाविभावाय सम्पर्यते।

श्रघोपधाने कश्चिदिशेषं विधत्ते,—"यत् सूर्युष्टा उपदध्याद्

[🕈] सनेन इति पाठी भवितुं युक्तः।

वृद्धी खेलमपि दश्चादवर्षुकः पर्जन्यः खादमण्र्यष्टा उपदश्चाति वृद्धा एव खेलं करोति वर्षुकः पर्जन्यो अवति" (५।४।९२०) इति। रहकानां परस्परधंस्पर्धे सति वृष्टेः स्थानस्यास्कादितलात् 'पर्जन्यो' दृष्टिर्हितो भवति। स्थंस्पर्धे तु तिस्त्रस्य दृष्टिस्थान-मात् सेचा वर्षणप्रीखा भवति।

खपधाने विश्वेषाकारं विधक्ते,—"पुरसादकाः प्रमोची हप-दधाति पद्यादन्याः प्राचीसस्मात् प्राचीनानि च प्रतीचीनानि च नचनाक्यावर्त्तनो" (५।४।९५०) इति । स्वयमाह्याया दन्तिक-भागे पूर्वी दिश्रमारस्य प्रत्यगवसानाः क्रांत्तिकाद्याद्याः का इष्टका खपदभात् । सनूराधा सारस्य भरस्यकाः इष्टकाः स्वयमाह्याया उत्तरभागे प्रतीचीं दिश्रमारस्य प्रागवसानाः खपदधात् । स्वयमाहसाया दचिणेत्तरभागन्तितयोः पंत्र्येपभिष्टे पश्चिमायां दिति समस्पेष त्रमावास्त्रामिष्टकामुपदधात् । स्वयमाह्याया दचिणेत्तरभागस्त्रितयोः पंत्र्योक्षेष्टे पूर्वसां दित्रि समस्पेष पीर्णमास्त्रास्त्रामिष्टकामुपदधात् । बसादेवं, तस्त्रा-क्रेतिक्षेप पीर्णमास्त्रास्त्रास्त्राम् दच्चित्रभागे पश्चिमाभिमुखानि, सत्तरभागे तु प्राकुखानीत्येत्रमावर्त्तनेत्रे ॥

श्रव विनियागसंग्रहः,--

क्रिकानचित्रेष्टकाः खुः (?) सप्तवित्रतितिताः । चाचे ता सर्वेषेषः खात् पूर्णा, यत्ते, इति दयम् ॥ इति सायनाचार्यविर्चिते माधवीये वेदार्यप्रकामे कृष्ण्यजुः-संदिताभाय्ये चतुर्यकाष्ट्रे चतुर्यप्रपाठके दस्रमाऽनुवाकः॥०॥ मधुंस माधवय वासंनिका हृत् (१-१) शुक्रय शुचिय प्रैका हृत् (१-१) नभस नभस्य वार्षिका हृत् (१-१) दूष- योर्जिय शार्दा हृत् (९-१) सद्य सद्स्य है मेन्तिका- हृत् (१-१) तपंच तप्स्यय शैशिरा हृत् (११-११) स्र्ये रेन्त- खेषेऽसि कल्पेतां द्यावा प्रियंवी कल्पेन्तामाप श्रेषिधीः कल्पेन्तामुग्रयः प्रयुक्षम् श्रेषेग्रय सर्वता ॥ १ ॥

येऽग्रयः समनसेऽन्तरा द्यावापृष्टिवी शैशिरादृत्र श्रुभिकल्पमाना इन्ह्रंमिव देवता श्रुभिसंविशन्तुः स्यद्य प्रचेताश्राग्नेः सामस्य स्वर्थस्यः उग्रा च भीमा च पितृणां यमस्येन्द्रंस्यः भूवा च पृथ्वि देवस्य सिवृतुर्म्दतां वर्षणस्यः धुर्ची च धरिची च मिचा-वर्षणयोर्मिचस्य धातुःः प्राची च प्रतीची च वस्नाः कृद्रासां ॥ २॥

श्रादित्यानां ते ते ते ते प्रिंपतयस्ते भ्या नमस्ते ने स्ट्रियन्तु ते यं दिष्मा यश्र ने देष्ट्रितं वे। जम्मे द्धामि ते स्ट्रिस्य प्रमा श्रीस स्ट्रिस्य प्रतिमा श्रीस स्ट्रिस्य प्रतिमा श्रीस स्ट्रिस्य विमा श्रीस स्ट्रिस्योगा श्रीस साट्रिसे ति स्ट्रिसेय विमा श्रीस स्ट्रिसेयोगा श्रीस साट्रिसे ति स्ट्रिसेय विष्णा श्रीस साट्रिसे ति स्ट्रिसेय विष्णा स्रीम स्ट्रिसेय स्ट्रियेय स्ट्र

चान्तं य पर्गर्थश्चेमा में अग्र इष्टं का धेनवंः सन्त षृष्टिः
स्वसंम्युत्मक्षीयमाणा ऋत्याः स्वर्ताष्ट्रं घृत्रश्चृते।
मध्युत् कर्जस्वती खधाविनीस्ता में अग्र इष्टं का
धेनवंः सन्त विराज्ञा नामं काम्युष्टं अमुणामुष्टिंस्रोके (१) ॥ ४॥

सर्त्रता । बुद्रार्थाम् । श्रुयुर्तन्त्व । पर्श्वचत्वारिःश्वसार १॥ दित तैत्तिरीयसंहितायां चतुर्यकार्ण्डे चतुर्यप्रपाठके स्कादश्राऽनुवाकः ॥ ० ॥

दशमेऽनुवाके नचनेष्टका एकाः। श्रष्टिकादशे श्वतद्याखा दशका एश्वने। कत्यः, 'मध्य माधवस्थित दे श्वतये धमानत्या देवते' इति। पाठस्त,—''मध्य माधवस्य वासन्तिकाद्यतः^(१-९)" इति। 'मधः' पैनमासः, 'माधवः' वैश्वाखमासः, तावुभे। वसन्त्रसम्बन्धिनाद्यववयेते। यद्ययेते। दे। मन्त्री, तथापि सइपठित-लात् तथा देवतयेति श्रेषं सद्यदेव एशार्थं दे इष्टके प्रथमिता-वुपद्धात्।

कराः, 'ग्रुकस ग्रुचिसित है स्तये समानतया देवते' इति। पाठस्त,—''ग्रुकस ग्रुचिस ग्रेमाहतः(१-४)'' इति। 'ग्रुकः' (श्रेष्ठः), 'ग्रुचिः' (श्रावादः)। तावुभी ग्रीमसम्बन्धिनाहत्ववयवे।। एतेन मन्त्रेष दितीयसां चिता है उपद्धात्। कर्णः, 'नभञ्च नभस्रश्चेति चतस्र चतव्या दे दे समानतया देवते' इति । पाठस्त,—"नभञ्च नभस्रश्च वार्षिकारुद्ध(६-६) इयस्रोजस्य जारदारुद्ध(१-४)" इति । 'नभः' आवणः, 'नभसः' भाद्रपदः, तावुभा वर्षायां सम्बन्धिना चलवयवा । 'इषः' आश्चयुजः। 'जर्जः' कार्तिकः, तावुभा प्रत्समन्धिना चलवयवा। एतमान्त्रसाधाञ्चतस्र इष्टका मध्यमचितावुपदध्यात्।

कस्यः, 'मइस मइस्यचेति दे स्तत्ये समानतया देवते' इति । पाठस्त,—'मइस मइस्यस हैमन्तिकारुट्य^(१-१•)" इति । 'सहः' मार्गेत्रोर्षः, 'महस्यः' पैषः, तावुभैः हेमन्तसम्बन्धिनैः स्थलवयवैः । एतस्यस्वसाधे दे इष्टके सतुर्था चितावुपदधात् ।

कच्यः, 'तपस्र तपस्यस्थिति दे च्यतये समानतया देवते' इति । पाठस्त,—'तपस्र तपस्यस्य ग्रेशिशास्त्रह्त^(११-११)" इति । 'तपः' माघः, 'तपस्रः' फास्गुनः, एतावुमी श्रिश्चरसम्बन्धिनी च्यत्वन-चवा । एतस्यस्त्रसाध्ये दे इष्टके पद्मस्यां चितावुपदध्यात्।

त्रथ सर्वेष्यमुषद्मनीयं मन्त्रप्रेषमार,—"त्रप्रेरनाः श्वेषोऽसि कल्पेतां यावापृथिवी कल्पनामाप श्रेषधीः कल्पनामग्रयः पृथक्मम व्येष्टाय यत्रता येऽग्रयः यमनचाऽन्तरा यावापृथिवी व्रेष्टराष्ट्रह्म श्रीमकल्पमाना रम्हमिव देवा श्रीमंविश्वन्तु (°)" दिति । हे श्रृतविश्वेष, लं चीयमानस्य 'त्रप्रेरनाः श्वेषोऽसि', यथा कुष्यसान्तर्दार्श्यां काष्ट्रपाषाणाद्यः श्विष्यन्ते तदत् 'मम' (श्रिग्नं चिन्यते। यजमानस्य) 'व्येष्टाय' उत्कर्षार्थं दमे यावापृथिवी। 'कल्पेतां' (ख्रीचितम्पक्षारं यसाद्यतां) । यमानं 'त्रतं' (कर्म) येषां

ते 'सत्रताः', एक सिन् कर्म सविक्षिता चा इवनी घा सम्मेदाऽपि 'इधक्' 'क स्वन्तां' (खा से सित खापारं समादयन्तु)। कि स्व 'खा बा ए थिवो' 'च मत्रा' (खा वा ए थि वो भिष्ये) वर्षा मानाः 'स मनसः' (एक मनस्काः) 'चेऽम्रयः', ते य वेऽपि विविद्यम्बिन्धे स्वत्वव्यवे। 'चिमक स्वत्वयवे। 'प्रिक स्वत्वय

एतसम्बद्धाधमुपधानं विधन्ते,—"स्तत्वा खपदधात्मृह्यनां कृष्टी दन्दसुपदधाति तसाद् दन्दस्तवः" (५।४।२५०) १ति। यसादिष्टकयोर्दन्दसुपधीयते, तसामासयोर्दयस्तुस्रूपं भवति।

मध्यमिती चतुष्टयोपधानं विधन्ते,—"ब्रध्तेव वा एवा वक्षध्वमा चितिरक्तरिचिमिव वा एव दन्दमन्यासु चितीषूप-द्धाति चतची मध्ये धृत्यै" (५।४।२२०) दति। चैवा मध्यमा चितिः, चेयं भूमिं न स्पृत्रति नापि दिवं, तसाद् दयम् 'त्रध्तेव' (ब्राधाररिचतेव) तिष्ठति, ऋत एवाक्तरिच-समाना। तसात् 'ब्रन्यासु' 'चितिषु' दन्दमाचे।पधानेऽणसां चिती धारणार्थं 'चतस्तः' उपदध्यात्।

श्रय वर्षा श्वतकाः सामान्येन प्रशंति,—"श्वनः स्रेषणं वा एतास्तिनां बद्दतका यदुतका उपद्धाति शितीनां विश्रत्ये" (५।४।२२०) रति। यथा कुषादेर्द्रुधारकाय पावाबाद्यनः-श्रेषणं, तथा चितीनां सृद्धारणाव 'ऋतवाः' उपद्धात्।

एतासास्तत्यानासुपरि हैवासस्रोपनिधानं विधन्ते,—"त्रव-काममूपदधात्येवा वा सम्भेर्योनिः । स्योनिसेवाम्निं चिनुते" (५१४।२५०) रति । उदकजन्यां हैवासापरपर्यायां 'त्रवकाम्' उपरि उपदध्यात् । त्रापा हि त्रम्नोः स्थानं, 'स्र निसायत से। ५५: माविकत्' रति श्रुत्यन्तरात् । त्रवका च असस्य कार्यताच्यस्व-दम्भेर्योनिः । त्रतस्वद्पधानेन स्योनिसेवाम्निं चितवान् भवति ।

प्रकारामारेकावकाविष्ता खतवाक्यदेरम् प्रश्नंगित,—
"उवाच इ विद्यामिनोऽदित् स मह्मवामं यस्त्रेता उपधोयमे
य च चैना एवं वेदत्" (४।४।९ च॰) इति। 'यस्थ' (यसमानस्थ)
चवकायुका खतवा 'उपधीयमो', योऽकेता जानाति, 'स'
(उपधाता ज्ञाता च) 'म्रह्मवा' (मुख्यवा म्राह्मण्यस्या) 'चन्नम्'
'चादत् इत्' (यर्वयाव्यं भच्यत्येव) इति 'विद्यामिनः' 'स' 'इ'
चन्नम् 'उवाच'। तस्तादेताः सुत्या इत्यर्थः।

कराः, 'त्रथ यो न प्रतितिष्ठेत् च कतुमार्भमाष एकिपितिकमेव िष्णीत संयष प्रचेतास्ति पञ्च नानामका फलरवेद्यासुपद्धात्' इति । तप प्रथमेष्टकामकामाइ,—''संयष प्रचेतास्त्राः चेतमस्त्र स्वयंद्धाः(')'' इति । भाग्निषामस्त्रयाणां 'संयत्' (संयमनकारणं) यद्द्धाः, 'प्रचेताः' (प्रकाषज्ञानहेतुः) च योऽस्ति, हे दृष्टेके, तद्भयद्भण तमसि ।

श्रय दितीयेष्टकामन्त्रमाइ,—"ख्या च भीमा च पितृषां 3 P 2 षमखेन् ख^(२)" इति। पिषादीनां येयम् 'उगा' (ताजुनादित्रक्तिः), षा ष 'भीमा' (भवद्वरी प्रक्तिः) तदुभयक्षा लमसि।

श्रथ हतीयेष्टकामकामाइ,—"भुवा च प्रथिवी च देवस्य सिवतुर्मदतां वद्यस्य(१)" इति । सिवचादीमां या 'भुवा' (सिता श्रक्तिः), या च 'प्रथिवी' (विसीर्था श्रक्तिः) तदुभवद्या तमिष ।

त्रय चतुर्येष्टकामक्षमाइ,—''धर्ची च धरिषो च मिना-वद्षयोर्मिक्य धातुः(*)'' इति। मिनावद्षादीनां या धार्ष-त्रक्तिः, या च परप्रेर्षाद्भण धार्यिष्टलक्षकिः, तदुभयद्भण लम्बि।

श्रय पद्य नेष्टकामकामा इ,—"प्राची च प्रतीची च वस्ता श्र बद्राषाम् श्रादित्यानाम्(१)" इति । वस्तादीनां प्राम्वर्त्तिनी वा विक्तः, या च प्रतीचीदिम्बर्त्तिनी, तथोर्षि दिश्रोः सर्वे प्राष्टिनः एतदाश्वामनुद्धत्येव वर्त्तनो, हे इष्टके तथाविधवक्तिक्या लम्मसि ।

श्रय वर्षेष्वयनुषद्मनीयं मन्त्रश्रेषमाइ,—"ते तेऽधिपतयखेश्वो नमसे ने। स्टड्यमु ते यं दिश्रो यस ने। देष्टि तं वे। अश्वे दधामि(°)" इति । 'ते' श्रशिक्षामादयः तन्त्रसन्त्रोक्ता देवाः, हे इष्टके 'ते' (तव) श्रधिकं पाश्चितारः, तेश्वो नम इत्यादिकं तु पश्चचोड़ामन्त्रवद्माख्येयम् ।

ता एता रष्टकाः षष्टिकते। विधातमादी षष्टीं चितिं विधक्ते,—''संवत्परी वा एतं प्रतिष्ठाये नुद्ते चे।ऽग्निं चिता न प्रतितिष्ठति पञ्च पूर्वे। खितयो भवन्यथ षष्टीं चितिं चिनुते षड् वा स्थतवः संवस्तर स्वतुस्वेव संवस्तरे प्रतितिष्ठति" (५१४। २२०) रति । यो यजमानः पूर्वेक्तप्रकारेष पश्चित्रीकमित्रं स्थिलापि उत्तरक्रत्वनुष्ठानाय द्रव्यादिसम्पत्ति रूपां प्रतिष्ठां न प्राप्नोति, एतं यजमानं संवस्तराभिमानी देवः 'प्रतिष्ठाये' श्रपन्नुदित, तथा यति याः पूर्वाः पश्च चितय श्रासन्, ताभिः प्रतिष्ठाया स्वाभात् तद्पेचया येथं चितिः षष्ठी, तां चिनुयात्, षट्सङ्काया बुद्धिया 'स्थतः' तद्द्वारा 'संवस्तरे' 'प्रतितिष्ठति'।

षष्ठी चितिं विधाय तच संयचेत्यादिमक्षमध्यमुपधानं विधन्ते,—"एता वा ऋधिपत्नीर्नामेष्टका यस्त्रेता खपधीयते-ऽधिपतिरेव समानावां भवति" (५।४।२५०) इति। ऋधिपति-अब्द्युक्तैर्मक्वेदपधेया दष्टका ऋधिपत्यः। तदुपधानेन स्वसमानानां पुरुषाचां स्वयमधिपतिर्भवति।

उपधानकाले धानिकोषं विधत्ते,—यं दियात्तमुपद्धद् धायेदेताभ्य एवेनं देवताभ्य त्राष्ट्यति ताजगार्त्तमार्क्कति" (५। ४।२५०) दति । एतदाकां पश्चचोड़ाबास्त्राख्येयम् ।

कत्यः, 'सरस्य प्रमा श्रमीति सरसेण हिर्द्यश्रक्ते इर्द्ध-सिष्ठम्" प्रतिदिश्रमित्रं प्रोचिति' इति । पाठस्तु,—''सरस्य प्रमा श्रमि सरस्य प्रतिमा श्रमि सरस्य विमा श्रमि सरस्योत्मा श्रमि सरसे। प्रमाय ला^(१-५)' इति । हे इष्टके, प्राच्यां दिश्रि दष्टका 'सरस्य, प्रमातुष्या 'श्रमि' । एवं दिश्रणयां

^{*} ऊद्धें तिस्ठन् इति पाठी भवितुं युक्तः।

दित्रि 'सरस्य, प्रतिमातुका 'यथि'। तथा पश्चिमायां दिति 'सरस्य, 'यथि, तथा पश्चिमायां दिति 'सरस्य, एकातुका 'यथि'। तथा प्रति सरस्य, एकातुका 'यथि'। हे चित्याग्ने, लं ऊर्द्वायां दिति सारस-सम्बद्धि। यतः 'सरस्याय' (सरसम्ब्राक्षकक्षिद्ध्यें) तां प्रोक्षाम ।

एतम्बन्धां प्रेषणं विधन्ते,—"मिन्नर्सः सुवर्गं खेतां यन्ता या यञ्चस निष्कृतिरासीत् तास्तिस्यः प्रत्योद्दन् तद्धिरस्यसभवद् चद्धिरस्यम्बः प्रोषित यञ्चस निष्कृत्या मधा भेषमसेवासे करोत्ययो रूपेणेवेनम् समर्थवत्ययो दिरस्यन्योतिषैव
स्वर्गं खेतकति" (५।४।२५०) इति । 'मिन्नर्सा' सर्ववः
कर्मानुष्ठाविना यदा स्वर्गं गताः, तदानीं 'यञ्चस' वक्तूसं
साधीनवकारणसाधनद्वं, तद्येश्य स्विभ्यः प्रद्दः । 'तत् च
द्रयं 'दिरस्यमभवत्' तता 'दिरस्यम्बः' दक्षोद्धृतैः यद्द प्रोष्टसं
यत्, तक्तूस्यदानेन यञ्चनिष्क्रयार्थं सम्पद्यते । मिप च वैकस्पपरिहाररूपं 'भेषमन् म् मन्यर्थं सम्पद्यति । मिप च दिरस्यसम्भात्
'एनम्' म्हां रूपमद्धं करोति । भत द्वान्यनामातं, 'यथा
द वै योषं स्वर्थं दिरस्यं पेमसं विभ्रती रूपायासे' इति ।
मूपि चायं यममनि दिरस्यक्षेषेव क्येतिका नागं दृष्ट्वा

तिसन् प्रोचिष सहस्रस प्रमेत्वादिनकं विनियुद्धे, "साहस-वता प्रोचित साहसः प्रजापितः प्रजापतेराष्ट्री" (५।४।२५०) इति । साहस्रोऽसीत्येवं साहस्रक्ये यसिन् प्रीचणमन्त्रसङ्गेऽसिः सार्यं साइस्रवान्। प्रजापतिच सइस्रस्थाकजगदुत्पादकत्वात् साइस्रः, त्रतेर्यं मन्त्रः प्रजापतिपाप्तये भवति ।

कस्यः, 'इमा मे चग्न इष्टका धेनवः सन्तितीष्टका धेनू-र्घत्रमानः कुरते' रति। पाठस्त, "रमा मे त्रग्न रष्टका धेनवः सन्त्वेका च व्रतं च सङ्खं चायुतं च नियुतं च प्रयुतं चार्बुदं च न्ध्रमुदं च समृद्रय सभं चानाथ परार्धयोमा से प्रग्न दष्टका धेनवः सन्तु विष्टः सरसमयुतमचीयमाषा ऋतस्वाः स्वर्तात्रधो घृतस्तो मधुषुत जर्जसतीः सधाविगीसा मे प्राप्त रष्टका धेनवः यन्तु विराजा नाम कामदुषा श्रमुवामुश्रिक्के के (१)" इति । हे चग्ने, 'इमा' उपिता 'इष्टकाः' 'से' (मम) 'धेनवः' (धेनुवत् प्रीतिहेतवः) 'सन्तु' । व्रतादयः परार्धान्ता द्वीन्तराः सङ्घा-विभेषा एकभतसदस्रादिसङ्खासङ्खेययोः सत्योः मां प्रोणयन्तु। यदा ममैकचा प्रीतिः तदा 'क्रतं' भूलेत्येवं सर्वेच द्रष्टयं। उत्तर-वाक्यसम्बन्धार्थम् 'रमा ने श्रग्न' इत्यादेः पुनर्वचनम् । हे 'रष्टकाः', वद्यादिसङ्खासङ्ख्योगः सत्यः 'श्रवीयमावाः (चय-रहिताः) 'ऋतस्याः' (यज्ञवर्त्तिन्यस्याः), 'ऋताद्रधः' (यज्ञ-वर्धिकाः) भवत । 'घृतख्तः' (घृतचरणशीखाः), 'मधुख्तः' (मधुर्रवचरणत्रोखाः), 'ऊर्जखतीः' (बलवत्यः), 'खधाविनी.' (श्रम्भवत्यस्) 'स्व' (भवत)। 'ता से श्रम्भ इत्यादि व द्यमाण-वाक्यसम्बन्धार्थे। 'विराजः' (विविधराजमानाः), 'कामद्घाः' (कामानां देशम्थः), 'त्रमुच' (सामान्येन खर्गमाचे), 'त्रमृत्तिँ होके' (विश्वेषतः दृष्ट्रादिखोके) कामं धेनवः 'सन्तु' द्रत्यन्वयः।

मक्त स्था तात्पर्थं दर्शयित,—"इमा मे अग्ने इष्टका धेनवः सन्तित्वाइ धेनूरेवेनाः कुदते ता एनं कामद्घा अमुनामुसिक्काक खपतिष्ठको" (५।४।२% ०) इति ।

श्रव विनियागसंग्रहः,—

मध्य दादमर्चायाः, त्रग्नेरित्यनुषक्यते।
संयचेता भुवा धर्नी प्राची पश्चेष्टका द्रमाः॥
सन्धां चिता सर्वभेषः ते त दत्यादिका मतः।
सन्दां पश्चभिर्मन्त्रेदिं चु मध्ये च तां चिति॥
सन्दास्त्रभेषक्तिः प्रोचे तत दमामिति।
स्वामीधेनूः करेत्येतास्त्रयोविंग्रतिमन्त्रकाः॥

श्रथ मीमांबा,—बतुर्थाध्यायस्य चतुर्थपादे (१श्र०) चिन्तितम्। नित्या वष्ठी चितिनै। वा पञ्चापूर्वेत्वते।ऽधिमः। श्रपदृक्तावप्रतिष्ठास्त्रिमिक्तीक्वत्य ने।ऽधिमः॥

भागे श्रूयते, 'चे। जिं चिन्ते' दित । खाङ्क्षेन छ्रम्भ्यां याम-भाने भूप्रदेशे नानाविधाभिरिष्टकाभिः पद्धाकारेण खण्डिखं निष्पाद्यते वेयं चितिः । तादृष्यः पद्म चितयः पूर्वाः क्रियन्ते । तन वष्टो चितिः, तन वखां पूरणो षष्टोति खुत्पत्ता पूर्वाः पद्म चितयोऽपेद्धानो, श्रन्यथा षट्मङ्क्षापूरकलामभावात् । तसादेक-प्रयोगिनयमादितरचितिवत् नित्येति चेत् । मैवं, श्राग्नं चितित पूर्वाभिरेव पद्मभिद्यितिभिर्नित्यस्थाग्नियमस्य समाप्ता सत्थां पद्मात् थे। न प्रतितिष्ठतीति, त्रभै। वष्ठी चितिं चिनुत इति कर्र्यमानाधिकतेन यक्क्ष्येन त्रप्रतिष्ठां निमित्तीक्तय विधानात् वष्ठी नैमित्तिकी। ततः पद्मचितिका नित्योऽग्निः, नैमित्तिक-स्तिक इति न प्रयोगैकां, पूर्वप्रत्ययम् त्रभिधानापेषया खपपद्यते। पूर्वाः पद्मचितयोऽभिष्टिताः, त्रभिधास्त्रमानानां व्यश्चितिं चिनुत इति वचनयितः॥

द्ति सायनाचार्यविर्चिते माधवीये वेदार्थप्रकामे हाष्वयजुः-संदिताभाये चतुर्थकाच्छे चतुर्थप्रपाठके एकादमोऽनुवाकः॥•॥

मुमिड्शामाशयां नः सुवृविकाधारता मार्धवः पाल्सान् । श्राप्तदेवा दुष्टरीतुरद्राभ्य दृदं सुवश् रिक्षतु पाल्सान् । रृयुन्तरः सामिभः पाल्सान् गायुषी कन्दंसां विश्वरूपा । ष्टिन्नां विष्ठया स्तामा श्राप्ते समुद्रो वार्त दुद्मार्जः पिपर्तु । उत्रा दिशा-मुभिर्मू तिर्वयाधाः शुक्तिः शुक्ते अर्ह्मणे श्रमीना । इन्द्रा-धिपतिः पिष्ठताद्ती मा मर्हि ॥ १ ॥

^{*} चभिधासामानां इति पाठे। भवितुं वृक्तः।

श्रुषं विश्वती धारयेदं (१) । हहतामं श्रुष्ट हुइ-ष्टिष्ण्यं षिष्टुभी जः श्रुभितमुग्रवीरं । इन्द्र स्तोमेन पष्ट्येन मध्येमिदं वातेन सगरेण रक्ष (१) । प्राची दिशाः सहयेशा यश्रेखती विश्वे देवाः प्राष्ट्रपाङ्गाः सुवर्वती । इदं श्रुषं दृष्टरेमस्वोजाऽनी ४ष्टः सहसि-यूर सहस्वत् (१) । वैक्षे सामंत्रिक तष्ट्येम जगत्येनं विश्ववावेशयामः । विश्वे देवाः समद्श्रेनं ॥ २ ॥

वर्षे इदं श्रुवश संखिखवातमुगं () । धर्वी दिशां श्रुवितदं दीधारीपृष्टाश्रीनां मिचवंदुक्तोजंः । मिची-वहणा श्रुरदाष्ट्रां चिकिल श्रुक्ते राष्ट्राय मिच श्रुमें यक्तं (०) वैराजे सामकधि मे मनीषानुष्टुमा समृतं वीर्यश्रे सर्षः । इदं श्रुवं मिचवदाईदीनु मिचवहणा रक्षंत्रमाधिपत्यैः (०) । सम्बाट् दिशाश स्वसीकी सर्ष-खत्युतुर्वे मन्तो विषया नः पिपर्तु । श्रुवस्युवाताः ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

मुनिर्नी शक्तरीरिमं यज्ञमवन्तु ने। घृताचीः (र)
सुवर्वती सुदुर्घा नः पर्यस्वती दिशां देव्यवतु ने।
घृताची। त्वं गोपाः पुर एतात पृञ्चाद् स्टंस्पते
याम्यां युक्धि वाचं(१०)। जुर्द्धा दिशाः रिन्तराशीर्षधीनाः संवत्सरेणं सिवृता ने। श्रद्धां। रेवत् सामार्ति-

कन्दा ज कन्दे। जातशबुः खोना नी श्रम्तु (११)। स्तोम-चयस्त्रि श्रेषेनस्य प्रमि विवस्तदाते श्रुभि नंः॥॥॥॥॥॥

यृणाहि घृतवंती सवित्राधिपत्यैः पर्यस्तृती रन्तिराश्ची ना अस्त्रिः। अवा दिशां विष्णुपत्त्रधीरास्थेश्चीना सहसो या मनाता। हहस्पतिमीतृरिश्चीत वायुः संन्धुवाना वाता श्रुभि ना यणन्त्रिः। विष्टुभो दिवा धरुणः पृष्टिव्या श्रुभो ना यणन्त्रिः। विष्टुभो दिवा धरुणः पृष्टिव्या श्रुभोताः श्रिवा ना श्रुस्तिदितिर्पर्थे (१४)। वेश्वान्ते सुर्भूताः श्रिवा ना श्रुस्तदितिर्पर्थे (१४)। वेश्वान्ते ने ज्ञा (१४) पृष्टी दिवि (१८) अनु ने। रचानुं-मितः (१०) श्रुम्बद्नसते त्वं (१०) कर्या नश्चित्र श्राम्वत् (१८)

के। ऋच युङ्गि (११)॥ ५॥

मर्हि । सप्तद्येन । अवस्यवाता । अभि नः । अनुं नः । चतुर्देश च ॥ १२ ॥

इति तैत्तिरीयसंहितायां चतुर्थकार्यं चतुर्थप्रपाठके दाद्भाऽनुवाकः ॥०॥

र्शासरं सि । राज्ञेगसि । श्रयं पुरे हरिकेशः । श्रामिर्मु हो । इन्द्रामिश्यां । स्ट्रासिर्मा । स्युक्तृदेसि । श्रामिना विश्वाषाट् । प्रजापितिर्मनेसा । स्निका । मधुंश्व । समिह्शां । हादंश ॥ १२ ॥ र्ष्मिरंसि (१च०१)। प्रति धेनुम् (४घ०२)। चुसि स्तनियुत्तुसनिरसि(६घ०२)। चादित्यानार्रं(११घ०३)। सुप्तिर्वरसत्*॥ ३७॥

॥•॥ इरिः चाम् ॥•॥ ॥•॥ समाप्तय चतुर्थप्रपाठकः॥•॥

एकार्त्रेश्वाबे श्वतयाद्या रष्टका लक्ताः, तावता चितवः ममाप्ताः। प्रधानिमे दाद्वे याच्यान्वाद्या उच्यने। प्रयमेध-प्रकर्षे कच्यः प्रवते,—'त्रग्नये गायत्रायेति दश्च द्विषाः सर्व-पृष्ठां निर्वेपति समिद्विमामायया न इति यथासिङ्गं याच्यान्-वाक्याः' इति । तच 'त्रग्रये गायचाय चित्रते राचन्तराय वासन्ता-चाष्टाकपासः' इत्यस पुराऽनुवाकामारः,—"समिद्शामात्रया नः सुवर्विकाधेरता माधवः पालसान्। श्रक्तिर्देवा दुष्टरीतुरदाभ्य इदं चन् रचतु पालसान् (९)" इति। 'दिशां' मध्ये या दिक् 'ममित्' (ममिश्वनहेतुः)। तदेव कथम् ? इति। तदुच्यते, 'सुवर्वित्' खर्गसमादित्यं विन्दते सभते इति सुवर्वित्। त्रादित्योदय-खानलात प्राच्या दिशः समिन्धनहेतुलं। तादृश्री दिक् 'नः' (श्रमान्) 'त्रात्रया' 'पातु', (श्रमाकं धनादिविषया या काचिद् श्राज्ञा वर्त्तते, तस्याः पूर्णेन 'नः' [श्रस्मान्] रचतु)। मधुः चैत्रमासः, 'माधवः' वैद्याखमासः, ताबुभावपि पुर्वदिम्बत षिनश्रमहेतुः, तथे। श्रीषयोरादित्यप्रकात्रस्थानिती ऋणुवान् । तत्रापि

^{*} प्रथमें अनुवाने ह, दितीये इ, हतीये इ, चतुर्णे द, पद्में २, यह १, सप्तमे २, षष्टमे १, नवमे १, दश्मे ३, एकादश्रे ६, एवं दादश्रे १, इति सप्तिंशत्।

'श्रतः' (श्रम्मात्) 'मधोः' (चैनमासात्) श्रधिकप्रकाश्रे। यो 'माधवः' (वैश्राखमासः), सः 'श्रम्भान्' समापभवात् 'पातु'। दुःसेन स्तरीता (श्राक्कादयिता) 'दुष्टरीता', यो वैरी प्रावरणवस्त्रेयेव दुःसेन श्राक्कादयित, तस्त्रापि दुःसकारियो वैरियः 'श्रदाभ्यः' दिमातुं स्वितुमश्रक्को यः 'श्रिग्निदेंवः', सेाऽसम् 'ददं क्यं' (श्रम्भदीयमिदं क्यं), श्रम्भांश्च 'रचतु'।

तंत्रेव याज्यामाइ,—"रचनर ए सामिः पालसान् गायतो कर्न्यां विश्वस्था । विष्ठसे विष्ठया सोमे श्रक्तां समुद्रे। वात इर्माजः पिपर्तुं (१)" इति । वत् 'रचनारं' साम, तदन्येः 'सामिः' यह 'श्रसान्' 'पातु' । 'इन्द्रमां' मध्ये 'गायत्री' 'विश्वस्पा' ववमध्यपिपीकामध्यादिभेदैर्वज्ञस्पा, सा 'श्रसान्' रचतु । विषयस्था यः 'सोमः' 'श्रक्ताम्' एकाहादिसम्बन्ध्याः 'विष्ठया' (विविधया खित्या) युक्तः, श्रहःसु विविधं प्रयुक्तत इत्यर्थः, ताहृशः 'श्रसान्' 'पातु' । समुद्राख्या यः 'वातः' श्रस्ति,—'समुद्राय ला वाताय खाहा । समुद्रोऽसि नभस्मान्' इत्यादावास्थातः, ताबृशो वायुः 'इर्मोजः' (श्रसादीयंयक्षं) 'पिपर्तु' (पास्वतु पून्यतु वा)।

त्रय 'रत्राय नेष्टुभाय पश्चद्याय वार्षताय ग्रेसायैकादम-कपालः' रत्यस्य पुराऽनुवाक्यामारः,—''उग्रा दिश्रामभिभूति-वंथोधाः ग्रुक्तः श्रुक्ते श्रह्मयोगसीना। इन्द्राधिपतिः पिष्टतादते। ने। महि चनं विश्वते। धारयेदम्(१)" इति। 'दिश्वां' मध्ये येयं 'उग्रा' (दिष्णा दिक्), उग्रते हेतुः,—'श्वभिभूतिः', पापानामभि-भवहेतुलाहुग्रलं। सा 'वयोधाः' (वय श्वायुखं, तसिस्त्रतीते सति स्तान् पृद्वान् यमले के दधाति खापयतीति वयोधाः)।
वयवे। उन्ते दधातीति मध्यमपदले पो दृष्ट्यः। 'ग्रुचिः' चावादमासः, 'ग्रुकः' च्येष्टः, तयोः सन्निश्चित्त दिवसे यदौष्ण्यमित्तः,
तते। ऽपि 'ग्रुचिः' 'च्रोजसीना' (प्रतिज्ञयेने। च्याक्ष्पे चे व्याया दिजः,
तयो रत्युष्ण्योख खामी। तादृष्ट्यः 'प्रतः' (उभवसात्) 'नः'
(प्रसान्) 'पिपृतात्' (पास्त्र)। किञ्च 'विश्वतः' 'मिष्ट' (सर्वस्वात् महत्) 'द्रदं' 'चनं' (बसं) 'धार्य' (समाद्य)।

तनेव याज्यामाइ,—''बृहत् बाम जनसदृद्भृतृ चिष्यं निष्ठु-भीजः ग्रुभितम् प्रवीरं। इन्द्र खोमेन पश्चदमेन मध्यमिदं वातेन बगरेष रचं(४)" इति। बृहदाखं यत् 'बाम', तत् 'निष्टुभा' इन्द्रधा यहः पिपर्लिखनुवर्त्तते, श्रद्धान् पाजयित्वद्यर्थः। कोहृश्रं धाम?—'जनसत्' (बलस्य धार्यिष्ट), 'तृद्भृतृष्ण्यं' (उत्यिनपुंस्कं), 'श्रोजः' (बलप्रदं), 'ग्रुभितं' (ग्रोभमानं), 'ज्यवीरं' (तोजपुन-प्रदं)। हे 'इन्द्र', पश्चदशास्त्रोन 'स्रोमेन' सगरास्त्रोन 'वातेन' सहितः सन् 'इदं' 'मधं' 'रच' (श्रतोतानागतये। मध्ये स्वितं इदमस्रादीयं शरीरं पालय)।

श्रय 'विश्वेभो देवेभो जागतेभाः सप्तद्योभो वैक्षेपेभो वार्षिकेभो दादशकपाखः' दत्यस्य पुरेाऽनुवाक्यामाइ,—"प्राची दिशाश सहयशा यशस्त्रतो विश्वे देवाः प्राष्टवाक्राश सुववंती। ददं चवं दुष्टरमस्त्रोचे।ऽनाधष्टश सहस्त्रियश सहस्त्रत्रिः)" दति। श्रव प्रश्नदः प्रतिश्रव्दार्थे वर्त्तते। तथा सति 'दिश्रां' मध्ये या 'प्राची'

पश्चिमा दिगित्यर्थः, सा च 'सहयज्ञाः' (श्रस्मासु सम्माद्यमानेन यज्ञमा सहिता), ख्यमिष 'यज्ञखती,' सा च 'सुवर्वती' (खर्ग- निवासिनी) स्वर्येणास्तमयकासभाविना युक्ता; तथाविधा दिक् श्रस्मान् पालिति ग्रेवः । तथा 'विश्वे देवाः' 'प्राष्ट्रचा' (वर्षेतुंना) तदोयानाम् 'चर्जां' समूहेन सहिता श्रस्मान् पास्त्रयतित ज्ञेवः। 'इदं चनं' (श्रस्मत्परिपासकं राजग्ररीरं) केनाप्यन्येन वैरिषा तरितुं सञ्चित्तमञ्ज्ञम् 'श्रस्तु' । 'श्रोत्रो' (मदीयं वसं) 'श्रना- प्रष्टुं' (केनाप्यतिरस्त्रतम्) श्रस्तु । तथा 'सहस्त्रयं' (सहस्वस्त्र्या- योग्रं) 'सहस्त्रत्' (प्रवसं धाम) श्रस्तु ।

तंषेव याच्यामाइ,—''वेक्षे यामिष्ठ तच्छकेम जगतीनं विद्यावेष्ठयामः । विश्वे देवाः यप्तद्येन वर्ष रदं चन् सिख्य-वातमुग्रम्(')" इति । वैक्ष्पाख्यं यत् यामासि, तिस्त्राश्चिता वयम् 'इष्ट' (कर्मणि) यत् पासमपे चितं, 'तत्' 'प्रकेम' (सम्पाद्यितं प्रकाः साः)। तथा जगत्याख्यया क्रन्दोदेवतया प्रमुख्दीता वयं 'एनं' (यजमानं) 'विचु"(प्रजास्त) 'त्रावेष्ठयामः' (प्रजानां खामिनं खुर्म इत्यर्थः)। हे 'विश्वे देवाः' यप्तद्याख्येन क्षोमेन युग्नाभिष्य प्रमुख्दीतं 'इदं चन्म' (त्रस्रात्याक्षकं राजधरीरं) 'वर्षः' (तेवायुक्तं) यिख्याख्येन वायुविभेषेणानुख्दीतं,—'यिख्वाय ला वाताय ला' इति । 'उगं' (वैहितिरस्कारचमम्) प्रस्तु ।

श्रय 'मित्रावद्याभ्यामनृष्टुभाभ्यामेकविश्वाभ्यां वैरात्राभ्याश्र श्रारदाभ्यां प्यखा' रत्यख पुराजनुवाक्यामाइ,—"धर्नी दिश्वां चत्र-मिदं दाधारापद्याश्रामां मित्रवद्यलेजः। मित्रावद्या शरदाश्चां चिकिन चसे राष्ट्राय मिर वर्म यक्तम्(०)" इति। 'दिवां' मधे 'धर्षो' (प्रस्नाकं धारयिको), दयमुदोची 'इदं चयम्' (प्रस्नात्मकं चिववदीरं) 'दाधार' (पेषयामास)। कोहृत्री?— 'वावानाम्' उपस्रेया (प्रस्नाकं धनादिविषयाणामात्रानां सिख्ये वेखा), यसा दिवः प्रसादादस्त्रदीयम् 'वेशेना' (वसं) 'मियवद्' 'चस्तु' (वस्तिमियदेपेतमस्तु)। हे 'मियावद्या' 'वरदा' (वर्षामकेन) चतुना तदीयानाम् 'चक्रां' 'चिकिन् (ज्ञातारा) स्वां 'चस्ते' (ददानीं वर्षमानाय) 'राष्ट्राय' 'मिर्ड' वर्मं' 'वस्ततं' (महत सुखं समाद्यतम्)।

तचेव याच्यामाइ,—''वैराजे सामजिश ने मनीवानुष्टुभा सम्भृतं वीर्यष्ट्र पदः । ददं चयं निय्वदाद्वंदानु नियावद्या रचनमाधिपत्यैः(⁽⁽⁾⁾⁾ दित । वैराजाखं यत् सामाखि, तिष्ट्र म् 'ने' (मदीया) 'मनीवा' (बृद्धिः) प्रामिता तथाऽस्मिति प्रेवः । तथा 'वीर्यम्' (प्रस्नदीयं प्ररोत्यवदारसामर्थे), 'सदः' (वैरितिरक्कारकं वसं) च 'मृत्रुआ' '(इन्दे।देवत्या) 'स्थुतं' (बन्यादितम्) पद्ध । 'मियावद्या' (हे नियावया), 'ददं चयं' (राजप्रदीरं) 'मियवत्' (मियेक्डभिद्येतं), 'मार्द्रदानु' (पार्द्रश्व मस्मस्यूर्णस्य चेनादेशिष्टं) यथा भवति, तथा युवां 'माधिपत्यैः' 'रवतं' (माधिपत्यान् विदिला पास्रयतम्) ।

श्रव 'बृष्यातचे पाष्ट्राय विवताच प्राकराय हैमनिकाय

[&]quot; 'दाढ़' दति पाठः समीचीन दव प्रविभाति।

चरः' इत्यक्त पुरे। उनुवाक्यामार,—"समाद दिमार सरवाकी सर-सत्युविंगको विष्ठया नः पिपर्त । पदम्रां मध्ये (सम्बद्धाको इति) ध्यम्यक्त ने। घृताची (८)" इति । 'दिम्नं' मध्ये (सम्बद्धाको इति) 'स्वाद' 'ऊर्ध्वा दिक्', सा च 'सर्वाकी' (सामभिः सहिता), 'स्-सती' (सस्वती), 'नः' (प्रस्तान्) 'पिपर्तु' (पास्वत्त) । तथा हेमनाक्य 'स्तुः' 'विष्ठया' (विक्रिष्टया खित्या) 'नः पिपर्तु' । 'प्रवस्तुवाताः' (प्रवस्त्वेग रख्यितारे। 'वाताः' वायवः यासं हस्तीनान्द्रकां, ताः प्रवस्तुवाताः), 'हस्तीः' (हस्त्वास्त्रस्कन्दे।युक्ताः), 'क्रकरीः' 'नु' (ब्राकरसाको योगिभ्रता स्वरः प्रपि), 'घृताचीः' (घृतास्रतियुक्ताः) सत्यः 'नः' (श्रस्तदीयं) 'इमं' 'यञ्चस्वन्तु' ।

तमेव याच्यामाइ,—"सववंती सदुषा नः पवसती दिमां देंथवतः ने। षृताची। सं गोपाः पुर एतात पद्माद् ष्टइस्रते वाम्यां सुरूषि वाचम्(१०)" इति। 'दिमां' स्नामिश्वता देवी" 'सुर्वती' (स्नामुक्ता स्नामदेत्ययः), 'नः' (श्रसान्) प्रति 'सुदुषा' (काम-धेनुवत् सुदु दोइनमीला), श्रत इव 'पयसती' (बीरादिरसद्य-पूर्णा), विभेषतः 'घृताची' (घृतं प्राप्नुवती), हे 'ष्टइस्रते', 'स' 'पुर' 'एता' (पुरता गना सन्) 'गेपपाः' (रक्कः) ; 'स्नत' (सप्ति च) 'पसात्' (प्रहतः) श्रपि रचकः, तादृष्ठस्वं 'वाम्यां' (यमसभीं) 'वाचं' 'सुक्धि' (योजय), एवनेव वक्तंस्न श्रादिशेद्ययंः।

त्रय 'स्विचे त्रितिक्वन्द्साय व्यक्तिप्रमय रैक्ताव क्रैकिराच दादमकपायः' द्रत्यस पुराऽनुवाक्यामाइ,—"ऊर्द्धा दिवाप्र रन्नि-

^{* &#}x27;देवीः' इति सर्वत्र याठी न सम्बद्ध

राज्ञीषधीनाः संवत्यरेण सविता ने। श्रक्कां। रेवत् सामातिकन्दा छ क्ल्द्रोऽजातन्नवुः क्षोना ने। श्रक्कां द्रिति। 'दिर्मा' मध्ये धेयम् 'ऊर्ज्ञा' दिक्, सा 'रिनाः' (प्रीतिहेतः), सा च 'श्रोषधीनां' दृष्टिदारा सन्पादिकेति ग्रेषः। ताहृत्री 'नः' (श्रक्कान्) प्रति 'क्षोना' (सुखदा) 'श्रस्तु'। तथा 'श्रक्कां' समूहक्ष्मेण 'संवत्यरेण' सह 'सविता' (सुखपदः) 'श्रस्तु'। तथा 'रेवत्' (रेवताक्ष्मं) यत् 'साम' 'श्रति— क्ल्दा उ' (श्रतिक्ल्द्रोयुका क्ष्मिप्), तथा तस्त्रास्त्रि वर्त्तमान-श्रक्तदेश्येष समूहः 'श्रजातन्नवुः' 'श्रस्तु',—श्रस्तदीयः श्रवुर्यथा नेत्रायस्ते तथा करोलित्यर्थः।

तचैव बाज्यामाइ,—"सोमचयिक्त श्रेष्ठ भुवनस्य पिक्त विवसदाते श्रिभ ने। स्टणाई। घृतवती सिवतराधिपत्येः पयस्ती रिन्तराज्ञा ने। श्रुस्त । हे 'सोमचयिक्तं में' (पयस्तिं ज्ञास्तः सोमो यस्ता कार्द्धादिणः सा सोमचयिक्तं मा तत्सम्मेधनिमदम्), 'भुवनस्त पत्नी' (भूतजातस्य पत्नी पाखिवणी), हे 'विवसदाते' (विवस्त्रामका वाता वायुर्यस्याः सा विवस्तदाता, तत्सम्बन्धोधनिमदं), 'विवस्तते ला वाता खाइा' इत्यन्यणाचातं। तत्याविधा 'नः' 'श्रिभ' 'स्टणाई' (श्रसान् प्रति हितसुपदिष्ठ)। हे 'स्वतिः', इत्यम् 'श्राज्ञा' (दिक्) 'नः' (श्रसान्) प्रति 'घृतवती' (बद्धस्त्रम्पदिकां), 'श्रिभयत्येः' (श्रिकपासन्जित्तिः) योजियनी, 'पयस्तती' (चीर-सम्पादिकां), 'रिन्तः' (प्रीतिहेतः) 'श्रस्त'।

^{*} चत्र, 'भुवनस्य पति, भूतजातस्य पती पावियत्री, तत्सम्बोधन-निदम्' इति पाठा भवितुं युक्तः।

त्रव 'त्रदित्ये विष्णुपत्र्ये चहः' रत्यस्य पुराजनुवाक्यामाह,— "भुवा दिशां विष्णुपत्र्यक्षेत्राचा सहसे या मनोता। इहस्पति— भीतिरसेत वायुः सन्भुवाना वाता त्रभि ने स्टक्कु(१२)" इति । 'दिशां' मध्ये या 'भुवा' (स्तिरा, सर्यगितिसापेषप्राच्यादिविभागरिता समारूपा) दिक्, यस्र 'इहस्पतिः' यस मातिरसाख्ये सुस्यवायुः, ये च त्रन्ये 'सन्भुवानाः' (सम्यक् तच तच कम्पयकः) 'वाताः' ते सर्वेऽपि 'नः' 'त्रभि' 'स्टक्पनु' (त्रस्मान् प्रति हितसुपदित्रमु)। कीदृत्री भुवा? 'विष्णुपत्नी' (विष्णुः पितः पासको यस्याः सा 'विष्णुपत्नी'), 'त्रक्षेत्रा' (त्रान्तक्पा), 'त्रस्य' 'सहसः' (सर्वस्य सखस्य) 'ईत्राना' (नियामिका)। 'मनोता' (मनसि जता पूजितेत्यर्थः)।

तमैव याज्यामाइ,—"विष्ट्यो दिवा धइणः पृथिया अखेशाना जगता विष्णुपत्नी । विश्वयचा दूषयमी सुद्धतिः श्रिवा ने। श्रस्त-दितिइपस्ते^(१४)" । 'श्रदितिः' (श्रस्तप्ट्यनीया) दिक्सामान्यइपा देवता 'उपस्ते' (खोसङ्गे) स्त्रितान् 'नः' (श्रस्तान्) प्रति 'श्रिवा' (श्रामा) 'श्रस्त',—सुस्तकरी भवतु । कीदृश्री श्रदितिः? 'दिवा' 'विष्ट्याः' (श्रुखे।कस्त्राधारश्चता), 'पृथिया' 'धक्षः' (श्वभेधारयनी), 'श्रस्त्र' 'जगतः' 'ईश्राना' (सर्वस्त्र जगतः खामिभूता), (विष्णुः पतिः पास्त्रो। यस्याः सा) 'विष्णुपत्नी', 'विश्वयन्ता' (जगद्यापिनी), 'दूषयम्ती' (दूषमकं वुर्वती), 'सुश्चतिः' (श्रीभनैश्वर्थापेता)।

श्रय 'श्रयये वैश्वानराय दादशकपासः' द्रायस्य याच्यानुवाकायोः प्रतीके दर्शयति,—"वैश्वानरा न जत्या पृष्टे। दिवि^(१५-१६)" द्रति। 'वैश्वानरा न जत्या' द्रति पुराऽनुवाक्या। 'पृष्टे। दिवि' द्रति याच्या। 3 R 2 च्तचाभवं प्रवनकाण्डकः पश्चमप्रपाठकचानवानुवाचे व्याक्त्वातम्।

त्रव 'चनुमाने चदः' इत्यक्य वात्वानुवाकाचाः प्रतीके दर्भयति,— "चनु ने।ऽचानुमतिरिव्यद्गुमते लं(१०-१०)"इति । 'चनु ने।ऽचानुमितः' इति पुरे।ऽनुवाकाा, 'चन्विद्गुमते लम्' इति वाच्या । एतचे।अयन् "इदं वामाको इतिः" (३।३।९९) इत्यक्षित्रनुवाके व्याक्षातम् ।

श्रध 'काव एककपास.' इत्यस बाम्यानुवास्त्रथोः प्रतीके दर्श-वित,—"कथा निवच श्राभुत् के। श्रध युद्धे (१८-१०)" इति । 'कवा पश्चिम श्राभुवत्' इति पुरे। अवास्त्रा, 'के। श्रध युद्धे' इति याच्या। एतचो अवस्,—"इन्हाग्री रे।चना" (४।२।११) इत्यस्मिननुवाके व्यास्त्रातम्।

न्त्र विनिधानसंपदः,-

श्रवात्रमेधे या तिर्द्धिविभिर्द्धिभर्षुता । विधीयतेऽग्रये गायेखनुमानेन (०१६१९८४०) तथ प ॥ दे दे याज्यानुवाको सामित्यृची विद्यतिस्ति ॥ नेदार्थस प्रकाबेन तमा दादैं विनादयन् । पुनर्थासत्रो देथादिद्यातीर्थमदेश्वरः ॥

इति यायनाचार्यविरचिते माध्यीये बेटार्थप्रकात्रे छच्छाव्यु:-वंदिताभाव्ये चतुर्थकाच्छे चतुर्थप्रपाठके दादश्रीऽनुवाक:॥१॥

द्ति श्रीमद्राजाधिराजपरसेश्वरवैदिकमार्गप्रवर्तकश्रीधीरगुष-श्चपास्त्रवाद्याव्यधुरत्थरेष सायनाचार्वेष विर्विते माधवीये वेदार्थ-प्रकात्रनामकतैसिरीययजुःसंहिताभाखे चतुर्वकाष्टे चतुर्वप्रवाहकः सम्पूर्वः॥ ॥ ॥ ॥ ॥ श्री तस्त्रत्॥ ॥ ॥

॥०॥ श्रीगणेषाय नमः ॥०॥

श्रव तैतिरीयसंहिताभाषे

चतुर्चकाण्डे पञ्चमप्रपाठके

प्रथमाऽनुवाकः ।

नमस्ते बद्र मृन्यवं जुता तृ इषे बे नमः। नमस्ते अस्तु धन्वने बाइभ्यामुत ते नमः()। या तृ इषुः शिव-तमा शिवं बसूवं ते धनुः। शिवा शर्या या तव तया ना बद्र खड़्य()। या ते बद्र शिवा तृनूरघोरापाप-बाशिनी। तया नस्तुनु शंतमया गिरिशंताभि चे बशिक्शी हि()। यामिषुं गिरिशंतु इस्ते ॥ १॥

विभ्रष्यस्ति । श्रिवां गिरिष् तां कुर्व मा हिर्रसी
पुर्वषुं जगत् (१) । श्रिवन वर्षसा त्वा गिरिशाक्तं
वदामसि । यथा नः सर्वमिक्वगंदयस्य सुमना
असंत् (१) । अध्येवाचदिधवृक्ता प्रेयमा देव्या भिषक् ।
अशीर्य सर्वान् जम्भयन्त्सर्वाय यातुधान्यः (१) । असी
यस्तामा अंदृण जुत वृक्षः सुमक्तकः । ये चेमाः दृद्रा
अभिते। दिश्व॥ २॥

त्रिताः संहस्योऽवैषां हेर्ड ह्महे (०)। ख्री यी-ऽव्सपैति नीसंयोवा विस्तिहितः। ख्रीनं गापा चंह-श्वहंश्वदृष्टार्थः ख्रीनं विश्वा भूतानि सः हृष्टो संह-याति नः (०)। नमी खस्तु नीसंयीवाय सहसाक्षार्य मी-दुषे। खर्वा ये खस्य सत्वानाऽइं तेभ्याऽकर्द्यमः (८)। प्रमुख्य धन्वन्त्वमुभयाराक्षियार्था। यार्थ ते हस्त इषेवः॥ ॥॥

परा ता भगवा वप (१०)। श्रुव्तत्य धनुस्वर सर्षसाक्ष श्रतेषुषे। निशीर्थं श्रुच्यानां मुखां श्रिकां नेः सुमना
भव (१९)। विश्वं धनुः कप हिना विश्वच्या वार्णवार
ज्त । श्रनेश्रव्यक्षेव श्राभुरस्य निष्क्रिष्टः (१९)। या ते

हेतिमी ढुष्टम हस्ते बुमूवं ते धनुः। तयासान् विश्वतस्वमं यक्षाया परि भुज (१९)। नमस्ते श्रुक्वा ये धायानातताय धृष्यवे। जुभाग्याम्, ज्त ते नमी बाहुम्यां
तेषु धन्वने (१४)। परि ते धन्वना हेतिरसान् ष्टेणकु
विश्वतः। श्रवो य द्रष्ठिधस्तवारे श्रुस्ति धेहि तम (१४)
॥ ४॥

इस्ते। दिखु। इषेवः। ज्भाभ्यां। दाविर्श्यतिख॥१॥ इति तैत्तिरीयसंदितायां चतुर्यकाण्डे पञ्चमप्रपाठके प्रथमाऽनुवाकः॥०॥

श्रीगचेत्राय नमः।

— (CA)

यस नियमितं वेदा यो वेदेशीऽिखलं जगत्।
निर्मने तमइं वन्दे विद्यातीर्यमहेश्वरम्॥१॥
इष्टकाचितयः सर्वायतुर्थे हि समापिताः।
इदाधाये पश्चमे तु चित्यग्रौ होम जच्यते॥१॥
कर्मप्रकरणे पाठात् कर्माङ्गलमपीय्यते।
ज्ञानहेतुलमणस्य तथोपनिषदीरितम्॥३॥
किं जप्येनास्तलं ने। त्रूहीत्युक्ते सुनिर्जगौ।
यतद्रीयकेणेति जायासा श्रामनिम तत्॥॥॥
स्रत्यागमपुराणेषु इद्राध्यायप्रअंशनम्।
वक्रस्ति तदिस्तरेण इद्रकल्पेऽभिधास्यते॥५॥
इह कर्माङ्गता यादृम्वणिता ब्राह्मणेन ताम्।
वाद्रुं श्रव्दार्थमाचस्य विद्यतिः क्रियते स्पुटा॥६॥

कस्यः,—'त्रतरद्रीयं जुहोति, जर्त्तिस्वयाम्या गतीधुकयवाम्या जुड्यात्। जर्त्तिस्वैगंवीधुकसकुभिवा सुत्रयवसर्पिया स्रजाचीरेण म्हगी-चीरेस वार्कपर्णेनोदङ्तिष्ठन्, उत्तरस्थ पचस्य उत्तरापरस्थाः स्वत्यां विकर्णां स्वयमाद्रचायामनु परिचारं वा नमस्ये स्ट्रमन्यव दत्येतान् स्रमुवाकाः स्त्रेधा विभन्ना, श्रपि वा प्रथमादुपक्रम्य, नमस्त्रक्रम्य इति जानुदन्ने धार्यमाणः, रथकारेभ्यः स्रव दत्युपक्रम्य, नमः स्वायुधाय चेति नाभिदन्ने प्रेषेण प्रागवसानेभ्य श्रास्त्रदन्ने क्रमा, सहस्राण्डि सहस्त्रम इति दश्चावदानां क्रलाऽन्यारोहां जुहाति, ननी रहेभ्या यो पृथियामिति जानुद्रश्चे धारयमाणः, ननी रहेभ्या येऽन्तरिच इति नाभिद्रश्चे, ननी रहेभ्या ये दिवीत्याखद्रश्चे क्रला, एतानेव यजमानं वाष्यिलैतानेव विपरीतान् प्रत्यवराहान् क्रला, यद्यरे पद्म्यामर्क-पर्णसुदस्ति यं दिखात् तस्य यद्यरः' इति । तत्र प्रथमानुवाने प्रथमान्यसाह,—"नमस्रो रह मन्यवे स्तो ते द्वने नमः । नमस्रो प्रस्त धन्यने वाक्रभासुत ते नमः(१)" इति । हे 'रह', लदीया या 'मन्यः' (न्नापः) तस्रो 'नमः' 'प्रस्तु', स मन्युरसाहैरिस्वेव प्रसरत न लस्नास् । 'स्ता' (प्रपि च) 'ते' 'इतने' 'नमः' (लदीयाच वास्यस् नमः) 'प्रस्तु', तथा 'ते' 'धन्यने' (लदीयाच धनुषे) 'नमः' 'प्रस्तु', 'स्ता' (प्रपि स्त्र) 'ते' 'वाक्रभां' (लदीयाभ्यां धनुवास्त्रोपोताभ्यां स्त्राभ्यां) 'नमः' श्रस्तु । एतस्रवें वैरिस्वेव प्रवर्त्ततां न तु मसीत्यमिप्रायः ।

दितीयास्त्रमादः,—"या त द्युः विवतमा विवं बश्चत ते धनुः । विवा व्रत्था या तव तथा ने। दद्र स्डय^(२)" दित । हे 'दद्र', 'ते' (त्यदीया) 'या' दयम् 'द्युः' 'विकतमा' (व्रान्ततमा) 'बश्चः', तथा लदीयं यत् 'धनुः' व्रान्ततमं बश्चत, 'या' च 'व्रत्था' 'तव' (द्युधिः) 'तथा' व्रान्तया द्वा तेन च व्रान्तेन वाचेन, व्रान्तेन धनुषा, तथा व्रान्तया व्रत्थया 'नः' (श्वसान्) 'स्डय' (सुख्य) अकेषु प्रदृत्धशावसीयां व्रान्तवम् ।

श्रय वतीयास्त्रमास्-"या ते इद्र जिता तनूरघोराऽपापका-जिनी । तथा नसनुवा जंतमया गिरिजंताभि चाकत्रीहि(२)" इति । वे दि इद्रक तनू , तथा चेापरिष्ठादाकायते, 'इद्रो वा एव स्दक्षिक्षकीते तनुवौ चेारान्या जितान्या' इति । हिंबिका चेारा । त्रमुपाहिका जिवा। हे 'ब्र्ट्', 'ते' (तव) 'या' 'तनूः' 'जिवा' (त्रसास त्रमुपहकारिषी), त्रत एवाहिंसिका भवति। त्रघोरलमेव खष्टीक्रियते,—'त्रपापकाजिनी' (पापं हिंसाक्पमनिष्टं काज्रयतीति पापकाजिनी, ताहृत्री न भवतीत्यपापकाजिनी)। (निरौ कैंसासे स्थिता नित्यं प्राणिभ्या यः ग्रं सुस्यं तनाति, तत्सम्बेधनं) हे 'गिरिजंत'। तथाविध हे ब्र्ट्, 'जंतमया' (त्रतिज्ञयेन सुस्रकारिस्था) 'तथा' 'तनुवा' 'त्रभि चाक्रशीह' (मामभिसस्त्र प्रकात्रं कुर्वत्यर्थः। ताहृत्रीं लदीयां तनूं प्रकात्रयन् मां सुखिनं कुर्वित्यर्थः।

त्रय चतुर्थीमाइ,—"यामिषुं गिरिशंत इस्ते विभर्यस्वे । जिनां गिरिव तां खुद मा हिएसी: पुद्रषं जगत् (१)" इति । हे 'गिरिशंत', 'याम''द्रषुं' (वाणं) 'त्रस्वे' (वैरिषु प्रचेप्नुं) 'इस्ते' 'विभर्षिः', (गिरं केसासं चायते पास्त्रयति इति 'गिरिचः', तस्त्रम्नोधनं) तथाविध हे दृद्र, 'तां' 'इस्ते' धताम् 'दृषुं' 'श्रिवां' श्रस्तासु (श्रामां) 'कुद्'। 'पुद्रपम्' (श्रस्तदीयं मनुखं), 'जगत्' मनुख्ययिति रिक्तमिष (जगत् जङ्गमं) गवादिकं 'मा हिंसीः'।

श्रथ पश्चमीमाइ,—"श्रिवेन वचना ला गिरिश्राच्छा वदामि । यथा नः सर्वमिळागदयद्याः समना श्रमत्(॥)" इति । (गिरौ कैलाचे श्रेते तिष्ठतीति गिरिशः) हे 'गिरिशः', लाम् 'श्रच्छः' (प्राप्तुं) 'श्रिवेन' (मङ्गलेन) स्तिरूपेण 'वचना' 'वदामिं (वयं प्रार्थयामहे),—'यथा' (येन प्रकारेण) 'नः' (श्रस्मदीयं), 'सर्वमित्' 'जगत्' (यथा सर्वमिप मनुष्यपशादिकं अङ्गमजातं) 'श्रयद्याम्' (श्वरागं) 'सुमना' 'श्वस्' (श्वभवत्),—सौमनसोपेतं यथा सदितः, तथा जुरु ।

श्रव पठीमाइ,—"श्रथवाषद्धिवका प्रथमा देखा भिवत्। श्रदीश्य प्रवान् अन्नायन्त्रवास यातुधान्यः(६)" इति । खा दर्रः 'श्रधिवका' (श्रधिकाऽयिक्येवं सर्वेषां श्रपे मां प्रतिवक्षं, क्षमः), तेनेकि यति मम वर्वाधिकां तदानीसेव विध्यति । श्रत्यत्तरृष्टे दर्रः 'श्रथवाचत्' (मां वर्वाधिकं वक्ति) । कीदृष्टे।ऽधिवका ? 'प्रथमः' (देवानां मध्ये बुख्यः) 'देखः' (पर्वान् देवान् श्रद्धति), खयं देवान् पाखियतुं श्रम इत्यर्थः । 'भिषक्' (एतस्य ध्यानमाचेष धर्वरोगोप-श्रमणाद्वं चिकित्यकः) । किं सुर्वन् ? 'श्रद्धाय' 'प्रवान् '(प्रव्यात्रादीन् प्रवानिष्ठि, 'प्रवास्त्र' 'यातुधान्यः' (प्रवानिष्ठ राष्ट्रधान्) 'अन्नायन्' (विनाष्ट्रयन्) ।

त्रथ सप्तमीमास,—''त्रसी वसाकी त्रस्य सत वशुः समक्तसः । ये सेमां रहा त्रिति दित्त जिताः सहस्रकोऽवैषां हेर दैमहे^(०) दिति । 'वः' सहः, 'त्रसी' (मच्डलस्वादित्यस्पः), स च 'तासः' (स्वद्यकाखे त्रायमारकः), 'त्रस्यः' (सदयादूर्द्धभीषद्रकः) । 'स्त' (त्रित्य स) 'वशुः' (तिनाऽपुर्धे पिक्रसः) । स्वमन्येऽपि क्यांसत्कासगता सन्तेसः। 'समक्रसः' (नानावर्षः सन् तदा तदा त्रस्थकारादिनिक्तं-नादस्थानामुत्यः) । 'ये च' त्रस्ये रिक्षस्पा 'स्हाः' 'इमाम्' 'त्रितः' (त्रस्था श्रसेः परितः) 'दिसु' 'त्रितः' (प्रास्थादिस्ति त्रसस्थितः), ते च 'सहस्रकः' (यनेकसस्यस्थाकाः), 'श्वाम्' (त्रादित्य-तद्विन

^{* &#}x27;बराबः' इति सर्वत्र ग्रुटी न सन्वत्र्।

क्षाचा वर्षेषां रहाचां) 'देवः' (क्रोधवरुकं तील्एकं) 'क्व'-'रें,सदे' (भूजिनमञ्जारादिना विवारवामः) ।

श्रवाष्ट्रमीमाइ,—"श्रमौ थोऽवसपैति नीसपीवा विस्तिहाः। कतेनं नेता चनुक्रवदुक्रवुद्दार्थः। कतेनं विश्वा भूतानि यः दृष्टो म्हडयाति नः(")" इति । 'वः' सुद्रः, 'नीखबीवः' (कासकूटविष-भारचे नीखनका गीता क्या क्यों नीक्यीन:), व एव 'विक्रोदित:' (विक्रवेच होहित: सन्) 'चर्ची' मच्डक्वर्त्ती भूला 'चवर्णित' (चदवासमयं समाद्यितुं प्रवर्तते)। तस्य च रद्रसः मच्छलवर्त्तिन-रूपधारणे प्रयोजनसुच्यते,—'उत' (श्रपि च), 'गोपाः' (वेदसंस्कार-रिक्ता मेापासाः) ऋषि 'एनं' (मस्त्रस्वित्तिममादिवार्ष रहम्) 'ब्रह्मन्' (प्रमानाः)। 'खदहार्थः' (खदकानां हारिको धोविकः) चपि 'इनम्' 'ब्रहु बन्' (ब्राह्मित्र)। 'उत' (त्रपि च) 'एनं' (मच्डस्वर्त्तिन-मादित्यक्पिणं रहं) 'विका' 'भूतानि' (गामिहरादयः सर्वेऽपि प्राचिनः) पञ्चन्ति । सर्वेषां दर्जनार्थनेव हि बद्रस्वादित्यमूर्तिधारणं, कैसाबादिवर्त्त बृद्ध रूपं वेदबान्द्याभिष्ठेरेव दृष्यते वान्यैः। तादृत्रो रद्रः 'बृष्टः' सन् 'नः' (त्रसान्) 'स्डवाति' (त्रतिसुखिनः करेातु)। षय नक्मीमार,--"नमा प्रस्त नीसवीनाय सहसासाय मीहुवे।

षय नक्मीमाइ,—"नमे प्रस्तु नीसवीनाय यहसाखाय मीहुषे।
प्रदेश ये प्रस्त सलाने। इस्ते तेम्बोऽकरत्रामः (८)" इति। यः पूर्वे क्रिदीत्या नीसवीतः, स एव इन्द्रमूर्त्तिधारणेन सहस्रातः, स पुनः
पर्कन्यमूर्त्तिधारणेन मीद्वान् (नेचकः) दृष्टिकर्त्तित्वर्थः। नादृश्राय इद्राय

^{*} का॰ की॰ पुक्तको 'प्रफ्रान्ति सन्ते' इति माउः। प्रयन्त पर्व प्रक्रन्ति रुखेव पाठः।

^{3 .2}

'नमः' 'त्रस्तु'। 'त्रस्ता' (त्रपि च) 'से' केचिट् 'त्रस्त' (ब्रद्रस्त) 'सलाना' (स्टाइपाः प्राष्टिनः) 'तेथः' (सर्वेभः) 'त्रसं' 'नमः' 'त्रकरम्' (नमस्त्ररोमि)।

श्रय दश्रमीमाइ,—''प्र सुद्ध धन्यनस्त्रसुभयोरार्क्षियोर्श्वां। यास्य ते इस इस्तः परा ता भगवा वप^(१, १)"इति । हे 'भगतः' (भगवान्, पूजावान् [?] महदेश्वर्यसम्पन्न) इद्र, 'लं' 'धन्यनः' (लदीयस्य धनुषः) 'खभयोरार्क्षियोः' (केक्योः) श्रवस्थितां 'क्याम्' (केविं) 'प्र सुद्य' (श्रवरेषय)। 'यास्य' 'ते' 'इस्ते' 'इषतः' वर्षान्ते, 'ता' श्रपि 'परा' —'वप' (परित्यक्य[?])।

ऋषेकादश्रीमाइ,—"श्वतत्य धनुक्षः यहसाच जतेषुधे। निजीर्य अस्तानां सुद्धा जिवा नः सुमना भव^(६६)" इति । इन्द्ररूपेच यहस्वयञ्चाकानि श्रवीषि यस्ताचे यहसाचः। जतयञ्चाका द्रष्ट्ययो वासस्वापनकात्रा यस श्रवी जतेषुधिः। तादृश्च हे इद्र, 'धनुः' 'श्ववतत्य' (श्ववरापितव्याकं कत्वा) 'अस्तानां' 'सुद्धा' (द्रष्टुगतखेग्हानाम् स्वराषि") 'निजीर्थ' (द्रष्टुधिषु न्यसावेन जीर्षां कत्वा) 'नः' (श्रसान्) प्रति 'सुमना' (श्रनुग्रह्युकः) 'श्रिवः' (ज्ञानः) 'भव'।

श्रथ दादशीमाद,—"ित्र धनुः कपिदना विश्वस्था बाणवाष्ट्र स्त । श्रमेश्रस्थेषव श्राभुरस्थ निषक्क्षिः (१२)" द्रति । कपर्दै। स्राज्याक्ष्यः, वेाऽस्थासीति कपर्दी हृद्रः, तस्य 'धनुः' 'विश्वं' (विगत-स्थाकम्) श्रस्त । 'स्त' (श्रपि च) वाणमस्मिन् तिष्ठतीति वास्वान् द्रष्टिः,

^{* &#}x27;चयावि' इति पाठो भवितुं युक्तः। सर्वं परच श्रोर्वामित्रक 'श्रीर्वानि' इति पाठो भवितुं युक्तः।

स च 'विष्ठसः' चत्तु,—इषुगतानां ब्रह्मानां तदुदरे गापितलेन सहिराविभूतब्रह्मरहिताऽस्त । 'त्रस्य' (बद्रस्य) 'इषवः' (बाषाः) इषुधौ प्रचिप्ता 'त्रनेव्रन्' (बेद्धुमसमर्थाः) भवन्तु । 'त्रस्य' (बद्रस्य) 'निषज्जिषः' (वाषाधारः) 'त्रासुः' त्रस्त (ईषत्प्रसुः) त्रस्त । खुडूमानिस्वातब्रद्धावासं-जितलेन(?) वाषान् धारियतुमेव प्रभवति न तु वाषाकर्षणयोग्य इत्यर्थः । त्रथ वा 'निषज्जियः' (खद्गकोष्ठः) ; से।ऽपि पूर्ववत् कचि-दारोपितलेन खद्गं धारियतुमेव प्रभवति, न तु खद्गाकर्षणसमर्थः ।

श्रय त्रयोदश्रीमाइ,—"या ते हेतिमीं हुष्टम इस्ते बस्रव ते धनुः। तयासान् विश्वतस्त्रमयस्त्रया परि शुत्र(१२)" इति। हे 'मीहुष्टम' (श्रतिश्रयेन कामाभिवर्षक), 'या' 'ते' 'हेतिः' (तव सम्बन्धि खद्वादिक्पं यदायुधं), यदिप तव 'इस्ते' 'धनुः' 'बस्रव'। 'श्रयस्त्रया' (श्रनुपद्रवकारिक्षा) 'तया' हेत्या तथाविधेन धनुषा च 'लम्' 'श्रसान्' 'विश्वतः' 'परि शुत्र' (सर्वतः परिपास्त्रय)।

श्रय चतुर्वशीमाइ,—"नमसे श्रस्तायुधायानातताय धृषावे। डभाग्याम्, जत ते नमेा बाइभ्यां तव धन्वने (१४)" इति। हे इद्र, 'ते' (लदीयाय) 'त्रायुधाय' (बाणक्पाय) 'नमः' 'श्रस्त'। की दृशाय श्रायुधाय ?—'श्रनातताय' (धनुषि सन्धानाभावादनपसारिताय), 'धृष्णवे' (लक्ष्पेण प्रहर्त्तुं प्रगस्भाय)। किञ्च 'ते' (लदीयाभ्याम्) 'जभाभ्यां' 'वाइभ्यां' 'नमः' श्रस्तु। तथा 'तव' (लदीयाय) 'धम्बने' 'नमः' श्रस्तु।

श्रय पश्चदश्रीमाइ,—"परि ते धन्यने। हेतिरस्नान् दृणमु विश्वतः। श्रयो य र्षुधिस्वारे श्रस्नक्ति धेहि तम्^(१६)" रति। हे स्ट्र, 'ते' (तदीयस) 'भन्ननः' 'हेतिः' वाषत्रसम्पा 'त्रसान्' 'वित्रतः' (स्र्वतः) 'परि हण्कु' (वर्जितान् करातु) मा वाधतामित्वर्थः । 'त्रको' (त्रपि च) 'यः' 'तव' 'इबुधिः' 'त्रसाद्' 'कारे' (त्रसाना दूरे) 'नि'-'धेदि' (स्रापय)॥

द्ति सायनाचार्यविरचिते माधवीये वैदार्थप्रकामे रूप्णयजुः-संहिताभाय्ये चतुर्थकाण्डे पञ्चमप्रपाठके प्रथमाऽनुवाकः ॥ • ॥

नम्। हिर्र ख्याहवे सेनान्यं दिशाष्ट्र पर्तये नमः (१)
नमें दृक्षेभ्या हिर्मिश्रेभ्यः पश्चनां पर्तये नमः (१) नमें।
स्रिष्ट्र राय त्विधीमते पर्यानां पर्तये नमः (१) नमें।
स्रिष्ट्र राय त्विधीमते पर्यानां पर्तये नमः (१) नमें। हिर्दिन्
केशायापवीतिने पृष्टानां पर्तये नमः (१) नमें। भ्वस्ये
हृत्ये जगेतां पर्तये नमः (१) नमें। क्ट्रायातताविने
स्रेचाणां पर्तये नमः (१) नमें। क्ट्रायातताविने
स्रेचाणां पर्तये नमः (१) नमें। स्त्रायाह्र न्याय वनानां
पर्तये नमः (१) नमें। मन्त्रिणे वाण्डिं याय स्त्रपत्रये दृक्षाणां पर्तये
नमः (१) नमें। मन्त्रणे वाण्डिं याय स्त्रायाद्र वनां पर्तये
नमः (१) नमें। सुवंतये वारिवत्कृतायाद्रीषधीनां पर्तये
नमः (१) नमें। उच्चेभीषायाक्र न्द्रयेते पत्तीनां पर्तये
नमः (१) नमें। स्रक्ष्योताय धार्यते सत्वनां पर्तये
नमः (१) नमें। सर्वाताय धार्यते सत्वनां पर्तये

वनीनां पर्तये नमा नमः। एकाकिष्रश्रेष ॥ २॥ द्रित तैतिरीयसंहितायां चतुर्यकाएडे पञ्चमप्रपाठके दितीयाऽनुवाकः॥०॥

प्रथमेऽनुवाके भगवता रहस्य या प्रधानभूता तनुः, तां वज्रधाः यसाच तन्छ चे जीलाविशका जगिर्वाक्रेनवः तेऽष्टभिरनुवाकैः प्रसाद्यन्ते। तेषु चानुवानेषु सर्वाष्यपि यजूषिः, तानि 🖣 दिविधानि,— चभयता नमस्काराणि चन्यतरता नमस्काराणि च। तच चिषु श्रमुवानेषु वमस्कारादिकं नमस्कारान्तकम् एकैकं वजुः ; रतरेषु पद्मपु अनुवानेषु नमस्कारादिकम् एकैकं वजुः। तत्र दितीवेऽनुवाके प्रथमं यजुराष,—"नमा हिरप्शवाहवे खेनान्ये दित्राध्व पतचे नमः(१) इति। हिरखनिर्मितानि चाभरचानि नाक्नीः यद्यामी हिरखनाजः। र्ज्यामेषु चेनां नयतीति सेनावी । ताकृत्रमूर्त्तिधारी चे बद्रः तसी 'नमः' ऋसु । यस 'दिश्चां' यासका बद्धः तसी 'स' 'नमः' ऋसु । अब कितीयं चनुराइ,—"नमा छत्तेभ्या इरिकेन्नेभ्यः पग्नुतां षतचे वनः^(१)" दति । दरितवर्णाः केन्ना येषां द्वाणां, ते दरिकेन्नाः,

तार्क्केको दृष्टेको बद्रमूर्त्तिधारिन्यः 'नमः' ऋतु । यो बद्रः 'पग्रूनां' पासकः, तसी 'नमः' श्रस्तु ।

श्रव इतीयं वजुराइ,—"नमः बस्पिक्कराच निवीमते मधीनां पतचे नमः(र)" इति । वरिम्बर्श्वदेः वासदण्याची । पीतरक्रवद्वीर्फ-काची विभिन्नरः, वासक्तक्रक् क्रिन्नरः स्टिक्नरः। स च निविधान्^ह

^{*} लिबीमते इति पाठे। भवितुं बुक्कः 🗗

दीप्तिमान्। तथाविधदहमूर्त्तये 'नमः' चतु । 'पयीनां' (प्राच्नोन्स-दिक्कोत्तरहतीयमार्गाणां) पतिः (पासको) यो दृद्रः, तसी 'नमः' चतु ।

श्रथ चतुर्थं यजुराइ,—''नमें। वभुश्राय विद्याधिनेऽस्नानां पतये नमः''' इति। विभक्तिं च्रुमिति वभुष्टंषभः, स एव वभ्युः, तस्मिन् क्रेते तिष्ठतीति वभ्युशः, स च विदेषिणा विक्रेषेण विध्वतीति विद्याधी। तथाविधाय 'नमः' श्रस्तु । यस 'श्रम्नानां' पासका च्रुः, तसी 'नमः' श्रस्तु ।

श्रय पश्चमं यजुराइ,—''नमें। इरिकेश्वायोपवीतिने पृष्टानां पत्तवे नमः(१)'' इति । नीसासकमूर्द्धजटाय, पिस्तरिहताय, 'उपवीतिने' (मङ्गसार्थयश्चोपवीतधारिणे) रद्भाय 'नमः' श्रस्त । 'पृष्टानां' (परिपूर्णगुणानां पुरुषाणां) 'पत्रये' (स्वामिने) 'नमः' श्रस्त ।

श्रय वहं यजुराइ,—"नमा भवस्य हेत्ये जगतां पतये नमः^(६)" इति। भवः संसारः, तस्य हेतिरायुधं। संसारक्केचे सद्राय 'नमः' श्रस्तु। 'जगतां' यः पासका सद्रः, तसी 'नमः' श्रस्तु।

श्रय सप्तमं यजुराइ,—"नमा इद्रायातताविने चेत्राणां पतये नमः^(०)" इति । श्राततेन विसारितेन धनुषा श्रवति रचतीत्याततावी, तसी इद्राय 'नमः' श्रस्त । 'चेत्राणां' पासको यो इद्रः, तसी 'नमः' श्रस्त ।

त्रयाष्टमं यजुराइ,—"नमः स्नतायाइन्याय वनानां पतये नमः(क)" इति । स्नतः सार्याः । त्रहन्यो वैरिभिईन्तुमत्रकाः । तादृत्राय इद्राय 'नमः' त्रस्तु । यः 'वनानां' पासकः, तादृत्राय इद्राय 'नमः' त्रस्तु ।

श्रथ नवमं यजुराइ,—"नना रेाहिताय खपतये दृशाणां पतथे नमः^(८)" इति। रेाहिता खेाहितवर्षः। खपतिः प्रशुः, तसी दृहादः 'नमः' श्रद्ध। 'दृशाणां' यः पालकः, तसी 'नमः' श्रद्ध।

श्रय दश्रमं यजुराइ,—"नमें। मन्त्रिक वाणिजाय कदाकां पति । नाजसभायां मन्त्राक्षीत्रनचतुरे। मन्त्री, स च विष्यां खामिलेन वाणिजः, तसी स्ट्राय 'नमः' श्रस्त । वनगता गुल्यादयः कद्याः, तेषां पासकाय 'नमः' श्रस्त ।

श्रयेकादश्रं यजुराइ,—''नमें। भुवन्तये वारिक्कृतायौषधीनां पतये नमः'(११)" द्दति । भुवं तने।तीति भुवन्तिः । 'वरिवः' (धनं) तस्य कर्ना वरिक्कृत्, स एव वारिक्कृतः, तसी सद्राय 'नमः' श्रस्तु । 'श्रोषधीनां' ग्रान्यारस्थानां पासकाय 'नमः' श्रस्तु ।

श्रथ दादशं यजुराइ,—"नम उचैं घोषायाक्रन्द्यते पत्तीनां पतथे नमः(११)" दृति। युद्धकाखे उच्छितो घोषो ध्वनिर्यस्य श्रमा उचै-चाषः, श्राक्रन्द्यम् वैरिणां रेदियता; तसी रद्राय 'नमः' श्रस्तु। 'पत्तीनां' (पादचारिणा योधाः पत्तिश्रन्दवाच्याः, तेषां) पासकाव 'नमः' श्रस्तु।

श्रय त्रयोदश्रमाइ,—"नमः इत्स्वतीताय धावते सलनां पत्रये नमः^(१९)" इति । इत्स्वं सैन्यं वीतं वेष्टितं येनासौ इत्स्वतीतः, 'धावते' (पत्तायमानानां परकीयसैन्यानां प्रष्टता मच्छन् धावन् तस्मै)ः सलनः पासकाः, तेषां पासकाय 'नमः' श्रस्त ।

र्ति सायनाचार्यंविर्चिते माध्वीये वेदार्थप्रकाणे क्रम्मयमु:-संस्ति।भायो चतुर्थकाच्छे पञ्चमप्रपाठके दिनीयोऽनुवाकः॥०॥ नमः सर्थमानाय निष्प्रधिनं आखाधिनीनां पर्तश्चे नमः (१) नमः ककुभायं निष्क्रिसे स्तेनानां पर्तश्चे नमः (१) नमः । निष्क्रिसे द्षुधिमते तस्तरासां पर्तश्चे नमः (१) नमे। वर्षते परिवर्षते स्तायूनां पर्तश्चे नमः (१) नमें। निष्देषे परिष्रायार स्थानां पर्तश्चे नमः (१) नमें। स्वाविभ्या जिषा सह्यो मुख्यतां पर्तश्चे नमः (१) नमें। ऽसिमद्यो नक्तृष्वरद्याः प्रकृत्तानां पर्तश्चे नमः (१) नमें। उष्णीिष्ये गिरिष्रायं कुखुष्वानां पर्तश्चे नमें। (१) नमः ॥ १॥

द्र्षुमज्ञी धन्नाविश्येष वो नमः (१) नमं श्वातन्ता-नेश्यः प्रतिद्धानेश्येष्ठ वो नमः (१) नमं श्वा यच्द्रं ज्ञो वि सृजज्ञांष्ठ वो नमः (११) नने।ऽस्यं ज्ञो विश्वं ज्ञाय वो नमः (११) नमो श्वासीनेश्यः श्रयानिश्येष्ठ वो नमो नमः स्वपद्भी जायं ग्रय वो नमो नम् स्तिष्ठं ज्ञो धार्वं ज्ञाय वो नमो नमः सुभाश्यः सुभाषतिश्येष्ठ वो नमो नमो श्रयोश्योऽश्वंपतिश्यः, द वो नमः (११-१०) ॥ २॥

कुखुचानां पर्तये नमो नमः। श्रश्नंपतिभ्यः। चीर्णि स ॥ ३ ॥

इति तैत्तिरीयसंहितायां चतुर्यकार् पञ्चमप्रपाठके हतीयोऽनुवाकः ॥०॥ दितीयेऽनुवाने उभवतानमस्काराणि कानिचिद् चन्नृषि उक्कानि।
प्राथापराणि तथाविधान्येव हतीये प्रस्पष्टार्थानि दादम, स्पष्टार्थानि
पञ्च कानिचिद् चन्ने। तम प्रथमं चनुराइ,—''नमः सहमानाय निव्याधिन प्राव्याधिनीनां पतये नमः'(१)'' दति। महमाना विरोधिनो प्राप्ताधिन प्राव्याधिनीनां विरोधिनो विध्यतीति निव्याधी। ताहृष्राय इद्राय 'नमः'। 'म्रा' (समन्तार्) विध्यनीति प्राव्याधिन्यः ग्रह्र्राः सेनाः, तावां पासकाय 'नमः'।

श्रव दितीयं यजुराइ,—"नसः कञ्चभास निविश्वासे स्तेनानां पति नमः दितीयं यजुराइ,—"नसः कञ्चभास प्रधानभूतायेत्वर्थः। निवञ्गी खड्डसः, तसी 'नमः'। 'सोनाः' गुप्तचेत्तः तेषां पासकाय 'नमः'। दहो हि सीखया नट इव तत्तदेशं धत्ते। यदा तस्त वर्वजनदात्मकलात् ये यच यया वर्त्तन्ते, तेषु तच इद्र एव तत्तद्वृपेष वर्त्तन्ते दित इद्रस्त सावात्ममनुषन्धातं मन्तेरेवसुच्यते। सोनादि- वर्तरेषु दहो देशा वर्त्तन्ते †, जीवक्षपेणेश्वरक्षपेष च, तच यज्ञीवक्षपं तत् सोनादिक्षदानां वाच्योऽर्थः, स एव वास्त्रेषु निन्दः, यत्तु ईत्यर- क्ष्यं तत्तु सोनादिक्षद्वेदपक्षस्त्रते, तदनुषम्भानम्, पापचयहेतुलेन परमपुद्यार्थं इति, सद्यार्थंविवषया मन्त्रेषु सौक्ताः ब्रद्धाः प्रयुक्षको इति द्रष्ट्यं। खपस्तकवाच्यार्थदारेण सद्यार्थां सुग्री- रिप सहसा सम्यक् नेद्धः प्रकात, यथा बाखाये चन्द्र इत्यन ।

^{* &#}x27;बास्य टार्थानि दादम, स्पर्टार्थानि पच' हति पाठः कचित् नास्ति।

[†] बर्जते हति याढी भवितुं युक्तः।

तसासच्यार्थसेव विवसायामपि सुसावने।धदारलेन सुस्यार्थवास्काः अन्दाः प्रयोक्तस्याः ।

त्राध हतीयं यजुराइ,—"नसी निषक्तिष इषुधिमते तस्कराणां वतये नमः^(६)" इति । धनुषि सन्धातुं इसी धतो वाणो निषक्तः, इष्ठे बद्धो वाणाधार इषुधिः, तदुभययुकाय 'नमः'। तस्कराः प्रकाषचीराः, तेषां पासकाय 'नमः'।

त्रथ चतुर्थं यजुराइ,—"नमा वद्यते परिवद्यते सायूनां पतये नमः(")" इति । स्नामिन त्राप्ते। भूला तदीयक्रयविक्रयादिव्यवहारेषु यन- कापि यिक्तिसिट्ट्यापक्रवे। वद्यनं, सर्वेस्वपि व्यवहारेषु त्रपक्रवः परिवद्यनं, तदुभयस्पाय नमः' । गुप्तचारा दिविधाः,— दूरादागत्य रात्रावद्याताः सनाः कपाटासुद्वाटनेन ये द्रव्यापद्यत्तारसे सोनाः, स्नकीया एवस्भूता रात्री त्रदिन वा त्रव्येरद्याताः सन्ते।ऽप-दर्तारो ये ते सायवः, तेषां पासकाय नमः' ।

त्रय पश्चमं यजुराइ,—"नमो निचेरवे परिचरायारकानां पतसे नमः(१)" इति । स्वामिन्टइ एव कदा त्रपहरिखामीत्यनया बुद्धाः यावधाना निरम्तरं चरणत्रीसा निचेदः, परित त्रापणविधी-प्रवाटिकादी त्रपहारेक्ट्या चरणत्रीसः परिचरः, तदुभयक्ष्पाय 'नमः'। मार्गे गम्बून् द्रयापहारेण वाधित्रम् त्ररक्षे वर्त्तमानास्रोरा त्रारकाः, तेषां पासकाय 'नमः'।

श्रय वहं यजुराइ,—"नमः स्काविभ्ये जिघाश्यद्वी सुक्तां पत्रये नमः^(१)" इति । स्क्षन्दे वज्जवाची तेन स्वश्रीरं स्वन्ति रक्नीति स्काविनः, प्राणिने इन्नुमिक्क्नस्रोरा जिघांसनः, तदुभयक्षाय 'नमः'। क्रविकाः यन्ते। खामिधान्यापक्र्यारी सुष्यन्तः, तेवां पासकाय 'नमः'।

श्रथ सप्तमं यजुराइ,—"नने। धिमङ्गो नकं चरङ्गाः प्रक्रमानां पतथे नमः()" इति । श्रसिमनाः खङ्गधारिणः, ये राशौ चरको। वीव्यां निर्गतान् प्राणिने। वाधमानाञ्चोराः ते नकं चरकाः, तदुभयद्भपाय 'नमः', इत्वैवापइरकाः प्रक्रकाः, तेषां पासकाय 'नमः'।

श्रयाष्टमं यजुराइ,—"नम उच्छीविणे गिरिचराय खुनुञ्चानां पतये नमः(म)" इति । त्रिरोवेष्टनवान् उच्छीवी, ग्राम्यजनवद् उच्छीवेण त्रिरो वेष्टियला तन्मध्ये प्रविद्य वर्त्तमानस्रोर उच्छीवी, गिरौ काष्टादिसम्पादकानां वच्छादिकमपद्दीं चरतीति गिरिचरः, तदुभयक्षपाय 'नमः'। 'तुं' (भूमिं ग्रइचेचादिक्ष्पां) बुञ्चिन्त (श्रप-इरमीति) कुलुञ्चाः, तेषां पालकाय 'नमः'।

श्रथ नवमं यजुराइ,—"नम द्रष्टुमङ्गो धन्वाविभ्यस्य वे। नमः(८)" दति । भीषयितं इस्ते वाणधारिण द्रष्टुमन्तः, तथा, भीषयितं इस्ते धनुधारिणो धन्वाविनः, तदुभयक्ष्पा हे इद्राः, वः' (युश्वभ्यं) 'नमः' दति विशेषणद्येन वाकां भेनुं दिर्नमस्कारः ।

श्रथ दश्चमं यजुराइ,—"नम श्रातन्वानेभ्यः प्रतिद्धानेभ्यस्य वे। नमः(१०)" इति । धनुषि ज्यामारोपयन्त श्रातन्वानाः, तद्रूपेभ्ये। युग्नभ्यं इद्रेभ्यः 'नमः' । धनुषि वाणं धन्द्धानाः, तद्रूपेभ्ये। युग्नभ्यं 'नमः' ।

त्रधैकादमं यजुराइ,—"नम त्रायक्त्र्ह्यो विस्त्रज्ञस वेर

नमः^(११)" र्रति । ज्यानर्वणं सुर्वना ग्रायक्षमः । वाणं सुञ्चनोः विद्यजनः । त्रेषं पूर्ववर्याखोयम् ।

चय दादमं यजुराइ,—"नमे। उद्यक्ती विध्यक्षय वा नमः(१९)" दति। सुक्रस्य वाचस्य चट्टापर्थनं गमनं चसनं, तस्य कर्जारे। प्रस्ननः। चट्टायमीपं नतस्य वास्त्य सद्ये प्रवेती वेधः, तस्य कर्जारे। विधनाः।

श्रय त्रयोदश्रयजुरादि—सप्तद्रश्रयजुःपर्यम्तानि स्पष्टार्थास्यादः,—
"नम श्रामीनेभ्यः श्रयानेभ्यस्र वे ननो(११) नमः स्वयद्भी जायद्भयः
वे। ननो(१४) नमस्तिष्ठद्भी धावद्भयः वे। ननो(१६) नमः सभाभ्यः
सभापतिभ्यस्र वे। ननो(१९) नने। श्रयेभ्ये।ऽत्रपतिभ्यस्य वे। ननः(१०)»
इति॥

द्दति साचनाचार्य्यविर्चिते माधवीये वेदार्घप्रकामे छष्णयजुः-संहिताभास्ये चतुर्घकाण्डे पञ्चमप्रपाठके हतीयोऽनुवाकः॥०॥

नमं श्राव्याधिनीभ्या विविध्यंन्तीभ्यश्च वो नमः(१) नम उर्गणभ्यस्तृ १ इतीभ्यंश्व वो नमः(१) नमा एत्सेभ्या पृत्सपतिभ्यश्च वो नमः(१) नमो बातेभ्यो बातंपतिभ्यश्च वो नमः(१) नमा गुणेभ्या गुणपतिभ्यश्च वो नमः(१) नमो विरूपेभ्या विश्वरूपेभ्यश्च वो नमः(१) नमा मुद्रक्याः शुक्कवेश्येष वी नमः() नमी रुषिश्याऽरुषेश्येष वो नमः(^{६)} नमो रचेभ्यः॥१॥

रयंपतिभ्यस यो नमो नमः सेनीभ्यः सेनानिभ्यंस वो नमो नमः स्रहर्भः संग्रहीहर्भ्यं वो नमो नम्-स्तर्धभ्या रथकारेभ्यं य वो नमो नमः कुर्लाखेभ्यः कुसीरिभ्यस वो नमो नमः पुज्जिष्टभ्यो निषादेश्यस वो नमो नमे इषुक्षक्यों धन्यक्षक्यं यो नमो नमा ह्यगुर्यः श्रुनिश्यं बो नमो नमः श्रभ्यः श्रपंतिभ्यश्व, वो नर्मः(८-१०) ॥ २ ॥

र्ष्ट्रोम्यः । ऋपंतिभ्यख् । दे चं ॥ ४ ॥

इति तैतिरीयसंहितायां चतुर्थकाग्ढे पच्चमप्रपाठके चतुर्घाऽनुवाकः ।।।

द्वतीयेऽनुवाके यानि उभयते।नमस्काराणि यर्जूषि छकानि, तेभ्योऽन्यानि कानिचिद्भवतानमस्काराणि च यर्जूषि चतुर्थेऽनिधी-यन्ते। तत्र प्रथमं यजुराइ,—"नम श्राव्याधिनीभ्या विविधनतीभ्यव वे। नमः (१)"। 'त्रा' (समनात्) वेहुं त्रका स्त्रीमूर्तय त्रा-वाधिन्यः, विश्वेषेष बेहुं श्रक्या विविधनयः, ताभ्यः 'नमः' । त्रय दितीयं यजुराइ,—''नम जगणाभ्यसृष्ट्रहतीभ्यस्य वेा नमः^(९)"

Digitized by Google

द्ति । जल्लष्टा गवक्षाः सप्तमाष्टकाचा व्यिय जगवाः, हिंसितं समर्था दुर्गाचा जयदेवताः द्वंद्रयः ताभाः 'नमः'।

श्रथ हतीयं समुराइ,—"नमा ग्रह्मेभो ग्रह्मपतिभ्यय वे। नमः^(२)" इति । गर्धनत्रीसा ग्रह्माः, विषयसम्पटा इत्यर्थः, तेषां पासका ग्रह्मपतयः, तेभ्यः 'नमः'।

श्रय चतुर्थं चनुराइ,—"नमी त्रातेभ्या त्रातपतिभ्यस्य वे। नमः(४)" इति । नानाजातीयानां संघाता त्राताः, तेषां पासका त्रातपतयः, तेभ्यः 'नमः'।

श्रथ पद्ममं यजुराइ,—"नमी नकेशी नक्षपतिभ्यस्य वे। नमः(१)" इति । देवसानुचरा अतिविशेषा नक्षाः, तेषां पासका नक्षपतयः, तेभ्यः 'नमः'।

श्रय षष्ठं यजुराइ,—"नमा विक्रियेशो विश्वक्रियस वेर नमः^(९)" इति । विक्रा विक्रतक्रा नग्नसुष्डादयः, विश्वक्राः तुरङ्गनजवन्नादिनानाविधक्रपधारिणो स्रत्याः, तेभ्यः 'नमः' ।

त्रय सप्तमं यनुराइ,—"नमी मह्न्यः सुक्षकेश्यय वा नमः(०)" इति । त्रिष्मादीयर्थीपेता महानाः, तद्रहिताः सुक्षकाः, तेश्यः 'नमः' ।

श्रयाष्टमं यजुरार,—"नमा रियम्धे। उर्थभ्यस्य वे। नमः (^{८)}। इति । रथमारूड़ा रियनः, तद्रहिता श्ररथाः, तेभ्यः 'नसः' ।

त्रय नवसमारभ्य सप्तद्वपर्यंग्नानि यजूंवि खष्टार्थानि यजूंवि चार, — "नने। रयेभ्या रथपतिभ्यय वे। नने। (८) नम: वेनाभ्यः

^{*} चत्र यम्यि इत्वेकाऽधिक इव प्रतिभाति।

चेनानिश्यस्य वे। नकी(११) नमः सद्धश्यः सङ्ग्राहीद्वश्यस्य वे। नकी(११) नमः सुम्माहिश्यस्य वे। नकी(११) नमः सुम्माहिश्यस्य वे। नकी(११) नमः पुष्तिद्विश्यस्य वे। नकी(११) नमः पुष्तिद्विश्यस्य वे। नकी(११) नमः पुष्तिद्विश्यस्य वे। नकी(११) नमः स्वाह्यस्य वे। नकी(११) नमः स्वश्यः स्वाह्यस्य वे। नकी(११) नमः स्वश्यः स्वाह्यस्य वे। नकी(११) नमः स्वश्यः स्वाह्यस्य वे। नमः(१०) रति। पण्तिपुष्त्रानां घातकाः पुष्तिद्याः। मत्यस्यातिने। निवादाः। ग्राह्यनं गलेषु बद्धानां पात्रानां स्वाह्यस्यः स्वन्यः।

श्रव दितीयानुवाको खीलार्थदेवतासूर्त्तिप्राधास्त्रेन खोतुं प्रहत्तः । स्तर्थे (उनुवाके स्तिप्राधान्येन स्रोतुं प्रहत्तः । चतुर्थे (उनुवाके स्तिप्राधान्येनेति विभागे द्रष्ट्यः ॥

इति यायनाचार्यविर्विते माध्वीये वेदार्थप्रकामे सम्बयनुः-यंदिताभाखे चतुर्यकाच्छे पञ्चमप्रपाठके चतुर्थेरऽनुवाकः ॥०॥

नमें। भ्वायं च बृद्रायं च नमें श्र्वायं च पश्रुपत्ये च नमें। नीलंगीवाय च शित्विक्कांय च नमें कप्-हिने च ब्रुं तकेशाय च नमें। सहसाक्षायं च श्रुत-धंन्वने च नमें। गिर्शायं च शिपिविष्टायं च नमें। मीदुर्षमाय चेषुंमते च नमें। श्रुखायं च वामनायं च नमें। सेहते च वर्षीयसे च नमें। स्वायं च संब्रधंने च ॥ १ ॥ नमो अप्रियाय च प्रयमार्थ च नमं आग्रवे चा-जिराय च नमः शीर्षियाय च शीर्भ्याय च नमं जर्मीय चावख्न्याय च नमः स्रोतस्थाय च दीर्घाय च(१-११) ॥ २॥

संदर्धने चु। पचिवश्यतिस् ॥ ५ ॥

रति तैत्तिरीयसंदितायां चतुर्धकाएडे पच्चमप्रपाठके पच्चमाऽनुवाकः ॥ ० ॥

पद्ममारभ्य नवमाने व्यन्ताने प्रमुख समापितानि ; श्रथ पद्ममारभ्य नवमाने व्यन्ताने प्रमुख गमस्कारी पद्ममास्थेव यन्त्रि श्राचाने । तम पद्ममानुवाने प्रथमं यनुरारभ्य पद्मद्मानानि यन्त्रि श्राच,—"नमा भवाय च बद्राय च^(१) नमः प्रवीय च पद्मपत्ये च^(१) नमः वर्षाय च पद्मपत्ये च^(१) नमः नमः नपर्दिने च स्त्रुपते श्राय च^(१) नमः सद्माचाय च प्रतिकण्डाय च^(१) नमः कपर्दिने च स्त्रुपते श्राय च प्रतिकण्डाय च^(१) नमे। गिरिष्राय च प्रिपिविष्टाय च^(१) नमे। गिरिष्राय च प्रिपिविष्टाय च^(१) नमे। मिरुष्टमाय चेषुमते च^(१) नमो द्रस्या च सम्माय च^(१) नमे। द्रस्य च संद्र्यने च^(१) नमः प्रीप्रियाय च प्रथमाय च^(१) नम प्राप्रवे चाजिराय च^(१) नमः प्रीप्रियाय च प्रथमाय च^(१) नम जर्म्याय चावस्वन्याय च^(१) नमः स्रोतस्थाय च दीप्याय च^(१) नम जर्म्याय चावस्वन्याय च^(१) नमः स्रोतस्थाय च दीप्याय च^(१) दिन । भवन्ति प्राणिनेऽस्थादिति भवः। स्द्रो,—रोदमहेतुभ्दतं दुःसं द्रावयतीति बदः। प्रप्रोति दिनस्ति पापमिति प्रवे:। प्रप्रद

समानान् ऋद्यानिनः पुरुषान् पाखयतीति पद्मः पतिः। कासकूट-भारकेन नीलवर्की योजैकदेशे बखायौ नीलयीव:। ब्रिति: स्रोतवर्णाविष्ठष्टः कष्टप्रदेष्रो यसासौ वितिकष्टः। कपर्दे। जटाजुटी यखासीति कपर्ही । सुण्डितनेको युप्तनेकः । पार्द्धपतादिवेषेण कपर्दिलं, यत्यादिवेषेण सुच्डितकेत्रलं। दुन्द्रवेषेण सइस्राचलं। यहस्तभुजावतारेण अतमञ्जाकधेनुभिरुपेतलं। गिरौ कैलाचे अते बिष्ठतीति गिरिष्ठः । विष्णुमूर्त्तिधारी श्रिपिविष्टः, 'विष्णुः श्रिपिविष्टः' इति श्रुतेः । मेघक्पेणात्मनं वर्षेयिता मीढुष्टमः । वाणधारक द्रषुमान् । प्ररीरेऽन्यप्रमाणलं इस्वलं । श्रृङ्गस्थायवयवसङ्गोत्राद् वामनलम्। श्राकारेण प्रौढ़े। ष्टरत्। मुणैः सम्दक्की वर्षीयाम्। वयसाऽधिका छद्धः। सम्यक् स्तृतिभिर्वर्धितः संष्टध्वा। जगदुत्पत्तेः पूर्वमविखताऽचियः। सभायां सुख्यः प्रथमः। श्राद्धः र्थापी। श्रकिरो गमनकुत्रलः। ग्रीचियः ग्रीप्रगामी । ग्रीभग्रन्द खदकप्रवाद्याची, तच त्रविखतः श्रीभ्यः । ऊर्मेसरङ्गेः स्थित ऊर्म्यः । त्रवस्रमे (ध्वनिरहिते) खिरजलेऽवस्थिताऽवखन्यः । स्रोतिस (प्रवाहे) खितः स्रोतस्यः । दीपे वारिमध्वित्तिभूमी स्विता दीयः। अनैकैकसिन् यजुषि चतुर्धनाभ्यां पदान्यां नमः ऋदं प्रथमन्त्रेतुं ससुचयार्थं चकारौ पढितौ ॥

दित सायनाचार्य्यविरचिते माधवीये वेदार्थप्रकाणे कृष्ण्यजुः-ं संहिताभाष्ये चतुर्थकाण्डे पञ्चमप्रपाठके पञ्चमाऽनुवाकः ॥ •॥ नमें खेषायं च किन्छायं च नमेः पूर्वेजायं चा-पर्जायं च नमें मध्यमायं चापगृत्थायं च नमें जब्न्याय च बुधियाय च नमः सेग्रेथाय च प्रति-सूर्यायं च नमें याग्याय च क्षेग्याय च नमें उर्वेथाय च बन्धाय च नमः स्नोक्याय चावसान्याय च नमें। वन्धाय च कक्षाय च नमः अवायं च प्रतिश्रवायं च, नमे खाश्रवेणाय चाश्ररंथाय च नमः श्ररीय चाव-भिन्दते च नमें। वृभिणे च वक्षिने च नमें। विल्यिने च कव्यिने च नमें। श्रुतायं च श्रुतसेनायं च (१-११) ॥ ॥ १॥

प्रतिञ्जवायं चु। पर्चविश्यतिश्व॥६॥

द्रति तैत्तिरीयसंहितायां चतुर्थकार्ग्डे पञ्चमप्रपाठके षष्ठोऽनुवाकः ॥०॥

पञ्चमेऽनुवाने कानिचिद् श्रन्यतरते। नमस्काराणि यजूंषि जकानि।
श्रय षष्टे तथाविधान्येव कानिचिद् यजूंषि उच्चन्ते। तन विद्यमानानि
पञ्चदत्र यजूंषि श्राइ,—''नमे। ज्येष्ठाय च किनष्ठाय च^(१) नमः पूर्वजाय
चापरजाय च^(१) नमे। मध्यमाय चापगल्याय च^(१) नमे। जघन्याय
च बुधियाय च^(१) नमः चे। भ्याय च प्रतिसर्याय च^(१) नमे। चान्याय
च चेन्याय च^(१) नम जुर्वर्याय च खुखाय च^(९) नमः क्रोक्याय

चावसान्याच च^(६) मना बन्याय च बन्धाय च^(८) ममः श्रवाय च अतिअवाच च^(१•) नम चार्रावेणाय चार्रार्याय च^(११) नमः ब्रुराय चावभिन्दते च^(१२) नमे। वर्मिणे च वक्षिने च^(१२) नना निस्तिने च कवचिने च^(९४) नमः श्रुताय श्रुतचेनाच प्र^(१६)" इति । विद्यमुर्थादिभिर्धिका व्येष्टः । तैः रहिता प्रकाः कनिष्ठः । पूर्वं (जगदादौ) हिरस्यमर्भरूपेणात्पद्यः पूर्व्वजः । श्रपरिक्षन् (जगदवसानकाले) संहर्तुः काखान्यादिरूपेणोत्पन्नोऽपरजः। मध्यकाले देवतिर्थगादिक्षेणोत्पन्ना मध्यमः । त्रपगन्ती प्रौढे-न्त्रियो वाल: । जघने (गवादीनां पञ्चाद्वामे) वसादिरूपेण भवा जघन्यः । बुध्ने (द्रजादीनां मूले) ग्राखादिक्षेणेत्यक्री बुध्नियः । जभाश्यां पुष्यपापाश्यां सद वर्शत इति वेश्यो मनुष्यलेकः। त्रत एव श्रायर्विषका श्रामनिन, 'पुष्टेन पुष्टं लोकं नयति पापेन पाप-सुभाभ्यामेव मनुष्यलेकम्' इति । तत्र भवः साभ्यः। प्रतिसरी विवाहादौ इस्ते धार्यमाणा रज्ञाबन्धः, तमर्हतीति प्रतिसर्यः । यम-लोके पापिश्रिचकरूपेण 'भवा याम्यः। चेना नाचः, तमईतीति चैम्यः । उर्वरा सर्वसस्याद्या भूमिः, तामर्छति धान्यविशेषक्षेपेणेति र्जवर्यः । खला धान्यविवेचनदेशः, तमर्रुति मेळ्यादिरूपेणेति खन्यः । स्रोका वैदिकमन्त्राः, तत्प्रतिपाद्यत्वेन तत्र भवः स्रोक्यः। श्रवसानं वेदान्तः । तत्प्रतिपाद्यत्वेन तत्र भवे। उवसान्यः । वने वृज्ञादिक्षेप भवा वन्यः। कत्ते सतादिक्षेण भवः कत्त्यः। श्रूयत दति श्रवः-

^{*} संदिवायां विख्यिने इति याठः।

[†] अत्र सेाभ इति पाठी भवितुं युक्तः।

[‡] खबसागवेदाना इति सर्वत्र माठो न सन्यव्।

ब्रन्दः, प्रतिश्रवः प्रतिश्वनिः। बाद्धः बीचवासिनी चेना यक्षासी बाद्धवेणः। बीचनामी रथो यस्तासावाद्धरयः। द्वद्दो युद्धे धेर्य-वान्। श्रवभिन्दन् वैरिक्षं प्रचर्ता। वर्मी कञ्चने।पेतः। वर्ष्य्यी स्टोपेतः। विक्षां विकापितं युद्धे बिरोरचकं, तदस्तासीति विक्सी। कवषः बरीररचकः, चेऽस्तासीति कवची। श्रुता वेदेषु प्रसिद्धः। श्रुतौ वेदेषु प्रसिद्धा चेना यस्त सः श्रुतचेनः॥

इति सायनाचार्य्यविरचिते माधवीये वेदार्यप्रकाचे क्रव्ययजुः-संहिताभाष्ये चतुर्यकाप्डे पञ्चमप्रपाठके वहोऽनुवाकः ॥ •॥

नमें दुन्दुश्रीय चाइन्न्यीय च नमें धृष्णें च प्रमृशार्य च नमें दतार्य च प्रहिताय च नमें निष्किणें चेषुधिमते च नमेस्तीक्ष्णेषेवे चायुधिने च नमेः स्वायुधार्य च सुधन्वेने च नमः सुत्याय च पर्याय च नमेः कार्याय च नीष्याय च नमः सुद्याय च सर्स्याय च नमें। नाद्यार्य च वैश्वन्तार्य च ॥ १॥

नमः क्राप्याय चाव्याय च नम्। वर्ष्याय चाव्र्ष्याय च नमा मेष्ट्राय च विद्युत्याय च नमे र्रक्षियाय चात्र्प्याय च नमे। वार्त्याय च रेष्प्रियाय च नमे। वास्त्र्ष्याय च वास्तुपार्य च (१-१४) ॥ २ ॥

^{*} यसाः स इति सर्वेष गाठी न सन्यन्।

बैशुक्तायं च। बिश्श्य ॥ ७॥

्र इति तैत्तिरीयसंहितायां चतुर्थकार्ग्ड पच्चमप्रपाठके सप्तमाऽनुवाकः ॥०॥

वष्ठे अनुवाके यानि ऋन्यतरते। नमस्काराणि यर्जूषि उक्तानि, तेभ्याऽन्यानि कानिचित् सप्तमेऽभिधीयन्ते । तत्र विद्यमानानि वे। इत्र क्कूंबार,--"नमा दुन्दुभ्याय चारमन्याय च^(१) नमा धृष्णवे च प्रस्टकाय च^(२) नमा दूताय च प्रहिताय च^(२) नमी निषक्तिणे चेषुधिमते च^(४) नमसी ऋषेववे चायुधिने च^(५) नमः खायुधाय च धन्वने च^(∢) नमः सुत्याय च पर्याय च^(०) नमः काद्याय च नीप्याय च^(८) नमः स्रद्याय च सरस्याय च^(८) नमेा नाद्याय च वैत्रन्ताय च^(९०) नमः कूषाय चावद्याय च^(१९) नमेा वर्थाय चावर्थाय च^(१२) नमेा मेघाय च विद्युत्याय च^(१२) नम **ई**प्रियाय चातषाय च^(१४) नमेा वात्याय च रेम्नियाय च^(१५) नमेा वास्तव्याय च वास्तुपाय च^(९९)" इति। दुन्दुभौ (भेर्या) भवः प्रन्दो दुन्दुभ्यः। त्राइन्यते ताद्यतेऽनेनेत्याइननं दुन्दुभ्याघातार्थी दण्डः, तच ताड़नरूपेणात्पस मादनन्यः । धृष्णुः युद्धे पसायनरदितः । प्रस्त्रः पर्सेन्यदत्तान्तण्रामर्थकः । दूतः तद्वत्तान्तज्ञानकुत्रसः । प्रहितः खामिना प्रेषितः पुरुषः। निषङ्गी खङ्गस्यः। रुषुधिमान् वाणा-धारयुकः। तीच्ला रववे। यखामौ तीच्लेषुः। बद्धनि स्रायुधानि त्रस्य सन्तीत्यायुधी । त्रोभनमायुधं विद्रह्लक्ष्णं यसासी स्वायुधः । प्रोभनं धन्तु पिनाकरूपं यसासौ सुधन्ता। सृतिः पादसद्वारजान-वेग्यः चुद्रमार्गः, तमर्रतीति खुत्यः । पन्याः श्रश्वादिसञ्चारच्याः प्रौद्धेर मार्गः, तमईतीति पद्यः। कुत्यितमटति जसमनेति काटः, श्रन्य-प्रवाइयोग्यः कुस्थाप्रदेशः तनान्यरूपेण भवः कान्यः । यस्मिन् प्रदेशे पर्वताग्राक्तलं न्यसावेन पति च प्रदेशो नीपः, तच भवा नीपः। खदः कईमप्रदेशः, तच्या-जलक्षः खदः। सरः प्रसिद्धं, तचता-असर्पः सरसः। नदीगतजसर्पो गाद्यः। श्रन्पसरो वेश्रन्तः, तनता-जसक्यो वैश्वनः। त्रूपखजसक्यः क्रूयः। ऋतटखजसक्यो ऽवश्वः । वर्षजलक्ष्मे वर्षः । श्रवर्थः,—वर्षनिरपेक्ससुद्वादिकलक्ष्मेकः श्रवर्थः । मेघेषु स्त्रिता मेघः । विद्युता सद चरिता विद्युत्यः । र्रेप्नं निर्मेखक्पलेन दीष्यमानं बरदभं, तत्र भव रेप्नियः। श्रातपेन सइ दृष्ट त्रातपः । वातेन सइ दृष्टी वात्यः । रिव्यन्ति विनम्नन्ति भूतानि अनेति रेग्नः प्रसयकासः, तन भवः ग्रर्करापाषाणादिसहिता वृष्टिजसवित्रेषो रेमियः। वसु धर्गं (गवादिपदार्थक्पं), तत्र तत्कार्थ-क्षेणावस्तिता वास्तवः। यद्दनिर्माणार्था अमिर्वास्तः, तत्पासका वास्तुपः ॥

रित सायनाचार्यविर्वित माधवीये वेदार्घप्रकात्रे क्रज्ययजुः-वंदिताभाखे चतुर्थकाण्डे पद्ममत्रपाठके सप्तमाऽनुवाकः॥०॥

^{*} अत्र धनुः रति पाठी भवितुं युक्तः।

र प्रयादिशादिश्वम इति सर्वेत्र पाठी न सम्बद् ।

[‡] मन्तेति सर्जन पाठी व सम्बन्।

नमः सोमीय च हुद्रायं च नमेत्तावायं चाहुणायं च नमः श्रुक्तायं च पशुपतये च नमं खुशायं च भीमायं च नमें। अशेव्धायं च दूरेव्धायं च नमे। इन्हें च इनीयसे च नमें। वृक्षेभ्ये। इरिकेशेभ्ये। नमं-स्ताराय नमः श्रुभावं च मयोभवं च नमः शक्करायं च मयस्तुरायं च नमः श्रिवायं च श्रिवतंराय च ॥ १॥

नम्स्तीर्थ्याय च कुल्याय च नर्मः पार्थाय चावा-थीय च नर्मः प्रतरंखाय चात्तरंखाय च नर्म आता-थीय चालाद्याय च नमः प्रष्याय च फेन्धाय च नर्मः सिकृत्याय च प्रवाद्याय च (१-१०)॥ २॥

श्चितराय च। चि श्रम् ॥ ८॥

द्रित तैत्तिरीयसंहितायां चतुर्घकाएडे पञ्चमप्रपाठके श्रष्टमाऽनुवाकः॥ ०॥

सप्तमेऽनुवाके यानि यजूंषि श्रन्यतरते।नमस्कारानि एकानि,
तेभ्योऽन्यानि कानिचिद्न्यतरते।नमस्काराणि यजूंषि श्रष्टमे
कव्यक्ते। तत्र विद्यमानानि सप्तद्रश्र यजूंषि श्राह,—"नमः से।माथ
च हद्राय च^(१) नमसाम्राय चारुणाय च^(१) नमः श्रङ्गाय च पद्मपतये च^(१) नम उपाय च भीमाय च^(१) नमे। श्रुपेवधाय च दूरेवधाय च^(१) नमे। इन्हे च इनीयसे च^(१) नमे। दृद्धोभ्ये। इरिकेडोसी(⁰⁾ नमः ताराव⁽⁵⁾ नसः क्रभावे च नयीसवे च⁽²⁾ बसः प्रदुराय च सयस्त्रराच च^(१०) वसः क्रिवाय च क्रिवतराच च्(१९) नमसीर्थाय च कूस्त्राय च(१९) नमः पार्थाय चार्वाधस्य च(१९) नमः प्रतर्काय चेक्तरकाय च^(१४) नम श्रातार्थाय चासा-द्याय च^(१६) नमः प्रथाय च फोन्याय च^(१६) नमः सिकत्याय च प्रवाद्माय च^(१७)" इति । उमया यह वर्नंत इति चेामः। स्ट्रो रोदमञ्जूमातदुः सं द्रावयति विनाष्यतीति रदः । त्रादित्यक्षेष उद्यकालेऽह्यन्तं रक्तः तासः । उदयादूर्द्धम् ईषट्कोऽक्षः । अ सुखं गमयति प्रापयनीति अङ्गः । पश्चरतां पास्रचिता पर्यापतिः । विरोधिना नाम्रवितं क्रीधयुक्त उग्नः। दर्भनसाचेच विरोधिनां भयहेतुर्भीमः । त्रवे पुरत्ता वधाऽखेति त्रवेवधः, एवं दूरेवधः ; पुरता दूरे वा वर्णमानं विरोधिनं ऋवाधायेन इन्तीखर्थः। खोके ऽपि यच विरोधिनं इन्ति तच तद्र्पेणायमेव इन्ता; ऋत इबेम्बरेखार्जुनं प्रत्युमां,-"मर्थेवेते निइताः पूर्वेसेव निमित्तमाचं भव सञ्चाचिन्" इति । संदारकालेऽतिश्रवेन सर्वेषां दना दनीयान् । इरितवर्णानि केम्रसदृमानि वर्णानि येषां ते इरिकेमाः, तथाविधा ये द्वजाः कस्पतस्प्रस्तयः, तद्रुपाऽयं सद्र रह्यर्थः । तारः प्रणव-प्रतिपाद्यः । ग्रं (सुखं) भावयति जत्पार्यतीति प्रभुः । सयः सुखं भावयतीति मयोभू:। एकं विषयसुखम्, ऋपरं मेाचसुस्मिनि तथार्विकाः। पित्रादिक्षेष 🕏 (कीकिकसुखं) करेतिति कद्वरः। श्रवार्यक्रपेष मयो साचपुर्व करातीति मचस्त्ररः । साचात्सुय-कारिलमेताभ्यां पदाभ्यासुकां। एतम् स्वेन कार्याष्ट्रलं पूर्वाभ्यां पदाभ्यामिति विवेकः। त्रितः कस्त्राणक्यः, सर्वं निक्कालाव द्रत्यर्थः। श्रातिश्ववेग जिवः जिवतरः, साभकान् श्रापि निष्कासायाम् करे।ती-त्वर्थः । तीर्थे प्रयागादा विविद्यतत्तीर्थः । कूले नदीतीरादी प्रतिष्ठापितलिङ्ग इतेणावतिष्ठत इति कृष्यः । पारे संसारससुद्रस परतीरे मुमुन्तुभिर्धेयलेनावतिष्ठत इति पार्यः । श्ववारे श्रवीक्रीरे संसारत्रीहेतुकाम्यफलप्रदलेनावितष्ठत द्रत्यवार्यः । प्रकृष्टेन सन्त-जपादिरूपेण पापतरणहेतुः प्रतरणः। तत्त्वज्ञानरूपेण क्रत्झसंसारा-नारणहेतुरूनरणः। सभावत्यपि संसारान्तरणहेता तत्त्वज्ञाने तद्पेच्य काम्यकर्मानुष्ठानेन संसारे पुनरागमनम् त्रातारः, तमईतीत्यातार्थः, काम्यफलप्रद इत्यर्थः । ऋषं सम्पूर्णं कर्म यथा भवति, तथा कर्म-फलमत्तीत्वलादे। जीवः, 'तथारम्यः पिप्पलं खादत्ति' दति श्रुतेः, तस्य प्रेरकलेन तसम्बन्धिलादासाद्यः । प्रथं वासव्यणं, गङ्गातीरादा-वुत्पन्नसुत्राङ्करादि, तदर्रतीति प्रयः। नदीमध्यगतं फेनमर्रतीति फोन्यः । सिकतामईतीति सिकत्यः । प्रवादमईतीति प्रवाद्यः । यः पुरुषः श्रद्धालुः सन् स्नानादितत्परे। निरन्तरं गङ्गादितीरे वर्त्तते तद्रुप इति श्रव्यादिश्रव्दानां तात्पर्यार्थः ॥

इति सायनाचार्य्यविरचिते माधवीये वेदार्घप्रकाणे कृष्णयजुः-संहिताभाय्ये चतुर्थकाण्डे पञ्चमप्रपाठके ऋष्टमाऽनुवाकः ॥०॥ नमे इतिर्द्धाय च प्रपृथ्धाय च नमेः किश्विषार्थ च श्र्यंगाय च नमेः कप्हिने च पुल्क्तये च नमे। गोचाय च एद्धाय च नमक्तल्पाय च गेद्धाय च नमेः काबीय च गद्दश्याय च नमे। इद्य्याय च निवेष्णाय च नमेः पाश्विष्याय च रज्ञस्याय च नमः गुष्काय च इतिर्द्धाय च नमे। काष्याय चे। लुप्याय च ॥ १॥

नमं जुर्थाय च सूर्याय च नमंः पृष्धीय च पर्क-श्रद्धाय च नमें।ऽपगुरमाणाय चाभिग्नते च नमं चारि-खद्ते च प्ररिखद्ते च नमां वः किरिकेथा देवानाः इद्येश्वा नमा विश्वीण्केश्वा नमां विचिन्नुत्केश्वा नमं चानिर्द्वतेश्वा नमं चामीवृत्केथः(१-१८) ॥ २॥

उलुप्याय चु। पर्यस्त्रिश्राच ॥ ८ ॥

इति तैत्तिरीयसंहितायां चतुर्थकार् पञ्चमप्रपाठके नवमाऽनुवाकः ॥०॥

श्रष्टमेऽनुवाके यानि श्रन्यतरतानमस्काराणि यजूंषि उक्रानि, तेभ्योऽप्यन्यानि कानिचित्रवमेऽनुवाके उच्चन्ते। तम विद्यमानानि एकानविश्रतिसङ्गाकानि यजूंषि श्राइ,—"नम इरिष्याय च प्रपच्याय च^(१) नमः किश्रिकाय च चयणाय च^(१) नमः कपर्दिने च पुक्क्क्वे

च^(२) मसे। गेड्याय च रह्याय च^(३) मसस्ट्याय च गेह्याय प^(१) नमः काव्याय च गइरेष्ठाय प^(१) नमे। पुर्याय च निवेयाय च^(७) नमः पार्श्सर्याय च रजस्याय च^(८) नमः प्रदुष्कराय च इरिह्माय च^(८) नमी लेापाय चेालपाय च^(६०) नम जर्वाय च स्रम्याय च(१९) नमः पर्छाय च पर्णप्रद्याय च(१९) नमोऽपगुरमाणाय चाभिन्नते च^(११) नम चारिखदतेच प्ररिखदते च^(१४) नमेा वः किरिकेश्वा देवानाष्ट्र **प्र**द्येभ्वा (१६) नेना विचीणकेश्वा (१६) नेना विचिन्तकोधो (१०) नम त्रानिर्हतेभो (१०) नम त्रामीवत्केभा (१८)" इति । इरिषम् जवरं, तच भव इरिष्यः । प्रपथो बद्धभिः चेवितो मार्गः, तच भवः प्रपथ्यः। सुत्सिताः चुद्राः शिखा यत्र प्रदेशे, तादृशः ब्रार्करिसः प्रदेशः किंशिसः । चयणे निवासयोग्यो देशः । कपर्दी अटाबन्धनवान् । भन्नानां पुरतिसिष्ठतीति पुसस्तिः । गवां स्थानं गाष्ठं तच भवे। गाष्ठ्यः। रहे भवे। रह्यः। तस्ये खट्टायां प्रयानः तस्यः। गेडे प्रासादे भवा गेच्चः। सुत्तितमटित कप्टकसतादि-पूर्णतया दुष्पृवेत्रत्वं प्राप्तातीति दुर्गमारक्षविशेषः काटः, तच भवः कान्यः। गइरे विषमे गिरिगुहादी तिष्ठतीति गइरेष्ठः। हृदेषु ऋगाधजलेषु भवे। इदयाः। निवेष्यं नीद्यारजसं तत्र भवे। निवेष्यः। पांसुषु परमाणुव्ववस्थितः पांसवः। रजिस विस्पष्टायां भूस्थामवस्थिता रजस्यः । ग्राप्कोषु काष्ठेषु भवः ग्राप्काः । इतिमार्द्रः, तच भवे। इरित्यः । लुप्पते त्वणादिकमिसिसिति लीपः कठिनप्रदेशः, तच भवा लोप्यः । उन्तपा बन्नजल्लादयः, तत्र भव उन्नप्यः । उर्था ष्टियां भव जर्यः । भोभना जर्मयो यसा नद्या सेयं स्टर्मिः,

तम भवः स्रम्यः। पर्षेषु पत्रेषु भवः पर्धः। शुष्काणां पर्धानां सङ्घातः पर्धम्यः, तम भवः पर्धम्यः। श्रपगुरमाण अद्यतायुधः। श्रभिन्नन् प्रस्तन्। श्रारिखस्न् इषत्खेदयन्। प्ररिखस्न् श्रत्यमां खेदयन्। किरिना भक्तेभ्या धनानीति किरिका उदाराः स्ट्रावताराः। ते च देवानां स्ट्यक्रताः, सर्वदेवप्रियलात्ः, तादृश्चेभ्या 'वा' (युग्नभ्यं) नमः। चीणकेभ्या विपरीता विचीणकाः, कदाचिद्पि चय-रिता दत्यर्थः। विचिन्वन्ति श्रपेक्तिमर्थं साध्यन्तीति विच्नित्काः। 'श्रा' समन्तात् मीविन्तः प्राप्तवन्तीति श्रामिक्ताः। 'श्रा' समन्तात् मीविन्तः प्राप्तवन्तीति श्रामिक्ताः। श्रवः 'देवानाः स्ट्येभ्यः' इति विचीणविचन्वदानिर्दतामीवत्केषु श्रयमुष्ठ्यते।

पश्चमानुवाकमारभ्य नवमानिध्वनुवाकेषु श्रन्यतरते।नमस्काराणि महनि चर्चूषि श्रभिष्ति। तैः सर्वैः परमेश्वरस्य सार्वात्यं प्रतिपाद्धितम् एकैकेन चजुषा स्वावरं जङ्गमं चैकैकं रूपमभिष्ठितं । श्रनुवाकभेदस्तु क्रतीर्वष्टःप्रचेशि मन्त्रभेदाभिप्रायेण द्रष्टस्यः । एकैकाऽनुवाक एकैके। मन्तः । तस्य पुरस्वरणादिप्रकारस्तु स्द्रकस्पेऽभिधास्तते ॥

द्रति सायनाचार्यविरचिते माधवीये वेदार्धप्रकाग्रे सम्मय्यजु:-संहिताभाय्ये चतुर्थकाण्डे पञ्चमप्रपाठके नवमाऽनुवाकः ॥०॥

^{* &#}x27;मीवन्ती' इति सर्व्वत्र पाठी न सम्यक्।

[†] अन्न विश्वीयक-विचिन्वत्कानिईतामी वत्केषु हति पाठे। अवितुं युक्तः । 'विश्वीयविधिन्वदानिईत अमीवत्केषु' हति सर्वेत्र पाठे। न सन्यक् ।

द्रापे अर्थंसस्यते दरिंद्र्वीसंग्रेष्टित। युषां पुर्वषा-श्रामुषां पंश्रुनां मा भेभारो ना यंषां किञ्चनामंमत् (१)। या ते बद्र श्रिवा तुनुः श्रिवा विश्वाहंभेषत्री। श्रिवा बद्रस्यं भेषत्री तथा ना सङ् जीवसे (१)। दुमा हुद्राय तुवसे कपृद्धिने स्यदीराय प्रभरामहे मृतिं। यद्यां नः श्रमसंद् हिपदे चतुंष्यदे विश्वं पुष्टं यामे श्रुस्मिन्॥ ॥१।

चनातुरं(१)। मृडा नी रहोत नो मर्थस्कृधि ख्रय-द्वीराय नमसा विधेम ते। यच्छम् यात्र मनुराय्त्रे पिता तद्त्र्याम् तवं रुद्र प्रखीता(१)। मा नी मुहान्ते-मृत मा नी श्वभूंकं मा न उर्छन्तमुत मा न उछ्छतं। मा नी वधीः प्तर् मेत मातर् प्रिया मा न स्तुवंशा

ष्ट्र रीरिषः । मा नस्तोके तनेये मा न त्रायुषि मा नो गेषु मा नो त्रत्रेषु रीरिषः । वीरान्मा नें। षद्र भामिता वंधीइविष्मन्तो नर्मसा विधेम ते (१) । त्रारात्ते गोघ उत पूर्षष्ठे ध्रयद्वीराय सुस्ममस्मे ते त्रस्तु । रक्षा च नो त्राधि च देव ब्रूस्सधा च नः प्रभी यक्ष द्विवर्षाः । स्तुष्टि ॥ ३॥

अतं गर्त्तसद् युवानं स्गं न भीममुपह्लमुगं।

स्डा जिर्चि संद्रस्तवाना श्रम्धं ते श्रम्भन् नि वेपन्तु सेनाः । परि को स्द्रस्य हेति हैं सक्तु परि त्वेषस्य दुम्तिर्घायाः । श्रवं स्थिरा म्घवं ग्रास्तनूष्ट् मी ई-स्तोकाय तनयाय स्डयं । मी देष्टम् श्रिवंतम श्रिवेर नेः सुमना भव । प्रमे दृष्ट्य श्रायुंधं निधाय कित्तां वसं । श्रा श्री पिनाक्षं ॥ ४ ॥

बिसुदागंडि(१)। विकिरिद विलेडित नर्मस्ते श्राम् भगवः। यास्ते स्डसं हेत्ये।ऽन्यम्सन्नि-वंपन्तु ताः(११)। स्डसंणि सइस्था बंडिवोस्तवं हेत्यः। तासामीश्रीना भगवः पराचीना मुखं क्षि(१९)॥ ५॥

श्रुस्मिन्। तुनुवैः। स्तुष्टि। पिनाकुम्। एकास-चिष्रश्रची १०॥

इति तैत्तिरीयसंहितायां चतुर्थकाएडे पञ्चमप्रपाठके दशमाऽनुवाकः ॥०॥

दितीयानुवाकमारभ्य नवमान्तेष्वनुवाकेषु विविधानि यजूंषि जभयतानमस्काराणि श्रन्यतरतानमस्काराणि चेक्तानि। श्रथ दश्रमे-उनुवाके स्वयूपा मन्त्रा जन्मने। तन प्रथमाम्हचमारु,—'द्रापे श्रन्थक्सते दरिद्रं नीकलोहित। एषां पुरुषाणामेषां प्रभूतां मा भे- मांऽरे। मे। एवं किञ्चनाममन्(१)" इति। ट्रापयित (कुत्सिनां गितं प्रापयित) इति द्रापिः, पापिने। नरकप्रदानेन क्षेत्रयतीत्वर्थः। सन्धेऽसं तस्य पतः (पासकः), भक्तानामसं पास्त्यतीत्वर्थः। दिद्रत् श्रक्तिञ्चनः, खयंविरक्ष इत्वर्थः। कच्छे नीखे।ऽन्यस् खोदित इति नीस्रखे।इतः। एतेः बन्देः सम्मोध्यमान हे इद्र, 'एवं' सस्मदीयानां 'पृद्वाणां' (पुत्रपौणादीनां) श्रस्मदीयानां 'पृद्वाणां' (गुपपौणादीनां) श्रस्मदीयानां 'पृद्वाणां' (ग्रामिष्ट्यादीनाञ्च) समूषं 'मा' 'भेः' (मा भीषय)। 'एवाम्' एकानां सर्वेषां मध्ये 'किञ्चन' (एकमिप वन्द्र) 'मा श्ररः' (मा मच्चतु) मा विनम्रतित्वर्थः। 'मो' 'श्राममत्' (मैव इन्यमस्त्त्)।

श्रथ दितीयामाइ,—"या ते इट्र जिवा तनूः जिवा विश्वाइ-भेषजी। जिवा इट्रस्थ भेषजी तथा ने। स्टीड़ जीवसे^(२)" इति। हे 'इट्र', लदीया 'जिवा' (ज्ञान्ता) 'तनूः' 'या' विद्यते, 'तया' तन्ताः 'नः' (श्रस्थान्) 'जीवसे' (जीवसितुं) 'स्टुं' (सुस्यय)। कयं तन्ताः जिवलम्?—इति तदुच्यते, यस्मादेवं,—'विश्वाइभेषजी' (सर्वेश्वहःसु रे।गदारिद्यादेरीषधवदिनाशहेतुः) तस्मात् 'ज्ञिवा'। किञ्च सस्मात् 'इट्रस्थ' तादात्मप्राप्तये 'भेषजी' (स्वाप्यक्षपा),—ज्ञानप्रदानेन जन्ममर्षादिदःसं निवारयित तस्माद्येषा 'ज्ञिवा'।

श्रय दितीयामाइ,—"इमार् इद्राय तवसे कपर्दिने स्वयदीराय प्र भरामहे मितं। यथा नः श्रमसत् दिपदे सतुष्पदे विश्वं पृष्टं धामे श्रक्षिश्चनातुरम्^(२)" इति। 'यथा' (येन प्रकारेण), 'नः' (श्रस्पदीयाय) 'दिपदे' (पुत्रपौत्रादिक्पाय मनुष्याय), 'त्रतुष्पदे' (गोमहिष्यादिक्पाय पश्रवे) स, 'श्रम्' 'श्रस्त्' (सुखं स्थान्)। किञ्च 'श्रिक्' 'शासे' 'विश्वं' (सर्वे प्राण्डितातं) 'पृष्टं' (स्वपूर्णे) 'श्रनातुरस्' (अपद्रवरितं) यथा भवति, तथा वयं 'बद्राय' (बद्रार्थे) 'इमां' (पूजाध्यानादिविषयां नुद्धिं) 'प्र भरामहे' (प्रकर्वेच पोषयामः)। की हुश्राव बद्राय?,—'तवचे' (वसाय), श्रस्तादपेषितं कर्त्तुं समर्थाव दत्यर्थः। 'कपर्दिने' (जटावन्धयुकाय) तापसवेषाय दत्यर्थः। 'स्य-दीराय' (चीयमाणप्रतिपचपुद्याय) श्रन्ययाभावद्यपापविनाश्च-हेतवे दत्यर्थः।

त्रय चतुर्थीमाइ,—''हरु ने। इद्रोत ने। मक्कि ध्यदीराय नमसा विधेम ते। यत् प्रश्च थास मनुरायने पिता तदस्थाम तय इद्र प्रश्नीतौ(")" इति। हे 'इद्र', 'नः' (प्रस्मान्) हरुष इह खोने (सुख्य)। 'उत' (त्रपि च) 'नः' (प्रस्मानं) परखोनेऽपि 'मयः' (सुक्यं) खुद। 'चयदीराय' (चियतासादीयपापाय) 'ते' (तुम्धं) 'नमसा' (नमस्कारेष) 'विधेम' (परिचरेम)। 'पिता' (पासकः) 'मनुः' (प्रजापतिः) 'प्रश्च' (सुख्यु) 'थास्व' (दुःखप्रथमावस्र) 'यत्' 'त्रायने' (यत्किश्चित् सम्मादितवान्), तत् ववं, वयं हे 'इद्र',

^{* &#}x27;यथा' (येन प्रकारेख) 'नः' (ष्राक्षदीयाय) 'दिपदे' (पृत्र-योत्रादिक्याय मनुष्याय), 'चतुष्पदे' (ग्रेमिड्खादिक्याय), 'तवसे' (वजाय), ष्राक्षदपेक्षितं कर्तुं समर्थाय इत्वर्षः। 'क्षयदीराय' (क्षीयमाव्यत्तपक्षपुष्याय) पापविनाष्णकृतवे इत्वर्षः। 'क्षम्' 'बसत्' (सुखं स्थात्)। 'यथा' (येन प्रकारेख) 'बिकान्' 'ग्रामे' यस्मिन् वयं वसामः, तस्मिन्, 'वित्रम्' व्यपि प्राविजातं, 'पृष्टं' 'बनातुरं' च स्थात्, तेन प्रकारेख 'इमां' 'मति' (ईहशीं वृद्धं मानस् प्रजाखां) 'प्र' 'भरामक्रे', सर्व्यदा वनस्मृता खाराध्याम इत्वर्षः। वीहश्चाय बनाय? इति क॰ सं॰ पु॰ पाठः।

'तत' 'प्रकीती' (प्रणये, क्षेद्दातिष्ठये) यति 'त्रक्षाम' (प्राप्नुयाम)।
त्रय पद्ममीमाद,—"मा ने। मद्दान्तसुत मा ने। त्रर्भकं मा न
जन्मसुत मा न जितं। मा ने। वधीः पितरं मे।त मातरं
प्रिया मा नवानुवे। दृद्र रीरिषः (१) "दृति। हे 'दृद्र', 'नः' (त्रक्षदीयं)
'मद्दान्तं' पुद्द्वं (खितरं पुद्द्वं"), 'मा' 'रीरिषः' (मा हिंसीः)। 'जत'
(त्रिप च) 'नः' (त्रक्षदीयं) 'त्रर्भकं' (वाक्तकं) 'मा' 'रीरिषः'। किञ्च 'नः' (त्रक्षदीयं) 'जनमं' (चेत्रनयमयं) युवानं पुद्द्वं 'मा' 'रीरिषः'। 'जत' (त्रपि च) 'नः' (त्रक्षदीयं) 'जितं' (गर्भस्यं) 'मा रीरिषः'। 'नः' (त्रक्षदीयं) 'पितरं' 'मा वधीः'। 'जत' (त्रपि च) 'मातरं' 'मा वधीः', 'नः' (त्रक्षदीयाः) 'प्रियाः' च 'तनुवः' (त्ररीराष्ट्) 'मा' 'रीरिषः'।

श्रय वहीमाइ,—"मा नसोके तनये मा न श्रायुषि मा ने। गोषु मा ने। श्रयेषु रीरिषः। वीरान्मा ने। इट्र भामिते। वधी-ईविश्वको नमसा विधेम^(१)" इति। हे 'इट्र', 'नः' (श्रस्मदीये) 'तोके' (श्रपत्यमाचे) 'तनये' (विशेषतः पुचे) 'मा' 'रीरिषः' (मा दिंसां कुद्)। 'नः' (श्रस्मदीये) 'श्रायुषि' 'मा' 'रीरिषः'। 'नः' (श्रस्मदीयादु) 'गोषु' 'मा' 'रीरिषः'। 'नः' (श्रस्मदीयादु) 'श्रयेषु' 'मा' 'रीरिषः'। 'मः' (श्रस्मदीयाद्) 'वीरान्' स्टान् 'मा' 'वधीः'। वयं 'इविश्वकाः' (इविश्वकाः) ते (तुभ्यं) 'नमसा' (नमस्कारेष्) 'विधेम' (परिचरेम)।

^{*} इदं युव्ययदं च • सं • गुक्तके गक्ति ।

^{. †} उच्च नासिति सर्व्यंत्र पाठी न सम्यक्।

षय यप्तमीमाइ,—"प्राराणे गोम्न जत पूर्वमे क्यदीराव्य स्वमको ते प्रदा। रवा च ना प्रधि च देव मूम्रधा च नः मर्म क्या दिवई।: (१)" इति । गोम्ने 'गोम्नः' तक्य, 'पुर्वमे (पुत्रपी नादि—पुर्वम्रख), 'क्यदीराय' (विध्तश्राव्यक्ष), 'ते' (तव) जग्रस्वरूपम् 'प्रारात्' 'प्रदा' (दूरे तिष्ठतु)। यणु 'सुवं' (तदीयस्वरूपं सुव्यक्रं) तत् 'प्रको' (प्रसाम्) 'प्रदा',—घोराऽन्या विज्ञाऽन्येति षव्करीरदयम् एमं, तथोर्मध्ये धत् चोरं मरीरं, तत् दूरे गव्कतु । किम्न 'नः' (प्रसाम्) 'रच' (प्रकृतः पाख्य)। किम्न हे 'देव', 'प्रधि'—'मूचि' (प्रसाम् इतरेशो यज्ञमानेश्योऽधिकान् देवेषु मूचि)। 'जत' (प्रपि च) 'दिवर्दाः' (इयोर्जेक्योर्वईयिता) सं 'मर्म' 'यव्क' (ससं देचि)।

श्रयाष्ट्रमीमाइ,—''सुहि श्रुतं गर्त्तं स्वां स्वां न भीमसुपद्यन् सुगं। स्वां वरिषे इद्र स्वांना श्रन्यं ते श्रद्धाख वपन्तु सेनाः (क)' इति। हे मदीयं वर्षः 'श्रुतं', मदीयमात्मन्, इद्रं 'सुहि'। कीवृत्रं?,—'गर्त्तसदे' (गर्त्तसवृत्रे इद्यपुद्धरीके सर्वदा तिष्ठमां), "ईस्परः सर्वस्तानां इद्देश्वेऽर्जुन तिष्ठति" इति श्रुतेः। 'युवानं' (नित्यतद्धं) 'खपद्यां' (प्रसम्बाखे सर्वे जगत् संदर्त्ते') खग्रद्धप्रियं, तम वृष्टानाः,—'भीमं' 'स्वां' 'न' (भयद्वरं संद्यित),—स्वा गर्ध-विदारकायोगः सिंदो भवति तदत्। हे इद्र, 'स्वानः' (श्रद्धाद्यस्या स्वयमानः) 'जरिने' (जरक्षश्रीखे देहे) दिने दिने सीसमाके श्रद्धान्क्षरीरे 'स्वदु' (सुखं खुद्ध)। 'ते' (लदीयाः) 'सेनाः' 'श्रद्धात्' 'श्रन्थं' वैरिकं 'नि'—'वपन्तु' (विनाशयन्तु)।

^{*} बात है 'बत' रति बादर्बंगुक्तकपाठी न सम्बन्।

यय नवमीमाइ,—"परि णो इद्रख हेतिर्द्रणकु परि लेवस्य दुर्मित्रघायोः । अव स्तिरा मयवद्वासनुम्य मीइसोकाय तनयाय स्टुड्यं (१)" इति । इन्यते अनयेति 'हेतिः' आयुधं । 'इद्रस्य हेतिः' 'नः' (श्रस्मान्) 'परि'-'इण्कु' (परिता वर्जितान् करोत्त), कदासित् मा विश्वतिर्ध्ययः । 'त्रेषस्य' (क्रोधोच्चितिर्स्य) 'श्रघायोः' (श्रष्यः पापं प्रहारक्पित्यक्तः) इद्रस्य या 'दुर्मितः' (छग्वबृद्धः) वापि श्रसान् परिद्रणकु । 'स्तिरा' (विरोधिनामाय या दृढ़ा दुर्मितः) श्रसि, तां 'मयवद्धः' (इविकंचसावयुक्तेभ्यो यनमानेभ्यः) सकामात् 'म्नव'-'तनुस्य' (श्रवततां श्रपनीतां कुद्द) । हे 'मीदः' (कामानामभिवर्षक), 'ताकाय' (श्रसत्पुनाय) 'तनयाय' (तदीयपुनाय) च 'स्टुड्य' (सुखं देहि) ।

श्रथ दश्रमीमाइ,—"मीढुएम श्रिवतम शिवा नः सुमना भव। परमे एव श्रायुधं निधाय क्रांत्तं वसान श्रा चर पिनाकं विश्वदा-ग्रिं(१०)" दति। हे 'मीढुएम' (श्रितिश्रवेन सेचक, कामानामिनक्र्यंक), हे 'श्रिवतम' (श्रितश्रवेन श्रान्तस्क्र्य), 'नः' (श्रक्षान्) प्रति 'श्रिवः' (श्रान्तः) 'सुमनाः' (श्रीमनस्रोन खेहेन युक्तः) च 'भव'। 'श्रायुधं' (चिश्र्रखादिकं) 'परमे' (श्रित्युखते) 'रुके' (वटायत्यादिक्ये) 'निधाय' यथाऽस्थाभिनं हृश्यते, तथा श्रवखाय, 'क्रित्तं वसानः' (याध्रयमंमानं परिद्धानः) 'श्रा'—'चर' (श्रस्थदाभिमुक्येनामक्क)। श्रानक्ष्रत्रपि 'पिनाकं' 'विश्वत्' (श्रवणार्थं धनुमानं इस्ते धारयन्) स्थावाखादिकं परित्युख्य 'श्रागद्दि' (श्रामक्क)।

^{* &#}x27;वटायखादेरूपे' इति सर्वेत्र पाठी न सम्बन्।

श्रधिकादशीमाइ,—"विकिरिद विखेषित नमस्ते श्रस्त भगवः । यास्ते सहस्त्रः हेतयोऽन्यमस्त्रश्चि वपन्तु ताः(११)" इति । कीर्यन्ते श् भक्तानां सिन्धी बद्धधा प्रशिष्यन्त इति विकिरयो धनानि, तानि द्दातीति 'विकिरिदः', 'विखेषितः' (सौहित्यरहितः) सेत इत्यर्थः । श्रत एव मान्त्रिकाः पञ्चाचरधाने स्तरिन्त,—'ध्येयो सुकापरागा— स्तरसकस्तिताद्विप्रभवः' इति । यदा विश्वेषेष स्नोहितो 'विखेषितः' इति, श्रत एवाष्टाचरधाने स्तरिन्त, 'काञ्चनाभो ध्येयः पद्मा— सनस्तः' इति । भगवान् षड्गुणसम्बद्धः, भगश्चस्य षड्गुषवास्तिः स्तर्यते,—

"रियर्थस समग्रस धर्मस यज्ञमः त्रियः । ज्ञानवैराग्ययोश्वैव षर्षा भग इतीरणा" ॥ इति । प्रकारान्तरेणापि सर्यते,—

"जत्यित्तञ्च विनाजञ्च भूतानामागितं गितं । वित्त विद्यामिवद्याञ्च स वाच्या भगवानिति"॥ यथाक्रविज्ञेवण्ययमुक हे स्द्र, 'ते' (तुभ्यं) 'नमः' 'त्रस्तु'। 'ते' (तव) 'सहस्तं' (सहस्त्रसङ्क्षाका) 'हेतयः' यानि त्रायुधानि सन्ति 'ताः' सर्वा 'त्रसात्' 'त्रन्यं' विरोधिनं 'नि'-'वपन्तु' (विनाजयन्तु)।

त्रय दादबीमाइ,—"मइस्राणि मइस्रधा बाइवोस्तव हेतयः। तामामीबानो भगवः पराचीना सुखा क्रिंधि (११)" दति। हे रह, 'तव' 'बाइवोः' (इस्रयोः) 'हेतयः' 'मइस्रधा' (मइस्रप्रकारः) 'सइस्राणि' (मइस्रमक्काकाः) विद्यन्ते ; धनुः खद्रस्तिप्रक्षमित्येवं

^{*} विकीर्यन्ते इति पाठी भवितुं युताः।

जातिभेदेन सहस्रप्रकारं, एकैकस्यां जातौ बस्तः सहस्रसङ्खाकाः। हे 'भगतः' (धड्गुणोपेत), लं 'ईब्रानः' समर्थः सन्, तासां हेतीनां 'सुखा' (सुखानि) बस्तानि 'पराचीनाः' क्रिधे' (श्रस्ततः पराझुखानि कुक्)॥

द्ति सायगाचार्य्यविर्विते माधवीये वेदार्थप्रकाञ्चे कृष्णयजुः-संहिताभाय्ये चतुर्थकाण्डे पञ्चमप्रपाठके दश्रमाऽनुवाकः॥•॥

सृष्ठसंशि सष्ठस्त्रो ये कृद्रा अधि भूत्यां। तेषारं सष्ठस्यो जुनेऽव धेन्दांनि तन्मसि()। श्रुस्मिन् मष्ट्रत्यंस्वा कृष्ठां अधा अधि() नीर्लयोवाः शितिकर्त्याः
स्वा अधः स्रमाच्राः()। नीर्लयोवाः शितिकर्त्याः
दिवरं कृद्रा उपित्रताः() ये दृष्ठेषुं स्पिक्चंरा नीर्लयोवाः विश्विन्याः विश्विष्याः विश्विन्याः विश्विन्याः विश्विन्याः विश्विन्याः विश्विन्याः विश्विन्याः विश्विन्याः विश्विन्यः विश्विन्यः विश्विन्यः विश्विन्यः विश्विष्यः विश्विन्यः विश्विन्यः विश्विन्यः विश्विष्यः विष्यः विश्विष्यः विश्विष्यः विश्विष्यः विश्विष्यः विश्विष्यः विश्वेष्यः विश्विष्यः विश्वेषः विष्यः विश्वेषः विष्यं विश्वेषः विष्वेषः विश्वेषः विष्वेषः विश्वेषः विष्वेषः विष्वेषः विष्वेषः विष्वेषः विष्वेषः

प्रचरं नित सृकावंन्ता निष्क्तिणः(१)। य एतावंन्तञ्च भूयारं सञ्च दिशों बुद्रा विं तिस्थ्रि। तेषारं सङ्खयाञ्नेऽव धर्मान तसि (१०)। नमें। रुद्रेश्यो वे प्रविद्यां वे श्रमारिश्वे वे दिवि वेषामद्यं वाती व्यक्ति वेष्ट्रेशे दश्र प्राचीर्द्शे दिश्या दर्श प्रतीचीर्दश्रोद्धी-स्तेश्यो नम्स्ते नें। स्डयन्तु ते यं दिश्यो वर्श्व, न्रो देष्टि तं वो अभे द्धामि (१९-९९) ॥ २॥

तीथीनि । यस् । षर् च ॥ ११ ॥

दति तैत्तिरीयसंदितायां चतुर्थकाएडे पच्चमप्रपाठके एकादभाऽनुवाकः ॥०॥

नमस्ते। नम्। हिर्यस्थवाहवे। नमः सहमानाय। नमं आयाधिनीभ्यः। नमें। भुवार्य च। नमें। ज्येष्ठार्य च। नमें। दुन्दुभ्याय च। नमः सामाय च। नमं इरिस्थाय च। द्रापें। सुहस्तासि॥ एकादश्र॥ ११॥

नर्मस्ते(१-१)। नर्मा भवार्य च्(१-१)। द्रापे(१०-१)। सप्तविश्रेष्ठतिः। ॥ २०॥

॥०॥ इरिः श्राम् ॥०॥

^{*} इदं यजुः त्रयं।

[†] प्रथमें १, दितीये २, हतीये २, चतुर्थे २, पश्चमे २, वर्छे २ सप्तमे २, घरुमे २, नवमे २, दश्चमे ४, रकाश्ची च २, इति २०।

दश्रमेऽनुताने ख्यूपाः नेचिनान्ता जनाः, श्रयेनाद शिष्टा ख्रयः ब्रिष्टानि च यजूंषि जच्चने। तचादौ दश्रश्चाका ख्र्यः, तासु प्रथमामाइ,—"बद्धाणि सद्दश्चो ये दृद्रा श्रधि श्रम्यां। तेषाष्ट्र सद्दश्चे जनेऽत ध्रमानि तन्त्रसि^(१)" दृति। 'श्रम्याम्' 'त्रधि' (श्रुत्ते द्यरि) 'ये दृद्राः' 'सद्दश्चः' (सद्दश्वप्रकाराः) 'सद्दश्चां (सद्दश्चश्चाकाः) सन्ति। सद्दश्च दृति जात्युन्तिः; विनायकप्रथम-श्रेखादयो जातिभेदाः, ते सर्वेऽपि दृद्रविश्रेषाः, तथायेकसां जातौ बद्धभिः सद्दश्चेः सङ्घाता मूर्त्तिविश्रेषाः, 'तेषां' सर्वेषां 'ध्रमानि' (ध्रमूषि) 'सद्द्योजने' (श्रसात्तः सद्दस्योजनव्यवित्ति देशे) 'श्रव'-'तन्त्रसि' (श्रवततज्याकानि स्थापयामः)।

श्रय दितीयामाइ,—"श्रक्षिन् महत्यर्णवेऽन्तरिचे भवा श्रिधि(१)" दित । 'श्रक्षिन्' दृश्यमाने 'महित श्रूणवे' (महाससुद्रसदृशे) प्रौहे 'श्रन्तरिचे' 'श्रिधि'-श्रित्य वर्त्तमाना 'भवाः' (हृद्मूर्त्तिविणेषाः) चे सिन्तः, 'तेषां सहस्रयोजने' दत्युत्तराहुं दितीयादिषु नवमान्तासु स्वतु श्रनुषज्यते, तदनुषङ्गद्योतनायैव दश्रम्यास्त्रि पुनः पठितम् ।

श्रथ खतीयामाइ,—"नीलगीवाः श्रितिकष्ठाः श्रवी श्रधः चमाचराः(१)" इति । ग्रीवायामेकस्मिन् प्रदेशे नीलवर्णा 'नीलगोवाः'। प्रदेशानारे श्रेतवर्णाः 'श्रितिकष्ठाः' । कीदृशाः ?—'श्रवीः' (इ.इ.-मूर्त्तिविश्रेषाः)। 'श्रधः' चमाचराः' (भ्रुमेरधसात् पाताखेषु सञ्चरन्ति)। तेषामित्यादि पूर्ववत् ।

श्रय चतुर्थीमाइ,—"नीखगीवाः भितिकच्छा दिवश्र इहा उपश्रिताः(४)" दति । 'दिवम्' 'उपश्रिताः' (खर्गे वर्त्तमानाः) । श्रथ पश्चमीमाइ,—"ये दृषेषु सिपञ्चरा नीसपीता वि-बोहिताः(६)" इति। यथा खोकेम्बवस्थिता इद्राः, तथा 'दृषेषु' श्ववस्थिताः। तेषु केसित् 'सिप्यस्यराः' (प्रध्यवत् वासद्धस्यवत् पिञ्चर-वर्षाः), 'नीसपीवाः' (केसित् ग्रीवादेशे नीसवर्षे।पेताः), श्रपरे पुनः 'विद्योदिताः' (विश्ववेश रक्षवर्षाः), ईदृशा ये सन्ति। तेषामित्यादि।

श्रव वडीमाइ,—''ये भूतानामधिपतयो विश्विष्ठासः कपहिंनः(()'' इति । भूतश्रवेन श्रमार्धनग्रदीराः समो मनुखोपद्रवकारिको मध-विश्वेषा उच्चमो, तेषाम् 'श्रधिपतयः' 'ये' (इट्टाः), तेषु केचित् 'विश्विष्ठासः' (मुख्लितमूईंगः), श्रपरे 'कपर्हिनः' (अटाजूटक्थनेः-पेताः) । तेषामित्यादि ।

भव यप्तमीमाइ,—''घे भन्नेषु विविधानि पाचेषु पिवते। जनान्^(७)" इति। 'घे' (बद्धाः) 'मन्नेषु' भुज्यमानेषु गूडलेनाविस्तिताः यन्तो 'जनान्' 'विविधानि' (विशेषेष धातुवैषम्यादिना वाधन्ते)। तथा 'पाचेषु' (पात्रथेषु चीरोदकादिषु) गूडलेनाविस्तिताः 'पिवतः' 'जनान्' 'विविधानि'। तेषामित्यादि।

श्रवाष्टमीमाइ,—"ये पर्या पिषरचय ऐसट्टरा थयुधः(ट)" इति। 'थे' इद्राः 'पिथरचयः' (सैकिकवैदिकमार्गाणां रक्काः)। नाम केवाञ्चिदेव मार्गाणां किन्तु सर्वेषां 'पर्या' ते च रक्काः। 'ऐसट्टराः'—(इजं अस्नं, तस्य समूह ऐजं, ऐड़मेवैसं, तद्विस्ततीति ऐसस्तः, ऐसस्त एव 'ऐसट्टराः') श्रवप्रदानेन पोषका दृत्यर्थः। ते 'ययुधः' (यौति मिश्रीभवित विरोधं करोतीति यः श्रवः युभिः श्रव्भिः सह युध्यन्तीति 'ययुधः'?) श्रद्धादनिष्टनिवारका दृत्यर्थः। तेषामित्यादि।

श्रव नवसीमाइ,—"ये तीर्घानि प्रयर्गित स्कावनो नि-विक्तिषः (८)" इति । 'ये' इद्राः 'तीर्घानि' (काशीप्रवागादीनि) रचितुं 'प्रयर्गि'। कीवृत्रा इद्राः ?—'स्कावनाः' (स्का चुरिका° इस्ते प्रियमाणा तीट्र्णया, श्रायुधविश्रेषः) तद्युक्ताः केचित् । परे तु 'निवक्तिषः' (खद्रयुक्ताः) । तेषामित्यादि ।

श्रव दम्मीमाइ,—"य एतावनास भ्रयाश्रमस दिन्नो इद्रा वि तिस्तरे । तेवाश्र महस्रयोजनेऽव धन्यानि तद्मिष्^(१०)" इति । 'ये' इद्राः 'एतावनास्य' ('महस्राणि महस्त्रमः' इत्यायृग्धियीवना स्ना-सावन्तोऽपि) 'भ्रयांसस्य' (इतेऽप्यधिका श्रन्ये बहवे।ऽपि) 'दिन्नः' 'वि'-'तिस्तरे' (स्वी दिन्नः प्रविष्य स्निताः) । तेवामित्यादि पूर्वतत् ।

द्रत्यं दमसङ्काका ऋष जकाः। यय गीषि यशृंषि जञ्चको,—
"नमें। इद्रेभ्यो ये पृथियां ये यम्मरिके ये दिवि येवामसं वाता
वर्षमिववसंभ्या दम प्राचीर्दम दिष्णा दम प्रतीचीर्दमोदीचीर्दमो—
ईं।सोभ्या नमस्ते ने। सद्यम्मु ते यं दिम्नो यस्त ने। देष्टि तं वे।
जभ्मे दथामि(१९-९२)" दित् । तन पृथियादिस्ताकभेदेने।दिष्टभेदाष्
दिग्भेदाच यजुक्तयं द्रष्टयं। तदा एवं पाठः सम्पद्यते,—'नमें।
इद्रेभ्यः' द्रत्युपक्रस्य ये पृथियां' 'येवामस्तम्' 'दबवः' द्रत्याचा
मन्तः। 'ये यम्मरिके' 'येवां' 'वातः' 'द्रववः' दितियो मन्तः।
'ये दिवि' 'येवां' 'वर्षमिववः' दित द्रतीया मन्तः। 'तेभ्यः' 'दम्र
प्राचीः' द्रित सर्वन समानं। 'ये' इद्राः 'पृथियां' वर्षमने, तेव्यपि
इद्रेषु येवां इद्रविज्ञेवाचाम् 'स्रस्तम्' एव 'द्रववः' (वाचाः),—

^{*} कुरिवा इति वा॰ इ॰ यु॰ याठः।

श्रपद्यास्त्रभचणे प्रवर्ष वा श्रमार्थं चौर्यं कारियला वा वान् हिंबन्ति, तान् प्रति हिंबकानां ब्द्राणाम् अन्नमेवेषवः, 'तेभ्यः' पृचियां खितेभ्ये। स्त्रवाषेभ्यस रहेभ्ये। 'ममः'। तथा 'से' रहाः 'श्रमहिचे' वर्शमे, तेषामपि मध्ये 'येषां' 'वातः' 'इषवः' (तीत्रेष वायुना रेागानुत्पाद्य हिंबन्ति) 'तेभ्यः' श्रन्तरिखवर्त्तिभ्ये। वातेभ्यश्व ब्रहेभ्य: 'नमः' श्रम्तु । तथा 'ये' ब्रहाः, 'दिवि' वर्त्तनो, तेव्वपि येवां बद्दविश्रेषाणां 'वर्षम्' एव 'द्रषवः' (श्रतिष्टश्वनाष्टिश्यां प्राणिने। हिसन्ति), 'तेभ्यः' (दिविन्धितेभ्ये। वर्षर्तभ्यञ्च हृद्रेभ्यः) 'नमः' ऋसु । की हुओं नमस्कार:? इति, स एव विशेखते। 'दश प्राचीः',-प्राक्तुखेनाञ्जलिकरणे दशाकुलयः प्रागगा भवन्ति। एवं दिचणादिषु जर्ज्जानोषु योज्यं। ई.ह. शैरच्चिषियेषैः 'तेभ्यः' (ह्रद्रेभ्यः) 'नमः' श्रस्त । 'ते' च रहाः 'नः' (श्रसान्) 'सड़यन्तु' (सुखयन्तु) । रहाः ं सन्तः 'वं' (वैरिणं) ह्रप्णीमवस्त्रितमपि 'दिग्नः', 'यश्च' वैरी 'नः' (श्रसान्) तृष्णीमवस्त्रितानपि 'देष्टि', 'तम्' (उभयविधं वैरिणं) हे इद्रा:, 'व:' (युग्नाक') 'जक्षे' (विदारिताखे) 'दधामि' (स्त्रापयामि)। तमिममेकादशानुवाकात्मकं सद्राध्यायं विनियुष्के,-"सद्री वा एक बद्भिः स एतर्हि जाते। यर्हि सर्वश्वितः स यथा वस्रो जातः स्तर्ग प्रेपा होवं वा एव एतर्षि भागधेयं प्रेपाति तसी यदा इति न मुज्ञयादध्वर्यु चजमानस् धायेक्कतर्द्रीयं मुहाति भागधेवेनैवेनप्र भ्रमयति नार्त्तिमार्क्कायधर्युर्न यजमानः" (५।४।३८१) द्ति । वसिन् काले चीयमानः 'ब्रिशः' श्रवेषचितिनिष्पादनेन 'सर्वश्चितः'

भवति, तिसान् काले श्रयमग्रिस्त्पन्नी भवति, चेाऽयसुत्पन्नीऽग्निरेव

'बदः' रत्युच्यते,—देवैः खकीयवामवखदाने मित रोदनात् प्राणिनां सुरोदनहेतुदुःखख द्रावणाद्दा त्रिग्नरेव बद्रः; 'यया' लोके 'जातः' 'वत्यः' तदानीमेव 'सानं' प्राप्तृमिच्छति, एवमेव 'एष' एतिसंखिति-सम्पूर्त्तिकाले समुत्पन्नो बद्रनामकाऽग्निः खकीयं भागं द्रक्कित ; तसात् त्रग्नये कस्यासिदाङतेरहोमे 'यजमानम्' 'त्रध्वर्युद्ध' भवियतं 'धायेत्' त्रग्निः, त्रतस्तत्परिहाराय 'त्रतब्दीयं" जुङ्गयात् । ज्ञत-मित्यपरिमितलं खद्यते, त्रपरिमिता बद्रा यसिन्नधाये प्रति-पायन्ते, सेऽध्यायः त्रतब्द्दीयः, तेन होमे सित खकीयभागेन बद्रस्य तुष्टलादध्वर्युयजमानौ न वियते ।

श्रथ हे। मद्रयं विधन्ते, — "यद्गाम्याणां पद्मतां। पयसा जुड्याद् ग्राम्यान् पद्मन् द्राचाऽपंथेद्यदारक्षानामारक्षान् जित्तिस्वयवाग्वा वा जुड्याद्गवीधुकयवाग्वा वा न ग्राम्याम् पद्मन् हिनस्ति नारक्षान्" (५।४।३१०) इति। 'द्राचा ऋषयेत्' (सन्तापेन रागेण योजयेत्)। 'जित्तिसाः' (श्रारक्षतिसाः)। 'गवीधुकाः' (श्रारक्षगोधूमाः)।

पचान्तरं विधन्ते,—"श्रधो खन्ना क्ररना क्रितें जर्मिलास्य गवी-धुकासित्यजनीरेण जुहे।त्याग्नेयी वा एषा यदजाक्रत्येव जुहे।ति न ग्राम्यान् पग्रह्न् हिनस्ति नारण्याम्" (५।४।३%) इति। श्रदनीयं यद्वयं तदेव श्राक्ठतियोग्गं,—'यदन्नः पुरुषो भवति तदन्नास्तस्य देवताः' इति न्यायात्। जर्मिला गवीधुकास्य मनुष्येनीस्यन्ते, तस्त्रास्त्राक्तियोग्गा इति 'श्राक्तः', (पूर्वपन्ते।पन्यासादूर्श्वमाक्तः)। तस्नादुभयं परित्यन्य

^{*} दिवयमिति सर्वेत्र पाठी न सम्बक्।

श्रवाचीरेष जुड़यात्। श्रवाम्योरभयोः प्रवापितसुखजन्यतेन साम्यात् इयमजा श्राग्नेयी यजने श्राङ्गतियोग्येव। श्रतसात्चीरद्रखेस जुहोति, साम्यारस्प्रययेशः स्वीकारात् तेऽपि पश्रवे। न हिंस्वन्ते।

हे। समाधनभूतां जुड़ सपविद्तुं साधनामारं विधन्ते,—"अङ्किरसः सुवगं लोकं यनो। जायां धमें प्रासिश्चन् सा प्रोचन्ती पणं परा-जिहीत से। इक्तें। अवर्यकाले सहावीरे सम्तत्य-घृतं चीरसहितं धर्मः, तं 'धमें' प्रयाणव्यपा 'अङ्किरसः' प्रसादात् 'अजायां' प्रकर्षेणासिश्चन्। 'सा' 'ज्ञोचन्ती' (सापि अजा तेन उण्ण्घृतेन तप्यमाना) पर्णसहु अं स्वकीयं रे। सस्द्रः' भूमावपातयत्। स च रे। ससङ्घाता 'अर्कः' प्रसिद्धार्क रूपे प्रकृतः । अर्चनीयेन पूज्येन प्रवर्ण्य नियानिधेन अजारे। ससङ्घातेन वीत्पन्नलादस्य स्वावरस्य अर्कनाम सम्पन्नं। तेन 'अर्कपर्णेन' होने सित पर्णचीरयो स्वयो राप्यनन्यकार्यलात् समानयो निलं सन्पाद्यते।

हेामकाखे कश्चिदिश्चेषं विभन्ते,—''उद् ए तिष्ठन् जुहेात्येषा वै दृद्ध दिक् खायामेव दिश्चि दृद्धं निरवद्यते परमाथामिष्टकायां जुहेात्यन्तत एव दृद्धं निरवद्यते" (५१४।३२०) दृति। भन्धप्रदेश-वर्त्तिनी परमेष्टका, सा च स्त्रमकारेण दृश्चिता,—'उत्तरस्य पचस्य उत्तरापरस्याप्र स्रत्यां विकर्ष्याप्र खयमाष्ट्रषायाम्' दृति। भन्ध-देश्रगतेन होनेन कृरमिमं 'दृद्धम्' 'श्रन्तत एव' नि:सार्यति।

ब्द्राध्याये हामसाधनं मन्त्रविभागं विधन्ते,—"चेधा विभन्नं जुहाति चय इसे लेका इमानेव लेकान्समावदीर्यान् कराति"

^{*} धनचीरेब इति पाठी भवितुं युक्तः।

(५१४।३२०) इति । तत्र चेधाविभाग एवं करणीय:,—"नमसे इद्र" इत्यारभ्य "सभापतिभ्यस्र वे। नमः" इत्यन्तः प्रथमे। भागः । "नमे। ऋषेभ्यः" इत्यारभ्य "ऋवार्याय च" इत्यन्ते। दितीयो। भागः। "नमः प्रतर्णाय च" इत्यारभ्य "य एतावन्तस्य" इति स्वरा सहितः व्यतीयो भागः।

निष्यणाङितिषु क्रमेण जानुदन्नादिदेशेषु सुम्धारणं इस्नाभिनयेन विधन्ते,—"इयित ऋषे जुड़ेाति ऋष इयित ऋष इयित चय इसे खोका एथ्य एवैनं खोकेथः समयित" (५।४।३%) इति ।

नमा ब्रहेभो चे प्रचिचामित्यादियजुक्तयसाधं होमं विधन्ते,— "तिख उत्तरा ब्राइतीर्जुहोति षट् सम्बद्धने षड्डा स्टतव स्रतुमि-रेवैनप्र ब्रमयति" (५।४।६%) इति ।

पूर्वे तरपचभन्ना त्रनुपरिक्रम्य होमं विधत्ते,—"यदनुपरिक्रामं नुड्यादन्तरवचारिण ह्र इदं कुर्यादयो खन्वाडः कसां वा प्रह दिश्च हदः कसां वेत्यनुपरिक्राममेव होत्य्यमपरिवर्गमेवेन ह्र प्रमाण्यति"(५।४।३००) दित । 'त्रनुपरिक्रामं' (त्रनुक्रमेण परिता ध्रमणं कला) यदि 'जुड्यात्', तदानीं तं 'हदं' 'श्रन्तरवचारिणम्' (त्रश्चिचेचस्य मध्ये प्रविद्य चरनां) कुर्यात् । स च प्रविष्टः क्रूरलात् उपद्रवं करेत्येव । तस्मात् परिश्रमणं न कर्त्तव्यमिति पूर्वः पचः। श्रयोष्ठस्यः सिद्धान्तोपक्रमार्थः,—श्रभिज्ञास्त्रेवम् 'श्राडः'। खलु-श्रह श्रम्य उपन्यस्तपचनिराकरणद्योतमार्थः,—यदुकं पूर्वपविषा, तस्र

^{*} चत्र चभिचास्त्रेयमाजः। खनु-चर्ःग्रम्द इति सर्वत्र पाठोः न सम्यक्।

भवतीत्वर्थः । श्रयं 'हद्रः' सर्वेष सञ्चरण् कदा 'कस्यां' 'दिशि' वर्त्तते, कस्यां वा न वर्त्तत इति के। श्वातं समर्थः, श्रते। हद्दमन्बेष्टुम् अनुक्रमेण परिश्रमणं क्रत्वेव शोतयं। तथा सति परिते। यण-कापि स्तितं हद्दं श्रवर्शयत्वेव शान्तं करे।ति । शान्तत्वादेव श्रन्तः प्रविश्व यं, हद्दः सन् श्रन्तः सञ्चरन् न उपद्वं करे।तीत्वर्थः।

"नमें। इद्रेभ्यः" दत्यादिमकाषां यत्रमानवाचनं विधक्ते,—"एता वे देवताः सुवर्ग्या या उत्तमास्ता यत्रमानं वाचयित ताभिरेवेनश्र सुवर्गं खें। कं गमयित" (५१४।६%) दित। एतैर्वेजुिभः प्रतिपाद्या या देवताः सन्ति, ताः खर्गहेतवः । श्रत एवे। त्तमाः (उत्क्रष्टाः), चरममक्तप्रतिपाद्यवादा उत्तमलं। ता श्रध्वर्य्यंत्रमानं वाचयेत्, तत्प्रतिपादकानि यज्ञंषि पाठयेदित्यर्थः। तथा सति ताभिरेव देवताभिरेनं यजमानं खर्गं प्रापयति।

श्रक्षंपर्णस्य परित्यागदेशं विधत्ते,—"यं दिखात् तस्य सद्धरे पश्रतां न्यस्येद् यः प्रथमः पर्द्धरभितिष्ठति स श्रार्त्तिमार्च्छति" (५।४।३%) इति। 'यं' पुरुषं यअमानः 'दिखात्', 'तस्य' 'पश्रद्धतां'. 'सञ्चरे' प्रदेशे तदर्कपर्णं परित्यन्तेत्। तत् त्यकं पर्णं यः पर्द्धः प्रथमः इतरेभ्यः पद्भग्यः पूर्वः सन् श्रभिक्षस्य तिष्ठति, स स्रियेत ॥

> प्रश्ने तु पश्चमे प्रोकः श्रतस्त्रीयशोमकः । सभापतिभ्य दत्यन्त एका मन्त्रः प्रकीर्त्तितः॥ श्रवार्थायेत्यन्त एकसन्त्रसीत्यन्त उत्तरः।

श्रव विनिधागसंग्रह:.---

^{*} व्यत्र व्ययमिति पाठे। भवितुं युक्तः।

'नमा स्ट्रेंभ्यः' इत्येष प्रथियादिनिभेदतः॥ चेधा भित्रसता होमे ष्यास्त्रा इह कीर्त्तिताः॥

षथ मीमांसा, दश्रमाध्यायस्याष्टमपादे (४ प्र०) चिन्तितम् ।

जित्तिं के विकल्पे एवं पयः श्रुतिः ?। विकल्पः पूर्ववत्, मैवं वाक्षेक्यात् पयसा सह॥

श्री श्रूयते,—''अर्त्तिलयवाया वा जुड़याद् गवीधुकयवाया वा, न याम्यान् पद्भूत् हिनिस्त नारण्यानथी खन्नाडरनाडितर्वे अर्त्तिलाश्च गवीधुकाश्चेयज्ञचीरेण जुडोत्याग्नेयी वा एषा यदजा श्राडत्वेव जुडोति'' (५१४१३श्व०) दित। 'अर्त्तिलाः' श्रारण्यतिलाः । 'गवीधुकाः' श्रारण्यने गिधूमाः । तयोहभयोर्विकल्पः श्रीत एव । 'श्रनाडितः' दित पूर्वयोः पच्चयोद्वेषितलात् होमाभावस्तृतीयः पचः । न चाच अर्त्तिलगवीधुकयोन् रनाडितिलवचनेन पर्युदासः सम्भवति, श्राडितिपदान्वितस्य नञ्पदस्य अर्त्तिलवचनेन पर्युदासः सम्भवति, श्राडितिपदान्वितस्य नञ्पदस्य अर्त्तिलवचनेन पर्युदासः सम्भवति, श्राडितिपदान्वितस्य नञ्पदस्य अर्त्तिलवचनेन पर्युदासः सम्भवति, श्राडितिपदान्वितस्य । एतेषां परस्यरविरुद्धानां चतुर्णां गत्यन्तराभावेन षोड्शीयहणाग्रहणविद्यत्वस्यः। दिति प्राप्ते श्रूमः,—पयोविधिना सद्द अर्त्तिलवचोर्यन्वादलं युक्तं,—गाम्यारण्यपद्मपद्धिंसाराहित्येन प्रश्रस्ययोरिप अर्त्तिलन्यविधुकयोरिग्रहोमं प्रति श्राडितिलं नास्ति, पयसस्य तदस्ति; दत्यं महाभाग पय दति, तसादर्थवादः ॥

वेदार्थस्य प्रकाभेन तमा हार्दे विनामयन्।
पुमर्थास्तुरा देयादिद्यातीर्थमहेसरः॥
4 A

द्रति सायनाचार्यविर्षिते माधवीये वेदार्थप्रकाचे क्रण्यकु:-संदिताभाव्ये चतुर्यंकाण्डे पञ्चमप्रपाठके एकादक्रीऽनुवाकः ॥०॥

द्रित श्रीमद्राजाधिराजपरमेश्वरवैदिकमार्गप्रवर्णकश्रीवीरमुख-भूपालसाम्राज्यधुरश्वरेण सायनाचार्योण विरचिते माधवीये वेदार्थ-प्रकाश्रनामकतैत्तिरीययजुःसंदिताभाखे चतुर्यकाच्छे पश्चमः प्रपाठकः समूर्थः ॥ • ॥

॥ ।। 🗳 तस्त् ॥ ।।।

१०। क्योगबीशाय नमः १०॥

श्रव तैतिरीयसंहिताभाष्टे

चतुर्थकाण्डे षष्ठप्रपाठके प्रथमाऽनुवाकः।

श्रम्भानुक्य पंति शिश्रियाणां वाते प्रक्रम्ये वर्तणस्य श्रुषो । श्रुह्म श्रोषंधीभ्यो वनस्पित्भ्योऽधिसम्भृतां तां न श्रुष्मूको धत्त महतः सश्रर्गणाः (१) । श्राम्य्रस्ते श्रुद्मुं ते श्रुपंच्छत् यं दिषाः (१) । समुद्रस्यं त्वाऽवाक्-याम्चे परिच्ययामित । पावको श्रस्तभ्यं श्रिको भेव (१)। श्रिमस्यं त्वा श्ररायुणामे परिच्ययामित । पावको श्रस्तभ्यः श्रिको भेव १।

जमनुपं वेत्रसेऽवंत्तरब्दिषा। अग्नें पित्तम्पार्म-सि^(k)। मण्डूंकि ताभिरागंदि सेमद्री युग्नं। पावक-वंश्वेद्र श्रिवं क्रिंधि^(k)। पावक आ चित्रयंक्या कृपा। श्रामंत् रुष्च जुषस्रो न भानुनी^(e)। तूर्वक यामुद्रोतं-श्रस्य न रण् आ या पृथे। न तंत्रषायो श्रुअरंः^(F)। श्रमें पावक रोचिया मृन्द्रया देव जिल्लया। श्रा देवान्॥२॥

वृद्धि यश्चि ष(८)। स नः पावक दीदिवाऽमें देवाप्र प्रश्न वह। उपं युन्नः हिवस्रं नः(१०)। श्रुपामिदं न्ययं-नः समुद्रस्यं निवश्नं। श्रुन्यं ते श्रुसात्तंपन्तु हेत्यः पावको श्रासम्यं श्रुवे। भव(१९)। नर्मस्ते हरसे श्रोषिषे नर्मस्ते श्रस्विषे। श्रुन्यं ते श्रुसात्तंपन्तु हेत्यः। पावको श्रासम्यं श्रुवे। भव(१९)। नृषदे वद्॥ ॥ ॥ ॥

श्रापुषदे वड् वन्सदे वड् विर्धिषदे वट् सेव्विदे वट्^(१९)। ये देवा देवानां युज्ञिया युज्ञियानाः संवत्स-रोणुमुपं भागमासते। श्राष्टुतादें। हृविषा युज्ञे श्रास्मन् स्वयं जुहुध्वं मधुना घृतस्यं^(१४)। ये देवा देवेषधि देवत्वमायन् ये ब्रह्मणः पुर एतारें। श्रस्य। येभ्यो नर्तें पर्वते धाम किञ्चन न ते दिवा न प्रंशिया श्रिय झुर्षुं^(१४)। प्राणुदाः॥ ४॥

त्रपान्दा व्यान्दाश्चेश्च्दा विचेदा विरिवोदाः। श्रुम्यं ते श्रुसार्त्तपन्त द्वेतयेः। पाव्का श्रुसार्धः श्रिका भव^(१९)। श्रुप्तिस्त्रियोनं श्रोचिषा यः स्टिश्वं न्यंचिषां। श्रुप्तिनेति यः सते र्थिं^(१०)। सैनानीकेन सुविद्ची श्रसा यष्ट्री देवाः श्रायंजिषः ख्रास्ति (१०)। श्रदंशो गोपा जुत नंः पर्स्पा श्रमें सुमद्त रेविहंदीहि (१८)॥ ॥ ५॥

उपं। द्वान्। वट्। प्रांगुदाः। चतुंश्वत्वारिःशच।

द्ति तैत्तिरीयसंदितायां चतुर्थकाग्डे षष्ठप्रपाठके प्रथमाऽनुवाकः ॥०॥

॥०॥ श्रीगणेशाय नमः ॥०॥

थस निश्वितं वेदा यो वेदेभ्योऽस्तिसं जगत्। निर्मामे तमइं वन्दे विद्यातीर्थमहेश्वरम्॥ प्रपाठके पञ्चमे हि चितिसम्पूर्णनन्तरं। वर्णिता स्ट्रहोमोऽथ षष्ठे वाच्याऽग्निसंक्तृतिः॥ परिषेचनमारभ्य संस्कारा ये चिकीर्षिताः। ते पञ्चस्वनुवाकेषु प्रोक्ताः ग्रेषीऽश्वमेधगः॥

तच प्रथमानुवाने परिषेचनिकर्षणाद्योऽभिधीयने । कस्यः, 'खदकुसमादायाध्वर्युरमासूर्जमिति चिः प्रदिचणमग्निं परिषिञ्चन् पर्मेति' इति । पाठस्त,—"श्रमासूर्क्जं पर्वते ग्रिश्रियाणां वाते पर्क्जन्मे वदणस्य ग्रुमे । श्रद्मा श्रोषधीभ्या वनस्पतिभ्याऽधिसस्भृतां तां न इसमूर्कं धत्त मदतः सप्ट्रराखाः(१)" इति । हे 'मदतः', 'संरराखाः' (सन्तन्द्रामश्रीचाः) यूयम् चन्धादिगताम् 'कर्कं' (सखरेतुम्) 'रचम्' (ग्रकं) 'गः' (चस्राभः) 'धत्त' (सन्यादयत)। कीदृष्ठमिषं? 'ग्रव्यान्' (पाषाणे), 'पर्वते' (मेदिनन्ध्यिष्टमतदादौ),'वाते' (प्रचण्डवायौ),'पर्कन्वे' (वर्षण्डामे प्रौढ़े मेघे), 'वदण्डा ग्रुप्ते' (वदण्यम्बन्धिनि वस्ते) च 'त्रित्रियाणाम्' (ग्रात्रिताम्),'क्रकें' (सारभ्रतां), तथा 'ग्रह्मः' (कर्लेभ्यः), 'ग्रीवधीश्वः' (ब्रीष्ट्यवादिश्वः), 'वनस्रतिभ्यः ' (खदुमरादिश्वः), स्कात्रात् 'ग्रधिसभृतां' (ग्रधिकत्वेन सम्यक् सन्यादितां)। यदस्तम् ज्यादिव्यात्रित्य सारवेनावतिष्ठते, यच जसादिश्वः सन्याद्यते, यदपि ग्रस्माकं वस्त्रहेतुः, तथाविधमस्तं प्रयक्तः ।

तसेतं मकं विनियुद्गे,—"श्रमकूर्जमिति परिषिद्यति मार्जव-व्येवेनमधो तर्पययोव स एनं द्विरेश्चिष्ठश्रोत्तश्रामससुद्भिक्षोक उपितष्ठते" (५१४१४ श्र०) इति । 'एनं' श्रश्चिं 'मार्जयित' (ग्रद्धं करोति), श्रिष च 'तर्पयित', 'स' 'द्वप्तः' श्रश्चिः खर्गकोको जुत्पीड़ारिकाः सन् 'एनं' (यजमानं) चेवते ।

एतदेदनं प्रशंसति,—"दृष्यति प्रजया पद्म्भिर्थं एवं वेद" (५।४। ४ %) इति ।

मक्तस्य चतुर्थपादे 'ऊर्जं' 'महतः' इति पद्दयस्य तात्पर्थं दर्भवति,—"तां न इत्रमूजं धक्त महतः स्ट्रर्राणा इत्याहासं वा कर्क् असं महते। 'अर्क्' (५।४।४ अ॰) इति । 'ऊर्क्' (बस्रहेतः) 'अन्तमेव'; 'महतः' अपि अन्नसम्पादकत्वात् 'अर्च', अत सम्बोः पठनादसं प्राप्तोति ।

कर्यः, 'श्रम्भः से सुदसुं ते ग्राग्यस्तिति निः परिविद्यन् प्रति-पर्येति' इति । पाठस्त,—"श्रमः से सुदमुं ते ग्राग्यस्तु यं दिशः^(१)" इति । हे 'श्रम्मन्' (इष्टकाभिर्दृत्ं निष्पादितलात् पाषास्त्रसृत्र) श्रग्ने, सत् 'ते' 'सुत्' (तदीया सुत्पीड़ा) या च 'ते' 'ग्राक्' (तदीयः सन्तापः), तरुभयमपि 'यं' वैरिशं 'दिशः', 'श्रमुं' देखम् 'स्वस्तुः' (प्राप्नोत्त) ।

त्रस्य मन्त्रस्य तात्पर्यं दर्भवति,—"त्रमाश्सी नुदम् ते ग्रुग्टब्हतु यं दिश्व रत्यादं यमेव देष्टि तमस्य नुधा च ग्रुशा चार्पविति" (५। ४।४%) रति ।

परिषेचनकाखे प्रदक्षिणार्श्य विश्वस्ते,—"णिः परिविश्वन् पर्धेति चिरुदा श्रियोवानेवाग्निस्य ग्रुष्ट्र क्रमयति" (५।४।४%) इति । श्रीरास्वनीयादिक्षेण चिगुणतम् ।

परिषेचनरहितामप्रदेखिणादृष्तिं विधन्ते,—''वि: पुन: पर्चेति वट् सन्पद्यन्ते बद्धा खतव खतुभिरेवाद्य ग्रुष्ट्र प्रमयित''(५१४।४५०) इति । पूर्वेष प्रदेखिणमयेष सह पद्यक्कासम्पत्तिः ।

कस्यः, 'श्रवकां वेतसवायां मण्डूकञ्च दीर्घवंत्रे प्रवश्च समुद्रश्च लाऽवाकवेति सप्तिभिरष्टाभिर्वाद्यं विकर्षति' इति । तत्र प्रथमामाइ,— "समुद्रश्च ला श्रवाकयाग्रे परिव्यवामि । पावका श्रव्यभ्यः विवेष भव^(२)" इति । श्रवाका श्रेवासं । हे 'श्रग्ने', लां 'समुद्रश्च' 'श्रवाकया' (समुद्रश्चमिना श्रेशेनां) 'परिव्यवामिष' (परितः संवर्णामि) उपरि-

^{*} परिवेचनरिक्ताम् प्रदेशिकास्तिमिति पाठे। भवितुं युक्तः।

[†] भैवाबीन हिंत पाठी अवितुं बुक्तः।

भागे सर्वच विकर्षामीत्यर्थः । त्वच्च 'त्रसाथम्' (त्रसादर्थं) 'पावकः' (ब्रोधकः) 'ब्रिवः' (ब्रान्तः) च 'भव' ।

श्रय दितीयामाइ,—"हिमस्य ला जरायुणाग्ने परिव्ययामसि । पावको श्रमभ्यः भिवो भव^(४)" दति । हे 'श्रग्ने', लां 'हिमस्य' (ग्रैत्यस्त), 'अरायुणा' (जरायुवदुत्पत्तिस्त्तानीयेन ग्रैवालेन)। क्रेषं पूर्ववत् ।

त्रय हतीयामाइ,—"उप जमसुप बेतसे अस्तरस्रदीच्या । श्री पित्तमपामसि (६)" इति । हे 'श्री हो', 'अमा' पृथिती, तस्याम् 'उप'-गते। वर्त्तसे । तथा 'बेतसे' (वश्रुक्ते) 'उप'-गते। वर्त्तसे । तथा 'बर्दीच्या' (बर्दीजव्यपि) 'श्रवत्तरम्' (श्रितश्रयेन रचकले) यथा भवति, तथा उपगते। वर्त्तसे । तथा लम् 'श्रपां' 'पित्तम्' 'श्रसि' (तेजा असि)।

श्रथ चतुर्थीमार,—"मण्डूिक ताभिरागिर सेमं नो यशं। पात्रकवर्ण् श्रिवं क्रिधि^(१)" दति । हे 'मण्डूिक' (मण्डूकजातीये), 'ताभि:' (समनन्तरेक्ताभि: ऋग्भिः) सर 'श्रागिर्ह' (श्रागच्छ)। 'सा' लम् 'दमं' (श्रनृष्टीयमानं) 'नः' (श्रसादीयं) 'यशं' 'पात्रकवर्णम्' (श्रियसमानतेजस्कं) 'श्रिवं' (फल्लप्रदलेन श्रान्तं) 'क्रिधं' (कुरू)।

त्रय पश्चमीमाइ,—"पावक त्रा चितयनया क्रपा। चामन् रहचे जबसे न भानुना(०)" इति। हे मण्डूिक, 'पावके' (त्रसिन्नग्री) विषयभ्रते सति 'चितयनया' (चिन्यानया) 'क्रपा' (क्रपया) सामर्थेन युक्ता सती 'त्रा' (इहागच्छ)। लिय त्रागतयां सत्यां त्रयमग्रिः 'चामन्'

^{* &#}x27;नदोजलोम्बपि' इति पाठो भवितुं युक्तः।

(चाचि पृथियां) 'इक्चे' (दीप्तिमान्)। तत्र दृष्टानाः,—'उषयः न भामुना' (उषःकाखसम्बन्धिना प्रकाज्ञेन यथा पदार्था दीयन्ते तदत्)।

श्रथ वहीमाइ,—"द्वर्ष यामकेतमस्य नू रण श्रा यो घृणे। न तहवाणा श्रजरः (म)" इति। 'यः' श्रिमः, 'एतमस्य' (गमनकुष्रसस्य श्रथस्य) 'यामन्' (नियामकः) 'रणे' (युद्धे) 'द्वर्षक्य' (परवलानि इंसिन्नव) 'श्रा'-'घृणे' 'नु' (सर्वता दीयते सनु), से।ऽग्निः 'श्रजरः' (जरारहितः) 'तहवाणः' 'न' (हण्णायुक्तो न) भवति। यथा लोके श्रीवनमनस्वभावम् श्रश्चं वामइस्तगतेन सन्तिनेन दृढं नियम्य रणे प्रवर्त्तमानः पुरुषः परवलानि इंसन् न लरते, एवमयमग्निः प्रज्यलति, न कदाचित् जीर्यति, नायसौ हण्णायुक्तः, किन्तु हप्त इत्यर्थः।

त्रथ सप्तमीमाइ,—"त्रग्ने पावक रोचिया मन्द्रया देव जिज्ञया। त्रा देवान् विश्व यि च^(८)" दति। हे 'पावक' (ग्रोधक), 'देव' (श्रोतनात्मक), 'त्रग्ने', 'रोचिया' (दीप्तिमत्या) 'मन्द्रया' (स्रह्णया) 'जिज्ञया' (वाचा) 'देवान्' 'त्रा'—'विश्व' (त्रावह), 'यिश्व' (यज)।

श्रयाष्टमीमाइ,—''स नः पावक दीदिवाऽग्ने देवार इहावह। खप यञ्चर हिवस नः'('')'' दति। हे 'पावक' (श्रोधक), 'दीदिवः' (दीष्यमान), 'श्रग्ने', 'नः' (श्रसादधें) 'देवान्' 'इह' (कर्माण) 'श्रावह', श्रसाकम् दमं 'यञ्चं' 'हिवस' 'खप' (देवसमीपे) प्रापय।

एतेरष्टिभिर्मन्तेः साधं विकर्षणं विधन्ते,—"त्रपां वा एतत् पुष्यं यदितसाऽपाष्ट्र बरोऽवका वेतसमाखया चावकाभिस्र विकर्षति त्रापा वै मान्ताः मान्ताभिरेवास्य ग्रांच्य प्रमयति" (५।४।४%) इति । योऽयं 'बेतसः', चेाऽयम् 'अपां' पुत्र्यसानीयः, अपा बासमानकात् । यास्य 'अवकाः' (श्वेवासाभिधाः) ता 'अपां अरः) (धारं दक्षे मण्डमिव)। तसात् एताभ्यामित्रं विकर्षेत्,—चितेदपरि नानादिनु विविधमेतद्भयम् आकर्षेदित्य्यः)। 'आपो' दाइनिवारकतात् 'ब्रान्ताः', अप्यक्षिमा द्रव्यदयेन विकर्षेणे सति 'ब्रान्ताभः' खिर्मिः 'एव' 'अस्य' अमेः 'अप्रेचे' 'ब्रम्यति'।

पुर्वे कि स्वाद्येन सह सम्दूक्का पि कर्ष में भक्क विभन्ते,—
"यो वा अग्निं चितं प्रथमः प्रग्राभिकामतीयरा वे तर प्राचा
प्रदेश सम्दूकेन विकर्ष येष वे प्रग्रासनुपन्नी वनीया न वा एक
ग्राम्येषु प्रग्रुषु हिता नार छोषु तसेव प्रश्वा प्रयेवित" (५।४।४ प्र०) हित ।
गाम दिवा जादीनां सध्ये 'याः' 'प्रग्रुः' हमम् हष्टका भिः 'चितम्'
'प्रग्निं' प्रथमम् मधिक हा पादेन आका सति, 'तं' प्रग्नुं बन्ता पेन प्रदेशुम्
प्रथमितः प्रभुभवित । तसात् प्रथम पेक विकर्षणं न खुर्यात्, किन्तु
'सण्डूकेन' खुर्यात् । सण्डूकच या गयो ग्रेषु 'पा ग्येषु' 'चार छोषु' च
प्राप्तु प्रमन्तर्भावा हो के प्रपि गोम दिवा दिव दुपयो गाद भेना च केना प्रप्तु
जीयो व भवति । यतसीन विकर्षणे तसेव मण्डूकं बन्ता पेन
यो जयित ।

तसिन् विकर्षे "यसुद्रस्य ला" दत्यादीन् सन्तान् विनियुक्के,— "त्रष्टाभिर्विकर्षत्यष्टाचरा गायत्री मायने।ऽश्चियावादेवाश्चिकस्य द्राष्ट्रश्च समयति" (५।४।४॥०) दति ।

^{*} सार इति भवितुं युक्तः।

शामान्वता विदितान् मन्त्रान् विश्वेषता विधन्तं,—"पावकं-वतीभिरशं वै पावकाऽकीवास्त्र इर्ड्ड्ड्डम् अमयति"(५।४।४ त्र ०) दति। 'पावकः त्रसान्धं त्रिवे। भव' दृत्येवं पावकत्रन्दे। यासु सहतुं विद्यते, ताः पावकवत्य दृत्यर्थः; ताभिः 'विकर्षतीत्यनुवर्णते'। पावकस्याग्रेरस्र-वर्षनहेंतुत्वावस्त्रत्वम् ।

कर्षः, 'श्रपामिनं गयनं, नमको इर्रो ग्रोविषा इति दाभ्या-मग्निमिषराइति' इति । तत्र प्रथमामाइ,—''श्रपामिदं न्ययनप्र ससुद्रख निवेशनं । श्रम्यं ते श्रंकत् तपन्तु हेतयः पावका श्रक्षान्यप्र विवे मव^(१९)" इति । 'इदं' वित्याग्निखानं 'श्रपां' 'न्ययनं' (निथमेन प्राप्तिखानं), यागदारापि श्रापः प्राप्यन्ते । श्रत एवं श्रपां बद्धस्तात् 'ससुद्रख' 'निवेशनं' (य्टइखानीयं) । तद्रूषं हे श्रग्नें, सदीया 'हेतयः' श्रक्तांतः 'श्रन्थं' विरोधिनं पुद्रखं 'तपन्तु' (क्षेश्रयन्तु) । 'श्रक्षान्यं' (श्रक्षाद्यें) 'पावकः' (श्रद्धः) 'श्रितः' (श्रान्तः) च 'भव' ।

श्रय दितींयामाइ,—''नमसी इरने ब्रोचिव नमसी श्रस्तर्चिव । श्रम्यं ते श्रसात् तपन्तुं हेतयः पावका श्रस्तम्यः ब्रिवे। भव^(१२)" इति । हे श्रम्भ, 'ते' (तव) 'इरचें' (रसाना इन्हें) 'ब्रोचिवे' (ब्रोवणहेतवे) तेजवे 'नमः' 'श्रस्तु' । किंद्ध 'तें' (तव) 'श्रेचिवे' (पदार्थान् प्रकाश-बिचें तेजवे) 'नमः' 'श्रस्तु' । श्रीत्यमित्यादिपूर्ववत् ।

एतमान्त्रवाधात् त्रधिरोहणात् पूर्वशुपानत्प्रतिमाचनं विधन्ते,— "स्त्युवी एव यद्मिर्नद्वाण एतद्र्यं यत् हाणाजिनं काणीं उपा-नहाशुपसुद्धते ब्रह्मणैव स्थीरनार्धन्ते" (५१४१४३४०) इति । अग्ने-दीहकलान्तृत्युवं प्रविद्धं, 'हाणाजिनं' तु 'ब्रह्मणः' (वेदस्थ) 'रूपं'; अत एव दीचाप्रकरणे समाखायते, "ख्यामे वै देवेश्वा यञ्चायातिहमाने कृष्णे कृष्

खपानदुपने।कादूर्डं यत् चितरिधरे।इणं, तदक्कभूते दितीचेऽधिन् मन्त्रे प्रथमार्द्भस्य तात्पर्यं दर्भयति,—"नमसे इरवे बोचिष दत्याइ नमक्कत्य दि वसीया समुपचरिन्त" (५१४।४५०) दृति । खोके दि थोऽतिबयेन वसुमान् भवति, तं सत्या बादौ 'नमक्कत्य', पद्याद् 'खपचरिन्त'; तते।ऽग्नेरपाच नमस्कारे। युक्तः ।

हतीयपादस्य तात्पर्थं दर्भवति,—"चन्यं ते चसात् तपन्तु हेतय इत्याह यमेव देष्टि तमस्य ग्रुचार्पवति" (५१४।४च॰) इति । 'तं' (देखम्) 'ऋस्य' (ऋग्नेः) सन्तापेन योजवति ।

चतुर्थपादस्य तात्पर्यः दर्भयति,—"पावका ऋसम्बर्ध क्रिवेर भवेत्याहास्रं वै पावकाऽस्रमेवावहन्थे" (५।४।४ % ॰) इति ।

श्रपामिदं न्यमित्यादिमक्षसङ्घावित्रिष्टम् श्रधिरोइणं विधन्ते,— "दाभ्यामधिकामति प्रतिष्ठित्ये" (५।४।४ %) इति ।

सामान्येन विनिष्ठकी मन्त्री पुनर्विष्ठेषाकारेण विनिष्ठक्की,— "श्रपखवतीभ्याष्ट्र श्रान्धी" (५१४१४ व ॰) इति । "श्रपामिदम्" इत्येवम् श्रपश्रम्दो यथोर्ष्कं चोस्ते श्रपखवत्यौ, ताभ्यामिधरे।इपे सित श्रीम-तापस्य श्रान्तिर्भवति ।

कर्णः, 'नृषदे विकित पञ्चभिक्त्तरवेदिवद्शिष्ट खयमाद्यशं वा याचार्यं' इति । पाठस्त,—"नृषदे वद अपुषदे वद वनसदे वद् वर्ष्टिषदे वद् सुवर्विदे वद्^(११)" इति । नृषु (मनुख्येषु) आठराग्निक्ष्पेष सीदतीति 'नृषत्', तसी 'वद' (इविद्त्तं) । वाड्वक्ष्पेषाप्तु सीदतीति 'अपुषत्'। दावाग्निक्ष्पेष वने सीदतीति 'वनसत्'। आद्वनीयादिक्ष्पेष वर्षिष यञ्चे सीदतीति 'वर्ष्टिसत्'। आदित्यक्ष्पेष सुवर्गं विन्हते, सभते, इति 'सुवर्वित्'।

एतान् मन्त्रान् विनियुङ्ग्ते,—"नृषदे विडिति व्याघारवित पंत्र्धा-ज्ञत्या वज्ञसुखमारभते" (५।४।५%) इति । पञ्चसङ्कोपेतया श्राज्जत्या वज्ञे सुख्यमङ्गं खपकान्तवान् भवति ।

श्रय द्विणमंशसुत्तरां श्रोणिमित्यादिकं (?) वक्कलं विधत्ते,— "श्रद्रणया याघारयित, तसाद्रत्त्ण्या पत्रवे।ऽङ्गानि प्रदर्शन प्रति-हित्यै" (५।४।५%) द्वि ।

मन्त्रगतं वट्क्न्दं प्रशंगति,—"यदषट्कुर्याद् यातयामस्य वषट्-कारः स्टाद् यस्र वषट्कुर्याद्रचार्रमि यज्ञर्र स्न्युर्वेडित्याद्र परोचनीव

स्वयन्तिखादिनन्तसङ्गाविधिष्टिमिति पाठो भवितुं युक्तः।

वपद्भरोति नास यातवामा वपद्भारी भवति न यश्च १ रवार्सि प्रति"(५।४।५ प्र॰) इति। एतथ वाकां,—"समी वायुमीतरिया इधातु" (४।९।४ प्र॰) इति मन्त्रे, "तसी च देवि वपडस्त तुश्वम्" इत्यस सास्त्रानक्ष्यमं (?) प्राक्षसेन (५।९।५ प्र॰) खटाइस्त सम्बन्धितम्।

करणः, 'वे देवा देवानामिति दान्धामनु परिचार' दक्षा मधु-मिश्रेष दर्भगुसुष्टिनाग्निं खवे।चति' इति । तत्र प्रधमास्त्रमाइ,-"ये देवा देवानां पश्चिया यश्चियानाष्ट्र स्वतारीणनुप भागमासते। चडतादी दविषो यज्ञे श्रीसान् सायं मुख्य मधुना घृतस्र^(९०)" इति । दिविधा देवा इविर्भुजः,—इन्द्रवर्षादयः अरीरनिर्वास्काः, प्राचात्मकाः प्राचापानाद्यस्, दीयतीति शुत्मत्तेद्भवयापि सम्बद्धः चभवेऽयेते वश्चियाः, तचेन्द्रादका 'देवाः' यज्ञेन पूञ्चलाद् वश्चियाः, प्राकादयस्य चन्नेन पूजनामार् यज्ञियाः। इवं सति 'यज्ञियानाम्' रन्त्रादीनां 'देवानां' सम्बन्धिनः प्राणक्याः 'वे' व्यक्तियानां" 'बंदसरीषं' (संक्सरेण साधं) वित्याग्निं 'भागं' (अजनीवम्) 'खप'-'त्रायते' (वेवनो)। प्राचाचा 'त्रज्ञतादः',—डतं खाद्यकारे वर्मापतम् त्रदन्तीति ज्ञताद इन्ह्रादयः, तदिपरीतनात् प्राप्त 'बज्जतादः'। तथाविधा हे प्राप्तः, 'त्रसिन्' 'यद्ये' 'इक्विः' (श्रस्तमिक्र्यमानसः) मधुरखो मानं 'जुडधं',—मदीचेन खाद्याकारसमर्पधेन विनाः 'खब्मं' एव स्वीकुरत।

^{*} चन 'यचीयाः' ते इति विंवा 'यचीयाः' इति पाठी अवितुं यक्तः।

[†] अर्ज 'मधने। घृतका' श्रति पाठी अवितुं युक्तः।

श्रम इतिवासाय,—''वे देवा देवेवाध देवलकाष्ट्रम् चे महाणः भुद इतारा श्रम्मः। बेभ्या मर्ले पवते धाम किञ्चन न ते दिवा व पृत्तिव्या श्रम्मः खुषु (१५)" दित । 'बे' प्राणा 'इवेषु' (इत्रादिषु) श्रिपं 'श्रिषं (श्रिष्ठावत्वेन) 'देवलमायन्' (प्राप्ताः) प्राणेरेवाधिष्ठता एवेन्त्रादिविग्रहा व्यवहरम्तीत्यर्थः। किञ्च 'बे' प्राणाः 'श्रम्भः' 'महाणः' (वीयमानयाग्रेः, परिचृद्रम्भ) 'पुरः' 'एतारः' (पृत्तो गन्नारः) निर्वाहका दत्यर्थः। न खलु प्राणेर्विना चीयमानाऽग्रिनिवेग्दं श्रक्यते। किञ्च 'स्रमः' 'श्रदे' (यान् विना) 'किञ्चन' 'धाम' विन्नां 'न एवते' (न श्रम्भः' 'श्रदे' (यान् विना) 'किञ्चन' 'धाम' विन्नां 'न एवते' (न श्रम्भः' 'श्रदे' (प्राणक्षा देवाः) 'दिवा न' (दिव्यपि न) तिष्ठित्वा । 'पृथिव्यां न' (भ्रमावपि न) तिष्ठित्वा, किस्तु 'सुषु' (पर्वतयानुग्रहुत्रेषु श्ररीरगतचनुरादिगोसकेषु) श्राञित्य वर्त्तको।

एतसम्बद्धं विनियुक्को,—"क्रतादो वा सन्ये देवाः यक्रतादोऽन्ये सानग्रिचिदेवे। भयान् प्रीणाति ये देवा देवानामिति दशा मधु-मित्रेणावे। चित्त, क्रताद्धेव देवान् यक्रताद्धं स्वत्रमानः प्रीणाति, ते स्वत्रमानं प्रीयन्ति, दश्गेव क्रतादः प्रीणाति सधुनाऽक्रतादो, सान्यं वा एतद्सं सद्धि, याद्धं मधु, सद्धा मधुमित्रेणावे। चंत्रभ्यस्थान-दश्ये" (५१४१५व०) दति । 'क्रतादः' दन्ताद्यः, 'यक्रतादः' प्राणाः, 'ताव्' 'सधुमित्रेण' विषा' यवस् 'विश्वित्' प्रीयचित्रमर्थति, यतः 'मधुमित्रेण' 'दशा' स्वत्रचणं कुर्यात्। तेव चे। भये प्रीताः स्को स्वमानमि 'प्रीयस्ति'। तद्दापि इन्द्रादीनां दशा प्रीतिः, प्राणानां 'मधुना' प्रीतः। किञ्च दश्चे साम्यतात् सधुनस्थारकत्वाद्, सभाभ्यास् व्यवे। स्वते स्वते सभास्य स्वादितं भवति । भवास्त्रसाधनं प्रौढ़दर्भसृष्टिं विधत्ते,—"गुसृष्टिनाऽवेश्विति प्रानापत्थो वे गुसृष्टिः सवेशिनत्वाय" (५१४१५२०) दति । गुदः स्टूबो
दर्भसृष्टिः 'गुसृष्टिः', तस्य प्रजापतिवत् प्रौढ़त्वात् प्राजापत्यत्वम्,
भतस्तेनावेश्वर्षं 'सवेशिनत्वाय' भवति । भिन्नदिष् प्रजापतिने।त्पादितनात् 'प्राजापत्यः' ।

तेन समानयोजिलं सन्त्रदिलं प्रश्नंसति,—"दाश्यां प्रतिष्ठित्ये" (५।४।५७०) इति ।

श्रवीचणकाखे परिता असणं विधन्ते,—"श्रनुपरिचारसवेचिति श्रपरिकांसेवेनान् प्रीणाति" (५१४।५२०) इति । 'श्रनुपरिचारस्' (श्रनुक्रसेख परितश्चरित्वा) 'श्रपरिवर्गस्' 'एव' (श्रम्धवयवेषु कस्थापि श्रवर्जनसङ्ख्वेव) 'एनान्' (श्रम्धवयवान्) 'प्रीणाति।

कस्यः, 'प्राणदा अपानदा इति प्रत्यवरोद्धा' इति । पाठस्त,—
"प्राणदा अपानदा व्यानदाश्चनुदी वर्षेदा विद्वादाः । अन्यं ते
अस्तत् तपन्तु हेतयः पावका अस्त्रभ्यः शिवा भव^(१९)" इति ।
यजमानाय प्राणं ददातीति 'प्राणदाः', प्राणं सुस्थिरं करोतीत्यर्थः।
एवमुक्तरवापि । वर्षे वस्तं । वर्षिवः प्रजा । अस्तमित्यादि पूर्ववत् ।

प्राणादिदानप्रयक्तिपूर्व्वकं मन्त्रं व्याचिष्टे,—"विवा एव प्राण्णेः प्रजया पर्छि भिर्च्छ थते चे। जिं चिन्वस्थिकामित प्राण्टा अपानदा द्रत्याद्य प्राणानेवात्मस्यने वचै। दा विवेदा दत्याद्य प्रजा वे वर्षः प्रज्ञवे विवेदः प्रजानेव प्रकृतात्मस्यने" (५।४।५%) दति। चे। यज-माने। जिंच्यनकाखे जिम्बिरे दित, एव प्राणादिभिवियुच्यते, अतः प्राणादिदानं प्रार्थनीयमिति मन्त्रः प्रवर्त्तते। तत्र पूर्वभागेन प्राणादीन्

खात्मिन सुखितान् करोति । उत्तरभागेन बखवाचिना वर्षः अध्येन पुचपौचादिक्पा प्रजा उपलचिताः, तासु हि सतीषु व्यवक्तुँ प्रबखतात् । पूजावाचिना वरिवः अध्येन पत्रव उपलचिताः, तेषु सत्सु चीरादिसम्पत्त्या पूज्यो भवति ।

कलाः, 'श्रमिसिग्मेनेति दाग्यामग्रयेऽनीकवते एकामाङितिश् इताः द्ति । तत्र प्रथमामादः,—"श्रमिसिग्मेन ग्रोचिषा यश्सद् विश्वं न्यत्रिषं । श्रमिने वश्मते रियं (१०)" दति । श्रयं चीयमानः 'श्रमिः' 'तिग्मेन ग्रोचिषा' (तीन्त्र्ण्या व्याखया), 'न्यनिणं" (राज्यादि) 'विश्वं' (सर्वें) विरोधिनं 'नि'-'यंसत्' (नियमयतु), विनाश्रयत्वित्यर्थः । 'श्रम्भं श्रद्गश्चेषं बाधकमिन्दं, तदस्यासीति 'श्रवि†', तं वि-वाश्रयतु । किञ्च श्रयम् 'श्रमिः' 'नः' (श्रस्मदर्थं) 'रियं' (धनं) 'वंसते' (विसतुं सम्माजयितुम् दक्कतु) ।

श्रथ दितीयामाइ,—"सैनानीकेन सुविद्चा श्रक्षो यहा देवाश्र श्रायिष्ठ स्वित्त । श्रद्भो नोपा उत नः परस्या श्रमे सुमद्त रेविद्दिहि(१०)" दिति । हे 'श्रमे', 'स' लं 'शुमत्' (दीयमानं) 'उतः' (श्रिप च) 'रेवत्' (धनयुक्तं!) ग्रहचेचादिकं 'दिदीहि' (प्रकाश्रय) । कीदृश्रक्तं?—'एनानीकेन' 'सुविद्घः' (श्रनेन ज्यालासमूहेन सुष्ठु वेदिता), 'श्रक्षो' 'देवान्' 'यहा' (श्रसादधं देवानुद्दिश्र यान-निष्पादकः) । 'स्वित्तः' (विद्यराहित्यं) यथा स्थात् तथा 'श्रायिष्ठ हः'

^{*} अत्र 'अत्रियं' इति पाठौ भवितुं युक्तः।

[†] खत्र 'खत्री' हति पाठी भवितुं युक्तः।

[‡] वज्रधनगुक्तम् इति का॰ इ॰ पु॰ पाठः।

(चित्रियंग कृत्त्रयागसमाप्तकारी), 'च्रद्भः' (केनाष्टिसितः), 'गोपाः' (मन्त्रस्य गोप्ता), 'जत' (च्रिप क्) 'नः' (च्रस्माकं) 'परस्याः' (चित्रवयंग पास्तिया)॥

त्रव विनियोगसंग्रहः,—

षष्ठे पञ्चानुवाकाः खुरिप्रभेषस्ततः परे ।
चलारे द्वाश्वमेधार्था श्रम्मेति परिविद्यति ॥
श्रमांस्ते प्रतिपर्येति, ससुद्रेत्यग्निमष्टभिः ।
विकर्वेदित्यपां दाभ्यामारे।इति चितिं, नृषत् ॥
ध्याघारः पञ्चभिः , 'ये दे' दाभ्यामग्निमवाज्ञति ।
प्राणदा श्रवदद्वाग्निस्तिन्मेनेत्याङ्गतिदयम् ॥
प्रथमे लनुवाकेऽस्मिन् मन्त्रा दाविंप्रतिरीताः (?) ।

थय मीमांगा, जनवमाध्यायस्य प्रथमपादे (८४०) चिन्तितम्, ज "विकर्षप्रोत्तचे कार्ये प्रतीष्टकसृतैकधा । श्रास्त्रोऽवयसम्बन मैवं भूदेशस्वतः ॥

'इष्टकाभिरग्निं चिनृते' दित श्रूयते, तचेदमाखायते,—'मण्डूकेन श्राग्निं विकर्षति । वेतसशाखया चानकाभिश्वाग्निं विकर्षति । दिरच्यमकसम्बद्धेणाग्निं प्रोचिति' दित । शाखाग्ने मण्डूकं बद्धा तेन विकर्षतीत्यर्थः । ते च विकर्षणप्रोचणे प्रतीष्टकं कर्त्तव्ये । कुतः ?। चिताभ्य दष्टकाभ्यः प्रचग् श्राग्निश्चरार्थस्य कस्यचिद्वयविद्रव्यस्थाभावाद् दित चेत् । मैवं,—खपहिताभिरिष्टिकाभिः संयुक्तस्य प्रदेशस्यावयिन-

^{🍍 &#}x27;ऋम्नदे वद्' इत्यन (५७३ ए० ६ प०) वड्न्ता प्रश्च मन्त्रा बोध्याः।

द्रव्यतात्, तस्य चाम्याधारत्नेनाग्निमध्यार्थतं । तसादग्नेरेकतात् सक्तदेव विकर्षणप्रोचणे कुर्यात् ॥

दति मायनाचार्य्यविर्चिते माधवीये वेदार्थप्रकामे क्रण्यायुः-मंहिताभाय्ये चतुर्थकाण्डे षष्टप्रपाठके प्रथमे। उनुवाकः ॥ ०॥

य दुमा विश्वा भुवनानि जुह्नदृषिहोती निष्माद् पिता नेः। स श्वाशिषा द्रविणमिष्कर्मानः परमुष्कदे। वर् श्वाविवेश^(१)। विश्वकर्मा मनसा यदिष्ठाया धाता विधाता परमात सन्दृक्। तेषामिष्टानि समिषा मदन्ति यच समुषीन् प्र एकमाष्टः^(१)। या नेः पिता जनिता या विधाता या नेः सता श्वभ्या सज्जाने॥१॥

या देवानीं नाम्या एकं एव तह संप्रश्नं भुवंना यन्त्यन्था(१)। त त्रा यंजन्त द्रविण्ह समस्मा ऋषंयः पूर्वे जित्तारो न भूना। त्रुद्धन्ति ह्यन्ति रजसी वि-माने ये भूतानि समर्शकित्मानि(१)। न तं विदाश य दृदं ज्ञानान्यद् युष्पाक्मन्तरं भवाति। नीहारेण् प्राष्टेता जल्पेरा चासुक्षपं उक्यूशासंश्वरन्ति(१)। पुरेश दिवा प्र एना॥ २॥

पृथिच्या परो देवेभिरस्रर्गुष्टा यत्। कः स्विक्तभ

प्रथमं देश शापी यत्र देवाः समगेक्कन्त विश्वे (१)।
तिमक्षभी प्रथमं देश श्रापो यत्र देवाः समगेक्कन्त् विश्वे । श्रुत्रस्य नाभावध्येकमिपित् यस्मिक्दिदं विश्वं स्रवन्मिधं श्रितं (१) । विश्वकर्मा श्राप्तनिष्ठ देव श्रादि-क्रियवे श्रीमवद्दितीयः । द्वितीयः पिता जिन्ति ए-धीनां ॥ ३॥

श्रुपां गर्भे व्यद्धात् पुरुषा (क) । चक्षुषः पिता मनसा हि धीरे । घृतमेने प्रजन्मस्त्रमाने । युदेदन्ता भदंह १ इन्त पूर्व भादिद्धावा प्रिय्वी भ्रप्रयेतां (१) । विश्वतं युद्धातं । सं वाहुभ्यां नर्मति संपतं भे र्षावा प्रिय्वी जन-यन् देव एकं (१) । कि स्विदासीद्धिष्ठानं मारम्भ सं कृतमाल्ख्त् किमासीत् । यदी भूमिं जनयन् ॥ ॥ ॥

विश्वकर्मा वि द्यामी शैंकि हिना विश्वचिद्याः (१) ।
किः स्विद्वनं क उ स दृष्ठ श्रासी द्याने प्रायिष्यी विश्वहरूः । मनी विश्वो मने सा प्रक्रिते दृतद् यद्ध्यतिष्ठद् भुवनानि धार्यन् (१) । या ते धार्मानि पर्माणि यावमा या मध्यमा विश्वकर्म सुतेमा । शिक्षा
सर्खिभ्यो ह विषि स्वधावः स्वयं येजस्व तृत्वं जुषा एः (६) ।
वाकस्पतिं विश्वकर्मेण मूत्रये ॥ ५ ॥

मृन्। युज् वाजे जाचा हुवेम। स न्। नेदिं हा हृवनानि जावते विश्व प्रमार्थसे साधुर्वभी (१)। विश्व-कर्मन् हृविषा वाष्ट्रधानः स्वयं यंजस्व तृन्वं जुषाणः। महां त्वन्ये श्वभितः स्पत्ना हृहास्माकं म्घवा सूरि-रंस्तु । विश्वकर्मन् हृविषा वर्षनेन पातार्मिन्द्रं-महाणोरवृध्यं। तस्मे विश्वः समनमन्त पूर्वीर्यमुग्रे। विश्वव्या यथासंत् । समुद्रायं व्युनाय सिन्धूनां पत्तेये नमः। नदीनाः सवासां पिचे जुहुता विश्व-कर्मणे विश्वाहामर्त्यः हृविः । १ ॥

ज्ञानं। युना। श्रीषंधीनां। सूमिं जनयंन्। जतये। नमः। नवं श्रा २॥

द्ति तैत्तिरीयसंदितायां चतुर्थकार्ग्डे षष्ठप्रपाठके दितीयाऽनुवाकः॥०॥

प्रथमेऽनुवाने परिषेचनादिकसुत्रं। त्रय दितीयेऽनुवाने सुत्ता-भ्यां होमी उच्यते। कच्यः, 'षोड्ग्रय्यहीतेन सुचं पूरियत्वा वैश्व-कर्मणानि जुहोति। य दमा विश्वा भुवनानि जुह्मच्च्यः पिताः मनसा हि धीर इति नानासुत्ताभ्यां दे त्राष्ठती। यं कामयेत चिरं पामाना निर्मुच्येतेत्येकैकं तस्थेत्युक्तम्' इति। तत्र प्रथमसूत्रे प्रथमास्च्यमाइ,—"य दमा विश्वा भुवनानि जुह्मदृषिद्दें।ता निष्वाद् पिता नः। स श्रामिषा द्रविष्मिष्क्मानः परमक्दरे। वर श्वा- विवेद्य(१)" इति । 'यः' विश्वकर्मा परमेश्वरः, 'इमा विश्वा भुवनानि जुइत' (प्रखये प्रथियादीन् दमान् स्वीन् खोकान् खात्मन्याङ्गति-प्रचेपवत् संहरन्), 'ऋषिः' (श्रतीन्त्रियद्रष्टा सर्वज्ञः), 'हाता' संसार-हामकत्ता), 'नः' (त्रसाकं) 'पिता' (जनकः), 'निषसाद' (खर्यं खितवान्), प्रखयकाखे प्राप्ते सति सर्वान् खोकान् संइत्य श्रस्माकमपि मंदर्ता, पुनः सष्टा च मन् मर्वज्ञा यः परमेश्वरः खयमेक एवासीत्। श्रत एव सर्वा श्रणुपनिषद एवमाइः, "श्रात्मा वा इदमेक एवार भाषीन्नान्यत् किञ्चन मिषत्" (ऐत०९ख०)। "सदेव साम्येदमय त्रासीत्, एकमेवादितीयम्" (का॰ ६ ऋ० २ ख॰) दत्याद्याः । 'स' (ताइक्) परमेश्वरः 'त्राजिषा' (बज्जस्थां प्रजायेयेत्येवंक्पया प्न:-सिद्धचया) 'द्रविणमिक्सानः' (धनापससितं जगद्वोगमपेसमाणः) 'परमच्हदः' (परमं खकीयमेवादितीयं पारमार्थक्पमादृखन्) 'वरे' (खेन इष्टे ग्ररीरमध्वर्त्तिन पुण्डरीकखाने) 'त्राविवेत्र' (जीवक्षे प्रविष्टः) । एतच सर्वेसुपनिषदि (तैत्ति ॰ ६ श्र ॰) श्राचातं,— "चे। कामयत । बङ्कर्या प्रजायेयेति । च तपे। उत्तपत । च तपस्त्रघा । इद्र सर्वमस्जत । यदिदं किञ्च। तत् सृष्ट्वा । तदेवानुप्रावित्रत्" इति । एवमन्या ऋणुपनिषद खदाद्यांः ।

श्रय दितीयामार,—"विश्वकमा मनसा यदिशया धाता विधाना परमात संदृक्। तेषामिष्टानि समिषा मदिन्त यत्र सप्तर्षीन् पर एकमान्तः (१)" दति । विश्वविषयाणि कर्माणि स्टिष्टिसिन-संदारक्पाणि यस्त्रासी 'विश्वकर्मा', तस्त्र च तेषु कर्मसु सत्त्रालाद्य

^{*} जीवरूपेस इति पाठो भवितुं युक्तः।

एव साधनं, सत्यसङ्क्यलात् । 'यत्' (यस्नात्) त्रयं 'मनसाक' (सत्यसङ्क्यमानेण) 'विश्वकर्मा', तस्नात् 'धाता', 'विधाता', 'विद्याया' इति चोच्यते,—'धाता' जत्यादकः ; 'विधाता' पेषकः ; विज्ञेषेष च हाति परित्यजतीति 'विद्यायाः' संहर्नेत्यर्थः । 'छत' (त्रिप च) त्रत प्र (परमा' (परमः सर्वेभ्य जल्लष्टः) । सम्यक् पत्रातीति 'संदृक्' (सर्वज्ञ इत्यर्थः) । 'यन' (यस्मिन्) 'परे' (परस्मिन्) ईत्ररे 'सप्तर्षीन्' 'एकमाज्ञः',—य एते मरीच्यचिप्रसुखाः सप्तर्षयो विविधा दृष्यक्ते, ते सर्वे स्रष्टेः प्राक् परस्मिन्नेकीभ्रता इति वेदान्तपारमा श्राजः । सच परसेस्ररः, 'तेषां' (सप्तर्षप्रस्तीनाम्) 'इष्टानि' (श्रपेचितानि) स्थानानि 'इषा' (खेच्छामानेष्ण) सन्यादयतीति, तेन च ते महर्षयो हस्यिना ।

श्रथ हतीयामाइ,—'यो नः पिता जनिता यो विधाता यो नः सतो श्रभा सक्तान । यो देवानां नामधा एक एव तः सम्प्रश्नं भुवना यन्थन्या (९)" इति । 'यः' विश्वकर्मा 'नः' (श्रस्माकं) 'पिता' (पालयिता) न नेवलं पालकः, जत्पादकोऽपि । किमनेनास्माकम् जत्पादक इति सद्घोचेन, 'यः' 'विधाता' (सर्वस्य जगतः जत्पादकः), 'यः' विश्वकर्मा 'नः' (श्रस्माकम्) जत्पन्नानां 'सत्' वर्त्तमानमिदं भोग्यजातं 'सतो' 'जजान' "सदेव साम्य" इति श्रुत्युक्तात् खर्खक्रपात् जत्पादयामास । 'यः' च विश्वकर्मा 'देवानां' 'नामधाः' (खयमेव सर्वदेवक्रपेणाविर्भूय इन्द्रमिनादिदेवतानामानि धारयति । श्रत

^{*} मानसा इति सर्व्वत्र पाठो न सम्यक्।

गरतान्। एकं सदिपा बंडधा वर्त्यश्चिं यमं मातिरसानमाडः" (स्थग्॰१म॰१६४स॰) इति। स्त एव बद्धनां देवानां नामानि धारयसपि वस्ततः खयम् एक एव। 'तं' विस्कर्माणं परमेश्वरं 'सन्या' 'सुवना' (तसाद् सन्यानि स्षष्टानि सर्वास् सुवनानि) 'सम्प्रसं' यथा भवति तथा 'यन्ति' (प्रखयकाखे एकलं प्राप्नुवन्ति), एकीभावयुक्ते प्रखये क इंश्वरः कानि सुवनानीति एवं प्रसं सम्प्र-धार्षं प्रवन्ति विभागाभावेन सुवनिभिष्ठीर्श्वातुमप्रकालात्।

पूर्वे जरितारे। न भूना। श्रस्तां स्तां रजसे। विमाने वे भूतानि समक्कलिमानि(")" इति । पूर्वे। दाइतेन विश्वकर्मणा प्रथमसुत्पा-दिता 'ये' सष्टारः, 'इमानि' 'भूतानि' (ध्वानेतान् प्राधिनः) 'समक्कल्व' (सम्यगुत्पादितवनः)। 'ते' 'पूर्वे' सष्टारः 'श्रसी' (स्ष्टायां जगते) 'इविधं' (धनक्षं भोग्यजातं) 'सम्'-'श्रायजनः' (सम्यक् सम्पादितवनः)। कीदृशाः ते? 'खययः' (श्रतीन्त्रियद्ष्षारः) सर्वश्चा रत्यर्थः। 'भूना' 'जरितारे। न' (भूषा स्वकीयेन महत्त्वेन कदाचित् विप जीवा न भवन्ति)। कीदृशानि भूतानि? 'अस्त्री' (श्रसीनः प्राविरीरितानि प्राव्यक्षानीत्यर्थः)। तथा 'रजसे।' 'विमाने' 'स्रती' (रश्चनात्मकस्वभे। नस्य विश्वेष प्रमितौ स्यस्वकर्मभिः सुष्ठु प्रेरितानि)।

श्रय पञ्चमीमाइ,—"न तं विदाय य दृदं जजानान्यसुग्राक-मन्तरं भवाति । नीहारेख प्रावृता जल्या चासुद्धप जनस्वास-

^{* &#}x27;विभागावेन' इति पाठो न सम्यन्।

^{† &#}x27;इंडा' इति सर्वेत्र पाठी न सन्यक्।

^{‡ &#}x27;भूमा' इति सर्मेत्र पाठो न सम्बन्।

सरिन (१) इति । 'यः' विश्वकर्मा 'इदं' 'जजान' (जत्पादितवान्) 'तं' विश्वकर्माणं 'न' 'विदाध' (तेन सृष्टा हे जीवाः, यूयं न जानीय)। देवदसोऽषं यज्ञदनोऽष्टमित्येवं सर्वेऽपि वयमात्मानं विश्व-कर्माषं जानीम इति यशुच्चेत, तद्यत्, न दि ऋषंप्रत्ययगम्यं जीवरूपं विश्व कर्मणः परमेश्वरस्थ, किन्तु 'युग्नाकं' ऋदंप्रत्ययगम्यादितरिकां सर्ववेदान्तवेद्यम् ई.सरतन्वं 'भवाति' (विद्यते)। तथापि, जीवरूपवत् कुता न जानीम: ? इति चेत् , 'नीद्दारेष' 'प्राष्टताः' (भवन्ता नीद्दार-सदृष्टेमाञ्चानेमास्तलात् न जानिका), यथा नीहारा नात्यनामसद्* **बृ**ष्टेरावरकलात् , नाप्यत्यनांधन् काष्ठपाषाणादिरूपान्तरेण सम्बद्धम् श्रयोग्यत्वात्; एवमज्ञानमपि नात्यन्तमसत् ईश्वरतत्वावरकत्वात्, नापि सत् वाधमाचनिवर्धलात् । ई.हृ ग्रेन ऋनिर्वचनीयेन ऋज्ञानेन भवन्तः सर्वेऽपि जीवा: 'प्रावृताः' न केवलं तन्तं , किन्तु 'जल्या' 'च' (देवाेऽषं मनुखोऽषं ममेदं चेचिमत्याचनुतजन्यनपराख)। किञ्च 'ब्रसुद्धपः' (ब्रसुबु द्वयन्तीति च्रसुद्धपः),—केनापि प्रकारेण प्राणान् पोषयिता तावतेव दृष्यन्ति भवन्तः, न तु परमेश्वरतत्त्वं विचार्यितुं प्रवर्त्तमे, न नेवलिमइ खेाने भागमाचलितः, किन्तु 'खक्यज्ञासः' (परलोकेऽपि भोगं सम्पाद्यितुं नानाविधेषु यद्वेषु खक्यानि बत्ताणि भंगन्तीति खक्यवासः), तादृघा भ्रता भवन्तः 'चरिन्त' (ऐडिकासुंग्निकभोगे सर्वदा प्रवर्त्तन्ते), तस्रादज्ञानमिष्या-ज्ञानपराधीनानां भवतां नास्ति तत्त्वज्ञानमित्यर्थः ।

^{*} गात्यन्तमसम् इति पाठो भवितं दुत्तः।

[†] अत्र 'न जानमाः' इत्येवंरूपः किखदंगः पतित इव प्रतिभाति।

श्रथ षष्टीमाइ,—"परे दिवा पर एना प्रथिया परे देवेभिरस्रेगुंदा यम्। कल्लिइभें प्रथमं द्रभ श्रापे यन देवाः समगच्छना
विश्वें (१)" इति। 'सम्' रैश्वरतस्तं 'गृहा' (इदसपुष्टरीके) गूढ़ं
'दिवा' 'परः' (सुलेकाइपि दूरे तिष्ठति), 'एना प्रथिया परः' (श्वसाः
पृथिया श्विप दूरे तिष्ठति), 'देवेभिरस्रें' 'परः' (देवेभ्धे। स्तरेश्वस्त्रं दूरे तिष्ठति), सकारानाः परः श्रम्दो दूरवाची। दूरतं नाम विलवण्यं,
सर्वजगदिलवण्यात् गृदशास्त्रस्वेश्वर्शायत इत्यर्थः। किञ्च 'यन' (यस्मिन्)
गर्भे 'विश्वे' (सर्वे) श्विप 'देवाः' 'समगच्छन्त' (सङ्गताः, सम्भूय
वर्षन्ते), तं 'कंस्विद्गभें' 'श्वापः' 'प्रथमं' 'द्रभे', श्वद्धः पूर्वे धते गर्भे
देवमनुष्यादयः सर्वे प्राणिने वर्ष्यन्ते,—इत्येवं शास्त्रप्रसिद्धः। से। प्रि
गर्भः क इति न श्वायते; यदा ल्रुले। प्रथयं जगदाधारे न श्वातः,
तदा श्रायनास्त्रसालं न श्वायते इति किसु वक्वयमित्यभिप्रायः।

श्रथ सप्तमीमाइ,—''तिमद्गभें प्रथमं द्रभ श्रापे। यच देवाः समगच्छम विश्व । श्रज्ञस्य माभावध्येकमिर्पतं यसिन्दिदं विश्वं भुवन-मिध त्रितम्(०)" इति । इदानीं गुइश्राक्तानुश्रासने।पेतेषु पृद्द्षेषु विद्यमानस्तृतिः श्रन्याऽभिधीयते । यसिन् ब्रह्माण्डगर्भे 'विश्वे' देवाः' 'समंगच्छम्न', 'तिमत्' (तमेव) 'गर्भे' 'श्रापः' 'प्रथमं' 'द्रभे' (ध्तवत्यः)। तद्भारस्प्रकार एव स्पष्टीक्रियते,-'श्रज्ञस्व' (जनारहितस्य) परमेश्वरतत्त्वस्व 'नाभो' (नाभिस्त्रानीये स्वरूपमध्ये), 'एकं' (किश्चिद्) वीजम् 'श्रिधं'- 'श्र्रिपंतं' (श्रिधकत्वेन स्वापितं); 'यसिन्दिदं' 'विश्वं' (सर्वम्) श्रिपं 'भुवनम्' 'श्रिधं-त्रितम्' (श्रिधकत्वेन स्वापितं), तदीजमिप्तम्;—

^{*} खत्यन्तस्यातत्त्वं इति पाठो भवितुं युक्कः।

"श्रप एव समर्जादौ तासु वीजमवास्त्रत्॥ तदण्डमभवद्भैमं काटिसूर्यसमप्रभम्"। (मनु॰१।८-८) इति ।

श्रयाष्टमीमाइ,—'विश्वकर्मा द्यानिष्ट देवा श्रादिद्गन्थेवा श्रभवद् दितीयः। हतीयः पिता जनितीषधीनामपां गर्भे व्यद्धात् पुरुचा^(म)" दिति । ब्रह्माण्डमध्यगतानासुत्पत्तिरुचते। ऋण्डमध्ये प्रथमं 'विश्व-कर्मा' (देवितर्थ्यगादिविश्वभेदकर्त्ता) सत्यक्षोकवासी चतुर्भुखा देवः 'श्रजनिष्ट' (जत्पन्नः)। 'श्रादित्' (श्रनम्तरमेव) तदपेच्चया 'दितीयः' 'गर्भवः' 'श्रभवत्' (जत्पन्नः)। तत ऊर्द्धम् 'श्रोषधीनां' (पासकः) 'पिता', 'जनिता' (य जत्पादकः) सेमः पूर्वे।कदयापेचया 'हतीयः' 'श्रभवत्'। तदेवम् 'श्रपां' 'गर्भे' (ब्रह्माण्डं) परसेश्वरः 'पुरुचा' 'यदधात्' (ब्रह्मा व्यक्तं द्यतवान्)। दत्यसेकं स्वकं समाप्तम्।

श्रय दितीयस्के प्रथमास्यमाइ,—"च्हुषः पिता मनसा हि धीरो घृतमेने श्रजनसम्भाने। यदेदना श्रदहुः इन पूर्व श्रादित् द्यावाष्ट्रियी श्रप्रथेताम्(१)" इति । 'च्हुषः' (च्हुरादेः प्राष्ट्र- ससुदायम्य) 'पिता' (जत्पादकः), 'धीरः' (धैर्य्यवान्), 'मनसा' (खेळ्या) 'घृतं' (घृतवत्) प्राणिनासुपभेगमधाधनस्ते 'एने' (द्यावाष्ट्रियो) परस्परानुकूखेन 'नस्नमाने' (नमनोपेते) 'श्रजनत्' (जत्पादितवान्)। 'यदेत्' (यदेव) 'पूर्वे' (प्रथमाः) 'श्रन्ता' (श्रमनयुक्ताः, चेष्टावन्तः) च्हुरादिप्राणा 'श्रदहुः इन्त' (दृढ़ा श्रभवन्), 'श्रादित्' (श्रनन्तरमेव) 'द्यावाष्ट्रियी श्रप्रथेतां' (द्यावाष्ट्रिययो विस्तृते श्रस्रताम्)।

त्रय दितीयामार,---"विश्वतश्चनुद्त विश्वतासुद्धा विश्वता-

इस जत विश्वतस्यात्। मं बाइभ्यां नमित सम्पत्ते द्यांवापृधियी जनयन् देव एकः (१)" इति। चनुरादिप्राणानां द्यावापृधियी— स्वात्यने इद्धें विश्वक्यधरः परमेश्वर एवं भासते (१)। किमिति?। तरुचते,—'विश्वतः' (सर्वतः) चनूंषि यस्यासौ 'विश्वतस्रनः', परमेश्वरस्य सर्वप्राण्यात्मकलात्, यस्य प्राणिना ये चनुषी, ते तरुपाधिकस्य परमेश्वरस्थेवेति सर्वशास्त्र चनूंषि सम्पद्यन्ते। एवं सुखदस्तपादेष्विप योजनीयं। स तादृष्त 'एकः' 'देवः' 'द्यावापृधिवी' 'जनयन्' 'वाइभ्यां' (बाइस्तानीयाभ्यां) धर्माधर्माभ्यां निमित्तकारणाभ्यां 'सं'—'नमित' (जगत् सर्वं सम्यक् नतं स्वाधीनं करेति)। तथा 'पत्रनः' (पतनश्रीसः) श्रनित्यः पञ्चभ्रतः उपादानकारणः 'सं'—'नमित' (जगत् स्वाधीनं करेति)।

त्रथ द्वतीयामाइ,—''किश्खिदाबीदिधष्ठानमारभणं कतमित्हित् किमाबीत्। यदी भूमं जनयन् विश्वकर्मा वि द्याभार्णे न्याहिना विश्ववत्ताः (१)" इति । खोके हि घटं चिकीर्षः कुलाखे स्ट्रहादिकं किश्चित् खानमधिष्ठाय स्ट्रह्येण चकादिक्षे द्वपकरणसाधनिर्धटं निष्पादयित, ईश्वरख निरपेचलात्, सर्वमच श्राखिष्यते,—द्यावापृधियो— दत्पादनवेलायामीश्वरख 'श्रधिष्ठानं' (निवासखानं) 'किंखिदासीत्' (किं नामाभूत्)? न किश्चिदित्यर्थः। तथा 'श्रारभणं' 'कतमित्कित्' (किमासीत्, श्रारभ्यते श्रनेनेत्यारभणसुपादानकारणं, तदिप कतमत् भवेत्)? न हि द्यावापृथिष्यो जनिष्दां समर्थं किश्चिदुपादानं सक्य— वित । तथा दण्डचकादिविजिमक्तमिष 'किमासीत्'? न किश्चित् सक्षवतीत्वर्थः। 'विश्वच्छाः' (सर्वद्रष्टा) 'विश्वकर्मा' 'थदी' (श्रक्षित् काले) 'श्रुमिं' (श्रुलोकं) 'जनयन्' वर्त्तते, मिसान् काले हि 'महिना' (महिला) एवं साधनान्तरं विनैव, विश्वेषेण 'द्यामीर्णेत्' (स्ट्या द्यावाष्ट्रियौ श्रास्कादितवान्), श्रुचिन्धग्रिकरयं परमेश्वरः ।

त्रय चतुर्थीमार,—"किश्खिदनं क उ स दृत त्रासीयता द्यावाप्टिया निष्टतनुः। मनीविणा मनसा एक्कतेद् तद्यदथतिष्ठद् भुवनानि धारयन्(४)" दति । खेाके हि प्रौढ़ं प्रासादं निर्मिमाणः किसारित प्रौढे वने किसमाहानां वृत्तं किला तत्त्रणादिना काष्टे: प्रासादसुचैसारं सम्पादयित, इह तु परसेश्वरप्रेरितं जगत् इष्टि:, 'यतः' (यस्नात्) वमात् यं वृजमादाय 'द्यावाप्टियवी' 'निष्ठतज्ञः' (तच्चेन द्यावाष्ट्रियो निष्पादितवान्), तत् 'वनं' 'किंखित्' नाम खात्? न किञ्चित् तादृष्णं समावति। तथा 'क उ स दृत्तः' (तादृष्णः स प्रौड़ हकोऽपि कः) स्थात्? न किञ्चित् समावतीति। हे 'मनीविणः' (विदांस:) 'मनसा' खनीयेन विचिन्य 'पृच्हतेत्' (इदं सर्वे पृच्हतेव)। किञ्च रेखरः 'भुवनानि' 'धारयन्' 'यदभ्यतिष्ठत्' (यत् खानमधि-हितवान) 'तत' श्रपि सर्वेषा एच्छत । एतस्य प्रश्नस्य सर्वस्थाय्नारं ब्राह्मणयन्थे स्नुक्तप्रपाठके (२।८।६) "ब्रह्म वनं ब्रह्म स रच त्रामीतृ" द्रत्येतस्यामृचि त्रामातं ; स्वरूपयतिरिक्तवस्वादिनिर्पेचल-मेवास्थान्तरस्थाभिप्रायः । त्रातोऽत्रापि विंस्तिदनमित्यादि त्रास्थेप-पर्वेनैव योजितं । एच्छ तेदित्यस्थाप्यमभिप्रायः,-भवद्भिः एष्टेऽपि निरपेचलमेवाभिज्ञा विदयनीति।

श्रय पञ्चमीमाइ,—"या ते धामानि परमाणि याऽवमा या मध्यमा विश्वकर्मसुतेमा । श्रिचा विश्विभेग दविषि खधाव: खयं यजस्व तन्वं जुषाणः (॥)" इति । हे 'विश्वकर्मन्', 'ते' (बदीयानि) 'परमाणि' यानि 'धामानि' जल्लष्टानि सन्ति, यानि मधमानि श्रवमानि च 'धामानि' (स्थानानि) सन्ति, तानि इसानि सर्वाण्य स्थानानि 'सखिन्थः' (सखित्रत् प्रियेभ्यः) 'इविषि' (इविःप्रदानिनिन्तं) 'श्रिव' (उपदिश्र) । हे 'खधावः' (खधापलिक्तहविर्लक्षणस्वन्), 'विश्वकर्मन्' 'तन्वं' 'जुषाणः' (यजमानश्ररीरं सेवमानः) 'खयं' 'यजस्व', सदमुग्रहमन्तरेण को वान्यो यष्टुं श्रक्त इत्यर्थः ।

श्रथ पडीमाइ,—"वाचस्पतिं विश्वकर्माणमूत्रथे मने।युजं वाचे श्रथा अवेम । स नो नेदिष्ठा इवनानि खेषिते विश्वक्रभूरवसे साधुकर्मा (१)" इति । 'विश्वकर्माणं' परमेश्वरं 'श्रद्ध' (श्रिक्षम् दिने) 'वाचे' (श्रद्धे) निमित्तभूते सति 'जतये' (भज्ज्णाय) 'इवेम' (श्राइयाम) । कीदृशं विश्वकर्माणं? 'वाचस्पतिं' (मन्त्रक्पाया वाचः पासकं), कर्मणि श्रस्तानासे। योजयितारं। 'स' विश्वकर्मा 'नः' (श्रस्तदीयानि) नेदिष्ठानि श्रत्यम्तसमीपवर्त्तीनि 'इवनानि' (इवीप्टिष श्राइगानि वा) 'वेषते' (सेवते) । किमयें? 'श्रवसे' (श्रस्तान् श्रवितं रचितं) । कीदृशः सः? 'विश्वक्रभूः' (सर्वस्तिन् जगित सुखस्त भावियता), 'साधुकर्मा' (श्रस्तदनुकूलस्थापारवान्) ।

श्रथ सप्तमीमाइ,—"विश्वकर्मन् इविषा वाद्यधानः खयं यजख तनुवं जुषाणः । सुद्धान्वन्ये श्रभितः सपत्ना दृष्टास्माकं मधवा स्तरि-रस्तु (°)" इति । हे 'विश्वकर्मन्', श्रस्मदीयेन 'इविषा' 'वाद्यधानः'

^{* &#}x27;जुवल' इति सर्वेत्र पाठे। न सम्बन्।

(श्रत्यमं वर्द्धमानः) 'तनुनं जुषाणः' (श्ररीरं खीकुर्वाणः) 'खयं यजख'। श्रक्यात्तः 'श्रन्ये' 'सपद्धाः' 'इष् कर्मणि 'सृद्यम्पु' (श्रान्ता भवम्पु)। 'श्रक्याकं' तु 'मघवा' (श्रश्नयुक्तः) 'स्ररिः' (विद्यान्) पुत्रः 'श्रस्तु'।

श्रयाष्ट्रमीमाइ,—"विश्वकर्मन् इविधा वर्द्धनेन पातारमिन्द्रमक्रणारवर्धः। तसी विश्वः समनमन्त पूर्वीरयसुपो विद्यो यथासन्()" इति । हे 'विश्वकर्मन्', श्रसादीयेन 'इविषा वर्द्धनेन'
युक्रस्तं इमं यजमानं 'पातारम्' (श्रन्येषां रचकम्) 'इन्ह्रं' (परमेश्वर्थ्युक्रम्) 'श्रवर्थं' (केनापि हिंसितुमश्रक्यम्) 'श्रक्षणोः' (कुरू)। 'तसी' (यजमानाय) 'पूर्वीः' 'विश्वः' (दृद्धा वितत्यमानाः प्रजाः) 'समनमन्त' (सम्यङ् नताः एतदधीना भवन्तु)। 'श्रयं' (यजमानः) 'उपः' (तीव्रश्वक्तिः सन्) केनाप्यपरिश्वतः 'विष्यः' (विविध्यागयोग्यः) 'यथाऽसन्' (यथा भवति), तथा खुरू।

कस्यः, 'यद्येनसुदकेऽभिविन्देदुदकाञ्चिलमादाय ससुद्राय वयुनायेत्यपु जुङ्ग्यादित्ययञ्चसंयुनः कस्यः' इति । पाठसु,—"ससुद्राय
वयुनाय सिन्धूनां पतये नमः । नदीनाष्ट्र सर्वासां पिने जुङ्ग्ता
विश्वकर्मणे विश्वाद्याऽमर्त्यष्ट्र इविः(९)" इति । यो विश्वकर्मा
ससुद्ररूपेणावतीर्णः, तसी 'ससुद्राय' 'नमः' श्वसु । की हृण्णाय? 'वयुनाय'
(कान्नाय), 'सिन्धूनां' 'पतये' (स्वन्दमानानां इन्त्रे), ससुद्राकारेण
दर्मा, विश्वकर्माकारेण 'सर्वासां' 'नदीनां' 'पिता' (जत्यादकः);
ताहृण्णाय 'विश्वकर्मणे' हे स्वित्ययज्ञमानाः, 'विश्वाद्या' (सर्वाणि
श्वद्यानि) निरन्तरमित्यर्थः 'श्वमर्त्यम्' (श्वविनश्वरं) 'इविः' 'जुङ्गत' ।
श्रिक्षिसोनेति मन्त्रद्येन 'य इमा विश्वा' इति स्क्रद्वयेन च

Digitized by Google

बाधं हेामं विधातं प्रसौति,—"इन्हो ट्यमहन् तं ट्यो हतः वे इत्राम्म स्थितं स्थाप्ति स्थापति स्थाप्ति स्थाप्ति स्थाप्ति स्थाप्ति स्

इदानीं तदुभयं विधक्ते,—"यदग्रयेऽनीकवत आफ़ितं जुही-त्यग्निरेवास्त अनीकवान्त्स्तेन भागधेयेन प्रीतः पाभानमपि दहित वैश्वकर्मणेन पाभनो निर्मुच्यते" (५।४।५ अ॰) इति । रेगगिद्दूप-दृष्टवधहेताः पापस्य अनीकवत्याक्रत्या दाहः; पार्स्नीकिकात् नरकहेताः पापाद् वैश्वकर्मणहासेन निर्मीकः।

तत्रेदं विचिन्धते,—िकमयं वैश्वकर्मण्हामः प्रति—मन्धं प्रथक्

^{* &#}x27;पापस्थानीयकवाला ज्ञत्या' इति सर्व्वत्र पाठो न सम्यक्।

कार्यः, किं का सकद्व यहाचार्य सकद्वुष्टेयः, श्रहाखित् एकैकं स्रक्रमुचार्य अनुष्ठेयः ? दति । तत्राद्यं पचदयं प्रास्त्रान्यरगतस्वेनाङ्गी-करेाति,—"यं कामयेत चिरं पाप्रना निर्मुखेतेति एक्नैकं तस्त्र जुड़वात्, चिरमेन पाप्रने। निर्मुखते; यं कामवेत ताजक पाप्रने। निर्मुचेतित प्रवाणि तसानुद्रुत्य जुज्ञयात्, ताजमेव पापना निर्मुचते; त्रथा खलु नानैव स्नकाभ्यां जुहाति, नानैव स्नक्योवीयें द्धात्ययो प्रतिष्ठित्ये" (५।४।५%) इति । 'एकैकं' मन्त्रहासेन भनै: पापनिर्मीका भवति, सर्वस्नकहासेन तु तदानीसेव पापनिर्मीकः, ष्ट्रचन्द्रकदयेऽपि सामर्थं प्रथम् सम्पादितं भवति । ऋपि च स्रक्रदिलं यजमानस्र प्रतिष्ठाये सम्पद्यते, तस्रादयमेव पत्रः खेयानितार्घ: ।

श्रव विनिधागसंग्रह:.-

'य इमा' 'चचुषा' दाभ्यां स्नुकाभ्यामाञ्जतिदयम्। यसुद्रेति जले हामा मन्त्राः सप्तदन्नेरिताः ॥

इति सायनाचार्य्यविरचिते माधवीये वेदार्थप्रकामे कृष्णयमु:-संदिताभाये चतुर्थकाण्डे षष्ठप्रपाठके दितीयोऽनुवाकः ॥ •॥

उदैनमुत्तरां न्यामें घृतेनाइत । रायस्योषेख् सश्स्रेज प्रजया च धनेन च(१)। इन्द्रेमं प्रतरा क्रिध सजातानामसद्यी। समेनं वर्षसा सूज देवेभ्या भागुधा चंसत्(र)। यस्यं कुर्मा द्वियं हे तमंग्ने वर्षया त्वं। तसी देवा चर्धिव्रवसुयम्ब ब्रह्मंणुस्पर्तिः (२)। उद् त्वा विश्वे देवाः॥ १॥

श्रमे भरंन्तु चितिभिः *। स ना भव शिवतमः सु-प्रतीका विभावसः (१)। पञ्च दिशो दैवीर्यक्रमंवन्तु देवी-रपामितिं दुर्मृतिं वार्धमानाः। रायस्योषे युष्पपितमा भर्जन्तीः(॥) । र्ायस्योषे श्रध युत्रो श्रस्थात् समिन्ने श्रुवाविधं मामहानः। उक्यपंतु ईखों सभीतस्ततं घुमें पेरिसम्बायनन (९)। जुर्जायस्त्रमम्भेमन्त देवा देवाय धुर्चे नाष्ट्रे । देवुत्रीः श्रीमंगाः श्रुतपंयाः ॥ २ ॥

पुरियुष्ट देवा युज्ञमायन्(°)। स्र्यरिक्ष्मिक्टरिकेशः पुरस्तात् सविता ज्योतिहद्याः अर्जसं। तस्य पूषा प्रसुवं याति देवः सम्प्रश्चन् विश्वा भुवनानि गोपाः (ह)। देवा देवेभ्या अध्वर्यन्ता अस्य बीतः श्रीमुचे श्रीमृता यजधी। तुरीयो युत्री यर्ष ह्व्यमेति तर्तः पावका भाशिषो ना जुवन्तां(८)। विमान युष दिवा मध्ये

 [&]quot;चित्तिभिः" इति B पुत्तकपाठः ।

श्रास्ते श्रापप्रिवान् रेाद्ंसी श्रुन्तरिष्ठं। स विश्वाश्री-

चृष्टे घृताचीरन्त्रा पूर्वमपरं च केतुं (१०) । जुक्षा संमुद्रो चर्षाः सुंप्र्य पूर्वस्य योनिं पितुराविवेश । मध्ये दिवा निर्धितः प्रिक्षरस्या विचेकमे रर्जसः पात्यन्ती (१९) । इन्द्रं विश्वी चवीष्टधन् समुद्रव्यंचस् गिरंः। र्घीतंमः र्घीनां वाजानाः सत्यंति पतिं (१९) सुक्क्षर्येत्रो देवाः चा च वश्च चर्षद्वि देवाः चा च वश्च चर्ताः । ४॥

मा प्रस्वेनीद्याभेगोद्यभीत्। श्रथास्पत्नाः इन्द्रीं मे निग्राभेणाधराः श्रकः (१४) । उद्याभर्षे निग्राभन् ब्रह्मं देवा श्रवीरुधन् । श्रथास्पत्नी-निन्द्राग्नी में विष्वीनान् स्थेस्यतां (१५) ॥ ५ ॥

विश्वे देवाः। शुतपंयाः। श्रुमि । वार्जस्य । षड्-विष्रश्रतिस्व ॥ ३॥

द्रति तैत्तिरीयसंदितायां चतुर्थकार्ग्डे षष्टप्रपाठके स्तिथि।ऽनुवाकः ॥ * ॥

दितीय वैश्वकर्मणहोमा विद्यतः; श्रथ व्यतीयेऽग्निप्रण्यनमुख्यते। कत्यः,—खदेनसुत्तरां नयेति तिस्भिरौदुम्बरीः समिधा घृते।विता-4 x 2 सिस श्राधाय पर्श्वन्थवद्धि प्रणयित' इति । तत्र प्रथमामाइ,—
"खदेनसुत्तरां नयाग्ने घृतेनाज्ञत । रायस्पेषिण सप्त्यं प्रजया च धनेन च^(६)" इति । 'घृतेन' द्रयोण 'श्राज्ञत' (सर्वेता ह्रयमान) हे 'श्राने', 'एनं' (यजमानम्) 'खत्तराम्' (श्रत्युक्तप्रमेश्वर्य) प्रति 'खत्'-'नय' (खत्वर्वेण प्रापय), त्रीषं प्रापयेत्यर्थः । खत्तप्रप्रेश्वनेव प्रपद्माते,—'रायस्पोषेन' (धनसम्बद्धा) 'संद्रज' (संयोजय) । तथा 'प्रजया' पुत्रपौत्रादिक्षया, 'धनेन' गवासादिक्ष्येण संद्रज ।

श्रय दितीयामाइ,—"दक्ष्मं प्रतरां क्षधि सजातानामसदश्री। समेनं वर्षमा स्वज देवेंग्थे। भागधा श्रमत्^(रं)" दति। हे 'दक्ष्य' (परमैश्वर्येणुक्त) श्राप्ते, 'दमं' (यजमानं) 'प्रतरां' 'क्षधि' (श्रतिश्रयेन प्रकष्टं कुद्दे)। तदेव प्रकष्टं विश्वदीक्रियते,—'सजातानां' (सहोत्पद्मानां श्वातीनां) 'वश्री' 'श्रसत्' (नियमनसमर्थे। भवतु)। किञ्च 'एनं' 'वर्षमा' (सलेन) 'सं'-'स्वज'। श्रयं यजमानः, 'देवेंग्यः' 'भागधा' 'श्रसत्' (यश्चेषु भागप्रदे। भवतु)।

त्रय स्तीयामाइ,—"यस कुमें। इविर्युष्ठे तमग्ने वर्द्ध्या लं। तसी देवा श्रधिमवन्नयम् मन्नाषस्यतिः (२)" इति। वयस्रितः, 'यस्य' (यजमानस्य)'ग्रहे''इविः' 'कुमेंः,' हें 'त्रग्ने,' 'लं' 'तं' (यजमानं) 'वर्द्ध्य'। 'देवाः' च 'तसी' (यजमानाय) 'श्रधिमवन्' ('श्रयं यजमानः सर्वेभ्योऽधिकः' इति मुवन्तु)। 'श्रयम्व' (यजमानः) 'मृद्धाणस्यतिः' (वैदिकस्य कर्मणः पासको भवतु)।

तानेतान् मन्त्रान् विनिचुं क्के,—"जदेनसुत्तरां नयेति विभिध श्राद्धाति यथा जनं यतेऽवसं करोति तादृगेव तत्" (५।४।६%) इति । 'यथा' खेकि दूरदेशे ग्रामान्तरवर्त्तानं प्रति 'यते' (मक्कते) पुरुषाय 'श्रवसं' (मार्गरञ्जाकरं पाथेयं सन्पादयति), तत् समिदाधानं प्रकेखमाणाग्रये 'तादृगेव' भवति ।

समित्यक्कां विधनो, — "तिस मादधाति चित्रदा म्यग्निधानोव म्यग्निस्तसी भागधेयं करोति" (५।४।६ म ०) इति । मादवनीयादि-भेदेनं चिगुक्तम् ।

समिट्ट्यं विधन्ते,—"चैादुम्बरीर्भवन्यूर्मा खदुम्बर अर्जनेवासा चपि दधाति" (५।४।६॥०) इति ।

कर्यः, 'जदु ला विश्वे देवा द्रत्युख्यसुद्यस्य' द्दति । पाठस्तु,— "जदु ला विश्वे देवाः अग्रे भरम् चितिभिः । स ना भव शिवतसः सुप्रतीका विभावसः (४)" दति । हे 'अग्रे', 'विश्वे' (सर्वे) अपि 'देवाः' प्राणक्ष्याः 'चितिभिः' (जद्यमनकुश्रखाभिरिक्टियहन्तिभिः), 'जदु' (जर्द्धक्वेव) 'लां' 'भरम्नु' (धारयम्नु) । 'स' लं 'नः' (अस्माकं) 'श्विवतमः' (श्राम्ततमः), 'सुप्रतीकः' (सुसुखः), 'विभावसः' (प्रभविता वास्रियता स) 'भवं'।

श्रस्थ मन्त्रस्थ प्रथमपादे वैश्वदेवश्रन्दार्थं दर्शयति,—"उदु ला विश्वे देवा द्रत्याद प्राणा वै विश्वे देवाः प्राणेरेवैनसुद्यक्कते" (५१४।६ श्र०) दति। दीर्यान्त खस्त्रकार्येषु व्यवहरम्मीति 'देवाः' 'प्राणाः'।

दितीयपादे श्रम्यादिशब्दान् परित्यच्य चितिशब्दस्य तात्पर्यं दर्शयति,—"श्रमे भरम् चितिभिरित्याद यस्मा एवैनं चिताय खद्यक्तते तेनैवेनप्र समर्द्धयति" (५१४।६ श्र॰) इति । चितिशब्देन चितमाचगतेन 'चितम्' (त्रिभिगेतकार्य) स्त्र्चते, तथा सति यखी कार्याय इदसुद्यममं तेनैव कार्येण एनमग्निं सम्द्रद्धं करोति।

कत्यः, 'पञ्च दिशे दैवीरिति पञ्चभिर्धरत्याग्नीभात्' इति ।
तत्र प्रथमामादः,—''पञ्च दिशे दैवीर्यञ्चमवन्तु देवीरपामितं दुर्मितं
बाधमानाः । रायस्योषे यञ्चपितमा भजन्ति (१)" इति । इमाः
प्राच्यादयः 'पञ्च दिशः' 'दैवीः' (इन्ह्रयमादीनां सम्बन्धिन्यः) 'देवीः'
(स्वयमपि देवताक्तपाः) 'श्चमितं' (श्वसदीयां प्रज्ञां) 'दुर्मितं' (दुष्टां
पापविषयां बुद्धिं) च 'श्चप'-'बाधमानाः' (विनाश्चयन्यः) 'रायस्योखे'
(धनसम्बद्धौ) 'यञ्चपितं' (यजमानम्) 'श्चा' (समन्तात्) सेवमानां इमं
'यश्चं 'श्चवन्तु' (रचन्तु) ।

त्रथ दितीयामाइ,—"रायसोषे त्रधि यद्यो त्रस्थात् समिद्धे त्रग्नाविध मामद्दानः । खक्यपत्र ई.स्रो ग्रभीतसप्तं घमें परिग्रक्का यजन्त^(१)" इति । त्रयं 'यज्ञः' 'रायसोषे' (धनसम्हद्धौ) 'त्रिधि' 'त्रस्थात्' (त्रिधिकमवस्थितः सन् सर्वदा धनपृष्टिं ददातु इत्यर्थः)। कीदृशो यज्ञः?—'समिद्धे' (सभ्यक् प्रज्यसितेऽग्रौ) 'त्रिध मामद्दानः' (त्रिधिकं पुनः पुनः पूज्यमानः)। 'खक्यपत्रः',—'खक्यानि' (त्रस्तािष्क) 'पंत्रं' (वाद्दनं) यस्य, त्रसी खक्यपत्रः। 'ई.सः' स्त्रत्यः, 'ग्रभीतः' (ज्ञित्यज्ञमानः परिग्रदीतः)। ते च 'तप्तं' (प्रज्यस्तितं) 'घर्मम्' (त्रिग्नं) 'परिग्रह्म' 'त्रा'-'यजन्त' (यजन्ति)।

श्रथ हतीयामाइ,—''ऊर्जा यद् यज्ञमग्रमम देवा दैयाय धर्ने

 ^{&#}x27;चितिमन्त्रगतेन' इति पाठो भिवतुं युक्तः ।
 चच 'भजन्तीः' (सेवमानाः) इति पाठो भिवतुं युक्तः ।

जाहे। देवशीः श्रीमणाः ज्ञतपयाः परिग्रह्म देवा यज्ञमायम्(०)" दित । 'देवाः' (दीव्यन्तो व्यवदरनाः) च्रालग्यजमाना धाषादिविज्ञेषणे-विज्ञेषिताय श्रमये 'यत्' (यस्मिन् काले) 'ऊर्जा' (इविःखक्रपेणास्त्रेन) 'यज्ञम् श्रममन्त' (ज्ञानां तिष्टिहेतुम् श्रकुर्वत), कीहृज्ञायाग्रये?— 'दैव्याय' (देवानां दिताय), 'धर्चे' (यागदारा जगता धारिवचे), 'वाहे' (श्रस्तामिदीयमानस्य द्विषः चेविचे); तिस्मिन् कालेऽयमिन्दिश्चो भवति, कीहृजः? तदुच्यते?—'देवशीः',—देवानेव श्रयति द्विवंदनेनेति देवशीः, 'श्रीमणाः',—श्रयते चेवते द्दति श्रीयंश्वमानस्यस्तिम् नृगद्दस्यं मना यस्त्रासौ श्रीमणाः, 'ज्ञतपयाः',— श्रतपद्याः',— कतपद्याः',— श्रमस्त्रां परिग्रह्मः 'देवा' च्रत्रिग्न-यजमानाः द्रमं 'यज्ञं' 'श्रायन्' (प्राप्नुवन्ति, श्रमृतिष्ठन्तीत्यर्थः)।

त्रय चतुर्थीमाइं,—"स्वरं सिर्ध्राईरिकेशः पुरस्तात् सिता क्योति-द्दयाप् त्रजसं। तस्य पूषा प्रसवं याति देवः सम्प्रसन् विस्वा भुवनानि गोपाः (क)" इति। दारिद्यं इरतीति इरिईर्ण्यं, हिरप्यवर्णाः केश्रस्थानीयाः श्रिखा यस्तासौ 'इरिकेशः' ऋग्निः, स च 'स्वर्थरसिः' भूत्या 'स्विता' (प्राणिनां तत्तद्भवहारेषु प्रेरकः) 'क्योतिः' (मण्डस्क्र्पः) सन् पूर्वस्यां दिश्चि 'त्रजसं' (प्रतिदिनम्) 'खदयात्' (खदेति); यस्मिन्नुदये स्वति 'पूषा' (पाषकः) सः 'देवः' 'तस्य' 'प्रसवं' (जगतः प्रेरणं) 'याति' (प्राप्नोति)। कीदृशो देवः ?—'गोपाः' (रक्तः), किं खुर्वन् ? 'विसा' 'भुवनानि' (स्वीन् खोकान्) 'प्रस्वन्" (त्रवस्नोकयन्)।

^{# &#}x27;सन्पाधन्' इति पाठी भवितुं युक्तः।

प्रश्न पश्चमीमाइ,—'देवा देवेभी प्रध्नर्यको प्रख्न वीतः प्रविक्षे प्रक्रिता यज्ञ । तुरीयो यक्षे यत्र इयमित ततः पावका प्राप्तियो ने। कृषकाम् (८)'' इति । प्रश्नुवन्धक्यो वज्ञस्तुर्भागः, तत्र ख्या-करणानः प्रथमः, खपाकतस्य प्रामित्रदेशे स्थितिर्दितीयः, यामार्थे यत् गंकारं करोति य स्तीयः, इविःप्रदानाक्षस्तुर्थः । तदिदं भागचतुष्टयं प्रकेशकामानिधीयते । 'देवः' (प्रतिग्यज्ञमानाः) 'देवेभ्यः' (इतिः स्नीकर्द्धः), 'प्रध्नर्यको (यामं कर्तुमिक्ष्त्रको) 'प्रस्तु (तिष्ठक्ति, खपाकरणाक्षमनुतिष्ठकीत्यर्थः । तत ज्ञद्धे 'प्रमित्ता' (प्रामित्र-देशे प्रापितं) प्रश्नुक्षं इविभवति । तत ज्ञद्धे 'प्रमिता' 'प्रक्षेथे' (यानार्थं चंस्करोति), य स्तीयः । खपरितनस्तुर्थे। यक्षभागः ; 'यत्र' (प्रसित्त्) भागचतुष्ट्योपेते यक्के 'स्थमेति' (देवता इतिः प्राप्ताते) । 'ततः' (तसात्) भागचतुष्ट्योपेताद् यञ्चात् 'पाक्काः' (प्राप्त्वतीयाद्योऽग्रसः) 'नः' (प्रस्तदीयाः) 'प्राप्तिष्टः' (प्रपेक्तितन् प्रस्तिविष्ठेवान्) 'ज्ञुक्तां' (स्मपाद्यक्तिस्त्र्यर्थः) ।

एषु सन्तेषु प्रथममन्त्रे प्रथमपादकः तात्पकें दर्भवति,—"पश्च दिन्नो देतीर्घन्नमन्तु देवीरिक्षाइ दिन्नो क्षेत्रोऽनुप्रव्यवते" (५।४। ६ प्र०) इति । 'एषः' यन्त्रमानः प्राच्याद्याः पश्च दिन्नोऽनुक्रतेष यज्ञरचार्थे प्रेरवति ।

दितीयपादस्य तात्पर्धं दर्भयति,—"श्वपामितं दुर्मतिं श्राध-माना द्राष्ट्राइ रचयामपस्त्य" (५१४।६ श्र०) द्रति । श्रमतेर्दुर्भतेय रचोभिः सम्पादितसात् तद्वाधेन रचांस्थेव श्रपदतानि भवन्ति ।

क्रतीयपादे राय्रस्योबक्कदेन विविक्तितार्थं दर्भग्रति,—"रायस्थावे

चन्नपतिमाभजन्तीरित्याच पत्रवे। वै रायस्योषः पश्चर्नेवावदन्धे" (५।४।६ १३०) इति ।

'खदु ला विश्वे देवाः' इत्यनेने। श्वमनमन्त्रेष यहितसुत्तरमन्त्र-पञ्चकं विनियुक्के,—''वड्भिर्डरति वद्गा स्थतव स्वतुभिरेवेनप्र इरति" (५181६ श्र॰) इति ।

'रायखोषे श्रधि यज्ञः', 'ऊर्जा यद्यज्ञम्' इति मन्त्रदयं विश्वेषतः प्रश्नंषति,—"दे परिग्रद्यवती भवता रचनामपद्यों" (५१४।६ श्र॰) इति । 'परिग्रद्यायजन्त', 'परिग्रद्या देवा यञ्चमायन्' इत्येवं परिग्रद्याश्रम्दो यथोर्चकेखे परिग्रद्यावत्यो । परिग्रद्यः प्रथक्-स्वीकारः, तेन यज्ञं विनात्रयितुमसमर्थानि रचांसि स्वयसेवापद्यन्यने।

षट्यु सन्तेषु पञ्चममन्त्रस्थ तात्पर्थं दर्भयित,—"सूर्यरिक्स-र्चरिकेषः पुरस्तादित्याच प्रसृत्ये" (५१४।६ प्र॰) द्रति । 'पूषा प्रसर्वे याति' दति तनाभिधानाद्यं मन्त्रः प्रसृत्ये सन्तस्यते ।

बहमकास चतुर्थपादे पावक अञ्चलतात्पर्थं दर्भथित,—"ततः पावका त्रात्रियो ने। जुवन्तामित्यादासं वै पावकाऽसमेवावदन्धे" (५१४।६ %) इति । त्राग्निवाचकः पावक अञ्चलकोन पत्रमानमस्त्रम् उपस्तव्यते ।

कर्यः, 'विमान एष दिवे। मध्य श्वास इति दाभ्यामाग्रीभे-ऽस्मानं निधाय' इति । तत्र प्रथमामाइ,—"विमान एष दिवे। मध्य श्वास्त श्वा पप्रिवान् रे। दसी श्वन्तरित्तं। स विश्वाचीरिभ चष्टे धताची-रन्तरा पूर्वमपरं च केतुम् (१०)" इति । 'एषः' श्वस्मा 'विमानः' (विविधं जनस्विर्मिमाणः) सन् 'दिवे। मध्ये श्वासी' (श्वाग्नीभस्त्वानीषस्वाकाश्वस मध्ये तिष्ठति)। कीदृत्रोऽमाः ? 'रादयी' (यावापृथियीः) 'मनारियं' य 'मा'-'पप्रिवान्' (यर्वतः पूरितवान्)। यद्यप्यसममा न किञ्चित् जनिक्षिमिते, नापि खेक्क्यसमपूर्ये तिष्ठति, तथापि परसेम्परमुप्येरख्य ख्रयमानलात् न के।ऽपि विरोधः। 'स' (तथा ख्रयमानः) 'विमापीः' (विम्रयापिनीः) दिन्नः 'मिन'-'चष्टे' (सर्वतः प्रकाम्रयति)। तथा 'मृताषीः' (मृतप्राप्तिदेतुश्वताः) धेनूः 'म्रभि'-'चष्टे'। तथा 'मन्तरा' (मृत्याप्तस्य) 'पूर्वमपरं' 'च' 'केतुम्' (खद्याख्यमयाश्वां पूर्वापरदिन्नो- चिम्नश्वतं खर्यम्) 'म्रभि'-'चष्टे'।

प्रश्न दितीषामाद,—''ख्वा बसुद्रो प्रदक्षः सुपर्णः पूर्वस्य योनि पितुरा विवेत्र । मध्ये दिवा निह्तः प्रसिरमा विकत्तमे रजसः पात्यन्ती (११)'' इति । प्रयम् 'प्रमा' 'ज्ञा' (सेघः), वागदारेख प्रश्नाभिवर्षेक इत्यर्थः; 'ससुद्रः' (बद्धफलप्रदलात् ससुद्रसदृत्रः); 'प्रपर्णः' (पूर्वमको सर्वप्रकामकलेनीपचरितलात् स्रव्येषदृत्रः); 'सुपर्णः' (स्वां प्रत्युद्गमगहेत्नात् पित्रसदृत्रः) । तथाविधः 'प्रमा' 'पितः' (पास्तकस्य) पूर्वदिग्वर्त्तिन प्राह्मवनीयस्य 'योनिं' (कारस्थरतम्) प्राम्नीभम् 'प्रा–विवेत्र' (प्रविष्टवान्) । 'येषां दीस्तितानामाद्यनीय खदायेत् (प्राम्नीपद्वदर्त्)' इत्याद्यनीययो निल्माग्नीभस्यान्यचायातम् । प्रसं 'प्रस्तिः' (सेतवर्णः) 'प्रमा' 'दिवः' 'सध्ये' 'निद्दितः' सन् 'रजसः' (रक्षनीयस्य कगतः) 'प्रमा' (खत्पत्तिप्रस्थक्षं काटिद्यं) 'पाति' (परनेषरक्षेष पास्रयति) ।

कचाः, 'रन्त्रं विचा भवीत्रधिविति चतस्रभिरापुष्कद्गवा' इति। तच प्रथमामार,—"रन्त्रं विचा भवीत्रधन् ससुद्रथ्यस्यं गिरः। रथीतमः रचीनां वाजानाष्ट्र सत्पतिं पतिम्(१२)" इति । 'विद्या' 'निरः' (सर्वा खतयः) 'इन्हं' (परमेप्पर्योपेतम्) श्रिय्यं 'श्ववीष्टधन्' (वद्भितवत्यः) । कीदृत्रमिन्हं?—'ससुद्रव्यचमं' (ससुद्रवद्वापिनं); 'रचीतमं' रच एवाम् श्वसीतिव्युत्पच्या रचित्रस्टेन राजामात्यादय खच्चने, तेषां मध्ये श्वतित्रयेन रची रचीतमः, तं; 'वाजानां' 'पतिम्' (श्वन्नानां पासकं); तथा 'सत्पतिं' (सन्नार्गवर्त्त्रयजमानानां पासकम्) ।

श्रथ दितीयामाइ,—''सुबाइर्यक्को देवाष्ट्र श्रा च वचस्यस्मिर्देवा देवाष्ट्र श्रा च वचत्^(१९)" इति । 'सुबास्य' (प्रजापग्रह्मपस्य सुखस्य) श्राक्काता सम्पादयिता; 'यक्कः' 'च' 'देवान्' 'श्रा'-'वचत्' (श्रावच्छ) । 'चचद्भिः' 'च' (पूर्वेक्काग्निरपि) 'देवान्' 'श्रा'-'वचत्' (श्राक्रव्यत्) ।

श्रय हतीयामाइ,—"वाजस मा प्रसवेनाद्राभेकोद्यभीत्। श्रया सपजाः इन्हें। में नियाभेकाधराः श्रकः (१४)" इति। 'इन्हः' (परमैश्वर्ययुक्तः) श्रव्धः 'वाजसः' (श्रवसः) प्रस्नतिनिमिन्तेन 'उद्राभेक' (उद्रइक्सामर्थ्येन) मां यजमानं 'उद्यभीत्' (उत्कर्षे प्रापितवान्)। 'श्रथ' (श्रननारं) 'इन्हः' (परमैश्वर्ययुक्तः) श्रयमग्निः 'नियाभेक' (नियह-सामर्थेन) 'मे' 'सपक्षान्' 'श्रधरान्' 'श्रकः' (निगृहीतान् करेातः)।

श्रथ चतुर्थीमाइ,—"जुड्गाभञ्च नियाभञ्च ब्रह्म देवा श्रवीष्टधन् । श्रथासपत्नानिन्द्राम्नी से विवृत्तीनान् व्यव्यताम् (१५)" इति । 'देवाः' सर्वे 'ब्रह्म' (परिष्टढाः) 'जुड्गाभं' (श्रक्सदीयसुत्कवें) 'नियाभं' 'च' (वैरिषो निकर्वञ्च) 'श्रवीष्टधन्' (विद्वितवन्तः) । 'श्रथ' (श्रवन्तरं) 'इन्ह्रामी' 'विवृत्तीनान्' (सर्वतः पत्तावमानान्) 'से' 'सपत्नान्' (वैरिषः) 'व्यव्यतां' (विनाश्रयताम्) ॥

श्रम विनियोगसङ्गृदः ।

'छत्' चिभिः समिधो दथात् छदुलें। शक्तिः नसम्। पञ्चेति पञ्चभिष्टंना 'वि'दाभाममानः स्त्रितिः ॥ 'दन्दं' चतुर्भिरापुक्शद्वक्तेत्, पञ्चद्रभेरिताः ।

द्रित सायनाचार्य्यविरचिते माधवीये वेदार्थप्रकामे रूष्णयजुः-संहिताभाव्ये चतुर्थकाच्छे पष्टप्रपाठके स्तीयोऽनुवाकः ॥०॥

श्राशुः शिश्राना रुष्मा न युथी घनाघनः श्रीभण-श्रवेशीनां। सङ्गन्देनाऽनिम्ष एकवीरः श्रतः सेनी श्रव्यत् साक्षमिन्द्रः (१)। सङ्गन्देनेनानिम्षिषे जिष्णुनी युक्तारेशं दुश्रावनेनं धृष्णुनी। तदिन्द्रेष अथत तत् संद्रध्यं युधा नर् द्रष्टुंद्रसोन् रुष्यां १)। स द्रष्टुंद्रसौः स निष्किभिवृशी सः संष्टा स युध् दन्द्री गुणेने। सः -सृष्ट्जित् सीम्पा बाहुश्रुद्धिधेन्या प्रतिहिताभिर-स्तां (१)। रुद्धस्यते परिदीय॥१॥

रवेन रहो। हामिषी १ अप्वाधमानः । प्र-भुष्णक्तोना प्रसृषो। युधा जयंत्रसामनेध्यविता रवा-नां भोगोष् भिदं गोविदं वर्जवाहुं जयंन्तुमुञ्जे प्रसृष्णन्त-भाजसा। दुमः संजाता अनुं वीरयध्यमिन्द्रं सखाया- ऽनु सःरंभधं(॥) । ब्ल्विज्ञाय स्वविदः प्रवीदः सर्च स्वान् वाजो सर्चमान खुगः । श्राभ वीरा श्राभ संस्वा सर्होजा जैचे मिन्द्र्रथमा तिष्ठ गोवित्(१)। श्राभ गोचािख् सर्हसा गार्चमाने।ऽद्ायः ॥ २ ॥

वीरः श्रतमंन्युरिन्द्रः दुश्रावृनः प्रतन्। षाडं युध्या-ऽस्माक् सेना अवतु प्रयुत्स् (१)। इन्द्रं आसां नेता षष्ट्-स्पित् हिश्चिणा यृज्ञः पुर एतु सोमः देवसेनानामिन-भज्ञतीनां अयंन्तीनां मुक्तां युन्वये (१)। इन्द्रंस्य ष्टष्णो वर्षणस्य राज्ञं आदित्यानां मृक्ताः श्रश्चे उयं। मुद्दामेनसां भुवनच्यवानां घाषा देवानां अयंतासुदं-स्थात् (१)। श्रुस्माक् मिन्द्रः सम्हेतेषु ध्वेषष्टस्माक् या द्रष्वस्ता अयन्तु॥ ॥

श्वसाकं वीरा उत्तरे भवन्त्यसान् देवा श्रवता इवेषु (१०) । उद्वेष मघवन्नायुं धान्यसात् नां मामकान्। महा १ सि । उद्वेष इन् वाजिनां वार्जिनाम्युद्र योनां अर्थतामेतु घे। षं: (११) । उपप्रेत् अर्थता नरः स्थिरा वंः सन्तु वा इवंः । इन्द्रें। वः श्रमे यक्तवना धृष्या यथा-ऽसंय (११) । श्रवेस छा परा पत् श्ररं व्ये ब्रह्मं सःशिता गक्कामिनान् प्र ॥ ४ ॥

विशमीषां कञ्चनी चिष्यः (११)। ममीषि ते वर्मभ-

न्हादयाम् सेमिस्या राज्यस्तेनाभिवस्ता । जूरी-वरीया वरिवस्ते चस्तु जयम्तं त्वाममुमदन्त देवाः(१४)। यचं वाखाः सम्पर्तन्त कुमारा विश्विक्षा देव । इन्द्री मुस्तचं रुषुहा विश्वाहा समीयक्षतु(१४) ॥ ५ ॥

दीय। दायः। अयन्तु। समिनान् प्र। संत्वारि रश्चेष

द्रति तैत्तिरीयसंहितायां चतुर्थकार्ग्ड वस्त्रपाठके चतुर्थीऽनुवाकः॥ *॥

हतीयेऽग्निप्रणयनसुक्तम्; त्रयाप्रितरयस्क्रमुखते। कन्यः, 'त्राष्ठःः विद्यान इति द्विणते। ब्रह्मा द्वर्षेनान्वेति, मैत्रावद्दः प्रतिप्रखातौं' इति। तत्र प्रयमामाइ,—"त्राष्ठः विद्याने। हवभे। न वृश्मो घना-घनः चोभणस्वर्षणीनां। सङ्गन्दने।ऽनिमिष एकवीरः व्यत्रः वेना त्रव्यत् साक्तमित्रः(१)" इति। त्रयम् 'इन्द्रः' (परमैत्रर्थोपेतः) 'व्रतं' 'वेनाः' (व्रतसङ्काकाः परकीया चेनाः) 'साक्तम्' (एकप्रव्यवेन) 'चन्त्रयत्'। कीदृष्ठः इन्द्रः ? 'चाष्ठः' (जीवकारी); 'विद्यानः' (तीन्त्रणः), व्यत्रुप इत्यर्थः। तत्र दृष्टानाः, 'हवभे। न युश्वः' (यथा हवभे। हवभान्तरेण योद्धुमुत्यद्दते तद्दयमित्।; 'चनाधनः' (त्रतिव्यन व्यक्तान्तरेण योद्धुमुत्यद्दते तद्दयमित्।; 'चनाधनः' (त्रतिव्यन व्यक्तां हिंसकः, घातकः); 'चर्षणीनां' (परवेनागतममुखाणां) 'चोभणः'

 ^{&#}x27;चोभकः' इति सर्वत्र पाठो न सम्बक्।

(कोमहेतुः); 'बद्गुन्दनः' (समीचीनं क्रन्दनं परभणहेतुर्ध्वनर्धस्त, स सङ्गन्दनः);'त्रनिमिवः'(कदाचिदपि निमेषं न करोति),त्रत्यन्तसावधान इत्यर्थः । "परानपेक्षेत्र स्वयं एक एव जेतुं समर्थः, ग्रह्रः ।

त्रथ दितीयामाइ,—''सद्गुम्हनेनानिमिवेश जियाना युक्तारेख दुस्यवनेन ध्याना। तदिन्द्रेष जयत तत्सद्दः युधा नर द्रपुरसेन यद्या(१)" दिति। 'युधः' (युद्धार्थिनः) हे 'नरः' (मनुखाः), 'रन्द्रेख' अनुगृदीताः सन्तः 'तत्' (परमसं) 'जयत' (वत्रीकुरत); वत्रीकृत्य च 'तत्' 'सद्दः' (अभिभवत) विनात्रयतेत्यर्थः। कीदृष्ठेन 'रन्द्रेख'? 'सद्दुम्हनेन,' जनिमिवेश' (पूर्ववद्वाख्येयम्); 'जिय्युना' (जयत्रीक्षेन); 'युक्तारेख' (युद्धकारिणा); 'दुस्यवनेन' (यावियतं दुःक्रकोन); 'ध्य्युना' (भीतिर्हितेन); 'द्रषुरसेन' (वाषाद्यायुधोपेतेन); 'दृष्या' (कामवर्षनेख)।

भय वतीयामाइ,—"स द्युद्दसीः स निविक्तिभिवंत्री सप्ट्रसहा स युभ दुन्तो गणेन । सप्ट्रस्ट्रिजित् केमिया बाइत्रप्रद्वी ऊर्द्धभ्या प्रतिहि-ताभिरक्ता^(६)" दित । द्ववे येषां इस्तेषु ते द्युद्दसाः, तैः साकं 'स' (दुन्दः) 'वधी' (प्रवृद्धं खवशं करोति), 'निविक्तिभिः' (खद्वद्दसीः) साकं 'सः' (दुन्हें) 'वधी', खकीयैधीनुष्कीः खद्वद्दसीस्थि पर्सन्यं वधीकरोतित्यर्थः । यदा प्रसीन्यगतिधीनुष्कीः खद्वद्दसीस्थ सद्दितं तद्द् वधीकरोति । 'स' 'दुन्दः' 'युधः' (थोद्धा) सन् 'गणेन' (प्रकीयभटसमूहेन) 'संस्रष्टा' (सद्दसा गला सच्चं मिसितो भवति),

^{&#}x27;रक्वीरः' इति पाठो ऽच उञ्जर्भमुचितः।

मिमीश्रय च ये खेन संस्रष्टासान् सर्वान् जयतीति 'संस्रष्टजित्'। "यजभानानां यागेषु चामं पिवति; त्रत एव 'बाक्तबर्ही' (बाज्ञबखेापेतः) ;' জর্ভ্রधन्या' (निरम्तरसुद्यतधनुष्कः) । 'प्रतिहिताभिः' (तेन धनुषा प्रेरिताभिः) इषुभिः 'त्रसा' (चेप्ता), विनात्रयतीत्वर्थः ।

श्रय चतुर्थीमार,—"ट्रस्तिते परिदीय । रथेन रस्रोहामित्राष्ट्र त्रपवाधमानः । प्रभञ्जन्त्रेनाः प्रम्हणे युधा जयस्रकाकमेधि श्रविता र्थानाम्(⁸⁾" इति । 'ष्टइत्' वाक्, तस्ताः पासका ष्टइस्पतिरिन्द्रः; त्रत एव बाखानारे समाचातम्, 'वाम्वे ष्टइत्तस्या एव पतिसासार् ष्ट्रस्पतिरेष' इति । व्याकरपकर्रतिमन्त्रस्य वाक्पतिलं । तचान्यप श्राचातम्, 'ते देवा रत्रमनुविश्वमां ने। वाचं व्यासुर्विति' रित। तथाविध हे रून्द्र, लं 'रचेन' 'परिदीय' (सर्वता गच्छ)। कीहृत्र इन्द्रः ?-'रचोद्या' (रचर्या दन्ता) ; 'त्रमित्रान्' (बतृन्) 'त्रपवाधमानः' (यथाऽपर्यान्त तथा बाधमानः); 'त्रेनाः' परकीयाः 'प्रभञ्चन्' (प्रकर्षेण भग्ना: कुर्वन्); 'प्रम्हणः' (प्रकर्षेण हिंसकः); 'युधा' (युद्धेन) 'जयन्' (सर्वेच विजयमानः); 'श्रक्षाकम्' (श्रक्षादीयानां) 'र्थानां' 'त्रविता' 'एधि' (रचका भव)।

ष्रय पञ्चमीमार,—"गोत्रभिदं गोविदं वज्जवारं जयनमञ्ज प्रम्हणन्तमाजवा। इमः यजाता त्रनु वीरयध्वमिन्द्रः यखायोऽनु बर्रभध्वम्^(५)'' इति । हे 'सजाताः' (समानजन्मानः श्रसादीया ज्ञातयः), यूयम् 'इमं' 'इन्हं' 'त्रनु-वीरयध्वं',-त्रयमिन्द्रः पुरतः वीरः (ग्रूरः) श्रभवत् , पञ्चाद् यूयं ग्रूरा भवत । हे 'सखायः', 'इन्द्रम्'

^{*} अत्र 'सामपा' इति पाठः पतित इव प्रतिमाति।

श्रानुसंरमध्यं, - इन्हं व्यवता युद्धं सम्यगाभरतां, पश्चाङ्कवन्त श्रारमन्तां। की हृष्ठमिन्हं ? — 'गोत्रभिदं' (गोत्रान् पर्वतान् भिनत्ति तदीयपत्तां -म्किनत्तीति गोत्रभित्, तं), गां भूमिं विन्दते सभते इति गोवित्, तं 'गोविदं', वन्नो बाही यस्य स 'बन्नवान्तः', तं, 'श्रम्भ' 'जयन्तं' (भूमिराहित्यं अनूणां यथा भवति, तथा विजयमानं), 'श्रोजसा' (बस्तेन) 'प्रस्यान्तं' (प्रकर्षेण हिंसन्तम्)।

त्रथ षष्ठीमाइ,—''बखिद्यायः खितरः प्रवीरः षद्यान् वाजी सदमान जगः। त्रभिवीरा त्रभिसन्ता सद्देशा जैनिन्द्र रथमा तिष्ठ गोवित्(९)"। हे 'इन्द्र', त्वं 'जैनं' (जयनबीखं) 'रथम् चा तिष्ठ' (त्रारोष्ट)। कीदृष्ठस्तं? (बखं परकीयसमध्यें विज्ञानातीति) 'बख-विज्ञायः', 'खितरः' (पुरातनः), 'प्रवीरः' (ग्रूरेखणितग्रूरः), 'सद्द्यान्' (बखवान्), 'वाजी' (श्रञ्जवान्), 'सद्दमानः' (परेषाम् त्रभि-भिवता), 'जगः' (युद्धेषु कूरः), (त्रभिता वीरा ग्रूर्भटा यखासौ) 'त्रभिवीरः', (श्रभितः सन्तानः परिचारका यखासौ) 'त्रभिसन्ता', (सद्देश बलाज्ञातः) 'सद्देशजाः', बलाधिक द्रत्यर्थः; (गां भूमिं विन्दते, सभते द्रति) 'गोवित्'।

श्रय सप्तमीमाइ,—"श्रमि गोताणि सहसा गाइमाने।ऽदायः वीरः श्रतमन्युरिन्दः । दुश्चावनः प्रतनाषाडयुथ्योऽस्नाकष्ट् सेना श्रवतु प्र युस्तु^(०)" इति । श्रयम् 'इन्द्रः' 'प्र युस्तु' (प्रकृष्टेषु युद्धेषु) 'श्रस्नाकं' 'सेनाः' 'श्रवतु' । कीदृशः इन्द्रः ? 'श्रमि' (सर्वते।ऽव-स्तितानि) 'गोत्राणि' (युद्धकेत्राणि) 'सहसा' (श्रीषृ') 'गाइमानः'

 ^{&#}x27;इन्द्रः' इति पाठो भवितुं युक्तः।

(प्रविश्वन्), 'ब्रदांथः' (दायारक्तिः"), 'बीरः' (प्रह्रः), 'ब्रतमन्युः' (विविधकोधयुक्तः), 'दुरुप्रवनः' (चावियतुं दुःब्रक्तः), 'प्रतनाषाट्' (प्रकीयसेनानामभिभविता), 'ब्रयुधः' (केनापि योद्धुमञ्जकः) ।

श्रवाष्ट्रमीमाइ,—"दन्द श्रामां नेता ष्ट्रस्यतिर्द्धिणा यद्यः पुर एतु सेामः। देवसेनानामभिभञ्चतीनां अयन्तीनां महता यन्त्वये (म)" दति। याः सेना श्रम्भदनुग्रहाधं गच्छन्ति 'श्रामां' 'दन्दः' 'नेता' भवतु। यः 'ष्ट्रस्यतिः', या च 'दिच्या' देवी, यस्च 'यद्यः', यस्च 'सेामः', एतेषानेकैकः पुरता गच्छतु। यास्तितसम्बन्धिन्यो देवसेनाः परवस्तमभिभञ्चयन्त्यो जयन्ती , तासाम् 'श्रमे' 'महतः' 'यन्तु'।

श्रय नवमीमाइ,—''इन्द्रख हुण्हो वहण्छ राज्य श्रादित्यानां महामनसां भुवनच्यवानां घोषो देवानां ज्यतासुद्रखात्^(८)" इति । 'हृण्यः' (कामाभिवर्षिणः), 'इन्द्रखः', 'राजः' (राज्यं खुर्वतः), 'वहण्यखः' 'ज्ञर्हः' (यसम्) 'ज्यं' (युद्धेषु श्रितितित्रं), 'महामनसां' (युद्धे खिरिचत्तानां), 'भ्रवनच्यवानां' (अनून् भुवनेभ्यस्थावियतं समर्थानां), 'जयतां', 'देवानां' 'घोष'-ध्विनः' 'जदस्कात्' (सर्वत जित्यताऽभ्रत्)।

त्रय दश्रमीमाइ,—"श्रक्षाकमिन्द्रः सन्दतेषु ध्वेत्रेष्यक्षाकं या इववद्या जयन्तु । श्रक्षाकं वीरा उत्तरे भवनवस्थानु देवा श्रवता इवेषु (१०)" इति । युद्धार्थं परसैन्देषु सन्यक् प्राप्तेषु सत्यु 'श्रक्षाकम्'

स्वभेव सर्वेत्र पाठः। दायरिक्तः इति पाठो भवितुं युक्कः।

^{† &#}x27;जयन्यः' इति 'जयन्ति' इति वा पाठो भवितुं युक्तः।

^{‡ &#}x27;द्योबी ध्वनिः' इति पाठी भवितुं युक्तः।

'इन्द्रः' रजिता भवतिति श्रेषः । तदानीम् 'श्रक्षाकं' 'या' 'इषवः' श्रक्षादियिर्दुक्ताः, 'ता जयन्तु' (परमैन्यानि विध्यन्तु); 'श्रक्षाकं' से 'बीराः' (भटाः), ते 'उत्तरे' 'भवन्तु' (परकीयभटेभ्य श्रिका भवन्तु); 'देवाः' 'इवेषु' (युद्धेषु) 'श्रक्षान्' एव 'श्रवत' (श्रवन्तु रजन्तु *)। इत्यं दश्चेम् श्रप्रतिरचस्त्रं समाप्तम् ।

श्रथ तत्रैव विकस्तितः पञ्च ख्यः उद्यन्ते। तत्र प्रथमामाइ,—
"उद्वर्षय मघत्रवायुधान्युद्धानां मामकागां महाप्रसि । उद्दुष्ट्यह्म्
वाजिनां वाजिनान्युद्रधानां जयतामेतु घोषः(११)" इति । हे
'मघत्रन्' (इन्द्रः), 'श्रायुधानि' श्रस्मदीयानि 'उद्धर्षय' (परकीयेभ्यः
उत्कष्टानि कला श्रसान् हर्षय), 'मामकानां' (मदीयानां) 'सलनां'
(प्राण्यिनां) 'महांसि' (तेजांसि) 'उत्'-क्षष्टानि कला तान् हर्षय । हे
'व्यह्न्', 'वाजिनाम्' श्रस्मदीयानाम् (श्रश्चानां) 'वाजिनानि' (श्रीष्यगमनानि) 'उत्'-कष्टानि कला हर्षय । 'जयतां' (विजयं प्राप्नुत्रतां)
'रथानाम्' श्रस्मदीयानां 'घोषः' (महान् ध्वनिः) 'उत्'-'एतु'
(उद्गच्क्तु) ।

श्रथ दितीयामाइ,—''उप प्रेत अयतां नरः खिरा वः सम्मु बाइवः । दन्ते वः प्रमी यन्द्रलगाध्या यथाऽमय^(१९)" दिति । हे 'नरः' (श्रस्रदीयाः पुरुषाः), 'उप प्रेत' (परमैन्यममीपे प्रकर्षेण गन्द्रत) । ततः 'जयतां' (विजयं प्राप्नुवतां) 'वः' (युमाकं) 'बाइवः' खकीयायुधैः प्रदर्शेषु 'खिराः' 'सन्तु' । 'यथा' यूयम् 'श्रनाध्याः'

 ⁽खबतु रक्ततु) इति पाठी न सम्यक्।

'श्रमच' (केनापतिरस्कार्या भवध), तथाऽयम् 'रूत्रः' 'वः' (युक्तार्क) 'द्रमं' 'युक्त्तु' (इरातु) ।

श्रय हतीयामाइ,—"श्रवसृष्टा परा पत श्रर्थे ब्रह्मस्ट्रिक्ता गच्छामित्रान् प्र विश्व मेवां कञ्चनोच्छियः (१६)" इति। हिंसका हेतिः श्रर्था, हे 'श्ररथे', ब्रह्मणा 'संज्ञिता' (तील्लीकृता) लं 'श्रवसृष्टा' (श्रक्माभिर्मुक्ता) सती 'परा'-'पत' (सहसा परसैन्ये पतिता भव), पतिला च 'श्रमित्रान्' 'गच्छ' (प्राप्तुहि), प्राप्य च 'प्र-विश्व' (एतेषां श्ररीरमध्ये प्रवेशं कुक्), प्रविश्व च 'एवां' मध्ये 'कञ्चन' पुरुषं मा 'खच्छियः' (श्रवश्चिष्टं मा कुक्) सर्वानपि जहीत्यर्थः।

श्रय चतुर्थीमाइ,—"मर्माणि ते वर्मभिन्काइयामि चेामस्वा राजास्वतेनाभि वसां। छरेावरीयो वरिवसे श्रस्त जयनं लामनु मदन्तु देवाः (१४)" इति। हे यजमान, 'ते' (तत्र) 'मर्माणि' 'वर्मभिः' (कक्षेः) 'हादयामि', 'चेामः' 'राजा' लां 'श्रस्टतेन' (मरण-निवारकेण) केनापि कवचित्रवेण 'श्रभि वसां' (श्रभित श्राक्तादयत्त), 'ते' (तव) 'वरिवः' (धनं) 'छरोवरीयः' 'श्रस्तु' (श्रदीयात्(?) श्रधिकादणत्यन्तमधिकमस्तु)। 'अथनां' (वित्रयं प्राप्नुवनां) 'लां' 'श्रनुमदन्तु' (श्रनुकूषा भ्रता इष्यन्तु)।

श्रय पश्चमीमाइ,—"यन वाणाः सम्पतिन सुमारा विश्विखा इत । रुद्रो नस्तन दृनदा विश्वादा धर्म युष्क्त (१५)" इति । 'यन' (यिक्षिन्) युद्धे 'वाणाः' परैर्सुकाः 'सम्पतिना' (इतस्रेतस्य सभूय पतिना), तन दृष्टानाः,—'सुमाराः विश्विखा इव' (सुण्डितिशरस्का विश्वीर्ण-

अत्र 'थया मुख्यित श्रिरक्ताः' इति पाठो भवितुं युक्तः ।

केश वा श्रत्यन्तवासाखपसाः सना इतस्तेत्व गच्छनि तदत्)। 'तच' युद्धे श्रयम् 'इन्द्रः' 'विश्वाद्या' (परकीयसर्वप्राणिघाती), 'ष्टबद्या' (विश्वेषता वैरिघाती) सन् 'नः' (श्रसाम्यं) 'श्रमं' 'यच्छतु'।

'श्राउः श्रिशान' इत्येतत् स्नकं विनियुक्के,—"देवासुराः संयक्ता श्रासन् ते देवा एतदप्रतिरथमपग्रम् तेन वै ते श्रप्रत्यसुरानजयन् तदप्रतिरथस्थाप्रतिरथनं यदप्रतिरथं दितीयो हातान्वाद्यप्रयोव तेन यजमाना आद्वयान् जयत्यथा श्रमभिजितमेवाभिजयति" (५१४। ६ श्र॰) इति । यदा देवास श्रसुरास युद्धाय खर्यतास्तदानीं 'देवाः' विजयप्रदलेन श्रप्रतिरथास्थमेतत् स्नक्तम् 'श्रपग्रम्'; 'तेन' एव देवा निवार्यं सौकिका 'यजमानः' सर्वान् 'आद्वयान्' प्रतिकूलराहित्यं यथा भवति तथैव 'जयति'। श्रपि च पूर्वम् 'श्रनभिजितम्' श्रपि धनं देशविग्रेषं वा सर्वथा 'श्रभिजयति' एव ।

स्नमन्त्रमञ्ज्ञां विधन्ते,—''दम्नचं भवति दम्राचरा विराख् वि-राजा दमौ खोकौ विध्नावनयोकींकयोर्विध्त्या श्रयो दम्राचरा विराख्नं विराख् विराज्येवान्नाचे प्रतितिष्ठति" (५।४।६ श्र०) दति । श्रीसन्तृवाके समाचातानाम् 'उद्धर्षय' दत्यादिपञ्चानां विकल्पार्थलात् स्नम्नता स्वचो दम्भेव सम्पद्यन्ते । विराट्कन्द्चे दम्राचरलात् तस्य कन्द्यः सामर्थ्यनेव खोकयोर्विध्नलात् तयोर्विधत्यर्थमिदं दम्भचं स्नमं सम्पद्यते । श्रिप च दम्राचरस्य विराट्कन्द्चे। अन्नदेत्रसेन श्रम्भलादम्मक्कादारा तसिन् श्रमाचे प्रतितिष्ठति ।

^{* &#}x27;बसुरान् खजयन्'—इत्यादिरूपः किखत् पाठोऽच पतित इवं प्रतिभाति।

श्रच पूर्वानुवाके। क्ष-'विमान'—इत्यादिमकाद्यसाध्यमस्मिशानं विधत्ते,—"श्रवदिव वा श्रकारिशं श्रकारिश्वमिवाग्रीभ्रमाग्रीभ्रेऽस्मानं निद्धाति सत्त्वाय" (५।४।६ श्र०) इति । भ्रमिवक्यूर्त्तखद्भपाभावात् इद्मकारिश्वम् श्रविद्यमानसदृष्ठं भवति, श्रकारिश्वसदृष्ठं चाग्रीभं, इविधानस्रक्षत्रस्यद्यादनादीनामभावेन ग्रुत्यलप्रतिभानात्, श्रतः ग्रुत्यलनिवारणेन च सुसद्भावाय तथापि कश्चित् 'श्रस्मानं' निद्धात्।

मक्ति विमानक्रव्तात्पर्यं प्रतिष्ठित्ये" (५१४।६%) इति । प्रथममक्ते विमानक्रव्तात्पर्यं दर्भयति,—"विमान एव दिवेर मध्य श्रास द्वाद व्यवैतया मिमीते" (५१४।६%) इति । 'एतया' खत्रा पूर्वं प्रद्व्यम् श्राप्तीत्रं वस्तविष्ठिष्टं यथा भवति तथा 'मिमीते' 'एव' (प्रमितं करेराव्येव) ।

दितीयमको प्रतिज्ञन्दतात्पर्थं दर्भयति,—"मधे दिवा निहितः प्रतिस्तिः प्रतिस्तिः प्रतिस्तिः प्रतिस्तिः प्रतिस्तिः प्रतिस्तिः प्रति । प्रतिस्तिः प्रति । प्रति ।

'दुन्द्रं विश्वा श्रवीष्टधन्' दत्यादिमन्त्रचतुष्ट्यसाधं गमनं विधन्ते,— "चतद्धिसरापुक्कादेति चलारि कन्दाप्टसि कन्दोक्षिरेव" (५।४। ६ श्र०) दति । श्राग्रीप्रान्त्रिगेत्य पुक्कपर्यन्तमेतैर्मन्द्रेगेच्छेत् । गावश्रादीनां सुख्यक्कन्द्रसां चतुष्टुात् मन्त्रसङ्ख्यायाः, कन्दोक्षिरेव एकः सन् गतवान् भवति ।

प्रधममक्तस्य प्रधमपादे अवीवधिनिति पदस्य तात्पर्धे दर्भयति, —"दुन्दं विश्वा अवीवधिनित्वाच वृद्धिनेवापावर्त्तते" (५।४।६ अ॰) इति । तकीव चतुर्थपादे वाजक्रव्हतात्पर्थं दर्शयति,—"वाजानाष्ट्र सत्पतिं पतिमित्यादास्त्रं वै वाचे।ऽस्रमेवावस्त्र्ये" (५।४।६ स्त्र॰) दति।

दियीयमको सुवजन्दस्य तात्पर्यं दर्भयति,—"सुवक्रभेक्को देवाश्र त्रा च वचदित्याद प्रजा वै पत्रवः सुवं प्रजामेव पर्ग्नतात्मक्ते" (५।४।६८०) इति।

श्रसिकेव मक्ते उत्तरभागसा तात्पर्थं दर्भयति,—"यचद्ग्निर्देवे। देवा श्रा च वचदित्याद खगाक्तये" (५१४।६ श्र०) द्रति । 'देवान् श्रा च वचत्' द्रत्युक्ता तान् देवान् खगतान् खाधीनान् करेाति ।

हतीयमकातयोर्द्राभिनयाभग्रन्थोसात्पर्यं दर्भयित,—"वाजस्य मा प्रस्वेनोद्राभेणोद्यभीदित्याद असौ ना श्रादित्य उद्युष्ट्राभ एव निस्त्रेष्ट्राभो ब्रह्मणैवात्मानसुदृष्ट्राति ब्रह्मणा आहर्यं निस्ट्रहाति" (५१४।६ श्र॰) दति । ऊर्ड्ड्रप्रस्थवाचिना उद्गाभग्रन्थेन उद्गक्तन्, नियाभग्रन्थेन श्रधो मक्कन् श्रसावादित्यो सन्द्राते, श्रतस्वदुभयप्रतिपादकेन मन्त्रेष स्वात्मानम् 'उद्गुष्टाति', (उत्कर्षं प्रापयिति)।

ऋच विनियोगसङ्गुदः ।

श्राइरित्यप्रतिरथं श्रेतात्वास दश्रर्षकं । उद्वर्षेति विकस्पार्था मन्ताः पश्चदश्रेरिताः॥ इति ।

द्रति सायनाचार्य्यविर्विते माधवीये बेदार्थप्रकामे रूष्य्यजुः-संदिताथाये चतुर्थकाण्डे षष्टप्रपाठके चतुर्थे। पुनाकः ॥ ०॥ प्राचीमन् प्रदिशं पेहि विद्वान् ग्रेरेग्ने पुरे किंगि-भेवेह । विश्वा आशा दीर्घानो वि भाष्ण्य ने वेहि दिपदे चतुंष्यदे । क्रमध्यम् ग्रिना नाक् मुख्य हस्तेषु विश्वेतः। दिवः पृष्ठः सुर्वर्ग्तवा मिश्रा देवेभिराध्यं । पृश्विष्या खहमुदन्तरिष्ठमार्वहम्नरिष्ठाहिवमार्वहं। दिवा नार्वस्य पृष्ठास्नुं वृज्यातिरगां॥ १॥

श्रृष्टं सुवर्यन्तो नापेश्चन्त् श्रा द्याः रीष्ट्रांच्याः । यश्च ये विश्वती धार् सुविद्याः सी वि तेन्दे (१) । श्रे प्रे प्रद्यमा देवयतां चश्च द्वेवानामुत मत्यानां । द्वेश्यमाणां भृगंभिः स्जीषाः सुवर्यन्तु यर्जमानाः ख्वित्त । नक्षोषासा समनसा विरूपे धापयेत् श्रिशुमेकं समीची द्यावा श्वामा स्वको श्वन्ति भीति देवा श्रुमेकं समीची द्वावा श्वामा स्वको श्वन्ति भीति देवा श्रुमें धार्यं द्रविण्यादाः (१) । श्रमें सदसाश्च ॥२॥

शृत्मृद्धेञ्छ्तं ते प्राणाः स्इसंमपानाः। त्वः सीइसस्य राय देशिषे तसी ते विधेम वाजाय स्वाही (०)।
सुपर्णोऽसि गृहत्मीन् प्रिष्य्याः सीद् पृष्ठे प्रेष्टिच्याः
सीद (०) भासान्तरिष्यमा प्रेण् ज्योतिषा दिव्मुत्तभान्
तेजसा दिश् उद्दृश्च (०)। श्राजुद्मीनः सुप्रतीकः पुरस्तादम् स्वां योनिमासीद साध्या श्रास्मिनस्यस्ये
श्राध्यात्रे स्वां योनिमासीद साध्या श्रास्मिनस्यस्ये

यर्जमानस्य सीदत(१)। प्रेडी सम्मे दीदिहि पुरा ने १ जंस्या सूर्म्या यिष्ठ । त्वार म्रस्नेन्त उपं यिन्त वार्जाः(१९)। विधेन ते पर्ने जर्मकमे विधेम स्तामे-रवर स्थस्य। यस्माद्योनेद्दारिष्ठा यजे तं प्रत्वे स्वीर्श्वं जुदुरे सिनंदे(१९)। तार संवितुर्वरेखस्य स्वामादं देखे सुमृतिं विश्वर्जन्यां। यानस्य कस्बो सर्दुद्रत् प्रपीनार सुदस्धारां॥ ४॥

वेदार्थप्रकाशे ।

पर्यसा मुद्दों गां(१०)। सुप्त ते अग्ने सुमिधः सुप्त जिद्धाः सुप्तध्यः सुप्त धार्म प्रियाणि सुप्त देविः सुप्तधा त्वा यजन्ति सुप्त बार्मीरा प्रणस्त धृतेने(१०)। देहरू चार्न्याहरू चैताहरू च प्रतिहरू च मितस्र सिमी-तस्र सभराः। सुक्रज्योतिस्र चिच्च्योतिस्र सुत्य-ज्योतिस्र ज्योतियाः स्त्यर्थत्पास्तर्यः हाः॥ ५॥

च्युतिष सत्य जिच्च सेन्जिचं सुषेण्यान्यं मिचय दूरे चीमचय गणः च्युतयं सत्ययं भ्रुवयं धृक्णंय धृता चं विधृता चं विधार्यः। ईहस्यास एताहस्रास जृषु यः सहस्रासः प्रतिसहस्रास् एतन । मितासंयु समितासस्र न जृतये सभरसे। मक्ता यृत्ते चृस्मिनिन्द्रं दैवीविशें। मृक्ते। द्विवाद्याः, यथेन्द्रं दैवीविशें। मुहते। उनु वर्तान एविम्मं यर्जमान् दैवीश्व विश्वो मानुं वीश्वानं वर्ताना भवन्तु (१॥) ॥ ६ ॥

श्रुगां। स्हसाश्च। देवाः। स्हसंघाराम्। श्रत्येश्हाः। श्रुनुवर्त्मानुः। षे। इंग्रं च ॥ ५ ॥

द्रित तैत्तिरीयसंहितायां चतुर्थका एडे षष्ठप्रपाठके पच्चमे। स्वा

सत्यें ज्वाके ऽ ग्रिप्रणयना क्रमप्रतिरयस क्षम् ; त्रय पश्च मेऽ ग्रिस्वापन स्वापे । कल्पः, 'प्राचीमनु प्रदिशं प्रेष्टि विद्वानिति पश्च भिरिग्न भिष्यः' इति । तच प्रथमामा इ,— "प्राचीमनु प्रदिशं प्रेष्टि
विद्वान ग्रेरग्ने पुरा त्रिग्नभेवेष्ठ । विश्वा त्राज्ञा दीद्याना वि भाष्ट्रक्षं
ना भेष्टि दिपदे चतुष्यदे (१) इति । 'त्राग्ने' (इद्वानीमानीत हे
वक्रे), 'प्राचीं' 'दिशं' *— (प्रागास्थां प्रक्षष्टां दिशं) 'विद्वान्' लं 'श्वनु'—
'प्रेष्टि' (त्रमुक्तमेण प्रकर्षा यथा भवति तथा गच्छ) । लम् 'त्रग्नेः'
(इष्टकानिष्यादितस्य चितिक पस्य वक्रेः) 'इष्ट' (श्वस्मिन् कर्म्मणि) 'पुरा
त्रिग्नभेव' (पूर्वभागवर्त्ती विक्रभेव, यदा पुरागना सुस्थाऽ ग्रिभेवे—
त्यर्थः) । 'विश्वा' 'त्राज्ञाः' (सर्वा त्रिपि दिग्रः) 'दीद्यानः' (प्रकात्रयन्)
'वि भाष्टि' लमपि (विश्वषेण प्रकात्रस्त्र) । ततः 'नः' (त्रस्तदीयाय)
'दिपदे' 'चतुष्यदे' च 'ऊर्जम्' (श्रक्तं) 'भेष्टि' (सन्यादय) ।

 ^{&#}x27;प्रदिशं' इति पाठो भवितुं युक्तः।

श्रथ दितीयामाइ,—"क्रमध्यमग्निमा नाकसुख्यः इस्तेषु विश्वतः। दिवः पृष्ठः सुवर्गला मित्रा देवेभिराध्यम्(१)" इति । हे श्वलि-ग्यजमानाः, 'नाकं' (खर्गसाधनम्), 'उख्यं' (उखायां पूर्वं सन्पादितम्), श्रश्चिं 'इस्तेषु' 'विश्वतः' (धारयन्तः) तेन 'श्रश्चिना' सह 'क्रमध्वं' (श्रश्चेष्टपरि पादान् विचिपत) । तता 'दिवः पृष्ठम्' (श्राकाश्रखोपरि वर्त्तमानं) 'सुवर्गला' (खर्गलोकं प्राप्य) 'देवेभिः' 'मिश्राः' (देवै-रेकीश्वताः) 'श्राध्वं' (अपविश्वत) ।

श्रय हतीयामाइ,—"पृथिया श्रहमुद्दनिविमाइइमन्तरिक्षाइ् दिवमाइइं। दिवा नाकस्य पृष्ठात् सुवर्ष्योतिरगामदम्(१)" दति। 'श्रहं' यजमानः 'पृथिया' उद्गत एतत् 'श्रन्तरिक्षम्' 'श्राइहं' (श्राइहोऽस्मि)। तसादेव 'श्रन्तरिक्षात्' उद्गतो 'दिवम्' 'श्राइहं' (श्रुक्षोकमाइहोऽस्मि)। 'दिवः' श्रुक्षोकसम्बन्धी 'नाका' दुःखरितो यः प्रदेशः, तस्म, 'पृष्ठात्' (उपरिष्ठात्) स्वर्गक्षोकवासि च्योतिर्मण्डल-मादित्यइपम् 'श्रगां' (प्राप्तोऽस्मि, यदा प्रास्थामि)।

श्रय चतुर्थीमाइ,—"सुवर्यनो नापेचन श्रा चार रेाहनित रेाइसी। यद्यं चे विश्वता धार् सुविदार्से वि तेनिरे(")" दिता। 'चे' यजमानाः 'सुविदांसः' (सृष्टु कमीनुष्ठानप्रकारं जाननाः) 'विश्वता धारं' (सर्वस्त जगता धारणहेतं) यं श्रव्धां 'वि तेनिरे' (विस्तरेणानुतिष्ठन्ति), ते यजमाना 'चां' (श्रम्तरिचम्) 'श्रा'-'राहन्ति' तथा 'राइसी' (द्यावाष्ट्रचिचा) श्रारोहन्ति, ततः 'सुवर्यनाः' (स्वर्गवासमादित्यमण्डलं प्राप्तुवन्तः), तद्विस्तानान्यत् किमपि स्थानं 'नापेचन्ते'।

4 H 2

त्रय पद्मनीमाइ,—"क्ये प्रेडि प्रचने। देववतां चबुरैंवानासुत मर्त्यानां । इववनाका अगुनिः स्रवेताः सुवर्यन्तु वजमानाः स्रक्ति(ए)" इति । देवान् त्रात्मन इच्छनो देववनो वजमानाः, तेवासुपकाराय, हे 'त्रयो' तं 'प्रचमः' 'प्रेडि' (पुरता गच्छ), यतकां 'देवानां' मनुव्याचाञ्च चनुक्तानीयः । खेत्रे हि मच्छतः पुरवच्य दृष्टिः पुरतो चाति । 'इच्छमाचा' (बहुमिच्छनाः) 'चळ-मानाः' 'स्गुनिः' 'स्वावाः' (बनुष्ठानपरैर्स्गुनामकैर्बुनिभिः समानप्रिचाः) क्याः, क्रमा बचा भवति तथा 'सुवर्षन्तु' ।

तत्र प्रथममञ्जल तात्पर्धं दर्भयति,—"प्राचीमनु प्रदिशं प्रेष्टि विद्यानित्याद देवस्रोकमेवैतस्रोपावर्कते" (५१४।७२०) दति । देवस्रोकमेवे।हिस्स प्रणया स्टचा प्रवृक्तो भवति ।

दितीयमन्त्रस्य तात्पर्यं दर्भयति,—"क्रमध्यमग्निमा नाकमित्याहे-मानेवैतया स्रोकान् क्रमते" (५१४१०२४०) इति । 'इमानेव' 'स्रोकान्' एड्ग्सि सनया ऋषा पाड्किन्यायं करोति ।

द्वतीयमन्त्रस्य तात्पर्यं दर्भवित प्रथिया प्रस्मुदनारिकमाद्द-मित्याद्देमानेवैतया खेकान्त्यमारोद्दति" (५।४।७५०) दति । 'द्वमानेव' 'खेकान्' ७द्वित सनया स्वता सम्यगारोद्दित ।

चतुर्धसन्त्रस्य तात्पर्थं दर्शस्ति,—'सुवर्धन्तो नापेसन्त रखास सुवर्धनेवैतस्य खेतकमेति" (५१४१७२४०) इति । सर्गप्राप्तिप्रति-पादकश्रद्धात्र बङ्गावान्तदृत्वा सर्गप्राप्तिः ।

पश्चममध्यक तात्पर्धं दर्भयति,—"स्त्रो प्रेष्टि प्रवसे। देवसता-मित्याक्राभयेव्वेवैतया देवमनुखेषु चलुर्दधाति" (५।३।७५०) दति। समयचनुःप्रतिपादकस्य प्रन्दस्थात्र सङ्गावात्र तथा स्वता समयत्र चनुन्वापमम् ।

मन्त्रान् विनियुक्के.—पञ्चभिरधिकामित पाक्को चन्नो चावानेव चन्नकेन सह सुवर्गे खेाकनेति" (५१४।७५०) इति ।

कत्यः, 'नक्नोवासाऽग्ने सद्द्वारोत दाश्यां संह्ताश्यां दश्वः पूर्णामौदुन्तरी स्वयमाद्यायां जुहोति' दति। तत्र प्रयमामाइ,—
"नकोवासा समन्या विद्येष धापयेते त्रिग्नुकेन स्वभीषी। द्यावा
वामा दक्को चन्नवि भाति देवा चित्रं धार्ष द्रविषोदाः (१)" दति।
नक्षद्वोवाद्य 'नक्नोवासा' (राषिदिवसावित्यर्थः), 'समन्या' (परस्परमैकमत्ययुक्ते), 'विद्ये' (राषिः कृष्णा, दिवस्य द्रुक्त दति
विश्वप्यद्ये), 'समीषी' (प्रमुक्त्वे) सत्यो 'एकं' 'त्रिग्नुं' प्रशिद्यं
'धापचेते' (यवमानकर्द्वकमिधारणं सन्याद्यतः)। 'द्यावा' (बुलोके),
'वामा' (कितौ), 'चन्नः' (तदुभयमध्यवर्त्तिन चन्नरिष्ठे) 'दक्कः'
(राचमानः) अयमद्भः 'विमाति' (विश्ववेष प्रकान्नते)। दीयनि
व्यवद्यक्तीति 'देवाः' (प्राणाः); ते च 'द्रविषोदाः' (यागदारेष
धनद्यं प्रश्चं प्रयक्ति)। तादृन्ना यजमानस्य प्राणा प्रग्नितेतं
'धारयम्' (धृतवन्नः)।

षय दितीयामार,—''बग्ने यर्द्याच व्रतमूर्ड्डक्तं ते प्राणाः वर्द्यमपानाः । लष्ट्र यार्द्यस्य राय रैजिवे तसी ते विधेम वाजास स्नारा^(०)"दति । व्रतवरस्ववस्त्वयेः त्रपरिमिताभिप्रायेष[®],'विस्ततस्रकुः'

अपिरिमितलाभिमावेख इति पाठौ भवितुं यृक्तः ।

- इत्यादिमक्नोक्रमूर्तिक्पलेनायमग्निर्व ख्रयते। तसादिसमूर्जप्राषा-पानाः हे 'त्रग्ने', तव बहवः। तथा 'लं' 'साइखक्य' (बज्जसङ्ससमूह-परिमितक्य) 'रायः' (धनक्य) 'र्रे ग्रिवे' (प्रभुभेविस)। 'तसी' 'ते' (ताहुज्ञाय तुभ्यं) 'वाजाय' (त्रज्ञसिद्धार्थं) 'विधेम' (परिचरेभ)। 'हविषे' 'खाहा' (ददं हवि: खाज्जतमन्तु)।

तत्र प्रथममन्त्रं विनियुद्धे,—"नक्षोषाचेति पुरेाऽनुवाक्यामन्वास् प्रत्ये" (५१४।७५०) इति । पुरेाभवः प्रदानमन्त्रः पूर्वमनुक्रमेखोखते इति पुरेाऽनुवाक्या । 'प्रत्ये' उत्तरेख मन्त्रेख इविःप्रदानाय न्त्रादौ तान् व्रूयात्, 'पुरेाऽनुवाक्यामनूख याज्यया जुहोति' इत्यन्यवाभिद्दितलात् ।

दितीयमकास्य वैराजक्पप्रापकार्त दर्भयति,—"स्रग्ने सहसासे-त्याह साहसः प्रजापतिः प्रजापतेराष्ट्री" (५१४१०स्र॰) दति । सहस्रसङ्ख्याकचनुरादिसम्बन्धा विसक्पधरस्य विराष्ट्रार्कीः सम्भवति, नान्यस्म, स्रते।ऽयं मकाः प्रजापतिप्राप्तये भवति ।

श्रस मन्त्रस्य चतुर्घपादे वाजश्रस्य तात्पर्धं दर्भयति,—"तसी ते विधेम वाजाय खाडेत्याद श्रसं वे वाजाऽस्रमेवावद्ये" (५। ४।७%) दति ।

एतयम्बराधं होमं विधत्ते,—"दध्नः पूर्णामौदुमरी स् सव-माहबायां जहालूर्वें दिध जर्क् उदुमरोऽसौ खयमाहबाऽसुव्यानेवाजें दधाति तस्मादसुतोऽवाचीमूर्जसुप जीवामः" (५१४१७४०) इति । जुद्धसदृत्री काचित् सुक् श्रौदुमरी । दध्युदुमरयोरस्ररूपलात् खयमाहबायास्र सर्गरूपलात्, तस्मास्र तद्वोनेन सर्ग एवासं खापयित । यसात् खर्गे ऊर्क् श्रविखता 'तसादस्रता' घुलाकात् 'त्रवीचीं' (दृष्टिक्पेणाधः पतन्तीम्) 'ऊर्क्कम्' (श्रन्ने) वयम् 'उप जीवामः' ।

कत्यः, 'सुपर्णे गर्तमानिति तिस्तिः खयमाव्यायामि प्रिंतिष्ठाप्य' इति । तत्र प्रथमामाइ.—''सुपर्णेऽसि गर्तमान् प्रथियाः सीद् एष्टे प्रथियाः सीद् (प्रः इति । हे अग्ने, तं 'सुपर्णः' (पद्या-कारः), 'गर्तमान्' (गर्द्यमानः) 'श्रवि'; श्रतेऽस्थं चितिरूपायां 'प्रथियां' 'सीद' (उपविश्व) । तत्रापि तस्याः 'पृष्ठे' उपविश्व ।

त्रय दितीयामाइ,—"भाषामारिकमा एष क्योतिषा दिवम् उत्तभान तेजवा दिश्व उदृ १ इ (८)" इति । 'भाषा' (खकीयेन प्रकाशेन) 'त्रम्तरिक्तम्' 'त्रा एष' (वर्षतः पूर्य)। 'क्योतिषा' (खकीयेन वामर्थेन) 'दिवं' (द्युक्तीकं) 'उत्तभान' (ऊर्द्धक्तिमातां) कुरू। तथा, 'तेजवा' (खकीयेन वामर्थेन) 'दिशः' (प्राच्यादिकाः) 'उदृंद' (उत्तर्षेण इंहीकुरू)।

श्रथ हतीयामाइ,—''श्राजुङ्गानः सुप्रतीकः पुरस्तादग्ने खां यो निमा सीद साध्या। श्रसिन् सधस्ये श्रधुत्तरिसन् विश्वे देवा यश्रमानस्य सीदत^(१०)" इति । हे 'श्रग्ने', लम् 'श्राजुङ्गानः' (श्राभि— सुस्त्रेन इत्यमानः), 'सुप्रतीकः' (सुसुखः) सन् 'पुरस्तात्' (पूर्वस्तां दिश्वि) 'साध्या' (साध्वीं समीचीनां) 'खां' 'योनिं' (स्वकीयं स्थानं) 'श्रा सीद' (श्रागत्य प्राप्नुहि)। हे 'विश्वे' 'देवाः', यूयं 'यश्रमानस्य' 'श्रस्तिन्' (पुरावित्तिन) 'सधस्ये' (श्रग्निना सह स्थातं योग्ये) 'श्रधु— त्तरिसान्' (श्रधिकसुक्तष्टस्थाने) 'सीदत' (स्रपिवश्वत)। एताकाकान् विविधुक्के,—"तिस्रभिः सादवति विद्वदै विद्व-वावानेवाप्रियां प्रतिष्ठां गमयति" (५।४।७२०) इति।

कत्यः, 'प्रेहो ऋग्ने दीदिहि पुरे। नः हित चै। दुम्बरी १ सिक्ष-मादधाति' हित । पाठसु,—"प्रेहो खग्ने दीदिहि पुरे। ने। उज्ज्ञ्या सूर्म्या खित । म् १ असमा खप धिना वाजाः (१९)" हित । हे 'चग्ने', 'प्रेहः' (पूर्वमिप प्रकर्षेष दीप्तः) 'तं' 'पुरे।' 'नः' (असाकं पुरे। देशे) 'चज्रखवा' (निरम्तरवर्त्तिन्या) 'सूर्म्या' (सूर्विधमानया ज्ञाखवा) 'दीदिहि' (पुनरिप दीप्पस्त) । ज्ञ्चक्ती खोड्मची सूचा 'स्मीं' । हे 'चित्रष्ठ' (युवतम) चग्ने, त्यां 'असमाः' निरम्तरभाविनः 'वाजाः' (असानि) 'खप चिन्ता' (सामीप्रेन प्राप्नुवन्ति) ।

तमेतं मक्तं विनिध्द्वे, —प्रेह्रो चग्ने दीदिह पुरे। न दृत्यौदुम्नरीमाद्धाति एवा वै समीं कर्णकावती एतया इ स्व वै देवा चग्नराकार्र्र कतत्वीर्र्षण्ट्र हिना बदेतया मिधमाद्धाति वच्चभैवैतच्दत्त्रीं यजमाना आदृत्याय प्रहर्रति खृत्या चच्चमद्वारम्" (५१४१७६०) दति। व्यच्चनी खोडमयी म्लूषा 'समीं', सा च 'कर्षकावती' (क्रिद्रवती, चन्नरिष व्यच्चनीत्वर्थः), तत्ममाना द्यम् च्यक्। एकेनैव प्रहारेष्ठ कत्मद्वान् मार्यनाः ग्रूतः 'व्यत्वर्धाः', 'चग्नराषां' मध्ये तादुवान् एतया च्यां 'देवाः' हिंगिन । चन्या मिद्यां 'व्यत्वनीम्' एनाम् च्यां 'वच्चं' कता वैरिष्टं 'प्रहर्ति'। 'चच्चमद्वारं' (खच्चा विनावः) वचा न भवति तथेत्वर्थः।

करपः, 'विधेम ते परमे जन्मन्त्र इति वैकङ्कतों समिधमा-द्धाति-इत्यनुवर्णते' इति । पाठस्तु,—विधेम ते परमे जन्मन्त्रग्ने विधेम स्तोमैरवरे सधस्ते। यसाद्योनेददारिया यसे तं प्रते ह्वीश्रवि जुस्तरे सिम्हें (११)" इति । हे 'स्रग्ने', 'ते' (तव) 'परमे' समानि 'विधेम' (वयं द्यानेन परिचरेम)। 'सधस्ते' (स्रसाभिः सह स्नातुं योग्ने) 'स्रवरे' (निक्कष्टे अस्त्रोकवर्त्तिन जन्मनि) 'स्तोमैः' (स्तोनैः) 'विधेम' (परिचरेम)। 'यसाद्योनेः' (इष्टकचितिक्पात् स्नानात्) 'खदारिय' (तसुद्रतः स्नाविर्भूतोऽसि), 'तं' (योनिं) 'यसे' (पूजयामि)। 'समिद्धे' (सम्यक्पस्कासिते) लिय 'इवींचि' 'प्र'-'जुद्धरे' (स्तिजः प्रकर्षेण जुद्धति)।

एतमान्त्रं विनियुक्के,—"विधेम ते परमे जवास्त्रग्न इति वैकक्कती-मादधाति भा एवाव हन्धे" (५।४।७५०) इति । ऋग्नेभाषा विकक्कते प्रविष्टलात् तदीयसमिधा 'भाः' प्राप्यने।

कत्यः, 'ताष्ट्र सिवतुर्वरेख्यः चित्रामिति प्रमीमयीम्' इति ।
पाठन्छ,—''ताष्ट्र सिवतुर्वरेख्यः चित्रामा प्रदं हुणे सुमितं
विश्वजन्यां। यामस्य कच्छो प्रदुष्ठत् प्रपीनाष्ट्र सहस्रधारां पयसा महीं
गाम्(११)" इति । पुरा कदाचित् कखास्थो महिष्टं: 'प्रस्थ' (प्रग्नेः) 'यां' सुमितम् (प्रमुग्रक्कारिषीं बृद्धिम्) 'प्रदुष्ठत्' (दुग्धवान्) ।
तत्र दृष्टान्तः,—'प्रपीनां' (प्रस्तः पीनसमस्याे यस्याः सा प्रपीना,
तां), सहस्रसङ्खाकाः चीरधारा यस्याः सा सहस्रधारा, तां, 'महीं'
'पयसा' (चीरेण सम्पूर्णां) 'गां' (धेनुं) यथा स्नौकिका दुष्टिमा,
तदस्यमग्नेः सुमतेः खपदि्रात्वद्भेः स्वाभीष्टं फलं प्राप्तवान्।
'वरेख्यस्थ' (सर्वेवर्षायस्थ) 'सिवतः' (प्रेरकस्थ) प्रग्नेः सम्बन्धिनीं
'तां' (कस्थेन दुग्धां) 'सुमितम्' 'प्रहम्' 'ग्ना'—'हणे' (सर्वतः

प्राचंधे)। कीदृत्रीं समितं?—'चित्रां' सापेचितवङ्गविधपसम्बान-समर्थामित्यर्थः। विश्वं जन्ममुत्पासं सस्याः सा विश्वजन्या तां, जनदुत्पादनसमर्थामित्यर्थः।

तनेतं सन्तं विनिषुक्के,—''ताश्र सवितुर्वरेक्क्क विचामिति क्रमीमबीश्र क्रान्वै" (५१४।७४०) इति। क्रम्बाः क्रमनदेहत्वा-क्रान्वर्थलं युक्तम्।

मक्तस्य पूर्वार्हें 'धिवतुकां सुमितमा भर्ष रुके' रत्यस्य तात्पर्कें द्र्यंवित,—"प्रिवित स वे प्रावित दुरेऽव्रिचिदा प्रवितं दुरे ताप्त्र बितुर्वरेष्ण्य विचामित्याहैन वे प्रविदेशः" (५।४।७५०) हित । दिविधो मक्तदोषः सक्षवित,—प्रविकर्तनो स्वमानकर्षक स्का दोषः, वया, प्रविद्धं स्वमाने समावितं हितः स्तस्यादिक्पं दोग्धि । तथा स्वमानकर्वकाऽग्रिकर्यना दित्तीयो दोषः,—स्वमानो स्वश्री समावितं सापेक्तं पत्तं दोग्धि । तथ स्वितः समितिमिति वचनेन प्रवितः सोरे। विविक्तः ।

दितीवाई कलोदाइरचस तात्पर्यं दर्जवित, नमस कस एवं मायवाऽवेक्तेन द सीन् स दुहे" (५।४।७६०) इति । चारेः सम्बन्धिनं 'तं' फलस्वीकारक्षं देश्वं कलाकाः 'इव' महर्षिः पूर्वनेव धातवान्, स च 'कलः' अयवाऽपत्यं 'मायसः', चताऽसिन्नुक्तराई पठिते सित 'तेन' कलसुनिरेव एतमग्निं स सम्माने दुम्सवान् भवति ।

बाच व्यवसुनिनैनेति पाठो भिवतुं युक्तः।

एतन्त्रकविधिष्टं यमिदाधानं प्रज्ञंषति,—''यदेतवा यमिधम् चाद्धात्यग्निषदेव तद्ग्निं दुष्टे" (५।४।७५०) दति ।

कर्यः, 'दादश्रद्धतिन सुचं पूर्विता यत्र ते श्रग्ने विभिन्नः यत्र विद्वा दित यत्रव्या पूर्वाञ्जतिं जुद्दे।ति' दित । पाठस्तं,—
"यत्र ते श्रग्ने विभिन्नः यत्र विद्वाः यत्रवंदः यत्र धाम प्रिसाचि ।
यत्र देश्याः यत्रधा ता यजित्त यत्र योगीरा पृष्णस्य वृतेन (१०)" दित ।
दे 'श्रग्ने', तव 'यिनधः' यत्रयञ्चाकाः,—श्रम्यत्योदुन्नरपण्डाश्रम्मीविकद्धताञ्चनिद्वतद्यपुष्ट्यरपर्वद्भपाः । श्रत एव स्वश्वतार श्राधानप्रकर्णे यत्र यमन्त्रकान् श्रमुक्रम्य 'दित वागस्पत्याः' दत्युपर्यजद्याः ।
व्यासाद्भपा विद्वास्य यत्र । तथा चाध्यविका श्रामनित्त,—
'कासी करासी च मने।जवा श्र सुखे।दिता या च सुधूसवर्षा ।
स्कुविङ्गिनी विश्वद्यी च देवी खे।सायमाना दित यत्र जिङ्काः' दित ।

खवंशे मन्त्राः, ते च वशेक्षमित्रम्पादनार्थाः सप्तरक्काकाः,— 'चची क्षं कता बद्यत्ये तिष्ठ(?)' दृत्यादयः समाचाताः । 'प्रियाचि' 'धाम' (खानानि) चाच्वनीयगार्चपत्यद्विणाग्निसम्बावसय्-प्रावहिताग्नीभीयाख्वावि वेशमयाने विक्रधारकाचि सप्तरक्काकानि । 'हाचाः' होत्यप्रसुखा वषट्कर्त्तारः,—होता, प्रज्ञाखाः, ब्राह्मणाष्ट्रश्ची, वेताः, नेष्टा, चग्नीचः, चन्द्रावाकस्रेति सप्तरक्काकाः । लां यजमानाः 'बप्तधा' 'बक्नि',—प्रक्षिष्टोमः, चत्यग्निष्टोमः, स्वर्च्यः, षोड्जी चित्रपाः, चन्नीयोगाः, वाजपेयस्थेति सप्तप्रकाराः । तादृष्टकां 'सप्त योनीः' प्राह्मनीयादिखानानि 'घृतेन' सर्वतः पूर्य ।

प्रस्त मन्त्रस्य तात्पर्यं दर्शयति,—''सप्त ते प्रग्ने समिधः सप्त 4 : 2 जिक्का इत्याच सप्तेवाच्छ साप्तानि प्रीकाति" (५।४।७५०) इति । यप्तराक्तोपेतं द्रव्यखरूपं साप्तं। तानि च 'साप्तानि' पुनः सप्त− सञ्चाकानि । समित्सप्तकमेकं, जिक्रासप्तकं दितीयं, ऋषिसप्तकं ह्रतीयं, धामसप्तकं चतुर्घं, हेाहसप्तकं पश्चमं, यजमानप्रकारभेदे सप्तकं घष्टं, पूर्वीययोगिसप्तकसेकं। ऋग्नेः सम्बन्धीनि साप्तानि समिदादिसप्तकानि यानि सन्ति तानि साप्तानि प्रीव्यक्येव।

एतनानासाधं हामं विधन्ते,—"पूर्णया जुहाति पूर्व स्व हि प्रजापतिः प्रजापतेराष्ट्री न्यूनया जुहाति न्यूनाद्धि प्रजापतिः प्रजा त्रस्वत प्रवानाष्ट्र स्कीं" (५।४।७४०) इति । दाद्वस्ट्हीतेनाच्येन पूर्णा या जुद्धः, तया जुद्धयात् । प्रजापतेः प्राप्तवर्वकामलात् पूर्वलं, त्रातसात्पृत्तिः 'प्रजापतेः' प्राप्त्री भवति । सुस्यकस्पत्नेन पूर्वतं विधाय त्रमुकस्पत्नेन न्यूनलमपञ्जीक्रियते। 'न्यूनात्' 'ऋस्पात्' वीजात् 'प्रजापितः' प्रीड़ानि प्ररीराणि 'चस्जत'। चतः 'प्रजानां' 'स्की' न्यूनलमङ्गीकियते, किसु वक्तयं पूर्णलमित्यभिप्रायः।

हामकाले धानं विधन्ते,—"ब्राग्निर्वेनेशे निसाइत स दिबोऽन् प्राविष्ठक्रकानमा दिन्नो धायेहिम्म एवेनमव हत्थे" (५।४।७५०) रति ।

एनं दिनु प्रविष्टमग्निं, पूर्वमनुष्टितां दथ्याङितम् , रदानीमनुष्टीय-मानामाञ्चाङितिञ्च मिलिला प्रशंसति,—"दश्रा पुरसाम्बुहात्याचीन जपरिष्टाक्तेजसैवासी दक्तियस समीची दधाति" (५।४।७५०)

अत्र सात्वानि इति सर्वेत्र पाठो न सम्यक्।

इति । श्रिश्चापनात् पूर्वं दिधिहोमः, श्रपरिष्टादाक्यहोमः । तत्राञ्यं तेवाद्भपं, दिध च इन्द्रियद्भपं,—'तेवा वा श्राच्यं, इन्द्रियं वे दिध' इति भुत्यन्तरात् । श्रता यवमानार्थसुभयमपि सन्यक् सन्पादितं भवति ।

कस्यः, 'खपाश्रद्धमादतान् धर्वद्वतान् जुहोति ईदृङ् चान्यादृङ् चेति सप्तिभंषेरासीना इस्रेन गणेन गणमनुदुत्य मादतान् जुड़ाति, मधेऽरचेऽनुवाक्येन गपेन जुहातीत्येके, मार्कः वर्वता वैसानरं परिचिनातीत्वेचे, खतवाध्य, श्रमघासी च, सामापनय, रहसेधी च, क्रीड़ी च, सांकी च, ऊर्जिवी चेत्र्येष वष्ट श्राचातः, मितासस् सियासस न इति सर्वनानुवजित' इति । पाठस्त,--"ई.ह.रू च, च्रन्यादृरू च, एतादृरू च, प्रतिदृङ् च, मितव्य, समितव्य, सभराः । प्रदक्तकोतिस्, चित्रकोतिस्, सत्यकोतिस्, कोतिप्राष्ट्रस् । सत्यस्, चातपास, चाटार्षाः। चातजिष, साटाजिष, सेनजिष, सुवेणस्, त्रान्यमित्रस्, दूरे-त्रमित्रस्, गणः । त्रातस्, सत्यस्, धृतस्, धर्णस्, भर्ता च, विभर्ता च, विधारयः। रेट्ट्यायः एतादृचाय, ऊ वु एः, सदृचायः, प्रतिसदृचायः एतन । मितायञ्च यद्मितायञ्च न जतये सभरका महता यद्ये श्रक्तित्रम्दं दैवीर्विद्यो महताऽनुवर्तानः, यथेन्द्रं दैवीर्विष्टो महते। नुवर्कान एविममं यजमानं देवीस् वित्रो मानुषीञ्चानुवर्त्धाना भवनु (१५-२१)" इति । त्रत्र दि मदतां गणा: पञ्च त्राबाता:,—'ईर्ट्ड् द्रत्यादीनि यप्त नामानि तैरिभ-धेयानां मदतामेका गणः। चकाराः परस्परमयुचयार्थाः। तथा प्रक्रकोतिरित्यादीनि सप्त नामानि तैर्भिधेयानां महतां गणो

दितीयः । श्वतिविद्यादिगस्यृतीयः । श्वत्येत्यादियत्यः । देव्हाय दत्यादीनि चलारि नामधेयानि ये। यं पश्चमा नवः । हे गस्पश्चल्ला 'मदतः', एतेन समुख्येन वर्त्तनो , सूर्व सर्वे समुख्येन वर्त्तनो , सूर्व सर्वे समुख्येन वर्त्तनो , सूर्व सर्वे समुख्येन सप्तर्मका । 'मिताक्य' (नस्वतृष्टयेन सप्तरम्भया प्रमिताः), 'स्वितास्थ' (नश्मन्ये यतुःमञ्चला सञ्चित्व प्रमिताः), 'कत्वे' 'नः' (श्रस्ताकं रख्याव) 'सभरवः' (भरेवादरेष वर्त्तनो दति सभरवः), तादृ श्रा हे 'मदतः', 'श्वित्व' 'यशे' 'एतन' (श्वाम्ब्यः) । 'देवीवितः' (देवसम्ब्यः प्रजाक्याः) एते 'मदतः' 'दन्द्रं' 'श्वनुवर्त्तानः' । दन्द्रसामिन-मनस्त्रत्यः, तद्वसारेष वथा वर्त्तनो 'मदतः', 'एवं' देवो मानुस्त्रस्य सर्वाः प्रजाः 'दमं' 'ध्यमानं' श्वनुसत्य वर्त्तमाना 'भवन्तु'। एतैर्जनोः साधा मादतहामा उपरि विधास्थनो ।

एतेभ्यो मादतपुराजान्नेभाः पुरा निर्वपणीयं वैश्वानरमादौ विश्वत्ते,—"दादमकपाला वैश्वानरा भवति दादम मासाः संवत्वरा-ऽग्निवैश्वानरः साचादेव वैश्वानरमवद्ये" (५।४।७॥०) इति ।

ज्ञाग्नेः संवत्परधारणेन यग्नेः संवत्परक्षानं चोदकप्राप्तान् प्रयाजानूयाजान् अपवदति,—''यत्प्रयाजानूयाजान् जुर्थादिकिषाः चा यञ्चस्य द्विहामं करोति यञ्चस्य प्रतिष्ठित्ये" (५।४।७५०) इति । विशेषेच कस्तिनाञ्चो विकस्तिः तत्परिहाराय अन्यत्र प्रयाजा-नूषाजान् अञ्चला क्या द्विहामं जुर्विना । तद्द्वापि द्विहामं

 ^{&#}x27;वे ते' इत्वेवंक्यः क्षित् पाठ प्रतित इव प्रतिभाति ।

प्रयाजानूयाजादिरिंदतं 'खुर्यात्', तता विकक्षेरभावात् यद्यः प्रतिष्ठितो भवति ।

वैश्वानरपुरोड़ाबड़े। अध्यमननारसेव मादतपुरोड़ाबड़ों में विश्वत्ते,—
"राइं वैश्वानरे। विष्क्षदते। वैश्वानर्थ जला मादतान् जुड़ोति राष्ट्र
एवं विश्वमनु बंधाति" (५।४।७६०) इति। राष्ट्रखानीच्छ वैश्वानर्थः
पूर्व्यभाविलात् पद्याद्वावीयप्रजाखानीचमादतदे। सेन राष्ट्रे प्रजां
चे जितवान् भवति।

मादतहोसे मन्द्रध्वनिं विधन्ते,—"उपैर्धेयानरस्य या त्रावयति खपाश्च्य मादतान् जुहोति तस्माद्राष्ट्रं विद्यमति वदति"(५१४।७४०) इति । उपध्वनित्मात्रावणे चोदकप्राप्तं । यस्माद्राष्ट्रस्थानीये वैयानरे खपै: ध्वनिः, प्रजास्त्रानीये मादते खपांद्रस्तं, 'तस्मात्' खोकेऽपि प्रजाम् यतिकस्य 'राष्ट्रं' एवाधिकं सर्वे। जने। विक्तं, स्ति दि राष्ट्रे प्रजानामन्वेषणम् ।

श्रय मादतपुरीजाशान् प्रशंसति,—"मादता भवन्ति मदती वै देवानां विश्वः, देवविश्वेनैवासी मनुख्यविश्वमवद्यो" (५।४।७२०) दिति । देवीन प्रजासमूद्देन यजमानाय मानुषं प्रजासमूद्दं सम्पादयति ।

पुरे। इाजानां सञ्जां विधन्ते,—'सप्त भवन्ति सप्त गणा वे महते। जवज एव विज्ञमव दन्धे'' (५।४।७५०) इति। स्वत्येषु मन्त्रेन्याचाताः पञ्च गणाः, चारक्षकाष्ट्रे समाचाता 'धृनिच ध्वान्तञ्च' इत्यपरे। गणः, स्वोक्तः 'स्वतवान्' इत्याहिरेकः;—स्रतः सप्तसञ्जाभिच बङ्गविधनषद्भपं प्रजां प्राप्नोति। हामकासे मन्तीचारणे कचिदिशेषं विधनो,—"गणेन गण्यम्न द्रुत्य जुहाति, विश्वनेवासी श्रमुवर्त्तामं कराति" (५१८१७%) द्रति। यदा प्रथमगणेन जला दितीयगणेन जुहाति, तदानीं प्रथमगण्यसुचार्य पद्याद् दितीयगणेन जुहाति। तथा दितीयगण्य-सुचार्य द्वतीयगणेन जुज्ञयात्। एवं यति सर्वां प्रजाम् 'ऋसी' यजमानाय श्रमुकूखलेन वर्त्तमानां 'कराति'॥

भन विनियोगसंग्रहः,—

प्राचीति पश्चिमः साग्निरारोहिनिर्मितां चितिन्।
पूर्णामौदुम्नरीं दभा जुहेात्येते कतौ तदा ॥
याज्यानुवाक्ये नकति, सुपर्णेऽस्थादिभिक्तिभः।
स्वयमाष्ट्रकतायान्तु सुस्थाग्निं स्वापयेत्ततः॥
प्रेद्ध, त्रोदुम्नरीं दथ्यादिभे, वैकङ्तीं तथा।
प्रमीमयीति तां सेति, सप्ताज्यं झयते सुचा ॥
मादतेषु तु यागेषु प्रोक्ताः पश्च मदद्वषाः।
ईदृङ् चेत्यादयः, प्रेषो मितासञ्च समीरितः॥
त्रानुवाके पश्चमेऽस्मिनुका एके।नविंग्रतिः॥

इति सायनाचार्याविरचिते माधवीये वेदार्घप्रकाचे क्रचायजुः-संहिताभायो चतुर्घकाण्डे षष्ठप्रपाठके पञ्चमीऽनुवाकः ॥०॥ जीमूर्तस्येव भवित् प्रतीक् यहमी याति समदीमुपस्थे। अनीविद्या तृत्वी जय त्वश् स त्वा वर्मस्थे।
मिह्मा पिपर्तु । धन्वेना गा धन्वेनाजि जयेम्
धन्वेना तीवाः समदी जयेम। धनुः श्रेषीरपनामं
स्रेसीत् धन्वेना सर्वाः प्रदिश्री जयेम । वृद्धन्तीवेदा गेनीगन्ति कर्णे प्रियश सस्वीयं परिषस्वजाना ।
योषेव शिद्धे वितृताधिधन्वेन ॥ १ ॥

ज्या द्रयं समने पारयंनी (१) । ते ज्ञाचरंनी समनेव योषा मातेव पुणं विश्वतामुपर्ये। जप् शकून् विध्वता संविद्दाने जाली द्रने विस्फुरन्ती ज्ञ-मिर्चान्(१) । ब्र्ह्हीनां पिता ब्रुट्स्य पुण्यक्ष्या क्रेणोति समनाव्गत्यं । द्रव्धिः सङ्घाः प्रतेनाञ्च सर्वाः पृष्ठे निनंदो जयित प्रस्तः (६) । र्ष्टे तिष्ठं नयित व्यक्तिनः पुरो यर्च यण क्रामयंते सुषार्थिः । ज्ञभीक्र्नां महिमानं ॥ २ ॥

पनायत् मनः पृत्रादनुं यक्कन्त रुग्नयः (१)। तीवान् घोषान् क्रावते वर्षपाण्याऽत्रा रथेभिः सुइ वाजयंन्तः। श्रृवक्कामंन्तः प्रपंदेर्मिचान् श्रिणन्तः श्रृष्ट्र रनेपव्ययन्तः (१)। रुग्रवार्षन्तः द्विरुस्य नाम् यचा-येधं निर्वित्तमस्य वर्मे। तचा र्यमुपं श्रुग्मः संदेम विश्वाद्यां वयः सुमन्स्यमानाः । खादुष्रसद्ः पितरी वयाधाः क्षेत्रु श्रितः शक्तीवन्ता गभीराः। चित्रसेना दर्षुवला श्रम्धाः स्तावीरा प्रवी बातसाद्याः । ब्राह्मणासः॥ ३॥

पितंदः से।म्यांसः शिवे नी द्यावाप्रिविवी श्रेनेहसी।
पूषा नः पातु दुरिताहंताहधी रक्षा मार्किनी श्र्यश्रंप्त ईश्रत(१)। सुप्रें वस्ते मृगा श्रंस्या दन्तो गाभिः
सर्वहा पति प्रस्ता। यचा नरः सन्ध् वि च द्रवेन्ति
तन्तासम्युमिषंवः शर्मे यश्सन्(१९)। च्रजीते परि हङ्धि
ने।श्मा भवतु नस्तन् से।मो श्रिधं व्रवीतु ने।ऽदितिः॥
॥ ४॥

शर्मं यक्ततु (११)। श्वा ज्ञान्तं सान्वेषां ज्ञानाः एपं जिञ्ञते। श्रश्वाजिन् प्रचेत्तः । श्रितं माने पर्येति बाहुं ज्यायां हितं परि वार्धमानः । इस्तृ श्लो विश्वा व्युनीनि विद्वान् पुमान् पुमाश्सं परि पातु विश्वतः १४)। वनस्पते विश्वे क्रिले हि भूया श्रस्मत्संखा प्रतर्रणः सुवीरः। गोभिः सन्ने श्लो श्ली विश्वे स्वास्थाता ते अयतु क्रिले नि (१६)। दिवः पृष्टि व्याः परि ॥ ५॥

श्रीज उद्भृतं वनस्पतिभ्यः पर्यास्तर सर्हः । श्रूपा-

मोज्मानं परि गोभिराष्ट्रतिमन्द्रेस्य वर्जः इविद्या रर्जं यज^(१९)। इन्द्रंस्य वर्जा मृहत्तामनीकं मिचस्य गर्भी वर्षणस्य नाभिः। सेमां ने इव्यद्गितं जुद्याखा देवं रय प्रति इव्या स्माय^(१०)। उपं श्वासय प्रशिवीमृत द्यां पुरुचा ते मनुतां विष्ठितं जगत् स दुन्दुभे स्जू-रिन्द्रेख देवेर्दूरात्॥ ६॥

दवीयो अपं सेध शर्चून्(१०)। आ क्रान्ट्य बल्मोजें। न आ धा नि एनिहि दुर्तिता वार्धमानः। अपं प्राप्त दुन्दुमे दुच्छुनी १ इत इन्द्रंस्य मृष्टिरंसि बोडयंस्व(१८)। आमूरं अ प्रत्यावंत्त्रयेमाः केंतुमहुन्दुभिवीवदीति। स-मर्श्वपर्णाश्वरंन्ति नो नर्ोऽसाकंमिन्द्र रुष्टिनी अथ-न्तु(१०)॥ ७॥

धर्मन् । मिह्मान् । ब्राष्ट्रांगासः । अदितिः । पृष्टिक्याः परि । दूरात् । एकंचत्वारि श्रष्ट ॥ ६ ॥

इति तैत्तिरीयसंहितायां चतुर्थकार्ग्ड षष्ठप्रपाटके षष्ठोऽनुवाकः ॥ * ॥

पञ्चमेऽनुवाके चित्यारे। हणादयों मारत हामान्ताः श्रङ्गविश्वेषा जन्नाः । श्रय षष्टेऽश्वमेधकर्त्तुः रथसञ्जीकरणभावीनि कवच- सीकारादीन अङ्गान उचाने। तस चाग्निप्रकर्णे सम्बद्धा-भावात् इत जल्लावात्रामेधप्रकर्णे सम्बन्धो द्रष्टवः । त्रध्यवनार्घमेव केक्समच मन्त्रपाठः। कस्पः, 'जीमृतस्रेति कवसमधूरुते' इति। पाठन्त,—''जीमूतस्रेव भवति प्रतीकं यदमी वाति समदासुपस्त्रे । श्वनाविद्वया तनुवा जय लक्ष्य ला वर्मणो महिमा पिपर्छ (१)" इति। 'यम्' (यदा) 'वर्मी' (कवचयुक्तो) राजा 'समदां' (अवूणाम्) . 'खपस्वे' (समीपे) 'चाति', (त्रनेन सद मात्सर्चेण माद्यन्तीति समदः क्रवः), तदा 'जीमृतस्य' (मेघस्य) 'प्रतीकं' (सुखम्) द्रव 'भवति',— वैन्यद्यं बुद्धार्थं चरा मिसति, तरानीं, वर्षितुं यतस्तत त्रागताः प्रौढ़ा नेघा यथा प्रकारियं सर्वमादल्यान, एवं भूमिं सर्वा वाप्तं भवतीत्यर्थः। तिसन् काले हे राजन्, 'श्वनाविद्भूसा' (परकी सप्रकारर कितया) 'तनुवा' (खप्ररीरेष) युक्तो भूला विजयं प्राप्नुदि । 'वर्षाणः' (कवचच) तावृत्रः 'महिमा' लां 'पिपर्तु' (पासयत्)।

कस्य:, 'धन्वना गा इति धनु:' इति । पाठस्तु,--'धन्वना गा धन्तना चार्जि जयेम धन्तना तीताः समदो जयेम। धनुः क्रवोरपकामं क्रकोति धन्वना सर्वाः प्रदिक्रो अधेम^(२)" द्रति। वर्थ 'धन्वना' (धनुषा) 'गाः' 'जयेम' (परकीयगवादीन् श्राहरेम)। तथा 'धम्बना 'त्राजिं' (युद्धं) 'जयेम'। तथा 'धम्बना' (धनुवा) 'तीत्राः' (प्रूर्भटोपेताः),'समदः' (मदयद्तिताः पर्वेनाः) 'जयेम' । इदं 'धृनु:' 'ब्रचो:' (श्रस्रादीयवैरिष:) 'श्रपकामं' कृष्णोतु

^{# &#}x27;प्रकासे' इति सर्वेत्र पाठो न सन्यवः।

(कामेन्ये। प्रमयः, —श्रपकामः, तं करेातु) । किं वज्जना 'सर्वाः' श्रपि 'प्रदिश्रः' (जक्कष्टान् सर्वेदिम्बर्सिश्चत्रून्) 'जयेम' ।

कस्यः , 'वच्छन्तीवेति व्यामिभस्यति' इति । पाठस्तु,—"वच्छन्ती इवेत् या गगीगन्ति कर्णं प्रियः स्वायं परिषक्षजाना । योषेव विद्वार वितताऽधिधन्त्रम् व्या इयः समने पारयन्ती (१)" इति । 'इयं' 'व्या' (धनुषि त्रारोपिता मौवी) 'वच्छन्ती' 'इव' (किञ्चिद्रच्छं वाक्ष्यं विद्यान्तीव") 'कर्णं 'गगीगन्ति ' (कर्णसमीपमागच्छति) । तत्र दृष्टान्तः,—'प्रियं सखायं' 'परिषक्षजाना' (प्रीतिगुक्तं सिक्षसमानं वित्रसम्यवद्यारयोग्यं भक्तारमासिङ्गन्ती) 'योषेव' 'बिङ्क्ते' (अञ्चक्तप्रव्यं करोति),—सा यथा स्वकीयं योगचेमं प्रनेः कथयित, तद्वद्यमिष व्या प्रव्यतिह्ययः । कीद्रपी व्या?,—'त्रिधधन्त्रन्' (धनुष उपरि) 'वितता' (विग्रेषेण प्रसारिता), 'समने' (युद्धे) 'पारयन्ती' (युद्धसमाप्तिं गमयन्ती) ।

कस्यः, 'ते श्राचरनाति धनारार्झी समृत्रति' इति । पाठस्त,—
"ते श्राचरन्ती समना दव योषा मातेव पुत्रं विश्वतासुपखे । श्रप
श्रन्त् विध्वताष्ट्रं संविदाने श्रार्क्षी दमे विस्कुरन्ती श्रमित्रान्(ह)"
इति । 'ते' धनुषः कास्त्रौ 'विस्कुरन्ती' (विस्कुरन्थी, पुनः पुनः
प्रवर्त्तमाने) सत्यौ, 'संविदाने' (परस्वरमैकमत्यं गते), 'श्रमित्रान्'
(श्रस्तन्तिरोधिनः) 'श्रप'-'विध्यतां' । कीदृशे के।व्यौ?—समने
(युद्धे) 'योषा' 'दव' 'श्राचरन्ती' तदस्यधुरश्रन्देन हितं वे।धवन्था ।

 ^{&#}x27;विदिच्चित्रिव' इति सर्व्वच पाठो न सम्बन् ।
 चच 'चा'-'मनीमन्ति' इति पाठो भवितुं युक्तः ।

पुनः कीहृत्रे?-'खपस्रे' 'विश्वतां' 'माता' 'पुचम्' 'इव',--तदद्भितकारिष्यौ ।

कर्यः, 'बझीनां पिता बडरख पुत्र इति पृष्ठे इषुधिं निनद्धित'*
इति । पाठखु,—"बझीनां पिता बडरख पुत्रांख्या छणोति
समना श्रवगत्य । इषुधिः सद्धाः प्रतनाय सवीः पृष्ठे निनद्धो जयति
प्रस्ततः(१)" इति । श्रयम् 'इषुधिः' (वाणाधारः) 'समना श्रवगत्य'
(समने युद्धे प्राप्प) 'चिया छणोति' (वाणाकर्षणवेखायाम् श्रव्यक्तं
ध्वनिं करोति, तत्यानुकरणं चियेति) । कीदृशः इषुधिः?,—'बझोनां'
इषुणां पालकः । श्रत एवास्य पिळ्खानीयस्य पुत्रस्तानीय इषुसङ्घो
बड्डविधः, वेाऽयम् 'इषुधिः' 'ष्टठे' 'निनद्धः' (नितरां बद्धः) 'प्रस्ततः'
(धानुष्केण प्रेरितः) वाणाकर्षणे 'सङ्काः' (सम्यक् प्राप्ताः) 'सवी' श्रपि
'पृतनाः' 'जयति' ।

कन्यः, 'रघे तिष्ठश्रयति वाजिन इति सारिष्यमिभमन्त्रयते' इति । पाठस्त,—''रघे तिष्ठश्रयति वाजिनः पुरे। यत्र यत्र कामयते सुवारिषः । श्रभीप्रह्नां महिमानं पनायत मनः पञ्चादनु यन्क्रन्ति रक्षयः'(')" इति । 'सुवारिषः' (सुन्निचितोऽयं सारिषः) स्वयं 'रघे' 'तिष्ठन्' 'यत्र यत्र' 'कामयते' गन्तुं, तत्र तत्र 'पुरः' (पुरस्तात्) 'वाजिनः' 'नयति' (प्रेरयति) । हे स्वलिग्यजमानाः, 'श्रभीष्रह्नां' (श्रश्चार्षः हेह्नां) रक्षीनां 'महिमानं' 'पनायत' (वाचा स्तृतिं कुद्त)। श्रत एव स्तृतिप्रकार उत्थते,—'रक्षयः' एते (प्रयहाः) सार्थः 'मनः' 'श्रनु'-सृत्य 'पञ्चान्' 'यन्क्रुन्ति' (नियता भवन्ति),—

 ^{&#}x27;निनस्ति' इति सर्वेत्र पाठो न सम्यक्।

सारचेर्यचा मने। हिन्तः पुरस्तात् प्रवर्त्तते, तेनैव प्रकारेण पद्मार् त्रयानां नियमनं कुर्वन्तीत्वर्धः ।

कत्यः, 'तीत्रान् घोषान् इत्खते द्यपाणय दत्यसान्' दति । पाठस्त,—''तीत्रान् घोषान् इत्खते द्यपाणयोऽस्या रथेभिः सद्द बाजयनः। स्रवकामनाः प्रपदेरमित्रान् चिण्नि सनूप्रनपय्ययनः(^{०)}" दति। एते 'स्रसः' 'तीत्रान्' स्रत्युच-'घोषान्' 'इत्खते' (द्रेषास्रव्यान् कुर्वन्ति) । कीदृश्य स्रसः ?,—'दृषपाणयः',— वेचनवाचिना दृषस्रव्येन स्रक्षस्यते, पाणिस्रव्यः पादलचकः, गन्तं स्रक्षाः पादा येषामस्रानां, ते 'दृषपाणयः'। 'रथेभिः' 'सद्द वाजयन्तः' (रथेः सद्द सीघं गच्छन्तः), 'प्रपदेः' (पादायैः, रद्धरेः) 'स्रमित्रान्' 'स्रवक्षामन्तः'। तादृश्य स्रसः, 'स्रमपययन्तः' (प्रत्यायन्तिमकुर्वतः। भीतिरद्दितान् दत्यर्थः 'स्रवृन्' 'चिण्नि' (इंसन्ति)।

कत्यः, 'र्थवाइन् इित्स नामित रथवाइने रथमत्याधाय' इति । यद्यपीदं ऋत्याधानं रथस प्रत्याधानादृर्द्धभावी, तथापि ऋध्यनसम्प्रदायाद्यं मन्त्रोऽन पितः । पाठस्तु,—"रथवाइन् इतिरस नाम यनायुधं निहितमस्य वर्म । तना रथसुप ग्रमार सदेम विश्वाहा वयः समनस्यमानाः (६)" इति । 'यन' (यस्मिन्) ऋस्ये ऋकटे 'श्रस्थ' (यजमानस्थ) 'श्वायुधं' (धनुरादिकं) 'वर्म' (कवर्ष) च— इत्येवमादिकं 'निहितं', यस्य श्वत्रटस्य 'रथवाइनम्' इति नामधेयं, (प्रत्यागत्य रथोऽस्मिन् श्वकटे स्वायते इति तस्क्कटं 'रथवाइनं'),

 ^{* &#}x27;ख्युच्चघोषान् कुर्व्वते' इति का॰ इ॰ प॰ पाठः ।

^{† &#}x27;प्रत्यापत्तिमकुर्व्वतः' इति का॰ इ॰ पु॰ पाठः ।

तस्य इिनेद्रपकारकलाद्धिविष्ट्रं, 'तच' रथनाइने ज्ञकटे 'विचाहा' (सर्वेष्वपि दिनेषु) 'सुमनस्यमानाः' (सौमनस्यं प्राप्ताः) 'क्यं' 'ज्ञस्य'' (सुखगमनहेत्ं) 'रथम्' 'ज्रप'-'सदेम' (ज्रपेत्य स्त्रापयाम) ।

क्त्यः, 'खाद्वप्रसदः पितरे। वयोधा इति तिस्भिः पित्वनुपतिष्ठते' इति । तत्र प्रथमामाइ,—"खाद्वप्रसदः पितरे। वयोधाः
क्रक्केश्वितः प्रकीतन्तो गभीराः । चित्रवेना इतुवला श्रम्हशः सतीवीरा खरवे। त्रातमाद्याः(९)" इति । ये 'पितरः' श्रस्मदीयाः सन्ति,
ते एतैर्विष्ठेषपैर्विष्ठिष्टाः ; तानि एतानि विश्रेषणानि खन्ते ।
'खाद्रवप्रसदः' (श्रस्मसमिति खाद्रिन श्रश्ने सम्यक् सीदिन्ति तेन
क्षप्ता इत्यर्थः); 'वयोधाः' (श्रस्मदीयवयसः श्रायुवः खापयितारः);
'क्रक्के' (श्रमने) प्राप्ते सित रचार्थं श्रीयन्ते, प्राणिभिः सेयन्त इति
'क्रक्केश्वतः'; 'श्रकीवन्तः' (श्रक्तियुताः); 'गभीराः' (श्रगाधवुद्धयः);
'चित्रा' (विविधा) इत्यश्वादिक्ष्णा 'सेना' येवां ते 'क्रियसेनाः';
इत्युभिर्थे। द्रुमतिप्रवलाः 'इत्रवलाः'; 'श्रन्हभाः' (परैर्थे। द्रुमञ्ज्ञाः); सन्
विद्यमाने। खोने प्रसिद्धो यः प्रदुरः, तस्त्राद्यपित्रदूराः 'सते।वीराः';
'खरवः' (विस्तीर्थाः धनसेनादिसस्द्भाः); 'त्रातं' (परकीयभटसङ्कः)
सङ्गे श्रभिभवन्तीति 'त्रातसाहाः'।

त्रय दितीयामाइ,—''ब्राह्मणामः पितरः सेाम्यामः त्रिवे ने। द्यावाष्ट्रियवी त्रानेहमा। पुषा नः पातु दुरितादृताद्यभो रचा माकिनैं। त्रघन्नश्च देवत^(१०)" दति। ये त्रसादीयाः 'पितरः' ते 'ब्राह्मणामः' (ब्रह्म वेदः, तद्र्थपरा ब्राह्मणाः), त्रत एवास्मासु 'सेाम्यामः' (सेाम्याः त्रनुग्रहतत्परा द्रत्यर्थः)। यथैते 'पितरः', तथा 'द्यावाष्ट्रियती' अभे श्विप 'श्वनेद्द्या' (श्वनेद्द्रिस धर्वस्थित्विपि काले) 'नः' (श्वसान्) प्रति 'श्विषे' (श्वान्ते) श्वनुग्रद्दपरे भवतामिति श्रेषः । तथा 'खताद्यधः' (यश्वस्य वर्द्धयिता), 'पूषा' (पापका) देवः, 'नः' (श्वसान्) 'दुरितात्' 'पातु' । दे पिष्टसमूद, 'रच' (श्वसान् याखय); 'नः' (श्वसाकं) 'श्रवशंयः' (पापशंयनपराः, निन्द्काः)ः 'माकिः' 'देशत' (निन्दितं समर्था मा मवत) ।

श्रथ हतीयामाइ,—''सुपणें वस्ते हागें। श्रक्षाः दक्ते। गोभिः सम्भू पति प्रस्ता। यका नरः सञ्च वि च द्रवित्त तकास्त्रश्वमिवः अर्म यश्रम्(१९)" इति। पिहसन्तिभी धेयमिषुः प्रश्नस्ते 'श्रस्याः' (इतोः) 'सुपणें' (पृष्ठेऽवस्तितं श्रोभनं पत्तकां भागें) 'वसो' (श्राक्ताद—यति)। श्रय 'श्रस्याः' इतोः 'दनाः' (श्रस्ते) हागदन्तवत् तीह्णां। स्थामिषुः 'गोभिः' (गोसन्तिभिः) 'स्श्रद्धा' (दृढं सद्धा), तादृश्रेयम् इषुः 'प्रस्ता' (पिह्निः प्रेरिता सतीः) 'पति' (सहसा गक्कति)। स्तुत्र ? इति,—तदुक्तते, 'नरः' (पृक्षाः, धोद्धारः) 'यक्त' (यस्तिन्) पर्सेन्वे 'सञ्च वि च द्रवित्त',—प्रथमं लक्षुकाः सन्तः प्राप्नुवन्ति, प्रस्तिने विक्षान्त्रः । तादृश्यः पित्वणां 'इषवः' 'श्रस्तभ्यं' 'श्रम्' (सुक्कं) 'यंसन्' (क्ष्म्ने)।

श्रय कत्यः, 'श्रजीते परि हर्स्य न इत्यात्मानं प्रत्यभिन्द्रस्य' इति। पाठस्त,—"श्रजीते परि हर्स्य नेऽध्या भवतः नसानूः। सामेः श्रथि त्रवीतः नेऽदितिः वर्म वश्रकतः इति। श्रजीतीव्रम्द

^{*} अत्र ऋजीतिशब्द इति पाठी भवितुं युक्तः ।

⁴ L

रवुवाची । के 'व्यक्षित' क्कान् 'वरि'-'क्क्सि' (पस्ति। वर्कितान् खुद्द)। 'वः' (क्काकं) 'तनूः' 'त्रका भवतुः' (पात्राक्ष्यत् कृष्टीभवतुः)। 'वामा' 'वः' (क्रकान्) 'वधि-वर्वीतु' (क्रिका क्ते सान्या इति क्रक्षतुः)। 'त्रदितिः' 'क्र्यं यक्कृतु' (सुकं क्क्कृतुः)।

क्याः, 'चा कहन्तीत्त्रयाचिनीतादाय' इति । पाठस्तु,—'का जहन्ति सान्वेषां क्रमग्रं छप जिन्नते । अयानि प्रचेतसः ययान्त्रसस् वोदय^(१६)" इति । क्रमधारिषः सार्थयः 'एवाम्' ययानां 'सानु' (पर्वतसानुसदृशं पार्थम्) 'त्रा जहन्ति' (सर्वतस्ताइयन्ति) । तथा एडभागान् 'छपजिन्नते' (छपेत्व ताइयन्ति) । तत्राविधताइय= देत्रस्ते हे 'त्रयाजिनि' (श्रयप्रेरके क्रणे), 'प्रचेतसः' (त्रद्वेत्र प्रकट्मामने क्रित्वकृतान्) 'समस्तु' (युद्धेषु) 'चेाद्य' (प्रेरस) ।

ककाः, 'श्रिक्ति भोगैरिति इसाम्रमसिमकायते' इति । पाइस्तु,

—"श्रिक्ति भोगैः पर्छेति वाकं व्याया हेति परि वाधमानः ।

इसाम्रो विश्वा वयुवानि विद्वान् पुमान् पुमाः एवरि पात विश्वतः (११) ११

इति । धानुष्कीर्वामहस्तः केनिहरू पेण वर्मविष्ठेकेण वेष्मते । तषासं

इष्टान्तः,—'श्रिक्ति भोगैः', यथा सर्यः स्वकीस्त्रश्रीरवेष्टवैः पुक्षस्यः

इसां पादे वा बेष्टयति, तषावं वर्मविष्ठेषः पुक्षस्य 'वाकं' 'पर्थेति'

(परिता याप्नोति) । किं सुर्वान् ?—'ज्यायाः' श्राकर्णमाद्यस्य सहस्यः

सुन्ना सा 'हेतिः', तां 'परि वाधमानः' (परिता निवारसन्); ब्यायाः

प्रकारसम्भेष्येव पस्तित न तु वाहीः, इस्ते खिला व्याघाते क्यमानः

वर्षविष्ठेषो 'इस्ताः'; सेर्प्यान् 'विश्वतः' (सर्वस्नात्) ज्यद्रवात् 'पात्त'।

तव दृष्टान्तः,—'विश्वा वयुवानि' 'विद्वान्' (स्त्रीत् मार्गान् श्विन-

जानानः) 'पुमान्' 'पुमांसम्' (चन्वं पुरुषं) यथा पासयति तहिति वेवः ।

कराः, 'वनस्रते वीड्रङ्गो हि भ्रया दति पद्मभीरथम्' दति ।
तत्र प्रथमामादः,—"वनस्रते वीड्रङ्गो हि भ्रया अस्तराखा प्रतर्णः
स्वीरः। गोभिः सञ्जद्धो असि वीड्रथसास्ताना ते अवतु केवानि (१६)"
दति । हे 'वनस्रते' (वनस्रतिनिष्यञ्जरथ), 'वीड्रङ्गः' (दृढ़ाङ्गः) इव 'भ्रयाः' । कीद्यक्तम्?—'अस्तराखा' (अस्तासु वस्विवस्तित्वः); 'अतरकः' (प्रहारुगमनसाधनभ्रतः); 'स्वीरः' (श्रोभनैविरिद्येतः); 'गोभिः सञ्जद्धो असि' (गवादिस्मर्गस्कुभिः सम्बग्बद्धोऽसि); 'वीड्रयस्व' (अस्यन्तं दृढ़ो भव)। 'ते' (तव) 'आस्वाता' 'वेवानि' (जेतवानि)' कर्यन्यानि 'अयतु'।

श्रव दितीयामाइ,—"दिवः पृथियाः परि श्रोज उद्भृतं वन-स्वतिभ्यः पर्थाश्रतः यदः । श्रपामाञ्चानं परि गोभिराष्ट्रतमिन्द्रस्यं वस्त्रः स्विषा रथं यन्न^(१९)" इति । दे यनमान, ते 'र्थं' इसं 'स्विषा' (वस्तिकर्मेषा) 'यत्र' (पूज्य) । कीदृशं र्थं ?—'दिवः' पृथियाः परि श्रोज उद्भृतं' (गुस्तोकाद्भृत्ते।काच वर्वते। वसमानीय सन्पादितं); तथा 'वनस्पतिभ्यः' श्रपि परिनः 'वदः' (वसम्) श्रानीय 'श्रास्तां' (सन्पादितं); तथा 'श्रपामाञ्चानं' (श्रपामद्भम् श्रोज श्रानीय निष्पादितं); 'गोभिः' (गवादिविकारैनेविभिद्यर्ममय-रज्जुभिस् परितः 'श्रास्तां' 'इन्द्रस्थं' 'वस्त्रम्' इव दृत्रीसृतम् ।

ह्मतीयामार,--"इन्ह्रक वजी मर्तामनीकं मिचस गर्भी वर्षका नाभिः। देशां ने। इद्यदाति जुवाको देवरथ प्रति इद्या ग्रभाव^(१०)" दित । यथा 'दन्द्रसा वक्कः' चत्यनादृतः, यथा व 'मदताम्' 'चनीकं' (बैन्धं) वक्कमिर्भटेदपेतं, यथा 'मिचसा गर्भाः' ऋत्यन्तं सुरचितः, यथा 'वद्यस्य नाभिः' केनापि तिरस्कर्तुमद्रक्कः, तथा-विधेर्गृषैद्येत हे 'देवरथ', 'नः' (ऋस्वदीयाम्) 'दमां' 'स्थदाति' (इविद्रानं) 'जुवाकः' 'द्या' (ऋसद्त्तानि स्थानि) 'प्रति' 'ग्रभाव' (प्रत्येकं ग्रहाक)।

चतुर्चीमाइ,—''उप यायव प्रधिवीसृत यां पृक्षा ते मनृतां विद्वितं जगत्। य दुन्दुभे सजूरिन्द्रेक देवेंदूरात् दवीचा त्रप वेध सनून्(१०)" इति। रधसमीपवर्ती दुन्दुभिरधेवंमिइमा, किसुत रख इति विवक्या दुन्दुभिः प्रश्रस्तते। हे 'दुन्दुभे', 'प्रधिवीम्' 'खप'—'यायव' (लदीयेन अन्देन पूर्य)। 'खत' (प्रपि च) 'यां' (खुक्षाकमपि) 'खप—यायव'। 'पुक्षा' (पुक्षु, खुक्षाकस्रक्षाकादि—स्वानेषु) 'विद्वितं' (विश्रेषेक स्तितं) सर्वे 'जगत्' 'ते' (तव) अन्दं 'मनृतां' (जानातु)। 'स' लं 'इन्द्रेष' चन्त्रे: 'देवें:' च 'सजूः' (समानप्रीतिः सन्) 'अपून्' चस्त्रदीयान्, 'दूरात् दवीयः' (दूरादिप प्रत्यन्तदूरदेशं प्रति) 'यप—स्वध' (प्रपद्यारय)।

पश्चमीमाइ,—"श्रा क्रन्द्य वसमोवा न श्रा धा नि छनिहि दुरिता वाधमानः । श्रप प्रोध दुन्दुभे दुन्कुनाप्ट इत इन्द्रस्य सुष्टिरिव वीड्यस्व^(१८)" इति । हे 'दुन्दुभे', परवखं (परकीयवैन्यं) प्रति 'श्रा—क्रन्द्य' (श्राकोशं कुइ),—श्रमुं जहि श्रमुं प्रइर—इति श्रत्यम्तभीतिहेतं श्रम्यं कुद । 'नः' (श्रस्ताकं) 'श्रोजः' 'वखं' 'श्रा धाः' (श्रा धेहि, यग्यक् यग्याद्य) । 'दुरिता' 'वाधमानः'

(ऋसादीयानि दुरितानि विनामयन्) 'नि ष्टनिष्टि' (गर्जनसमानम् ऋसाद्वसाइष्टेतुं मन्दं खुद्)। 'दुच्छुनां' (दुष्टचित्तान् पुद्दवान्) 'इतः' ऋसात् 'ऋष प्रोष्ठ' (ऋपसार्य)। त्वं 'इन्द्रख्व' 'सुष्टिरिष' (वज्ज-धारकसुष्टिसमानाऽसि); ऋतः 'वीड्यख्व' (हृद्दीभव)। ईहृत्रैः दुन्दुभिध्वनिभिः सृष्टिताऽयं रथः प्रवर्त्तत इति तात्पर्यार्थः।

कराः, 'त्रा त्रमूरकेति दुन्दुभी स् स् हादयिना' इति। पाठस्तु,—
''त्रामूरज प्रत्यावर्त्तयेमाः केतुमहुन्दु भिर्वावदीति। समस्पर्णस्यरिना
ने। नरे। उसाकमित्र रियने। जयन्तु (१०)" इति। हे 'इन्द्र', 'इमाः' परकीयाः सेनाः समन्तात् 'त्रज' (प्रेरय, पत्नायिताः कुद्र)। 'इमाः' प्रसादीयाः सेनाः 'प्रत्यावर्त्तय' (त्रक्ताः सत्यो यथा प्रत्यादता भवन्ति तथा कुद्र)। त्रयं 'दुन्दुभिः' 'केतुमत्' (ज्ञानवत्) त्रसादीयो जयो यथा सर्वे ज्ञायते, तथा 'वावदीति' (स्त्रां ध्वनं करोति)। 'त्रसपर्णः' त्रसप्याः, त्रस्वादनयुक्ता इत्यर्थः, तादृक्ता 'नः' 'नरः' (त्रस्मदीयाः पुद्र्षाः) 'सं'-'सरिना' (सम्यग्वित्रक्षेत्र सरन्तु)। 'त्रस्माकं' सम्बन्धिना ये 'रियनः' (सुस्क्षपुद्वाः) ते 'जयन्तु'।

श्रन विनियोगसंग्रहः,—

त्रयायमेधे जीमृत, कवरं प्रतिसुद्धति । धन्तना, धनुरादत्ते वच्छन्ती, ज्यामभिस्पृग्रेत् ॥ ते, संद्येद्वनुष्कोत्या बङ्गीतीषुधिबन्धनम् । रयेति सार्थिं, तीन्नानयानपभिमन्त्रयेत् ॥

चत्र 'चमः' इति पाठो भवितुं युक्तः ।

रय, काले रथः खाणो भनेत् खादुषवात्पितृन्। च्यात्मानमभिष्णुस द्या जहेत्याहरेत्कद्राम्॥ इसं मन्त्रयते ऽहीति, रचन्तु 'वन'-पञ्चनिः। दुन्दुभिं वादयेदामूर्य मन्त्रास्त्र विद्यतिः॥

द्रति सायनाचार्य्यविरचिते माधवीये वेदार्थप्रकामे रूप्ययजुः-संहिताभाय्ये चतुर्थकाण्डे षष्ठप्रपाठके षष्ठौऽनुवाकः ॥ •॥

यदक्रेन्दः प्रद्यमे जायमान ज्यन्त्रं मुद्रादुत वा पुरीवात्। ख्रोनस्य पृष्ठा हरिणस्य बाह्र उपस्तृत्यं महि जातं ते चर्वन्()। यमने दुन्नं चित रेनमायु-नृगिन्द्रं रणं प्रथमा अर्धातष्ठत्। गुन्धवी चस्य रण्नामयभ्णात् सराद्धं वसवो निर्ततष्ट्()। चिते यमा अस्थादित्या चर्वन्तसं चिता गुद्धोन वृतेन। चित्तं से सेमेन सु सया विष्ठितः ॥ १॥

श्राहुत्वे बीर्ण दिव बर्यनानि । बीर्ण त श्राहुदिव बर्यनान् बीर्युषु बीर्युक्तः संमुद्रे। जुतेवं मे वर्षणम्बन्त्यर्थन् यथा त श्राहुः पर्मं जुनिषं । दुमा ते वाजित्रव्मार्जनामीमा श्रुषानी सिन्तु-निधानी। श्रुषा ते भुद्रा रश्रुमा श्रीपस्थमृतस्य या चंभिरक्षंनित गोपाः(१)। श्रास्त्रामं ते मनेसाराई-जानामुका दिवा॥२॥

ते (क) हिर्र सम्बद्धा अस्य पादा मने जित्रा अवंद इंद्य आसीत्। देवा इदंख्य इत्रियं मासून् देव अवंद्यं प्राक्ष्मे अध्याति छत् (क)। दुमीन्तीतः सिसिकः मध्यमासः सश्यरं णासे। दिव्यासो अत्याः। इश्सा दंव श्रे शिक्षे प्रतन्ते यदा सिष्ठि दिव्यमञ्मन्त्रीः (क)। तत् प्रदीरं पत्रि वृद्धिता पुरुषारं यातं इत् अभीमान्। तत् श्रु क्षां विष्ठता पुरुषारं ग्रे कु अभीमान्। तत् श्रु क्षां विष्ठता पुरुषारं ग्रे कु अभीमान्। वर्षात्री वर्ष

प्रागाच्छत्तंनं वाज्यवा देवद्रीचा सनेसा दीर्घातः। मुजः पुरा नीयते नाभिरस्यानं पुष्ठात् कृवया वन्ति रेसाः(१२)। उप प्रागात् परमं यत् सुधस्यमर्वाः श्रका पितरं मातरं च। श्रदा देवान् श्रष्टतमो हि गुम्या श्रवा श्रीत्ते दाशुषे वीर्याखि(११) ॥ ५ ॥

विष्ठकः। दिवा। वीर्यम्। उप। रकान्नचंत्वा-रिप्रमचं॥७॥

र्ति तैत्तिरीयसंहितायां चतुर्थकार्ग्डे वष्ठप्रपाठके सप्तमाऽनुवाकः॥ *॥

दृष्टान्तदयसुच्यते,—'श्चेनस्य पत्ताः, इरिणस्य बाह्र'; इतग्रद्धोऽच त्रध्यादर्भयः,—यथा श्वेनास्त्रस्य पत्तिणः पत्तौ त्रीघोत्पतनदेतुत्वात् सर्वेदपस्तृत्योः; यथा वा 'दरिणस्य बाह्र' (पादौ) त्रीचगमनदेतुत्वात् स्रपस्तृत्यौ, तददित्यर्थः।

त्रथ दितीयामाइ,—''यमेन दर्स जित एनमायुनगिन्द्र एणं प्रथमे।
त्रथित हत्। गत्थे विद्यार्थ हित प्रमामग्रम्णात् स्रराद्यं वसवा निरतह (१)"
दित । त्रच यमाऽग्निः, 'त्रिग्नंव यमः' दित श्रुत्यन्तरात्। चिषु खोकेषु पायते विद्यार्थते दित 'चितः' वायुः। 'यमेन' (त्रिग्ना) 'दत्तम्' 'एनम्' 'त्रयं' 'चितः' (वायुः) 'त्रायुनक्' (रथे योजितवान्)। ततः 'द्रन्दः' 'प्रथमः' (सर्वेषु देवेषु मध्ये प्रथमं प्रवृत्तः) सन् 'एनम्' 'त्रथम्' 'त्रध्यतिष्ठत्' (त्रधिष्ठितवान्), योगचेमं सम्पाद्यितमिभमानं कृतवानित्यर्थः। 'गत्थवः' कञ्चित् 'त्रस्थ' (त्रयस्थ) 'रक्षनां' (बत्थन-चेतुं रक्तुम्) 'त्रग्रम्णात्' (स्तिकृतवान्)। हे 'वसवः', यूयं स्तरात्' (त्रादित्यात्) दमम् 'त्रयं' 'निरतष्ट' (निःश्रेषेष प्रकाणितवन्तः)। यस्य श्रयस्य श्रविरानेता, वायुर्ये।जियता, दन्द्रोऽभिमन्ता, गत्थवा रक्तुग्रहीता, सर्व्यप्रकाशेन वसवः प्रकाशियतारः; तादृशोऽयमयः दित स्त्रयते।

श्रय हतीयामार,—''श्रमि यमा श्रखादित्या श्रवंत्रमि निता गुद्धेन अतेन। श्रमि सामेन समया विष्टक श्राङ्कले नीणि दिवि बन्धनानि^(२)" इति । हे 'श्रवंन्' (श्रम्), त्वं यमाभिधाग्निः 'श्रमि'।

^{* &#}x27;इन्द्रो हि मन्ता' इति कचित् पाठः।

तथा 'त्रादित्यः' 'त्रसि' । तथा 'चितः' (वायुः) 'त्रसि' । पूर्वीक्रप्रकारेख वाव्यादित्ययोरनुम्टहोतलात् तद्रूपलं । तथा 'गुद्धोन' 'व्रतेन' (गोप्येन श्रम्मोधाखोन कर्याणा) तच्योन 'देामेन' च 'समया' (समये प्राप्तकाले) 'विष्टकः' (विभेषेण युकः) 'ऋषि'। ई.दृभ्रस्य 'ते' (तव) द्युलोके 'बन्धनानि' (बन्धनसाधनानि) दामानि 'चीणि' इत्येवमभिज्ञा 'म्राज्ञः'। विणिवा हि ब्रत्याधिकाने त्रात्युयमयं विक्रीतं वामान्तरे नयन्तः चिभिदीमभिर्मभन्ति । दिचणवामपार्श्वयोदीमदयसुभौ पुरुषौ यसीतः । यदा दिजणभागविर्त्तमं द्रष्टुमुद्युक्के तदा वामभाग-वर्त्ती तमाकर्षति ; तं चेत् द्रष्टुमुद्युक्के तदानीमितर त्राकर्षति । यदा सहसा पुरत: पलायनं वारियतुं गले बद्धमेकं दाम य्टहीला पृष्ठतः किस्त्रकर्षति, तदिदं बत्धनचयं। यदा श्रास्त्रसिद्धं किश्चित् कारणचयं द्रष्टयं। तदनेन बन्धनचयेणाधिकणकिरय इति स्तुते। भवति ।

त्रय चतुर्थीमाइ,—"वीणि त त्राङ्गाईवि बन्धनानि चीप्यपु बीष्यन्त:समुद्रे। उतेव मे वक्षण्क्नस्यर्वन् यचा त श्राज्ञः परमं जनिचम्^(४)" इति । यथा द्युलेकि तव उचै:श्रवीक्एस बन्धनचय-मभिज्ञा 'त्राज्ञः'; तथैव 'त्रपु' 'ससुद्रे' च । यथा वा, वाजपेये, 'ब्रप्खन्तरस्तम्' इति मन्त्रेणाश्वान् त्रप्तु स्नापयन्ति, तथापि पूर्वेक्ति-रीत्या बन्धनचयमपेचितं । तथा ससुद्रमध्ये खितायाः वड्वायाः बन्धनचयमित्येवमभिज्ञा 'त्राज्ञः'। 'खत' (त्रपि च), हे 'त्र्वन्' (त्रश्व) 'ते' (तव) 'यच' (यस्मिन् पिव्ववीर्ये) 'परमं' 'जनिचं' (उत्तमं जना)-- इत्येवंसचणमभिज्ञा 'श्राजः' । तित्पद्यवीर्थं लमेव वर्षः

चिभिर्बन्धनितारणीयो भूला 'मे'(मम) 'इन्सि' 'इव' (कथयि इव)। श्रयमर्थः,—श्रयस्य पिट्टपचभागिलात् मातिर खल्पायामपि यत्यां श्रीदृखेदश्वो दृश्वेत, तस्य पिता श्रीदः पितेति जत्शेचितुं श्रका इति।

पश्चमीमार,-"इमा ते वाजिन्नतमार्जनानीमा प्रफानाष्ट्र यनितुर्निधाना। श्रवा ते भट्टा रश्रना श्रपश्रम्टतस्य या श्रभि रचन्ति गोपा:(४)" द्रति । हे 'वाजिन्', 'ते' (तव) 'द्रमा' (एतानि दृष्य-मानानि) 'श्रवमार्जनानि' ग्ररीर्ग्रोधनसाधनानि, लेाइमयानि; (यैं जें इकार्यें: प्रात:काखादी श्रयस्य पांत्राद्यपनयनाय ग्ररीरं मृज्यते, घर्षणेन श्रोध्यते, तानि 'श्रवमार्जनानि'); तथा 'श्रफानां' (खुराणां) 'मनितुः' (दातुः पाषाणवज्जले मार्गे प्रचेषः *) तव प्रफशेदनपरिद्या-रार्थम् 'दमा' 'निधाना' (एतानि खोइमयानि त्रावरणविशेषद्धपाणि, निधीयने प्रफेबिति निधानानि; राजाने। हि महार्हाणां प्रौढ़ानाम् श्रश्वानां खेाइमयै: साधनै: प्रतिदिनं कष्ड्रपनयन्ति, श्रफेषु च खोइपचाणि कीखयन्ति। किञ्च 'ते' (तव) 'भद्राः' (सुवर्णादि-खचितलेन, कखाणक्याः) 'रमनाः' खलीनले।इकच्याः पुष्क्पना 'श्रच' (श्रसिन्नेव देशे खापिताः), श्रदमपि 'श्रपश्वं'। कीदृशस्य तव ?— 'ऋतसः' (सत्यसः) बद्धमूखाईस्थेत्यर्थः । कीदृग्शो रव्रनाः ?—इति ता विश्रेखनो, 'याः' 'रश्ननाः' 'गोपाः' (पृष्ठदेशव्यथादिपरिचारेणाश्वं गोपायन्यः) 'त्रभि रचन्ति' (उपरि त्राक्ढं पुरुषमभितः पतनादिभ्यः पालयन्ति)।

श्रथ षष्टीमाइ,-"श्रात्मानं ते मनसा त्रारादजानाम् श्रवे। दिवा

^{* &#}x27;प्रेच्चेप्यः' इति सर्व्वच पाठः । प्रच्चेप्तः इति तु भवितुं युक्तः । 4 м 2

पतथकां पतक्तं। ब्रिरा ऋषस्यं पिथिभः सुगेभिररेणुभिर्जेदमानं पतचि^(६)" इति । हे श्रम, तव 'श्रातानं' (खरूपम्) 'श्रारात्' (समीप एव) 'मनसा' 'त्रजानां' (त्रभिज्ञानवान् त्रसि) । कोदृश्रम् भात्मानं ? 'श्रवः' (रचकं), बीचगामी दि श्रमः परधैन्यभञ्चनेन खामिनं रचित । तथा 'दिवा पतयक्तं' (श्राकाश्रेन धावकां), लदीय-धावनवेखायां वेगातित्रयेन असेराक्रमणं केनापि द्रष्टुं न प्रकाते इत्यर्थः । यसादाकात्रगामी, तसादेव च 'पतङ्गं' (पचिसदृशं) । तथा लदीयं 'बिरः' श्रपि श्रहम् 'श्रपश्चं'। कीहृशं बिरः ?—'सुगेभिः' (गम्तु बकी:) 'बरेणुभिः' (धूंसिर्हितेः), 'पथिभिः' (श्राकाश्रमार्गः) 'केइमानं' (बीचगितयुक्तं); त्रत एव 'पतिन' (पचिसदृष्टं); यदा हि श्रयमयः प्रायेच भूमिस्पर्धनं विना श्राकाश्रमार्गेष धावति तदानीं पाषाणरिहतलाद्यं मार्गः सुगमः । असिसार्श्रवाज्ञस्थाभावात् धूखिरहितस् । तथाविधमार्गेष धावते। अस्य उपरिवर्त्त 'बिरः' चुखेन द्रष्टुं प्रकाते, उन्नतदेशवर्मित्वात् धूखावरणाभावाचेति । र्द्रुश्रवेगवानस रति स्तृतिः ।

त्रथ सप्तमीमाइ,—''त्रवा ते इपमुत्तममपशं जिगीयमाणिमध त्रा पदे गो:। यदा ते मंती त्रनु भोगमानडादिद्यसिष्ठ त्रोषधी— रजीगः(°)'' इति । हे त्रस्, 'यदा' (यसिन् काले) 'ते' 'भोगं' (घृतमुद्गादिभचणक्पम्) 'त्रनु' 'मतेः' (मनुष्यः) परिचारकः 'त्रानद' (भोगं प्राप्तवान्), प्रोहेषु राजग्रहादिषु त्रस्रघामार्थं दत्तीर्भुद्गधृता— दिभिः परिचारका त्रपि जीवन्तीति प्रसिद्धम्। 'त्रादित्' (ईद्ध— दक्तान्तादनन्तरमेत्र), 'ग्रसिष्ठः' (त्रतिश्रयेन ग्रसित्तकामः) लम् 'श्रोषधीः' (चणकाद्याः) 'श्रजीगः' (प्रापिते। अत्र । 'श्रच' (श्रिस्त्रवसरे) 'ते' 'इपम्' 'उत्त मं' (खें लिखितवानिका)। कीदृष्य तव ? 'इषः' (श्रश्नान) 'श्रा' (समन्तात्) 'पदे' (प्राप्तृ) 'गोः' (गक्कतः) । कीदृष्यं इपं?—'जिगीपमाणं' (श्रेतुमिक्कायुक्तम्)। श्रयमर्थः, प्रौदराजग्रहे लदीय-'भागम्' श्रनु श्रश्ववारा नीचाः सर्वेऽपि सम्यग् भुञ्जते, लञ्च राजाञ्चया केनाप्यनिवारितः" सन् चणकादि— चेचेषु खेक्क्या गक्कि । श्रिस्त्रवसरे लक्षुखेन सर्वाणि श्रश्नानि प्राप्तुं श्रक्यन्ते, विजयस्व भविष्यतीत्येवं लदीयमहिमानं निश्चित— वानसीति।

त्रधाष्टमीमाइ,—"त्रमु ला रथे। त्रमु मर्थे। त्रवंत्रमु गावाऽमु भगः कनीनां । त्रमु त्रातासस्तव सस्त्रमीयुर्मु देवा मिनरे वीथें ते (में) इति । हे 'त्रवंग्', लाम् 'त्रमु' 'रथः' प्रवक्ति, म हि लया विना रथे। गम्मु क्राः । 'मर्थः' (मर्त्यः) त्रस्वारस्वाम् 'त्रमु'-जीवित । तत्र पूर्वमेवाक्तं । 'गावः' त्रपि लाम् 'त्रमु'-जीविना, बालस्य तव चीरमवनीताद्यथं, प्रदृद्धस्य तव घृतार्थस्य गाः पेषयिन्त । 'कनीनां' (कन्यानां बालानां दासीनां) 'भगः' (सीभाग्यं) लाम् 'त्रमु'-सम्पद्यते । त्रत्रस्याखापरिचाराधं हि ता त्रस्रवस्त्रदानेम तस्त्वामिनः पेषयिना । 'त्रातासः' (त्राताः सेनाद्याः ममुख्यसङ्काः) 'तव' 'सस्त्रम्' 'त्रमु' लदीयं बाह्यस्यम् 'त्रमु' (पस्तान्) 'ईयुः' (जयं प्राप्नवन्ति) । 'देवाः' (प्राजापत्यादयः) 'ते' 'वीथें' (लदीयं सामर्थं) 'त्रमु'

^{* &#}x27;स्मिवारितः' हति स्नादर्भपुक्तकपाठः।

खपसच्च 'मिमरे' (खकीयइविष्खेन प्रमितवन्तः)। ईदृश्रोऽयं श्रयः इति स्तुतिः।

त्रथ नवमीमाइ,—"हिरफ्अट्रङ्गोऽयो श्रख पादा मनोजवा श्रवर दन्द्र श्रामीत्। देवा दृद्ध इविरद्यमायन् यो श्रवंनां प्रथमे। श्रथतिष्ठत्^(९)" दित । श्रयमश्चः 'हिरफ्अट्रङ्गः' (हिरफ्अमानवर्णः, प्रटङ्गस्थानीयो मूर्ड्रप्रदेशो यसामौ हिरफ्अट्रङ्गः) हिरफ्याद्धित हत्यथः। 'श्रयो' (लोहवदत्यन्तदृढ़ः)। 'श्रस्थ' (श्रयस्थ) 'पादाः' 'मने।जवाः' (मने।ष्टत्तिमदृश्चेन वेगातिश्चयेन युक्ताः)। एतेन श्रयेन, एकेःश्रवमा 'दन्तः' श्रपि 'श्रवरः' (निकृष्ट एव) 'श्रामीत्'; 'देवाः' 'दत्' (मर्वे हि देवाः) स्वयम् 'श्रस्थ' (श्रयस्थ) मम्मन्धि 'हविरद्यं' (हवि-भंजणम्) 'श्रायन्' (प्राप्तुवन्तः)। एतदीयमेव हविस्तु योग्यमिति निश्चितवन्तः। 'प्रथमः' (श्राद्यः) 'यः' (प्रजापितः) 'श्रवंन्तं' (एनम् श्रयम्) 'श्रध्यतिष्ठत्' (श्रधिष्टितवान्) स्वकीयलेन स्वीकृतवान् , से।ऽपि एतदीयमेव हविरद्यमिति निश्चितवान्।

श्रय दश्रमीमाइ,—"ईमीन्तासः सिलिकमध्यमासः सप्त्रहरूणाचे। दिव्याचे। श्रत्याः । इप्ता दव श्रेणिश्रो यतन्ते यदानिषुर्दिव्यमञ्ग्रमञ्जाः (१०)" इति। सर्वेऽप्यश्चा एवंविधाः। कीदृशाः?—इति तदुच्यते,—गलभागो जघनभागञ्च श्वश्वस्थान्ते।, तो 'ईमीं' प्रस्तौ उस्तौ वेषां ते 'ईमीन्तासः'। 'सिलिकं' (सङ्कुचितं), निश्चं मध्ये पृष्टभागे वेषां ते 'सिलिकमध्यमासः', यच मनुष्या श्वारोइन्ति स देशो निश्वः, न तु गजस्येव पृष्टभाग उन्नतः । 'संद्रहरूणासः' (युद्धे जयदेतुत्वेन सम्यक् प्रहराः)। 'दिव्यासः' (ग्रामगमनादिव्यवदारनिष्पादकाः)। 'श्रत्याः'

(सततगमनश्रीलाः)। ते च 'इंसा' 'द्रव' 'श्रेणिश्रः' (सङ्गन्नः) 'यतन्ते',— यथा इंसाः पङ्कित्रद्धाः सङ्गीभूय श्राकाश्रे यतन्ते गच्छन्ति, एवमश्रा श्रिप बद्दवः संहता युद्धाय प्रयतन्ते। 'यत्' (यस्मात् कारणात्) 'श्रश्याः' दिखं (क्रीड़ाविजिगीषाद्यथें) 'श्रश्यां' (गमनं) 'श्राचिषुः' (याप्रवन्तः), तस्मादश्वजातिमाचस्वैवं प्रश्नस्तात् सः क्रतुनिष्पादकः प्रकृतोऽश्वः प्रश्नस्त द्रति किसु वक्तवः।

श्रुचेनादशीमाइ,—"तत्र श्ररीरं पतिथणु श्रुवंन्तव चित्तं वात इत्र अजीमान्। तत्र ग्रङ्काणि विष्ठिता पुरुचारण्येषु जर्भराणा चरन्ति (११)" इति । हे 'श्रुवंन्', 'तत्र' 'श्ररीरं' 'पतिथणु' (पतनश्रीसं) श्रीघून्गमनश्रीसमित्यर्थः । 'तत्र' 'चित्तं' 'वात इत्र' (वातमदृश्रञ्च) । वायुः कीदृश्यः ?—'अजीमान्' (श्रुत्यन्तगितमान्)। 'तत्र' 'ग्रङ्काणि' (श्र्यङ्गान्सानीयानि) जपरि प्रचिप्तानि श्रायुधानि 'विष्ठिता' (विश्रेषण तच्च स्त्रानि साद्यानि । श्रश्रस्थापरि कचिद्वष्ठिधः कचित् खङ्ग इत्येवं बद्धनि श्रायुधानि प्राप्यन्ते, तानि च पुरुषु (बद्धषु) 'श्ररण्येषु' ग्रासेभ्या बर्ह्मितेषु युद्धप्रदेशेषु परसैन्यानि श्रितश्रयेन भरमाणानि 'चरन्ति' (प्रवर्त्तन्ते) ।

दादशीमाद,—"उप प्रागाक्छमनं वाज्यवी देवद्रीचा मनमा दीध्यानः। श्रजः पुरो नीयते नाभिरस्थानु पश्चात् कवयो यन्ति रेभाः (११)" इति। 'वाजी' (क्रतुद्वारा श्रश्चहेतुः) 'श्रवी' (श्रयमश्चः) 'श्रमनं' (श्रस्मिन् कतौ विश्वमनस्थानं) प्रति 'उप' 'प्रागात्' (समीपं प्राप्तवान्)। किं कुर्वन् ?—'देवद्रीचा' 'मनमा' 'दीध्यानः' देवान् श्रश्चति प्राप्नोतीति देवद्रङ्, तादृशेन निरन्तरं देवविषयेण मनसा धानं कुर्वन्, 'म्रजः' (प्रजापितः), 'पुरः' 'नीवते' (श्रक्षाद्यात् पूर्वम् स्विग्भिनीयते), प्रजापितः पुरते गक्कत स्विवो ध्यायनीत्यर्थः । यदा काग एव 'श्रजः', स हि श्रम्यस्य पुरो नीयते । 'श्रस्य' (श्रम्यस्य) 'नाभिः' (नाभ्युपस्तितं प्ररीरं) प्रजापितम् 'श्रमु' 'नीयते'। श्रस्य श्रमस्य 'पश्चात्' (पृष्ठभागे) 'कवयः' (विद्वांस स्विजः) 'रेभाः' 'यिना' (सुतिं कुर्वाणा गक्किना) ।

प्रवादधीमाइ,—"उप प्रागात् परमं यत् सधस्यमंताः प्रस्का पितरं मातरस् । त्रसा देवान् जुष्टतमा हि गम्या प्रया प्रास्ते दाउद्वे वार्यासि(१२)" इति । 'त्र्यंगं' (प्रीघृगमनवान्, प्रयमसः), 'परमम्' (उत्कृष्टं) 'यत्' 'सधस्यं' (प्रमिष्टिभिः सह स्वातं योग्यं, यत् स्वानमस्ति तत् 'उप' 'प्रागात्' (तत्समीपं प्राप्तवान्) । किमधें ?— 'पितरं' 'मातरस्व' व्यपि प्राप्तुं,—स्वर्गे दिय्यो यः पिता या च माता दिया, तावुभौ प्राप्तुं, देवताजवाना खया स्वर्ग इत्यर्थः । हे व्यस्य 'व्यस्य (प्रस्तिन्दिने) 'जुष्टतमः' (व्यतिवयेन व्यतिप्रीतः सन्) 'देवान्' 'गम्याः' (प्राप्तृहि) । 'व्रथ' (व्यनन्तरं) 'दाइद्वे' (हिवर्दत्तवते) यजमानाय 'वार्यासि' (वरणीयानि फलानि) त्रयम् व्यत्वक्षस्वः 'व्यास्ति' (प्रार्थयित) ॥

द्ति सायनाचार्य्यविर्विते माधवीये वेदार्घप्रकाजे सम्मयजुः-संहिताभाव्ये चतुर्यकाण्डे चष्ठप्रपाठके सप्तमाः नुवाकः ॥ •॥ मा नी मिनो वर्ष शे अयुमायुरिन्द्रं ऋभुक्षा मृहतः परिस्थन्। यहाजिनी देवजातस्य सप्तेः प्रवृक्ष्यामेश विद्वे बीयीखि(१)। यिन्धिका रेक्ष्यसा प्राष्ट्रतस्य गाति एभीतां मुख्ता नयेन्ति। सुप्री इ श्रुका नेम्यंद् विश्वक्षेप इन्द्रापूर्णाः प्रियमप्येति पार्थः १। एम छागः पुरा अर्थेन बाजिनी पूर्णा भागा नीयते विश्वदेखः। श्रुभिप्रयं यत् पुरोडाश्र्मर्वता त्वष्टेत्॥ १॥

युन्द सौत्रुम्सार्य जिन्दिति । यद्दिष्यं सतुत्रो देव्यान् विमानुषाः पर्यश्वं नर्यन्त । अषा पूष्णः प्रमाने भाग एति य्वां देवेभ्यः प्रतिवेदयं क्वाः । विद्यान् पर्यायः प्रतिवेदयं क्वाः । विद्यान् प्रति य्वां देवेभ्यः प्रतिवेदयं क्वाः । विद्यान् व्याप्ति स्विष्टेन वृक्षणाः श्वा प्रतिप्रः । तेनं य्वोन् स्वरं क्वतेन स्विष्टेन वृक्षणाः श्वा प्रण्यं (॥) यूप्रवृक्ता ज्त ये यूप्रवाषाञ्चषान् ये श्रेश्वय्यायः तक्षिति । ये चिते पर्यन् समर्थन्युते ॥ ॥ २ ॥

तेषाम्भिगूर्तिने द्रम्बतु (१)। उप प्रागात् सुमन्धे-धायि मन्द्री देवानामाशा उपवीतप्रेष्ठः। अन्वेन् विप्रा ऋषेया मदन्ति देवानां पृष्टे चक्तमा सुबन्धुं (१)। यद्यां अन्ते दामं संदानमंदितो या शीर्षे ग्रया रश्ना रक्तुरस्य। यदा घास्य प्रस्तमास्ये त्रण्य सर्वा ता ते_ कपि देवेषस्तु (०)। यदश्वस्य कृविषः ॥ ३॥

मिश्व ता यहा खरी खिंती रित्तमित्तं। यहर्त्त-याः श्रामितुर्येखुषेषु सर्वा ता ते श्रापं देवेषंत्तुं । यदूर्वध्यमुद्रं स्थाप्वाति य श्रामस्यं कृतिषे गृन्धोः श्रात्तं। सुकृता तच्छंमितारंः क्रायन्तूत नेधं श्रु शृतपार्कं पचन्तुं । यत्ते गाचाद्ग्रिना प्चमानादिभ श्रु खं निषंतस्याव्धावंति। मा तक्रु स्थामा श्रिष्न; मा त्र खेषु देवेभ्यस्तदुश्रद्धो रातमंत्तुं । ॥ ॥

इत्। जुता। क्रविषः। श्रिषंन्। सुप्त चं॥ ८॥

द्ति तैत्तिरीयसंहितायां चतुर्थकार्यं वष्टप्रपाठके श्रष्टमाऽनुवाकः॥ *॥

सप्तमेऽनुवानेऽयासोमीयमन्ताः नेविद्ताः। श्रयस्य स्तोत्रमथ-स्तोमः, तत्प्रतिपादका श्रयसोमीयाः। श्रयाष्टमे त एवान्ये नेविद् एचन्ते। श्रनुवाकभेदस्य साम्प्रदायिकः, श्रयज्ञसंयुक्तेषु प्रयोगेषु मन्त्रभेदार्था वा। तचाष्टमे प्रथमास्ट्रचमारः,—"मा ने। मित्रो वर्षणो श्रयमायुक्तिः स्वभुत्ता मस्तः परिस्थन्। यदाजिने। देव-जातस्य सप्तेः प्रवस्थामे। विदये वीर्याणि(१)" इति। मिनादयः प्रसिद्धाः। एति सर्वदा गक्कतीति 'श्रायुः' । स्वभवे। देवाः चीयन्ति निवयन्ति श्रिक्षितिति 'स्वभुवाः' (प्रजापितः) । 'मदतः' देवान्तराषि, ते सर्वेऽपि 'नः' (श्रस्मान्) 'मा' 'परिस्थन्' (मा निन्दयन्तु) । 'यत्' (यस्मान्) 'वाजिनः' (यागदारा श्रस्नसाधनस्थ) 'देवजातस्थ' (देवार्थ-सृत्पन्नस्थ) 'सत्तेः' (श्रश्वस्थ) 'वीर्याषि' (सामर्थ्यानि) 'विद्ये' (श्रस्मिन् यद्ये) 'प्रवच्छामः' वयं (प्रकर्षेण कथिय्थामः)। तस्मादस्मित्रन्दा न युक्तेत्यर्थः।

त्रय दितीयामाइ,—"यन्निर्णिजा रेक्णचा प्राष्टतस्य रातिं ग्रंभीतां सुखता नयन्ति । सुप्राङ् त्रजा मेम्यदिश्वरूप दन्द्रापूष्णोः प्रियमप्येति पाथः (१)" इति । 'निर्णिजा' (प्रोचणादिकतया प्रदुद्धा), 'रेक्णचा' (सुवर्णरजतादिमणिक्षपेण धनेन) 'प्राष्टतस्य' (प्रकर्षेण धवेतो वेष्टितस्य); त्रश्वमेधे हि 'चलार ऋत्विजः समुचन्ति' इति (प्रावन्तीति) प्रोचणं, 'हिरस्यया वाचा' दत्यादिना सुवर्णादिमणि-भिरसद्वारस्याभिधीयते । त्रतस्याविधस्य सम्बन्धिनीं 'ग्रंभीतां' (इसे स्वीक्रतां) 'रातिं' (इविषो दानं) 'सुखतः' (त्रग्ने) 'यत्' (यदा) 'नयन्ति' (ऋत्विजः सम्यादयन्ति), तदानीम् 'त्रजः' (गितमान् त्रश्वः) 'सुप्राङ्' (सुष्ठु प्रक्रष्टान् देवान् प्राप्नुवन्) 'सेम्यत्' (सेम्यदिति हेवाक्रव्दानुकरणं) । 'विश्वरूपः' (नानाक्ष्पः) सन् 'दन्द्रापूष्णोः' (दन्द्रपूषप्रस्तीनां देवानां) 'प्रियं' 'पाथः' 'त्रप्येति' (प्रीतिकरमन्नभागं प्राप्नोति)।

[🏓] बायुर्वायुः इत्वेवंरूपः कवित् पाठा भवितुं युक्तः।

⁴ n 2

श्रय हतीबामाइ,—''एव कागः पुरे। श्रमेन वाजिना पृच्छों भागो नीयते विसदेयः। ऋभिप्रियं सत् पुराडाज्ञमर्वता लप्टेदेनप्र बौअवधाय जिन्दति^{(२)"} इति । 'वाजिना' (ग्रस्नसाधनेन) 'ग्रस्नेन' यद यः कञ्चित् श्रजः 'पुरा' 'नीयते' (तस्रादशात् पूर्वभागे)। कीदृत्रोऽत्रः ?—'पूच्णा भागः' (पूवदेवताचा भागखरूपः) ; 'विश्व-देयः' (विश्वेभ्या देवेभ्या हितः) ; 'श्वभिप्रियं' (सर्वतः प्रीतिकरं, पुराडाव्यत् खादुभूतम्) 'एनम्' (ऋजं) 'ऋवंता' (ऋयेन सह) 'लप्टेत्' (लष्टैव) 'बौत्रवसाय' (त्रूयते सर्वेरिप अनै: प्रीतिपूर्वकमिति अवेाऽजं, सुष्ठु त्रवः सुत्रवसास भावः सीत्रवसः तसी, सम्बक्षोभनभावाय) 'धत्' (यसात् कारकात्) 'जिन्वति' (प्रीक्वति), तसाद्यमञः 'पुरा' 'नीयते'। श्रम्भसंधप्रकर्षो 'पौष्णमन्त्रम् रह्येवं पूषदेवताकमञ् विधास्त्रति, स पूर्वी नेतवाः; तदिषयोऽयं मन्त्रः। श्रनेकः न्यायेन पूर्वमन्त्रोऽपाजविषयी योजयितयः, श्रश्नमेधप्रकर्षे, 'रिक्रापी बासुपरिष्टात्' इति व्यासक्तदेवताकस्य श्रमस्य विदित-वानाने च तक्षित्रजनम्बस्य, 'मेन्यत्'द्रतियोग्यक्रम्दानुकर्षस्य 🔻 श्रृयमाणलात्।

त्रय चतुर्यीमाइ/—"यह्नविष्यस्तुत्रो देवदानं चिर्मानुषाः पर्यसं नद्यमा। त्रवा पूष्णः प्रथमे। भाग एति धर्मं देवेश्वः प्रति— वेद्यस्त्रतः(४)" इति । 'यत्' (यक्) 'मानुषाः' (प्रतिजः) 'स्वं' 'चिः' 'परि'-'नद्यमा' (चिवारं प्रदक्षिणं सुर्वमाः) । कीदृत्रमसं ?— 'इविसं' (इविषो षोग्गं), 'स्तुत्रो' 'देवयानं' (स्तास्तौ देवान् गष्ट्रमं); 'स्रव' (श्रक्षित् देशे) 'स्रजः' 'प्रदमः' 'एति' । कीदृत्रो–

sm: ?—'पूर्णाः' 'भागः' । किं बुर्वन् ?—'देवेश्यः' 'यर्द्य' 'प्रति-वेदयन्' (हे देवाः, यज्ञः प्रक्तिते इत्येवं देवेभ्यो ज्ञापयन्) ।

पद्ममीमाइ,—"हाताध्वर्षुरावया श्रविमिन्धी वाववाम उत ब्रष्ट्रसा सुविप्रः। तेन यज्ञेन खरङ्गृतेन खिष्टेन वचणा श्राप्टणध्वम् (॥)" इति । यो यक्षिन् यज्ञे 'होता' विद्यते, यस्र 'श्रध्यर्युः', 'श्रावयाः' ('त्रा' समन्ताद् वेति गच्छति तचतचानुष्ठानाय बीच प्रवर्कते इति 'त्रावयाः'), योऽपि 'त्रमिनिन्धः' (त्रमेदीपकः त्रमीधः), यसु 'बाववासः' (वाक्खुत्), 'खत' (श्रपि च) 'श्रंखा' (यः प्रश्रखा), यञ्च 'सुविप्रः' (प्रस्तोता), एते सर्वेऽपि 'स्वरंक्रतेन' (सष्टु श्रसङ्कृतेन, श्रपेचितद्रवेके सम्पूर्णेनेत्यर्थः) 'स्तिष्टेन' (युष्ठ श्रनुष्टितेन) 'क्क्केन' (त्रममेधेन) 'वचणाः' (फलवाहिनीर्घृतकूखाः) 'त्राष्टणध्ये',—के शानादयः यूयं सर्वेऽपि त्रापूरवध्यं ।

श्रय वहीमाइ,—"यूफास्का उत ये यूपवाहाखवासं ये श्रय-यूपाय तचित । ये चार्वते पचनश्च सभारन्युतेः तेवामभिगूर्त्तर्न इन्ततु^(९)" इति । 'वे' 'यूपत्रस्का' (यञ्चार्थं यूपं त्रसन्ति), 'स्त' (श्रपि ৰ) 'ये यूपवाहाः' (किस्रं यूपं यज्ञश्चमौ वहिमा), 'ये'ऽखन्ये श्रम-यूपार्थं 'चवासं' (यूपकटकं) 'तचति' (तचणेन संस्कृवंन्ति); 'उता' (ऋषि च) 'थे'ऽप्यन्ये पुरुषाः 'ऋर्वते' (ऋर्वार्थं) 'पचनं' (पाकसाधन-कार्ड) 'समारन्ति' (समादयन्ति), 'तेषां' वर्वेषां 'ग्रभिगूर्त्तिः' (सङ्ख्यः) 'नः' (श्रस्मान्) 'इन्वतु' (प्रीषयतु) ।

श्रय सप्तमीमाइ,—"खप प्रागात् सुमन्त्रेऽधायि मन्त्र देवानामाश्रा उपवीतपृष्ठः । अन्वेनं विप्रा अवयो मदन्ति देवानां पृष्टे चक्रमा

सुबन्धुम्(°)" इति । सुद्रु मदहेतुरतिदर्षकार्षं फर्सं 'सुमत्', तदसान् 'खप प्रागात्' (समीपे प्राप्तीति) 'मना' (मननीयं फलं) 'से' (मदर्थम्) 'म्रधायि' (देवै: सम्पादितं)। 'खपवीतपृष्ठः' (कमनीयपृष्ठो-**ऽयमयः) 'देवानामाज्ञाः' (देवैराज्ञायनीयानि) इवींवि उप प्रामाः** देवइविष्टूं प्राप्नेतित्वर्थः । 'ऋषयः' 'विप्राः' (श्वभिज्ञातार ऋत्विजः) 'एनम्' (न्नयम्) 'त्रनु' 'मदिना' (त्रनुकूर्ले: सोचिईर्षयन्तु); 'देवानां' 'पुष्टे' (पुष्पर्षे) 'सुबन्धुं' 'चक्तम' (एनमयं बन्धुवदत्यमाप्रियं चक्रम) । चयाष्ट्रमीमाइ,—''यदाजिना दाम सन्दानमर्वता या भीषेक्षा रवना रक्तरसा। यदा घासा प्रस्तमासी व्रस् सर्वा ता ते श्रपि देवेबसु (^{ट)}" इति । 'वाजिन:' (त्रयस्) 'यत्' 'दाम' (गलवन्धनं), वच 'सन्दानं' (पृष्ठपादे बन्धनसाधनं दाम, पादसन्दानादि), श्रया गले बद्धा ऋषि पुनः पृष्ठपादे राज्यन्तरेण वध्यन्ते । 'या' च 'ऋर्वतः' (श्रयस्य) 'ब्रोबंस्वा' 'रवना' (त्रिरसि सम्बद्धा रक्तुः), याऽयन्या पुक्कबग्रा 'त्रस्य' (श्रत्रस्य) 'रज्जुः'; 'यदा' (यदपि) 'त्रास्ते' (सुखे) 'प्रस्थतं' (चिप्तं) 'हषं' 'सर्वा ता' (तत्सर्वमपि) 'देवेषु' 'श्रपि' प्राप्तं 'त्रस्त' 'ते' (तव) धजमानस्त 'त्रस्तु' (विद्यतां), यद्येह लेकि वर्वमाधनमपूर्णेऽश्वस्तवास्ति, तदत् परखेाकेऽव्यस्त्रित्वर्थः।

श्रय नवमीमाइ,—''यदश्रस क्रविषो मचिकाश यदा खरी खिंधतौ रिप्तमिस । यद्भुस्तयोः श्रमितुर्यश्रसेषु स्वा ता ते श्रपि देवेव्यसु^(८)" इति । 'श्रस्थ' (श्रश्यस्थं) 'क्रविषः' (क्रस्थं) 'यत्' (मांसं), 'मचिका' 'श्राम' (भिर्ततवती), 'यदा' (यस) रक्तं 'खरौ' (श्रद्धनार्थे क्रक्तें) 'सिंधतौ' (होदनहेतौ) श्रस्ते च 'रिप्तं' (ईपिक्तिं) श्रस्ति, 'यत्' श्रिप 'श्रमितुः' 'इस्तयोः' सिप्तं, यच तदीयेषु 'नसेषु' सिप्तं, हे श्रम 'ते' (लदीयं) 'सर्वा ता' (तस्त्रें) 'देवेषु' श्रिप 'श्रम्तु' (देवेब्वेव इतं भवतु)। यथा पूर्वमन्त्रे नियोजनकासीना गस्त्रितःपादादिवन्ध-नरक्त्रवे। देवेषु समर्पिताः, एवमच मांसस्त्रेगोऽपि देवेषु समर्थते।

श्रय दश्रमीमाइ,—"यदृवध्यसुदरस्थापवाति य श्रामस्य क्रविषो गन्धो श्रस्ति । सक्रता तच्क्रमितारः क्रखन्तृत मेधः ग्रहतपाकं पचनुं (१०)" इति । 'उदरस्थ' मध्ये 'यत्' 'ऊवध्यं' (श्रद्धें जीणं पक्षं श्रक्तदादि) गन्धक्रपेण वायुना सद श्रागच्क्रति, 'यः' 'श्रामस्थ' (श्रपक्स्य) 'क्रविषः' (मांसस्थ) 'गन्धः' दुःसदः 'श्रस्ति', तत्सवें 'स्रक्तता' (स्रक्ततं) यथा भवति तथा 'श्रमितारः' 'क्रखन्तु' । 'उत' (श्रपि च) 'मेधं' (यञ्चयोग्यं) 'ग्रह्तपाकं' (श्रपाकविपाकौ परित्यत्र्य सम्यक् पक्षं यथा भवति तथा 'पचन्तु' ।

त्रथैकादशीमाइ,—''यने गाचादग्निना पच्यमानादिभ ग्रूलं निहतस्वावधावित । मा तङ्ग्रम्थामा श्रिषमा ह्यणेषु देवेभ्यस्तदुश्रद्धो रातमस्त्र^(११)" इति । हे श्रम्भ, 'श्रग्निना' 'पच्यमानात्' 'ते' (तव) 'गाचात्' (श्ररीरावयवसकाशात्) 'यत्' श्रस्पम् 'श्रवधावित' (श्रश्रद्धतं सङ्ग्रमौ पर्तात), 'निहतस्य' (नितरां इन्यमानस्य) तव 'श्रिभ ग्रह्लं' (श्रह्ले सक्तं) यद्यदङ्गम् 'श्रवधावित' 'तत्' (श्रङ्गं) भ्रम्यामपि 'मा श्रिषत्' (खिष्टं सग्नं मा भ्रत्) किन्तु 'उश्रद्धाः' (कामयमानेभ्यः) 'देवेभ्यः' 'रातं' (दत्तम्) 'श्रस्तु' ।

द्दित सायनाचार्य्यविर्चिते माधवीये वेदार्थप्रकाणे कृष्णयजुः-संदिताभाय्ये चतुर्थकाण्डे षष्ठप्रपाठके ऋष्टमाऽनुवाकः ॥•॥ ये वाजिनं पर्पष्यिति एकं य द्विमाद्वः सुर्भिन् निर्देरितं ये चार्वता मारसिम्ह्यामुपासंत ज्ता तेचां म्भिगूर्त्तिनं दम्बतु । यज्ञीष्ठां मारस्यचन्या ज्ञाया या पाचाखि यूषा भासेचनानि । ज्ञास्याप्धिममा चर्षामुद्धाः सूनाः परि सूव्त्यर्थं (१) । निक्रमेणं नि-षद्नं विवर्त्तम् वश्च पश्चीभ्रमवंतः । यश्च प्पा यश्चे घासि ॥ १॥

ज्ञास सर्वा ता ते अपि देवेडंस्तु (१)। मा त्वामि-धीनयिडू मगिन्धु में खा आजेन्यु भि विक्त अप्तिः। दुष्टं बीतम्भिगू में वर्ष रहत्ं तं देवासः प्रति स्भ्यान्य-श्रं (१)। यदश्रा य वासे उपस्तृ यन्त्येधीवासं या हिर्-ग्यान्यसी। सन्दानु मर्वन्तं पद्मीशं प्रिया देवेषा यामयन्ति (१)। यते सादे महसा श्रक्तस्य पार्ष्णिया वा कर्षया॥ २॥

वा तृतादं सुचेव ता इविधे अध्यरेषु सर्वा ता ते ब्रह्मणा सद्यामि()। चतुंस्त्रिश्च हाजिनी देववंन्धी- केंक्योर श्वंस्य स्वधितिः समेति। अच्छिद्रा गाणा व्युनी कर्षात् पर्वध्य स्वधितिः समेति। अच्छिद्रा गाणा व्युनी कर्षात् पर्वध्य स्वधितः समेति। अच्छिद्रा गाणा व्युनी कर्षात् पर्वध्य स्वध्य स्वधितः समेति। अच्छिद्रा गाणा व्युनी विश्वस्ता दा यन्तारी भवतस्त वृतिः। या ते गाणा स्वा व्योमि ता ता पिर्द्धानां प्रजेही- स्युप्ती()। सा त्वा तयत्॥ १॥

प्रिय श्वासाऽप्यन्तं मा खिंतिस्तृनृत श्वा ति-हिपत्ते। मा ते युभूरं विश्वसाति हार्य छिद्रा गाणा-स्थिति ने कः (८)। न वा उने तन् सियसे न रिष्यित देवार इदेषि पृष्टिभिः सुगेभिः इरी ते युद्धा पृषेती असृतामुपास्थाद्दाजी घुरि रासंभस्य (१०)। सु-गर्थं ने। वाजी स्वित्रंयं पुरसः पुचार उत विश्वापुष्टर र्थि। श्रृनागास्वन्तो अदितिः क्रियोतु सुचं नो अश्वी वनतार हविस्नान् (११)॥ ४॥

घासिं। कर्णया। तपत्। रृयिं। नवं च ॥ १॥ इति तैतिरीयसंहितायां चतुर्थकाएडे वष्ठप्रपाठके नवमेऽनुवाकः ॥०॥

श्रम् । य दुमा। उदेनं। श्राश्चः शिर्यानः। प्राचीं। श्रीमूर्तस्य । यदक्रेन्दः। मा नें। मि्षः। ये वृाजिन्ं। नर्व ॥ १ ॥

श्रमंन्(१-१)। मन्।युज्र'(१-१)। प्राचीमनु(१-१)। श्रमं यच्छतु(१-१)। तेषाम्भिगू सिः(१-१)। षट्चंत्वारि १श्रत्*॥ ॥ ४६॥

> समाप्तः षष्ठः प्रपाठकः ॥०॥ ॥०॥ इतिः च्रोम्॥०॥

^{*} प्रथमे ५ । दितीये ६ । हतीये ८ । चतुर्थे ५ । पद्ममे ६ । वर्छ ७ । सप्तमे ५ । चटमे ४ । नवमे ४ । समस्टिः ४६ ॥

श्रुवेतेऽनुवाके पूर्वानुवाकवदश्वस्तां भीयाः के विश्वस्ता छकाः ।
श्रुव नवनेऽविष्ठश श्रुश्वस्तायमञ्जा छच्यने । तत्र प्रथमाख्यसाहः
"से वाजिनं परिप्रश्नान पकं य ईमाइः सुरिभिनिर्देति । चे वार्वता माश्र्मभिन्नासुपामत छता तेषामभिन्नूर्त्ति इत्वतु (१) दिति ।
'ये' (पुरुषाः) 'वाजिनस्' (एतमश्च) 'पकं' (पाकं प्राप्तं) 'परिप्रश्नान्ति' (परित श्रागत्य श्रादरेण प्रश्नान्ति) ; 'ये' 'हें' (येऽष्यन्ये) 'सुरिभिः' (सुगन्धोऽयमश्वः) श्रुसान्तिय्वस्थान्यमाहरेति 'श्राइः' ; 'छता' (श्रूषि च) 'ये च' श्रून्ये 'श्रूवतः' (श्रुश्वस्य सम्बन्धिनी) 'मांसभिन्नास्' 'छपासते' (प्रार्थयन्ते) ; 'तेषां' सर्वेषाम् 'श्रुभिनूर्त्तिः' (सङ्क्ष्यः) 'हत्वतु' (प्राप्नोत्ते), श्रुसाकं श्रीयसे भवत्वित्यर्थः ।

श्रथ दितीयामाइ,—"बन्नीचर्ण माष्ट्रस्पचन्या उखाया या पात्राव्य यूषा श्रावेचनानि । जग्नकापि धाना चरूणामद्वाः स्नाः परि भूषन्यस्म् (र)" इति । मामं पच्यते यस्यामुखायां सा 'मांस्वनी' तस्या 'जस्याय' 'नीचणं' (नितरामीचणम्, श्रावरेण दर्भनं) 'यत्' श्रक्ति, यानि च 'पात्राणि' 'यूष्णो' (रसस्य) 'श्रावेचनानि' (सर्व्यतः वेचकाधारभ्रमानि), 'चर्का' (मांसादीनां') 'श्रपि' 'धाणा' (श्रा-क्सादनपात्राणि), 'जन्नक्यां' (जग्नरचणार्थानि) यानि यन्ति, 'श्रद्धाः' (मांसज्ञेनाद्विनाः), 'स्नाः' (स्विधितिवेतसश्राखाद्याः) याः यन्ति, तानि सर्व्याणि 'श्रयं' 'परि'—भ्रषयन्ति,—श्रयस्य यत् कार्ये तदेव सुर्व्यन्तीत्वर्थः ।

^{* (}मांसख्यकीनां) इति का॰ च॰ पु॰ पाठः।

श्रथ हतीयामाइ,—"निक्रमणं निषदमं विवर्शनं यश पद्मीत्र-सर्वतः। यश पपौ थश वासि अवास सर्वा ता ते श्रिप देवेष्यसु (१)? इति । 'निक्रमण्म' (श्रयस्त पादप्रसेपस्तानं), 'निषदमं' (विवासक् स्तानं) श 'यत्' श्रस्ति; 'यत्' श्रिप 'श्रवतः' (श्रयस्त) 'प्रश्वीतं' (प्रादय-अनस्तानं, पादस्त्रस्त्वा वा) श्रस्ति, 'यत्' श्रिप 'वदकं 'पपौ', 'यश' 'श्रासि' (हणादिकं) 'जवास' (अस्तितवान्), 'ते' (लदीयां) 'सर्वा ता' (तस्त्वें) 'देवेषु' 'श्रिप' 'श्रस्तु' (देवेष्ट्येत्र समर्पितं भवतु)।

चतुर्चीमार,—''मा त्याग्रिक्वंनियहूमगर्क्विमेखा आजन्यभिं विक्र जितः । इष्टं वीतमिभगूनें वषद्क्रतं तं देवायः प्रति रम्भूष्ण्यसम्(*)'' इति । हे श्रम्भ, तां 'धूमगन्धः' (धूमगन्धापादकः) 'श्राग्नः' 'भा' 'ध्वनयित्' (पाकश्रक्ते पोतं मा करोत्त);—काष्टविश्रेष्ण्यस्ते केनचिद्ग्रिना पक्षम् श्रोदनादिकं धूमगन्धे। पेतं भवति, तथा दुष्पाकेन कुष्रकं यथा भवति तथा पच्यते, तदुभयम् मा भ्रदिण्यर्थः । किञ्च, 'आजन्ती' 'खखा' (सम्यक् तप्ता खाखी) 'मा' 'श्रभि' 'विक्र' (श्रतिपाकेनाभिता विक्रं विद्रम्धं मा करोत्त) । त्यं तु 'जित्रः' (श्राधाणयोग्रः, सुगन्धः) भवति श्रेषः । 'इष्टं' (श्राधानक्राविषयं), 'वीतं' (कान्तं रमणीयपाकं) 'श्रभिगूर्तं' (देवयोग्यमिक्ति यजमानेः सङ्क्तियतं), 'वषद्क्रतं' (वषद्कारेण प्रदत्तम्), 'श्रम्वं' देवाः 'प्रति—ररम्पिन्त' (खीकुर्वन्तु) ।

^{* &}quot;पानं ग्रस्दोपेतं" इति सर्व्यच पाठो न सम्बन्।

पश्च पश्चमीमार--''यदशाय वास उपसृष्ण्यधीवासं वा हिरक्षान्यसी। सन्दानमर्वनां पद्मीमं प्रिया देवेच्या यामयिना^(१)" हित। इन्यमानस्य श्रम्यस श्रधसादक्तसुपरिष्टाच किश्चिदकां प्र-वारयिना, तदच वासःश्रम्देनाधीवासश्रम्देनान्यते" 'यत्' 'वासः' श्रमाचें 'खपसृष्णिन' (श्रधः सम्प्रसारयिना), यच 'श्रधिवासम्' खपरि श्राच्छादयिना, यानि चान्यानि हिरप्स्यादीनि 'श्रसी' (श्रमाघें) सम्पादितानि, 'श्रवंकां' (श्रवंताऽत्रस्य) यत् 'सन्दानं' (स्थनसाधनं दाम), यच 'पद्मीमं' (पादबन्धनस्यानगता रक्तः) तानि सर्वादि 'देवेवु' प्रियाणि भ्रत्ना 'श्रा'-'यामयिना' (सर्वतः प्रसारयन्तः)।

क्य पटीमाइ,—यने सादे महसा ग्रुह्ततस पार्श्विया वा क्रिया वा तिताद। सुचेव ता इविषो अध्यरेषु स्वां ता ते ब्रह्मसा स्वद्यामि^(१)" इति । हे अस, तव 'सादे' (गमने) 'ग्रुह्ततस्त्र' (ग्रुकारो ध्वन्यनुकरणं, गौड़स्त्रासस्य त्रीत्रगमने ग्रुकारो जायते, तस्तुकस्त्रां) त्रीत्रगमनाय स्वर्थास्त्रः 'पार्श्विया' (सकीयया पादपृष्ठ-भागेन) इसाधतया 'कन्नया' 'वा' 'तिताद' (यथां चकार)। 'ते' (लदीर्य) 'सर्वा' 'ता' (तस्त्रवें) 'ब्रह्मपा' (मन्त्रेष) 'स्वद्यामि' (जुहामि)। तम दृष्टानाः,—'त्रध्वरेषु' इवि:सम्बन्धीनि तानि सर्वाणि श्वास्यादि-विमेन्नस्पाणि 'सुचेव' (यथा सुचा श्वास्त्रं सुक्रति तदत्)।

सप्तमीमाइ,-"पतुच्चिर्षदाजिना देवबन्धावैद्याद्य स्वधितः

^{* &}quot;वासःशब्देन खधीनासः। शब्देनेचिते" इत्येवं सर्व्वच पाठः। खते-रुनुमिनोमि सर्व्वाच्येवास्तदिधगतानि पुत्तकानि एकादर्शमूककानीति। † खच 'महसा' इत्यस्य यास्त्रा पतितेव बच्चते।

समेति। श्रक्तिः। गाना वयुना क्रकोत पर्व्यदरमृद्युव्या विश्वस् (०)" दिति । 'वाजिनः' (श्रवसाधनस्थ) 'देवस्थाः' (देवप्रियस्), देवायं वध्यमानस्थ) 'श्रवस्थ' सम्बन्धिनीः 'वंकीः' (वक्राक्ति, पार्श्वद्यगतानि श्रस्त्रीनि) एकैकस्मिन् पार्श्वे सप्तद्रश्चेत्ये चतुक्तिं अत्'सङ्काकाः; श्रन्यस्त तु पन्नोः वश्विं अतिरेव । श्रतः सावधाना 'स्वधितिः' श्रश्वं 'समेति' (सङ्गस्क्रतां); यथा श्रस्तिसेशोऽपि इविधि न मिस्नति, तथा वियुन्नश्चेत्यंः । हे अमितारः, 'गाना' (इदयाद्यङ्गानि) 'श्रस्क्रिदाः' 'वयुना' (स्टिइरहितानि प्रज्ञातानि) यथा भवन्ति, तथा 'क्रकोत' (खुदत) । तत्र वायसुपायः,—'पद्य्यदरमृद्युव्य' (तत्प्रवानुक्रमेष तृ देवुश्वमिति क्रथमित श्राता) 'विश्वस्' (विश्वसनं कुदत)।

मप्टमीमाइ,—'एकस्मप्ट्रत्यसा विश्वसा द्वा यन्तारा भवत-स्त्रया श्रतः । या ते गानामान्दत्या क्रणोमि ता ता पिण्डानां प्रजुद्देग्यग्नीं (क)'' इति । 'लप्टुः' (दीप्तिमतः) 'श्रम्यः' क्रत्यपलचित-कासीन 'एकः' 'विश्वसा' (दिंसिता)। तथा 'दा' 'यन्तारा' (विश्वसन-कासी यथा इतस्त्रता न चस्रति, तथा नियामको दो)। श्रत एवान्यन श्रास्तातं,—'श्रिगुस्वापापस्य सभी देवानाः श्रमितारी' इति । दे श्रम, 'ते' (तव) 'गानाणां' (यान्यङ्गानि) 'स्वत्या' (स्वत्यसचिते तन्तत्कासे) 'क्रणोमि' (स्विक् निद्दा), 'पिण्डानां' (मांसपिण्डानां मधे) 'ता' 'ता' (तानि तानि श्रङ्गानि) 'प्रजुद्देगि' 'श्री।' (प्रकर्षेण सुद्देगि)।

नवमीमाइ,—"मा ला तपत् प्रिय श्रात्माऽपियमं मा स्मिधितिसानुव श्रा तिष्टिपन्ते । मा ते स्ट्रभुरविश्वसातिहाय किट्रा गाचाक्यसिना मिद्यु कः (८)" इति । हे चय, 'ग्रियवनं' (प्ररीरं विद्युच्य देवान् गक्कनं) लां 'प्रिय' 'ग्रात्मा' (प्रीतिहेतुर्विग्रहः) 'मा' 'तपत्' (सन्तापं मा कार्षीत्)। तथा 'खिधितः' 'ते' 'तनुवः' (गाचाणि) 'मा' 'तिष्ठिपत्' (मा खापयतु),—किमप्रकुमनवज्ञेष्य सर्वे हिनित्यर्थः। 'ग्रिविश्रद्धाः' (विज्ञयनकौष्णवरहितः, केवखं मांसद्धव्या-युक्तः) 'ग्रितिहाय' (विज्ञयनकौष्णवरहितः, केवखं मांसद्धव्या-युक्तः) 'ग्रितिहाय' (विज्ञयनकौष्णवरहितप्रकारमित्सङ्घ) 'ते' 'गाचाणि' (तवाक्रानि) 'ग्रियना' (ज्ञच्चेण) 'मिष्यु' किट्राणि 'मा' 'कः' (मा करोत्र)।

दम्रनीमाइ,—''न वा खनेतन् विचये न रिव्ययि देवाश ददियि पथितिः सुमेशिः। इरी ते खुद्धा प्रवती म्रश्नतासुपाखादाजी धृदि रासभद्ध(१०)'' इति । म्राक्कानभिद्धानां खौकिकानां दृष्धा लमेतत् प्रत्यचमेव सिचये म्रशिक्षभिद्धियये पः म्राक्कदृष्धा तु 'न वा खनेतन् सिचये' (एतन्परचमेव न भवित), 'न' 'रिव्ययि' (नापि म्रशिक्षिये), किन्तु 'सुनेशिः' 'पथिशिः' (सुनममार्गः) 'देवान्' 'इरेषि' (देवानेव प्राप्नोषि) । तच देवेषु मध्ये दृष्ण्यं प्राप्तयः 'ते' 'इरी' (इरिनामकावयों) रथे खुन्नौ 'म्रश्नतां' (सर्वथा भविव्यतः)। एवं तथा मस्त्रूपं प्राप्तवः 'ते' 'प्रवती' चिचवर्षे प्रयक्तियौ 'खुद्धा' 'म्रश्नतां' (रथे खुन्नौ भविव्यतः)। इदानीं 'रासभव्य' 'धृरि' वर्षमानस्थ (गर्दभवद्वारवादिनः) तव 'वाजी' 'खपाखात्' (वां वोढ़' किन्ति प्रीढ़ायः प्राप्तो भविव्यति)।

त्रश्येकादत्रीमाइ,—"सुनयं ने। वाजी समियं पुश्सः पुचार जत विश्वापुवर रथिं। जनागास्त्रको ऋदितिः क्रणोतु सर्व ने। श्वसो वनतो इविद्यान् (१९) इति । अर्थ 'वाजी' 'नः' (असाक')
'चुनसं' (कस्तासनोसमूरं), 'स्वियं' (कस्तासायसमूरं), 'पुंसः'
'पुनान्' (पुंसस्वस्तासम्प्रमुपान्), 'छत' (श्वपि च) 'विद्यापुवं'
(क्षिं पोषित्)ं 'रिषं' (धनं) 'क्रणोतु' (करेति)। 'श्रदितिः' इयं द्धिः 'नः' (श्रसाकं) 'श्रनागास्वं' (श्रपराधराहियं) करेति। 'इतिप्रान्' (इवि:सक्ष्पेष निष्पक्षः) श्रयम् 'श्रयः' 'नः' (श्रसाकं) 'स्त्र' (वसं) 'वनतां' (सन्पाद्यतु)। तदेवमेतेषु चिषु श्रनुवाकेषु श्रस्कोषप्रतिपादकलेन श्रयसोमीया मन्त्राः पञ्चित्रंत् श्राकाताः, श्रविष्ठास्त पञ्चमकास्त्रे समावास्त्रने। तथा च स्त्रकार श्रास्,—'क्रमेरत्यक्रमीदिखेताः धर्मक्रोम्' इति॥

श्रन विनियोगसंग्रहः,—

पञ्चनिंग्रद्यदकन्दानुवाकेषु निषु श्रुताः । श्रश्वसोमीयमन्त्रासीरिति षष्टः समीरितः ॥

भय मीमांसा, नवमाधायस चतुर्थपादे (२श्रीध॰) चिन्तितम् । न चतुन्तिंत्रदिर्यय निषेधो नियते। न वा । निरा पदवदायः स्थात् नैवकारस्तवतः॥ निधेधः प्राप्तिपूर्वे। प्रापकाऽचानुमीयते । निषेधपापकाभाञ्च चतुन्तिंत्रदिकस्थते॥

श्रम्भोधे चयः सवनीयाः पश्रवः श्रुताः,—'श्रमस्त्रपरे। गोस्त्रगसी प्राजापत्यै' रति। तेव्यसस्य चतुन्तिंशसंकवः, तथा प्र मन्त्रः

पधते,—'चतुक्तिश्रवदाजिने। देवबन्धीवैज्ञीरश्रक स्वधितिः सनेति' इति । वाजी गन्धर्ववाष्ट्रका जातिविश्रेषः । पत्त एवान्यपाचावते,— 'इयो देवानवइद्वाऽसुरान् वाजी गन्ध्वानचो मनुस्थान्' इति । देव-बन्धुः देवानां प्रियः । स्विधितिन्छेदनहेतुः प्रस्त्रमित्वर्थः । एवं यति अप्रिगुप्रैषे विशेषोऽषमाबायते,—'न चतुन्ति प्रवदित त्रुवात् विश्वप्रतिरित्येव नुयात्' इति । चेऽयं 'चतुस्त्रिप्रत्रदाजिनः' इत्या-दिकाचा चरः प्रतिवेधो गिरापद्निवेधविक्तियो न तु विकल्पितः, यथा 'न गिरा गिरेति ब्रूबादैरं छलोद्गेयम्' इत्यच गिरापदनिवेध-एर:सरं इरापदे विदिते सति निविद्धस्त्र नित्यं निष्टत्तिः, तथा चतुः चित्रवान्त्रनिषेधपुरः वर्षे विद्याने विदिते वति निर्द्यं निष्टत्ति-र्निषेधस्थित चेत्। मैवं। 'विद्व'व्यतिरित्येव त्रुयात्' इत्येवकारेण विधि-लप्रत्यच्याधात्, विद्वि'इतिमन्त्रसावचोदकप्राप्तवास्र विधेयः, तस्र चतुक्तिंत्रकान्त्रेष त्रपवादप्रसक्ती " 'न चतुक्तिंत्रत्' इत्यनेन त्रपवादकं मन्त्रं प्रतिविध्य चोदकप्राप्तस्थानपे।दितलेन वयापूर्वमवस्थानमनुस्रत इत्येवमर्थं स्वचित्रमेवकारः प्रयुक्तः। गिरापदबृष्टामास्त विषमः,— श्रप्राप्तलात् इरापदं तत्र विधीयते, तेन च विचितेन पाठप्राप्ते निरा-पदे वाधिते च वाधो 'न गिरा गिरा' इति निषेधेनानुचते । चता बृष्टामी निषेधानुवादः, दार्ष्टामिने विध्यनुवाद इति मद्देवस्यं। नन् 'विधिवाक्यस्यस्य एवकारस्यानुवादले सति 'न चतुस्त्रिः प्रजत्' इत्येतिसिन्निषेधे कत्नवास्थतात्पर्यात् निविद्भस्य नित्यनिवृत्तिसद्व-

^{# &}quot;चतुर्विम्रकालोब" इति सर्व्वत्र पाठो न सम्यव्।

^{† &}quot;चोदकप्राप्तत्वेन" इति का॰ ४॰ पु॰ पाठः।

ख खात्। मैवं। प्रापकस्थापि सद्भावेन निषेधप्राप्तिभ्यां चतुन्तिंश्रनान्त्रस्थ विकस्पितवात्।

त्रघोच्यते—'चतुस्त्रिष्ट्रग्रदाजिन द्रत्ययं मन्त्रः वेवसं खरूपेण पठितः, न लखाभ्रिगुप्रैषवत् प्रापकं किञ्चिद्स्ति' इति, तस्र प्रापकवचनस्य कस्पनीयलात् , ऋन्यया प्रसत्त्वभावेन प्रतिवेधानुपपत्तेः। तसात् प्रसञ्जनेने।पजीयोनानुमितविधिना प्रत्यचनिषधेन च समान-बसतया 'चतुक्तिप्रवत्' इत्ययं मन्त्रोऽयखाभिगुप्रैषे विकरस्यते॥

> वैदार्थस्य प्रकाभेन तमा हार्दे निवारयन्। पुमर्थां यतुरे। देवादिवातीर्थमहेश्वरः॥

द्रति सायनाचार्यविरचिते माधवीये वेदार्थप्रकान्ने हाणायजु:-संचिताभाष्ये चतुर्घकाण्डे षष्ठप्रपाठके नवसे।ऽनुवाकः ॥ •॥

इति श्रीमद्राजाधिराजपरमेश्वरवैदिकमार्गप्रवर्श्वकश्रीवीरवृद्ध-भूपालसाम्राज्यधुरन्धरेण सायनाचार्येण विरचिते माधवीये वेदार्थ-प्रकाजनामकतिस्तिरीययजुःसंदिताभाय्ये चतुर्थकाच्छे षष्ठः प्रपाठकः सम्पूर्णः ॥•॥

॥•॥ श्रीगणेश्वाय नमः ॥०॥

श्रव तैतिरीयसंहिताभाष्टे

चतुर्थकाण्डे सप्तमप्रपाठके प्रथमेऽनुवाकः ।

श्रमीविष्यू स्त्रीषंस्मा वंद्वन्तु वां गिरं शुकी-वीजेंभिरागंतं()। वाज्य मे प्रस्वश्रमे प्रयंतिष्ठ मे प्रसितिष्ठ मे धीतिर्श्व मे क्रतुंख मे खरेख मे स्नोकंख मे श्रावर्श्व मे श्रुतिष्ठ में ज्योतिश्व मे सुवंश्व मे प्राणर्थ मेऽपानः॥१॥

च में ब्यानब नेऽसुंख ने चित्तचे म माधीतच ने वाक् चं में मनब में चक्कुंब में श्रीचच में दर्शख में बर्लच्च म बार्जब में सईख म आर्युख ने जरा चं म श्रातमा चं ने तुनूखं में, शर्म च में वर्म च मेऽक्लानि च मेऽस्थानि च में पर्ह्ण च में शरीराणि च में श्री। ॥ २॥

श्रुपानः। तुनूर्यं मे । श्रष्टादंश च ॥ १ ॥

इति तैत्तिरीयसंहितायां चतुर्थकार्यं सप्तमप्रपाठके प्रथमे।ऽनुवाकः॥०॥ यस निम्नसितं वेदा यो वेदेश्वी.सिसं जगत्। निर्माने तमदं वन्दे विद्यातीर्थमदेश्वरम् ॥ परिषेश्वनमुख्यास्तु मंस्काराः षष्ट देशिताः। वेद्याधीरादयः श्रिष्टाः प्रोत्यन्तेऽस्मिन्तु सप्तने॥

कल्यः, 'श्रग्नाविष्णू संकाषचेति चतुर्ग्यद्दीतः इता श्रीदुम्बरोध्र स्वृषं व्यायाममानां म्ट्राप्रदिग्धां पञ्चादाचेषनवतीं घृतस्य पूरिधला वाजस से प्रस्तव्य से इति सन्ततां वसेर्धारां जुडेात्यामक्त्रसमा-पनात्' इति। श्रन हि एकादश्रभिरनुवाकीर्मकाः । समाप्यते । चतुर्ग्यदीत-डेासमक्त्रपाठस्त,—''श्रग्नाविष्णू संनेषसेमा बर्द्धम् वां गिरः । सुसैर्वाचेभिरागतम्^(१)" इति । डे 'श्रग्नाविष्णू', युवां 'संनेषसा' (समानप्रीती भवतं) । 'वां' (युवयोः) 'इमा' 'गिरः' (स्तिक्पा वाषः) 'बर्द्धन्तु' (टद्धिं प्राप्नवन्तु) । युवामपि 'सुसैः' (धनैः) 'वाचेभिः' (श्रश्नेस युक्ता) 'श्रामतं' (इहागक्क्तम्) ।

श्रीकादशानुवाकात्मका मन्त्र उच्यते। श्रन्वाकभेदस्वयश्रसंयुक्ते कर्माण प्रयञ्जनकिवानुष्ठेयलाद्पपद्यते। तत्र प्रधमानुवाकपाठस्त,— "वाजस मे प्रस्वस्थ मे प्रयतिश्व मे प्रसितिश्व मे धीतिश्व मे क्रतुस्य मे खरस मे स्रोकस मे स्रावस मे स्रृतिश्व मे च्योतिस मे सुवस्य मे प्राणस मेऽपानस मे व्यानस मेऽस्य मे वित्तस म श्राधीतस्व मे वाक् स मे मनस्य मे चनुस मे श्रोचस्व मे दनस्व मे बलस्व म

^{# &#}x27;माची' इति सर्वेच पाठो न सम्यक्।

^{† &#}x27;मन्त्रसमाप्यते' इति सब्बेच पाठा न समीचीनः।

त्रोजय ने सहस्र म त्रायुख ने जरा च म त्रात्मा च ने तनृष ने क्रम च ने वर्म च नेऽङ्गानि च नेऽखानि च ने पद्ध्वि च ने बरीराषि च मे(१)" इति । 'वाजः' ऋषं । 'च'-ऋदे। वच्छमाष-द्रयापेश्वया समुख्यार्थः। 'मे' (मम) कस्पतामितिपदं दक्रमानुवाके वच्यमार्षं सर्वेत्रानुषच्यते, सम्पद्यतामित्यर्थः । 'प्रसवः' ऋजस्याभ्यन्-श्वानं । 'प्रयतिः' इइद्धिः । 'प्रसितिः' बन्धनम् (श्वश्वविषयौत्सुकां) । 'धीतिः' श्रवधारणं। 'क्रतः' श्रवहेतुर्यज्ञः। 'खरः' मकागत खदात्रादिः । 'म्रोकः' सुतिः । 'त्रावः' त्राविद्यत्वसामर्थे । 'त्रुतिः' अवकसामर्थं । 'च्योतिः' प्रकामः । 'सुवः' खर्गः । 'प्राकापानवानाः वायुष्टित्तिविष्टेषाः । 'श्रयुः' तदृत्तिमान् वायुः ।'वित्तं' मनाजन्यं ज्ञानं । 'त्राधीतं' तेन ज्ञानेन सर्वदा विषयीकतं द्रयं । वागादय-खलारः प्रसिद्धाः। 'द्जः' ज्ञानेन्द्रियगतं कौज्ञलं । 'बलं' कर्सेन्द्रिय− गतं सामर्थे । 'म्रोजः' बखद्देतुरष्टमधातुः । 'सदः' वैरिविषयमभि-भविद्यतं । 'त्रायुः' प्रसिद्धं । 'जरा' त्रायुषो बलीपसितादिपर्यमालं । 'त्रात्मा' बास्तप्रसिद्धः परमात्मा । 'तनूः' बोभनसित्रवेत्रं वपुः । 'बर्म' सुखं। 'वर्म' बरौररक्षकं कवचादि। 'श्रङ्गानि' सम्पूर्णा श्रवयवा: । 'श्रखानि' यथाखानं खितान्यखीनि । 'पर्श्वि श्रृङ्गस्थादिपर्वाणि । 'ग्ररीराणि' पूर्वमनुकाः ग्ररीरावयवाः॥

द्दति सायनाचार्य्यविर्विते माधवीये वेदार्थप्रकाग्ने क्वणायजु:-संहिताभाये चतुर्थकाण्डे सप्तमप्रपाठके प्रथमाऽनुवाकः ॥ •॥ ज्यैषं च म श्राधिपत्य च में मन्युर्थ में भामेख में ऽमेख मेऽक्षेत्र में जेमा च में मिह्मा च में विर्मा च में प्रथिमा च में वृष्णा च में द्राधुया च में वृद्धच में वृद्धिय में सत्य च में श्रुडा च में जगंड ॥ १॥

मे धर्माच्च मे वर्णय मे तिविधिय मे क्रीडा चं मे मेर्द्य मे जातच्चं मे जिन्छामाणच्च मे मूक्तच्चं मे सुक्रुकचं मे विक्तच्चं मे वेद्यंच्च मे भूतच्चं मे भविष्यचं मे सुगच्चं मे सुपर्यंच्च म ऋडच्चं म ऋडिं, च मे क्कृक्तच्चं मे क्कृक्तिय मे मृतिर्यं मे सुमृतिर्यं मे ॥ २॥

जगुव। ऋर्डिः। चतुर्दश च॥२॥

दति तैतिरीयसंहितायां चतुर्थकाएडे सप्तमप्रपाठके दितीयोऽनुवाकः॥ ०॥

श्रय दितीयमाइ,—"जैंड्यम्च म श्राधिपत्यम्च में मन्युम में भामम्च में अभ्य में जेमा च में महिमा च में विरमा च में प्रथिमा च में वर्षाा च में द्राघ्या च में द्रम्म में प्रथिमा च में वर्षाा च में द्राघ्या च में द्रम्म में प्रथिमा च में जगच में धनम्च में वश्रम में विषय में की जातम्च में जनिय्यमाणम्च में सक्तम्च में सुद्या च में वेद्यम्च में भ्रतम्च में भ्रतिस्थ में विलयम्च में सुक्रम्म में प्रकृतम्च में विलयम्च में सुक्रम्म में विलयम्म में विलयम्च में सुक्रम्म में विलयम्च में सुक्रम्म में विलयम्म में विलयम्म में सुक्रम्म में विलयम्म में विलयम्म में सुक्रम्म सुक्रम्म में विलयम्म में सुक्रम्म में विलयम्म में सुक्रम्म सुक्रम्म में विलयम्म में सुक्रम्म में विलयम्म में सुक्रम्म में विलयम्म में सुक्रम्म सुक्रम सुक्रम

स्पच्छ म स्टूड म स्टिइस में कृप्तस ने कृप्तिस ने मतिस मे सुमतिस मे" इति । 'ब्येक्सं' प्रबस्तमन्तं । 'ब्राधिपत्यं' स्नामिनं । 'मन्यु-भाम'- अन्दी कोधावान्तरविश्वेषवाचिनौ,-एका मानसः, त्रपरा चमादिलिङ्गजन्या वाद्यः। 'त्रमः' त्रप्रमेयलं, विरोधिभिरियत्तया परिच्छे मुमन्नकालं । 'त्रकाः' जैत्यमाधुर्ये पितसुदकं । 'नेमा' जय-सामर्थे । 'महिमा' महत्त्वं, जयसम्पादितधनादिसम्पत्तिः । 'वरिमा' वरणीयतं, पूत्र्यतं । 'प्रथिमा' ग्टइचेचादिविस्तारः । 'वर्षा' पुत्र-पौचादिवरीराणि। 'द्राचुया' पुनपौचादिविषयं। दीर्घलं, त्रविक्किया यन्तितिरत्यर्थः । 'रुद्धं' प्रश्वतमस्तं धनस्य । 'रुद्धिः' विद्यादिगुपै-रत्कर्पः। 'सत्यं' चचार्चभावषां। 'अद्भा' परस्रोकाऽस्तीति बुद्धिः। 'जगत्' जङ्गमाजङ्गमात्मकं । 'धनं' खर्णादि । 'वश्रः' सर्वेखाधीनत्वं । 'लिषिः' प्ररीरकान्तिः । 'क्रीड़ा' प्रचयूतादिः । 'मादः' तव्यका इर्ष: । 'जातं' पूर्वेसिद्धमपत्यं । 'जनिब्यमाणं' भविष्यदपत्यं । 'स्रुक्रम्' चक्यमूरः । 'सुरुतं' तज्जन्यमपूर्वे । 'वित्तं' पूर्वल्र्यं । 'वेद्यं' इत: परं स्थयं द्रयजातं । 'भ्रतं' पूर्वसिद्धं चेचादि । 'भविष्यत्' सम्पत्यभानं। 'सुगं' सुष्ठु गन्तर्थं, बन्धुजनयुक्तग्रामान्तरादि । 'सुपर्थं' चौरादिरहिता 'स्द्रुं' बर्द्धितं धनादिकं। 'स्ट्रिः' त्रनुष्टितकर्मफलं। 'कृप्तं' समधें, खकार्यचमं द्रयं । 'कृप्तिः' खकीयसामर्थे । 'मितः' पदार्थमाचनिद्ययः । 'सुमितः' दुर्घटराजकार्यनिद्ययः ॥

दित गावनाचार्थ्यविरचिते माध्यीये वेदार्थप्रकाने र प्रवयनुः-यंदिनाभाय्ये चतुर्थकाण्डे यप्तमप्रपाठके दितीयोऽनुवाकः ॥ • ॥ शक्षं में मयस ने प्रियक्षं मेऽनुकामंस्र में कामंत्र में सीमन्मस्रं में भद्रक्षं में श्रेयंस्र में वस्यंस्र में यश्रंस्र में भगंत्र में द्रविंगक्त में यन्ता चं में धत्ती चं में श्रेमंस्र में धृतिस्र में विश्वंक्त ॥ १॥

मे महंश्व में संविच्च में जाचंच्च में स्थ्य में प्रस्थं में सीरंच्च में ज्यर्थ म ऋतच्च में उन्दर्तच्च में उग्रह्मच्च में उनीमयच में जीवातृंश्व में दीघीयुत्वच्च में उनिम्चच्च में उभयच्च में सुगच्च में श्रयंमं, च में सूषा चं में सुदिनंच्य में ॥ २॥

विश्वच । शर्यनम् । श्रृष्टी च ॥ ३ ॥

इति तैतिर्पेयसंहितायां चतुर्यकार्यं सप्तमप्रपाठके तृतीयाऽनुवाकः ॥०॥

ख्तीयमाइ,—"प्रम्न में मयस में प्रियम्न में अनुकामस में कामस में सीमनमस में भद्रम में श्रेयस में वस्त्रम में याम में भगम में द्रविणम में यन्ता च में धर्मा च में जेमस में ध्रिय में विश्व में महस्र में संविच में ज्ञानम में सूख में प्रसूच में सीरम में जयस म च्याम में उत्तरम में उत्तरम में अवस्थ में प्रमामयच में जीवातुष में दीर्घायुक्त में उन्हामनम में अथस में सुगन में प्रयनम

मे स्रवाच मे सुदिनश्च मे" इति । 'त्रं'-त्रम्द ऐहिकसुखवाची । 'मयः'-म्रन्द म्नामुन्निकसुखवाची। 'प्रियं' प्रीतिकारणं वस्तु। 'त्रनुकामः' त्रनुकूललनिमित्तेन काम्यमानः पदार्थः । एतद्भयम् ऐहिकमेव तारतम्थे।पेतं । 'कामः' त्रामुचिकः खर्गादः। 'सौमनसः' मनःखास्त्राकरे। बन्धुवर्गः । 'भद्रं' कस्त्राणं, इह लोके रमणीयं। 'श्रेयः' परलोकद्दितं । 'वस्रः' निवासद्देतुर्गवादिः । 'यत्रः' कीर्त्तिः । 'भगः' सौभाग्यं। 'द्रविणं' धनं। 'यन्ता' नियामक त्राचार्यादिः। 'धर्मा' पेषकः पित्रादिः ! 'चेमः' विद्यमानधनस्य रचणप्रकिः । 'धृतिः' धैर्यम् , त्रापद्यपि निञ्चललं । 'विश्वं' सर्वजनानुकूट्यं । 'मद्यः' पूजा। 'सम्बित्' वेदशास्त्रादिविज्ञानं। 'ज्ञानं' ज्ञापयिद्वलसामर्थे। 'स्रः' पुचादिप्रेरणसामर्थं । 'प्रस्रः' श्रत्यादिप्रेरणसामर्थं । 'सीरं' साङ्गसादिक्वविगाधनसम्पन्तिः। 'सयः' तत्प्रतिबन्धनिष्टन्तिः। 'स्रतं' यज्ञादिकम। 'ऋतं' तत्फलं। 'श्रयक्षं' राजयक्षादिप्रश्वस्याधिराहित्यं। 'त्रनामयत्' व्यरादिश्विराव्याध्याद्यस्यवाधिराद्वियं । 'जीवातुः' जीवनकारणं व्याधिपरिचारार्थमौषधं। 'दीर्घायुनं' ऋपस्रत्युरास्त्यं। 'त्रनमित्रं' वैरिराहित्यं । 'त्रभयं' भवराहित्यं । 'सुगं' श्रोभनगमनं, सर्वेरङ्गीक्रताचरणमित्वर्थः। 'प्रयनं' प्रय्योपधानादिसन्यन्तिः। 'स्रवा' द्वानसन्धावन्दनादियुक्तः घोभनः प्रातःकाखः । 'सुदिनं' यज्ञदाना-थ्ययनादियुकं कत्स्रञ्च दिनम्॥

द्रति सायगाचार्य्यविर्चिते माधवीये वेदार्थप्रकाने क्रम्लयजुः-संदिताभाष्ये चतुर्थकाण्डे सप्तमप्रपाठके हतीयोऽनुवाकः ॥०॥ जर्भ च मे ह्रान्टती च मे पर्यथ मे रसंय मे घृतची मे मधुं च मे सिर्धिय मे सपीतिय मे क्षियं मे रिष्टिय मे जैवेच्च म चै। द्विच्च मे र्यियं मे रायंथ मे पृष्टची मे पृष्टिय मे विभु चै॥ १॥

मे प्रभु चं मे बहु चं मे भूयंश्व मे पूर्णचं मे पूर्ण-तरच्च मे हित्य मे क्र्यंवास्त्र मेऽसंच्च मेऽस्रुंच मे ब्रीइयंश्व मे यवाश्व मे माषाश्व मे तिलाश्व मे मुद्रार्थ मे खुल्बास मे गोधूमास मे मुसुराः, च मे प्रियक्तंवस्त्र मेऽखंवस्त्र मे स्थामाकास मे नीवारास्त्र मे॥ ॥ २॥

विभु च । मुसुराः । चतुर्दश्च च ॥ ४ ॥

इति तैत्तिरीयसंहितायां चतुर्थकाएडे सप्तमप्रपाठके चतुर्थोऽनुवाकः ॥ • ॥

चतुर्थमाइ,—"जर्क् च मे स्नृता च मे पयस मे रमस मे घृतस में मधु च में सिध्य में सपीतिस में कृषिस में दृष्टिस में जैचस म चै। द्विस में रियस में रायस में पृष्ट में पृष्टिस में विश्व च में प्रश्व च में बड़ च में भ्रयस में पूर्णस में पूर्णतरस में चितिस में कृयवास में अस में अंजुच में बीह्यस में यवास में माषास में तिलास में मुद्रास में खन्नास में गोधूमास में मसुराख मे प्रियक्नवस मेऽखवस मे स्थामाकास मे नीवारास मे" इति । 'जर्क्' श्रम्नसामान्यं । 'स्नृता' प्रियोक्तिः । पयःप्रस्थतयः श्रम्भविज्ञेषाः । 'पयः' श्रीरं । 'रबः' तत्रत्यं बारं । घृतमधुनी प्रसिद्धे । 'सम्बिः' बन्धुभिः सद भोजनमित्वर्थः । तथा 'सपीतिः' बद्पानं। कविदृष्टी ऋक्षदेतुलेन प्रसिद्धे। 'जैवं' जयभीसं सुचेच-मित्यर्थः । 'नै।द्विषं' उद्मिदां तदगुल्यादीनासुत्पत्तिः । 'रयिः' सुवर्षे । 'रायः' मणिमुकादिः । 'पृष्टं' पूर्वेकिमेव सुवर्णमितसस्द्रह्नं । 'पृष्टिः' बरीरपोषः। विभादयोः चित्वना धान्यविषया उत्तरोत्तरा-भिष्टद्भयः सप्तापि तारतस्येन द्रष्टयाः; न केवसं प्रदृद्धान्येव भान्यानि किन्तु ऋस्पान्यपीत्युच्यते । 'क्रूयवाः' कुस्सितयवाः । 'चन्नं' प्रसिद्धं । 'चनुत्' चन्नसाध्यः चुत्परिदारः । त्रीदियदमाव-तिलसुद्गाः प्रसिद्धाः । 'खन्ताः' सुद्गेभ्योऽपि स्त्रूस्वीजाः । 'गोधूमाः' प्रसिद्धाः । 'मसुराः' सुद्गवत्स्वपद्देतवः । 'प्रियङ्गवः' प्रसिद्धाः । 'ब्रष्यः' स्रकात्राखयः । 'स्नामाकाः' ग्राम्यधान्यवित्रेषाः । 'नीवाराः' चारखाः।

र्ति सायनाचार्य्यविरचिते माधवीये वेदार्घप्रकामे क्रण्ययजुः-यंचिताभाष्ये चतुर्घकाष्ट्रे सप्तमप्रपाठके चतुर्घोऽनुवाकः ॥ •॥

 ^{&#}x27;हत्युचनो' इति चादर्भपुक्तकपाठः ।
 † 'प्रसिद्धः' इति सर्व्यच् पाठो न सम्यक् ।

अक्षा च में मृत्तिका च में गिर्यंश्व में पर्वताश्व में सिर्वताश्व में बनुस्पत्यश्व में हिर्ययश्च में र्यंश्व में सीसंच में चपुंश्व में क्यामच्च में लोडच्च में रिप्तश्च में आपश्च में वीर्वश्च में श्वाचंध्यश्च में क्षष्टप्रचच्चे ॥१॥ में रक्षष्टप्रचच्चं में ग्राम्यार्थ में प्रश्वं आर्ययार्थं युत्तेन कल्पनां वित्तच्चं में वित्तिश्च में भूतच्चं में सृतिश्च में वसुं च में वसुतिश्व में क्षे च में क्षित्रश्च में र्यंश्व में एमंश्व म इतिश्व में गतिश्व में ॥२॥

कुष्टुपुच्चच । भुष्टाचेत्वारिःशव ॥ ५ ॥

द्ति तैतिरीयसंदितायां चतुर्घकार्यं सप्तमप्रपाठके पच्चमेऽनुवाकः ॥०॥

श्रय पश्चममाइ,—''श्रमा च ने म्हित्तका च ने गिरयस ने पर्वतास ने चिकतास ने वनस्यतयस ने दिरस्यस नेऽयस ने बीसस ने जपुत्र ने म्हामस ने लोइस नेऽग्रिस म श्रापस ने वीद्धस म श्रोपधस ने छहपच्यस ने श्रक्तहपच्यस ने ग्राम्यास ने प्रमत श्रारस्थास यहान कल्पनां वित्तस ने वित्तिस ने भ्रतस ने भ्रतिस ने वस् च ने वस्तिस ने कर्म च ने प्रमिस नेऽर्थस म एमस म दितस ने गतिस ने" दित। 'श्रमाद्यः' प्रसिद्धाः। 'म्हामं' हज्यायसं। 'खोइं' कांस्वतासादि। 'श्रम्यादयः' प्रसिद्धाः। ग्राम्यारस्थपत्रवा

'बज्ञेन' निमित्तभूतेन 'कर्चनां' (समर्था भवन्तु)। पूर्वं सर्थं 'वित्तं'। 'वित्तिः' भाविलाभः। 'भूतम्' ऐसर्थे।पेतं पुचादिकं। 'भूतिः' खकीयम् ऐसर्थादिकं। 'वसु' निवाससाधनं गवादिकं। 'वसितः' निवासाधारे। ग्रद्धादिः। 'कर्म' श्रिप्रद्धाचादि*। 'श्रक्तः' तद्नुष्ठानसामर्थं। 'श्रर्थः' प्रयोजनविश्वेषः। 'एमः' एत्यं प्राप्त्यं सुसं । 'इतिः' श्रथनं रुष्टप्राष्ट्रापायः। 'गितः' रुष्ट्रप्राप्तिः॥

द्रति सायनाचार्य्यविर्विते माधवीये वेदार्थप्रकात्रे कृष्णयजु:-संदिताभाष्ये चतुर्थकाण्डे सप्तमप्रपाठके पञ्चमोऽनुवाकः ॥०॥

श्रुविश्वं म इन्द्रश्व में से। मंश्व मृ इन्द्रंश्व में सिव्ता च मृ इन्द्रंश्व में सर्राखती च मृ इन्द्रंश्व में पूषा च मृ इन्द्रंश्व में हह्त्यतिश्व मृ इन्द्रंश्व में मि्चर्य मृ इन्द्रंश्व में वर्षण्य मृ इन्द्रंश्व में त्वष्टी च॥१॥

म इन्द्रेश्व मे धाता च म इन्द्रेश्व मे विष्णुंश्व म इन्द्रेश्व मेऽश्विनी च म इन्द्रेश्व मे मुहतंश्व म इन्द्रेश्व मे विश्वे च मे देवा इन्द्रेश्व मे पृथिवी च म इन्द्रेश्व मेऽन्तरिश्चच म इन्द्रेश्व मे बौर्श्व मे, इन्द्रेश्व मे दिश्रेश्व

 ^{&#}x27;चिषिद्वाचादिः' इत्यादभ्रीपुक्तकपाठः ।

[†] सुखमिति ४० पू॰ पाठः। सुख्यमिति चादर्भपुक्तकपाठः।

मु इन्द्रंश्व मे मूर्डा च मु इन्द्रंश्व मे प्रजापंतिश्व मृ इन्द्रंश्व मे ॥२॥

त्वष्टी च । चौर्य मे । एकंवि रशतिय ॥ ६ ॥

इति तैत्तिरीयसंहितायां चतुर्थकाएडे सप्तमप्रपाठके षष्ठोऽनुवाकः॥ ०॥

त्रथ वहानुवाकमाइ,—"त्रशिव म इन्ह्य में से समय म इन्ह्य में सरिता च म इन्ह्य में सरखती च म इन्ह्य में पूरा च म इन्ह्य में हहस्पतिय म इन्ह्य में मिनय म इन्ह्य में विष्णुय म इन्ह्य में तहा च म इन्ह्य में धाता च म इन्ह्य में विष्णुय म इन्ह्य में शिवा च म इन्ह्य में मस्तय म इन्ह्य में विश्व च में देवा इन्ह्य में पृथिवी च म इन्ह्य में अन्तरिच्य म इन्ह्य में शौय म इन्ह्य में दिश्य म इन्ह्य में मूई। च म इन्ह्य में गजापतिय म इन्ह्य में" इति। अन्यादयः प्रसिद्धा देवताः। तै: सर्वे: सद्द समभागोपेतलादिन्द एक कथा सद्द प्यते। दिक् अन्यताभिप्रायेण प्रथक्तिर्दिष्टा॥

द्दति सायनाचार्य्यविरचिते माधवीये वेदार्घप्रकाणे कृष्णयणुः-संहिताभाये चतुर्थकाण्डे सप्तमप्रपाठके षष्ठोऽनुवाकः ॥०॥

भारमुखं ने रुक्तियु नेऽदीभ्युय नेऽधिपतिय म उपारश्चर्य मेऽन्तर्यामस्य म ऐन्द्रवायवर्श्व मे मैचावर्णस्य म चात्रिनर्य मे प्रतिप्रस्थानं य ने गुक्रयं ने मुन्धी चं म शाग्रयुणर्श्व मे वैश्वदृवश्व मे भुवर्श्व मे वैश्वानुर्श्व म ऋतुग्रहार्थ ॥ १ ॥

मे अतियाद्यां स रेन्द्राग्नर्थ मे वैश्वदेवर्थ मे महत्वतीयाञ्च मे माहेन्द्रश्चे म श्रादित्यर्श्च मे साविषश्चे मे सारस्वतर्य ने पौष्णर्य ने पालीवृतर्य ने हारि-योजनर्घ मे ॥ २॥

कृतुगृहाञ्च । चतुंस्त्रिःश्यवं ॥ ७ ॥

इति तैत्तिरीयसंदितायां चतुर्यकार्यं सप्तमप्रपाठके सप्तमाऽन्वाकः॥ ०॥

त्रय सप्तमीमाइ,—"त्रष्ट्रग्रुख मे रिकास मेऽदाश्यस मेऽधि-पतिस्र म खपाश्चास्य में उन्नर्यामस्य म ऐन्द्रवायवस्य में मैनावर्णस्य म श्रासिनस मे प्रतिप्रखानस मे ग्रुकस मे मन्थी च म श्राययणस मे वैसदेवस मे भ्वस मे वैसानरस म ऋतुग्रहास मेऽतिगासास म ऐन्द्राग्रस मे वैश्वदेवस मे महत्वतीयास मे माहेन्द्रस मे श्रादित्यय ने माविषय ने सारखतय ने पौष्णय ने पानीवतय मे हारियोजनस मे" इति । श्रंशादयः वामग्रहविश्रेषाः वामग्रहणे प्रसिद्धाः । त्रदाभ्याख्यस्वैव प्रदेश प्रदादर्भगात् यद्वामाणलदशौ पृथक्कृत्य रिमाभन्देन निर्दिश्वते, रस्मीनान्तु तद्भुदणसाधनलात् । तथा च तद्भुदणसन्त्रः पद्यते , —'ग्रुकं ते ग्रुकेण ग्रहाम्यक्को कृपेण सूर्यच्य रिमाभः' इति । त्रिधिपतिभन्देन दिधयहा विविचितः, तस्य च च्येष्ठलादाधिपत्यं । त्रत एव त्रूयते, —'च्येष्ठो वा एव ग्रहाणाम्' इति । प्रतिप्रखानभन्देन दिदेवत्यग्रहस्रहभावी सम्बन्धी प्रतिनिधि—भावी प्राच्चो विविचितः । भुवाख्यस्यैव ग्रहस्रावनयनद्भायां विश्वानर—स्वत्रमातः, विविचितः । भुवाख्यस्यैव ग्रहस्रावनयनद्भायां विश्वानर—स्वत्रमातः, व्यत्यस्त्रो विश्वानरम् सारस्वतग्रहाऽभिषेचनीयाख्यविक्रतौ द्रष्ट्यः, —'सारस्वतं ग्रहं ग्रह्माति' इति तत्राख्यानात् । एवं पूर्णाऽपि विक्रतिगामी द्रष्ट्यः ॥

द्रति सायमाचार्थ्यविर्षिते माधवीये बेदार्थप्रकाणे कृष्णयजुः-संहिताभाय्ये चतुर्थकाण्डे सप्तमप्रपाठके सप्तमीऽनुवाकः॥०॥

इधार्य मे बृहिं ये मे वेदिय मे धिष्णियाय मे सुचय मे चम्सार्य मे यावाणय मे खर्वय म उपर्वाय मेऽध्यवंगे च मे द्रोणक खू गर्य मे वाय्यां नि

 ^{&#}x27;प्रकान्ते' इति सर्व्यत्र पाठो न सम्यक्।

च ने पृत्धेचं म चाधवनीयंच म चामोधच मे इविद्यानेच मे युद्दार्यं, मे सद्घ ने पुरोडामाय मे पचतार्यं मेऽवस्वयं ने खगाकार्यं मे ॥१॥ युद्दाय। बेहिंग च॥८॥

इति तैतिरीयसंहितायां चतुर्थकाएडे सप्तमप्रपाठके ष्रष्टमाऽनुवाकः ॥ *॥

त्रवाष्ट्रममाइ,—''इभास ने वर्षिय ने विदिश्व ने धिष्णियाय ने खुष्य ने चमसाय ने गावाण्य ने खरवय म उपरवाय ने त्रिधववणे च ने द्रोणकलक्षय ने वायव्यानि च ने पूतस्य म प्राधवनीयय म त्राग्नीभ्य ने इविधान्य ने स्ट्राय ने बद्य ने पुराजाक्षय ने पचताय नेऽवस्थ्यय ने खगाकारय ने" इति। इभादीनि यज्ञाङ्गानि द्रव्याणि यज्ञप्रकरणे प्रसिद्धानि। 'स्ट्राः' पत्नीत्राखादयः। 'पचताः' क्षानिचादयः। 'खगाकारः' ज्ञंयुवाकः, तेन इ यथाखं देवतानां इविर्णमनं क्रियते॥

द्रित सायनाचार्य्यविरचिते माधवीये वेदार्थप्रकाचे क्रव्यव्यजु:-र्यदिताभाष्ये चतुर्थकाष्डे सप्तमप्रपाठके ऋष्टमाऽनुवाकः ॥०॥ श्राश्चं ने घूर्मश्च में द्र्यांश्च ने प्राण्यं ने-ऽश्वमें धर्ष ने प्रविवो च ने दितिस्य में दितिस्य में चौर्य ने शर्कारीर्क्षुलया दिश्च ने युश्चेन कल्पन्ता-स्व च ने साम च ने स्ते। मंश्च ने युश्चे ने द्रोष्टा, चं में तपंच म श्रुष्यं ने वृतच्चं ने देरे राच्ये। वृंद्या संस्ट्रयन्तरे च ने युश्चेन कल्पेताम्॥१॥

दीसा। ऋषादंश च ॥ ८॥

इति तैत्तिरीयसंहितायां चतुर्थकार्ण्डे सप्तमप्रवाठके नवमाऽनुवाकः ॥ *॥

नवमनाइ,—"श्रीय ने घर्मय में ऽक्य ने स्वर्थय ने प्राणय में ऽयमेध्य ने प्रथित च ने दितिय में ऽदितिय ने धाय ने प्रकारीर जुल्लयो दिश्य ने यश्चेन कल्पनाम् क् च ने साम च ने खोमय ने यज्ञ्य ने दीचा च ने तपय ने च्हाय ने वत्य ने श्रीमय ने यज्ञ्य ने दीचा च ने तपय ने च्हाय ने वत्य ने श्रीमय ने यज्ञ्य ने दीचा च ने तपय ने च्हाय कल्पेताम्" इति । श्रीमयीयमानः । घर्मः प्रवर्थः । 'इन्द्रायार्कतते पुरोडाश्रम्' इति विहिता यागोऽर्कः । 'सीर्यं चर्म्' इति विहिता यागः सीर्यः । 'प्राणाय खाद्या' इति विहिता देशमः प्राणः । श्रम्यमेधः प्रसिद्धः । पृथिव्यादयो देवताविश्रेषाः । श्रक्तरीः श्रक्यः । श्रम्यमेधः प्रसिद्धः । पृथिव्यादयो देवताविश्रेषाः । श्रक्तरीः श्रक्यः । श्रम्यमेधः प्रसिद्धः । विदिशोऽपि । ताः सर्वाः 'मे' (मदीयेम) 'यश्चेन' 'कल्पन्तां' (खखव्यापारसमर्थाः भवन्तु) । च्यादयो मन्त्रविश्रेषाः । स्रोमः सामाद्यतिक्षं सोचं। दीचा यजमानसंस्कारः। तपः पापक्यार्थम् सनजनादि। ऋतुर्वज्ञाद्गश्चतः कासः। जतम् एकसनादि। सहोराच्योः सम्बन्धिनी या दृष्टिः, तथा मदीयं सद्यं कस्पता-मितिबेषः। इन्द्रयन्तरे सामनी, ते च मदीयेन 'यज्ञेन' 'कस्पेतां' (साध्य सत्रदारसम्प्रें भवेताम्)॥

द्ति सायनाचार्थिविर्विते माधवीये वेदार्थप्रकामे क्रम्बयणु:-संदिताभायो चतुर्थकाण्डे सप्तमप्रपाठके नवमोऽनुवाकः॥०॥

गर्भाश्च ने वृत्सार्श्व में व्यविश्व ने व्यवी चं में दित्युवार्द् चं में दित्युगैही चं में पञ्चाविश्व ने पञ्चावी चं में चिवृत्सर्थ में चिवृत्सा चं में तुर्युवार्द् चं में तुर्याही चं में पश्चवार्च में पश्चीही चं म जुल्ला चं में वृशा चं में ऋष्मश्व॥ १॥

मे वेहचं मेऽन्डांचं मे धेनुषं म् चायुर्यक्षेनं कस्पतां प्राणा यक्षेनं कस्पतामपाना यक्षेनं कस्पतां च्याना यक्षेनं कस्पतां चक्ष्रंयक्षेनं कस्पताः श्रोचं यक्षेनं कस्पतां मनी यक्षेनं कस्पतां वाग्यक्षेनं कस्पतामाता यक्षेनं कस्पतां यक्षे यक्षेनं कस्पतां ॥ २ ॥

कृष्भर्य । चत्वार् ११॥१०॥

क्ति तैतिरीयसंहितायां चतुर्यकाएडे सप्तमप्रपाउके इश्माऽनुवाकः॥ *॥

त्रथ दश्रमानुवाकमाइ,—"गर्भाय मे वत्साय मे श्रविय मे श्रवी च मे दिखवाद च मे दिखीही च मे पञ्चाविश्व मे पञ्चावी च में चित्रसम्च में चित्रसम् च में तुर्वताट्च में तुर्वेगही च मे पहवाच में पट्टीची च में जना च में वजा च में ऋषभय में वेहच मेऽनदान् र मे धेनुस मे प्रायुर्वज्ञेन कल्पतां प्राणा यज्ञेन कस्पतां ऋपाने। यद्येन कस्पतां याने। यद्येन कस्पतां चतुर्यद्येन कस्पतां श्रीचं यद्वीन कस्पतां मने। यद्वीन कस्पतां वाग्यद्वीन कस्पतां भात्मा यज्ञेन कल्पतां यज्ञो यज्ञेन कल्पताम्" इति । गर्भा वत्मास् प्रसिद्धाः । सार्ह्यावसारो * वत्सरूपः पुत्तविद्यविः । तथाविधा गौः चियवी। दिसंवत्यर ऋषभा दित्यवाट्। तथाविधा गौर्दित्योदी। सार्द्धदिसंवसर ऋषभः पञ्चाभिः । तथाविधा गौः पञ्चावी । संवत्परच्योपेत अवभक्तिवत्मः। तथाविधा गौक्तिवत्मा। साई-चिवत्सर ऋषभसुर्थवाद । तथाविधा गौसुर्थे ही । चतुःसंवत्सर ऋषभः पष्ठवाट्[‡]। तथाविधा गौः पष्टेश्ची। चेचनसमर्थ ऋषभ उत्ता । वन्धा गौर्वमा । उत्त्लोऽप्यधिकवयस्क ऋषभः । गर्भघातिनी गौर्वेदत्। प्रकटवादी मौरमञ्जान्। नवप्रस्रतिका गौर्धेनुः। त्रायुरादयः प्रसिद्धाः। त्रात्मा प्ररीरं। उक्ता त्रायुरादया मदीयेन यञ्चेन कार्यचमा भवन्तु । यज्ञः चिष्यमाणोऽयमेधादिः, चेाऽप्यनेन यज्ञेन खकार्यचमा भवत ॥

^{*} सार्जेवत्सर इति पाठो भिवतुं युक्तः। एवं "त्रियविः" इत्यत्र 'यविः' इति, ''चियवी'' इत्यच च 'खवी' इति पाठी संहितानुसारेब भवितुं युक्तः।

[†] रवमेव सर्वेत्र पाठः। 'पश्चाविः' इति तु भवितुं युक्तः।

^{‡ &#}x27;पछवद' इति सर्वेत्र पाठो न सम्यक्।

र्तत यायनाचार्यं विरचिते माधवीये वेदार्घप्रकाने रूचयजुः-वंदिताभाये चतुर्थकाच्डे यप्तमप्रपाठके रुप्रकाऽनुवाकः॥०॥

रका च मे तिस्र थे में पञ्च च में सुप्त च में नवं च म रकादण च में चयादण च में पञ्चेदण च में सप्त-दंश च में नवंदण च म रक्वे विश्यतिस्य में चया-विश्यतिस्य में पञ्चे विश्यतिस्य में सुप्तविश्यतिस्य में नवं विश्यतिस्य में रक्के चिश्याच में चये स्तिश्याच ॥ १॥

मे चर्तस्य मेऽष्टी चं ने दादंग्र च ने वेदंग्र च ने विश्यतियं मे चतुंविश्यतिय मेऽष्टाविश्यतिय ने दाचिश्या मे घट्चिश्या मे चत्वार्श्याचं ने चतुंयत्वारिश्याच मेऽष्टाचेत्वारिश्याच ने वाजंय प्रस्व-याण्जयक्रतुंय सुवंय मूर्धा च व्यक्तिंयः, च भान्यायन-यान्संय भीवन्य सुवंन्यार्थिपतिय ॥ १॥

पर्यस्त्रिश्मा । व्यक्तियुष्ठ । एकीद्म च ॥ ११ ॥

इति तैतिरीयसंहितायां चतुर्घकाएडे सप्तमप्रपाठके एकाद्भाऽनुवाकः ॥ *॥

एकार्त्रमाइ,—"एका च में तिस्त में पञ्च च में यह च में नव च में एकार्त्र च में चयोर्त्र च में पञ्चर्य च में सहर्य च में नवर्य च में एकविश्वतिस्थ में चयोविश्वतिस्थ में पञ्च- विश्वतिस् में सप्तविश्वतिस् में नविश्वतिस् में एक विश्वस में स्वास्त्र में स्वास्त्र

वयोक्तैकादमानुवाकक्ष्पमन्त्रसाधं हामितिशेषं विधन्ते,—"वसी-धारां जुहाति वसामें धाराऽसदिति वै एषा झयते घृतस्य वै एमनेषा धाराऽसुमिन् खोके पिन्यमाना उपतिष्ठते" (५।४।८५०। इति। वसाः (धमस्य) धारा (सान्तरां) यया त्राज्या सम्यते सेयमा-क्रतिवंसीधारा, तां जुज्जयात्। तदेतदुक्तनिवंसनं स्रच्यते,—'वसोमें धाराऽसत्' द्रत्यादिना। यजमाना वसाधारां कुहाति स प्रथमं मम धनस्य नैरन्तर्यं भ्रत्यादित्यवं कामयते, ततस्तेन द्रद्माज्ञतिर्क्रयते, तेन होमेन एनं यजमानं खर्गलोके घृतस्य धारा प्रीणयित,—सेवते। तत्र द्रत्यं विधन्ते,—"त्राज्येन जुहाति तेजो वै श्राक्यं तेजो

^{*} वरामिति बादर्भादिपुक्तकस्यः पाठो न सम्यक्।

वसिर्धारा तेजसा एवासी तेजाऽवहत्थे"(५।४।८४०) रति। सुवर्धा-दिधनसम्दर्हरपि चृतवत् तेजारूपलं प्रसिद्धम् ।

कामप्राप्तिचेतुलेनापि तामाइति प्रत्रंगति,—"त्रथे। कामा वै वसीधीरा कामानेवावदन्धे" (५।४।८५०) इति ।

श्राचायवितिकाश्यां सामात्यं विधनो,—"यं कामयेत प्राचान् श्रश्य श्राचां विष्क्रिन्द्वामिति विवादं तस जुड्यात्, प्राणानेव श्रश्य श्रश्नाचं विष्क्रिनत्ति; यं कामयेत प्राणान् श्रश्य श्रश्नाचार सम्मनुयामिति समातां तस्य जुड्यात, प्राणानेव श्रश्य श्रश्नाचार समाने।ति" (५१८। ४१०) इति। 'श्रश्य' यजमानस्य 'प्राणान्' श्रश्चं च विष्क्रिन्द्वाम्' इत्येव दिवन् श्रध्यपुरेतं मन्तं मध्ये विख्या 'जुड्यात्'। सस्य प्राणानामसस्य च सामात्यं कामयते, से। यं समातामाइतिं जुड्यात्।

श्रथ "वाजस से" इत्यादीन "श्रश्च मेऽजुच से" (४ घ०) इत्यादिप्राक्तनानि चतुस्रवारिंबद्धिक ब्रतसंख्याकानि वाक्यानि । तानि दादबसङ्क्षेण विभव्य प्रश्नंसति,—"दादश्च दादबानि जुहोति दादश्च मासाः संवत्सरः संवत्सरेणैवासी श्रश्नमवद्भे" (५।४। ८ घ०) इति । दादश्चानां वाक्यानां समूहो दादशं। तानि च

[ै] रवमेव सर्वंच पाठः। अच 'इत्वादीनि प्राक्तनानि च' इति पाठो भिवितुं युक्तः। "वाज्य मे" इति वाक्यं प्रथमेऽनुवाकेऽक्ति। अचेदं सम्भाखते—'मे' इति पदं प्रमादपतितं, 'वाज्य इत्वादीनि' इत्वेवाच पाठः, "वाज्य' इत्यादीनि च दादण वाक्यानि चर्यवानुवाकस्य भ्रेषांणे सन्ति, तान्येवाच चिमप्रेतानि।

[†] सर्वत्रैव भाष्ये दादम दादम इति दिवितारिक, परना मूनसंदितायां तथाऽदर्भगत् भाष्ये रक्स्येव दादमम्ब्स्य व्यास्थानाच दिविताविपित्ततां।

दादज्ञानि पुनर्दादज्ञभंख्याकानि ; तथा यति चतुश्चलारि जदिधकज्ञत-भंख्यायाः मंत्रत्यर्द्भपलात् भंतत्यरसाध्यमस्यं प्राप्नोति ।

त्रथ चतुर्थानुवाकगतानि वाक्यानि प्रश्नंसति,—"त्रसञ्च मेऽनुष म दत्याद एतदै प्रमुख रूपः रूपेथैवास्त्रमवद्ये" (५।४।८५०) दति। "त्रस्रम्" दत्यादिभिवाक्येर्यत् प्रतिपासं तत्सर्वमस्रस्य रूपं, चुदभावस्वास्त्रसाध्यतात्, उपरितनानाञ्च बीद्यादीनामस्रसाधनतात् ।

श्रथ पञ्चमानुवाकगतानि वाक्यानि प्रशंसति,—''श्रयिय म श्रापय म द्रत्याद एषा वै श्रव्ययः योगिः सयोगि एवास्रमवद्य्ये" (५।४। ८श्र०) द्रति। श्रग्नेः पाकहेतुलादश्रयोगिलम्; श्रपाञ्चीषधिजनक-लादश्रयोगिलं। एतयास्त्रपाठेन कारणसद्दितमत्रं प्राप्नोति।

त्रथ वहानुवाकगतानि वाक्यानि प्रशंधित,—"अर्धेन्द्राणि जुहोति देवता एवावद्ये यत् सर्वेषामधीनन्दः प्रति तस्मादिन्द्रो देवतानां श्रूयिष्ठभाक्तम दन्द्रसुत्तरमाहेन्द्रियमेवास्मिस्नुपरिष्टाइधाति" (५१८। ८६०) इति। येषां वाक्यानामन्तेषु दन्द्रः पयते, तानि 'अर्धेन्द्राणि', तेषु वाक्येषु अग्निसेमादीनां देवतानां पूर्वार्धेषु आसात्तवात् देवताः प्राप्नोति। 'यत्' (यसात्) कारणात् 'सर्वेषां' वाक्यानां 'प्रति' 'अर्धम्' 'दन्द्रः' (प्रत्येकसुत्तरार्धे दन्द्रः) पयते, 'तस्मात्' कारणात् अयम् 'दन्द्रः' 'श्रूयिष्ठभाक्तमः',—श्रूयिष्ठं प्रश्नूतं इविभेजतीति श्रूयिष्ठभाक्त, श्रूतिअयेन तादृष्टः। यसाद्देद 'दन्द्रम्' अत्र उत्तरार्धे नतं प्राद्द, तस्मात् 'अस्मिन्' यजमानेऽपि 'उपरिष्टात्' (पुरोभागे) क्युरादि इन्द्रियं स्नाप्यति।

[.] अ "सं पुनर्दादग्रसङ्गाकानि" इति सर्वेत्र पाठो न सम्यगिव प्रतिभाति।

सप्तमाद्यमयोरनुवाकयोरविस्तानि वाक्यानि प्रश्नंति,—"यद्यायुधानि जुहाति यद्यो वै यद्यायुधानि यद्यमेवावद्ये। यथो एतदै
यद्यस्य रूप्ट्र रूपेलैव यद्यमवद्ये"(५।४।८२०) दति। यंसदाभादिग्रहरूपाणि यद्यमधनानि साचायद्यनिष्पादकलायद्यस्र पाणि।
दभाविद्रादिभिर्यद्यः परम्परया निरूपते, न तु गहैरिव साचात्
निष्पद्यते, तसात् तानि यद्यस्य रूपं। एतेरनारक्वैदिरक्वैय
यद्यायुधैर्यद्यं प्राप्ताति।

श्रीममस सगाकारस तात्पर्यं दर्भवति,—"स्वश्यय से सगाकारय म द्रत्याद सगाक्षत्ये" (५।४।८२०) दति। साधीनल-करणायेत्वर्थः।

नवनेऽनुवाने पूर्वार्धगतानि वान्धानि प्रश्नंत्रति,—"त्रश्निस् ने धर्मस् ने दत्यार एतदे त्रज्ञवर्षमस्य रूपः रूपेणैव त्रज्ञवर्षमवर्त्ये"(५।४। ८२०) दति । सम्यादिभिर्ताञ्चणकर्मनिर्दतैरेतेवां त्रज्ञवर्षसरूपत्मम्।

तिसन्नेव चनुवाके उत्तरार्धगतानि वाक्यानि प्रशंसति,—"सक् च मे साम च म दत्याद एतदै बन्दसाए इपए इपेणैव सन्दाएसि प्रवहत्थे" (५।४।८५०) दति। स्मगदि 'सन्दर्श' (वेदानां) साइपमित्येतत् प्रसिद्धम्।

दश्रमेऽनुवाके पूर्वार्धगतानि प्रश्नंचित,—"गर्भाख ने वत्याख म इत्याच एतदे पश्रुतार इत्यर इत्येषेव पश्रुनवद्ये"(५।४। प्रश्न ॥) इति। गर्भवत्यादीनां पश्रुक्तवं प्रसिद्धम्।

तसिस्रेवानुवाके उत्तरार्धगतानि वाक्यानि प्रश्नंसति,—''कस्यान् जुडेात्यकृतस्य कृष्टें" (५।४।८२०) द्रति । 'श्रायुर्धक्रेन कस्पताम्' इत्यादया मन्त्राः कस्पाः, पूर्वं यत् यत् वसु श्रक्कार्यं वमं न भवति), तस्र तस्र सामर्थाय श्रयं होम: ।

एकादश्रानुवाके पूर्वभागगतानि वाक्यानि प्रशंसति,—''युसात् त्रयुवे जुहाति मिथुनलाय" (५।४।८५०) रति । 'चतस्रय मे' 'ऋष्टी च में रत्यादिकं समसंख्यारूपं युग्मं; 'एका च में 'तिसस में रत्यादिकं विषमधंख्यारूपमयुजं ; राजिदयं च्नीपुरुववत् परस्पर-विसचणनात् मिथुनमाय सम्पद्यते।

राबिदयेऽणुत्तरोत्तराधिकां प्रशंसति,—"उत्तरावती भवताऽभि-कान्चै"(५।४।८२०) इति । एकसादुत्तरं चित्नं, तसादुत्तरं पञ्चत्नं ; तया चतुष्ट्रादुत्तरम् ऋष्टलं, तसाचे।त्तरं दादभ्रलं। एवसुभये।: उत्तरात्रस्वन श्रभिता वाप्तिर्भवति ।

युगायुगार्यस्थावाचिनां ऋदानां तात्पर्थे दर्शयति,—"एका च मे तिस्रय म रत्याह देवच्छन्द्धं वा एका च तिस्रय, मनुख-क्ट्रन्दर्भ चतस्य प्रष्टे। च देवक्ट्रन्दर्भ चैव मनुष्यक्ट्रसञ्च प्रव इ.से" (५।४।८५०) इति । विवमसंख्यया देवानां प्रियाणि च्छन्दांचि निष्पाचनो, समसंख्यया तु मनुष्यप्रियाणि; त्रतसाद्भयं प्राप्नोति ।

राजिदयेऽणुत्तरोत्तरअंखादृद्धेरविधं प्रशंसित,-"त्रा चयित्त्र्श्वता जुड़ेाति चयच्चिश्रमदे देवता देवता एव श्रव हन्धे श्रा श्रष्टाचलारिश्रमता जुड़ेाति श्रष्टाचलारिष्ट्रश्रदचरा जगती जागताः पश्रवे। जगत्या एव त्रकी पर्युगव ब्रन्थे" (५१४।८५०) इति।

श्रस्मिन् श्रनुवाके खत्तरभागगतानि वाक्यानि प्रश्नंसित,— 4 s

"वाजय" प्रसवस्रेति दादत्रं जुड़ाति दादत्र मासाः संवत्परः संवत्परे एव प्रतितिष्ठति" (५।४।८%) इति॥

श्रव विनियोगसंग्रहः,—

श्राविष्णू विधारानेकार्त्रभिरादितः । श्रुवाकेर्जुहेात्येतामाञ्जति सम्ततां घृतादिति ॥ श्रुव मीमासा,—दादश्राध्यायस्य दृतीयपादे(१०श्र०)चिम्तितम्,— "मम्त्रादौ किं विधार्थारा मम्त्रान्ते वाच सम्ततेः ।

त्राची होनेषु वन्तवा दादबानेषु तद्भृतिः॥

श्रुप्तौ किश्चित् कर्ष विदितं,—'सन्ततां वसाधारां जुहाति' इति । तत्र सामात्रां निन्छ्द्रानं, तत्र मन्त्रकर्षाणेः सहापक्रमे सित उपपद्यते; तस्मान्त्रनादौ कर्षमित्रपातः । इति प्राप्ते ब्रूमः,—तस्मिन् वसाधारास्त्रो कर्षाणि 'दादब दादबानि जुहाति' इति श्रुतं, दादब्रभि-मंन्त्रवाक्षीः सन्पादम् एकमाज्ञतिस्वरूपं । तद्या,—"वाजस्य से प्रस्वस्य से प्रयतिस्य से प्रसितिस्य से धीतिस्य से कृतस्य से स्वरस्य से स्रोकस्य से श्रावस्य से श्रुतिस्य से स्थातिस्य से सुवस्य से" द्रत्येते— दादब्रभिमंन्त्रवाक्षीरेका श्राज्ञतिर्देशतस्या । एकादक्य उत्तराज्ञतयः 'प्राणस्य सेऽपानस्य से' दत्यादिभिनिष्पास्यक्ते। एतेषु च हामदादश्यकेषुः

^{*} सर्वेद्वेव संचितापुक्तकेषु "वामच प्रसवस्य" इत्वेव पाठोऽस्ति, ततस्य "वामच मे प्रसवस्य" इति आख्यपुक्तकस्यः पाठः समीचीन इव न प्रतिभातीति परित्वतः।

[†] चात्र "प्रवित्व मे प्रयित्व मे" इति दिः पाठः सर्वे सिन्नेव भाष्यपुक्तको स्थिते।ऽपि संहितायामदर्शनात् उपेच्चितः।

^{‡ &#}x27;ई.हमा उत्तराज्ञतयः "प्रावस मेऽपानस मे" हतादिभिर्निष्याद्याः।
ते च होमा दादम्, तेषु' हति सादर्भपुक्तकपाठः।

मध्ये विसम्बाभावः साम्मत्यं, न तु सम्मकर्यणोः सरोपद्रमः। तसात् पूर्वन्यायेन सम्मानो कर्यस्तिपातस्य नास्ति विष्नः॥"

द्रित सायनाचार्थिविरचिते साधवीये वेदार्थप्रकाने हृज्यस्तु:-संहिताभाष्ये चतुर्थकाच्छे सप्तमप्रपाठने एकादकीऽनुवाकः ॥ •॥

वाजो नः सप्त प्रदिश्यंतिको वा परावतः । वाजो ने विश्वंदेवैधेनेसाताविष्ठावंतु । विश्वं श्रुष्ठ मृहते । विश्वं श्रुष्ठ मृहते । विश्वं श्रुष्ठ मृहते । विश्वं श्रुष्ठ मृहते । विश्वं श्रुष्ठ समिष्ठाः । विश्वं ने वे वे श्रुष्ठ श्रुष्ठ । विश्वं भवन्तु प्रविष्ठ वाजो श्रुष्ठे । वाजस्य प्रस्वं देवा रथैयाता हिरण्ययः । श्रुप्तिरिन्द्रे । व्याजस्य प्रस्वं देवा रथैयाता हिरण्ययः । श्रुप्तिरिन्द्रे । व्याजे वाजे वाजे वाजिना ने धनेषु ॥ १ ॥

विमा श्रुम्ता शृत्जाः । श्रुस्य मध्येः पिवत माद्-यंध्वं त्या यात पृष्टिभिदेव्यानैः । वार्णः पुरस्तादुत मध्यता ना वार्णा देवाः श्रुतु भिः कस्पयाति वार्णस्य हि प्रस्वादनस्मीति विश्वा श्राशा वार्णपतिभवेयं । पर्यः पृष्टिक्यां पय श्रीषंधीषु पर्या दिक्यंन्तरिक्षे पर्या धां । पर्यस्वतीः प्रदिश्वः सन्तु मर्श्वं । सम्मा स्श्रामि पर्यसा घृतेन सम्मा स्शाम्यपः ॥ २॥ भोषंधीभिः सें। इं वार्त्रं सनेयमग्ने । नक्तेषासा समन्ता विरूप धापयेते शिशुनेक्य समीची द्यावा स्नामा द्या भून्तिभाति देवा श्राग्नं धारयम् द्रवि-खोदाः । समुद्रे। इसि नर्भस्वानाईदीनः शंभूर्मयोम्-र्भि मा वाद्विस्वाद्या माइते। इसि मृहतीं गुणः शंभू-मेंथे। भूर्भि मा वाद्विस्वाद्या । । श्रेष्ठि स्वाद्यं स्वाद्यं भू-मेंथे। भूर्भि मा वाद्विस्वाद्या । । १॥

धर्नेषु। श्रुपः। दुवंखाञ्छं भूभयोभूर्भि मा। हे

इति तैतिरीयसंहितायां चतुर्थकाएडे सप्तमप्रपाठके हाद्ग्रे।ऽनुवाकः ॥ *॥

एतिरेकादमभिरमुवाकैर्वेचीधीराष्ट्रीम छकः। श्रथ दादमे वाज-प्रस्वीयष्ट्रीम उच्यते। कच्यः, 'वाजप्रस्वीयं जुष्टेति सप्त ग्राम्या श्रोषधयः सप्त श्रारच्याः प्रथमज्ञानि द्रवीक्तव्यौदुम्नरेख खुवेष, वाजच्छेमं प्रस्वः सुषुव द्रति ग्राम्या जला श्रारच्यां "जुष्टेति' द्रति। तत्र ग्राम्याणां मन्त्राः प्रथमकाण्डे(७प्र०१९०श्व०) समाचाताः। श्रारच्यानां मन्त्रा श्रवाचायन्ते। तत्रारच्यस्य वेणुधान्यस्य द्रामाय प्रथमास्टचमाष्ट्,—"वाचा नः सप्त प्रदिश्रः, चतस्रो वा परावतः। वाचा ने। विसैर्देवैर्धनसाताविद्यावतु(१)"

^{*} अत्र चारका इति पाठो भवितुं युक्तः।

दित । प्राच्याद्याद्यत्वे दिशः, ऊर्ड्डाधोमध्यमाखित्वः,—एताः 'यत्र' 'प्रदिश्वः' (प्रकृष्टा दिश्वः) 'वाजः' (श्वल्यव्ह्पाः, श्रव्हप्रदाः) भवित्वत्यर्थः। तथा 'परावतः' (श्वत्यन्तदूरवर्त्तिन्यः) 'दत्वे। वा',—श्वाग्रेथाद्यास्तुः- सङ्घाका विदिशे विदृरस्था दव श्ववभावन्ते; तास्य श्वस्माकमस्त्रप्रदा भवन्तु। व 'वाजः' (श्वस्रम्) 'दृष्ट' (श्वस्मिन् देशे) 'धनवातौं' (धनप्रदेशे) थश्चे 'विश्वदेवेंः' प्रेरितः वन् 'नः' (श्वस्मान्) 'श्रवतु' (रचतु)।

ग्रथ मामाकधान्यस्य होमाय दितीयास्त्रमाह,—'विसे ग्रध महतो विस जती विसे भवन्त्रम्यः सिम्हाः। विसे ने। देवा श्रवसा श्रा गमन्तु विसमस्य द्रविणं वाका श्रसो^(१)" द्रति। 'श्रध' (श्रिसम् दिने) 'विसे' (सर्वे) श्रिप 'महतः', तथा श्रन्ये 'विसे' (सर्वे) श्रिप देवाः 'जती' (रक्षणाय) 'भवन्तु' (प्रवर्मन्तां)। तथा 'विसे' (सर्वे) श्रिप 'श्रम्यः' 'सिम्हाः' (सम्यक् प्रज्वसिताः) भवन्तु। तथा 'विसे' (सर्वे) श्रिप 'देवाः' 'नः' (श्रम्माकम्) 'श्रवसा' (रक्षणेन) निमित्तम्द्रतेन 'श्रा-गमन्तु' (श्रागक्कन्तु)। तथा 'विसं' 'द्रविषं' (सर्वमिप धनं) 'श्रसो' 'भवन्तु' (श्रामास्त विद्यताम्)।

श्रथ नीवारहामाय हतीयाम्हचमाइ,—"वाजख प्रसर्व देवा रथैथाता हिरक्षये: । श्रिप्तरिन्द्रो ष्टइस्पतिर्मदतः चेामपीतथे^(६)" इति । 'वाजस्य' 'प्रस्वम्' (श्रस्मदीयस्य श्रमस्य प्रेरक्षसम्पादनम्) उद्दिख श्रम्यादयस्त्रयो 'देवाः' 'चेामपीतये' (चेामपानार्थं) 'हिरक्षयैः' हिरक्षमयैः 'रथैः' (सुवर्कनिर्स्थितैः रथैः) सद्द 'यात' (श्रस्मद्यागद्धमिं प्राप्तृवन्तः)।

सत्र 'सन्तु' हत्वेव पाठो भवितुं युक्तः ।

श्रथ अर्त्तिबहामाय चतुर्थीत्त्रचमाइ,—"वाचे-वाचेऽवत वाजिने। ने। धनेषु विप्रा ऋहता ऋतज्ञाः । श्रस्य मध्यः पिवत माद्यध्यं हप्ता चात पिचभिर्देवयामै:(४)" इति । हे 'वाजिन:' (प्रसम्पादका:) देवाः, 'वाजे-वाजे' (तत्तदस्रनिमित्तं) 'धनेषु' (धननिमित्तञ्च) 'नः' (श्रमान्)'श्रवत'। 'विप्राः'(त्राञ्चाषवच्कुद्धाः);'श्रम्हताः'(मरणरहिताः); ऋतं सत्यं यञ्चं वा जानमीति 'ऋतज्ञाः'; तादृज्ञा हे देवाः, 'श्रस्थ' 'मध्यः' (इदं मधुरमञ्चं) 'पिवत' (पाने।पत्तवितं भोजनं कुद्त)। ततः 'मादयध्वं' (इष्टा भवत) । ततः 'द्वप्ताः' चन्तः 'देवयानैः' 'पथिभिः'* (खं खं खानं प्राप्नुवत)।

त्रथ गर्वीधुकहोमाय पञ्चमीख्यमाइ,—"वाजः पुरस्तात् उत मध्यता ना वाजा देवापू ऋतुभिः कल्पयाति । वाजस्य हि प्रसवेाऽनस्मीति विश्वा स्नात्रा वाजपतिभवेयम्(॥)" इति । 'न:' (श्रसाकं) 'पुरसात्' (पूर्ववयिं।, 'उत' 'मध्यता' (मध्येन वयसि), 'বাজ:' (স্বর্ছা) भवलिति श्रेष: । কিন্ত্রার্থ 'বাজ:' 'ছন্ত্রমি:' (কাল্ল-विग्रेषैः) 'देवान्' 'कष्पयाति' (तत्तत्काखे यष्टयान् देवान् सम्पादयति)। र्मात हि चन्ने यष्टुं बचाते । 'हि' (यस्नात्) 'वाजस्व' (चनस्व) 'प्रसवः' (प्रेरणं सन्दृद्धिः) 'विचा' 'चाचाः' (सर्वा चिप दिचः) 'चनस्रमीति' (श्रतिप्रयेन श्रवनताः करेाति), श्रश्नमस्दक्षी सत्यां सर्वदिम्वर्त्तिनः प्राणिनः खाधीना भवन्ति, तसाद्दं 'वाजपतिभवेयम्'।

श्रय मर्कटकाखाहामाय षष्ठीस्चमाइ,—"पयः पृथियां पय श्रीषधीय पया दिव्यमारिचे पया धां। पयस्तीः प्रदिशः सन्

^{*} बाच 'यात' हति पदं पतितमिव प्रतिभाति ।

मञ्चम्(र)" इति । वाजसम्हज्ञधें 'पृथिशां' 'पयः' (जलं) 'धां' (श्रष्टं स्वापयामि) । तथा 'श्रोषधीषु' श्रपि 'पथो' 'धां' । तथा 'दिवि' (द्युकोके) श्रपि 'पथो' 'धां' । 'श्रक्तरिके' श्रपि 'पथो धां' । 'प्रदिशः' (प्रक्रष्टाः सर्वा दिशः) 'पयस्वतीः' 'सन्तु' 'मद्यं' (मद्धं जस्वत्थो भवन्तु) ।

श्रथ गार्नुतहोमाय, कुसत्यहोमाय वा सप्तमीस्वसाह,—''सं मा स्जामि पयसा घृतेन समा स्जाम्यप श्रोवधीभिः। सेऽह वाजप्त सनेयमग्ने^(०)" इति । हे 'श्रग्ने', लत्प्रसादात् मां श्रहं 'पयसा' (जीरेण) च 'सं'-'स्जामि'; तथा मां 'घृतेन' 'सं'-'स्जामि'। 'श्रपः' 'सेवधीभिः' 'सं'-'स्जामि'। जीरादिभिः संस्षृष्टः 'सेऽहं' 'वाजम्' (श्रसं) लह्नं 'सनेयं' (स्रभेयं, श्रन्थेभ्योऽहमद्याम्)।

एतैर्मकीः साधं हामं विधन्ते,—''त्रग्निर्देवेभ्गेऽपाकामज्ञागधेय-मिच्हमानसं देवा त्रबुवञ्जप न त्रावर्त्तस्य इव्यं ने। वहेति से।ऽब्रवीद् वरं ट्रणे मद्ममेव वाजप्रसवीयं जुहाति त्रश्नादग्नये वाजप्रसवीयं जुङ्गित यदाजप्रसवीयं जुहाति त्रश्नित्ते तङ्गागधेयेन समर्द्र्यत्ययो श्रमिषेक एवास्य सः" (५।४।८ % •) इति । पूर्वं भागरहितोऽग्नि-भागमपेचमाणो देवेभ्गेऽपरकः काष्यगमत् । स पुनर्देविर्धविवेहनाय श्राह्मत स्वभागत्वेन 'वाजप्रसवीयं' होमं वत्रे। तस्मात् सर्वे यजमाना 'श्रग्नये' 'वाजप्रसवीयं' 'जुङ्गित'। श्रते।ऽचापि तङ्गोसेन 'श्रग्निसेव' स्वभागेन 'समर्द्भवति'। श्रपि च स होमः 'श्रस्थ' (श्रग्नेः) श्रभिषेक्न स्थानीयः, तस्मात् कर्त्तवाः।

श्रय प्रथमकाण्डाचातैः (७प्र०१० श्र०) "वाजस्थेमं प्रसव."

दत्यादिभिः यह श्रनत्यानां होममन्त्राणां यद्भां विधत्ते,— "चतुर्दश्रभिजुँहोति यत्र ग्राम्या श्रोषधयः यत्र श्रार्णा जभयीषा— मवर्ष्ये" (५।४।८ श्र०) इति । तिल-माष-मीहि-यव-प्रियंम्बणवे। गोधूमा इति यत्र ग्राम्याः। वेणुश्रामाकाद्य जदाहता श्रार्णाः। जभयविधधान्यसम्बद्धये चतुर्दश्रभिहीमः।

एकैकेन मन्त्रेणैकैकस होमं विधन्ते,—''श्रम्नसाम्नस जुहेात्यस-स्वात्रस्वावद्यों' (५१४।८ ५०) दति । श्रमाद्वर्येष तत्तदस्रप्राध्यर्थम् देवृत्रो होमः ।

चारकप्राप्तां जुक्कं वाधितं साधनामारं विधन्ते,—"श्रीदुमरेष सुवेष जुहेाल्यूम्बं खरुमर जर्गसमूर्जैवासा जर्जमस्रमवहत्थे" (५। ४।८ त्र०) रति । जर्क् बन्दः खारुरसवाची । खरुमरास्रयोसाया-विधरवापेतलादूर्यूपलम् ।

श्रव क्रवङ्गतया धावनं निषेधति,—"श्राप्तै देवानामभिषिको-ऽग्निष्यमुख्याणां तस्मादग्निषद्वंति न धावेत्" (५१४।८ श्र०) इति। 'देवानां' मध्ये यथा चीयमाने।ऽग्निरभिषिकस्त्रचा यजमानानां मध्ये श्रिशिषद्भिषिकः। दृष्टिद्याभिषेकस्त्रक्ष्मात्, कत्माद्वंसमये धावनं न कुर्यात्।

प्रमादाङ्कावने पुनरादृत्तिं विधत्ते,—"श्ववरङ्कः श्वस्थासम् श्रसमिव खसु वै वर्षं यद्भावेदसाद्याद्भावेदुपावर्त्ततास्राद्यमेवाभ्युपावर्त्तते" (५। ४।८५०) दति । 'हि' (यसात्) 'श्रस्थ' (श्रम्भितः) 'श्रसं'

^{* &#}x27;खरूपा' इति पाठो भवितुं युक्तः।

सर्वम् 'त्रवह्र्स्ं' (सन्यादित), ष्टिश्चास्त्रहेतुलात् 'त्रस्तम्' एव, त्रताः दृष्टिमात्रनपरिहाराय धावने सत्यं नाद्याय न्यस्ति। त्रता-ऽस्त्रप्राप्तये पुनरपि त्रावर्त्तते ।

कस्पः, 'नक्तोषासित कृष्याये स्रोतवसाये पयसा छला' इति । पाठस्,— "नक्तोषासा समनसा विरूपे धापयेते क्रियुसेक्ट्र समीची । यावा सामा इक्यो सम्मर्वि भाति देवा ऋग्निं धार्यम् द्रविषोदाः (क्ष्णें इति । नक्तं ख उपास्च 'नक्तोषासा' (रात्रिदिवसाविद्यर्थः); 'समनसा' (परस्परमैकमत्ययुक्ते); 'विरूपे'(राचिः कृष्णा दिवसः गुक्त इत्येवंविखत्तण—रूपे); 'समीची' (समीच्यो, अनुकूले) सत्यो 'एकं' 'क्रियुम्' त्रग्निरूपं 'धापयेते',—यजमानकर्द्धकं कर्मानुष्ठानं सन्पाद्यतः । 'द्यावा' (द्युक्षोके), 'समी (त्रिती), 'त्रन्तः' (तदुभयमध्यवर्त्तिन सन्तरिले) 'वि-भाति' 'इक्यः' (रात्रमानाऽयमग्निर्विश्रेषेण प्रकाश्रते)। दीव्यक्ति व्यवहर्तन इति 'देवाः' प्राणाः, ते च 'द्रविणोदाः' (यागदारेणानुकूसं फलं प्रयक्किना), तादृशा यजमानस्य प्राणा 'त्रग्निम्' एतं 'धारयम्' (धतवन्तः) ।

एतनान्त्रसाधं होमं विधत्ते,—"नक्तोवाचेति क्रणार्थं येतनत्साये पयसा जुहेत्यक्रैवासी राणि प्र दापयति राणिया श्रदः श्राहोराचे एवासी प्रक्ते काममञ्जादं दुहाते" (५।४।८%) इति। श्रयमध्यर्थः, 'श्रसी' (यजमानाय) 'श्रक्ता' वत्सक्षेण 'राचिं' धेनुसमां 'प्र दापयति';—पयःसमं फलं राज्या प्रक्तं करेति। तथैव राज्या कत्सक्ष्यया धेनुसममदः 'प्र दापयति'। श्रन्योन्यदानायैव मन्त्रेऽसिन्

 ^{&#}x27;सित खद्गाद्याय' इखेवात्र पाठ इति सम्भावयामि ।

^{† &#}x27;बावर्त्तेत' इति पाठी भवितुं युक्तः।

राश्वहनी यह निर्दिश्चेते। ते चान्योन्यं दक्ते 'श्रक्षी'* यजमानाय श्रव्वाद्यक्षं कामं यन्यादयतः। यदुत्रं स्वचकारेष,—'पड्भिः पर्यायैदीदश्च राष्ट्रश्चेता जुहाति, क्षतावाजृतधामाग्निरिति पर्याय-मनुदुत्य तथी खाहेति प्रथमामाङ्कतिं जुहाति, ताभ्यः खाहेत्युक्तराम्, एवमितरान् पर्यायान् विभजति, भुवनस्य पत इति पर्यायाषाष्ट्र यप्तमी श्राङ्कतीनां चयोदश्ची एतेन व्यास्थाता, भुवनस्य पत इति रथमुखे पञ्चाङ्कतीर्जुहाति दश्च वा' इति ।

तत्र ऋताषाडित्यादिमन्त्रसाधं होमं विधन्ते,—"राइस्ते। जुहोति राइमेवावद्ये" (५।४।८.५०) इति । राइस्रतंद्यका "ऋताषाड्" इत्यादिमन्त्रासृतीयकाण्डे (४प्र०५०) समाचाताः।

श्रय पर्यायसङ्घां विधनो,—''षड्भिर्जुहोति वर्षे स्नतव स्टतुःस्वेव प्रति तिष्ठति" (५।४।८ % ॰) इति ।

राइश्वत्खेवापरितनाञ्चतिषु पश्चमक्कापचं विधन्ते,—"श्वनस्य पत इति रथसुखे पश्चाज्जतीर्जुडेाति वज्जो वै रथे। वज्जेणैव दिश्रोऽभि-जयति" (५।४।८%) इति । ईषायं रथसुखं। 'स्फाकृतीयः रथ-कृतीयम्' इत्यत्र रथस्य वज्जलं स्पष्टमास्नातम्।

कर्यः, 'ससुद्रोऽसि नभखानित्यञ्चित्तिना चीणि वातनामानि मुहोति' इति । तेषु प्रथमामाह,—''ससुद्रोऽसि नभखानार्द्रहानुः श्रंभूर्मयोभूरभि मा वाहि खाहा^(८)'' इति । हे वायो, देवानां लं 'ससुद्रोऽसि' (ससुद्रवद् बज्जलोऽसि[†]); 'नभखान्' (खप्रचाराय

 [&]quot;दत्तेऽसे" इति ससन्धिपाठः सव्वषु पुक्तकेषु स्थितोऽपि स्वसाधितं प्रतिभाति।

^{† &#}x27;ससुद्रवद् धनदे।ऽसि' इति चादर्भपुत्तकपाठः उत्तरभाद्यविरोधात् (७०७ ए॰ १९ प॰) न सम्यगिव प्रतिभाति ।

विखीणीकाश्वान्); श्रार्ट्रं (ष्टष्टिश्रंखं) ददातीति 'श्रार्ट्रदानुः'; श्रं (ऐहिकं सुखं) भावयतीति 'श्रंश्वः'; मयः (श्रासुचिकं सुखं) भावयतीति 'मयोश्वः'। तादृश्रस्वं माम् 'श्रिभ' (मां प्रति) 'वादि' (गच्छ), एवं सञ्चारेण श्रीत्यमापादयेखार्थः।

श्रय दितीयामाइ,—'मादताऽसि मदतां गणः श्रंश्चर्मयोश्वरिभ मा वाहि खाहा^(१०)"दित । योऽयं महनां 'मदतां' (वायुविश्रेषाणां) 'गणः' मादतश्रव्यवाचाः, तद्रृपस्तम् 'श्वसि'। श्रेषं पूर्ववत् ।

श्रय द्वतीयामाइ,—"श्रवसुरिष दुवस्ताञ्कं भूर्मयोभूरिम मा वाहि स्ताहा(११)" इति। श्रवसं रचणं इच्छतीति 'श्रवस्युः'; 'दुवस्तान्' (परिचर्यापेतः); तादृ अस्तम् 'श्रिष'। श्रेषं पूर्ववत्।

एतेर्मन्त्रेः साध्यं हामं विधत्ते,—"त्राग्नित्तः ह वा त्रमुण्यन् लोके वाताऽभि पवते वातनामानि जुहाति त्रभि एवेनमसुण्मिन् लोके वातः पवते" (५।४।८%) हित । खर्गलोके एतम् 'त्राग्नितम्' श्रभिखच्य ग्रैत्य-मान्त्र-सौरभ्यगन्धयुक्ता वायुर्वाति । श्रतस्तिसद्भ्ये 'समुद्रोऽसि' हत्यादि—'वातनामानि' जुड़्यात् । तेन होमेन वायुस्त्या 'पवते' एव ।

पाठप्राप्तं चिलं प्रशंसति,—"चीणि जुहोति चय दसे लोका एश्य एव लोकेशो वातमवहत्थे" (५।४।८ % •) दति ।

मन्त्रगतेन ससुद्रश्रन्देन बाङ्यसाम्यसुपजीय वाता सच्यत इत्येतस्व दर्शयति,—"ससुद्रोऽसि नभखानित्याहैतदे वातस्य रूप्ट्र रूपेगैव वातमव रूथे" (५१४।८ १४०) इति ।

श्रन वातखैव हेातयद्रयतात्तद्योगं साधनं विधत्ते,—"श्रञ्जलिना 4 T 2 जुहाति न होतेषामन्वयाङितिरवकस्पते" (५।४।८%। १० इति। ऋक इसादयमेखनक्षेणाञ्चित्वना वक्षी वायोक्त्यादनमेवाण होमः। यसादेषां वातक्ष्पाणां हेरमद्रव्याणामञ्जलिव्यतिरेकेणाङितिनं सक्ष-वति। न खलु वाता जुङ्गामवदातुं प्रकाते। ऋत एव स्वत्रकारे। प्राञ्चाणान्तरसुदाजहार, -'न ह्येतस्यावदानमस्तीति विद्यायते' इति। तसाद् व्यजनेनेवाञ्चलिना वक्षी वायुं सञ्चारयेत्।

श्रत्र विनियोगसंग्रहः,—

'वाजा नः'—सप्तभिवाजप्रस्वीयं जुहाति हि। नक्तेति पयसा हेामः, 'ससुद्रो'—वातनामभिः॥ चिभिर्जुहात्यच मन्ता एकादम समीरिताः इति ।

षय मीमांसा,—पञ्चमाश्वायस हतीयपादे(१९४०) चिन्तितम्,—

"न धावेदर्षतीत्यादि चितौ सत्यां कतावृत ।

श्राद्यस्रितेर्निमत्त्रतात्र क्रतावग्निस्स्तृतः ॥

द्दमाचायते, 'त्रग्निचिद्वंति न धावेत्', 'क्तियसुपेयात्' इति ।
तान्येतानि त्रग्निचिद्रतानि चितौ निष्यन्नायां चत्यां ततः प्रस्ति
प्रवर्त्तन्ते, न तु चितेऽग्नौ कलनुष्ठानं प्रतीचन्ते। कुतः ?। त्रग्निचित्यदेन
चयनस्य निमित्तलेनोपन्यासात्, न दि सति निमित्ते नैमित्तिकस्य
विकानो युक्तः । इति प्राप्ते क्रूमः,—कतावुपयोक्तुमग्निस्ययनेन*
संस्क्रियते; न च त्रनिव्यन्ने कतौ चयनसंस्कारः सफला भवति ।
तस्मात् कतौ निष्यन्ने सति पस्नात् चयनसाफस्यादयं पुरुषोऽग्नि
चितवानित्यसुमर्थमर्थतीति कलन्ते तानि वतानीति" ॥

द्रित यायनाचार्य्यविर्विते माधवीये वेदार्घप्रकामे क्रण्ययजु:-यंदिताभाखे चतुर्घकाण्डे यप्तमप्रपाठके दादन्नोऽनुवाकः॥०॥

^{# -}खोयते न' हति खादर्श्युक्तकपाठः।

श्रुवि युनिष्म शर्वसा धृतेने दिव्यः स्पूर्णे वयसा बृहत्तं । तेने व्यं पंतेम ब्रुअस्यं विष्टपः सुवे। रहाणा श्रिध नाकं उत्तमे() । इ.मी ते पृष्ठावृत्ररी पृत्रविणे। याभ्याः रह्याः स्यप् हःस्येग्ने । ताभ्यां प्रतेम सुक्रतामु खेाकं यवर्षयः प्रथमुत्रा ये पुराखाः() । चिद्ंसि समुद्रयानि रिन्दुई द्यः श्लोन कृतावा । हिर्ण्यपक्षः श्रुवे। भुरुष्युर्मुहानस्थस्ये भुवः ॥ १ ॥

श्वा निषंतः (१)। नमस्ते श्वस्तु मा मा हिश्सीर्विश्वस्य मूर्डेन्निर्धं तिष्ठसि श्रितः। समुद्रे ते हृंदयम्नरायुश्वावीप्रिय्वी भुवेनेष्विर्पिते (१)। जुन्ना देत्तोद्धं भिन्त
दिवः पृजेन्याद्न्तिर्धात् पृष्ट्यियास्तते। ने। रुष्यावत।
दिवा मूर्डासि पृष्टिया नाभिर्गुपामाषंधीनां।
विश्वायुः शर्म सुप्रया नमस्युष्ठे १। येन्ष्येयस्तपंसा
सुन्धं॥ २॥

आसृतेश्वाना श्रुग्निः सुवेरा भरेनाः। तस्मिन्नृष्टं नि दुधे नाके श्रुग्निसेतं यमाष्ट्रमेनेवस्तीर्णविर्धिषं । तं पत्नीभिरनं गच्छेम देवाः पुचैर्भार्त्वभिष्त वा हिर्रायोः। नाकं यह्वानाः सुंख्तस्य खोके तृतीये पृष्ठे श्रुधि रोचने दिवः (०)। श्रा वाचा मध्यमग्रुद्धरुर्- यम् ग्रिः सत्पंति श्वेकितानः। पृष्ठे प्रेष्टिया निर्हिते। द्विद्युतद्धस्पदं क्षेणुते ॥ ३॥

ये पृत्न्यवंः (०) । श्रायम्प्रिवृरितंमो वये। धाः संइ-सिया दीप्यतामप्रयुक्तन् । विश्वानमानः सरित्स्य मध्य उप प्रयात दिव्यानि धार्म (०) । सम्ब श्रावध्वमन्, सम्ब याताप्रे पृथा देव्यानान् क्रमुखं । श्रुस्मिन्स् धस्ये श्रध्युत्तरस्मिन् विश्वे देवा यश्रमानश्व सीदत (१०) । येना स्इस वर्षस् येनाप्रे सर्ववेद्सं । तेनेमं युग्नं नां वह देव्याने। यः ॥ ४ ॥

जुन्मः (११)। उद्देश्यस्तामे प्रति जायहि एनमिष्टापूर्ने सःस्रिजेयाम्यचे पुनेः क्रब्दःस्त्वे पितरं युवानम्न्या-तीः सीत्त्विय तन्तुं मेतं (११)। श्रयं ते योनिकः त्वियो यते। जाते। अरे। चयाः। तं जानस्रेम् श्रा रोहार्याः ने। वर्धया र्यिं (११)॥ ५॥

भुवः। सृषं। क्रंगुते। यः। सृप्तिष्श्या ॥ १३॥ इति तैत्तिरीयसंहितायां चतुर्यकाएडे सप्तमप्रपाठके चयादभाऽनुवाकः॥ ॥॥ दादशे वाजप्रस्वीयहोसे।ऽभिहितः । अय वयेदशेऽग्नियोगोऽभिधीयते । कत्यः, 'पुरस्तात् प्रातरनुवाकादिशं युनञ्जीति तिस्भिरभिष्टश्रश्रश्रं युनिन्न' दित । तत्र प्रथमामादः,—''त्रश्रं युनञ्जि सवसा
घृतेन दिख्यः सुपणं वयसा ष्ट्रद्यनं । तेन वयं पतेम अश्रस्य विष्टपः
सुवे। द्वाणा त्रिध नाक उत्तमे^(१)" दति । 'त्रश्लिं' (चितमेतं विक्रं) 'श्रवसा' (बस्तेन) 'घृतेन' (घृतादिद्रव्ययुक्तेन कर्मणा) 'युनञ्जि' (रथेन
त्रसमिवादं योजयामि) । कीदृश्रम् त्रश्लिं? । 'दिव्यं' (द्योतनात्मकं); 'सप्पणं' (पत्त्याकारं); 'वयसा' 'ष्ट्रद्यं' (वयसा चिरकासभाविनं); 'तेन' (त्रश्लिना) 'वयं' (यजमानाः) 'अश्रस्थ' (त्रादित्यस्थ) 'विष्टपं' (तापरिदत्तं स्वानं) 'पतेम' (प्राप्नुयाम) । कीदृश्ला वयं? । 'उत्तमे' 'नाके' (त्रस्युत्कष्टे स्वर्गक्षोके) 'सुवः' 'त्रिध'-'दृष्टाणाः' (सुखप्रापकं प्रदेशम् त्रिधरोढु-कामाः) ।

त्रथ दितीयामाइ,—'हमी ते पद्मावजरी पतिषणे याभ्याप्ट्र रचाप्ट्यप इप्ट्रस्मे ताभ्यां पतेम सुक्रतासु खें कं यचर्षयः प्रथमजा ये पुराणाः (१)" हित । 'पतिषणः' (पद्म्याकारस्में 'ते' (तव) ऋग्नेः 'हमी' 'पचौ ऋजरी' (कदाचिदपि जीर्णे न भवतः) । हे 'ऋग्ने', 'याभ्यां' (पचाभ्यां) लं 'रचांसि' 'ऋप-इंसि' (मारयसि), 'ताभ्यां' वयं 'सुक्रतासु' (पुष्मक्रतासेव) पुरुषाणां योग्यं 'खोंकं' 'पतेम' (प्राप्नुयाम)। 'ये' 'पुराणा' (ऋगादिसिद्धाः) 'ऋषयः' (महर्षयः) सन्ति, ते च 'प्रथमजाः' (स्थादावेवोत्पद्माः); तादृशा 'यच' खोंके निवसन्ति, तं 'खोंकं' 'पतेम'।

श्रथ दतीयामाइ,—"चिद्धि समुद्रयोनिरिन्दुर्देशः श्रोन श्वतावा।



हिरण्यचः बनुने भुरणुर्महान्सध्ये भुवः त्रा निवतः (१) दित । हे त्रग्ने, लं चिदादिविजेषणैविजेषितः 'त्रिथं। 'चित्' (जगतस्वेतियता, यजमानैस्विता वा); 'ससुद्रयोनिः' (यद्या ससुद्रः सर्वेषां जलग्रहाणां खानं तथा लं सर्वेषां क्रद्धनां खानं); 'इन्दुः' (परमैस्पर्ययुक्तः); 'द्यः' (कर्मनिष्पादनकुष्रकः); 'खेनः' (पचिविजेषाकारः); 'क्यतावा' (सत्यवान्); 'हिरण्यपद्यः' (सुवर्णमयाभ्यां पद्याभ्यासुपेतः); 'ब्रकुनः' (कामनादिभेदेन कङ्गादिपद्याकारस्य); 'भुरणुः' (सर्वे भरितं चमः); 'महान्' (बङ्गीभिरिष्टकाभिश्चितलात् ग्राढः); 'सध्ये' (त्रादित्येन सद्य एकच स्थितियोग्ये मण्डले) 'त्रा निवनः' (समन्तत खपविष्टः) ।

कर्यः, 'यद्यायद्वियस सोचे एकया अप्रस्तं भवत्यय नमसे अस्तु मा मा हिए मीरिति दाभ्यामग्रिमिम्हक्रति' इति। तच प्रथमामाइ,—
"नमसे अस्तु मा मा हिए मीर्वियस मूर्धक्रिध तिष्ठिष त्रितः । समुद्रे ते इदयमन्तरायुर्धावाप्टियत्री भुवनेष्विष्ठिते (१)" इति । हे अग्रे, 'ते' 'नमः' 'अस्तु', त्रं कर्मणि लद्यागकारिणं 'मा हिंसीः' (मा विनावय)। त्रं 'विसस्त्र' (सर्वस्त्र) जगतः 'मूर्धन्' (ब्रिरावदुत्तमे चितिप्रदेशे) 'त्रितः' (ब्रात्रितः सन्) 'त्रिध-तिष्ठिष' (ब्रिश्वो भ्रता वर्तसे)। 'ते' 'इदयं' (लदीयं चित्तं) 'समुद्रे' वर्त्तते,—
यावद्दृष्टिद्वारेण समुद्रसमानं जलं सन्यादविष्ठामीत्र्येवं सर्वदा नवानुग्रहः। तथा 'श्रमारायुः' (लदीयचित्तस्य मधे सर्वेषां

चच 'भुवः' इति पदस्य व्याख्यानं पतितमिन प्रतिभाति ।

[†] खब 'मा' (मां) इति पाठः पतित इव प्रतिभाति।

प्राणिनामायुक्तिहित),—चिरं जीवन्तु एते प्राणिन इति यदा सार्वि तदानीं तेषामायुर्भक्योव । किञ्च 'भुवनेषु' (सर्वेषु लेकिषु) निमित्त-भ्रतेषु 'द्यावाप्रथिवी' 'व्यर्पिते',—खपरि द्याः श्रधा भ्रमिञ्च लवा स्वापिते,—एनयोर्मभ्ये सर्वे लेकिकासिहिन्क्योवं तवानुगदः ।

त्रथ दितीयामार,—"उद्गो दक्तीद्धिं भिन्त दिवः पर्जन्यादना-रिचात् प्रचिवासतो ने। ब्रह्माऽवतः। दिवे। मूर्धासि प्रचिवा नाभि-र्र्जपामावधीना । विश्वायुः त्रर्म सप्रया नमस्पर्थे(४)" इति । श्रव पूजार्थम् एकसिस्रेवाप्री वडलमारीय निर्दिखते । हे ऋग्रयः, यूर्थ 'छद्गे।' 'दन्त' (खरकानि प्रवस्कृत)। खरकदाने क खपाय इति चचते। 'खद्धि' 'भिना',—खद्कं धीयतेऽसिन्नित्युद्धिर्मेघः, तं विदारवत । केभो निमिन्नेभाः । 'दिवा' 'त्रनारिचात्' 'प्रचिव्याः' (खेक्चं निमित्तीक्रयेखर्यः)। 'ततः' (मेचविदारणादुर्द्धे) 'पर्जन्यात्' मानतथा 'दृष्ट्या' 'नः' (मसान्) 'म्रवत' (रचत)। पुनरखेकलेन समीधोच्यते,—हे स्रग्ने, लं 'दिवा' 'मूर्धासि' (युक्ताकस्य मूर्ध-खानीय त्रादित्यरूपेाऽिष) ; 'प्रचिद्याः' 'नाभिः' त्रिष (नाभि-वन्मचदेशे वर्तने); 'ऋपाम्' 'श्रोवधीनां' च 'जर्क्' (रसः) श्रमि, लया हि पाने क्रियमां में सित तच रवा जायते; तथा 'विश्वायुः' त्रसि (सर्वस नगत त्रायु:प्रदेाऽसि); 'बर्म' (बरपश्चतः) श्रसि। 'बप्रचाः' (सर्विसारः) श्रम्भि । 'पर्थे' (पुष्पक्षोकमार्गरूपाय) तुश्यं 'नमः' श्रस्त ।

त्रश्चिगमन्तं बास्त्रातुं प्रसीति,—"सुवर्गाय वै स्रोकाय देव-रथो युष्यते यत्राकृताय मनुष्यरथ एव सनु वै देवरथो यद्शिः" (५181९ • १४ •) इति । दिविधा रथः,—देवरथा मनुष्यरथञ्चिति ; तम खर्गपात्रथे 'देवरथः' सज्जीकियते ; 'यम' कापि ग्रामविश्रेषे गन्तुं श्राकृतमभिप्राया भवति, तद्धं 'मनुष्यरथः' सज्जीकियते । थाऽयम् श्रम चीयमानाऽग्निः, स एव देवरथः न तु मनुष्यरथः।

रत्यं प्रस्तत्व मक्तस्य तात्पर्थं दर्शयति,—"श्रीग्रं युनिष्म श्रवसा श्रृतेनेत्वाह युनक्रीवेन् स एनं युक्तः सुक्षें खेरकमिन वहति" (५।४। १ • श्र •)इति। एनं' (देवरश्रक्षम्) 'श्रीग्रम्'श्रनेन मक्तेष 'युनक्रीव'; स च 'युक्तः' श्रीग्रः 'एनं' (यजमानं) खर्गे प्रापयति।

जनम्मपद्यने मन्मचयं विभव्य विनियुक्ते,—"यत् सर्वाभिः पद्यभियुंद्व्यायुक्तोऽस्थाग्नः प्रचुतः स्वात्, अप्रतिष्ठिता आज्ञतयः स्वः, अप्रतिष्ठिताः स्वेग्नाः, अप्रतिष्ठितानि उक्यानि, तिस्रभिः प्रातःस्वनेऽभि स्वति चिर्दे अग्निर्यावानेवाग्निसं युनिक्तं, यथाऽनिस युक्ते आधीयते एवनेव तत् प्रति आज्ञतयस्विष्ठन्ति, प्रति स्वोग्नाः, प्रति उक्यानि" (५१८१९०५०) इति। आदावेव मन्मपञ्चकेन योजने सति कास्वान्तरे योजयितं मन्माभावाद्यं 'युक्तः' 'अग्निः' 'प्रचुतः' भवेत्, प्रचुते अग्नौ आज्ञतीनां स्वोच्यस्त्रयेश्व प्रतिष्ठा न भवेत्। अतः पञ्चाद्योक्तं मन्मद्यमवश्रेय 'प्रातःसवने' 'तिस्रभिः' 'अभि'-स्वश्चेत् । तथा सति चिगुणमग्नि सर्वमपि अभिन्दश्चित । तता यथा स्वोक्ते सस्वीवर्देश्वंके श्वते पर्वं प्रति ग्रामान्तरे नेत्रयं वस्तुजातमभिनिधोयते, एवनेतिस्वन् अग्नौ 'आज्ञतयः' स्वोचाणि च 'प्रति'-'तिष्ठन्ति'।

श्रधाविष्ठष्टं मन्त्रदयं विनियुद्धे,—''यज्ञायिष्ठयस्य स्रोत्ते दाम्बामिन स्वत्रयोतावान् वै यज्ञी यावानिप्रश्लोनी भूमा तु वै श्रस श्रत जर्क: क्रियते यावानेव यञ्चसाम् श्रम्ततीऽन्यारे। इति" (५।४।१ • श्र०) इति । 'यञ्चायञ्चा वे। श्रम्भयः' इत्यस्थास्य जिल्पनं साम यञ्चायञ्चीयं, तस्य सामः सम्मान्ध स्तीचं द्वतीयस्वने प्रवर्तते । तस्मिन् प्रवर्त्तमाने सित ज्ञिष्टाभ्यां दाभ्यां मन्त्राभ्यामग्रिमभिस्प्रेत् । यञ्चा- यञ्चयस्तीचान्तो हि प्रकृतिश्वतीऽग्निष्टोमः, स च यावान्, तावानेव उत्थयातिराचादिस्वे।ऽपि यञ्चः । एतावदेव हि सर्वस्वापि यञ्चस्य सुस्रं ग्रतीरं । 'श्रस्थ' (उत्थयादिक्रतोः) यञ्चायञ्चयस्त्रीचान् 'जर्ज्ञः' तु स्ताचसमूद्रे। यः क्रियते, स तु सेव क्रियते, तेन श्रतिरक्तेन पूर्वं विद्यमानस्य यञ्चत्ररीरस्य बाज्यस्थनेव भवति, न तु किञ्चित्रूतनं श्रतीरं । एवं सित यञ्चायञ्चित्रस्य सोचकालेन श्रभिमर्भनेन श्रतिरिक्तेन श्रमिष्टोनो जन्यातिराचादिरूपा 'यञ्चा' 'यावान्' श्रस्त 'तं' सर्वमपि श्रम्तराखे 'श्रन्यारोद्दित्', क्रस्त्रमपि यञ्चजातं प्राप्नोतीत्यर्थः । मन्त्रदित्वं प्रश्रसित,—''दाभ्यां प्रतिष्टित्ये"(५।४।१ • श्र०) इति ।

स्तोत्रमध्य एव श्रवान्तरकाखं विधत्ते,—"एकया श्रप्रसुतं भवति, श्रय श्रभि स्वश्वति, उपैनसुत्तरे। यद्यो नमिति, श्रयो सन्तर्धे" (५।४।९०श्व०) इति । यद्यायिद्यस्ताचे हि एकविंग्रस्तोसे। विहितः । तिस्रो श्वयः एकविंग्रतिसङ्खापूरणाय श्रावर्त्तनीयाः । तत्र हि विंग्रतिस्तोतियासु उकासु या श्रन्ता स्तोत्रीया, तया स्तोत्रम् भग्रस्ततं (श्रनुपकानं) यदा भवति, तदानीं मन्त्राभ्यामिन-

^{* &#}x27;प्रबीयावर्त्तेगोया' इति सर्वेच पाठो न सम्यगिव प्रतिभाति।

[†] पूर्वापरपाठयारिकरूप्याय अत्र 'स्तोत्रियाः' इति पाठः, पूर्वत्र वा 'स्तोत्रीयास' इति पाठो भवितुं युक्तः।

⁴ v 2

क्त्रोत् । एवं क्लुक्तरकासभावी 'बन्नः' सर्वे।ऽपि 'एनं' (बन्नमानम्) 'खप'-'नमति' । चपि च तद्भिमर्जनं चन्ननैरन्नवीय सम्पद्यते ।

कत्यः, 'पुनिवितिस्त्रिव्यर्थेषु मूचते,— मवणार्थे सद्यार्थे सन्नानार्थे व । मवणार्थी बास्वाद्यामः,— यदि द्या यदि पग्राना यदि वेशमेन वजेत थोऽपास पुरे।ऽग्रिस्तमन्त्रवाय बजेत, यपि वा येन व्यव्य द्यार्थे नानामन्त्र जत्तरवेद्यासुपदधात् दिति । तत्र प्रधमामादः,— ''बेनर्थंयसपवा सत्रमासतेन्धाना पग्निः स्वः त्रा भरनः । तिस्त्रवर्धं नि द्धे नाने प्रग्निमेतं यमाद्धर्मनवसीर्थंवर्ष्ट्यम् (१)" दिति । 'घेन' (स्वर्गेष) निमित्तभ्रतेन पूर्वे मद्द्यं 'तपसा' (सन्नापस्त्रेन) पश्चिता 'सम्म्' 'प्रास्त' (प्रमुखित्रवन्तः); कीदृष्ठा मद्द्यं स्वर्थः — 'प्रश्नें' 'रत्थानाः' (प्रज्ञस्वक्तः); 'स्वः चा भरनाः' (सर्वमाद्दे ससुद्यताः); 'प्रदम् प्रपि 'तिस्तर्' 'नाने' निमित्तभ्रते यति 'इतम्' 'पश्चिं' 'नि'-'द्धे' (खापवामि) । 'यम्' 'श्चिं' 'मनवः' (पूर्वे मनुखाः) 'स्वीर्थंदिं पं (प्रसारितयद्यम्) 'प्रादः', तम् 'प्रग्निं' 'नि'-'द्धे' द्यान्यः ।

त्रय दितीयामाइ,—"तं प्रजीभिरनु गच्छेम देवाः पुनैश्चीहिभि-दत वा दिर्श्वः। नाकं ग्रह्मानाः सुक्तस्य खोके हतीये पृष्ठे चिथि रेचिने दिवः(०)" इति । हे 'देवाः', ऋतिजः सर्वे वयं प्रव्यादिभिः सर्वेर्मनुष्यैः 'खत' 'वा' 'हिरखीः' (दिरख्यादिभिः) सर्वेः साधनद्रश्चेत्र यहिताः 'तं' (चिप्रिम्) 'चनु'-'गच्छेम'; त्रनुयताः सनः फखं प्राप्यामः इत्यात्रयः । स एव खष्टीक्रियते,—'दिवः' 'पृष्ठे' (खर्मखोपरि) 'नाकं' (दुःखरहितं खानं) 'ग्रह्मानाः', ग्रह्मीतुकामा इत्यर्थः । कीहृत्रे दिवः पृष्ठे ?—'सुकतस्त्र' 'सोके' (सम्यगनुष्ठितस्य कर्मसः प्रसम्द्रेते); 'द्यतीये' (पृथिवीमारभ्य गणनायां चिसङ्क्षापूरके), 'मधि रोचने' (मधिकलेन दीयमाने)।

श्रय दृतीयामाइ,—"श्रा वाचा मध्यमदइद्भुरख्यमग्निः सत्पति-स्रोकितानः । पृष्ठे पृथिया निष्तिते दिवसूतद्धस्यदं क्रणुते थे पृतन्यवः (क्र)" इति । 'श्रयम्' 'श्रग्निः' 'वाषः' 'मध्यम्' 'श्रा'-'श्रद्धत्' (स्रोषक्पाया वाषः प्रतिपाद्यमर्थमाक्दः), स्रोष्मतसर्वगृषयुक्त इत्यर्थः। कीदृशः श्रग्निः ?—'शुरख्युः' (जगद्भरण्डीकः); 'सत्पतिः' (सतां पाखकः); 'चेकितानः' (श्रभिद्यानवान्); स च 'पृथियाः' 'पृष्ठे' (श्रमेक्परि) 'निष्तिः' (स्रापितः) 'दविसुतत्' (श्रतिश्रयेन द्योतते)। 'थे' तु 'पृतयवः' (विरोधिनः, श्रसाभिः यह कल्लदं कर्तुनिक्किता), तान् 'श्रधस्यदं' 'क्रणुते' (श्रसाकं पाद्य श्रधसादविस्तान् करोति)।

भय चतुर्थीमाइ,—"चयमग्निर्वारतमे वयोधाः यहस्यो दीयतामप्रयुक्त् । विधाजमानः यरिरस्य मध्य उप प्र यात दिखानि
धाम^(८)"इति । 'श्रम्' 'त्रग्निः' 'दीयतां' (श्रम्भिन् कर्मष प्रकामतां) ।
कीदृत्रः ?—'वीरतमः' (श्रितम्रयेन ग्रूरः) ; 'वयोधाः' (वयस श्रायुक्तः
स्वापयिता) ; 'यहस्यिः' (इष्टकास्यहस्यमादितः") ; 'श्रप्रयुक्त्ग्'
(श्रमिन् कर्मषि प्रमादरहितः) ; 'यरिरस्थ' (असस्य) 'मध्ये' 'विधाजमानः' (श्रीवंविद्युदादिक्षेण विभेषतः प्रकाशमानः) । हे स्वित्न्स्वमानाः, तस्य प्रसादात् 'दिखानि' 'धाम' (स्वानानि) 'उप''प्र'-'यात' (प्राप्तत) ।

 ^{&#}x27;इडकासक्कं सम्मादितः' इति चादर्भ-पूक्तकपाठः ।

श्रय पञ्चमीमार,-"सम्प्र श्ववध्वमनु सम्प्र याताग्ने पथा देव-यानान् क्रणुध्वं । त्रसान् सधस्ये त्रधुत्तरसान् विमे देवा यजमानस् मीदत^(१•)" इति । हे 'श्रग्ने', लं 'विश्वे देवाः' 'यजमानश्च' सर्वे यूयं, 'सम्प्र'-'ख्यवध्वं' (सम्पक् प्रख्यावयत), श्रस्य कर्मणे विघ्नं वि-नात्रयतेत्वर्थः । 'त्रनु'-'सम्प्र'-'यात' (त्रनुक्रमेख कर्मसिद्धिं प्राप्नुत) । ततः 'देवयानान्' (देवसोकप्राप्तिहेह्यन्) 'पद्यः' (मार्गान्) 'क्रकुध्वं' (कुरुत)। 'सधस्त्रे' (सद्देखितियोग्ये) 'श्रक्षिन्' 'सीदत', 'उत्तरिक्षन्' काने अधिकलेन सीदत ।

त्रय वहीमाइ,—''येना सदस्रं वहिस येनाग्ने सर्ववेदमं । तेनेमं यक्तं ने। वह देवयाने। य उत्तमः(११)" इति। हे 'त्रग्ने', 'देवयानः' (देवप्रापकः) 'यः' लं 'उत्तमः', स लं 'येन' खापारेण 'सहस्रं' 'वहसि' (सहस्रद्विणाकं यज्ञं निर्वेष्ट्सि), तथा 'येन' यापारेण 'सर्ववेद्सं' (सर्वखद्विणाकं यज्ञं वहसि), 'तेन' खापारेण 'नः' (श्रस्रदीयम्) 'इमम्' 'यज्ञं' 'वह' (देवान् प्रापय) । 'देवयानः' इत्यादिकं यज्ज-विशेषणं वास्तु:--या यद्या देवान् प्राप्तः 'छत्तमः' भवति, तम् 'इमं' 'यज्ञं' 'वह' इत्यर्थः ।

श्रथ सप्तमीमाइ,—"जदुध्यखाग्ने प्रति जाय्टि एनमिष्टापूर्ने सूर्-स्त्रेयामयञ्च। पुनः क्रप्त्रभूका पितरं युवानमन्वाताः सीत् वि तन्तुमेतम्^(११)" इति । हे 'त्रग्ने', लम् 'उदुध्यख' (त्रस्रदिषवे सावधाना भव); 'एमं' (यजमानं) 'प्रति'-'जायहि' (प्रतिदिनं जागक्कं सावधानं कुर्); 'त्रयं' 'च' लं च मिलिला 'इष्टापूर्ने' (त्रौत

^{* &#}x27;सीदत्' इति सर्वत्र पाठा न सम्यक्।

स्मार्त्तकर्मणी) 'सं स्वेच्यां' (सम्पादयतं) । हे यजमान, लां 'पितरं' (पासकं), 'युवानं' (यौवनापेतं) 'पुनः' 'कृष्वन्' (अयो अयः सुर्वन्) श्रयमग्निः लिय निमित्तक्षते सित 'एतं' 'तन्तुं' (यज्ञप्रवाहं) 'श्रम्वाताष्ट्रसीत्' (श्रमुक्तमेण तनातु, सम्पादयतु) ।

श्रवाष्टमीमाइ,—"श्रयं ते योनिर्फ्लियो यता जाता श्रदेश्याः । तं जानस्रग्न श्रादेश्या ने वर्द्ध्या रियम्^(१६)" इति । हे 'अग्ने', 'यः' 'श्रयम्' इष्टकाचितिरूपप्रदेशः 'ते' (तव) 'योनिः' (खानं); 'यतः' (यस्या इष्टकाचितेः) 'जातः' (उत्पन्नः) लं 'श्रदेशच्याः' (दीप्तो भविष), 'तं' (योनिं*) 'जानन्' (खकीयलेन श्रवगच्छन्) 'श्रा'-'देश्व'। 'श्रय' (श्रनमार) 'नः' (श्रस्ताकं) 'रियं' (धनं) 'वर्द्ध्य'।

एतेर्मन्त्रेः साथां पुनिद्यतिं विधन्ते,—"प्रवे एवोऽसाँ होता छावते योऽग्निं चिनुते, न वे एतस्यानिष्टके श्राक्तित्व कस्पते, यां वे एवो-ऽनिष्टके श्राक्तिं जुडेाति स्ववित वे सा, ताश स्ववन्तीं यद्योऽनु परा भवति, यद्यं यजमाना यत् पुनिद्यतिं चिनुते श्राक्ततीनां प्रतिष्ठित्ये, प्रति श्राक्तत्यसिष्ठन्ति, न यद्यः परा भवति, न यजमानः" (५१८। १०२०) इति । 'श्राग्नें' चिन्वानः पुरुषः स्वर्गाभिसुस्वलात् 'श्रसाँ-क्रोकात्' प्रस्तुते भवति। 'एतस्थ' पुरुषस्य इष्टकार्ष्टिते देशे श्राक्तिनं सम्भवति । अप्रदेशस्य स्वकीयलाभावात्। एवं सति दष्टकार्र्षिते प्रदेशे 'याम्' 'श्राक्ततं' 'जुडेाति' 'सा' 'स्ववित', यथा भिन्नभाष्डे जसं गस्ति तदत्। 'स्ववन्तीं' 'ताम्' श्राक्तिम् 'श्रमु' 'यद्यः'

^{# &#}x27;याद्यि' इति सर्व्यत्र पाठा न सम्यक ।

नम्मति, 'यञ्चम्' 'मनु' 'यजमानः' ऋषि नम्मति । श्वत श्वाङ्गति-प्रतिष्ठार्थे 'पुनिस्ति' कुर्यात् ; तत श्वाङ्गतियञ्चयजमानाः प्रति-तिष्ठन्ति ।

त्रास्यां चिताविष्टकामञ्जां विधन्ते,—"त्रष्टावुपद्धात्यष्टाचरा गायची गायचेणैवेनं कृन्द्सा चिनुते" (५।४।९०%) इति ।

एतच्छाखावातमन्त्रानुसारेष सङ्घां विधाय प्राखानारानुसारेष चन्दी दी पंकी विधन्ते,—'चदेकादम चैद्युभेन, यहादम जागतेन, इन्दोभिरेवैनं चिनुते" (५।४।९ • च •) इति ।

प्रकाराम्तरेच पुनिस्तिं प्रश्नंति,—"नपास्की वै नामैबोऽग्निर्थत् पुनिस्तिर्थ एवंविदान् पुनिस्तिं चिनुत आ खतीयात् पुद्याद्यम् श्रामा" (५।४।९०%) इति। न पातयति न विनामयति आर्ज्ञतिं न सावयतीति पुनिस्तिरूपस्य अग्नीः 'नपास्कः' इति नामधेर्य। एवं श्वासा चितवान् पुद्यः पुत्रपाष्ट्रपर्यमम् अस्त्रस्टद्वो भवति।

पुन:श्रन्द्य तात्पर्ये दर्शयित,—"यद्या वे पुनराधेय एवं पुनश्चिति-चैं। जन्याधेयेन न स्पन्नोति च पुनराधेयमा धन्ने थे। अग्ने पिता न स्पन्नोति च पुनश्चिति चिनुते यत् पुनश्चिति चिनुते स्दुद्धी" (४। ४। १० %) इति । पुनराधेयपुनश्चित्योः पूर्वसम्बद्धाभावेन पञ्चादृ-द्विसङ्गावेन च साद्यसम्।

श्रम पूर्वपश्चलेन ब्राखान्तरमतस्यपन्यस्वति,—"श्रथो खन्नाइर्न चेतव्येति रहो वै एव यदब्रियंथा व्यावश् सुप्तं नेश्यति ताहृगेव तत्" (५१४१९ • श्र०) इति । यथा खोने सुप्ता व्यावः नेनिक्त् मार्गे गस्कता पुरुषेख नेश्वितः तसेव नेश्वितारं मारयित, एवमथं कूरे। प्रिः पूर्वे चितः कथिश्चत् पुष्यवश्चात् सुप्तवच्हानो वर्तते, स चेत् पुनर्खयित प्रवेशिववाश्ववन्तारयेत्; तस्रास्त्र चेतया द्यं पुनश्चितिरिति पूर्वः पक्षः।

तमेतं पद्मनादृत्य खपद्ममेव खापयित, "श्रयो खल्वा इसेत्येति यया वसीया इसं भागधेयेन बाधयित तादृगेव तत्"(५१४१९० श्र०) इति । खेले धनात्यं प्रभुं चिरकाखयवधानेन विस्तत्वनां सत्यः पुनरणुपायनमानीय यथा बाधयित, स च बाधित एव श्रभीष्टिसिंहं करोति, एवमयं प्रभुरिप्तः पुनिस्तिः सन् श्रभीष्टं साधयतीति चेत्या इयं पुनिस्तिः।

तसाः पुनिश्चतेः सम्हिन्नेस्त्रत्वसुदाहरणसुखेन स्पष्टीक्रियते,—
"मनुरिप्रमिष्मृत तेन न त्रार्ष्ट्रीत् सः, एतां पुनिश्चितिमपम्मत्
सामिष्मृत, तथा वै स त्रार्ष्ट्रीत्, यत् पुनिश्चितिं चिनुते स्वर्ध्वौ"(५।४।
१०८०) इति ।

श्वन विनियोगनंगरः,—
'श्रद्धि'—श्वं पुरा प्रातरनुवाकात् स्पृणेदिदम् ।
'नमा'—दाश्यां विक्रमर्थाः, येनाष्टाविष्टकाष्टकम् ॥
पुनियतिरिति प्रोका मन्त्रासोऽन नयोदम् ।

इति सायनाचार्यं विर्चिते साध्वीये वेदार्थप्रकामे कृष्णयमु:-

ममाग्ने वर्षो विष्कृ वेष्ठस्तु वृयं त्वेन्धानास्तु व पुषेम।
मण्डां नमन्तां प्रदिश्वतं सुस्त्वयाध्यं क्षेणु प्रतंना जयेम (१)।
ममं देवा विष्कृ ते संन्तु सर्व इन्द्रावन्तो मृहत्ते विष्णुं रृग्निः। ममान्तरिक्षमु ह ग्रेपमस्तु मण्डां वार्तः पवतां
कामें श्रास्मन् (१)। मिथे देवा द्रविणुमा यंजन्तां मय्याश्रीरस्तु मिथे देवह्रतिः। देव्या हे। तारा वनिषन्त ॥ १ ॥
पूर्वेऽरिष्टाः स्याम तनुवा सुवीराः (१)। मण्डां यजन्तु मम्
यानं हव्याक्रेतिः सत्या मनंसो मे अस्तु। एन् मा
नि गां कत्मचनाहं विश्वे देवासे श्री वोचता मे (१)।
देवीः षडुविष्ठिह र्णः क्रणोत् विश्वे देवास दृह वीरयध्वं।
मा हासाह प्रजया मा तन्त्रिभ्मा रंधाम दिष्ते से। मराजन् (१)। श्रीममन्यं प्रतिनुदन् पुरस्तात्॥ २॥

श्रदेशो गोपाः परि पाहि नृस्तं । प्रत्यश्री यन्तु
निगुतः पुनस्तेऽमैषां चिन्तं प्रबुधा वि नंशत् (१) । धाता
धातृणां भुवनस्य यस्पतिदे वश्से वितारं मिमातिषाहं ।
इ.मं यश्चमश्रिनोभा बृह्स्पतिदे वाः पान्तु यश्रमानं
न्युर्धात् । उद्याचा ना महिष्यः श्रमी यश्सद्स्मिन्
इते पुरुष्ट्रतः पुरुष्ठु । स नः प्रश्रायै इर्थश्वः सर्व्येन्द्र्
मा ॥ ३॥

नो रीरिषो मा परा दाः()। ये नेः सुपता अप ते

भेवन्तिन्द्राग्निभ्यामवे बाधामहे तान्। वसंवाे ह्द्रा श्रीदित्या उपरिस्पृश्रं मोयं चेत्तारमधिराजमंकन्()। श्रवीच्मिन्द्रंमुमुता हवामहे या गेाजिईन्जिद्श्रिजिद् यः। दूमन्ना युद्रं विह्वे जुषस्वास्य कुर्मा हिरवाे मेदिनं त्वा()। ॥ ॥

वृनिष्ना । पुरस्तात् । मा । विचेत्वारि १ शवा ॥१८॥

इति तैत्तिरीयसंहितायां चतुर्थकार्ग्डे सप्तमप्रपाठके चतुर्हभाऽनुवाकः ॥ *॥

चयादशे पुनिष्ठितिकता। श्रय चतुर्दशे विद्यास्था दृष्टका खचने। कत्यः, 'ममाग्ने वर्चा विद्वेष्वस्वित्यनुवाकेन प्रतिमन्त्र-मिष्टकाभिधिष्णयांश्विनात्यस्मनवमा श्राग्नीषीय जपदधाति, द्वादश्च षोडग्नेकविश्वतिश्वतिविश्वतिविश्वतिवि हो चिथे, एकादश्व ब्राह्मणाच्छ्श्मीये, षट्मार्जाखीयेऽष्टावष्टावन्येषु धिष्णियेषूपदधातीति विश्वायते' दति। तचाद्यामाद,—''ममाग्ने वर्चा विद्वेष्यस्त वयं ना दृन्धानास्तनुवं पुषेम। मह्मं नमन्तां प्रदिश्वस्तत्मस्त्वया श्रध्यचेण पृतना जयेम(१)" दति। हे 'श्रग्ने', 'विद्वेषु' (यज्ञेषु) यत् 'वर्चः' (फलं) तत् 'मम' 'श्रस्तु'। 'वयं' (खित्ययजमानाः) लाम् श्रग्निम् 'दृन्धानाः' (प्रज्वलयन्तः) 'तन्वं' (लदीयं श्ररीरं) 'पुषेम' (पुष्टं कुर्मः)। 'मह्मं' यजमानाय प्राच्याद्याः 'चतस्तः' 'प्रदिशः' 'नमन्तां' (वस्ता भवन्तु),—तत्रत्या जना मदधीना

भवन्तु । 'बध्वचेष' (खामिना) 'लबा' बहिता 'वषं' 'प्रतनाः' (विरोधिन्यः चेनाः) 'जयेम' ।

ष्य दितीयामाइ,—"मम देवा विद्ये यम् यर्थे द्रम्हावन्तो महता विष्णुरग्निः। ममामारिष्णमुह गोपमस्त मद्यं वातः पवतां कामे श्रिस्म् (१)" दिता। 'सर्वे' 'देवाः' 'मम' 'विद्ये' (मदीययक्रे) 'सम्,' (तिष्ठम्)। देवा एव विक्रेय्यम्,—'द्रम्हावमाः' (द्रम्ह्युक्ताः), 'महतः' (महहणाः), 'विष्णुः' 'श्रिग्नः' च—दत्येवमाद्याः। द्रद्म् 'छह् ' विद्यीर्णम् 'समारिषं' 'गोपं' (रष्णम्) 'श्रस्तु' लं । श्रयं 'वातः' (वायुः) 'मद्यं (मदर्थम्) 'श्रस्मिन्' 'कामे' (यद्यप्ते निमित्तभ्रते) सति 'पवतां' (सञ्चरत्त), मदीयं कामं साधयितत्वार्थः।

श्रय दृतीयामाइ,—"मिय देवा द्रविणम् श्रा यजनां मयाशीरस्तु मिश्च देवक्रतिः । देव्या हे।तारा विवयना पूर्वेऽरिष्ठा स्थाम तनुवा सुवीराः (१)" दृति । एते 'देवाः' 'मिथ' यजमाने 'द्रविणं' (धनम्) 'श्रा—यजनां' (सर्वतः सम्पादयन्तु) । 'श्राश्रीः' (श्राश्रास्त्रमानं फाइं) 'मिश्च' 'श्रस्तु' (यजमाने सिद्धं भवतु) । तथा 'देवक्रतिः' (देवानाम् श्राक्षानञ्च) 'मिथ' भवतु । 'देव्या' 'हे।तारा' (देवसम्बन्धिन श्रात्र्राक्षाः) 'पूर्वे' (श्रानादिसिद्धाः) 'विनयना' (श्रसस्यशं सम्भजन्तु) । वयं च 'तनुवा' (श्ररीरेण) 'श्ररिष्टाः' (श्रिंसारिक्ताः) 'सुवीराः' (श्रीभनपुत्रयुक्ताः) 'स्नाम' (भवाम) ।

त्रथ चतुर्थीमाइ,—"मद्यं यजना मस यानि इव्या त्राकृतिः सत्या सनचे। से श्रम्त । एते। सा नि गां कतमत् चन श्रष्टं विश्वे देवाचे। श्रध

स्वमेव सर्क्ष पाठः । भवतु इति पाठो भवितुं यक्कः ।

बेश्यता में(")" इति । 'मम' 'यानि' 'इत्या' (मदीयानि इवींषि)
धन्ति, तानि धर्वाणि 'मझं' (मद्यें) दैत्या ऋतिज्ञः 'यजन्तु'।
'में 'मम' 'मनधः' 'श्राकृतिः' (मदीयस्य मनधः धम्बन्धी थे।ऽयं
धद्भस्यः, स श्राकृतिः) 'धत्या' 'श्रस्तु',—सद्भन्तियार्थः सिधतित्यर्थः।
'श्रसं' 'कतमत् 'चन' 'एनः' (किमपि पापं) 'मा' 'नि-गां' (नितरां
मा प्राप्तवानि)। 'विश्वे देवाधः' (हे विश्वे देवाः), 'मे' (मदर्थम्)
'श्रधि'—'वेश्वत' (श्राधिकां मृत,—यजमानानां मध्ये श्रवं श्रधिक
इति देवानामग्रे कथयत)।

त्रथ पश्चनीमाइ,—"देवी: षडुविह्द णः क्रणेत विश्व देवास दह वीरयध्वं। मा हास्मिह प्रजया मा तनूभिमा रधाम दिवते सेमराजन्(१)" इति । 'देवीः' 'षडुवीः' (उर्वीनामकाः षट्मक्काका हे देयः); त्रत एव प्राखान्तराम्युपखाने समाधातम्,—'षएमोवीं—रंहससान्तु" शौद्य प्रथिवी च त्रापद्य त्रोषधयञ्च ऊर्क् स्तृता च' इति। ताहृत्र्यो हे देयः, नः (त्रस्मदीयम्) इदं कर्म 'उह् 'क्रणेत' विश्वीं कुद्त)। 'विश्वे देवाः' 'इह' कर्मणि 'वीरयध्वं' (वीरा भवत),—विष्नं परिहरतेत्वर्थः। वयं 'प्रजया' (पुचादिद्धपया) 'मा हास्मिह' (विपरित्यका मा भ्रम)। तथा 'तनूभिः' (पृष्टपरीरैः) 'मा हास्मिह'। हे 'से।मराजन', 'दिवते' (वैरिणें) 'मा रधामः' (कार्यसिद्धं मा करवाम)।

^{*} खबमेव सर्व्वत्र पाठः। 'रंइस्या सन्तु' इत्वेवंदिधः कश्चिदन्यः पाठोऽत्र सम्भाव्यते।

^{† &#}x27;क्राबोतु' इति सर्वेत्र पाठो न सन्यक्।

^{! &#}x27;बैरिमांबे' इति सर्वेत्र पाठो न समीचीन इव प्रतिभाति।

त्रथ षष्टीमादः,—"त्राग्नमंन्युं प्रतिनुदन् पुरस्ताददशे गोपाः परि पादि गस्तं । प्रत्यश्चो यन्तु निगृतः पुगस्ते त्रमा एषां चित्तं प्रमुधा वि नेश्चत्रं" इति । त्र्यम् 'त्राग्नः' 'मन्युं' (वैरिणां कोणं) 'प्रतिनुदन्' (निराकुर्वन्) 'पुरस्तात्' (त्रमाकं पुरतः) गच्छतिति श्रेषः । हे त्रग्ने, 'लम्' 'त्रदश्वः' (केनाप्यद्धितः) 'गोपाः' (रचणसमर्थः) सन् 'नः' (त्रसान्) 'परि'—'पादि' (सर्वतः पालय) । तव पालने सित 'ते' (वैरिणः) 'प्रत्यञ्चः' (प्रतिमुखाः) सन्तः 'निगृतः' (नितरां गमनश्रीसाः, पसायनपराः) 'पुनः' 'यन्तु' (श्वयो श्वयो यत्र-कापि गच्छन्तु) । 'एषां' (वैरिणां) 'चित्तम्' (त्रमःकरणं) 'प्रबुधा' 'त्रमा' 'विन्नेश्चत्' (प्रवोधेन सह विनश्चतु) ।

श्रथ सप्तमीमाइ,—"धाता धाद्यणां सुतनस यस्तिर्देवः पान्तु यजमानं न्यर्थात्^{©)}" दति । 'धाद्यणाम्' (जगत्कर्द्यणां दचप्रजापत्या-दीनां) श्रिप 'धाता' 'यः' (स्रष्टा), 'सुतनस्य' (लेकिस्थ) 'पितः' (पालकः) च । तथा 'श्रियमा' 'उभा' (यौ उभौ श्रियमौ), 'ष्टइस्पितः' च दत्येते 'देवाः' 'नः' (श्रस्प्रदीयम्) 'दमं' 'यञ्चं' 'यजमानं' च 'न्यर्थात्' (फलंश्रेगुष्णलचणात् वैयर्थात्) 'पान्तु' (रचन्तु) । कीदृशं यञ्चं ?—'देवं' (तत्तन्मन्त्रव्यवद्यार्युकं), 'स्वितारं' (फलस्य जनकं), 'श्रीभमातिषाइं' (पापलचणस्य श्रीभमातेः श्ररेः श्रीभभवितारम्)।

श्रयाष्टमीमाइ,—"जरुवाचा ने। महिवः ग्रमी यश्मदस्मिन् हवे पुरुद्धतः पुरुचु । स नः प्रजाये हर्यश्वः म्हडयेन्द्र मा ने। रीरिवो मा परा दाः (क)" इति । पुरुभिः (बक्तभिर्यजमानैः) इतः 'पुरुद्धतः'। श्राह्मत दन्द्रः इयते श्रिसिन्निति हवे। यद्यः, तिसान् यद्ये 'स' दन्द्रः 'नः' (श्रस्ताकं) 'श्रमं' (स्वसं) 'यंसत्' (यच्कतः) । कीदृश्च दन्द्रः ?— 'खह्याचाः' (श्रायानं याप्तः), बद्धदेशाधिपतिरित्यर्थः, 'महिषः' (महान् श्रोयीदिगुणसम्पन्नः), 'पृह्चु' (पृह्षु बद्धषु मन्त्रेषु श्रूयते श्वास्त्रते प्रतिपाद्यत द्दित पृह्णुरेव पृह्णु), हरिनामानौ श्रश्चा यस्य श्रमी 'हर्यसः' । देदृश्च हे 'दन्द्र', 'प्रजाये' (पृचादिप्रजासिद्धार्थं) 'स' (त्रं) 'नः' (श्रस्तान्) 'सट्डय' (सुख्य), 'नः' (श्रस्तान्) 'मा' 'रीरिषः' (मा हिंसीः), 'मा' 'परा-दाः' (मा च तिरस्कुह्) ।

त्रथ नवमीमाइ,—''ये नः सपत्ना त्रप ते भवन्तिन्द्राग्निग्यामव बाधामद्रे तान्। वसवा सद्रा त्रादित्या उपित्सृष्यं मा उपं चेत्तार-मधिराजमकन्^(२)" इति। 'धे'-केचित् 'नः' (त्रस्माकं) 'सपत्नाः' (प्रचवः) सन्ति, 'ते' 'त्रप'—'भवन्तु' (त्रपनययुक्ता भवन्तु)। वयं 'तान्'(सपत्नान्)'इन्द्राग्निग्यां'त्रनुग्रस्युक्ताभ्यां सहिताः 'त्रव-बाधामद्रे' (सर्वया बाधितान् कुर्मः)। वसुरुद्रादित्या देवता 'मा' (मां) एतादृष्णम्। 'त्रक्रन्' (कुर्वन्तु)। कीदृष्णम्?—इति, तदुच्यते, —उपिरतनं स्वगं स्पृत्रतीत्युपरिस्पृक् तं, 'उपं' (श्रन्तुतिरस्कारचमं), 'चेत्तारं' (त्रभिज्ञातारं) 'त्रिधराजं' (त्रन्येषां सर्वेषामधिपतिम्)।

श्रय दशमीमाइ,—'श्रवीचिमद्रमसुती इवामहे यो गीजित् धनजिदयजिद्यः । इसं ना यद्यं विद्यवे जुवखास्य कुर्मी इरिवा

स्वा चुयते इति पाठः, विं वा परच 'पुरुचुरेव पुरुचु' इत्यच पुरु-स्रुरेव पुरुचु इत्येव पाठः सम्भाखते।

^{† &#}x27;वस्त्रहादित्यादेवतानामेतादृश्म्' इति सर्वेत्र पाठो न सम्यक्।

[🕽] अत्र 'उपरिस्पृश्यम्' इति पदं पतितमिव प्रतिभाति ।

मेदिनं ला^(१०)" इति । 'शः' इन्द्रः, 'गोजित्' (परकीयगवी॰ जेता), तथा 'शः' 'भनजित्' (परकीयभनस्य जेता), 'शः' 'भयजित्' परकीयायानां जेता) श्रांता । 'श्रंवायम्' (श्रस्मदिभत्नुस्तं) तं 'इन्द्रं' 'स्वामन्दे' श्रमुं श्रश्चं निमित्तीहत्य 'समुतः' (श्राक्रयामः) । हे 'इन्द्रं' 'विद्यवे' (विविधाक्राने) सित 'नः' (श्रस्मदीयम्) 'इनं' 'शर्शं' 'जुषस्त' (सेवस्त) । इरिनामकात्रश्ची श्रस्म सन्तिः, स दरिवान्, हे 'इरिवः' (इन्द्रं), लाम् 'श्रस्थं' (श्रामानस्थं) 'नेदिनं' (सेइवन्सं 'सुर्यः' ।

एतेर्मकी: बाच्यसुपधानं विधित्सुरादी कानिचित् काम्यचयनानि दर्भयति, यदुनं स्वकारेक,—'इन्द्यितं चिन्नीत पद्भकामः' इति विज्ञायते, वेर्वेन्क्न्द्रोमिस्चनुवादित्येकं, प्राकृतैरित्यपरम्—इति ।

तिद्दं विधन्ते,—"क्रव्यक्षितं चिन्तीत पग्छकामः पग्नवा वे क्रव्याप्ट्रिस पग्नमानेव भवितं" (५।४।९९५) इति । "प्रिम्नमूर्धा दिवः ककुत्" इत्यनुवाकोक्षानि नानाष्क्रव्योयुक्रमन्ताचि, तेरेव चिता न तु यनुभिरिति क्रव्यक्षितः, तावृत्रमग्नि 'पग्नकामः' चिनुयात् ।

यच स्त्रचकारेणोक्षं,—'ध्येनचितं चिचीत स्वर्मकामः' इति विद्यायते, वक्रपक्षे ध्यसपुच्छे। भवति, पद्मात् प्राक् उदूइति

 [&]quot;परकीयमवानाम्" इत्येव पाठो अवितुं युक्तः ।

[†] चत्र पाठत्य वैपरोत्यमिव प्रतिभाति । 'कमुता इवामचे' (चसुं वर्ष विमित्तीक्रम चाइमामः) इत्येवंत्रम स्वात्र पाठी भवितुं गुक्तः ।

^{‡ &#}x27;चन्ति' इति सर्वेत्र पाठो भाग्तिकतः; 'क्ता' इत्वेव अवितुं युक्तः।

पुरस्तात् प्रत्यक् उद्गृहित एविमव हि वयसां मध्ये पत्ति निर्णामे भवित इति विद्यायते'—इति । तदिदं विधन्ते,—'ध्येनिषतं चिन्तीत सुवर्गकामः ध्येना वै वयसां पतिष्ठः घ्येन एव भूका सुवर्ग स्रोकं पतित'' (५१४।९९ श्र.॰) इति । 'वयसां' मध्ये 'घ्येनः' श्रतिश्रीष्ठं पतितुं समर्थः । 'ध्येन एव' घ्येनवस्त्रीधगास्थेव ।

यदणुक्तं स्वकारेण,—'कङ्कचिदलजिवत् इति श्रोनिचता व्याख्यातौ' इति । तदिदसुभयं क्रमेण विधत्ते,—"कङ्कचितं चिन्तोत यः कामयेत श्रीर्घखान् त्रमुश्चिक्षेको स्थामिति श्रीर्घखानेवा— सुर्भिक्षेको भवति । त्रखजिति चिन्तीत चतुः सीतं प्रतिष्ठाकामञ्चतक्षेत्र दिश्चो दिक्केव प्रति तिष्ठति" (५।४।१९६०) इति । कङ्काखजे। श्लोनस्थैव त्रवान्तरजातिभेदी, तच कङ्कस्थ श्रिरे। मण्डलाकारम्, त्रखजस्थ तु पादयोर्विश्चेषः । त्रत एव पादस्थानीयासु सीतासु दादशम्ब्र्जामपोद्य चतुः सङ्क्षां त्रूते । तच कङ्कचिता स्वर्गलोको 'श्लोर्घखान्' (सर्देषां मध्ये जन्नतिश्वरस्कः) प्रभुभवतीत्यर्थः । त्रथ त्रखजिता सीताचतुष्टयदिग्दारा प्रतिष्ठां प्राप्नोति ।

यदणुकं स्वकारेण,—'प्रजगितं चिन्तीत आह्यवानिति विज्ञायते यावानिष्ठः सारिक्षप्रादेशे दिसावतीं स्ति चतुरश्रां कला पूर्वस्थाः करण्या श्रधाच्छोणीं प्रत्याणिखेत्'—इति । तदिदं विधन्ते,—''प्रजगितं चिन्तीत आद्यवान् प्रेव आद्यासुदते" (५।४।९९%) इति। 'प्रजगं' श्रनासुसं, यथा शकटस्य पद्याद्वागे। विस्तृतः, पूर्वभागः सङ्कृचितः, तदत्। एतेन आद्यान् प्रणुदते।

यदुक्तं स्त्रचकारेण,—'उभयतःप्रउगं चिन्नीत यः कामयेत प्र 4 w जातान् आह्यासुदेय प्रति जनिक्यमाणान् इति विद्यायते यस्याविसुखे बकटे' इति । तदिदं विधत्ते,—"जभयतः प्रजनं चिन्नीत यः कामयेत प्र जातान् आह्यासुदेय प्रति जनिक्यमाणानिति प्रेव जातान् आह्यासुदेते प्रति जनिक्यमाणान्" (५।४।९९%। इति । प्राक् पञ्चाच प्रजगास्त्रकटसुखसदृष्टम् 'जभयतः प्रजगं' । तेन जत्यस्यान् आह्यान् विनावयति, जत्यस्यमानानासुत्पत्तिं प्रतिवधाति ।

चदुकं स्वकारेष,—'रथवक्रवितं विन्वीत आह्यवान् इति विज्ञायते यावानिष्ठः सारक्षिप्रादेशस्तावतीं भूमिं परिमण्डलां छला' इति । तदिदं विधन्ते,—"रथवक्रवितं चिन्वीत आह्यवान् वज्जो वै रथा वज्जमेव आह्यथेभः प्र इरति" (५१४।९९%) इति । रथवक्रवत् वर्तुसलेन चीयत इति रथवक्रवित्।

यद्णुमं स्वष्कारेण,—'द्रोणियतं विस्तीत श्रम्भकाम इति विश्वायते दयानि तु खलु द्रोणिनि चतुरश्राणि परिमण्डलानि च तच यथाकामी' इति । तदेति दिश्चे,—"द्रोणियतं चिन्तीत श्रम्भकामी द्रोणे वै श्रम्भं श्रियते स्योन्येवास्त्रमवह्न्थे"(५१४।९९श्र॰) इति । द्रोणो हि धान्यं भरन्ति, श्रते धान्यस्थानस्रहितमस्थं प्राप्तीति ।

यद्युत्रं स्वयकारेण,—'समूद्यं चिन्तीत पर्यकाम इति विद्यायते समूद्यत्रिवेष्टका उपद्धाति' इति । तदिदं विधन्ते,—"समूद्यं चिन्तीत पर्यक्रकामः पर्यमानेव भवति" (५।४।९९२०) इति । समूद्रम् ऋर्षतीति समूद्यः ।

यद्युक्तं स्वकारेण,-'परिचायं चिन्दीत गामकाम इति विज्ञायते मध्यमार खयमाद्रखां प्रदिचिणमिष्टकागणेः परिचिनाति य परिचायः' इति । तरेतदिधत्ते,-"परिचायं चिन्नीत ग्रामकासा याम्येव भवति" (५।४।९९%) इति।

यद्णुमं स्वकारेण,—'मात्रानचितं चिन्वीत यः कामयेत पिहलोक ऋभ्र्यामिति विज्ञायते दयानि तु खलु साज्ञानानि चतुरत्राणि परिमण्डलानि च तच याघाकामम्' इति। तदेतदिधन्ते, — भागानितं चिचीत यः कामयेत पित्रक्षेके ऋभ्रयामिति पिद्रखोक एवर्ष्ट्रीति" (५।४(१९ त्र.) इति । तदेवं काम्बचयनानि समापितानि ।

श्रय प्रकृतैः 'ममाये वर्षः' द्रत्यादिभिर्मन्तैः साध्यसप्धानं विधन्ते.— "विश्वामिन-जमद्ग्री विषष्टेन श्रस्पर्धेताष्ट्र य एता जमद्ग्निविद्या त्रपद्मत् ता उपाधत्त ताभिर्वे च विषडखेन्द्रियं वीर्यमदृष्ट्वः यदिद्या उपद्धातीन्त्र्यमेव ताभिर्वीयैं यजमाना आदृयस्य रुङ्क्रे" (५।४) ९ ९ प्र ॰) इति । विद्यमन्दोपेतैर्भन्तैदपधेया इष्टका विद्याः।

उपधानदेश विधनो,—''होतिर्धिणिये उपद्धाति यजमानायतमं वै हे।ता खे एवास्ना त्रायतने इन्द्रियं वीर्यमवरून्थे" (५।४।९९ ५ 🛪 •) इति । देवाज्ञानादिकस्य यजमानकार्यस्य देवा निष्पाद्यवाद्धीता यजमानस्यायतनम् ।

तच मळां विधत्ते,-"दादशोपदधाति दादशासरा जगती जागताः पन्नवे जगतीवासी पग्रुतवरून्धे" (५।४।९९%) इति । यद्यपाच मन्त्राणां दश्वलानान्त्रकर्मायङ्का पूरणीया । तत्पकारस स्वकारेण दर्शितः,—'श्रमीयाश्चा मन्त्राः, भ्रयाश्चि कर्याण तत्र समग्रः प्रतिविभव्य पूर्वेः पूर्वाणि कारयेदु नरे क्नराणि; श्रमीयाश्चि कर्याणि, भ्रयाश्चा मन्त्राः; तत्र प्रतिमन्त्रं कुर्यात्, श्रविष्ठा विकल्पार्थाः, यथायूपद्रव्याणीत्यनात्त्रोपा विद्यद्भिर्वा' इति। श्रते। श्र पूर्वभागस्य श्रमिमं पश्चमं, उत्तरभागस्यान्तिमं दश्चमञ्च श्राद्या वर्धयिता सञ्ज्ञा पूरणीया।

खानामारेषु सङ्घां विधन्ते,—"ग्रष्टावष्टावन्येषु धिष्णियेषूपदधाति श्रष्टाशकाः पश्चः पश्चरतेवावक्त्ये" (५।४।९९ श्र॰) द्वति। प्रश्वास्त्रीय-पेचिय-नेद्रीयाच्छावाकीयादीनि श्रन्यानि धिष्णियानि, तत्र नवम-दश्यममन्त्रयोर्खेग्पेनाष्ट्यक्का श्रवगमान्या।

कचित् सङ्घान्तरं विधन्ते,—"वएमाजीसीये, वद्या स्वतव, स्वतवः खलु वै देवाः पितरः, स्वद्वनेव देवान् पितृन् प्रीणाति" (५।४।९९%) इति । दैविकस्य पैत्रकस्य च किसंखित् स्वता कर्तस्थलादृद्धनां देवलं पित्रलक्ष । अत्र सप्तमादीनां चतुर्णां मन्त्राणां ले।पः ।

श्रव विनियागसंग्रहः,—ं

ममाग्ने दङ्गभिर्मन्तैर्धिष्णियेषु यथायथम्। रष्टका उपधन्तेऽच विक्रकाण्डः समापितः॥ ष्यथ मीमांसा, वृतीयाध्यायसाष्टमपादे(९४%) चिन्तितम्,—

ममाग्न इति कस्याच फलं? खिङ्गेन वकृगं। युद्धा स्वामिनि, न क्रीते, खिङ्गे तचापचर्यताम्॥ 'ममाग्ने वर्चे। विश्ववेस्वस्य' इत्ययं मन्त्र इष्टकाचयमाङ्गश्चते। राज्यर्थुणा

^{*} इत्ययम् खाच्वनोयस्याधाने करमभूते। मन्तः इति न्यायमानापाउः।

पयते । विश्विष्टं इतनं येषां यज्ञानां ते विद्याः । तेषु वर्षः तेजसा उपलितं यत् पत्नं तम्मास्त्रित्यनेन सिङ्गेन मन्त्रमुचारियतुरध्वेति-सित्पलितं यत् पत्नं । मैवं । त्रश्चिं चिनुते द्वात्मनेपदशुत्या साङ्ग-प्रधानपत्नस्य यजमानगामिलं प्रतीयते, न च परिक्षीतस्याध्वर्थोर्द चि-प्रातिरिकः फलसम्बन्धे न्यायः । तस्माच्छुतिन्यायाभ्यां विद्धं तिसङ्गं यजमानपरत्वेनापचरणीयं,—मदीययजमानस्थैव तद्वेषाऽस्तिति द्वि उपचारः । तस्माद्यजमानेन पायेषु 'त्रायुद्गं त्रग्नेऽस्यायुर्मे देदि' दत्यादिषु क्रियमाणानुवादिषु प्रत्यगात्रीर्मन्त्रेषु श्रुतं पत्नं यद्यायाजमानं, तद्यैवाध्वर्थणा पायेषु करणमन्त्रेषु श्रुतमिप पत्नं याजमानमेव" ॥

इति सायनाचार्य्यविरचिते माधवीये वैदार्थप्रकाशे कृष्णयजुः-संहिताभाये चतुर्थकाण्डे सप्तमप्रपाठके चतुर्दशोऽनुवाकः॥ ॰॥

श्रमें में प्रश्नमस्य प्रचेतसो य पार्श्वजन्यं बेहवः सिम्यते। विश्वस्यां विश्व प्रं वि विश्विवाः संमीमष्टे स नी मुख्तवः हंसः (१)। यस्येदं प्राणन् निम्वद्यदे- जेति यस्यं जातं जनमानच्च केवे खं। स्तीम्य्विं नीयितो जोहवीमि स नी मुख्तवः हंसः (१)। इन्ह्रंस्य मन्वे। प्रश्नमस्य प्रचेतसा हब्द्यस्तीमा उप मामुपार्गः। यो दाशुषं सुक्षते। हब्मुप् गन्ती॥१॥

^{* &#}x27;दर्भपूर्कभासाभ्यां खर्मकामा यजेत' हति न्यायमाकापाठः।

[†] खादर्भपुक्तकादी मन्ये इति खत्र पाठः।

स ने। मुच्नुत्वश्रहंसः (१)। यः संग्रामं नर्यति सं वृशी
युधे यः पुष्टानं सः सृजति च्याणि। स्तौ मोन्द्रं नाष्ट्रितो
जो हवी मि स ने। मुच्नुत्वश्रहंसः (१)। मृन्ये वं। मिचावर्षणा तस्यं चित्रः सत्याजसा हः हणा यद्दुदेये। या
राजानः स्रधं यात्र जेगा ता ने। मुच्चत्मार्गसः (१)।
यो वाश र्षं च्रुजुरंक्मिः स्त्यधंम्। मित्रुव्यरंन्तमुप्याति
दूषयन्। स्तौ मि॥ २॥

मिषावर्षणा नाशिता जीहवीमि ती नी मुचत्-मार्गसः (१)। वायोः संवितुर्विद्यानि ममाद्दे यावातम्-महिभूतो या च्रष्ठतः। या विश्वस्य परिभू बंभूवतुस्तीः नी मुचतुमार्गसः (१)। उप श्रेष्ठां न श्वाशिषा देवयोधमें श्रस्यरन्। स्तीमि वायुः संवितारं नाशिता जीहवीमि ता नी मुचतुमार्गसः । र्ष्वीतमा र्ष्यानामम् ज्ततये श्रुभं गमिष्ठा सुयमें भिर्श्वर्थयाः॥ ३॥

वां देवे। देवषिणियतमाज्ञाती ने। मुख्यतमार्गसः(०)।
यदयातं वहतुः सूर्यायास्त्रिच्छत्ते स्र सदिम्ब्हमानी।
स्तौमि देवाव्यिनी नाष्ट्रिता जीहवीमि तै। ने।
मुख्यतमार्गसः(१०)। मृहतां मन्वे श्रिधं ने। अवन्तु प्रेमां
वाच् विश्वामवन्तु विश्वे। श्राश्रम् हुवे सुयमानृतये ते
ने। मुख्यत्वेनसः(१९)। तिगममार्युधं वोद्धितः सहस्विह्यः श्रिः॥ ४॥

प्रतंनासु जिष्णु स्तामि देवामारती नाथिश जीइवीमि ते ने। मुज्युन्वेनसः(११)। देवानां मखे अधि ना ब्रुवन्तु प्रेमां वाचं विश्वामवन्तु विश्वे। श्वाश्वन् हुवे सुयमानूतये ते ने। मुच्चन्वेनसः(११)। यद्दं माऽभि-श्रीचंति पौरंषेयेण दैथेन। स्तीमि विश्वीन्देवास्रीयिता जीइवीमि ते नी मुख्नवेनेसः(१४)। अनु ने। ह्यान्-मितः (९४) ऋनुं ॥ ५ ॥

इदंनुमते लं(१०) वैश्वानुरो न जुत्या(१०) पृष्टो दिवि(१०)। ये अप्रधेताममितेभिरोजोभिये प्रतिष्ठे अभवतां वस्नेनां। स्तौमि बार्वाप्रियवी नीयिती जोइवीमि ते ना मुच्चतम र इसः(१८)। उर्वी रोदसी वरिवः क्रणातं श्चेत्रं पत्नी अधि ना ब्रूयातं। स्तौमि दावापृथिवी नाश्विता जाइवीमि ते ना मुख्यत्म र इंसः(१०)। यसे व्यं पंरुषुचा यंविष्ठाविंदा श्सञ्चकृमा कच्चन ॥ ६॥

त्रार्गः क्षी स्वंसार अदितेरनागा व्येनीरसि शिष्ठयो विषेगमे (१९)। यथा हु तद्वसवा गै।या चित् पृद् सिता ममुच्चता यजवाः। युवा त्वमसात् प्र मुच्च व्यः इः प्राप्तार्यमे प्रतुराच्च आयु^{;(११)}॥ ७॥

गन्ता । दूषयुनस्तौम् । ययोः । श्रद्धः । श्रनुमितिः श्रन् । चन । चतुंस्ति श्राच ॥ १५ ॥

^{*} वितासिति भाष्यादर्भपुक्तकपाठः।

इति तैत्तिरीयसंहितायां चतुर्थकाण्डे सप्तमप्रपाठके पच्चद्योऽनुवाकः ॥ *॥

श्रामेन्द्रे। यस्येदम्। इन्द्रेस्य । यः संग्रामः। स ना मुख्यतः इतः। मृत्वे वाम्। ता ना मुख्यत्मागंसः। या वां। वायोः। उपं। र्योतमी। यद्यातं। ता ना मुख्यत्मः इतः। महतां। तोगं। देवानां। यद्दिं। श्रुतं नुः। जर्वी। यत्ते। ना मुख्यत्मः इसः। यत्ते॥

चृतुर् इसः। षुड़ागंसः। चृतुरेनंसः। द्विरः इसः *॥
श्रमीविष्णु। श्रीध्यः। श्रम्भ। अर्क् च। श्रमी च।
श्रमियः। श्रम्यः। श्रमियः। श्रमियः।
शर्मायः। स्वाचः। वाजीः नः। श्रमियं युनिष्मः। समीग्रे।
श्रमिये। पर्चंदशः॥ १५॥

श्रमीविष्पू(१।१)। श्रमिश्र(६।१)। वाजी ने।(१२।१)। श्रदंभी गोपाः(१४।३)। एकास्रचंत्वारि १ श्रत्। ॥ ३८॥

> ॥ * ॥ समाप्तः सप्तमः प्रपाठकः ॥ * ॥ समाप्तश्च चतुर्थः काण्डः ॥ इरिः ॥ ॐ ॥

^{*} खयमंग्रः A प्रश्टितपुक्तके गास्ति।

^{† &#}x27;नवित्रंश्वत्' इति बे पु॰ पाठः। प्राथमिनेषु सप्तसु खनुवानेषु प्रश्चेनं हिरिति १८, खरुमे १, नवमे १, दश्च मे २, एकादश्चे ३, हादश्चे ४, त्रवेदश्चे ८, चतुर्दश्चे २ एवं पश्चदश्चे ८, नवाने ७ इति मिलिला एकानचलारिंश्चत्। ३८।

चतुर्दश्रेऽनुवाके विद्याख्या इष्टका जनाः। त्रथ पञ्चदश्रेऽत्रमधसमन्धिन्या याज्यानुवाक्या जन्म । त्रयञ्चानुवाकाऽसात् काण्डात्
जन्मष्टयः । कत्यः, 'त्रग्नये त्रष्ट्रहोसुचेऽष्टाकपासः इति दश्वदिर्धः स्टगारेष्टिमनुनिर्वपति समानन्तु खिष्टकदिङमग्नेभेन्ये प्रथमस्य प्रचेतसः इति यथासिङ्गः याज्यानुवाक्याः इति। तने। तने। त्राच्चतस्य प्रथमदिवः पुरेाऽनुवाक्यामादः,—"त्रग्नेभंन्ये प्रथमस्य प्रचेतसे। यं पाञ्चन्यं बहनः सिम्थते । विश्वसां विश्व प्र वि विश्विवाष्ट्रसमीमद्दे स ने। सञ्चतुः त्रप्टसः (१)" इति । पञ्चनना निषादपञ्चमा वर्णाः, तेभ्या दितः 'पाञ्चनन्यः', तादृश्चं 'यम्' त्रग्निं 'बह्वः' यजमानाः, 'सिम्थते' (प्रदीपयन्ति), 'प्रथमस्य' (स्ट्यादावृत्पञ्चस्य), 'प्रचेतसः' (प्रक्रष्टज्ञानवतः), तस्य 'त्रग्नेः' मूर्त्तःं 'मन्त्रे' (मनसा चिन्तयामि) । 'विश्वसां' 'विश्वः' (सर्वस्यां प्रजायां) 'प्र वि विश्विवाष्ट्रसं' (जाटराग्निक्रिष्ण प्रविष्टवन्तं) तमग्निम् 'ईमहे' (वयं प्राप्नुमः) । 'सः' (त्रग्निः) 'नः' (त्रस्तान्) 'त्रंइसः' (पापात्) 'सुञ्चतु' (सृक्तान् करोतु) ।

तचैव याज्यामाइ,—"यखेदं प्राणत् निमिषद्यदेजित यस जातं जनमानद्य केवलं। स्तीम्यग्निं नाथिता जाहवीमि स ने। सुद्ध-ल्रह्सः (१)" इति। 'प्राणत्' (साचापेतं) 'निमिषत्' (निमेषोपेतं) 'यत्' 'इदं' जगत् 'एजित' (कम्पते) चेष्टत इत्यर्थः, तस्ववं 'यस्य' अग्नेरधीनं 'जातं' (पूर्वसुत्पन्नं), 'जनमानम्' (इतः परं जनित्यमाणं) 'च' जगत्सवं 'केवलं' परिनरपेचं सत् यस्याधीनं, तम् 'अग्निं' 'स्तीमि', 'नाथितः' फ्लया आयुकोऽहं 'चेहिवीमि' (पुनःपुनर्जुहोमि)। श्रेषं पूर्ववत्।

इविषमिति चादर्भपुत्तकपाठः।

भय 'दन्द्रायाष्ट्रहोसुचे एकाद्रश्रकपासः'दत्यस्य पुरोऽनुवाक्यामाइ,—
"दन्द्रस्य मन्त्रे प्रथमस्य प्रचेतसे। दृन्द्रः स्तामा उप मासुपागुः ।
यो दाग्रुषः सृक्तते। इवसुपगन्ता स ने। सृञ्चलष्ट्रसः (१)" इति ।
'प्रथमस्य' (स्व्यादावृत्पन्नस्य), 'प्रचेतसः' (प्रकृष्टश्चानवतः), 'दन्द्रस्य'
मूर्तिं 'मन्ते' (श्रदं मनसा चिन्तयामि) । 'दृष्पः' (श्रनुघातिनः)
'दृन्द्रस्य' 'उप' (समीपं) प्राप्ताः 'स्तोमाः' (स्तोचाणि) 'मां' (यजमानम्)
'उपागुः' (प्राप्ताः),—दन्द्रगुणकथनपराणि स्तोचाणि मिक्किझायाम्
भवस्तितानीत्यर्थः। 'यः' दन्द्रः, 'दाग्रुषः' (इविर्द्शनवतः), सुष्ठु कर्म
भनुतिष्ठते। यजमानस्य 'इवम्' (श्राझानं यज्ञं वा) 'उपगन्ता'
(प्रास्थित)।

तकेव याक्यामाइ,—"यः संग्रामं नयति संवत्री युधे यः पृष्टानि सम्स्काति वयाणि । स्तौमीन्द्रं नाथिता जास्वीमि स ना सुद्धतु श्रम्भ्रसः (ग्रम्भः 'युधे'(योद्धुं) 'वत्री' (खाधीनपरिवारोपेतः) 'संग्रामं' (युद्धदेशं) प्रति 'सं'-'नयति' (खकीयां सेनां सम्यक् प्रापयति)। 'यः' च इन्द्रः, 'सं'!—'पृष्टानि' (सम्पूर्णानि) 'नयाणि' (गवासपुक्षक्पाणि) 'संस्काति' (यजमानेन यो जयति)। श्रेषं पूर्ववत्।

त्रथ 'मित्रावदणाभ्यामागे।सुग्भ्यां पयखः'-इत्यस्य पुरे।ऽनुवाद्या-माइ,—"मन्त्रे वां मित्रावदणा तस्य चित्तः सत्याजमा दृः इणा यं नुदेथे। या राजानः सर्थं याच ख्या ता ना सुञ्चतमागमः (॥)" इति। 'मित्रावदणा' हे मित्रावदणी, 'वां' (युवयोः) मूर्त्ति' 'मन्त्रे'

^{*} अत्र 'सक्ततः' इत्ययं ग्रब्दः प्रतित इव प्रतिभाति ।

^{† &#}x27;स पुछानि' इति सर्व्वच पाठो न सम्यक्।

(मनसा धायामि)। 'सत्योजसा' (श्रष्ठचिमवस्ते), 'हृंद्रणा' (सक्षयन्ते) युवां 'यं' श्रस्पद्वेरिणं 'नुदेथे' (निराकुद्दतः), तस्य वैरिणः 'चित्तं' (रुष्ट्रबुद्धिं) जानीतं, युवासुभा 'राजानं' (दीप्तिमन्तं) 'सर्थं' (रथसद्दितम्) श्रादित्यं 'याथ' (स्वोकापकाराय दृष्टिमृत्पाद्यितुं हृष्टिं प्राप्त्रयादः)। 'उपा' (श्रिनष्टिनिवारणेऽत्यन्तं तीन्त्णौ), 'ता' (ता) युवां 'नः' (श्रसान्) 'श्रागसः' (पापात्) 'सुञ्चतं' (सुक्तं कुद्दतं)।

तचैव याज्यामाइ,—"यो वाष्ट्र रथ ऋजुरिक्षः सत्यधर्मा मियु-यरन्तमुपयाति दृषयन् । स्तामि मिनावरुणा नाथिता नेष्ट्वीमि तो ने सुञ्चतमागमः(९)" इति । हे मिनावरुणा, 'वां' (युवयोः) 'यः' 'रथः' 'ऋजुरिक्षः' (श्रजुटिलप्रयहः) 'सत्यधर्मा' (श्रवितथा-धारणश्च) भवति, स रथः" 'मियुश्चरन्तं' (मिथ्याचारिणं श्रन्यायकारिणं श्रनुं) 'दूषयन्' 'उपयाति' (बाधमानः प्राप्नोति) । स्तामीत्यादि पूर्ववत्।

श्रथ 'वायो-मिवित्र श्रागे। सुग्भां चरः' इत्यस पुरे। उनुवाक्या-माइ,— "वायोः मिवितुर्विद्यानि मनाहे यावात्मन्यद् बिस्तो या च रचतः । या विश्वस्य परिश्व बश्चवतुस्ता ना सुश्चतमागसः (०) " इति। यो वायुर्वस्य मिवता तयो रूभयोः 'विद्यानि' (वेदनानि) श्रभिप्राय-विश्वयान् 'मनाहे' (जानीमः)। 'या' (वायुमिवतारी) 'श्रात्मन्वत्' (स्वश्वरीरमिव) 'बिस्तः' (मवें अगद्धारयतः)। किञ्च 'या' (वायुमिवतारी) मिवतारी) 'रचतः' (जगत् पास्यतः)। किञ्च 'या' (वायुमिवतारी) 'विश्वस्य' (कृत्वस्य) जगतः 'परिश्वर' (परितो व्यापका बश्चवतः)। तावित्यादि पूर्ववत्।

^{*} स रचं इति सर्वत्र पाठो न सम्यक्।

तंषेव याज्यामार,—''उप श्रेष्ठा न श्राश्चिमें देवयोधेमें श्रस्तिरन्। स्तिमि वायु स्वितारं नाथिता जास्वीमि ता ना सुश्चतमागसः(^(८))' इति । 'श्रेष्ठाः' (प्रश्नस्ताः) 'नः' (श्रस्तदीयाः) 'श्राश्चिषः' (फलविश्चेषाः) 'सेवयोः' (वायुषविचोः) सम्मन्धिनि 'धर्मे' 'उप' कर्मणि 'स्तिरन्' (उपास्तीयत) तद्धीना इत्यर्थः । स्तिमीत्यादि पूर्ववत् ।

श्रय 'श्रिश्वामागासुग्यां धाना' दत्यस्य पुराऽनुवाक्यामार,—
"रधीतमा रधीनामके जतये ग्रामं गिमष्ठा सुयमेशिरशैः। यथावीं
देवा देवेस्वनिधितमाजको ना सुञ्चतमागसः(८)" दति। 'रधीनां'
'रधीतमा' (ये रधिना देवाः सन्ति, तेषां मध्ये श्रितिश्रयेन रिधना),
'सुयमेशिः' (सुष्ठु निधन्तुं क्रकीः) 'श्रश्वः' 'ग्रामं' (समीचीनं देशे)
'गिमष्ठी' (श्रितश्रयेन गक्कना) श्रिश्वना 'श्रक्वे' (श्रष्ठं श्राक्रयामि)।
'देवी' श्रश्वना 'देवेषु' सर्वेषु मध्ये 'थयोः' 'वां' (युवयोः) 'श्रोजः'
(वस्ते) 'श्रनिद्धतं' (श्रन्येन केनापि न तीन्त्रणीक्रतं), किन्तु स्वभावत
एव तीन्त्रणमित्यर्थः। तावित्यादि पूर्ववत्।

तचैव याज्यामाइ,—''यदयातं वहत् स्र्यायास्त्रिचक्रेण यप्ट्-यदमिष्क्रमाने। स्तिमि देवाविश्वने। नाथिता वेशस्वीमि ते। ने। सुञ्चतमागयः('')'' इति। यसात् कारणात् 'स्र्यायाः' (स्र्यपम्याः) स्वमातुः 'संयदमिष्क्रमाने।'(सङ्गावस्त्रानं इष्क्रन्ते।) 'देवी' प्रसिने। युवां 'चिषक्रेण' (चक्रचययुक्तेन) रथेन 'वहतुं' (वाह्यितुं) 'श्रयातं' (रथस्थे। परि गतवन्ते), तसात् कारणात् तथाविधा देवा। स्तीमीत्यादि पूर्ववत्।

^{*} खत्र 'धर्मी' (कर्माता) 'उप' 'खस्थिरम्' इत्येवंरूपः पाठो भवितुं युक्तः।

[†] खत्र 'ऊतये' इति पदस्य खाख्या पतितेव प्रतिभाति ।

[🗓] युवौ इति सर्व्वत्र पाठः प्रामादिकः।

श्रथ 'मरुद्ध एने। सुग्न्यः सप्तकपासः' इत्यस्य पुरे। अनुवाक्यामाइ,

— "मरुतां मन्त्रे श्रधि ने। सुवन्तु प्रेमां वाचं विश्वामवन्तु विश्वे।
श्राप्त्र्यः क्रवे सुयमानूत्रये ते ने। सुञ्चन्त्रेनसः (११) "इति। 'मरुतां'
(मरुत्युक्त्वकानां) देवानां मूर्त्तिं 'मन्ते' (श्रद्धं मनसा ध्यायामि)। तेन
च मरुतः 'नः' (श्रसान्) 'श्रधि' 'झुवन्तु' (श्रधिकान् झुवन्तु)। ते च
'विश्वे' (सर्वे) श्रपि 'इमां' 'वाचं' (मदीयां प्रार्थनां) 'विश्वां' (सर्वाम्) श्रपि
'प्र' 'श्रवन्तु' (प्रकर्षेण रचन्तु)। 'श्राप्रह्रन्' (श्रीध्रगामिनः) 'स्रथमान्' '
(स्रष्टु नियामकान् मरुदास्थान् देवान्) 'जतये' (रचणाय) 'क्रवे'
(श्राक्रयामि)। 'ते नः' इत्यादि पूर्ववत्।

तचेव याज्यामाइ,—"तियामायुधं वीडितः सहस्वहियः बर्द्धः प्रतनासु जिष्णु। सोमि देवान् महता नाथिता नाहवीमि ते ने। सुञ्चन्ते नमः (११)" इति। महदास्थानां देवानाम् 'ब्रायुधं' तियादि—विशेषणविश्विष्टं 'तियां' (तीन्त्णं), 'वीडितं' (दृढ़ं)। किञ्च महतां 'बर्द्धः' (बलं) 'सहस्वत्' (परेषामभिभविष्ट), 'दियं' (यथोचितव्यवहारयोग्गं), अत एवं प्रतनासु' (परकीयसेनासु) 'जिष्णु' (जयबीलं)। सीमीत्यादि पूर्ववत्।

श्रय 'विश्वेभ्यो देवेभ्य एने। सुग्भ्यो दादशकपालः 'दत्यस्य पुरे। उनु-वाक्यामादः,— "देवानां मन्त्रे श्रधि ने। मुवन्तु प्रेमां वाचं विश्वा-मवन्तु विश्वे। श्राष्ट्रम् इत्वे सुयमानूत्रये ते ने। सुश्चन्त्रे नसः (१९)" दति। पूर्वे।का मदतां पुरे। उनुवाक्या, * तथेयं विश्वेषां देवानां पुरे। उनुवाक्या योजनीया।

^{*} बात्र यथा इति पदं भवितुं युज्यते।

तमैव याज्यामाइ,—"यदिदं माभिज्ञोचिन पौक्षेयेष दैसेन। स्रोमि विश्वान् देवान् नाथिता नेष्ठाव्वीमि ते ने सुश्चन्य नमः(१४)" इति। 'पौक्षेयेण' (मनुख्ययापारेण), 'दैस्येन' (देवयापारेण) च मन्पादितं 'यत्' 'इदं' (दुःखं) 'मा' 'श्वभिज्ञोचित' (श्वभिता मां क्रेज्ञयित), तस्य दुःखस्य श्रपनादनार्थं। स्रोमीत्यादि ग्रेषं पूर्ववत्।

श्रय 'श्रमुमत्ये चहः' इत्यस्य याज्यानुवाक्ययोः प्रतीके दर्शयित,—"श्रमु नेऽद्यानुमितः" (१५) "श्रम्विद्मुमते लम्" (१५) इति । "श्रमु नेऽद्यानुमितर्यद्यम्" इति पुरेऽज्ञवाक्या । "श्रम्विद्मुमते लं मन्यामे" इति याज्या । एतकोभयम् "इदं वामास्थे" (१का ० १प्र० । १९ १८) इत्यमुवाके स्थास्थातम् ।

श्रय 'श्रव्रये वैश्वानराय दादश्रकपाताः'—इत्यस्य याज्यापुरा-ऽनुवाक्ययोः प्रतीके दर्शयति,—"वैश्वानरे। न जत्या"^(१०) "पृष्टो दिवि"^(१८) इति। "वैश्वानरे। न जत्या प्रयातु" इति पुरोऽनुवाक्या। "पृष्टो दिवि पृष्टो श्रव्याः" इति याज्या। एतश्वोभयं "वैश्वानरे। न जत्या" (१का०५प्र०१९श्व०) इत्यसिश्चनुवाके व्यास्थातम्।

श्रथ 'द्यावापृथिवीभ्यामः हे सुग्भ्यां दिकपासः' दत्यस्य पुरेनऽनुवाक्यामाह,—''ये श्रप्रथेताममितेभिरे विश्विष्टं प्रतिष्ठे श्रभवतां
वस्ननां । स्तीमि द्यावापृथिवी नाथिता जाहवीमि ते ने।
सुञ्चतमः हसः(१८)" दति । 'ये' द्यावापृथियी 'श्रमितेभिरे।जोभिः'
(परिच्छे नुमश्रकीर्वसेः) 'श्रप्रथेतां' (प्रस्थाते श्रभ्दतां) । किञ्च 'ये'
द्यावापृथियी 'वस्ननां' (धनानां) 'प्रतिष्ठे' (श्राश्रयभृते) 'श्रभवतां',
ते द्यावापृथियी । सीमीत्यादि पूर्ववत् ।

तचैव याज्यामाइ,—"उर्वी रेादसी वरिवः क्रणातं चेत्रस्य पत्नी मिश्रि ना मूयातं। स्तामि स्वावाष्ट्रियी मास्रिता जाइवीमि ते ना सुस्रतमः इसः (१०)" इति। 'उर्वी' (उर्वी, म्रत्यमां विसृते), 'रादसी' (रादसी) हे स्वावाष्ट्रियी, 'वरिवः' (धमं पूजां वा) 'क्रणातं' (कुरुतं)। 'चेत्रस्य' 'पत्नी' (पत्न्यौ) हे स्वावाष्ट्रियी, 'नः' 'म्रस्मान' 'म्रधि' 'म्रूयातं' (म्रधिकान् क्रययतं)। स्तामीत्यादि पूर्ववत्।

श्रथ खिष्टकतः पुरे। जनुवाक्यामाइ,—"यन्ते वयं पुरुषचा यविष्ठ
श्रविदाष्ट्रस्यक्रमा कचनागः। क्रधी खस्माष्ट्र श्रदितेरनागा व्येनाष्ट्रसि
श्रिश्रथो विव्यगग्ने (१९)" इति । हे 'यविष्ठ' (युवतम) 'श्रग्ने', 'वयम्'
'श्रविदांसः' (ज्ञानरिहताः) सन्तः 'ते' (लदीयेषु) 'पुरुषचा' (पुरुषेषु)
'यत्'-'कचन श्रागः' (इं-कमप्पपराधं) 'चक्रम' (क्रतवन्तः)। 'श्रदितेः'
(श्रख्युजनीयस्थ) तव श्रस्तान् 'श्रनागाः' (श्रपराधरिहतान्) 'सु'-*
'क्रिधे' (सुष्ठु कुद्य)। हे 'श्रग्ने', 'एनांसि' (श्रस्तदीयानि पापानि)
'विव्यवन्' (सर्वया) 'वि'-'श्रिश्रयः' (विश्वषेष्ठ श्रियतानि कुद्य)।

तनैव याज्यामाइ,—"यथा इ तद्दवी गार्थं चित् पिद् चितामसुद्धता यजनाः । एवा लमस्रत् प्र सुद्ध यः प्रातार्यग्ने प्रतराञ्च आयुः (१२)" इति । 'यजनाः' (यष्ट्याः), 'वसवः' (जगन्निवासहेतवः) श्रिग्रा सहिताः हे देवाः, 'पिद् चितां' (बन्धनस्थाने स्वतीयस्य पात्रस्य श्राक्रमणेन पादे बद्धां) 'गार्थं'-'चित्' (गारीमिप्) यांकाद्मित् गारवणाङ्गाम् 'श्रसुद्धत' (बन्धान्मुक्तीकृतवन्तः)। हे 'श्रग्ने, 'तत्' 'यथा इ' (येनैव प्रकारेण तद्दन्धने।चनं कृतं),

^{* &#}x27;सु' इति पाठो सर्व्वच पतित इव प्रतिभाति।

'एवा लम्' (एवमेव लमिप) 'श्रस्मत्' (श्रस्मत्मकाश्चात्) 'श्रंहः' (विविधं पापं) 'प्र'-'सृश्च' (प्रकर्षेण सुक्तं खुरू)। 'नः' (श्रस्मदीयम्) 'श्चायुः' 'प्रतरां' (श्रत्यधिकं) यथा " 'प्रातारि' (प्रतर सम्पादय)॥ श्वन विनिथागसंग्रहः,—

श्रायेऽश्हामुनेऽष्टाक-पालां दत्यादिनेरिताः । दृष्टयेऽग्रेमंन्ययुका याच्यासासु कमादिमाः ॥ श्रावेराग्रेयके, दीन्द्रस्तेन्द्रे, मच्चे सनकारे । मैनावहणके, वायोर्वायो-सावित्रके, रथी ॥ श्रासिने, महतां माह-ते, देवा वैसदेविके । श्रानुद्योसानुमते, वैसा वैसानरे तथा॥ सावाप्रिययके ये तु, यसे खिष्टक्रतीर्यते । श्रानुवाके पश्चद्ये मन्ता दाविश्वतिर्मताः ॥

वेदार्थस प्रकानेन तसी हाई निवारयन।

पुमर्थांबतुरे। देवाद् विद्यातीर्थमदेवरः ॥

द्दति सायनाचार्थ्यविरचिते साधवीये वेदार्थप्रकामे कृष्णयजुः-संदिताभाय्ये चतुर्थकाण्डे सप्तमप्रपाठके पञ्चदमोऽनुवाकः॥•॥

द्दति श्रीमद्राजाधिराजपरमेश्वरवैदिकमार्गप्रवर्त्तकश्रीवीरमुक्क-श्रूपालमामाञ्चधुरन्धरेण मायनाचार्योण विग्चिते माधवीये वेदार्थ-प्रकाणनामकतैत्तिरीययजुः मंदिताभाये चतुर्थकाण्डे मप्तमः प्रपाठकः सम्पूर्णः ॥०॥

^{*} अत्र 'तथा' इति पदं पतितमिव प्रतिभाति।

[†] खपयेऽ है।मचे छाकपाल इति सर्व्यंत्र पाठी न सम्यक्।

शुह्मिपचम्।

| चग्रदम्। | ग्रुडम् । | प्रष्ठा । | | पङ्किः। |
|----------------------------------|---------------|------------|-----|------------|
| वच्चामः" इति | वच्चाम इति | • | | १६ |
| पालय दिवा | पानयचीया | ₹8 | •• | 9. |
| त | ते | રય | | 2. |
| मसायु(२) | मसायुं(६) | રય | | १२ |
| उवनारिचा | उवनारिचा | રય | | १६ |
| चिकीर्घते | चिकीयते | १६ | | ų |
| ——जिघमि | जिचिंसी | १∉ | | २० |
| प्राप्त्रयुः(रव मेव सर्वेच पाठः) | घाषुः | १च | | ११ |
| दच्छेम(८) | दच्छेम | R8 | | ₹• |
| द्वरिष्याम(१) | द्वरिष्याम(∽) | ₹8 | | र र |
| चिषिं | च्यक्रिः | ₹ ¥ | | १० |
| चन्दि | चन्द्रप्रि | २∉ | | |
| 'द्यावा | द्यावा | २६ | | ११ |
| वचखतीं | वचखती | 99 | | १इ |
| ——तेजः प्राप्तिः | तेजः—प्राप्ति | 86 | | १६ |
| चात्र दूता | चायद्वीता | ų. | | १८ |
| वाजी (एवमेव सर्वत्र पाठः) | वाजि | 41 | | è • |
| वामण्यां | कर्मेखां | €€ | | ₹ 8 |
| परे | पदे | 4€ | | २० |
| बिंड | वृद्धि | 99 | • • | ě |
| उखा कर्षे | उखा-कर्चे | 95 | | 9 |
| षार्यायतुः' | धारयितुः) | ⊂ 8 | | ٠ |
| मुखः | मुखाः | ₽. | | ११ |
| र्वेषयमं | वाधयेनं | <i></i> | ••• | 88 |
| वधः | दधे | દર | •• | 11 |
| | | -, | | ~ |

शुडिपचम्।

| ष्टवार | rt ı | पङ्ग | हो । | चग्रदम्। | | ग्रंबन्। |
|---------------|-------|------------|------|------------------|------|---------------------------|
| २ १० | | 2 | | प्रविभीर्घ | | पुरुषशीर्ध |
| ए ट ५ | | € | | यस्नादवम् | | यसादे बम |
| २६७ | | ų | | सर्पेग | | सर्पे ग |
| ₹•• | | १३ | | कासन्निषन् | | चासिष्ठम् |
| ३०३ | • • | २२ | | 'ব' | | 'ते' |
| ३१ 8 | | २० | | कमुर्या | • • | कर्म्यां |
| ,, | | 14 | | चच | • | चन् ं |
| ,, | | 19 | | चाच्त्रधासि | | चा चुषा शि |
| 多がこ | • • | ११ | | मन्त्र | | सन्त्रे " |
| १२१ | • • | १२ | • • | सउवेक | • • | स वेज इति पाठी |
| | | | | | | ष्वितुं युक्तः |
| ३ २६ | • • | 8 | • • | (भाटपुत्रादयः)। | • • | (साद्यपुत्रादयः) |
| ३९६ | • • | १ | • • | नाभिवि | • • | गिर्भिर्व |
| \$\$ C | • • | ₹8 | • • | खाश्वन्यादीस्वता | • • | च ।श्विन्यादीस्टका |
| ₹8⊂ | • • | ९१ | • • | प्रशंश्रति | • • | प्रशंसति |
| ,, | • • | १७ | • • | चित | • • | चिते |
| ₹8€ | • • | 60 | • • | 'কৰ্ম্ব।' | .• • | জৰ্জ্বা |
| १ ५२ | • • | ٤ | • • | লক | • • | खोक |
| RYS | • • | १६ | • • | कुर्वन्ती | • • | कुर्वेती |
| SA O | . • • | 8 | • • | चयस्त्रं शा | • • | चयस्त्रिंगा |
| २ ६१ | • • | ٧. | • • | वर्चेऽसा | • • | वर्षसाऽ |
| इड्ड | • • | २ २ | • • | सहापधानं | • • | सन्हापधानं |
| ३ ६५ | • • | ९४ | • • | टच चाः | • • | ट च द्यः |
| ** | • • | 39 | • • | जजित्रम् | • • | ज नित्रम् |
| ३ ६८ | • • | २२ | • • | प्रादिचाळीस | • • | पाद चि खोन |
| इ ० ६ | • • | ११ | • • | रचात्रूज | • • | रचायूर्ज |
| ¥ ७६ | • • | 24 | • • | धाता | • • | घे (ता |

शुह्विपचम्।

| प्र कायां | 1 - | 4 | ı | चग्रदम्। | | | ग्रदम्। |
|---------------------|-----|-----------|-----|---------------------------|------------|------|----------------------------|
| 3 68 | •• | € | . • | पक्रि | • • | • • | यद पङ्कि |
| ,, | ••• | ,, | • • | হন্ত্ৰ | • • | •• | षचर |
| ७ ३ ५ | • • | 24 | | तिपिछेन | • • | • • | तपिछेन |
| १६८ | • • | 8 | | यविष्ठ | • • | • • | यविष्ठ |
| ,, | | १६ | | प्रैषा | • • | •• | प्रैवा- |
| १०२ | • • | १९ | | परस्या | | | परस्पा |
| 8१३ | •• | 28 | | वैश्यकर्मा वि | ١ | | वैश्यकर्मग्रे इति |
| | | | | | | · | भवितुं युक्तं |
| 873 | •• | 9 | | स्तीमी | • • | •• | चो मी |
| 8२५ | | • | •• | श्रुरे। | • • | • • | সূহ |
| ८ २६ | • • | ₹8 | | ने। नुसे। | | • • | ने।नुमा |
| 884 | • • | १८ | •• | ∫ (यजमाने रेसंमिश्रया | () सि } | • •. | ∫ यजमाने { (संमिश्रयसि) |
| 88€ | • • | १६ | • • | सङ् | • • | | स्रु। एवं परत्र |
| 986 | •• | 8 | • • | 'उषः' | | • • | 'उषसः' |
| 388 | | ११ | | च्यमे त्व | • • | • • | चामे त |
| 840 | •• | • | | ર્ષામજે | • • | • • | बाभिष्टे |
| ध्यम् | • • | १२ | • • | चित्प रवस्य | •• | • • | कस्यचित् पुरुषस्य |
| 8 ६ ० | •• | १० | | षर्चे | • • | | ऋचे |